कलशामृत-८

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी समयसार कलश टीका के सन् १९७७-७८ के प्रवचन)

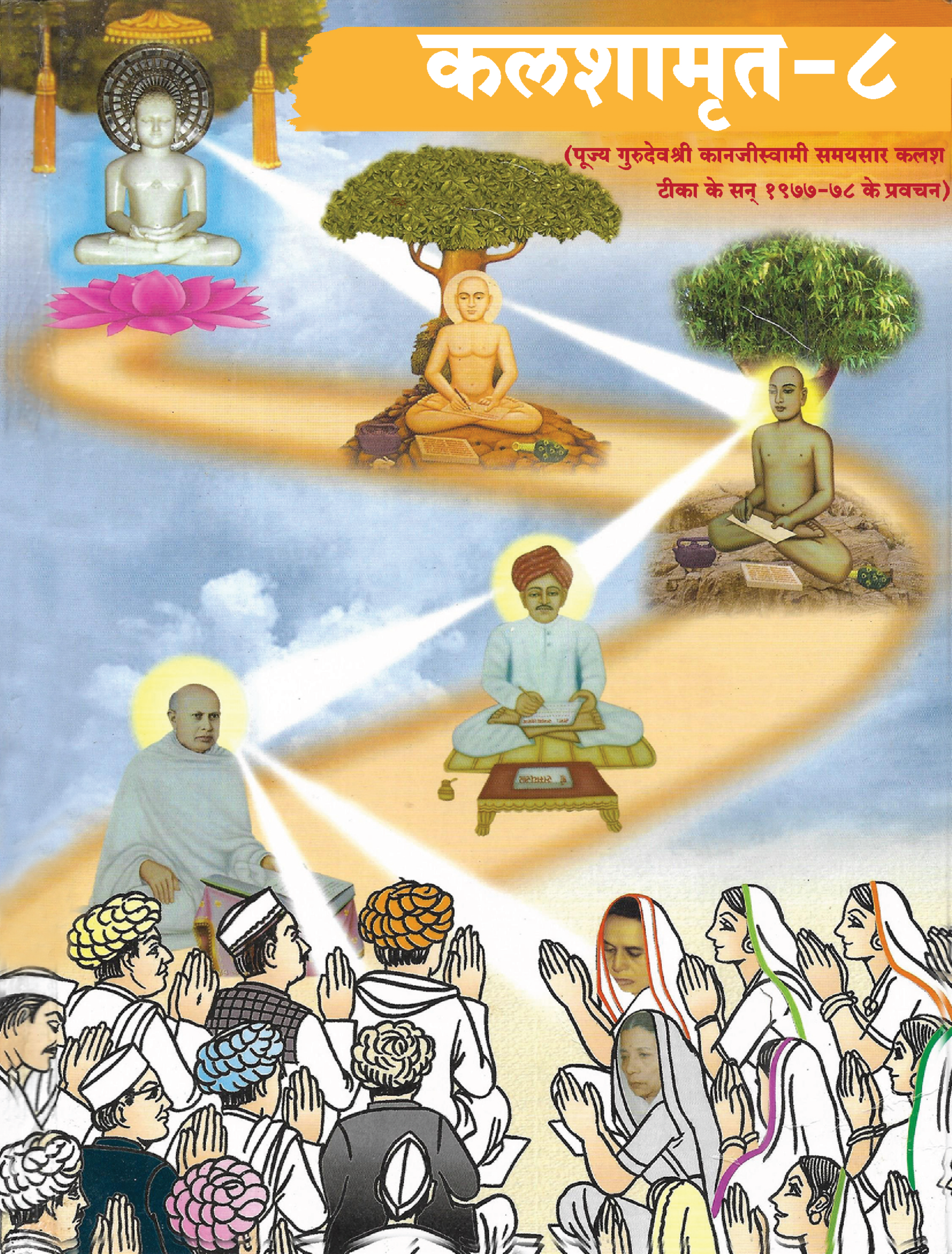

ॐ

परमात्मने नमः

कलशामृत

(समयसार कलशटीका प्रवचन)

भाग-8

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **परमागम समयसार** की **श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव** रचित **आत्मख्याति टीका** में समागत **समयसार कलश** की **पाण्डे राजमलजी** कृत टीका पर **परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के स्वानुभव मुद्रित आध्यात्मिक शब्दशः प्रवचन
कलश 247 से 278 तक, प्रवचन नं. 259 से 296 तक

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2079	2549	2023

—: प्रकाशन :—

वात्सल्यपर्व, मुनि रक्षा दिवस,
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा दिनांक 30 अगस्त 2023
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

वर्तमान तीर्थ के नायक चरम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान से प्रगट हुई दिव्यध्वनि की परम्परा में द्वितीय श्रुतस्कन्ध की रचना हुई। लगभग 2000 वर्ष पूर्व श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव हुए, जिनका स्थान जैन परम्परा में सर्वोत्कृष्ट है। उन्होंने सदेह विदेहक्षेत्र की यात्रा की, श्री सीमन्धर भगवान के साक्षात् दर्शन की, उनकी वाणी सुनी। वहाँ से वापस आकर वर्तमान में उपलब्ध शास्त्रों में सर्वोत्कृष्ट शास्त्र श्री समयसारजी रचना की।

भगवान 1000 वर्ष पूर्व श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य नामक प्रखर आचार्य हुए। उन्होंने श्री समयसारजी शास्त्र की टीका की तथा मन्दिर पर शोभित कलश की भाँति टीका पर कलशरूपी श्लोकों की रचना की।

कालक्रम से जैसे-जैसे जीवों का क्षयोपशम घटता गया, वैसे-वैसे आचार्य भगवन्तों के भाव जीवों को समझना कठिन लगने से, श्री पण्डित राजमलजी पाण्डे ने अमृतचन्द्राचार्य के कलशों पर सादी-देशभाषा में टीका की। इस टीका में उन्होंने श्लोक के शब्दों के सीधे अर्थ करते हुए उनके अनुभवगर्भित साररूप भावार्थसहित टीका की रचना की।

श्री समयसारजी शास्त्र पर बहुत आचार्यों तथा ज्ञानी विद्वानों ने टीका लिखी है। परन्तु पण्डित श्री राजमलजी की टीका पूज्य गुरुदेवश्री को इतनी पसन्द आयी कि उन्होंने इसका अनुवाद करने की प्रेरणा की, उस पर सादी भाषा में भाववाही प्रवचन प्रदान किये।

इन प्रवचनों के क्रम में कलशामृत भाग 8 प्रकाशित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। इस आठवें भाग में गुरुदेवश्री के स्याद्वाद तथा साध्य-साधक अधिकार के प्रवचन प्रकाशित किये गये हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कलश नं. 247 से 278 तक के प्रवचन संग्रहीत हैं, इस अधिकार में उस-उस तत्त्व का स्वरूप भलीभाँति स्पष्ट करके, उस प्रत्येक श्वान से रहित अपना त्रिकाली शुद्धात्मा बतलाने का ही आचार्य भगवन्तों से लेकर पूज्य गुरुदेवश्री के तक के प्रत्येक धर्मात्मा का आशय है। उस आशय को समझकर हम भी शुद्धात्मद्रव्य की दृष्टि प्रगट करे, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की स्वानुभवमयी वाणी जीवों को पंचम काल के अन्त तक स्वानुभव में

निमित्त होनेवाली है, इस परम्परा में ही यह प्रकाशन एक कड़ी है। इन प्रवचनों के अर्थों का जीव जब इनका अध्ययन / श्रवण करेंगे तभी ख्याल में आयेगा। इसलिए इस सम्बन्धी विशेष विस्तार न करते हुए मुमुक्षु इसका गहराई से अभ्यास करें, ऐसी अपेक्षा रखते हैं।

गुजराती भाषा में इन प्रवचनों का प्रकाशन दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर, राजकोट द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर आत्महित साधे, इस उद्देश्य से प्रस्तुत कलशामृत भाग – 8 का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। हम सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में परिपूर्ण परमात्मा का स्वरूप समझकर, संवररूप धर्म प्रगट करके आत्मिक आनन्द को आस्वादकर सभी जीव तृप्त बनें, ऐसी भावनापूर्वक....

प्रस्तुत ग्रन्थ www.vitragvani.com पर उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग

करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया।

गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त

दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश–विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो

कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	कलश	दिनांक	पृष्ठ सं.
२५९	२४७	०४-१२-१९६५	००१
२६०	२४८	०५-१२-१९६५	०२०
२६१	२४८	०६-१२-१९६५	०४१
२६२	२४८-२४९	०७-१२-१९६५	०६१
२६३	२४९	०८-१२-१९६५	०८३
२६४	२५०	०९-१२-१९६५	१०१
२६५	२५१	१०-१२-१९६५	१२०
२६६	२५१	११-१२-१९६५	१४०
२६७	२५१-२५२	१२-१२-१९६५	१५९
२४७	२५२	१५-०८-१९६८	१७९
२४८	२५२	१६-०८-१९६८	१९५
२४९	२५२	१८-०८-१९६८	२१३
२५०	२५२	१९-०८-१९६८	२३१
२५१	२५२	२०-०८-१९६८	२४८
२६९	२५२-२५३	१४-१२-१९६५	२३१
२७०	२५३	१५-१२-१९६५	२७९
२७१	२५३-२५४	१६-१२-१९६५	२९७
२७२	२५५-२५६	१७-१२-१९६५	३१७
२७३	२५६	१८-१२-१९६५	३४१
२७४	२५६	१९-१२-१९६५	३५९
२७५	२५७	२०-१२-१९६५	३७८
२७६	२५८	२१-१२-१९६५	३९६

२७७	२५८	२२-१२-१९६५	४१७
२७८	२५९	२३-१२-१९६५	४३६
२७९	२५९-२६०	२४-१२-१९६५	४५६
२८०	२६०-२६१	२५-१२-१९६५	४७६
२८१	२६१-२६२	२६-१२-१९६५	४९६
२८२	२६२ से २६४	२७-१२-१९६५	५१६
२८३	२६४	२८-१२-१९६५	५३६
२८४	२६४-२६५	२९-१२-१९६५	५५४
२८५	२६५-२६६	३०-१२-१९६५	५७४
२८६	२६६-२६७	३१-१२-१९६५	५९२
२८७	२६७	०१-०१-१९६६	६११
२८८	२६७-२६८	०२-०१-१९६६	६२८
२८९	२६८-२६९	०३-०१-१९६६	६४९
२९०	२६९-२७०	०४-०१-१९६६	६६९
२९१	२७०-२७१	०५-०१-१९६६	६९२
२९२	२७१-२७२	०६-०१-१९६६	७११
२९३	२७३	१२-०१-१९६६	७३१
२९४	२७४-२७५	१३-०१-१९६६	७५०
२९५	२७५-२७६	१४-०१-१९६६	७७०
२९६	२७७-२७८	१५-०१-१९६६	७८८

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

कलशामृत

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के श्री समयसार कलश पर प्रवचन)

(भाग - ८)

— ११ —
स्याद्वाद अधिकार

कलश - २४७

(अनुष्टुप्)

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ।।१-२४७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'भूयः अपि मनाक् चिन्त्यते' [भूयः अपि] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य—ऐसा कहता हुआ, समयसार नाम शास्त्र समाप्त हुआ। तदुपरान्त [मनाक् चिन्त्यते] कुछ थोड़ासा अर्थ दूसरा कहते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जो गाथासूत्र के कर्ता हैं कुन्दकुन्दाचार्यदेव, उनके द्वारा कथित गाथासूत्र का अर्थ, सम्पूर्ण हुआ। साम्प्रत टीकाकर्ता हैं अमृतचन्द्र सूरि, उन्होंने टीका भी कही। तदुपरान्त अमृतचन्द्र सूरि, कुछ कहते हैं। क्या कहते हैं— 'वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः' [वस्तु] जीवद्रव्य का [तत्त्व] ज्ञानमात्र स्वरूप [व्यवस्थितिः] जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं। 'च' और क्या कहते हैं— 'उपायोपेयभावः' [उपाय] मोक्ष का कारण जिस प्रकार है, उस प्रकार; [उपेयभावः] सकल कर्मों का विनाश होनेपर, जो वस्तु निष्पन्न होती है, उस प्रकार कहते हैं। कहने

का प्रयोजन क्या, ऐसा कहते हैं— 'अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं' [अत्र] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य में, [स्याद्वादशुद्ध्यर्थं] स्याद्वाद-एक सत्ता में (तत्-अतत्)-नास्ति, एक-अनेक, नित्य-अनित्य इत्यादि अनेकान्तपना, (शुद्धि) ज्ञानमात्र जीवद्रव्य में जिस प्रकार घटित हो, उस प्रकार (अर्थं) कहने का है अभिप्राय जहाँ—ऐसे प्रयोजनस्वरूप कहते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई आशंका करता है कि जैनमत, स्याद्वादमूलक है। यहाँ तो ज्ञानमात्र जीवद्रव्य—ऐसा कहा, सो ऐसा कहते हुए एकान्तपना हुआ; स्याद्वाद तो प्रगट हुआ है नहीं? उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीवद्रव्य—ऐसा कहते हुए, अनेकान्तपना घटित होता है। जिस प्रकार घटित होता है, उस प्रकार यहाँ से लेकर कहते हैं; सावधान होकर सुनो।।१-२४७।।

मागशर शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक-०४-१२-१९६५, कलश-२४७, प्रवचन-२५९

कलशटीका स्याद्वाद अधिकार, ग्यारहवाँ अधिकार, पहला कलश।

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ।।१-२४७।।

क्या कहते हैं? स्याद्वाद अर्थात् आत्मा को ज्ञानमात्र कहा, तथापि उसमें स्याद्वाद को विरोध नहीं आता। ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र, देखो इसमें आयेगा '**भूयः अपि मनाक् चिन्त्यते**' और, **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहता हुआ समयसार नाम शास्त्र समाप्त हुआ....** देखा! अन्तिम कहा था न? ज्ञानमात्र परमात्मप्रकाश में था न? आया था न? '**शुद्धज्ञानमात्र जीवद्रव्य' ऐसा कहने पर ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ**। ऐसा कहा था, उसमें (कलश २४६ में)। वह इसमें अपने प्रकाशित हुआ उसमें नहीं है। इसलिए उसके साथ मिलाया कि यह आत्मा ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र। यह ज्ञानमात्र कहते ही समयसार का ग्रन्थ पूरा हुआ, कहते हैं। समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहते हैं, देखो! **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहता हुआ...** इसके साथ मिलाया। भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य है, बस! उसमें कर्म, शरीर नहीं; पुण्य-पाप भी नहीं—ऐसा ज्ञानमात्र, उसे ही आत्मा कहा जाता है। अब यहाँ कहते हैं कि ज्ञानमात्र

(ऐसा) कहने से समयसार (ग्रन्थ) पूरा हुआ। उसमें अनेकान्तपना कहाँ आया? वह तो एक ही गुण आया। एक ही गुण आया। एक गुण तो एकान्त हो जाता है। उसमें अनन्त गुण आना चाहिए और स्व रूप से है पर रूप से नहीं। ऐसे अनन्त धर्म आना चाहिए। उसके बदले तुमने ऐसा ही कहा (कि) ज्ञानमात्र भगवान आत्मा। उसकी तुम दृष्टि और अनुभव करो, बस यह पूरा समयसार वहाँ इतने में समाप्त हो गया, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं, **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहता हुआ समयसार नाम शास्त्र समाप्त हुआ....** उसके साथ मिलाया, हों! इस सन्धि के साथ मिलान न खाये। **तदुपरान्त...** अब '**मनाक् चिन्त्यते**' '**भूयः**' है न? '**भूयः**' अर्थात् तदुपरान्त थोड़ा '**मनाक् चिन्त्यते**' **कुछ थोड़ा अर्थ दूसरा कहते हैं**। थोड़ा अर्थ दूसरा भी कहते हैं।

भावार्थ इस प्रकार है कि जो गाथासूत्र का कर्ता है कुन्दकुन्दाचार्यदेव,... मूल समयसार की गाथा के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्यदेव, भगवान के पास गये थे—सीमन्धर परमात्मा के निकट आठ दिन वहाँ रहे थे। समझ में आया? उन्होंने वहाँ से आकर और यह (शास्त्र) रचे हैं। भरतक्षेत्र में भले वहाँ (रचे) क्या कहलाता है? पौन्नूरहिल, पौन्नूरहिल। वहाँ ध्यान में थे, वहाँ से भगवान के पास गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे, वहाँ भगवान की वाणी सीधी सुनी। कितने ही प्रश्नोत्तर में श्रुतकेवली मुनि साथ में थे उनके निकट भी कितना ही समाधान किया। फिर यहाँ आये। यहाँ पौन्नूरहिल में यह समयसार मूल शास्त्र के श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य ने ताड़पत्र पर रचे हैं। यह बताया था, यह (संवत्) २०२० के वर्ष में गये थे न? बताया था। तुम थे? ऐसा! वहाँ अभी चारों ओर ताड़पत्र बहुत हैं। दो हजार वर्ष पहले ताड़पत्र थे, अभी भी ताड़पत्र बहुत हैं। उन ताड़पत्र में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने वहाँ श्लोक रचे। थोड़े से वहाँ होंगे दूसरे आगे-पीछे विहार करते हुए (रचे होंगे)।

थोड़ा अर्थ दूसरा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य इन गाथासूत्र के कर्ता हैं। मूल श्लोक के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य महाराज हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहीं नाम नहीं दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने कहा है न (ऐसा आता है)। मैं कहता हूँ उसमें, मैं अर्थात्

कुन्दकुन्दाचार्य। वहाँ पंचास्तिकाय में कहा है न? मैंने प्रभावना के लिये यह कहा है। मैंने अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य, ऐसा समझना, नाम भले न ले। ऐई! आता है या नहीं? नियमसार में मेरी प्रभावना एवं भावना के लिये नियमसार मैंने रचा है। कोई कर्ता तो होगा या नहीं? नियमसार यह कुन्दकुन्दाचार्य का ग्रन्थ है कि मैंने किया ऐसा शब्द यह महापुरुष अन्दर नाम नहीं डालते। समझ में आया? मैंने मेरी भावना के लिये यह नियमसार कहा है। पंचास्तिकाय में ऐसा कहा, मैंने संग्रह करके यह प्रवचन में भक्ति के लिये कहा है। ऐसा है न? नाम किसका डाले? समझ में आया? गाथासूत्र के कर्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, आज से पहले—२००० वर्ष पहले भरतक्षेत्र में नग्नमुनि दिगम्बर हो गये। भगवान के निकट जाकर वहाँ रहकर आठ दिन सुनकर यहाँ आये, उन्होंने यह शास्त्र रचे हैं।

उनके द्वारा कथित गाथासूत्र का अर्थ सम्पूर्ण हुआ। उनके कहे हुए शास्त्रों के श्लोक, उसका अर्थ पूरा हो गया। यह गाथासूत्र का अर्थ तो अभी तक अमृतचन्द्राचार्य ने टीका करके, कलश करके अर्थ पूरा किया। **साम्प्रत...** देखो! ग्रन्थ टीकाकर्ता—वर्तमान इस टीका के कर्ता **है अमृतचन्द्रसूरि...** कुन्दकुन्दाचार्यके पश्चात् लगभग ११०० वर्ष बाद हुए। आज से ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य मुनि सन्त दिगम्बर भावलिंगी छठवें-सातवें गुणस्थान में आनन्द की भूमिका में झूलते हुए विकल्प के काल में इस शास्त्र की रचना परमाणु से बन गयी, परन्तु निमित्तपना उनका गिनकर **टीकाकर्ता है।** भाषा ऐसी ली न? (पहले) गाथासूत्र (के) कर्ता कहा। देखो! कर्ता है या नहीं? (ऐसा कहकर) यह विवाद उठावे। कर्ता है या नहीं? ऐई! उसमें लिखा है या नहीं? हिम्मत! कर्ता है या नहीं शास्त्र के?

मुमुक्षु : निमित्तरूप से.....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्तरूप से कहा जाता है। क्योंकि उस समय उनका ज्ञान और विकल्प शब्दों की रचना के उपादान काल में वह निमित्त था इतना। उससे हुआ नहीं। अन्तिम श्लोक नहीं आता? मैंने रचा नहीं, अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), शास्त्र मैंने नहीं रचे, शब्दों से रच गये हैं।

मुमुक्षु : यह तो अहंकार नहीं इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : अहंकार क्या, इसका (यह कि) अर्थ कर नहीं सकता। कौन करे रजकण की पर्याय? अध्यवसाय—एकत्वबुद्धि 'मैं कर सकता हूँ' यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। यही अहंकार है। अहंकार का अर्थ, मैं करूँ ऐसा अहंकार नहीं। यह क्रिया मैं कर सकता हूँ, यही अहंकार है, यही मिथ्यात्व है। वस्तु में कहाँ (कर सकता है)? अनन्त रजकणों का कोई पर्याय काल नहीं था?

मुमुक्षु : वह तो उस प्रकार का संयोग आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रजकण परमाणु हैं, उसमें अनन्त गुण हैं। उसका स्कन्ध होकर उसका कोई उत्पाद पर्याय काल किसी वस्तु का था या नहीं? वह अक्षररूप से उत्पन्न हुआ वही उस परमाणु का—उसका काल था। समझ में आया? आत्मा उसे क्या करे? अनन्त परमाणु हैं। एक परमाणु (में) भी अनन्त गुण की पूरी बड़ी सृष्टि है। अनन्त गुण... गुण... ओहोहो! लोगों को बैठना कठिन है।

एक आत्मा में जितने गुण की संख्या अनन्त-अनन्त है, उतने ही गुण एक परमाणु में है। एक कम नहीं, एक अधिक नहीं। मात्र उसमें चैतन्य, आनन्द, शान्ति और चारित्र इत्यादि नहीं। समझ में आया? जैसे एक आत्मा में अनन्त-अनन्त संख्या से गुण हैं, वैसे ही उतने ही एक रजकण में, हों! यह तो बहुत एकत्रित हुए (परमाणु) हैं। पॉईन्ट अन्तिम एक रजकण लो, रजकण, उसमें उतने ही गुण आत्मा के जितने हैं संख्या से उतने में हैं। जाति भले अलग। समझ में आया? परमाणु अचेतन है, जड़ है, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है। आत्मा में ज्ञान, आनन्द आदि है परन्तु गुण की संख्या तो दोनों समान है। इतना एक परमाणु है। आहाहा!

यह कर्ता कहा न यह हेमन्त ने क्या कहा? कहाँ गये दूसरे लड़के हैं या नहीं कोई? इसमें जड़ का कर्ता कहा। ऐई! इस सूत्र के शब्दों का कर्ता है या नहीं? ऐई! लहेरचन्द के पुत्र! क्या है? रजकण की क्रिया आत्मा कर सकता है? क्यों नहीं करता? वह जड़ है न जड़? भिन्न पदार्थ है न? भिन्न पदार्थ है। भिन्न पदार्थ का भिन्न पदार्थ कर्ता नहीं हो सकता। समझ में आया? कैसे है? क्रियावती ऐसा नहीं। भिन्न पदार्थ को भिन्न

पदार्थ है उसे भिन्न पदार्थ उसका कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि भिन्न पदार्थ है, वह अपने परिणमन का कार्य सदा निरन्तर कर रहा है। निरन्तर कर रहा है, उसे दूसरा करे भी क्या? और स्वयं भी अपना निरन्तर अनन्त गुण का परिणमन कर रहा है। निवृत्त हो तब उसका करने जाये न? और वह भी कहाँ निवृत्त था, वह इसे इच्छे। आहाहा! समझ में आया? मात्र निमित्त से कहा जाता है। यह शब्दों की रचना काल में निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराने के लिये यह कर्ता कहने में आता है, उसका यहाँ बड़ा विवाद उठता है देखो, लो! यह कुन्दकुन्दाचार्य की कर्ता की श्रद्धा ऐसी होगी। अथवा इसके लिखनेवाली श्रद्धा ऐसी होगी ऐसी न?

मुमुक्षु : यह लिखनेवाले का तो कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इन्होंने पहले इनकार किया, स्वयं ने कहा कि तीन काल में कोई द्रव्य किसी का कर्ता नहीं। लो! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने यह निमित्तपना उसमें कहा गया है। ४१५ आदि (गाथायें) जो हुई और यह अमृतचन्द्राचार्य उनकी टीका करनेवाले। यह संस्कृत टीका बनी अक्षरों से बनी। शब्दों की उस समय में वही पर्याय होने के काल में वह बनी। उसमें निमित्त अमृतचन्द्राचार्य का था, इसलिए (ऐसा कहते हैं कि) **टीकाकर्ता है अमृतचन्द्रसूरि, उन्होंने टीका भी कही....** उन्होंने टीका की।

अब कहते हैं **तदुपरान्त (उस उपरान्त) अमृतचन्द्र सूरि कुछ कहते हैं**। देखो! इसका अर्थ आया '**भूयः अपि**' इसका अर्थ अब यहाँ आया। '**भूयः अपि**' थोड़ा फिर से अमृतचन्द्राचार्य भी कहते हैं। कहते तो हैं, कहा तो गया है परन्तु उसे थोड़ा अधिक कहना चाहते हैं। **क्या कहते हैं? 'वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः'** वस्तु अर्थात् जीवद्रव्य—भगवान आत्मा, जीववस्तु, जीवद्रव्य, पदार्थ। उसका तत्त्व, तत्त्व अर्थात् **ज्ञानमात्र स्वरूप...** लो! आत्मा तो ज्ञानमात्र स्वरूप है। वह किसी का करे नहीं और किसी से उसमें किया जाये, वह चीज़ ऐसी नहीं। समझ में आया?

जाननेवाला किसे करे? यह यहाँ सिद्ध नहीं करना है। यहाँ तो कहते हैं, ज्ञानमात्र वस्तु कही तो वह तो एक ही गुण हो गया। उसमें अनेकान्तपना, अनन्त धर्मपना, अनन्त

स्वभावपना कहाँ आया? एक ही गुण हो गया—ज्ञानमात्र। मात्र कहा। आत्मा ज्ञानमात्र। समझ में आया?

कहते हैं, **ज्ञानमात्र स्वरूप जिस प्रकार है उस प्रकार कहते हैं।** एक बात, यह एक बात (हुई)। **'च' और क्या कहते हैं—'उपायोपेयभाव:'** दूसरा थोड़ा भाव। उसमें दो भाव कहेंगे। **'उपाय' मोक्ष का कारण जिस प्रकार है उस प्रकार...** इसमें यह मोक्ष का उपाय कहेंगे। समझ में आया? आत्मा ज्ञानमात्र है तो उसमें अनन्तपना, अनेकपना कैसे आया? और एक ज्ञानमात्र में उपाय और उपेय। मोक्ष और मोक्ष का कारण। ज्ञानमात्र एक कहा, उसमें दो कैसे आये? समझ में आया इसमें? यह दो का विस्तार इसमें करेंगे।

'उपाय' अर्थात् **मोक्ष का कारण जिस प्रकार है उस प्रकार...** कहेंगे। और **'उपेयभाव:'** उसका फल **सकल कर्मों का विनाश होने पर जो वस्तु निष्पन्न होती है...** सकल कर्म का नाश होने से, देखो! भाषा ऐसी आयी। कर्म का नाश होने पर जो वस्तु अपनी निष्पन्न अर्थात् पूर्ण पर्याय को प्राप्त होती है, उस प्रकार कहते हैं। **'उपेय'**—मोक्ष। उपाय अर्थात् मोक्ष का कारण, उपेय अर्थात् मोक्ष। एक ज्ञानमात्र वस्तु में अनन्तपना क्या आया? और उस ज्ञानमात्र में—ज्ञानमात्र भगवान, उसमें मोक्ष का कारण और मोक्ष दो किस प्रकार आये? समझ में आया?

कहने का प्रयोजन क्या ऐसा कहते हैं.... इन दो का कहने का प्रयोजन क्या है? **'अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं' 'अत्र' ज्ञानमात्र जीवद्रव्य में....** भगवान ज्ञान है, ऐसे पदार्थ में स्याद्वादशुद्धि। स्याद्वाद एक सत्ता में—एक ही वस्तु ज्ञान, उसमें अस्ति-नास्ति। ज्ञान है ऐसा इतना कहा। ज्ञानमात्र जीव। अब स्याद्वाद क्या आया इसमें? एक ही धर्म आया। अनन्त कैसे आये? ज्ञानमात्र जीव (कहा) वहाँ क्या आया?

एक ही ज्ञानमात्र वस्तु अस्तिरूप है। है, ऐसा हुआ न? ज्ञानमात्र है, है। नास्ति—पर से नहीं। देखो! एक में यह अनेक धर्म समाहित हो गये। ज्ञानमात्र कहते ही, ज्ञानमात्र—ऐसा कहते ही अनेकान्त सिद्ध हो गया कि ज्ञानमात्र वस्तु भगवान अस्ति है और दूसरे अनन्त द्रव्य उससे नास्ति है। वह अस्ति है स्वयं से और पर से नास्ति है।

ऐसा अस्ति-नास्ति ज्ञानमात्र कहते ही यह वस्तु उसमें सिद्ध हो जाती है। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा...! 'ज्ञान है' ऐसा कहते ही, 'है' ऐसा कहने से अस्ति सिद्ध हुई। 'है' ऐसा कहने से 'पर से नहीं'— ऐसी नास्ति सिद्ध होती है। भीखाभाई! समझ में आया या नहीं ? हीराभाई! यह सूक्ष्म है, हों! कपड़े की दुकान जैसा नहीं। वह का वह प्रतिदिन व्यापार और वह का वह धन्धा उसमें कुछ नया सीखा जाता है ? सीखना है ? यह तो बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

ज्ञान प्रभु, चैतन्यसूर्य आत्मा, बस! ऐसा कहने से... मात्र कहा न ? ज्ञानमात्र कहा। परन्तु मात्र कहने से ज्ञान है, ऐसा कहा न ? ज्ञानस्वरूप भगवान! है ? हाँ। ऐसा 'है' कहते ही पर से नहीं, ऐसा उसमें आ गया। पर से नहीं। पर अनन्त कर्म रजकण, अनन्त आत्माओंरूप से यह नहीं। यह 'है' कहने से अस्ति-नास्ति दोनों धर्म इकट्ठे आ गये। समझ में आया ?

यह ज्ञानमात्र आत्मा कहने से अपने से 'है' ऐसा आ गया स्वयं से तथा कर्म और शरीर से नहीं। आ गया या नहीं ? इसमें दो (धर्म) आ गये। एक ज्ञानमात्र कहने से ऐसे अनन्तगुण उसमें आ जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें ?

देखो! अब एक में दो उतारते हैं। उसमें पहला बोल तो अनेकान्तपना स्याद्वाद उतारते हैं। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते ही वह स्वयं है और पररूप नहीं। शरीर और कर्मरूप आत्मा नहीं, ऐसा इसमें आ गया।

मुमुक्षु : किसमें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस ज्ञानमात्र में। यह अँगुली है, है। अँगुलीमात्र माँस और हड्डियोंवाली है। ऐसी है, ऐसा करते हुए अपने से है (और) दूसरी अँगुली और दूसरेरूप से नहीं है। ऐसा उसमें अनेक अन्त अर्थात् अस्ति-नास्ति के धर्म दोनों साथ में ही आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया ? चिमनभाई! है, ऐसा कहा। है। यह मनुष्य यहाँ है, यह मनुष्य यहाँ है। अब यह मनुष्य ही यहाँ है, ऐसा कहा। यह है, ऐसा कहते ही आ गया, कि यह मनुष्य है और यह मनुष्य दूसरेरूप से वहाँ नहीं है, दूसरे इसमें नहीं

है। समझ में आया? यह सूक्ष्म बातें उतारी है। यह तो सब एकान्त ले जाते हैं न, इसलिए जरा उतारा है। उपाय-उपेय में वह का वह आत्मा, ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं कि है, ऐसा कहते ही पर से नहीं, ऐसे दो धर्म—दो शक्तियाँ उसमें इकट्ठी आ जाती है। समझ में आया? (यह) अस्ति-नास्ति (सिद्ध की)।

एक-अनेक... ज्ञानमात्र, ऐसा कहने से एकरूप से ज्ञान है और ज्ञानमात्र कहने से उसमें अस्ति-नास्ति आदि अनेक गुण हैं, अनेक गुण; इसलिए एक है, वही अनेक है, ऐसा आ जाता है। पहले कहा न कि ज्ञान है। इसका अर्थ कि पर से नहीं। दोनों आ गये। अब ज्ञान है, वह एक हुआ, परन्तु ज्ञान है, वह पर से नहीं; इसलिए अनेक गुण—दो अन्दर आ गये। हैपने का एक गुण और पर से नहीं का दूसरा गुण। एक है, वही अनेक है, ऐसा सिद्ध हो गया। समझ में आया? दो हो गये न? तो अनेक हो गया या नहीं? ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र अर्थात् ज्ञानमात्र में एक आया। पहला अस्ति आया। है, भगवान आत्मा है। है कहते ही पर से नहीं यह दो धर्म आ गये। अनेकान्त हो गये। अब है, ऐसा कहने से एक ज्ञानमात्र, ऐसा हुआ न? ज्ञानमात्र अर्थात् एक हुआ। परन्तु ज्ञानमात्र एक कहने से पर से नहीं, ऐसा दूसरा धर्म भी इकट्ठा आ गया। एक है, वही अनेक है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग ऐसा है कि वह मार्ग अन्यत्र कहीं तीन काल में हो नहीं सकता। ऐसी बात यह समझे बिना इसे यह गड़बड़ नहीं जाती।

मैं मुझसे हूँ और मैं पर से भी हूँ। (ऐसी) भ्रमणा है। पर से हूँ, इसका अर्थ हुआ न यह शरीर अच्छा हो, यह स्त्री अच्छी, पुत्र, पैसा अच्छा हो तो मुझे ठीक पड़े। इसका अर्थ कि पर से मुझे ठीक पड़ता है। अर्थात् पर से भी मैं हूँ। समझ में आया? जेचन्दभाई! मैं हूँ और मैं पर से भी हूँ। पर से अर्थात् कि यह शरीर, वाणी, सब ठीक हो तो मुझे ठीक पड़े। उनसे भी मैं हूँ, वह मूढ़ है। (वस्तुस्वरूप) ऐसा नहीं है, कहते हैं, आत्मा आत्मा से है और पर से नहीं। उसका आनन्द भी आत्मा से है और पर से नहीं। तब यह माना कहलाये न? आत्मा का आनन्द... इसलिए शक्तियाँ इकट्ठी ली है उसमें। भाई! इसमें शक्तियाँ डाली हैं न? स्याद्वाद में ही शक्तियाँ डाली हैं। उपाय-उपेय में बाद में डालेंगे। वस्तु से डाली है।

ज्ञानमात्र। ज्ञानमात्र कहने से वह ज्ञान आनन्दवाला है, ज्ञान सुखरूप है इकट्ठा,

सुखरूप है। ज्ञान, ज्ञानामात्र आत्मा, वह आनन्दरूप है। इस प्रकार एक कहने से दूसरा धर्म उसमें आ जाता है, ऐसे अनन्त गुण आ जाते हैं। ज्ञान वस्तु, ऐसा कहने से उसकी प्रभुता—प्रभुता, परमेश्वरता, सामर्थ्यता उसमें इकट्ठी आ जाती है। समझ में आया? ज्ञानमात्र आत्मा कहने से उसका जीवन—टिकना त्रिकाल चैतन्य के सत्ता स्वभाव से (टिकना) वह गुण उसमें साथ में आ जाता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? उसमें सुख आ जाता है। ज्ञानमात्र। अकेला ज्ञान या ज्ञान अकेला, उसमें आनन्द है या नहीं? कि आनन्द है। अकेले ज्ञान में दु:ख हो नहीं सकता। अकेला ज्ञान को पर का आश्रय हो नहीं सकता और पर का आश्रय नहीं तो स्व का आश्रय है, इसलिए उसमें यह आनन्द साथ में होता ही है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! मैं ज्ञानमात्र हूँ—ऐसा कहते ही मैं हूँ, पर से नहीं—ऐसे दो आ गये। एक कहने पर 'है' कहने से 'नहीं' ऐसा आ गया और मैं एक हूँ, ऐसा एक कहने से अस्ति-नास्ति और ज्ञान में ज्ञान है, वह ज्ञान है, वह सुखरूप आनन्द साथ में है। ज्ञान राग में जुड़े, तब दु:खरूप हो, तब ज्ञान ज्ञान में एकाग्र हो, तब उसमें ज्ञान के साथ आनन्द है। समझ में आया? अरे! यह क्या परन्तु ऐसी बातें? यह वस्तु की स्थिति—तत्त्व व्यवस्थिति कहते हैं यह। आहाहा! तत्त्व की व्यवस्था ही ऐसी है। ज्ञानमात्र कहने से भी वस्तु की व्यवस्था ही ऐसी है, ऐसा कहा न? देखो न! पहले आया या नहीं?

तत्त्व व्यवस्था। '**वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति:**'। **जीवद्रव्य का ज्ञानमात्र स्वरूप जिस प्रकार है, उस प्रकार कहते हैं।** '**व्यवस्थिति:**' उसकी व्यवस्था अर्थात् स्थिति, वस्तु जैसी है, वैसी कहते हैं। ज्ञानमात्र, ऐसा जिसने निर्णय किया, 'ज्ञानमात्र आत्मा', इस निर्णय में मैं स्वयं से हूँ, पर से नहीं—ऐसे दो गुण इकट्ठे आ गये।

दूसरा, ज्ञानमात्र आत्मा है। ऐसा ज्ञान कहने से उसके साथ अस्ति-नास्ति ऐसे दूसरे दो गुण (इकट्ठे आ गये)। ऐसे अनन्त गुण इकट्ठे आ जाते हैं। समझ में आया? ४७ शक्तियाँ इसलिए वर्णन की हैं। आहाहा! ज्ञान... ज्ञान, उस ज्ञान में राग-द्वेष और परवस्तु नहीं है परन्तु ज्ञान स्व-आश्रयवाला स्वरूप, उसमें आनन्द है या नहीं? आनन्द होता ही है। ज्ञान आनन्द से खाली नहीं होता। भगवान ज्ञान, वह आनन्द से खाली नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान, ज्ञान कहने से भगवान अपनी प्रभुता वस्तु स्वयंसिद्ध ज्ञान है तो उसकी प्रभुता के सामर्थ्यवाला साथ में ज्ञान होता है। उसके सामर्थ्य में अपूर्णता नहीं होती। इसलिए ज्ञान कहने से प्रभुत्व नाम के सामर्थ्यसहित ज्ञान साथ में आ जाता है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानमात्र आत्मा कहने से, ज्ञानमात्र आत्मा कहने से ज्ञान का कायमपना रहा और ज्ञान जो पर्याय से जानने में आवे, उसका उत्पाद-व्यय सहित के गुणवाला ही ज्ञान सिद्ध होता है। समझ में आया? किस प्रकार समझ में आता है इसमें कुछ?

ज्ञान आत्मा, ज्ञान आत्मा। अब ज्ञान आत्मा (कहा) तो ज्ञान आत्मा, वह ध्रुवपना भी सिद्ध हुआ ही है और ज्ञानमात्र आत्मा का वर्तमान परिणमन और उत्पाद-व्यय न हो तो यह यह आत्मा, यह यह आत्मा—ऐसा किसने निर्णय किया? इसलिए ज्ञानमात्र कहने में कार्य और कारण दोनों इकट्ठे सिद्ध हो जाते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध हो जाते हैं। आहाहा! ज्ञान भगवान आत्मा स्वयं से ज्ञान की पर्यायरूप उपजे, परपने नहीं। और अपनी पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह दूसरे क्षण में व्यय होती है और ध्रुवपने रहता है। ज्ञानमात्र कहते ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसका गुण सिद्ध हो जाता है। ओहोहो! समझ में आया? निवृत्त कहाँ है परन्तु ऐसा विचार करने के लिये?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं, बात सच्ची है। परन्तु है, ऐसा कहा कि जमुभाई है। तो जमुभाई है, वे दूसरे छह भाईयोंरूप नहीं। भाई! जमुभाई को रोको, लो! ऐसा कहते हैं या नहीं? जमुभाई को रोको। तब इसका अर्थ कि यह है वह दूसरेरूप नहीं, इसलिए इसे रोकने का कहा है।

मुमुक्षु : यह दोनों साथ में है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे तो इसमें पूछते हैं। समझ में आया या नहीं? आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा ऐसे चैतन्य ज्ञानप्रकाश है; है—ऐसा कहते ही, है ऐसा कहते ही दूसरे से नहीं, ऐसा साथ में आ ही जाता है। है, ऐसा एक कहने से, पर से नहीं ऐसा नास्तिधर्म भी साथ में आ जाता है। एक में अनेक, एक वह अनेक ऐसा साथ में आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? उत्पाद-व्यय पहले कह दिया। यह अब आया।

नित्य-अनित्य... है न? ज्ञान वस्तु आत्मा है। नित्य... नित्य... नित्य है। तो है, वही पलटती पर्याय निर्णय कर देती है। अवस्थायें पलटता है, शक्ति से, ध्रुव से, नित्यपने ध्रुव रहता है। है कहने से नित्य और अनित्य दोनों सिद्ध हो जाते हैं। हैं, उसका निर्णय पर्याय से होता है। पर्याय पलटती है। पलटे बिना यह वस्तु है, ऐसा निर्णय कौन करे? समझ में आया? अकेली ध्रुव ही हो, ध्रुव ही हो तो यह ध्रुव है, वह ध्रुव से ध्रुव निश्चित् नहीं होता। पर से नहीं होता, पर्याय से निश्चित् होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

ज्ञानमात्र भगवान आत्मा है, भाई! यह तो भगवान वीतराग के अनेकान्त की लहर है। इस अनेकान्त को भगवान अमृत कहते हैं। यह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा अनेकान्त का तत्त्व लोगों ने (सुना नहीं)। अनेकान्त जाने, उसे अमृत का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि मैं आत्मा हूँ तो पररूप से नहीं, इसलिए उसे अमृत का—शान्ति का अनुभव होता है। पररूप से नहीं; इसलिए मुझे पर के कारण से कुछ निभना नहीं है। मेरा निभना ही मुझसे है, मेरा निभना ही मुझसे है। ऐसा ज्ञान (में) निर्णय करने से उसे आनन्द का, अमृत का, अनेकान्त का निर्णय होने से आनन्द का अनुभव होता है। समझ में आया? ऐसा ज्ञानमात्र है, वह एक है कहने से, अनेक साथ में निश्चित आ गया। अर्थात् एक है, उसमें अनेक गुणों का आनन्द का, अनेक गुण के आनन्द का पर्याय में अनुभव हुआ। आहाहा! 'सर्व गुणांश वह समकित।' देखो! यह अनेक हो गया। भारी गजब! जैन वीतराग का तत्त्व, वस्तु की वस्तुस्थिति ऐसी है और भगवान की वाणी उसे सिद्ध करती है। आहा!

वस्तु है, वस्तु है वह एक है—ऐसा कहो तो एक है, वही अनेक है। क्योंकि एक है, यह तो सामान्यरूप से एक कहा परन्तु एक है (ऐसा कहने से) अस्ति-नास्ति आदि हो गया। अस्ति-नास्ति से अनेक हो गया। अर्थात् पररूप से नहीं और स्वरूप से है, ऐसे अनेक गुण एक में अनेक साथ में हैं। और नास्ति का निर्णय होने से अनेकपने का निर्णय होने से उसे आनन्द का अनुभव, ज्ञान का अनुभव, आनन्द का अनुभव, अनेक का अनुभव होता है। वस्तुरूप से एक, तथापि पर्याय में अनुभव अनेक का होता है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! इसीलिए तो कहते हैं थोड़ा सूक्ष्म है। थोड़ा सूक्ष्म परन्तु

यह मार्ग ही ऐसा है परन्तु इसे कभी सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ तत्त्व ऐसा ही तत्त्व का स्वरूप है। इसके अतिरिक्त, सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा कहीं तीन काल में नहीं हो सकता, परन्तु ऐसे के ऐसे वाड़ा में पड़े, ऐसे के ऐसे पड़े भगवान कहे (वह) सच्चा। परन्तु उसमें क्या सच्चा? तब खोटा क्या? समझ में आया? यह निर्णय होना चाहिए या नहीं?

यह आत्मा ज्ञानमात्र भगवान आत्मा, ऐसा भगवान ने कहा तो उसे एक कहा था तो उसे ही अनेक कहा। क्यों? ज्ञान अस्ति, पररूप से नास्ति। ज्ञान में सुख (तो) दुःख का अभाव। समझ में आया? उसकी अपनी प्रभुता ज्ञान है, सत्त्व है स्व से है तो उसका सामर्थ्य भी स्व से है। वह स्व से सामर्थ्य की पर्याय ध्रुवरूप से भी है, पर्यायरूप से भी है। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है, भाई! इसीलिए तो अमृतचन्द्राचार्य ने यह कहा है। कोई एकान्त में उलझ न जाये, दूसरे लोग (ऐसा कहे कि) लो! यह तो आत्मा एकान्त (कहते हैं)। यह ज्ञानमय, ज्ञानमय कहा तो दूसरे भी ज्ञान कहते हैं। ऐसा नहीं। दूसरे कहते हैं और यह भगवान कहते हैं, उसमें बड़ा अन्दर है। ज्ञान एक। वही एक, अनेक की अपेक्षा रखता है। अस्ति-नास्ति, आनन्द, ज्ञान, शान्ति, चारित्र ऐसे गुण साथ में अनेक हैं। वस्तुरूप से एक, गुणरूप से अनेक। ज्ञान वस्तुरूप से एक, वस्तु ज्ञानरूप से और उसके साथ गुणों की शक्तियाँ अनेक है। इसलिए एक है, वही अनेक है। इसका नाम अनेकान्त और इसका नाम स्याद्वाद कहने में आता है। आहाहा!

मैं अनेक पदार्थों के कारण अनेक नहीं। मैं एक, वह मेरे कारण (एक हूँ) और मैं अनेक, वह मेरे कारण (अनेक हूँ)। मैं पर के कारण अनेक नहीं। आहाहा! समझ में आया? मेरा अस्तित्व एक और अनेक। मैं एकरूप चिदानन्दस्वरूप हूँ, वही मैं आनन्द आदि अनेकरूप मैं ही हूँ। अनेक पर के कारण अनेक हूँ और स्व के कारण एक हूँ, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, यह लड़के अधिक और स्त्री अधिक, इसलिए मैं अनेक हूँ, ऐसा नहीं है, कहते हैं। वह तो नास्ति में आ गया। वे तुझमें नहीं। तो तेरा अनेकपना अर्थात् क्या? कि है, पर से नहीं। एक है, वही अनेक शक्तिवाला है। इसलिए अनेक और एक तुझमें ही सब समाहित हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

नित्य-अनित्य... लो! जो ज्ञानमात्र कहा तो वह वस्तु टिक रही न? ज्ञान ज्ञान टिक रहा है न? ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... अनादि। टिकना भी निश्चित हो

गया और यह टिकना है, वह परिणमन द्वारा निश्चित किया (कि) यह टिकनेवाला है। बदलता है, विचार बदलते हैं या नहीं? पहले विचार निर्णय नहीं किया था, तब चाहे जो हो, अब जब निर्णय किया वह नित्य है। वह नित्य है, वह अनित्य हुआ। पर्याय बदल गयी। जो नित्य है, वह ही अनित्य है। मैं नित्य और जगत के दूसरे पदार्थ मेरे लिये अनित्य, ऐसा नहीं। (ऐसा) यहाँ कहते हैं। और मैं पर्याय अनित्य और मेरे लिये दूसरे नित्य, ऐसा नहीं। पर्याय से अनित्य और वस्तुरूप से मैं ही नित्य हूँ। आहाहा! मेरा नित्य और अनित्यपना सब मुझमें समाहित होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कभी कहाँ इसने विचार किया है। यह सब बाहर में हो हा पुस्तकें बनाना और नोबेल बनाना और अमुक करना और उसमें विचार करना, उसमें रुक गया। फलाफूला पर में, परन्तु अपने में फलाफूला अनन्त है या नहीं? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि एक ज्ञानमात्र वस्तु का निश्चय होने पर अनेक गुण का परिणमन भी पर्याय में (साथ में आ जाता है)। एकपने, नित्यपने वस्तु रहनेवाली, वही वर्तमान में परिणमनवाला है, इसलिए नित्य है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से; अनित्य है, वह बदलने की अपेक्षा से, वह की वह वसतु नित्य और अनित्य है। बिल्कुल नित्य-कूटस्थ ही है तो कूटस्थ का किस द्वारा, किसके द्वारा निर्णय किया? पर के द्वारा? पर के द्वारा निर्णय होता है? यह अपनी पर्याय द्वारा निर्णय किया। तो पर्याय अनित्य हो गयी। समझ में आया?

कहते हैं कि **एक-अनेक, नित्य-अनित्य....** समझ में आया? ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि चौदह बोल लेंगे, हों! सत्‌रूप से है। देखो! अस्ति-नास्ति कहा न? यह चार लेंगे। आठ हो गये, यह दो दस और दो, बारह हुए। पश्चात् दो रह गये। क्या दो रह गये? अस्ति-नास्ति तो आ गया। तत्-अतत् रह गया। तत्-अतत् रह गया, पहले दो बोल रह गये। क्या कहा? अस्ति-नास्ति के आठ बोल आ गये। है, वह अपने द्रव्य से है, क्षेत्र से है, काल से है और भाव से है। परद्रव्य, परक्षेत्र, काल, भाव से नहीं है।

ऐसे हो गये, देखो! और यह अस्ति-नास्ति हुआ। एक है, वह अनेक हो गया। टिकता है, वह पलटता है। दो रह गये—तत् और अतत्। अर्थात् क्या?

आत्मा तत् अर्थात् वह है। आत्मा वह ज्ञानरूप से है, वह ज्ञेयरूप से नहीं। वह ज्ञानरूप से ज्ञान है, वह ज्ञेयरूप से नहीं। यह दूसरा बोल लिया। ऐसे परपने नहीं, वह तो सामान्य वस्तु अस्ति-नास्ति कही। ज्ञान ज्ञानमात्र है परन्तु उस ज्ञान का जो होना, वह पर के कारण से नहीं है। यह ज्ञेय ख्याल में आवें, इसलिए यह ज्ञान की दशा होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ घट-पट है, इसलिए यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। ज्ञान, ज्ञानरूप से है, वह तत्रूप से भी है और अतत् अर्थात् परपने-ज्ञेयपने नहीं, इतना यहाँ लेना है। ज्ञेय से यहाँ ज्ञान है, ऐसा नहीं। ज्ञान ज्ञानरूप से है और वही स्वयं अतत्रूप से, ज्ञेयरूप से नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म तो सही, भाई! यह तो बोल इसलिए सूक्ष्म लिया है। वस्तु, एक-एक भगवान आत्मा ऐसा है। समझ में आया?

इत्यादि अनेकान्तपना... अनेक अन्त अर्थात् धर्म। अनेक अर्थात् बहुत। बहुत की संख्या तो अनन्त में जाती है। दो से अनन्त तक को अनेक कहा जाता है। ऐसा यहाँ अनेक अर्थात् अनन्त। समझ में आया? दो से अनन्त को अनेक कहे। एक, वह एक और अनेक में दो से अनन्त। वे यह अनेक अर्थात् अनन्त में जाते हैं। इत्यादि अनन्तपना, अनन्त गुणपना, आत्मा में अनन्त गुणपना है। आहाहा! उसकी **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य में...** '**शुद्धि**' कहा न? ऐसा जो अनेकान्तपना **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य में जिस प्रकार घटित हो उस प्रकार कहने का है अभिप्राय जहाँ ऐसे प्रयोजनस्वरूप कहते हैं**। लो! समझ में आया?

यह ज्ञानमात्र भगवान आत्मा, यह कहने का जो प्रयोजन है, यह कहने का अभिप्राय यह इसमें घटित होता है। '**शुद्धि**' अर्थात् समझ में आता है? ज्ञानमात्र, इस प्रकार '**शुद्धि**' अर्थात् शुद्धपना घटित होता है। '**स्याद्वाद शुद्धि अर्थं**' बहुत बोल लिये हैं या नहीं उसमें? ...शुद्धता अर्थात् देखो! यह '**शुद्धि**' का शब्द आया न यह? यह आया न? '**शुद्धि' ज्ञानमात्र जीवद्रव्य में जिस प्रकार घटित हो उस प्रकार कहने का है अभिप्राय जहाँ...** '**शुद्धि**' अर्थात् क्या? शुद्धता, प्रमाणिकता, प्रमाणिकता। वस्तु वस्तुरूप से है, पररूप से नहीं। एक है, अनेक है। ज्ञान ज्ञानरूप से है, ज्ञेयरूप से नहीं। नित्य है,

अनित्य है। ऐसी शुद्धि के लिये, यह प्रमाणिकता, वस्तु की इस प्रकार से प्रमाणिकता के लिये, सत्यता के लिये वस्तु की इस प्रकार से, सत्य है इस प्रकार से निर्दोषता के लिये वस्तु का इस प्रकार से निर्दोष स्वरूप। शुद्ध के इतने अर्थ होते हैं। और निर्मलता। वस्तु की शुद्धि अर्थात् जैसा निर्मल उसका स्वभाव (अर्थात्) एक-अनेक, नित्य-अनित्य यह बतलाने के लिये स्याद्वाद कहते हैं और अद्वितीयता। यह पाँच बोल लिये। अद्वितीयता—अजोड़। शुद्धि की अर्थात् स्याद्वाद की अजोड़ता। यह वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र (कहीं) नहीं हो सकता। लोगों को तत्त्व द्रव्य, गुण, पर्याय यह क्या? पर अर्थात् उसमें से पर का अभिमान कभी हटता नहीं और अपने में पूर्णता नित्य-अनित्य की है, उसकी उसे प्रतीति आती नहीं। समझ में आया? जीवद्रव्य में जिस प्रकार से शुद्धि अर्थात् प्रमाणिकता, सत्यता, निर्मलता, अद्वितीयता घटित होती है, ऐसा कहने का अभिप्राय अमृतचन्द्राचार्य महाराज का है। **ऐसे प्रयोजनस्वरूप कहते हैं।**

भावार्थ इस प्रकार है कि कोई आशंका करता है कि जैनमत स्याद्वादमूलक है,... भगवान का मार्ग तो कथंचित् ऐसा, कथंचित् ऐसा (होता है)। सर्वथा एक ही, सर्वथा अनेक ही, सर्वथा नित्य ऐसा नहीं होता। वीतराग भगवान का कथन तो कथंचित् है। एक है, वह अनेक है, नित्य है, वह अनित्य है। एकान्त नित्य ही है, एकान्त अनित्य ही है, एकान्त एक ही है—ऐसा नहीं हो सकता। **जैनमत स्याद्वादमूलक है, यहाँ तो ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहा....** तुमने तो ज्ञानमात्र ही कहा परन्तु कथंचित् ज्ञानमात्र अस्ति, कथंचित् पर से नास्ति, ऐसा तो तुमने कहा नहीं। समझ में आया? परन्तु इसमें आ जाता है, कहते हैं। तू इसमें समझता नहीं।

यह **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहा, सो कहते हैं हुए एकान्तपना हुआ,...** शंकावाला पूछता है। **स्याद्वाद तो प्रगट हुआ है नहीं?** इसमें अनेकपना तो सिद्ध होता नहीं। **उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहते हुए अनेकान्तपना घटित होता है।** लो! यह एक उत्तर। ज्ञान भगवान चैतन्यसूर्य ज्ञानमात्र है, ऐसा कहते ही अनेक धर्म उसमें सिद्ध हो जाते हैं। ज्ञान स्व से है, पर से नहीं। ज्ञान टिकता है, पलटता है, ज्ञान एक है वही अनेक गुणवाला है। ऐसी शुद्धि अनेकान्त की शुद्धि, ज्ञानमात्र कहने से अनेक गुण की सिद्धि उसमें घटित हो जाती है। (हो जाती है)। समझ में आया? ज्ञानमात्र कहने

से पररूप से नहीं है, ऐसा आ गया या नहीं? शरीररूप से नहीं, कर्मरूप से (नहीं)। ज्ञानमात्र है। इसके पैसे कितने, इसका विचार नहीं करता? भाई! अपने पास तो पाँच लाख मात्र हैं। अब अधिक मिथ्या बड़प्पन करना नहीं। ऐसा कोई विचार करता है या नहीं? दूसरा कोई करोड़पति हो तो वह पच्चीस लाख लिखा दे तो वह स्वयं लिखा देता होगा पच्चीस लाख? पहले वह नाम देखे। हमारी लाईनवाले ने कितने दिये हैं? उससे थोड़ा अपने देंगे। यह फिर नामा देखे। बराबर है। तुम्हारे देखा है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... यह तो भूल हो गयी थी, ऐसा उसमें हुआ है न यह? उन सबके थोड़े-थोड़े लिखे और बड़े गृहस्थ के पास गये। उसका नाम अन्तिम लिखा। इन सबने इतने भरे हैं, मुझे इतने से अधिक कुछ भरे नहीं जाते। परन्तु तू बड़ा है न? अब क्या परन्तु तुमने नाम तो अन्तिम लिखा। बड़े के अंक पहले लिखे। मलूकचन्दभाई! समझ में आया या नहीं? फलाना सेठ यह, फलाना सेठ यह, फलाना सेठ के पास जाओ, अमुक सेठ ढाई हजार, तीन हजार, डेढ़ हजार अंक... फिर इसका नाम अन्त में आया। इसका नाम तो इसमें आया। बड़े-बड़े अंकवाले तो गये। मेरा जो यहाँ लिखा है उसमें से उन अंक से कम ही लिखा जाये, अधिक नहीं लिखा जाये। चिमनभाई! यह सब है या नहीं तुम्हारे?

यहाँ तो कहते हैं भगवान ने आत्मा को ज्ञानमात्र जहाँ कहा, वहाँ अनेक अंक घट जाते हैं उसमें। आहाहा! समझ में आया? भगवान ने ज्ञान, चैतन्यसूर्य भगवान तो आत्मा है। इसके अतिरिक्त साथ में कुछ डालना नहीं। समझ में आया? परन्तु दूसरा न डालना कहने से उसमें दूसरे अनन्त गुण नहीं है, ऐसा नहीं है।

ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहते हुए अनेकान्तपना घटित होता है। अनन्त गुण उसमें सिद्ध हो जाते हैं। ओहो! ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वरूप। लो! इसमें सिद्ध हो गया। यह ज्ञान ही अपनी दशा का कर्ता, ज्ञान स्वयं ज्ञानमात्र है, इसलिए पर की आशा कुछ है नहीं। तब अब कोई परिणमता है, होता है, तब कर्तापने उसमें ज्ञानमात्र कहने से कर्ता सिद्ध हो जाता है। उसका कार्य उसमें आता है। ज्ञानमात्र आता है, उसमें दूसरा कुछ

आता नहीं। ज्ञानमात्र का कार्य भी उसमें कर्ता, कर्म गुण नहीं हो तो कार्य आया कहाँ से ? (इसलिए) कर्म गुण सिद्ध हो गया। करण सिद्ध हो गया। क्योंकि स्वयं ज्ञानमात्र है। दूसरे का साधन उसे कुछ है नहीं। पर के आश्रय का कुछ साधन है नहीं। तो ज्ञानमात्र कहने से उसमें साधनगुण साथ में है (ऐसा आ जाता है)। इसलिए उसकी पर्याय सिद्ध होती है। समझ में आया ? ज्ञानमात्र कहने से वह स्वयं अपना आधार है, ऐसा गुण उसमें सिद्ध हो गया। ज्ञानमात्र है अर्थात् पर का कुछ आधार है नहीं। इसलिए ज्ञान को ज्ञान का आधार है, ऐसा एक दूसरा ज्ञान में आधार नाम का गुण सिद्ध हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकालोक की कहाँ बात है। यह तो यह जाना, उसमें लोकालोक जाना, ऐसा कहते हैं। यह तो आ गया नहीं अपने ? चार बोल में। परमात्म प्रकाश में। यह आत्मा एक जाना, उसने सब जाना। अब क्या आया यह ? यह ज्ञानमात्र है, यह जानने से यह सब रूप से मैं नहीं, ऐसा उसका ज्ञान आ गया। ज्ञानमात्र कहने से उसका आनन्द आया ज्ञान का, अनेकपने के ज्ञान का, आनन्द का यह आनन्द आने पर यह आत्मा आनन्दमय है, आनन्दस्वरूप है और दुःख, राग-द्वेष और शरीर आदि आनन्दरूप नहीं, नहीं। इसलिए मुझसे भिन्न, मुझसे भिन्न है, ऐसा इसमें आ गया। समझ में आया या नहीं ?

ऐसे ज्ञानमात्र आत्मा का ज्ञान श्रुत में हुआ, उससे अनुभव करने से यह सब लोकालोक जो पर है, उसका सर्व भेद का ज्ञान आ गया। और ज्ञानमात्र का अनुभव होने पर ज्ञान की परिपूर्णता जहाँ प्रगट हुई (तो) लोकालोक का ज्ञान उसमें आ गया। समझ में आया ? यह तो चार बोल आये। ओहोहो !

इस प्रकार **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य ऐसा कहते हुए अनेकान्तपना घटित होता है।** इसमें अनेकान्त अर्थात् अनेक धर्म, अनेक शक्तियाँ, अनेक स्वभाव, अनेकपना सिद्ध हो जाता है, कहते हीं सिद्ध हो जाता है। समझ में आया ? ज्ञानपना रहा, ऐसा कहो। ज्ञान ज्ञानरूप से है, ऐसा कहने से जो अनन्त दूसरे द्रव्य हैं, उनरूप से नहीं। उन अनन्तरूप से नहीं, ऐसे अनन्त धर्म ज्ञानमात्र कहने से साथ में आ गये। नहीं तो अनेक को सिद्ध, अनन्त को सिद्ध करना (किस प्रकार) ? अनेक अर्थात् कहीं एक नहीं। दो, तीन, चार

नहीं अनन्त ऐसा कहा था न अभी ? एक ज्ञानमात्र। ऐसा कहने से एक जीव से भी भिन्न ऐसा एक धर्म, दूसरे जीव से भिन्न ऐसा धर्म, ऐसे अनन्त जीव के मध्य में रहा हुआ, यह ज्ञानमात्र अनन्त जीवों से भिन्न अर्थात् अनन्त धर्म हो गये। ऐसे एक-एक परमाणु से भिन्न, दूसरे परमाणु से (भिन्न), तीसरे (परमाणु से भिन्न) ऐसे अनन्त धर्म ज्ञानमात्र कहते ही अनन्त द्रव्य जाननेवाला अनन्त द्रव्य के अभाववाला अनन्त गुण उसमें सिद्ध हो गये। समझ में आया ? इसलिए उसमें कहा था कि अनेकपना अर्थात् अनन्त लेना। दो, चार, दस, संख्यात, असंख्यात नहीं लेना। यह इतना बड़ा है। दरकार कब की है ?

जिस प्रकार घटित होता है, उस प्रकार यहाँ से लेकर.... जिस प्रकार से वस्तु में घटित है, शुद्ध है, उस प्रकार से है, हों! **जिस प्रकार घटित होता है, उस प्रकार यहाँ से लेकर कहते हैं, सावधान होकर सुनो।** लो! ऐसा कहा, देखो!

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ।।१-२४७।।

कहूँगा, ऐसा कहा न ? तब किसी को कहते हैं न ? उसे सुनो, ऐसा निकाला। किसी को कहे, सुन! एक ज्ञानमात्र कहने पर उसमें अनन्त गुण सिद्ध हो जाते हैं। सुन! सुन अर्थात् सुनाते हैं उसे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? सावधान (होकर) वापस, हों! ऐसा का ऐसा ध्यान से बाहर एक भी बात को निकाल नहीं डालना। आहाहा! चासनी बनावे तब शक्कर में कितनी सावधानी रखे ? देखा है ? आड़ी-टेढ़ी हो जाये तो चासनी बिगड़ जाये, सब शक्कर जाये। चासनी बनाते हैं न ? चासनी। कड़क हो जाये, वह हो जाये, समाप्त हो जाये, सब समाप्त हो जाये। वह वापस पानी करे तब पीया जाये इतना काम आवे। ऐसा कहते हैं कि चासनी में बहुत ध्यान रखे। इसी प्रकार आत्म भगवान को अनेक अनन्त गुणों को सिद्ध करते हुए , ज्ञानमात्र कहने से अनन्त गुण, उसमें अनन्तपना अनेकान्तपना सिद्ध करेंगे। सावधानी रखना, कहते हैं। ध्यान रखकर सुनना तो बैठेगा, नहीं तो समझ में नहीं आयेगा। इसके लिये दूसरे श्लोक से शुरु करेंगे, लो! रखो कल से।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २४८

(शार्दूलविक्रीडित)

बाह्यार्थै: परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्
विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशो: सीदति।
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरत: पूर्णं समुन्मज्जति ।।२-२४८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ — भावार्थ इस प्रकार है कि जो ज्ञानमात्र जीव का स्वरूप है, उसमें भी चार प्रश्न विचारणीय हैं। वे प्रश्न कौन? एक तो प्रश्न ऐसा कि ज्ञान, ज्ञेय के सहारे का है कि अपने सहारे का है? दूसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान, एक है कि अनेक है? तीसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान, अस्तिरूप है कि नास्तिरूप है? चौथा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान, नित्य है कि अनित्य है? उनका उत्तर इस प्रकार है कि जितनी वस्तु हैं, वे सब द्रव्यरूप हैं, (और वर्तमान) पर्यायरूप हैं। इसलिए ज्ञान भी द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। उसका विवरण — द्रव्यरूप कहने पर निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु; पर्यायरूप कहने पर स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ, ज्ञेय की आकृति-प्रतिबिम्बरूप परिणमता है जो ज्ञान। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय को जाननेरूप परिणति-ज्ञान की पर्याय; इसलिए ज्ञान को पर्यायरूप से कहने पर, ज्ञान, ज्ञेय के सहारे का है; (ज्ञान को) वस्तुमात्र से कहने पर, अपने सहारे का है। एक प्रश्न का समाधान तो इस प्रकार है। दूसरे प्रश्न का समाधान इस प्रकार है कि ज्ञान को पर्यायमात्र से कहने पर, ज्ञान, अनेक है; वस्तुमात्र से कहने पर, एक है। तीसरे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान को पर्यायरूप से कहने पर, ज्ञान, नास्तिरूप है; ज्ञान को वस्तुरूप से विचारने पर, ज्ञान, अस्तिरूप है। चौथे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान को पर्यायमात्र से कहने पर, ज्ञान, अनित्य है; वस्तुमात्र से कहने पर, ज्ञान, नित्य है। ऐसा प्रश्न करने पर, ऐसा समाधान करना, स्याद्वाद इसका नाम है। वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है तथा इस प्रकार साधनेपर, वस्तुमात्र सधती है। जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव, वस्तु को वस्तुरूप है तथा वही वस्तु, पर्यायरूप है—ऐसा नहीं मानते हैं; सर्वथा वस्तुरूप मानते हैं अथवा सर्वथा पर्यायमात्र मानते हैं, वे जीव, एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। कारण कि वस्तुमात्र को माने बिना, पर्यायमात्र के मानने पर, पर्यायमात्र भी नहीं सधती है; वहाँ

अनेक प्रकार साधन–बाधन हैं, अवसर पाकर कहेंगे। अथवा पर्यायरूप माने बिना, वस्तुमात्र कहने पर, वस्तुमात्र भी नहीं सधती है। वहाँ भी अनेक युक्तियाँ हैं। अवसर पाकर कहेंगे। इसी बीच कोई मिथ्यादृष्टि जीव, ज्ञान को पर्यायरूप मानता है; वस्तुरूप नहीं मानता है। ऐसा मानता हुआ, ज्ञान को ज्ञेय का सहारे का मानता है, उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि इस प्रकार तो एकान्तरूप से ज्ञान सधता नहीं। इसलिए ज्ञान, अपने सहारे का है, ऐसा कहते हैं— 'पशोः ज्ञानं सीदति' [पशोः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जैसा मानता है कि ज्ञान, पर ज्ञेय के सहारे का है सो ऐसा मानने पर, [ज्ञानं] शुद्धजीव की सत्ता [सीदति] नष्ट होती है अर्थात् अस्तित्वपना, वस्तुरूपता को नहीं पाता है। भावार्थ इस प्रकार है कि एकान्तवादी के कथनानुसार, वस्तु का अभाव सधता है; वस्तुपना नहीं सधता। कारण कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है। कैसा है ज्ञान? 'बाह्यार्थैः परिपीतं' [बाह्यार्थैः] ज्ञेयवस्तु के द्वारा [परिपीतं] सर्व प्रकार निगला गया है। भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि ज्ञान, वस्तु नहीं है; ज्ञेय से है। सो भी उसी क्षण उपजता है, उसी क्षण विनशता है। जिस प्रकार घटज्ञान, घट के सद्भाव में है। प्रतीति इस प्रकार होती है कि जो घट है तो घटज्ञान है। जब घट नहीं था, तब घटज्ञान नहीं था; जब घट नहीं होगा, तब घटज्ञान नहीं होगा। कोई मिथ्यादृष्टि जीव, ज्ञानवस्तु को बिना माने, ज्ञान को पर्यायमात्र मानता हुआ—ऐसा मानता है। और ज्ञान को कैसा मानता है— 'उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्' [उज्झित] मूल से नाश हो गया है [निजप्रव्यक्ति] ज्ञेय के जानपनेमात्र से ज्ञान, ऐसा पाया हुआ नाममात्र, उस कारण [रिक्तीभवत्] ज्ञान, ऐसे नाम से भी विनष्ट हो गया है—ऐसा मानता है, मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी जीव। और ज्ञान को कैसा मानता है— 'परितः पररूपे एव विश्रान्तं' [परितः] मूल से लेकर, [पररूपे] ज्ञेयवस्तुरूप निमित्त में [एव] एकान्त से [विश्रान्तं] विश्रान्त हो गया—ज्ञेय से, उत्पन्न हुआ; ज्ञेय से, नष्ट हो गया। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार भीत में चित्राम, जब भीत नहीं थी, तब नहीं था; जब भीत है, तब है; जब भीत नहीं होगी, तब नहीं होगा। इससे प्रतीति ऐसी उत्पन्न होती है कि चित्र के सर्वस्व का कर्ता, भीत है। उसी प्रकार जब घट है, तब घटज्ञान है; जब घट नहीं था, तब घटज्ञान नहीं था; जब घट नहीं होगा, तब घटज्ञान नहीं होगा। इससे ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है कि ज्ञान के सर्वस्व का कर्ता, ज्ञेय है। कोई अज्ञानी एकान्तवादी ऐसा मानता

है; इसलिए ऐसे अज्ञानी के मत में, ज्ञानवस्तु—ऐसा नहीं पाया जाता। स्याद्वादी के मत में ज्ञानवस्तु—ऐसा पाया जाता है। 'पुनः स्याद्वादिनः तत् पूर्णं समुन्मज्जति' [पुनः] एकान्तवादी कहता है, उस प्रकार नहीं है; स्याद्वादी कहता है, उस प्रकार है। [स्याद्वादिनः] एक सत्ता को द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप मानते हैं—ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव, उनके मत में [तत्] ज्ञानवस्तु, [पूर्णं] जैसी ज्ञेय से होती है कही, विनशती कही, वैसी नहीं है; जैसी है, वैसी ही है; ज्ञेय से भिन्न, स्वयंसिद्ध अपने से है। [समुन्मज्जति] एकान्तवादी के मत में (जो) मूल से लोप हो गया था, वही ज्ञान, स्याद्वादी के मत में ज्ञान, वस्तुरूप प्रगट हुआ। किस कारण से प्रगट हुआ? 'दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः' [दूर] अनादि से लेकर, [उन्मग्न] स्वयंसिद्ध वस्तुरूप प्रगट है, ऐसा [घन] अमिट [स्वभाव] ज्ञान-वस्तु का सहज(पना) उसके [भरतः] न्याय करने पर, अनुभव करनेपर—ऐसा ही है, ऐसे सत्यपने के कारण। कैसा न्याय-कैसा अनुभव, ये दोनों जिस प्रकार होते हैं, उस प्रकार कहते हैं— 'यत् तत् स्वरूपतः तत् इति' [यत्] जो वस्तु, [तत्] वह वस्तु [स्वरूपतः तत्] अपने स्वभाव से वस्तु है। [इति] ऐसा अनुभव करने पर, अनुभव भी उत्पन्न होता है, युक्ति भी प्रगट होती है। अनुभव निर्विकल्प है। युक्ति ऐसी कि ज्ञानवस्तु, द्रव्यरूप से विचार करनेपर, अपने स्वरूप है; पर्यायरूप से विचार करने पर, ज्ञेय से है। जिस प्रकार ज्ञानवस्तु, द्रव्यरूप से ज्ञानमात्र है; पर्यायरूप से घटज्ञानमात्र है; इसलिए पर्यायरूप से देखने पर, घटज्ञान जिस प्रकार कहा है, कि घट के सद्भाव में है; घट के नहीं होने पर नहीं है— वैसे ही है। द्रव्यरूप से अनुभव करने पर, घटज्ञान ऐसा न देखा जाये; ज्ञान ऐसा देखा जाये तो, घट से भिन्न, अपने स्वरूपमात्र स्वयंसिद्ध वस्तु है। इस प्रकार अनेकान्त के साधने पर, वस्तुस्वरूप सधता है। एकान्त से जो घट, घटज्ञान का कर्ता है; ज्ञानवस्तु नहीं है, तो ऐसा होना चाहिए कि जिस प्रकार घट के पास बैठे पुरुष को घटज्ञान होता है; उसी प्रकार जिस किसी वस्तु को घट के पास रखा जाये, उसे घटज्ञान होना चाहिए। ऐसा होने पर, स्तम्भ के पास घट के होने पर, स्तम्भ को घटज्ञान होना चाहिए सो (-परन्तु) ऐसा तो नहीं दिखाई देता। तिस कारण ऐसा भाव, प्रतीति में आता है कि जिसमें ज्ञानशक्ति विद्यमान है, उसको घट के पास बैठकर घट के देखने-विचारने पर, घटज्ञानरूप इस ज्ञान की पर्याय, परिणमती है। इसलिए स्याद्वाद, वस्तु का साधक है; एकान्तपना, वस्तु का नाशकर्ता है।।२-२४८।।

मागशर शुक्ल १२, रविवार, दिनांक-०५-१२-१९६५, कलश-२४८, प्रवचन-२६०

यह कलशटीका का स्याद्वाद अधिकार है। समयसार कलश का स्याद्वाद अधिकार। अब दूसरा श्लोक, पहला श्लोक कल हो गया।

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्
विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति।
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ।।२-२४८।।

भावार्थ। कहने से पहले भावार्थ। अर्थात् कि इसका भाव-अर्थ क्या है, ऐसा। **भावार्थ इस प्रकार है कि जो ज्ञानमात्र जीव का स्वरूप है...** जीव का स्वरूप यहाँ ज्ञानमात्र है, यह बात कह गये और कल अनेकान्तपना सिद्ध किया। यही अनेकान्त का ही अभी तो यह सब चलता है। ज्ञानमात्र स्वरूप कहने से उसमें अनन्त गुण हैं, अनेकान्तरूप से अनन्त धर्म हैं। उसमें यह एक बात तत्-अतत् की व्याख्या अब लेते हैं।

ज्ञानमात्र जीव भगवान ज्ञानस्वरूप है, उसमें अनन्त गुण लेना। यहाँ तो ज्ञान प्रधान से आत्मा की बात ली है। ज्ञानमात्र अर्थात् आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही है। अर्थात् अनन्त गुण स्वरूप में ज्ञान प्रधान से बात है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप विकार, शरीर, कर्म वह कहीं आत्मा नहीं है। समझ में आया? आत्मा जिसे दृष्टि में लेना है, उसे तो यह ज्ञानमात्र आत्मा (यह लेना)। उसकी दृष्टि करने से आत्मा को शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है। इसलिए आत्मा को ज्ञानमात्र वर्णन करते हुए उसमें कहते हैं कि **उसमें भी चार प्रश्न विचारणीय हैं।** भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा में चार प्रकार के प्रश्न विचारने योग्य हैं। **वे प्रश्न कौन? एक तो प्रश्न ऐसा कि ज्ञान ज्ञेय के सहारे का है कि अपने सहारे का है?** यह ज्ञान जो है, वह ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य वस्तु का है या ज्ञान ज्ञान का है? यह तो भाई! जरा युक्ति से सिद्ध करना है। वस्तु का स्वरूप है न, उसी प्रकार से सर्वज्ञ ने देखा और उसी प्रकार से स्वरूप है। इस प्रकार इसके ख्याल में न आवे तो उसे आत्मा का अनुभव—सम्यग्दर्शन नहीं होगा और सम्यग्दर्शन बिना इसे धर्म नहीं होगा। समझ में आया?

एक तो प्रश्न ऐसा कि ज्ञान ज्ञेय के सहारे का है कि... ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह ज्ञात होनेयोग्य वस्तु के कारण है या स्वयं के कारण से है? समझ में आया? एक प्रश्न यह है। इसका उत्तर बाद में कहेंगे।

दूसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान एक है कि अनेक है? ज्ञानमात्र वस्तु कहने से आत्मा ज्ञान वह एक है या अनेक है? वस्तु स्वयं ही, हों! पर के कारण नहीं। यह वस्तु स्वयं एक है या अनेक है?

तीसरा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान अस्तिरूप है कि नास्तिरूप है? ज्ञानरूप वस्तु, वह अस्ति है या नहीं—नास्तिरूप है?

चौथा प्रश्न ऐसा कि ज्ञान नित्य है कि अनित्य है? जीव वस्तु ज्ञानमात्र भगवान, वह नित्य है, कायमी है या पलटता अनित्य है? ऐसे चार प्रश्न एक आत्मा के (उठे हैं)। ज्ञानमात्र कहने से जीवमात्र वस्तु के चार प्रश्न उठे। समझ में आया?

उनका उत्तर इस प्रकार है... उसका उत्तर इस प्रकार है कि **जितनी वस्तु हैं, वे सब द्रव्यरूप हैं, पर्यायरूप हैं।** जगत में जितनी चीज़ें हैं—आत्मा हो, परमाणु हो, धर्मास्ति हो, अधर्मास्ति हो, आकाश या काल (हो)। यह छह द्रव्य जगत में भगवान ने देखे हैं और हैं। जो अनादि से है। अकृत्रिम, अविनाश पावे, ऐसा। ऐसी अनादि से छह वस्तु है। तो कहते हैं कि **जितनी वस्तु हैं, वे सब द्रव्यरूप हैं, पर्यायरूप हैं।** जितनी जगत में वस्तुयें हैं, वे सब द्रव्यरूप है, त्रिकालरूप है और वर्तमान पर्यायरूप है। समझ में आया? पर्यायरूप क्या? यह सुना है, भगवानभाई? इतने-इतने वर्ष से पर्यायरूप नहीं सुना था वहाँ? लो! कहो।

द्रव्य अर्थात् वस्तु। यहाँ द्रव्य अर्थात् पैसे का क्या काम है? पैसा एक-एक परमाणु वह द्रव्य है। पैसे में अनन्त रजकण हैं, वह एक-एक रजकण भी वस्तुरूप से द्रव्य है और उसकी अवस्थारूप से पर्याय है। जितनी जगत में चीज़ है, वह द्रव्यरूप अर्थात् कायम टिके, ऐसी भी है और एक समय की पर्याय जितनी भी है। प्रत्येक वस्तु का ऐसा स्वरूप ही है। समझ में आया? **वे सब द्रव्यरूप हैं, पर्यायरूप हैं।**

एक व्यक्ति कहता था, जैन, हों! सुने न, और बड़ा कहलाये। यह पर्याय तो वहाँ

तक सिद्ध हो तो भी... क्या कहा था? पीछे पड़ी है, पर्याय पीछे पड़ी है? पीछे पड़ी है, लो! ऐसे समझनेवाले बड़े वापस होशियारी रखे और हजारों लोगों की बातें करे, भाषण करे, हम जैन हैं। पर्याय कहाँ तक पीछे (लगी) है? कि सिद्ध हो तो पर्याय पीछे पड़ी है? समझे? पर्याय, पर्याय का पूंछड़ा वहाँ तक लगा, कहते हैं। कहो! खबर नहीं होती। वाड़ा में जन्मे। वीतराग क्या कहते हैं, यह द्रव्य की भी खबर नहीं होती, उसकी पर्याय की खबर नहीं होती और बात—भाषण करना है, बड़े धर्म के! ऐसे होता है, सज्जनता ऐसे कहलाती है, धर्म ऐसा कहलाता है। परन्तु अब तुझे अभी द्रव्य-पर्याय की खबर नहीं (तो) धर्म कहाँ से होगा तुझे? कहलाये कहाँ से आ गया तेरे पास? धर्म तो पर्याय है। धर्म अर्थात् कि पर्याय है, धर्म, वह तो पर्याय है। वस्तु तो द्रव्य त्रिकाल है। समझ में आया? अधर्म, धर्म, सिद्धपद, मोक्षमार्ग वह तो पर्याय है। अभी पर्याय क्या है, कैसे है, इसकी खबर नहीं होती और कहे, धर्म करो! कहाँ से धर्म करे? कहाँ से?

कहते हैं, इस जगत में जितनी वस्तुयें हैं—अनन्त आत्मायें, उससे अनन्तगुणे परमाणु, असंख्य अरूपी कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश, ऐसे छह द्रव्य जाति से। संख्या से अनन्त वस्तुयें अनादि की ऐसी है। जितनी वस्तु वैसी। जितनी कही न? जितनी अर्थात् इतनी कही, उतनी। एक वस्तु नहीं, छह वस्तुएँ हैं, जाति से छह है। संख्या से अनन्त हैं। वह प्रत्येक अनन्त वस्तुएँ जो हैं, वह द्रव्यरूप और पर्यायरूप है। समझ में आया? कहो, प्रवीणभाई! पर्यायरूप और द्रव्यरूप वहाँ कभी कहाँ इतना अभ्यास किया, इसमें आया था कहीं? भगवान का भजन करो। राम.... राम.... राम.... राम.... परन्तु क्या राम? आहाहा!

इसलिए ज्ञान भी द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। ज्ञान अर्थात् आत्मा। यहाँ ज्ञान प्रधान से बात है। ज्ञानस्वरूप से भगवान आत्मा, वह भी द्रव्यरूप भी है और पर्यायरूप भी है। वस्तुरूप भी है और अवस्थारूप भी है। अवस्था एक पर्यायमात्र एक समय की पर्याय (और) वह त्रिकाल वस्तु। ज्ञान आत्मा, ज्ञान वस्तु वह दोरूप है—द्रव्यरूप भी है, पर्यायरूप भी है।

उसका विवरण—द्रव्यरूप कहने पर... वस्तुरूप से कहने से। द्रव्य वस्तु...

वस्तु। अब यहाँ एक-एक ज्ञानमात्र आत्मा में घटित करते हैं। पहली सब सामान्य बात कर गये। सभी वस्तुयें द्रव्यरूप और पर्यायरूप है। अब आत्मा ज्ञानमात्र कहने से, वह ज्ञानमात्र भी **द्रव्यरूप कहने पर निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु...** भगवान वस्तु निर्विकल्प, जिसमें एक समय की पर्याय नहीं। समझ में आया? अभेद वस्तु, अनन्त गुण का पिण्ड अभेद द्रव्यरूप। ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त स्वभाव, उनका एकरूप—द्रव्यरूप। वह द्रव्यरूप, वह निर्विकल्प ज्ञानमात्र अर्थात् ज्ञान एकरूप अभेद वस्तुरूप से उसे वस्तु कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक समय की पर्याय नहीं। निर्विकल्प अभेद वस्तु, एकरूप वस्तु।

मुमुक्षु : निर्विकल्प वस्तु अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद, निर्विकल्प अर्थात् अभेद। विकल्प अर्थात् भेद। भेद बिना की वस्तु एकरूप वस्तु। अभेद अर्थात् यह सब होकर ऐसा अभेद नहीं। यह तो एक-एक वस्तु अभेद है, इसकी यह बात चलती है।

मुमुक्षु : अभेद अर्थात् सब होकर अभेद न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा नहीं। यहाँ तो, यहाँ तो प्रत्येक वस्तु द्रव्यरूप-पर्यायरूप है, ऐसा कहा। और वह द्रव्यरूप स्वयं है, निर्विकल्प है, ऐसा यहाँ तो कहना है। द्रव्यरूप वस्तु है, वह निर्विकल्प है, ऐसा कहना है। सब होकर अभेद, ऐसा इसमें कहाँ आया? शशिभाई! इसीलिए तो पहले कहा था कि **जितनी वस्तु हैं, वे सब द्रव्यरूप हैं, पर्यायरूप हैं।** ऐसे भगवान आत्मा भी द्रव्यरूप और पर्यायरूप है। द्रव्यरूप वस्तु... वस्तु... वस्तु कहने से निर्विकल्प अभेद है। ज्ञानमात्र पदार्थ, चैतन्य ज्ञायक भावमात्र पदार्थ, वस्तु भाव स्वभावमात्र पदार्थ, वह द्रव्यरूप।

पर्यायरूप कहने पर... जरा थोड़ा ध्यान रखना पड़ेगा, हों! यहाँ ज्ञेय दो प्रकार से कहेंगे, पश्चात् ज्ञेय एक प्रकार से कहेंगे। समझ में आया? बाद में आयेगा, २१९वें (पृष्ठ पर) आयेगा। सातवीं लाईन। **ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है...** वहाँ अकेला पर लेंगे। एक अपेक्षा से बात है, थोड़ी कठिन तो है। यहाँ कहते हैं कि वस्तु जो है, वस्तु आत्मा ज्ञानमात्र है। एक समय की पर्याय नहीं, अवस्था नहीं, अंश नहीं। अवस्था एक

समय की जो पर्याय है, वह नहीं। वस्तु जो है, वह अनन्त गुण का एकरूप, अभेदरूप ज्ञानरूप वह द्रव्य। ज्ञान, वह एकरूप ज्ञान, वह द्रव्य। अब यह क्या ? ज्ञान वह द्रव्य ? ज्ञान तो गुण है। यहाँ तो ज्ञान अर्थात् ही आत्मा ऐसा। अकेली ज्ञानरूप वस्तु, ज्ञानरूप वस्तु, अभेद वस्तु वह द्रव्य। वह ज्ञान अभेदरूप वस्तु, वह द्रव्य। आहाहा!

यह तो धर्म के नाम से गड़बड़ न हो जाये (इसके लिये कहते हैं)। आत्मा वीतराग है, निर्विकल्प है, अभेद है और आनन्द का अनुभव करना और यह सब नहीं। उसके नाम से गड़बड़ लगी है बड़ी। ऐसा अभी भी उसके बहाने चलता है। इसलिए आचार्य ने यह अन्तिम स्पष्ट किया है कि वे सभी वस्तुएँ हैं, वे द्रव्य-पर्यायरूप है। कोई ऐसा ही कहे कि पर्याय नहीं तो वह मूढ़ है। समझ में आया ? और पर्याय क्या ? बदलना क्या... बदलना क्या... बदलना क्या... ? सिद्ध में भी बदलना ? वहाँ सिद्ध में भी बदले ? वहाँ भी चैन नहीं पर्याय को ? शशिभाई ! आहाहा ! परन्तु पर्याय तो, उस वस्तु के दो भाग हैं। एक वस्तुरूप से शाश्वत् चीज़ और एक समय की अवस्था। यह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया ? आहा ! और अनुभव है, वह पर्याय में है। द्रव्य का अनुभव नहीं होता। द्रव्य तो त्रिकाल एक वस्तु है। यदि पर्याय न हो तो अनुभव ही न हो। पर्याय न हो तो कार्य बिना यह वस्तु क्या है, इसका निर्णय करनेवाला कौन ? आहाहा ! समझ में आया ?

पर्यायरूप कहने पर स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ... जानता हुआ। जरा ध्यान रखना। स्वज्ञेय अर्थात् वस्तु, वस्तु पूरी और परज्ञेय सब पाँच द्रव्य, आत्मा के अतिरिक्त के दूसरे सब। उन्हें **जानता हुआ...** उन्हें जानता हुआ। आत्मा की पर्याय में स्वज्ञेय पूरा, उसे जानने की पर्याय, वह पर्यायरूप जो दशा, वह कहीं द्रव्यरूप नहीं है। वह द्रव्य, पर्याय में ज्ञेयरूप से हुआ और इसलिए यहाँ जाननरूप पर्याय हुई। वस्तु त्रिकाली द्रव्यस्वरूप भगवान, उसकी एक समय की पर्याय, वह स्वज्ञेय पूरी चीज़, उसके जानपनेरूप पर्याय परिणमी, परन्तु परिणमी (तो) एक पर्याय में पूरा द्रव्य आ नहीं जाता। द्रव्य का—वस्तु का है उसका—स्वज्ञेय का वर्तमान पर्याय में ज्ञान आता है। वस्तु (एक) समय में नहीं आती।

पर्याय में ज्ञान पूरा आवे। द्रव्य का पूरा ज्ञान पर्याय में आवे। द्रव्य पूरी वस्तु

पर्याय में नहीं आती। समझ में आया ? बल्लभदासभाई ! वस्तु है न, वस्तु पूरी ? पदार्थ निर्विकल्प वस्तु कही न ? निर्विकल्प वस्तु अभेदमात्र वस्तु। वह चेतनामात्र वस्तु एक। और पर्याय कहने से, एक समय की अवस्था कहने से, वह वस्तु जो स्वज्ञेय हे पूरा, उसका भी यहाँ पर्याय में ज्ञान है और परज्ञेय का भी यहाँ पर्याय में ज्ञान है। तो एक समय की पर्याय में स्वज्ञेय, परज्ञेय का ज्ञानरूप परिणमन है, परन्तु वह परिणमन द्रव्यरूप नहीं है। कहो, अरे... भाई ! क्या ? अर्थात् क्या ? लो ! सेठिया...

द्रव्य है, उस सम्बन्धी का पर्याय में ज्ञान उस सम्बन्धी का हो। एक पर्याय में द्रव्य का स्वज्ञेय। स्वज्ञेय है, उसके जानपनेरूप ज्ञान परिणमे, परन्तु वह पर्याय द्रव्यरूप नहीं होती, द्रव्य तो त्रिकाली है। समझ में आया ? अब उसकी वस्तु उसे अभी समझने में इतनी देर लगे, लो ! ऐ... भीखाभाई ! कितने वर्ष से यह बात चलती है, नहीं चलती ? यहाँ तो कहते हैं... है जरा (सूक्ष्म)। पर के साथ अभी सम्बन्ध नहीं है। पर का ज्ञान कहेंगे, एक समय की पर्याय, वह पर का ज्ञान, ऐसे आगे एक अपेक्षा से कहेंगे। समझ में आया ? पर्याय को न माने, वह पाँच द्रव्य को नहीं मानता, ऐसा कहेंगे। यहाँ तो अभी इस पर्याय में इतना प्रकार पहले लेना है।

वस्तु है। एक समय की द्रव्य वस्तु निर्विकल्प अभेद है और अंश है, पर्याय है, वह तो भेद है। वह पर्याय जो अंश है, उसमें स्वज्ञेय का ज्ञान परिणमे परज्ञेय के रूप से अपने पर्यायधर्म में परिणमन होता है। देखो ! क्या कहा ? **स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता...** पर्याय-अवस्था। **जानता हुआ...** पर्याय-अवस्था जानता हुआ। **ज्ञेय की आकृति...** ज्ञेय जैसा है, वैसा। उसका आकार अर्थात् वह स्वरूप। वह स्वरूप से **प्रतिबिम्बरूप परिणमता है....** जैसा स्वज्ञेय है पूरा, जैसे परज्ञेय हैं पूरे, उनके जानपनेरूप एक समय की पर्याय उसके आकार अर्थात् जो स्वरूप ऐसा है, उसके ज्ञानरूप से प्रतिबिम्बरूप मानो कि ज्ञान की पर्याय में पूरा स्वज्ञेय प्रतिबिम्ब हो गया और पर भी प्रतिबिम्ब हो गया। दर्पण में परवस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है न ? वह तो दर्पण की पर्याय परन्तु पर भी हो गया है न उस पर्याय में दर्पण ऐसा है, ऐसा भी ख्याल में आ जाता है। समझ में आया ?

ऐसी चीज़ सर्वज्ञ के अतिरिक्त, वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती। दूसरे आत्मा... आत्मा... भले बातें करे। आत्मा निर्दोष है और निर्विकल्प है। निर्विकल्प का ज्ञान करो, विकल्प-बिकल्प क्रिया लप छोड़ो। यह सब बात (करे) परन्तु वह पर्याय क्या, वह छोड़ना क्या, और रहना क्या? छोड़ना किस दशा में होता है? स्थिरता रह जाये, वह किस दशारूप होती है? वस्तु किस रूप होती है? इसके भान बिना उसे किसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता नहीं। समझ में आया? जमुभाई!

पर्यायरूप कहने पर स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ ज्ञेय की आकृति... अर्थात् प्रतिबिम्ब। आकृति की व्याख्या। उसका प्रतिबिम्ब अर्थात् जैसा ज्ञेय स्व है, जैसा ज्ञेय पर है, जड़ आदि का, उसका यहाँ पर्याय में प्रतिबिम्बरूप से प्रतिबिम्ब अर्थात् वह कुछ पड़ता नहीं परन्तु वैसे भावरूप पर्याय परिणमती है। समझ में आया? प्रतिबिम्ब अर्थातृ जैसा सामने (ज्ञेय) है, वैसा यहाँ परिणमता है, ऐसा। प्रति-बिम्ब। स्वज्ञेय और परज्ञेय जैसा है, प्रति, ऐसा बिम्ब अर्थात् उसरूप परिणमता है। समझ में आया? ऐसी कठिन बातें! 'इच्छामी पडिकमणा इरीया विरिया तस्स मिच्छामि दुक्कडम' लो! भगवानभाई! यह कुछ था उसमें?

अरे! वीतरागमार्ग, बापू! उसे द्रव्य वस्तु और उसकी पर्याय क्या? द्रव्य में तो अनन्त गुण का एकरूप आ गया। उसकी एक समय की पर्याय जाने बिना किसमें अनुभव करना और किसमें से अनुभव की पर्याय आती है? अनुभवव पलट जाता है तो कहीं द्रव्य पलट जाता है पूरा? समझ में आया? समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : छुटकारा ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : छुटकारा (कहो तो) बलजोरी करना पड़ता है, ऐसा इसका अर्थ होता है। परन्तु जिसे वस्तुस्वरूप है, ऐसा जानना ही चाहिए ऐसा ही उसका वह रास्ता है, ऐसा। छुटकारा नहीं, ऐसा नहीं। यह तो मानो बलजोरी से करना पड़ता हो, ऐसा होता है या नहीं? परन्तु भाई! यहाँ तो सब....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ कौन कहता है? यह तो एक बात है। भाई! यह तो

करना ही पड़ेगा और क्या करें ? ऐसा करके मानो... यहाँ तो भाई ! तौल बहुत कठोर है। यह वस्तु ऐसी है, बापू ! ऐसी वस्तु ही है, भाई ! पदार्थ ही ऐसे स्वभाव से है, ऐसा स्वभाव है, उसमें वस्तु पुकार करती है, उसमें दूसरा लाना कहाँ से ?

स्वयं अपनी पर्याय में अपना स्वज्ञेय-परज्ञेय इस रूप (परिणमता है)। इतना यहाँ विशेषरूप पर्याय का लिया है। समझे न ? फिर आगे पर से लेंगे। **परिणमता है जो ज्ञान।** है न ? स्वज्ञेय और परज्ञेय को जानता हुआ। ज्ञेय की आकृति अर्थात् प्रतिबिम्बरूप अर्थात् जैसा सामनेरूप है, वैसा जाननेरूप **परिणमता है जो ज्ञान।** अर्थात् पर्याय। यह पर्याय की व्याख्या की। **पर्यायरूप कहने पर....** ऐसा था न ? वह परिणमा, वह ज्ञान, ऐसा, परिणमा वह ज्ञान। वह पर्यायरूप हुआ। समझ में आया ? यह न समझ में आये ऐसी चीज़ नहीं, परन्तु इसने कभी अभ्यास किया (नहीं), दरकार ही नहीं की।

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय को जाननेरूप परिणति ज्ञान की पर्याय,... संक्षिप्त में कहा। भाव—अर्थ ऐसा है कि **ज्ञेय को...** ज्ञेय अर्थात् स्व और पर, ऐसी जाननेयोग्य जो चीज़, उसे जाननेरूप से होती दशा—परिणति, वह ज्ञान की पर्याय। समझ में आया ? वह ज्ञान की पर्याय। पर्याय अर्थात् अवस्था; अवस्था अर्थात् अंश; अंश अर्थात् हालत। **इसलिए ज्ञान को पर्यायरूप कहने पर...** इस अपेक्षा से ज्ञान की पर्याय अवस्था से कहने के लिये **कहने पर ज्ञान ज्ञेय के सहारे का है।** सहारा अर्थात् जिसमें—ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय का अन्तर निमित्त पड़ता है। समझ में आया ?

कहीं 'निमित्त' शब्द है। दूसरे भाग में... कहीं निमित्त कहा, कहीं हों ! निमित्त है, कहीं शब्द है। कहाँ आया होगा ? उसमें होगा न ? उसी और उसी में है, ये कलश में, देखो ! है न ? भाई ! अभी थोड़ा मिलाया था, अभी बहुत बाकी है। रात्रि में फिर भाई को बुलाया था। यह थोड़ा इतना किया परन्तु अन्दर तर्क बहुत उठे। हमारे पण्डितजी बिना पूरा पड़े, ऐसा नहीं है। आगे एक ओर कहा पर्याय ऐसी है तथा एक ओर कहा पर पाँच द्रव्य वह पर्याय है, ऐसा कहा है। इसलिए जरा विचार अपेक्षित है। कहो, समझ में आया इसमें ? अभी तो इस प्रमाण है, उसमें कहीं वह नहीं, दूसरी अपेक्षा उसमें चलती है। क्या कहते हैं ? समझ में आया ?

ज्ञान को पर्यायरूप कहने पर... भगवान आत्मा की ज्ञान की पर्याय—अवस्था कहने से वह **ज्ञान ज्ञेय के सहारे का है।** अर्थात् ज्ञेय उसमें निमित्त पड़ते हैं। इसलिए वह ज्ञेय के सहारे का, इस अपेक्षा से कहना। समझ में आया? भगवान ज्ञान वस्तु जो है त्रिकाल, उसमें तो कोई सहारा नहीं, उसमें तो कोई निमित्त है नहीं। वस्तु है उसमें क्या? वस्तुरूप से ज्ञानमात्र निर्विकल्प घन वस्तुस्वरूप, जो निश्चयनय का विषय ध्रुव, उसमें तो कुछ भेद नहीं, उसमें कोई निमित्त है नहीं। मात्र उसकी पर्याय जो है, जाननेरूप परिणमन है, उसमें यह द्रव्य, यह द्रव्य ऐसा उसमें आता है, इतना वह सहारे का पर्याय में कहने में आता है। अर्थात् इस अपेक्षा से (सहारे का कहा)। समझ में आया? पर्यायरूप ज्ञान को कहने में **ज्ञान ज्ञेय के सहारे का है।** ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

सूक्ष्म है, ध्यान रखनेयोग्य है, भाई! यह तो बात ऐसी है। यह कहीं वार्ता नहीं। यह तो भगवान के घर की भगवान की बात है, भागवत बात है। समझ में आया? इसने इस प्रकार से कभी परीक्षा और इसका निर्णय किया नहीं। इसलिए इसे ऐसा महँगा लगता है। आहाहा! और साधारण को (तो ऐसा लगे) ऐसा सब? परन्तु ऐसा सब नहीं, परन्तु तू ऐसा ही है। और ऐसा सब क्या? तू ऐसा ही है, अब है, उस प्रकार से जानना; है उस प्रकार से जानना, उसमें वह क्या है? ज्ञान का स्वभाव तो जैसा है, वैसा (जाने)। पदार्थ जैसा है, वैसा जानना, उसका नाम पदार्थ ज्ञान कहलाये न? हैं?

ज्ञान का स्वभाव क्या? प्रतिभास। अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप है, वैसा ज्ञान में जानना इसका नाम ज्ञान कहा जाता है। तो ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है और वस्तु भी ऐसी है। ज्ञान में इस प्रकार से ज्ञात हो। समझ में आया? कहते हैं, ज्ञान ज्ञेय के सहारे का है। ज्ञान को पर्याय से कहें तो यह अपेक्षा लागू पड़ती है। समझ में आया?

(ज्ञान को) वस्तुमात्र से कहने पर अपने सहारे का है। अकेला पिण्ड चैतन्य द्रव्य—वस्तु, उसमें तो किसी का निमित्त या अपेक्षा है ही नहीं। भगवान एकाकार अखण्डानन्द प्रभु! ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ... वह (परम)पारिणामिकस्वभावस्वरूप एकरूप, जिसमें परिणमना—पर्याय का परिणमना भी जिसमें नहीं। समझ में आया? वस्तु... वस्तु ध्रुव स्तम्भ, वज्र स्तम्भ, ध्रुव का वज्र स्तम्भ, भगवान ध्रुवद्रव्य। वह वस्तु कहने से

अपने सहारे का है। वह स्वयं से ही है, ऐसी की ऐसी है। उसमें कोई पर की अपेक्षा से परिणमना या ऐसा होना या ऐसा कुछ है नहीं।

मुमुक्षु : इसमें सहारे का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं कहा न। **अपने सहारे का....** अर्थात् स्वयं अपने से है, ऐसा। सहारा स्वयं अपने से है। वह पर में निमित्त की अपेक्षा है, इसमें किसी की अपेक्षा नहीं। स्वयं ही अपने से है, ऐसा। समझ में आया? ओहो!

वस्तुमात्र से कहने पर अपने सहारे का है। अपने सहारे का अर्थ स्वयं अपने से है। उसमें जरा ज्ञेय की अपेक्षा आती थी। इसमें कोई अपेक्षा ही नहीं। निरपेक्ष वस्तु अनादि-अनन्त वस्तु भगवान आत्मा ज्ञानमात्र निर्विकल्प ध्रुव वस्तु (इसमें) कोई अपेक्षा ही नहीं। ऐसा का ऐसा अपने से स्वयं है। स्वयं अपने से है। वह पर्याय, वह स्वयं से है परन्तु एक अंश में स्व-पर के जानने की अपेक्षा आती है। समझ में आया? वहाँ अकेला स्व नहीं रहता। यह द्रव्य तो अकेला स्व। बिल्कुल वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु अनादि-अनन्त। ज्ञानमात्र भगवान वस्तु स्वयं अपना सहारा अर्थात् दूसरा कोई (सहारा) है नहीं, दूसरी कोई अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। शशिभाई! यह रविवार को और ऐसा सूक्ष्म आया। नहीं? आहाहा! अरे! भगवान! तू कितना है, उसकी तो बात चलती है यहाँ। अब यह है ऐसा, उसे न जाने और उसे धर्म हो जाये? आहाहा!

एक प्रश्न का समाधान तो इस प्रकार है। इस प्रकार है अर्थात् यह हुआ, ऐसा। **वस्तुमात्र से कहने पर अपने सहारे का है।** वस्तु वस्तु है। वस्तु को दूसरा क्या? ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... चिदानन्द भगवान वस्तु ऐसी की ऐसी, स्वयं अपने से ऐसी की ऐसी है। पर्याय में जरा स्व और पर के जानने की अपेक्षा आती है। क्योंकि पर्याय का एक अंश, उसे पूरे पर का और उसमें पूरे द्रव्य का (ज्ञान होता है)। समझ में आया? ऐसी अपेक्षा पर्याय में आयी, इस अपेक्षा से पर सहारे का (कहा)। आगे अभी दूसरा अर्थ भी करेंगे।

दूसरे प्रश्न का समाधान इस प्रकार है कि... दूसरे प्रश्न का उत्तर ऐसा है, समाधान ऐसा है। **ज्ञान को पर्यायमात्र से कहने पर ज्ञान अनेक है,...** भगवान आत्मा

वस्तुरूप से उसकी पर्याय—अवस्था देखो तो अवस्था में अनेकपना है। समझ में आया? अवस्था में अनेकपना है, अनेकपना। पर्याय में अनन्त गुण का अनेकपना है। पर्याय में, पर्याय में, हों! **पर्यायमात्र से कहने पर ज्ञान अनेक है, वस्तुमात्र से कहने पर एक है।** वस्तुमात्र कहने से ज्ञान एक है, पदार्थ द्रव्यरूप से। पर्याय अनेक है। समझ में आया? यह तो ऐसा पदार्थ विज्ञान भगवान सर्वज्ञ का कहा हुआ है। लोग, लोगों के पदार्थविज्ञान के सब पाठ सीखे, गप्प लगायी हो ऐसे तो (पाठ) होते हैं। सीखे न सब? क्या सीखे तुम यह सब? यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ से (कथित पदार्थविज्ञान है) वह तो पदार्थ—वस्तु ही ऐसी है। वस्तु ही ऐसी है। उसमें तो तर्क से और अमुक से बात की हुई होती है। यह तो प्रत्यक्ष वस्तु ही (ऐसी है) और यह प्रत्यक्ष उसे सिद्ध हो, ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

दूसरे प्रश्न का समाधान इस प्रकार है कि ज्ञान को पर्यायमात्र से कहने पर ज्ञान अनेक है,.... पर्याय है न अनेक? एक समय में अनेक पर्याय है। वह पर्याय अनेक है। वस्तुरूप से देखो तो एक ही है। ऐसे वस्तुरूप में भेद कहाँ है? **वस्तुमात्र से कहने पर एक है।** समझ में आया? वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... भले अनन्त गुण अन्दर (रहे हैं), परन्तु वस्तुरूप से अभेद एक ही है। पर्याय में एक समय में भी अनेकपना है। क्योंकि पर्याय अनेक को जानती है न? अनेक को जाने तो पर्याय अनेक है। वस्तु तो एक ही रूप है। उसमें पर का जानना या ऐसा कुछ उसमें आता ही नहीं, वस्तु में कुछ आता नहीं। क्या कहा? लोकालोक का जानना वस्तु में नहीं। पर्याय में यह इतना जाना कि इतने द्रव्य हैं, वह सब पर्याय में आता है। इसलिए पर्याय अनेक है। समझ में आया? एक के बाद एक, ऐसा नहीं। एक समय में पर्याय अनेक हैं। ऐसा नहीं कि बहुत पर्याय अनेक है और द्रव्य (एक है), ऐसा नहीं। तब तो दूसरे समय का सहारा लेकर अनेक सिद्ध हों। ऐसा सिद्ध नहीं होता। पर्याय, एक समय की पर्याय अनेक है।

यह अनेक ज्ञात होता है उसमें। अनेक को जाने पर्याय अनेक है। द्रव्य कोई नहीं, द्रव्य तो द्रव्यरूप है। एकरूप वस्तु है। समझ में आया?

अनेक है, वस्तुमात्र से कहने पर एक है। यह एक समय के दो प्रकार की बाते

हैं, हों! द्रव्य, द्रव्य तो एक ही है और पर्याय बहुत हो गयी, इसलिए (अनेक है), ऐसा भी यहाँ नहीं। वस्तुमात्र द्रव्य-पर्यायरूप है, ऐसा पहले सिद्ध किया था। एक समय में सिद्ध किया था न? वह वस्तुरूप से जहाँ वस्तु है, वह तो एकरूप है और उसकी पर्याय जो है, अनेक को जानती है तो वह पर्याय अनेक है। वस्तु एक है, पर्याय अनेक है। पर्याय, एक समय की पर्याय को अनेक कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह तो एक ही पर्याय। भले अनन्त पर्याय है परन्तु एक ही पर्याय अनेकरूप है। समझ में आया? अनेकरूप है और उसमें अनेक अनन्तपना जानने में असंख्यपना आदि जानना आता है न? वस्तु तो वस्तु में है। वस्तु में कहाँ है वह अनेकपना? वह वस्तु तो एकरूप है। कहो, समझ में आया इसमें? यह दो प्रश्नों के उत्तर हुए। इसमें कितना ध्यान रखना पड़े? वार्ता हो तो अन्यत्र कहीं मस्तिष्क जाये तब तो पूरा हो जाये। इसमें तो एक बात (सुनते समय) मस्तिष्क पूरा हटे तो इसमें क्या कहा गया है, कुछ (समझ) रहे नहीं।

तीसरे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है.... तीसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि, **ज्ञान को पर्यायरूप से कहने पर ज्ञान नास्तिरूप है,....** ध्यान रखना! भगवान आत्मा की एक समय की पर्याय एक समयमात्र है, अर्थात् वास्तव में शाश्वत् अस्ति नहीं है, इसलिए उसे नास्तिरूप से कहा जाता है। समझ में आया? न कायम टिकता, इसलिए उसे नास्ति कहा है। आहा! कठिन भाई! पहले कहा था कि जितने द्रव्य हैं.... आया था न? वे सब द्रव्य-पर्यायरूप है। जितनी वसतु है, (वह) द्रव्यरूप और पर्यायरूप है। फिर यहाँ कहा कि उसी वस्तु को पर्यायरूप से कहने से ज्ञान नास्तिरूप है। अर्थात् कि एक समय की पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं और एक समय से अधिक टिकती नहीं, इसलिए इस अपेक्षा से उसे नास्ति कहा है। है तो एक समय की, परन्तु उत्पाद-व्यय सत्। आहाहा! समझ में आया? उत्पाद-व्यय सत् कहा था न? वह अपेक्षा अलग, अभी यह अपेक्षा वापस अलग है। आहाहा!

वीतराग की स्याद्वाद शैली अलौकिक बात, अलौकिक है। तीन काल, तीन

लोक में यह बात परमात्मा के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती। जिन्हें एक समय में धारावाही ज्ञान में सब ज्ञात हुआ। ओहोहो! ऐसा ही श्रुतज्ञान स्वीकार करता है। ऐसा ही श्रुतज्ञान स्वीकार करे, इतनी श्रुतज्ञान पर्याय में सामर्थ्य है। भावश्रुत में, हों! आहाहा! भावश्रुत में द्रव्य को जाना, पर को जाना परन्तु एक समय की पर्याय कहीं द्रव्यरूप हो गयी? समझ में आया? एक समय ही मात्र पर्याय (रहती है)। एक समय अर्थात् आँख मींचकर खोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय। उस ज्ञान को पर्यायरूप कहने से ज्ञान नास्ति है। कायम एकरूप टिकनेवाला नहीं, एक समयमात्र (रहता है), इस अपेक्षा से उसे नास्ति कहा। कहो, शशिभाई! एक ओर भगवान ऐसा कहते हैं कि उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत्। यह तो अस्तित्व की अपेक्षा से (कहा)। है इतना। यहाँ एक समय का रहनापना उसकी वस्तु में नहीं। एक ही समय टिके, इसलिए इस अपेक्षा से उसे नास्ति कहा गया है। शशिभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : वह कार्य है इस अपेक्षा से....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कार्य ही है, पर्याय तो कार्य ही है।

मुमुक्षु : पर्याय में कार्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कार्य ही है, पर्याय स्वयं ही कार्य है।

मुमुक्षु : एक का कार्य दूसरी पर्याय में नहीं इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यहाँ तर्क-बर्क नहीं चलते। यह तो बात ही दूसरे प्रकार की है। लौकिक तर्क इसमें काम नहीं करते। यह तो एक समय में दो लेना है। वह तुमने दूसरा समय मिलाया। क्या कहा? यह दो-तीन बात बीच में हो गयी। एक समय में दो बोल की अस्ति-नास्ति लेनी है, भाई! दूसरा समय रहे नहीं, (ऐसा नहीं)। यह तो एक समय में है, उसे ही नास्ति कहा है। त्रिकाल नहीं, त्रिकाल वस्तु नहीं, इस अपेक्षा से उसे नास्ति कहा। पर्याय त्रिकाल होती ही नहीं, इसलिए तो नास्ति कहा। समझ में आया? दूसरा समय मिलाकर, ऐसा नहीं। वह पर्याय एक समय की है, इसलिए त्रिकाल नहीं, इसलिए नास्ति (कहा है)। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है ऐसा। त्रिकाल नहीं। वह भी एक समय की पर्याय है, इतनी बात है। वह त्रिकाल नहीं। एक समय की, एक समय की पर्याय सत् है। सत् है अर्थात् है, इतनी बात है वहाँ। यहाँ त्रिकाल है, यह बात नहीं है। बहुत आगे जाना पड़ेगा अभी, ऐसे ऊपर-ऊपर से नहीं चलेगा। इसने वहाँ और गोला मारा हो न! वहाँ आंकडिया में। वह ऐसा है और वैसा है। किसी का पढ़-पढ़कर पुस्तक में लिखा हो। भीखाभाई! भाई! यह तो मार्ग... आहाहा! गजब बात! बापू! सत् स्वरूप को समझना है। उसकी जिस प्रकार से मर्यादा और स्थिति है, उस प्रकार से (समझना)। समझ में आया? महान प्रयत्न-पुरुषार्थ अपेक्षित है।

कहते हैं, भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु, उसे पर्यायरूप से कहने पर नास्तिरूप है। पर्याय तो एक समय है न? इस अपेक्षा से उसे नास्ति कहा। **ज्ञान को वस्तुरूप से विचारने पर ज्ञान अस्तिरूप है।** एक अस्तित्व। एकरूप रहे, उसे अस्ति कहते हैं, ऐसा कहते हैं। पिण्ड ऐसा का ऐसा रहता है। ऐसा का ऐसा भगवान ध्रुव ऐसा का ऐसा एक... एक... एक... ऐसा... ऐसा... ऐसा... यह अस्ति। समझ में आया? आहाहा! धर्म में यह किस काम का परन्तु हमारे? ऐसी सब बातें कीं, लो! परन्तु धर्म वह कहाँ होता है? धर्म की दशा वह गुण है, पर्याय है या द्रव्य है?

एक व्यक्ति को पूछा कि यह सामायिक द्रव्य कहलाये, गुण कहलाये या पर्याय कहलाये? (तो जवाब दिया), मेरे गुरु ने सिखाया नहीं। लो! परन्तु मुझे भान नहीं, ऐसा कह न अब। यह बात तो वहाँ भी कहाँ थी उसके पास? परन्तु यह तो पगड़ी छोड़कर साधु के वेश पहने। फिर कहे, तुम त्रस हो या स्थावर? ऐसा मैंने प्रश्न पूछा। ऐसा त्रस, स्थावर मुझे गुरु ने सिखाया नहीं। गजब बात, बापू! साधुपना ले लिया। एक व्यक्ति को सामायिक का पूछा। श्रावक को पूछा। वह तो साधु नाम धरावे। सामायिक क्या होगी? सामायिक द्रव्य होगी, गुण या पर्याय? सामायिक द्रव्य, गुण, पर्याय और क्या होगी? भान नहीं होता। सामायिक क्या कहलाती है? कहाँ रहती होगी? कितने काल की होगी? भगवान जाने! सामायिक तो वीतराग पर्यायरूप अवस्था, वह सामायिक है। द्रव्य तो त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान को वस्तुस्वरूप से (कहने पर) वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... अर्थात् द्रव्य... ज्ञायक... ज्ञायक... **विचारने पर ज्ञान अस्तिरूप है।** तीन प्रश्न का उत्तर हुआ। **चौथे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान को पर्यायमात्र से कहने पर ज्ञान अनित्य है,...** बदलता है न? अनित्य है न? कायम रहता नहीं, अनित्य है। **ज्ञान को पर्यायमात्र से कहने पर...** वस्तु आत्मा ज्ञानरूप से अनित्य है, पर्यायरूप से एक समय की अवस्थारूप से। कहो, और पर्याय अनित्य?

एक व्यक्ति को कहा कि, पर्याय अनित्य है। सुनना नहीं, भागो! हम तो ऐसा सुनते आये थे कि महाराज कुछ आत्मा की बात करते हैं। २००० के वर्ष में (एक) वेदान्ती बाबा था। (उसे) ऐसा कि आत्मा की अध्यात्म की बात करते हैं तो कैसी होगी? रात्रि में चलती थी मौके से पर्याय। पर्याय? आत्मा को अनित्यपना? भाग, उठ। इसलिए (उसे) मानो महाराज आत्मा की अध्यात्म की बात करते हैं। और इसलिए सब हमारी वेदान्त जैसी बात है, बहुत लोग ऐसा मानते हैं। जैन में वस्तु ऐसी है और जैन वाड़ावालों को खबर नहीं। समझ में आया? हमारे तो कर्म से होता है, हम कर्म से भटकते हैं, ऐसा कहते हैं। परन्तु तेरी पर्याय में भूल है, उससे तू भटकता है, सुन न! कर्म-बर्म कौन भटकावे तुझे? समझ में आया?

यह पर्याय से देखें तो **अनित्य है, वस्तुमात्र से कहने पर ज्ञान नित्य है।** ज्ञान स्वरूप से भगवान नित्य ऐसा का ऐसा है। वस्तु से नित्य ज्ञानपना है। वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... पर्याय एक समय की, वह अनित्य है। समझ में आया? एक समय की, दूसरे समय नहीं रहती। इसलिए एक समय की पर्याय की अपेक्षा से उसे अनित्य कहा गया है।

ऐसा प्रश्न करने पर ऐसा समाधान करना,... ऐसा कहा न? यह चार प्रश्न कहे न? ऐसे प्रश्न उठें तो **ऐसा प्रश्न करने पर ऐसा समाधान करना, स्याद्वाद इसका नाम है।** लो! समझ में आया? वेदान्तवालों के साथ, बौद्ध के साथ, बहुत अधिक के साथ (बातें हुई है)। अभी (कहते हैं न), महावीर ने ऐसा कहा था, महावीर ने ऐसा कहा था, एकरूप वस्तु है। ईशु और महावीर और सबमें एकरूप वस्तु है। एकरूप अर्थात्

क्या ? समझ में आया ? ईशु और महावीर का आत्मा भिन्न है या एक है ? और उस आत्मा में भी पर्याय और द्रव्य दो है, या सब एक है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यह लगा देते हैं न सब आत्मा एक है, इसलिए सब एक है। यह तो भाई भी ऐसा कहते थे। वे नहीं थे ? रमण महर्षि। उनकी एक पुस्तक मैंने पढ़ी थी (संवत्) १९९६ के वर्ष में। वे ऐसा कहते हैं, मैं करता हूँ, यह गाँधीजी करते है और गाँधीजी करते हैं, वह मैं करता हूँ। क्योंकि सभी आत्मा एक है न, ठीक! क्योंकि मूल चीज़ की खबर नहीं होती, इसलिए फिर गड़बड़ उठे बिना रहती ही नहीं। कहो, समझ में आया ? ऐसा लिखा है, उनका बड़ा लेख है। बड़ी पुस्तक है, पुस्तक है न ? वहाँ अमरेली (संवत्) १९९६ के वर्ष में पढ़ा है। गप्प ही गप्प। वस्तु को जाने बिना लोगों को... ओहो! रमण महर्षि, वह कि अरविन्द घोष, वह कहे ईशु, ऐसे सब बहुत हैं। यह जैन में भी गड़बड़ का पार नहीं होता। जरा कोई कुछ दया के लिये जाये तो कहे, ईशु का अवतार है। लो! परन्तु तू क्या कहता है ? कुछ खबर नहीं होती। ऐसे के ऐसे लोग। कुछ खबर नहीं होती। समझ में आया ?

यह चार प्रश्न इस प्रकार यदि उठे तो उनका समाधान इस प्रकार से करना, इसका नाम स्याद्वाद कहा जाता है। अपेक्षा से इस वस्तु को सिद्ध करने की यह पद्धति है। वस्तु में ऐसा स्वरूप है। समझ में आया ? इसके अतिरिक्त एकान्त माने तो वह स्याद्वाद है नहीं और वस्तु ऐसी नहीं है। **वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है...** देखो! है न ? **ऐसा प्रश्न करने पर ऐसा समाधान करना, स्याद्वाद इसका नाम है। वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है तथा इस प्रकार साधनेपर वस्तुमात्र सधती है।** ऐसा कहा वापस। इसी प्रकार से साधने से, सिद्ध करने से वस्तु जैसी है, उस प्रकार से सधती है। उसी प्रकार से वस्तु सिद्ध हो सकती है, अर्थात् वस्तु की साबिती होती है, दूसरे प्रकार से साबिती नहीं हो सकती।

जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव वस्तु को वस्तुरूप है तथा वही वस्तु पर्यायरूप है, ऐसा नहीं मानते हैं,... देखो! समझ में आया ? वस्तु वस्तुरूप है, वही वस्तु पर्यायरूप है। दो (अंश है) ? हाँ, दो है। जो वस्तु आत्मा है, वह वस्तुरूप भी है, वही वस्तु पर्यायरूप

भी है। अवस्थारूप भी वही वस्तु है। वह अवस्था किसी की और वस्तु किसी की, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह स्वयं ध्रुव है, वही पर्यायरूप से वर्तमान अंशरूप है। दो होकर पूरी वस्तु है। प्रवीणभाई!

वही वस्तु पर्यायरूप है, ऐसा नहीं मानते हैं,... अज्ञानी ऐसा मानते नहीं। यह और क्या? ऐसा कि बदले... बदले वह सब कर्म, वस्तु नहीं। बदलती है, वह सब प्रकृतियों का स्वभाव है। कहते हैं न वे सांख्य? सब प्रकृति का, बदले वह सब प्रकृति। आत्मा बदले-बदले नहीं। ऐसा नहीं है। आत्मा पर्याय से पलटता है और वस्तु वह का वह रहता है। वह वस्तु ऐसी है, भाई! तुझे काम करना है? तू ऐसा कहे कि हम अधर्म करते हैं। अब मुझे धर्म करना है, लो! इसमें सब प्रश्न ऐसे उठें। समझ में आया? इसका अर्थ हुआ कि मुझे धर्म करना है न? अच्छा करना है, ऐसा न? तब इसका अर्थ कि इसकी दशा में अच्छा नहीं। दशा में अच्छा नहीं या वस्तु में अच्छा नहीं? यदि वस्तु में अच्छा नहीं, ऐसा हो तो वापस वह बुरा पलटाना है, बुरा निकाल डालना है। बुरा निकालकर अच्छा करना है, तो वह तो अवस्था में बुरा निकाले और अच्छा हो, वस्तु में है, उसमें कहीं? समझ में आया? तो वस्तु वस्तुरूप से निर्णय किये बिना बुरा निकालना है और अच्छा होना है, वह सब पर्याय में होता है। बराबर है?

यहाँ कहा था न? ज्ञान ज्ञेय का कारण, पर्यायरूप पर्याय है, उसमें अपेक्षा है, वस्तु में अपेक्षा नहीं। पर को जानना आदि ज्ञान की पर्याय में है, वस्तु में वह नहीं। इस प्रकार वस्तु को निर्णय किये बिना मुझे धर्म करना है, ऐसा कहाँ से सिद्ध होगा? निरपेक्ष वस्तु वह है, उसका लक्ष्य किये बिना, पर्याय में उसके आश्रय बिना धर्म की पर्याय प्रगट किस प्रकार होगी? समझ में आया? ऐसे एकरूप है, उसका आश्रय किये बिना पर्याय में अनेकपने की पर्याय प्रगट किस प्रकार होगी? नित्य है, उसमें इसका आश्रय किये बिना अनित्य की पर्याय किस प्रकार प्रगट होगी? समझ में आया? पर्याय एक समय की और ध्रुव त्रिकाल है। इसलिए वह अस्तिरूप है। उस अस्ति का आश्रय करना। इससे वह पर्याय (भले) नास्ति (कही), त्रिकाल नहीं रहती परन्तु ऐसी पर्याय के आश्रय से प्रगट होती है। इसलिए चारों बोल (ऐसे हैं)। जिसे धर्म करना हो, उसे इस प्रकार से वस्तु उसमें आ जाती है।

सर्वथा वस्तुरूप मानते हैं अथवा सर्वथा पर्यायमात्र मानते हैं, वे जीव एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। लो! वस्तु एकान्त सर्वथा एक ही रूप है या नित्य ही है या ध्रुव ही है और उसे अनित्य या अनेक नहीं, ऐसा माननेवाले सर्वथा वस्तु, वस्तुरूप से माने और सर्वथा पर्याय पर्यायरूप से माने परन्तु दो सहित पूरी चीज़ नहीं मानते, वे जीव एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। बड़े पढ़े हुए हों, बड़े चाहे जैसे बड़े महन्त नाम धराते हों परन्तु पर्याय और द्रव्य दो होकर वस्तु, ऐसा न माने वे एकान्त मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। उन्हें धर्म-बर्म होता नहीं। भले वे निर्विकल्प (की) बातें करे, अनुभव ऐसा और अमुक ऐसा और फलाना ऐसा परन्तु उन्हें कुछ धर्म होता नहीं। वह क्यों? यह बात विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल १३, सोमवार, दिनांक-०६-१२-१९६५, कलश-२४८, प्रवचन-२६१

यह कलश टीका, स्याद्वाद अधिकार। उसमें स्याद्वाद अधिकार में दूसरा कलश है। यहाँ तक आया है, देखो! २१८ पृष्ठ में नीचे आया। **सर्वथा वस्तुरूप मानते हैं...** नीचे से चौथी लाईन। वस्तु को सर्वथा वस्तुरूप—द्रव्यरूप मानते हैं अथवा सर्वथा पर्याय (रूप) मानते हैं। **वे जीव एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं।** समझ में आया? पदार्थ हैं, वे पर के सम्बन्धरहित द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। अपना स्वभाव द्रव्य अर्थात् कायम ध्रुवरूप रहना, पर्याय अर्थात् उसका परिणमन। यह वस्तु का द्रव्य-पर्यायरूप (स्वरूप है)। उसमें सर्वथा द्रव्यरूप माने तो एकान्त मिथ्यात्व है। सर्वथा एक अवस्थारूप ही माने तो भी एकान्त मिथ्यात्व है।

कारण कि वस्तुमात्र को माने बिना.... वस्तु... वस्तुस्वरूप है। द्रव्यरूप से त्रिकाल ध्रुव है, उसे माने बिना **पर्यायमात्र के मानने पर पर्यायमात्र भी नहीं सधती है;...** समझ में आया इसमें? भीखाभाई! वस्तुमात्र को माने बिना पर्याय एक अंशमात्र की अवस्थामात्र मानने से पर्यायमात्र भी सधती नहीं। वह पर्याय सिद्ध नहीं होती। वस्तु पूरी है, उसे माने बिना अकेली पर्याय मानने जाए तो वह पर्याय सिद्ध नहीं होती। किसकी पर्याय? किसका अंश? वस्तु को सिद्ध किये बिना अंश जो पर्याय, वह साबित नहीं होती। समझ में आया? वह पर्याय किसी के कारण से नहीं, उसे स्वयं के कारण से है, **वहाँ अनेक प्रकार साधन-बाधन है,....** युक्तियाँ सिद्ध करने के लिये (भी है)। और विरोध की युक्तियाँ भी है। **अवसर पाकर कहेंगे।** इतनी बात समेट ली है।

अथवा पर्यायरूप माने बिना वस्तुमात्र मानने पर.... अवस्था न माने और अकेली वस्तु ही माने (वहाँ) **वस्तुमात्र भी नहीं सधती है।** अंश के बिना अंशी त्रिकाल कौन है, यह भी सिद्ध नहीं हो सकता, साबित नहीं हो सकता। **वहाँ भी अनेक युक्तियाँ हैं। अवसर पाकर कहेंगे।** इतना यहाँ कहा।

इसी बीच कोई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञान को पर्यायरूप मानता है,... अब यहाँ से बात लेना है। 'ज्ञान' शब्द से आत्मा ज्ञानस्वरूप ध्रुव ज्ञान त्रिकाल। उस ज्ञान को

पर्यायरूप माने, अवस्थारूप माने, **वस्तुरूप नहीं मानता है,...** वस्तु ध्रुव है। त्रिकाल ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वज्ञानरूप त्रिकाल है, उसे न माने। **ऐसा मानता हुआ ज्ञान को ज्ञेय का सहारे का मानता है,...** ज्ञान को ज्ञेय का अवलम्बन निमित्त है, इसलिए उसके सहारे का, उसके अवलम्बन का ही अकेला ज्ञान है, ऐसा मानता है। ज्ञान की पर्याय पर की अपेक्षा रखती है कि जैसा पर है, वैसी यहाँ जानने की पर्याय परिणमती है। ऐसा परिणमने में पर की अपेक्षा है, इतना न मानकर, उस पर के सहारे का ही ज्ञान मानता है। वह पर्याय पर से हुई है, ऐसा मानता है।

'परेणजायते पर्याय:' एक शब्द आया था। खबर है? कहो, समझ में आया? जब यहाँ बहुत सिद्ध करने लगा कि पर्याय पर्याय से है; पर्याय पर से नहीं। सामने ऐसी भी दलील आयी कि 'परेणजायते पर्याय:' पण्डितों की ओर से, हों! पर से हो वह पर्याय-ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया?

ऐसा मानता हुआ ज्ञान को ज्ञेय का सहारे का मानता है,... भगवान आत्मा की वर्तमान एक समय की पर्याय, जिसे ज्ञेयभेद से, ज्ञेय के भेद से, ज्ञेय के प्रकार से ज्ञान का परिणमना पर्याय में अपने में अपने से होता है। समझ में आया? वस्तु में ऐसा नहीं है, वस्तु तो एकरूप ध्रुव है। ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य वस्तु के भेद से, प्रकार से, अनेकता से ज्ञान की पर्याय उसरूप से, ज्ञेयभेद से भेदरूप परिणमे, इतनी उसकी मर्यादा है। यहाँ तो कहते हैं कि वह ज्ञान की पर्याय पर के सहारे और ऐसा ही ज्ञान यहाँ होता है, इसलिए वह पर्याय ही उसकी है। उसमें ही मैं (पर में) चला गया हूँ, उसरूप ही मैं हूँ। समझ में आया? अपनी पर्याय पर में अर्पित कर दी है। स्वयं तत्रूप नहीं रहा। यह यहाँ प्रश्न है न? अतत् है, पर से अतत् है। उसके बदले मैं पर से ही तत् हूँ। पर से ही तत् हूँ, मेरी पर्याय पर से ही तत् है—ऐसा (मानता है)। कर्म है तो विकार की पर्याय होती है न? पर से तत् है न पर्याय? क्या विकार पर्याय कहीं अपने द्रव्य में से आती है? विकारी पर्याय विकार है, वह कहीं द्रव्य में से आती है? विकार कर्म के निमित्त में परिणमता है, इसलिए उसरूप पर्याय है—ऐसा माननेवाले पर्याय को वास्तविकरूप से नहीं मानते। मेरी पर्याय भिन्न है, ऐसा वह नहीं मानते। समझ में आया?

उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि इस प्रकार तो एकान्तरूप ज्ञान सधता

नहीं। वह ज्ञान साधा नहीं जा सकेगा, ज्ञान का अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकेगा। **इसलिए ज्ञान अपने सहारे का है, ऐसा कहते हैं....** इस प्रकार ज्ञान अपने सहारे का, अपने अवलम्बन का, अपने आश्रय का है, यह बात सिद्ध करते हैं। यहाँ तक तो सब बात अमुक ली है। अब श्लोक का शब्द शुरु होता है। यहाँ तक तो पूरी न्याय की बात सिद्ध की है।

अब (कहते हैं), '**पशोः ज्ञानं सीदति**' यहाँ से बात उठायी, लो! पश्चात् '**बाह्यार्थैः**' बाद में डालेंगे। '**पशोः ज्ञानं सीदति**'। '**पशोः**' पशु, संस्कृत में पशु का अर्थ किया है। '**पश्यते, बध्यते कर्मे इति पशुः**' अज्ञानी। '**पशुः पश्यते, बध्यते इति अज्ञानी**' अज्ञानी कर्म से बँधता है, क्योंकि उसकी पर्याय, भेद द्वारा, अनेक भेदों द्वारा ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमने से, वह ज्ञान की पर्याय मानो पर में चली गयी, ऐसा माननेवाले अज्ञानी नये अज्ञान आदि कर्म से बँधते हैं, इसलिए उसे पशु कहने में आया है। समझ में आया?

'पशोः ज्ञानं सीदति' ('पशोः') एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जैसा मानता है कि ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है.... उसमें पहले से सिद्ध कर गये थे। समझ में आया? कि ज्ञान फिर **पर्यायरूप कहने पर स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ...** पहले से आठवीं लाईन है न? ज्ञानपर्यायरूप कहने से स्वज्ञेय को जाने और परज्ञेय को जानता है। समझ में आया? ज्ञेय पूरी चीज़ स्ववस्तु और परवस्तु। उसे वर्तमान अपनी एक समय की पर्याय उस स्वज्ञेय को और परज्ञेय को जाननेरूप पर्याय एक समय की परिणमती है। समझ में आया?

(यह) स्याद्वाद अधिकार है, सूक्ष्म है। एक समय की पर्याय, स्वज्ञेय पूरा, उसको जाननेरूप परिणमे और परज्ञेय पूरा, उसको जाननेरूप एक समय की पर्याय परिणमे, (इस-प्रकार से परिणमे), तथापि वह पर्याय द्रव्यरूप नहीं होती तथा परद्रव्यरूप नहीं होती। स्वद्रव्यरूप भी नहीं होती और परद्रव्यरूप भी नहीं होती। समझ में आया? यह पहले कह गये थे। देखो! कहा है न? **पर्यायरूप कहने पर स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ ज्ञेय की आकृति-प्रतिबिम्बरूप परिणमता है जो ज्ञान।** यह पर्याय है। द्रव्य की ज्ञानपर्याय, ज्ञान गुण त्रिकाल है, उसकी एक समय की पर्याय स्वज्ञेय पूरे रूप

को जाननेरूप परिणमे, परज्ञेय पूरे को जाननेरूप परिणमे सही। उसका जैसा स्वरूप स्वज्ञेय का और पर का, ऐसे जाननेरूप पर्याय परिणमे सही। उसरूप पर्यायरूप कहने से स्वज्ञेय, परज्ञेय को जानते हुए ज्ञान परिणमे, इतना कहने में आता है। **इसलिए ज्ञान को पर्यायरूप कहने पर ज्ञान ज्ञेय के सहारे का है।** ऐसा कहने में आता है, ऐसा पहले में कहा था। यह बात तो सच्ची है।

यहाँ वापस कहते हैं, अज्ञानी '**पशोः सीदति**' पशु। ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है, इतना इसमें रखा। समझ में आया? नहीं तो ज्ञान की एक समय की पर्याय स्वज्ञेय और परज्ञेय को जाननेरूप परिणमे, इस अपेक्षा से, ज्ञेय का अवलम्बन है, इस अपेक्षा से पर के सहारे का है, ऐसा कहने में आता है। यह तो उचित है, कहते हैं। यह तो पर्याय का ऐसा कहना-जानना उचित है परन्तु उस पर्याय में स्वज्ञेय पूरा पड़ा रहा। पर्यायमात्र मानता है, ऐसा लेना है न यहाँ? **ज्ञान को पर्यायरूप मानता है....** तीसरी लाईन। २१९ (पृष्ठ पर)। ज्ञान को अकेला पर्यायरूप मानता है। वह पर्याय भी कैसी? कि ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है, ऐसा मानता है। समझ में आया? स्वज्ञेय पड़ा रहा। क्योंकि स्वद्रव्य को तो मानता नहीं, पर्याय को मानता है। अब उस पर्याय में भी पर के सहारे से पर्याय को मानता है। इसलिए उसकी पर्याय भी पर में डूब गयी। समझ में आया?

ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है, उसमें—सच्ची बात में स्वज्ञेय-परज्ञेय का ज्ञान था। समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय, वह पर्याय कहने से वह स्वज्ञेय पूरा और परज्ञेय, उसे जाननेरूप पर्याय परिणमे, ऐसी अपेक्षा से ज्ञान की पर्याय ज्ञेय-पर सहारे की अवलम्बनवाली है, ऐसा कहा जाता है। यह बात इस प्रकार से तो उचित है, कहते हैं। परन्तु इस ज्ञान की पर्याय को मात्र परज्ञेय के सहारे में मानना और परज्ञेय है तो ज्ञान पर्याय हुई है, ऐसा मानना, वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसा निवृत्त हो, वह ऐसी बातें समझे, नहीं? इसकी अपेक्षा तो पूजा, भक्ति, व्रत करे, वह कैसा? एकदम सरल। पूजा, भक्ति, दान करे, रोटियाँ कम करना और खाना... जाओ! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु ऐसे-ऐसे नजर में उसे द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य...

एकरूप और एक समय की पर्याय, वह वस्तु का स्वरूप है। द्रव्य है, वह तो निर्विकल्प अभेद एकरूप वस्तु है। पर्याय जो है एक समय की, एक समय की पर्याय, उसे पर्यायरूप से क्यों कहा?—कि वह पर्याय स्वज्ञेय और परज्ञेय का जो स्वरूप है, वैसा वह ज्ञान की पर्याय परिणमती है। परिणमती है अर्थात् उसे ज्ञेय के सहारे की (कहने में आया है)। ज्ञानपर्याय है, इस अपेक्षा से ज्ञेय हुआ न पर? इस अपेक्षा से ज्ञेय के सहारे की पर्याय कहलाती है। यह तो वस्तु की स्थिति है, परन्तु यह भगवान ज्ञान वस्तु जो त्रिकाल है, उसकी एक समय की पर्याय ही मानना, वस्तु को नहीं मानना और एक समय की पर्याय भी परज्ञेय के सहारे की है, इतना बदला। समझ में आया? वह पर्याय मात्र परज्ञेय है तो होती है। ऐसा नीचे दृष्टान्त देंगे। घट है तो घटज्ञान होता है, पट है तो पटज्ञान होता है, (ऐसा) प्रत्यक्ष है। परन्तु वह ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है तो ज्ञानरूप से पर्याय परिणमती है, तब वह घटरूप ज्ञान हुआ, उसे घटरूप ज्ञान कहा जाता है, व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया? स्याद्वाद अधिकार में जैनदर्शन के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं होती। इसलिए यह बात सिद्ध करना चाहते हैं। समझ में आया?

ज्ञान परज्ञेय के सहारे कहा है, सो ऐसा मानने पर.... इस ओर अपने चलता है वहाँ **ज्ञान अर्थात् शुद्ध जीव की सत्ता नष्ट होती है... 'सीदति'** छिदता है। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति चैतन्य। यहाँ 'ज्ञान' शब्द से ज्ञानप्रधान बात है। आत्मा भले लो परन्तु ज्ञानप्रधान बात है। यह ज्ञान शाश्वत् जो ध्रुव, द्रव्य अर्थात् ध्रुव, वह ध्रुव वस्तु ज्ञान और एक समय की पर्याय। वह एक समय की पर्याय, पर्यायमात्र से यदि मानना हो तो वह पर्याय इस प्रकार से मानी जाती है कि ज्ञेय स्वज्ञेय और पर के सहारे की पर्याय मानना, वह तो अपेक्षा से पर के अवलम्बनवाली पर्याय कही गयी, परन्तु अकेली ही पर्याय मानना और द्रव्य अर्थात् ध्रुवज्ञान नहीं मानना और उस पर्याय को अकेले परज्ञेय के सहारे का मानना, (उसमें जीव की सत्ता नष्ट होती है)। समझ में आया?

ज्ञान अर्थात् शुद्ध जीव की सत्ता नष्ट होती है अर्थात् अस्तित्वपना वस्तुरूपता को नहीं पाता है। एक समय की पर्याय भी सिद्ध नहीं होती और वस्तु भी सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? क्योंकि पर के कारण पर्याय हुई। आत्मा एक वस्तु है, त्रिकाल

ज्ञान ध्रुव है, उससे पर्याय हुई, ऐसी तो स्वज्ञेय की पर्याय हुई, वह तो इसने जाना नहीं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि एकान्तवादी के कथनानुसार वस्तु का अभाव सधता है, वस्तुपना नहीं सधता। ज्ञानरूप वस्तु को एक समयमात्र की पर्याय साधने जाने से वह पर्याय भी सिद्ध नहीं होती क्योंकि वह पर्याय किसकी? और पर्याय कैसे परिणमी?— कि पर के सहारे की पर्याय। पर था तो हुई, घट था तो ज्ञान हुआ, पट था तो ज्ञान हुआ, यह शब्द है तो यहाँ ज्ञान होता है। समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा इनकार करते हैं यहाँ। यह अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है परन्तु अकेले पर के सहारे का ज्ञान (मानो तो) पूरा ज्ञेय (अर्थात्) ज्ञान रह गया, पूरा ज्ञानरूपी ज्ञेय रह गया। उसकी पर्याय, यह पर्याय अकेली मानने जाने पर पूरा ज्ञेय उड़ जाता है और यह पर्याय पर सहारे की ही मानने में आवे तो यह पर्याय भी सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? गुजराती समझ में आती है न?

वस्तुपना नहीं सधता। ज्ञान ध्रुव ही सधता नहीं और उसकी पर्याय भी आंशिक जो स्वतन्त्र है, (वह भी सधती नहीं)। है पर्याय पर के अवलम्बन की अपेक्षावाली और स्व के अवलम्बन की अपेक्षावाली। स्व अर्थात् ज्ञेय पूरा और पर। उसके अवलम्बन से है, परन्तु उसके बदले अकेली पर्याय सिद्ध करने जाए, वहाँ स्वज्ञेय नहीं आता और परज्ञेय के सहारे की पर्याय अकेली हो गयी। इसलिए पर्याय किसकी, ऐसा कुछ सिद्ध नहीं होता। समझ में आया?

कारण कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है। कैसा है ज्ञान? अब आया। '**बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्**' पशु लेकर लिया पहले। '**पशोः ज्ञानं सीदति**' यह दूसरे बोल का पहला शब्द लिया। दूसरी लाईन है न? '**पशोः ज्ञानं सीदति**' दूसरा क्या कहा जाए? (श्लोक की) दूसरी लाईन। '**पशोः ज्ञानं सीदति**' अज्ञानी का ज्ञान '**सीदति**' अर्थात् नाश पा जाता है। ऐसा पहले अर्थ किया। पर्यायमात्र मानने से, उस पर्याय को अकेले परज्ञेय के सहारे का मानने से वह वस्तु ज्ञानस्वरूप, वह '**सीदति**' अर्थात् नाश हो जाती है।

अज्ञानी का ज्ञान तत्-अतत् के कारण से तत्पना रहा नहीं। उसे अतत् है, उसके ही कारण से यह सब हुआ, ऐसा मानकर ज्ञान का नाश हो जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह शब्द पड़े हैं तो यहाँ ज्ञान होता है, लो! देखो! ज्ञान तो ऐसा होता है या नहीं? ऐसा होने पर भी, इसके सहारे की अपेक्षा भले हो परन्तु वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय, ज्ञेय पूरा जो ज्ञान है, उसका परिणमन परिणमते स्व और पर की अपेक्षा रखकर वह परिणमती है। उसके बदले अकेले पर की अपेक्षा रखकर पर्याय परिणमती है, (ऐसा मानने से) उस एकान्त मिथ्यात्व में कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? यह तो सब लॉजिक की बात है।

इस प्रकार **एकान्तवादी के कथनानुसार वस्तु का अभाव सधता है, वस्तुपना नहीं सधता। कारण कि मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है। कैसा है ज्ञान? 'बाह्यार्थैः परिपीतं' ज्ञेय वस्तु के द्वारा सर्व प्रकार निगला गया है।** क्या कहा? एक समय की पर्याय बाह्य पदार्थ जैसा है, वैसा यहाँ परिणमती है, इसलिए मानो बाह्य अर्थ से ही यह हुआ है, ऐसा मानकर वह ज्ञान की पर्याय बाह्य अर्थ पी गयी। ज्ञान की पर्याय पररूप हो गयी। समझ में आया? यह शब्द पड़ता है तो ज्ञान हुआ, इसलिए ज्ञान की पर्याय शब्दरूप हो गयी। उसके कारण ज्ञान हुआ कहते हैं न? समझ में आया या नहीं?

जिसमें ज्ञान शक्ति पूरी ध्रुव है, उसमें से पर्याय हुई। उसमें भले इस प्रकार से हो परन्तु शक्ति ध्रुव है, उसमें से आयी है या नहीं यह? कि वह पर्याय उसके कारण से आयी है? शब्द के कारण आयी है? घट के कारण आयी है? पट के कारण आयी है? समझ में आया? जमुभाई! और यह वापस। यहाँ पर्याय जो एक समय की है, उसे जैसे निमित्त सम्बन्धी का ज्ञान होता है, इससे ऐसा ही मानता है कि यह ज्ञान की पर्याय उसके कारण से हुई है। इसलिए ज्ञान की पर्याय द्रव्य पी गया। ज्ञान की पर्याय... आया न? **'बाह्यार्थैः' ज्ञेय वस्तु के द्वारा... 'परिपीतं' सर्व प्रकार....** 'परि' है न? परि अर्थात् सर्व प्रकार से, 'पीतम्' अर्थात् निगल गया। बाह्य पदार्थ इसकी पर्याय निगल गया। एक समय की पर्याय (निगल गया)।

मुझे तो ऐसे भगवान के दर्शन हुए, इसलिए उसके कारण यह ज्ञान की पर्याय

हुई, लो! ऐसी हो पर्याय या दूसरी हो वहाँ? वहाँ इस ज्ञान की पर्याय में क्या आवे ?— कि मैं भगवान को जानता हूँ। ऐसी पर्याय होती है या नहीं ? उस पर्याय में उसका कारण हुआ या इसके कारण हुई या नहीं ? पर्यायमात्र माननेवाला, ध्रुवपने में से द्रवती है, तब वह भले निमित्त हो, ऐसा यहाँ ज्ञान हो—ऐसा नहीं मानता, अकेला पर्यायमात्र माननेवाला उसके कारण से ज्ञान होता है, (ऐसा मानता है) इसलिए वह पर्याय पर पी गया। समझ में आया ? पर्याय से खाली हो गया, इसलिए वस्तु को भी नहीं माना और उसकी पर्याय भी उसे सिद्ध नहीं होती। पहले कहा था न ? पर्याय भी उसे सिद्ध नहीं होती, ऐसा कहा न ? **वस्तुमात्र को माने बिना पर्यायमात्र के मानने पर पर्यायमात्र भी नहीं सधती है;...** उसे पर्याय भी सिद्ध नहीं होती। समझ में आया ? किसकी पर्याय पर को जाननेरूप परिणमी ? यह द्रव्य तो माना नहीं, वस्तु तो मानी नहीं और पर्याय पर जैसा है, वैसा यहाँ भेदज्ञान होता है। भेद अर्थात् जैसा प्रकार वैसा। इसलिए पर के सहारे का माननेवाला, नहीं उसे वस्तु की श्रद्धा, नहीं उसे पर्याय उसकी जो कहना चाहते हैं, उसकी उस रूप से सिद्ध नहीं होती। समझ में आया ? भारी कठिन काम। आता है न यह ? 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचनभेद भ्रम भारी, ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी, स्वरूपा पररूपा भासी।'

यह (संवत्) १९८६ में यह बात हुई थी। ८६ में भावनगर एक साधु आये थे न ? मुनिन्द्रसागर थे, भ्रष्ट। ८६ के (वर्ष की) बात है, ८६ के (वर्ष)। ३६ वर्ष हुए। १४ और २२=३६। तब उसमें यह रखा था उस दिन। उसे ऐसा कि मुँहपत्ती थी न ? वेश उसका था न ? इसलिए उसे ऐसा हो गया कि देखो! यह मूर्ति को उत्थापते हैं। मैंने तो ऐसा कहा कि भाई! ज्ञेय है, उस ज्ञेय के कारण ज्ञान नहीं है, भाई! इस स्तम्भ का दृष्टान्त वहाँ दिया था। यह तो ८६ के (वर्ष की) बात है। चैत्र महीने की। संवत १९८६। मुनिन्द्रसागर एक भ्रष्ट (साधु) नहीं थे ? बहुत वर्ष हो गये।

मुमुक्षु : वे लोग तीनों आये थे तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तीन वे आये तब। यह बाहर व्याख्यान हुआ था। वे अपने गुजरी... क्या कहलाता है ? दशाश्रीमाली का वण्डा, उसमें। वह दशाश्रीमाली की

भोजनशाला। वहाँ चला था और उसमें भगवानजीभाई थे। भगवानजी वकील कच्छी। फिर उसमें कहा कि भाई! ज्ञेय 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी' इस ज्ञान की पर्याय में स्व-पर ज्ञात हो, यह तो शक्ति उसकी है, पर के कारण वह पर्याय होती है, (ऐसा नहीं है)। यह भगवान है, इसलिए पर्याय हुई; यह अरिहन्त है, इसलिए पर्याय हुई; ये शब्द हैं, इसलिए पर्याय हुई—यह तो ज्ञेय के दो प्रकार हैं, स्वज्ञेय और पर; परन्तु पर्याय तो स्वयं के कारण से हुई है, पर के कारण होती नहीं। (तो कहे) अरे! ऐसा नहीं होता। भगवानजीभाई कच्छी थे। तुम समझते नहीं कि किस अपेक्षा से बात चलती है। मूर्ति की खबर थी, उस समय खबर थी, श्रद्धा सब थी।

यहाँ तो आत्मा की ज्ञानपर्याय, निमित्त है; इसलिए यहाँ होती है, ऐसा नहीं है। वापस किसकी मूर्ति को स्थापित किया? और कहते हैं वे तो। वह तो उसके कारण से वहाँ होता है, परन्तु पर्याय जो ज्ञान की होती है, वह तो स्वयं से होती है, तब उसका अवलम्बन निमित्त का है, ऐसा कहने में आता है। यह तो कहते हैं कि जो ज्ञान की पर्याय है, उसके कारण ही हुई है। बाह्य अर्थ ज्ञानपर्याय पी गया। बाह्यपदार्थ ही ज्ञान को पी गया, ज्ञान कुछ रहा नहीं (उसमें) उसकी ज्ञानपर्याय भी सिद्ध नहीं हुई। समझ में आया?

ज्ञान वस्तु नहीं है, ज्ञेय से है। है न? **ज्ञान वस्तु नहीं है,...** यह तो **ज्ञेय से है...** ज्ञेय से ही पर्याय हुई, ऐसा। यह पर्याय जो हुई, वह ज्ञेय से ही पर्याय हुई। स्वज्ञेय तो पूरा माना नहीं। पर्यायमात्र मानना है, द्रव्य तो मानना नहीं। इसलिए पर्याय एक समय की जो है, वह ज्ञेय से ही है, ऐसा अज्ञानी मानता है। इसलिए उसकी पर्याय भी सिद्ध नहीं हो सकती। द्रव्य तो मानता नहीं, पर्याय (भी) सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? क्योंकि भिन्न-भिन्न पर्याय होती है और भिन्न-भिन्न निमित्त होते हैं तो यह पर्याय जितना माननेवाला, यह किसकी पर्याय? यह तो उसे रहा नहीं, द्रव्य तो कुछ रहा नहीं और यह पर्याय पर के सहारे की मानी अर्थात् ज्ञेय से मानी। इसलिए उसकी पर्याय सिद्ध नहीं होती। समझ में आया?

सो भी उसी क्षण उपजता है, उसी क्षण विनशता है। देखो! यह ज्ञान की पर्याय

भी उसी क्षण में उत्पन्न हो, उसी क्षण में विनाश होती है **जिस प्रकार घटज्ञान घट के सद्भाव में है।** देखो! घड़ा है तो यहाँ घड़े का ज्ञान है और घड़ा नहीं होवे तो घड़े का ज्ञान रहेगा नहीं। **प्रतीति इस प्रकार होती है कि जो घट है तो घटज्ञान है। जब घट नहीं था, तब घटज्ञान नहीं था।** ज्ञेय से मानता है न अकेला? घट है तो घटज्ञान है, घट नहीं तो घटज्ञान नहीं। वहाँ दूसरा ज्ञान हो गया, दूसरा पट आया तो पटज्ञान हो गया।

जब घट नहीं होगा तब घटज्ञान नहीं होगा। जब घट नहीं होगा तो घटज्ञान नहीं होगा। **कोई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानवस्तु को बिना माने, ज्ञान को पर्यायमात्र मानता हुआ ऐसा मानता है।** ऐसा मानता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? सामने घड़ा है तो घटज्ञान है, ऐसा अज्ञानी मानता है। पट है तो पट का ज्ञान है, भगवान की मूर्ति है तो मूर्ति सम्बन्धी का ज्ञान है, मूर्ति नहीं तो मूर्ति सम्बन्धी का ज्ञान नहीं, घड़ा सामने नहीं तो घड़े सम्बन्धी का ज्ञान नहीं, इसलिए पर्याय ज्ञेय के कारण से हुई मानता है। समझ में आया? परन्तु ऐसा नहीं है। भारी सूक्ष्म, भाई!

कोई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानवस्तु को बिना माने, ज्ञान को पर्यायमात्र मानता हुआ ऐसा मानता है। ऊपर कहा यह, समझ में आया? घट है तो घट का ज्ञान, पट है तो पट का ज्ञान। देखो! यह स्त्री हो तो स्त्री का ज्ञान, पुरुष हो तो पुरुष का ज्ञान (होता है)। घट होवे तब पट का ज्ञान होता है? पर्याय पट की होती है? इसलिए घट के कारण ज्ञान हुआ और पट के कारण ज्ञान हुआ, अज्ञानी ऐसा मानता है। आहाहा!

और ज्ञान को कैसा मानता है? एक तो ऐसा मानता है। अब दूसरे प्रकार से (कहते हैं) **'उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्' मूल से नाश हो गया है ज्ञेय के जानपनेमात्र से ज्ञान ऐसा पाया हुआ, ज्ञेय के जानपनेमात्र से ज्ञान ऐसा पाया हुआ नाममात्र,...** यह तो नाममात्र रहा। **ज्ञेय के जानपनेमात्र से....** ज्ञेय को जाननेमात्र से, ज्ञेय को जाननेमात्र से, घट को जाननेमात्र से। **'ज्ञान' ऐसा पाया हुआ नाममात्र,... 'निजप्रव्यक्ति' उस कारण से... 'रिक्तीभवत्' ज्ञान ऐसे नाम से भी विनष्ट हो गया है....** वहाँ ज्ञान भी रहा नहीं। घट का ज्ञान, पट का ज्ञान, उसका ही ज्ञान अर्थात् ज्ञान, ज्ञान की जो अपनी प्रगट अवस्था है, वह रही नहीं। उसके कारण वह, घट के कारण ज्ञान, पट के कारण ज्ञान

और वस्तु के कारण ज्ञान। समझ में आया? नाममात्र भी नहीं रहा, ऐसा कहते हैं। ज्ञान से '**रिक्ति**' हो गया। '**रिक्ति**' अर्थात्? खाली-खाली। खाली हो गया। पर के कारण ज्ञान था। घट था तो घट का ज्ञान, पट था तो पट का ज्ञान, ऐसा मानता है। इसलिए अपनी ज्ञान की पर्याय से तो खाली हो गया। उसके कारण से सब ज्ञान घुस गया। समझ में आया? इसमें तो निमित्तवाले को भी उड़ाते लगते हैं। निमित्त है तो यहाँ ज्ञान होता है, तो उसके कारण हुआ, उसके कारण हुआ तो ज्ञान तो अपनी पर्याय से खाली हो गया। ज्ञान उसमें ही घुस गया। समझ में आया? '**उज्झित, उज्झित**' अर्थात् खाली हो गया, समाप्त हो गया, मूल से नाश हुआ।'**उज्झित**' छोड़ दिया। ज्ञान ने अपना भाव छोड़ दिया और ज्ञेयरूप हो गया, ऐसा नाममात्र ज्ञान रहा, वस्तु तो रही नहीं।

ऐसा मानता है मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी जीव। और ज्ञान को कैसा मानता है— 'परितः पररूपे एव विश्रान्तं' लो! अभी तो पर से-अतत् से मानता है न? है अतत्, स्वयं पर से अतत् है, तथापि पर से तत् मानता है। यह बोल यहाँ ऐसा है न? पर से अतत् है, पर से अतत् है, पर्याय भी पर से अतत् है, तथापि पर से ही मेरा ज्ञान है, पर से ही मेरी श्रद्धा है, पर से ही मेरी यह शान्ति है—ऐसा माननेवाला अपनी पर्याय को भी खो बैठता है। खाली कर डाली। समझ में आया?

मूल से लेकर ज्ञेयवस्तुरूप निमित्त में एकान्त से विश्रान्त हो गया.... यह ज्ञान की पर्याय निमित्त से हुई, उससे हुई; इसलिए वहाँ विश्रान्त हो गया। वह पर में गया, निमित्त के साथ मैत्री हो गयी। प्रवचनसार में पीछे आता है न? इसलिए निमित्त की मैत्री नहीं छोड़ता, कहते हैं। ज्ञान की पर्याय पर के कारण मानी है और उसके कारण यह हुई, इसलिए पर की मैत्री नहीं छोड़ता। आता है न? भाई! प्रवचनसार अन्तिम भाग में। मैत्री, मैत्री। उसके कारण हुआ, उसके कारण हुआ। (ऐसा मानता है वह) उसमें से कैसे हटेगा? इसके कारण से है न, उससे कैसे हटेगा? समझ में आया? वहाँ अन्तिम, अन्तिम। नय के पीछे। नय का पूरा हो जाने के बाद पीछे है न? यह तो निमित्त आया न, इसके ऊपर से याद आया। ज्ञेय वस्तु निमित्त, यहाँ कहा, देखो! **ज्ञप्ति व्यक्तियों के निमित्तभूत होने से जो ज्ञेयभूत है....** समझ में आया? क्या कहा? ज्ञप्ति व्यक्ति (अर्थात्) जो जानने की पर्याय है न, उसमें निमित्तभूत है जो ज्ञेयभूत, **ऐसी बाह्य पदार्थ**

व्यक्तियों के प्रति उसे मैत्री प्रवर्तती है.... दोस्ती हुई। क्योंकि उसने माना कि इसके कारण से होता है... इसके कारण से होता है... इसके कारण से होता है। अब वह कैसे छोड़े दोस्ती? प्रेम कैसे छोड़े? प्रेम-मैत्री कही न? **आत्मपरिणति सदा घुमरी खाती होने से यह आत्मा समुद्र की भाँति अपने में ही क्षुब्ध होता हुआ क्रम से प्रवर्तती अनन्त ज्ञप्ति-व्यक्तियों....** अपनी जानने की अवस्था। हों! क्रम से प्रवर्तती। वे परिवर्तन पाती है, ऐसी ज्ञप्तिव्यक्ति—जो जानने की प्रगटता, अवस्था में निमित्तभूत होने से जो ज्ञेयभूत, निमित्तरूप होने से ज्ञेयभूत वस्तु **ऐसी बाह्य पदार्थ व्यक्तियाँ...** देखो! यहाँ भी बाह्यार्थ है न पहला? '**बाह्यार्थैः परिपीतम्**' ऐसी बाह्य पदार्थ व्यक्तियाँ। यह याद आ गया, यह निमित्त से याद आया।

(बाह्य पदार्थ व्यक्तियों) **के प्रति जिसे मैत्री प्रवर्तती है....** क्योंकि ज्ञान की पर्याय उससे होती है, उससे होती है, इसलिए उनका प्रेम नहीं छोड़ता। इसमें कहाँ मूर्ति, मन्दिर कहाँ रहा? रहता है कहाँ, सुन न! तेरी पर्याय हो, तब उसका निमित्त है, इतना जानने के लिये है। कहीं उससे पर्याय होती है? वे सब निमित्त हैं। वह तो होती है, परन्तु उस समय वह पर्याय होनेवाली है, उसमें वह निमित्त है, ऐसा। वह है, इसलिए ऐसी पर्याय होती है—ऐसा कहाँ है? समझ में आया?

निमित्त होने से मैत्री (प्रवर्तती है) **इसलिए आत्मविवेक शिथिल हुआ होने से....** अर्थात् कि पर के निमित्त का प्रेम नहीं छोड़ता और आत्मा का विवेक ढीला पड़ गया, शिथिल अर्थात् विपरीत हो गया। मेरी ज्ञानपर्याय, मेरी ज्ञप्ति की व्यक्ति क्षण-क्षण में मुझसे होती है, उसमें भले निमित्त सामने हो, परन्तु उसके कारण से है, ऐसा नहीं माना तो उसके कारण यह है, (ऐसा माना)। सुनने से पहले मुझे क्यों ऐसा ज्ञान नहीं था? और यहाँ सुनने आने पर हुआ, इसलिए इसे ऐसा हो गया कि इन शब्दों के कारण ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? **अत्यन्त बहिर्मुख ऐसा वह फिर से पौद्गलिक कर्म को रचनेवाले राग-द्वेष द्वैतरूप परिणमता है।** बहिर्मुख दृष्टि हो गयी। यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका है।

यह अमृतचन्द्राचार्य का कलश है। **ज्ञेय वस्तुरूप निमित्त में...** पररूप है न?

पररूप से **एकान्त से... 'एव'** अर्थात् निश्चय से, ऐसा। **एकान्त से... 'एव'** निश्चय। ज्ञान की अवस्था की पर्याय पररूप से अर्थात् एकान्त से, निश्चय से **विश्रान्त हो गया....** पर में विश्रान्त हो गयी। ज्ञान की पर्याय ने विश्रान्ति कहाँ प्राप्त की है कि यह है तो हुआ, यह है तो हुआ। अर्थात् ज्ञान की पर्याय ही वहाँ गयी। यहाँ अपने में स्वतन्त्र रही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'पररूपे एव विश्रान्तं' अतत् है, उसमें ही जिसका विश्रान्तिपना हुआ। मेरी पर्याय मुझसे है, ऐसा रहा नहीं। वह पर्याय मेरी है, मेरे ज्ञेय से वह परिणमी है। उसके बदले इसकी पर्याय ने उसमें विश्राम लिया, विश्राम लिया। विश्राम। जिसके निमित्त से हुई मेरी पर्याय, इसलिए उससे हुई, इसलिए वहाँ उसने विश्राम लिया। यहाँ आत्मद्रव्य में विश्राम लेना रह गया। समझ में आया?

वह **ज्ञेय से उत्पन्न हुआ, ज्ञेय से नष्ट हो गया।** देखो! वह तो जैसे निमित्त के प्रकार ज्ञेय का भेद आया, वैसा ज्ञान हुआ। जैसा प्रकार वैसा ज्ञेय। जैसा ज्ञेय वैसा ज्ञान, ज्ञेय वैसा ज्ञान... ज्ञेय वैसा ज्ञान... ज्ञेय वैसा ज्ञान। ऐसी ज्ञान की पर्याय ज्ञेय में विश्राम को प्राप्त हुई। वह **ज्ञेय से उत्पन्न हुआ, ज्ञेय से नष्ट हो गया।** अज्ञानी को तो ज्ञेय से ज्ञान उत्पन्न हुआ और ज्ञेय से नाश हुआ। परन्तु आत्मा के ज्ञानस्वरूप में से उत्पन्न हुआ और व्यय हुआ तो भी अपने कारण से। अपने ज्ञेय की दूसरी ज्ञान की पर्याय आने पर नष्ट हो गयी। वह ऐसे न आने से ज्ञेय से उत्पन्न और ज्ञेय से नष्ट (हुई, ऐसा मानता है)। आहाहा! बहुत भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार भीत में चित्राम जब भीत नहीं थी तब नहीं था, जब भीत है तब है, जब भीत नहीं होगी, तब नहीं होगा। दीवार नहीं थी तो चित्र नहीं था, दीवार होवे, चित्र ऐसे आया। **भीत में चित्राम जब भीत नहीं थी तब नहीं था, जब भीत है तब है, जब भीत नहीं होगी, तब नहीं होगा। इससे प्रतीति ऐसी उत्पन्न होती है कि चित्र सर्वस्व का कर्ता भीत है।** चित्र का सर्वस्व कर्ता दीवार है।

उसी प्रकार.... यह तो दृष्टान्त दिया। **जब घट है, तब घटज्ञान है,....** ऐसा कहते हैं। घड़ा है तो यहाँ ज्ञान होता है। घट नहीं तो घटज्ञान यहाँ नहीं है अर्थात् ज्ञेय ही इस

ज्ञान का कर्ता हुआ। समझ में आया? चित्राम का कर्ता ही दीवार हो गयी। चित्राम चित्राम से रहा नहीं। ऐसे ज्ञान ज्ञेय से हुआ, वह ज्ञेय ज्ञान का कर्ता हो गया। ज्ञेय कर्ता– यह पर्याय निमित्त जो भेद है, वह कर्ता, उसका यह ज्ञान हो गया; ज्ञान की ज्ञानपर्याय रही नहीं। समझ में आया? फिर लोगों को बहुत सूक्ष्म लगे।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि वस्तुस्वरूप जो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, उसका जो ज्ञान होता है पर्याय में, भले उस स्वज्ञेयरूप से वह पर्याय परिणमी और उस काल में कोई विकल्प आदि है, उसके जाननेरूप परिणमे। विकल्प परज्ञेय है, उसपने परिणमी परन्तु वह स्वयं पर्याय अपने से है, किसी विकल्प के कारण है, ऐसा नहीं है।

ज्ञानवस्तु जो त्रिकाल है, उसकी पर्यायरूप से ज्ञान परिणमा है। उस पर्याय में स्वज्ञेय और विकल्प परज्ञेय, उसका सहारा है, इससे ऐसा कहा जाता है कि पर की अपेक्षावाला ज्ञान, परन्तु इससे पर्याय कहीं पर के कारण हुई है, ऐसा नहीं है। यह कहते हैं कि वह जो ज्ञान पर्याय का विकल्प जैसा है, वैसा ही क्यों ज्ञान हुआ? राग जैसा है, वैसा ही ज्ञान क्यों हुआ? द्वेष आया, वैसा ज्ञान क्यों हुआ? इसलिए ज्ञेय के कारण से ज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, वह भी परज्ञेय है और ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात हो, बराबर वैसा ही ज्ञात होता है, ऐसा ही ज्ञात होता है। अज्ञानी को ऐसा लगता है कि यह पर्याय जो ज्ञान में हुई, वह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प था, उस ज्ञेय के कारण से ज्ञान (हुआ), वह विकल्प ऐसा नहीं था तो दूसरा विकल्प था तो वैसा ज्ञान (हुआ), तीसरा विकल्प (था तो) वैसा ज्ञान (हुआ)। इसलिए ज्ञेय का ही यह ज्ञान है, ज्ञान का ज्ञान है नहीं, (ऐसा मानता है)। समझ में आया? कहो, भगवानभाई! बहुत सूक्ष्म बातें। वहाँ ऐसा कहीं सुनने को मिलता नहीं तो इसका हल किस प्रकार करना? यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्य तो स्वतन्त्र अकृत्रिम है परन्तु तेरी पर्याय भी स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... उस काल की पर्याय स्वतन्त्र है। समझ में आया? आहाहा!

आज बड़ा लेख आया है। यह सर्वज्ञ को नहीं मानते, नियत पर्याय नहीं मानते। अनियत, तो सर्वज्ञ को मानते नहीं। क्योंकि नियत और अनियत पर्याय होती है और वह

सर्वज्ञ को उसी अनुसार दिखती है, क्योंकि सर्वज्ञ का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। सर्वज्ञ का ज्ञान सम्यक् है। वापस दोनों लिया है, हों! श्रुतज्ञान भी सम्यक् है, इसलिए दोनों में समान ज्ञात होता है, ऐसा लिया है। उसमें अन्तर था, अन्तर किया। अरे.. अरे..! यह उसी और उसी में विरोध आया।

ऐसा कहते हैं कि जैसे श्रुतज्ञानी भी, सर्वज्ञ ज्ञान में भी नियत-अनियत पर्याय है, ऐसा सर्वज्ञ जानते हैं, नहीं तो सर्वज्ञ का सम्यक् ज्ञान रहता नहीं और श्रुतज्ञानी भी जैसी नियत-अनियत पर्याय होती है, तत्प्रमाण जानता है, नहीं तो सम्यक् ज्ञान नहीं रहता। सम्यक् ज्ञान है, जैसा हो वैसा जाने, तो अनियत को नहीं, ऐसा कहनेवाले सर्वज्ञ को नहीं मानते। समझ में आया? परन्तु सर्वज्ञ जानते हैं पर्याय को, पर्याय को वास्तव में तो जानते हैं। लो! उस अपनी पर्याय को,हों! उसमें जो पर्यायें तीन काल की जो पर्याय है, उसमें वह निमित्त है, अकेला उसमें निमित्तपना है। और वही पर्याय जिस-जिस समय में होनेवाली है, उसी पर्याय का वहाँ निमित्त (पना है)। निश्चय से जो पर्याय जहाँ होनेवाली है, वही पर्याय उस काल में वर्तमानरूप से निमित्त है। वह भूतकाल में सम्मिलित हो गयी तो भूतरूप से पसन्दगी हो गयी। बहुत सूक्ष्म। सर्वज्ञ का बड़ा विवाद उठा।

मुमुक्षु : हम सर्वज्ञ को मानते हैं, वैसे तुम सर्वज्ञ को मानो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न कि तुम सर्वज्ञ को उड़ाते हो, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ का स्वरूप सम्यक्ज्ञानी है वे, इसलिए नियत-अनियत पदार्थ का श्रद्धान कि सर्वज्ञ भगवान ने कहा कि नियत माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। तब सर्वज्ञ भगवान ने ही नियत-अनियत पर्याय कही और तुम जब इस प्रकार से सर्वज्ञ को नहीं मानो तो तुम सर्वज्ञ को नहीं समझते। विमलचन्दजी! क्या कहा? भगवान ने ऐसा कैसे कहा कि एक नियत माने, वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है। बारह अंग में तो ऐसा लिखा है। दृष्टिवाद में लिखा है, इस जगह लिखा है, अमुक जगह लिखा है कि नियत माननेवाले एकान्त मिथ्यादृष्टि है। अत: सर्वज्ञ ऐसा कहे, तथा फिर सर्वज्ञ कहें कि नियत ही होता है और अनियत नहीं होता। ऐसा कैसे कहे सर्वज्ञ? परन्तु यह तो सर्वज्ञ ने ही कहा है, भाई! तुझे खबर नहीं है। एकान्त नियत माने, उसे मिथ्यादृष्टि कहा है। वैसे तो एकान्त स्वभाव

माने, उसे मिथ्यादृष्टि कहा है; एकान्त पुरुषार्थ माने, उसे मिथ्यादृष्टि कहा है। एकान्त नियत अर्थात् उस समय में (पाँच) समवाय—पुरुषार्थ, स्वभाव, काल आदि नहीं, (ऐसा माने)। भगवान ने ऐसे पाँचों एक समय में देखे हैं। भगवान ने क्या देखा है?

मुमुक्षु : इनकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अर्थ होता है। भगवान ने जिस समय में नियत है, ऐसी जीव की पर्याय देखी, उस समय में उस जीव का पुरुषार्थ वहाँ उन्मुख है, स्वभाव भी ऐसा है, काल भी वही है, भवितव्य भी वही है और सम्यक् दर्शन आदि पर्याय हो तो उस समय में कर्म का भी (उपशम या अभाव होता है)। इस प्रकार भगवान ने एक समय में उसके पाँच (समवाय) देखे हैं। उसके पाँच (समवाय) देखे हैं, उसमें अक्रम देखा है। आहाहा! इसी प्रकार ज्ञानी भी सम्यक् ज्ञान में एक समय में पाँच देखता है। सर्वज्ञ जैसे जिस प्रकार से द्रव्य की पर्याय पाँच देखते हैं, वैसे सम्यग्दर्शन भी एक समय में पाँच प्रकार की पर्याय देखता है—नियत भी है, स्वभाव जीव का है, पुरुषार्थ है, काल ही वह है और भाव भी वह है—भवितव्य, उस समय में कर्म का भी निमित्तपने का उतना अभाव है। भगवान ने जैसा देखा, वैसा यहाँ देखे, उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया?

भगवान ने आत्मा ऐसा देखा कि यह वस्तु ज्ञानमूर्ति देखी। पुण्य-पापवाला आत्मा देखा? उसे तो आस्रवतत्त्व देखा। पुण्य-पाप तो भगवान ने आस्रवतत्त्व देखा; कर्म-शरीर को अजीवतत्त्व देखा; ज्ञानमूर्ति को आत्मतत्त्व देखा। बराबर है? क्या कहा? भगवान आत्मा... सात तत्त्व है न! या नव तत्त्व, लो! नौ पदार्थ। भगवान ने ज्ञान में क्या देखा? यह वस्तु देखी। ज्ञानस्वरूप शुद्ध द्रव्य, वह आत्मा। पुण्य-पाप के विकल्प, वह आस्रव; कर्म-शरीर, वह अजीव—ऐसा भगवान ने देखा, भगवान ने ऐसा देखा है। ऐसा यह जब देखे कि कर्म वह अजीव; पुण्य-पाप वह आस्रव; मैं ज्ञायक—ऐसा जब देखे तो इस देखने में पाँचों ही समवाय आ गये, भाई! आहाहा! भगवान ने भी उस समय में ऐसा देखा था कि इसकी पर्याय रागरूप से आस्रव है, ज्ञान की पर्याय सम्यक्रूप से परिणमी है, वस्तु शुद्ध है, अजीवतत्त्व का साथ में सम्बन्ध है। ऐसा जो भगवान ने देखा,

उन्होंने देखा है कि इस सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ यह है, काल भी यह है, भाव भी यह है, कर्म का अभाव यह है। ऐसा भगवान ने भी उस जीव का देखा। सम्यग्दृष्टि को भी उसी प्रकार से ज्ञान आवे और हो, तब उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। विमलचन्दजी! समझ में आया या नहीं? बात जरा (सूक्ष्म है।)

बात यह है कि सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा कहनेवाले को यह ज्ञान देखनेवाला ऐसा है, ऐसा यहाँ कहते हैं। सर्वज्ञ अर्थात् पूरा ज्ञान और यहाँ अधूरा ज्ञान, इतना अन्तर है। परन्तु सर्वज्ञ ने देखा कि यह अजीवतत्त्व, यह पुण्य-पापतत्त्व, यह आत्मतत्त्व। अब ये तीन भिन्न हैं। अब उन्होंने जब भिन्न देखे, भिन्न देखे कि यह अजीवतत्त्व, यह आस्रवतत्त्व, यह स्वभाव। भिन्न देखे इसलिए पुरुषार्थ हो गया। पुरुषार्थ आया, स्वभाव आया, उस काल में होने का, वह काल आया, भवितव्य, वह सम्यग्दर्शन भाव होने का था, वह भाव आया, उससमय में कर्म का निमित्त भी उस प्रकार से अभाव (आया)। ये पाँचों ही समवाय एक समय में भगवान ने देखे, वैसे सम्यग्ज्ञानी ने उस समय में वैसे ही देखे हैं। सोमलचन्दजी! न्याय समझ में आता है? आहाहा! परन्तु क्या हो? ऐसी बात है जरा। समझ में आता है या नहीं? जुगराजजी!

कोई कहता है न कि सर्वज्ञ माने, वह हम मानते हैं। परन्तु वे सर्वज्ञ मानते हैं, इस प्रकार ज्ञान में आया है। समझ में आया? सर्वज्ञ के ज्ञान में तेरा आत्मा इस प्रकार से आया है। जब मिथ्याश्रद्धारूप से होता है, तब तो उसे सर्वज्ञ ने जो आत्मा देखा, जैसा आस्रव देखा कर्म, वैसा तो तू मानता नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ भगवान ने देखा कि यह आत्मा ज्ञान शुद्ध चैतन्य है, पुण्य-पाप के विकल्प आस्रवतत्त्व, कर्म-शरीर अजीवतत्त्व। ऐसा देखा। अब तू यदि ऐसा जहाँ देखने जाए, वहाँ हो गया कर्म भिन्न, आस्रव भिन्न, यह ज्ञान भिन्न। इसलिए पुरुषार्थ आया, स्वभाव आया, कर्म का अभाव आया। आस्रव में अभाव आया, कर्म का अभाव आया और उस प्रकार से सम्यग्ज्ञान होने पर जो मिथ्यात्व आदि आवरण का निमित्त था, उस समय में भी इतना अभाव आया, अतः भगवान ने ऐसा वहाँ देखा, वैसा तुझे देखने में आया तब कहलाता है। समझ में आया? परन्तु क्या हो, बात ही ऐसी है कि ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है, कहते हैं।

यहाँ वह कहता है कि अकेली पर्याय पर के कारण है। पूरी वस्तु रह गयी, पूरी वस्तु रह गयी। जो ज्ञान की पर्याय, अकेला त्रिकाली द्रव्य है, उसका परिणमन वह ज्ञान है। समझ में आया? तब वह कहता है कि यह (ज्ञान) पर्याय राग और निमित्त से हुई, इससे हुई। इसलिए पूरी वस्तु रह गयी और वह पर्याय भी सिद्ध नहीं हुई, भाई! वह पर्याय सिद्ध नहीं हुई। वस्तु तो सिद्ध नहीं हुई परन्तु ज्ञान की पर्याय साबित नहीं हुई। राग है, इसलिए ज्ञान, निमित्त है, इसलिए ज्ञान, उनके कारण (ज्ञान हुआ)। वह पर्याय, हों! वह पर्याय तो परद्रव्य पी गया। आहाहा! जो अतत्रूप से है, उसे कहते हैं कि वह पररूप से है, वह पर्याय पररूप से है। आहाहा! सर्वज्ञ की कथन पद्धति (अलौकिक है)। समझ में आया?

ज्ञान की पर्याय—अवस्था, वह द्रव्य की है। द्रव्य अर्थात् ज्ञानवस्तु कायम है, उसकी है। ऐसा जहाँ भान हुआ, वहाँ वस्तु भी दृष्टि में रही, पर्याय भी हुई, रागादि पर है, उस सम्बन्धी का भले ज्ञान हुआ, इससे उसे स्वज्ञेय, परज्ञेय के सहारे की पर्याय अपेक्षा से कही जाती है। समझ में आया? परन्तु यह ऐसा न मानकर यह ज्ञान वस्तु जो पूरी है, जो ज्ञान के पर्याय का पूरा ज्ञेय होना चाहिए, ऐसी पर्याय की ताकत है। क्या कहा? इस ज्ञान की पर्याय की ताकत है कि स्वज्ञेय को भी जाने, परज्ञेय (भी जाने), ऐसी उसकी ताकत है। ऐसी ताकत उस पर्याय को मात्र मानने पर भी ऐसी ताकत मानता नहीं। भाई! क्या कहा? समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय इतनी ताकतवाली है। यहाँ इसलिए पहले कहा था, पहले कहा था। ऊपर कहा था। **स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ ज्ञेय की आकृति-प्रतिबिम्बरूप परिणमता है जो ज्ञान**। समझ में आया? ऊपर बीच में है। इस भावार्थ के ऊपर, बीच में भावार्थ है, उसके ऊपर है।

पर्यायरूप कहने पर, पर्यायरूप कहने से स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ ज्ञेय की आकृति-प्रतिबिम्बरूप परिणमता है जो ज्ञान। भगवान ज्ञान की पर्याय, महिमावन्त प्रभु आत्मा की एक समय की पर्याय वह ज्ञेय, स्वज्ञेय, परज्ञेय दोनों को परिणमाता जानता है। ऐसा पर्याय का स्वत: धर्म है। उस पर्याय को उस प्रकार से नहीं माना और उस पर्याय को पर के सहारे की मानने से पर्याय स्वयं सिद्ध हुई नहीं। वस्तु तो सिद्ध हुई नहीं, पर्याय सिद्ध नहीं हुई। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े परन्तु सुन न, हों!

बहुत उकताहट नहीं लाना। यह तो बात आते-आते सब आ जाती है। समझ में आया या नहीं इसमें?

यह तो स्याद्वाद शैली की अमृत शैली है। आहाहा! वस्तु ऐसी है कि भाई! तू ऐसा ही माने कि पर्यायमात्र वस्तु है, वस्तु स्वज्ञेय पूरा द्रव्य है, ऐसा नहीं। और वह वर्तमान पर्याय भी अकेले परज्ञेय के सहारे की मात्र है, तो वह परज्ञेय से हुई है—ऐसा मानने से तेरी पर्याय भी नहीं रहती। तेरे लक्ष्य में द्रव्य तो छूट गया परन्तु पर्याय भी सिद्ध नहीं होती। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो मार्ग ऐसा है, धीर का काम है। समझ में आया?

ओहोहो! ऐसा टीका में कितना भरा है गूढ़ भाव! उसे सिद्ध करने जाने पर भी उसे स्वज्ञेय की ताकत एक समय की पर्याय जानने की है, तो कहते हैं कि पर्याय मानी अकेली, परन्तु द्रव्य तो माना नहीं। तो वह पर्याय भी जितनी ताकतवाली है, वैसी नहीं मानी और वह पर्याय भी मात्र मानी परद्रव्य के अवलम्बनवाली। क्योंकि यहाँ तो अवलम्बन रहा नहीं, यह तो है नहीं कुछ। समझ में आया? यह '**उज्झितनिजप्रव्यक्ति**' प्रगट हुई पर्याय खाली हो गयी, कहते हैं। समझ में आया? '**रिक्ति**' हो गयी। खाली हो गयी। '**उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तिभवत्**' ऐसा। समझ में आया? और स्वयं खाली होकर गया कहाँ? '**परितः पररूपे एव विश्रान्तं**' समझ में आया? मूल से पररूप में, **निमित्त में एकान्त से विश्रान्त हो गया-ज्ञेय से उत्पन्न हुआ, ज्ञेय से नष्ट हो गया**। आहाहा! यह इसका वापस इसका दृष्टान्त है चित्राम का। समझ में आया? समझ में आया तो अपने... मध्य में है न? विश्राम का वाक्य है। आहाहा!

प्रभु! तेरी बलिहारी है, भाई! इस चीज़ की दृष्टि और इस चीज़ की पर्याय... दृष्टि भी पर्याय है न! कहते हैं कि भाई! तूने पर्याय अकेली मानी और पूरी वस्तु नहीं मानी और पर्याय को परसहारे की मानी; घट है तो घट का ज्ञान, पट है तो पट का ज्ञान। क्योंकि ज्ञान भी वैसा होता है। इसलिए तेरा ज्ञान उसके कारण से हुआ। परन्तु यहाँ तो ज्ञानशक्तिवाला तत्त्व पूरा है, वह परिणमता है और परिणमे उसे फिर जैसा ज्ञान वैसा भले हो। समझ में आया? परन्तु परिणमनेवाला तो यह पूरा द्रव्य है। द्रव्य माना नहीं,

तेरी पर्याय खाली हो गयी। परज्ञेय में समाहित हो गयी, पर्याय रही नहीं। आहाहा। समझ में आया?

जब घट नहीं होगा, तब घटज्ञान नहीं होगा। इससे ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है कि ज्ञान के सर्वस्व का कर्ता ज्ञेय है। देखो! आया। ज्ञान के सर्वस्व का कर्ता कौन ?वह ज्ञेय। ऐ... देवानुप्रिया! दीवार कर्ता चित्र की, ऐसा हुआ न? दीवार थी तो चित्र है, दीवार नहीं तो चित्र नहीं। इसलिए चित्र का कर्ता कौन हुआ? दीवार, दीवार। दीवार कर्ता, उसका यह कार्य हुआ। इसी प्रकार ज्ञेय है तो ज्ञान है, ज्ञेय है तो ज्ञान है, ज्ञेय घट है तो ज्ञान है, पट है तो पटज्ञान है। इसलिए वह ज्ञेय ज्ञान का कर्ता हो गया। समझ में आया? आहाहा! **इससे ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है कि ज्ञान के सर्वस्व का कर्ता ज्ञेय है।** देखो! सर्वस्व या... होम। तेरी पर्याय ज्ञेय के कारण तूने मानी। वह ज्ञेय ही तेरा कर्ता हो गया और ज्ञेय पी गया तेरी पर्याय को। समझ में आया? उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है। यह विशेष बात कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल १४, मंगलवार, दिनांक-०७-१२-१९६५, कलश-२४८-२४९, प्रवचन-२६२

(जो) ऐसा मानता है कि ज्ञानस्वरूप आत्मा जो है, उसकी वर्तमान जो पर्याय (है उसमें) जैसा ज्ञेय है, और वैसा यहाँ ज्ञान होता है। सामने जो ज्ञेय हो, वैसा ज्ञान (होता है), इसलिए इस ज्ञान का कर्ता वह ज्ञेय है, (ऐसा मानता है)। समझ में आया? तत् स्वरूप से—ज्ञान, ज्ञान की पर्यायरूप से है। वस्तु ज्ञायक त्रिकाल का अनुभव करके जो वर्तमान ज्ञान होता है, उस ज्ञान का कर्ता आत्मद्रव्य है। वह कर्ता—ज्ञान की वर्तमान पर्याय का करनेवाला ज्ञेय, विकल्प, राग आदि है तो ज्ञान की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े। लोगों को अभ्यास नहीं होता।

वस्तु है या नहीं वस्तु? ज्ञानस्वरूप से भगवान पूर्णानन्द (स्वरूप है)। उसका ज्ञान का परिणमन तो ज्ञानपने की पर्यायरूप से—अवस्थारूप से होता है। अब उस अवस्था में भले सामने निमित्त चीज़ ऐसी हो परन्तु अज्ञानी को ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है **कि ज्ञान के सर्वस्व का कर्ता ज्ञेय है।** अन्तिम लाईन है। शब्द सामने है, वैसा ज्ञान (होता है), यह लकड़ी सामने है तो (ऐसा) ज्ञान (होता है)। समझ में आया? लो, और एक व्यक्ति तो ऐसा कहता है कि भाई! यह ज्ञान है, उसमें लकड़ी ज्ञात होती है, ऐसे देखो! वह जाति ज्ञात हुई तो वह सब जाति ही ज्ञान है। वह दूसरे में आयेगा। वे मशरूवाले। उन्होंने पुस्तक संशोधन-शोधन की थी न? वह पढ़ी थी। मेरे पास (संवत्) १९९५ में आये थे। दम चढ़ता था बेचारे का। बहुत तत्त्वज्ञानी कहलाता, वेदान्त में बहुत तत्त्वज्ञानी (कहलाता था)। दम चढ़ता था। बातचीत तो थोड़ी हुई थी। मैं खड़ा था और वे ऐसे जाते थे और आये। उनकी पुस्तक में था कि यह जो इसमें ज्ञात होता है, वह लकड़ी है ऐसा तुम कहते हो। (तो वह कहे) ऐसा नहीं है। जो ज्ञात होता है, उसका ज्ञान होता है न? तो उसका ज्ञान होता है तो वह वस्तु ही ज्ञानरूप है। यह दूसरे श्लोक में आयेगा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। ज्ञान ऐसे होता है, जिस चीज़ का ज्ञान

होता है, उसका होता है (कि) यह लकड़ी है, इसका ज्ञान हुआ न? ज्ञान हुआ तो वह ज्ञानमय हो तो उसका ज्ञान होगा, ऐसा (कहते हैं)। यह दूसरे बोल में आयेगा।

इस बोल में तो ऐसा कहते हैं ज्ञान की पर्याय उसका कर्ता ही वह ज्ञेय है, ऐसा। समझ में आया? कहो भीखाभाई! जैसे शब्द पड़े वैसा ज्ञान होता है या नहीं वहाँ? ऐसा कहते हैं, लो! सामने यह शब्द आवे, वैसा यहाँ ख्याल आवे या शब्द के अतिरिक्त का दूसरा ख्याल आवे? ख्याल ऐसा आवे या दूसरा आवे? ऐसा। ख्याल ऐसा आवे या दूसरा आता होगा?

मुमुक्षु : ज्ञान के कारण से ख्याल आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान के कारण से आता हो तो सामने जो ज्ञात होता है, वैसा ही क्यों यहाँ ज्ञान होता है? जब यह शब्द आया, 'यह शब्द' ऐसा आया। तो वैसा ही यहाँ ज्ञान होता है। 'आत्मा' ऐसा आया तो वहाँ ज्ञानपर्याय में वैसा ही 'आत्मा' ऐसा होता है। समझ में आया? परन्तु इसका अर्थ क्या? उस समय ज्ञान की पर्याय स्वयं स्वतन्त्र स्वयं कर्ता होकर परिणमती है। अज्ञानी को ऐसा पर्याय में भ्रम पड़ जाता है। जैसा निमित्त हो, उसी प्रकार यहाँ ख्याल में आवे परन्तु ख्याल तो यथार्थ ज्ञान हो ऐसा ही आवे या नहीं? ज्ञान, वह सत्य है या विपरीत को जानता है वह? सामने जैसी चीज़ (हो, वैसी) उसके ख्याल में (आवे), वैसा ही यहाँ ज्ञान होता है। इसलिए उस ज्ञान का कर्ता वह (ज्ञेय) है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

उस अज्ञानी को तो **ज्ञान के सर्वस्व...** वस्तु तो मानी नहीं परन्तु पर्याय को भी (मानी नहीं), यहाँ तो ऐसा कहना है। वस्तु है ज्ञान ध्रुव, ध्रुव, उसे तो माना नहीं। ध्रुव स्वरूप है, वह तो अनुभव नहीं, परन्तु पर्याय में भी पर के कारण से होता है और उस ज्ञान की दशा का कर्ता, करनेवाला, रचनेवाला वह सब पर्याय को ज्ञेय ही रचता है, ऐसा माननेवाले को सब ज्ञेय, ज्ञान की पर्याय ज्ञेय पी गया। ज्ञानपर्याय भिन्न रही नहीं। देखो! इसमें भी जैसा अन्दर उपादान, वैसा कहो कि यहाँ पर्याय उपादान में ऐसी हुई परन्तु वैसा सामने निमित्त हो, उस प्रकार में ज्ञान में होता है या नहीं? यह ऐसा होता है, इस प्रकार से परन्तु वह निमित्त से होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

ऐसा अज्ञानी **कोई अज्ञानी एकान्तवादी ऐसा मानता है,....** ऐसा। पूर्व में कहा वैसा। **कोई अज्ञानी एकान्तवादी ऐसा मानता है, इसलिए ऐसे अज्ञानी के मत में ज्ञान वस्तु ऐसा नहीं पाया जाता।** भगवान आत्मा ज्ञान वस्तु है और उसकी पर्याय वर्तमान स्वयं से परिणमती है, तथापि सामने ऐसा ही ज्ञेय है, वैसा ज्ञान होने पर ऐसा मानता है कि वह (ज्ञेय वस्तु ज्ञान की) कर्ता है। उसे ज्ञान वस्तु ही रहती नहीं। वस्तु ही उसकी दृष्टि में (रहती नहीं), उसे आत्मा का अनुभव नहीं होता, उसे अकेला ज्ञेय का ही अनुभव होता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? **अज्ञानी के मत में ज्ञान वस्तु ऐसा नहीं पाया जाता।**

स्याद्वादी के मत में ज्ञानवस्तु ऐसा पाया जाता है। ज्ञान वस्तु है, पर्याय वह वस्तु है, पर्याय पर्यायरूप से है। वस्तु पर्याय उस समय ऐसी ही (होती है)। क्योंकि पर्याय की एक स्थिति नहीं। पर्याय की एक स्थिति नहीं अर्थात् भिन्न-भिन्न पर्याय, भिन्न-भिन्न प्रकार के निमित्त के सम्बन्ध में दिखती है, इसलिए अज्ञानी को ऐसा (होता है कि) यह अवस्था ऐसी कैसे हुई? परन्तु अवस्था एकरूप रहती नहीं। अवस्था भिन्न-भिन्न होती है और भिन्न-भिन्न होने पर उसे निमित्त भिन्न-भिन्न सामने दिखते हैं, इसलिए उसके कारण से है, ऐसा अज्ञानी मानता है। स्याद्वादी ऐसा मानता नहीं। अवस्था का भिन्न-भिन्नपना उसी प्रकार घट को, घट को जानता हुआ ज्ञान घट का ही ज्ञान करे। समझ में आया? परन्तु वह ज्ञान है, वह स्वयं से हुआ है, घट से हुआ नहीं।

'**पुनः स्याद्वादिनः तत् पूर्णं समुन्मज्जति**' देखो! '**पुनः**' अर्थात् **एकान्तवादी कहता है उस प्रकार नहीं है, स्याद्वादी कहता है, उस प्रकार है।** '**पुनः**' अर्थात् ऐसा है। इतना ही यहाँ तो अर्थ है। वह तो मात्र तुलना के लिये शब्द प्रयोग किया है। '**स्याद्वादिनः**' अर्थात् कि **एक सत्ता को द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप मानते हैं....** सत्ता एक ही है। वस्तु ध्रुव एक है, ऐसी एक समय की पर्याय भी सत्ता है, एक वस्तु में ही दोनों हैं। एक सत्ता में दोनों हैं। दूसरे की सत्ता के कारण यह है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? एक अस्तित्व में दो है। एक अस्तित्व द्रव्यरूप से और एक अस्तित्व वर्तमान क्षणिक अवस्थारूप से। एक सत्ता में दो का अस्तित्व है। पर्याय का अस्तित्व पर के कारण और द्रव्य का अस्तित्व स्व के कारण, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

एक सत्ता को... एक ही चीज़ की (सत्ता को) **द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप मानते हैं ऐसे जो सम्यग्दृष्टि जीव उनके मत में....** ऐसा। '**स्याद्वादिनः**' अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव के मत में इतना इसका अर्थ है। परन्तु इसके अर्थ में फिर यह दो स्पष्टीकरण किये। '**तत्**' '**ज्ञानवस्तु**' '**पूर्णं**' '**पूर्णं**' अर्थात् **ज्ञेय से भिन्न स्वयंसिद्ध अपने से है।** इतना अर्थ है इसका तो। '**पूर्णं**' का अर्थ इतना है परन्तु इसे विशेष स्पष्ट करते हैं कि सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में स्वयं जीव पूर्ण है, पूर्ण है, तत् है, तत् वह पूर्ण है। तत् वह पूर्ण है। अपनी पर्याय अपने से पूर्ण है। समझ में आया? पर से बिल्कुल नहीं।

'**तत्**' '**ज्ञानवस्तु**' '**पूर्णं**' यह तो पहले स्पष्टीकरण इतना (किया)। यहाँ पूर्ण का अर्थ यहाँ कहना है—**स्वयंसिद्ध अपने से....** इतना ही पूर्ण का अर्थ है। परन्तु **जैसी ज्ञेय से होती कही, विनशती कहीं वैसी नहीं...** उसके सामने जवाब दिया। **जैसी है, वैसी ही है,....** (यह) अस्ति कही। वह नास्ति की। **ज्ञेय से होती कही, विनशती कहीं वैसी नहीं...** निमित्त जैसा (हो, वैसा) जाने, इसलिए निमित्त से हुई और निमित्त में हो तो न हो, ऐसा नहीं है। **जैसी है, वैसी ही है,....** अपनी ज्ञान पर्याय, गुण तो त्रिकाली वस्तु ध्रुव, ज्ञान पर्याय जैसी है वैसी स्वयं से ही है। **ज्ञेय से भिन्न स्वयंसिद्ध अपने से है।** वह निमित्तों के ज्ञान के काल में वैसा ही ज्ञान निमित्त का होने पर भी उस निमित्त के काल से अपनी ज्ञान पर्याय, ज्ञेय के काल से ज्ञान पर्याय का भिन्नपना है। समझ में आया?

स्वयंसिद्ध अपने से है। क्षण-क्षण में जो ज्ञान की पर्याय है, वह स्वयं से ही है, पर से नहीं। शब्द से नहीं, सुनने से नहीं, देखने से नहीं, पढ़ने से नहीं—ऐसा कहते हैं। हैपना है, उसमें फिर उससे और इससे कहाँ से आया? वस्तु द्रव्य-पर्यायरूप है। सत्ता के दो भाग हैं। शाश्वत् रहनापना (और) एक समय का रहनापना (अस्तित्व)। वह अस्तित्व उसके अपने स्वयं के कारण से है। साथ में आया, उसके कारण से अस्तित्व है नहीं। समझ में आया?

स्वयंसिद्ध अपने से है। अपने से ही अपनी पर्याय है, पर के कारण बिल्कुल नहीं है। लो! यहाँ तो वे कि निमित्त अकिंचित्कर है, ऐसा कहते हैं, उसे खोटा कहते हैं, उसमें कहीं अकिंचित्कर आया या नहीं? भाई! आया? दूसरे शास्त्र में कहा हो, वह

तो एक प्रकार की व्यवहार की बात की हो। किंचित्कर, ... आदि। समझ में आया इसमें ?

भगवान आत्मा ज्ञानज्योति का पर्वत, पुंज, वह ज्ञानरूप से झरता है। समय-समय में ज्ञान की पर्यायरूप से झरता है, परिणमता है। वह स्वयं से है। **स्वयंसिद्ध अपने से है।** पर्याय स्वयंसिद्ध अपने से है, पर के कारण किंचित् भी ज्ञानदशा नहीं है। ज्ञान के साथ श्रद्धा, शान्ति इत्यादि (ले लेना)। यहाँ तो ज्ञान प्रधान कथन करते हैं। ज्ञान को ज्ञेय के साथ मिलाना है न ? तत् और अतत् है न इसलिए। समझ में आया ?

'**समुन्मज्जति**' अब देखो ! यह शब्द आया। इसका अर्थ तो इतना ही यहाँ कहना है कि **ज्ञान वस्तुरूप प्रगट हुआ।** '**समुन्मज्जति**' का अर्थ तो इतना ही है। सम्यक् प्रकार से ज्ञानवस्तु प्रगट हुई। अब इसे समझाने के लिये जरा बात करते हैं। **एकान्तवादी के मत में मूल से लोप हो गया था....** अर्थात् ? वस्तु जो ज्ञान का पिण्ड, ज्ञानपुंज प्रभु ! उसकी वर्तमान पर्याय उसे निमित्त (के) कारण, निमित्त कर्ता होकर हुई थी, वहाँ ज्ञान की पर्याय का लोप हो गया था। निमित्त कर्ता होकर पर्याय हुई थी, वहाँ एकान्तवादी को ज्ञानपर्याय का वस्तुपने का, अस्तित्व का लोप हो गया था। समझ में आया ?

वही ज्ञान स्याद्वादी के मत में ज्ञान वस्तुरूप प्रगट हुआ। इतना अर्थ हुआ, मूल तो '**समुन्मज्जति**' सम्यक् प्रकार से ज्ञान की पर्याय प्रगट उछलती है, इतना कहना है। निमित्त के कारण नहीं, संयोग के कारण नहीं। संयोग और निमित्त का ज्ञान उस प्रकार से यहाँ होता है, परन्तु प्रगट होता है '**समुन्मज्जति**' ज्ञानस्वरूप भगवान स्वयं पुंज, वह वर्तमान पर्याय में स्वयं सम्यक् प्रकार से '**समुन्मज्जति**' उछले, प्रगट होता है। कहो, समझ में आया ? गाथा-गाथा में ऐसी बात है, तो भी कौन जाने कहते (हैं कि), ऐई ! 'निमित्त को अकिंचित्कर कहते हैं, नियत कहते हैं।' समझे न ? बात सच, बात तो यह सच्ची है परन्तु उसे ऐसा कहे, 'यह विरोध है, अनेकान्त नहीं होता, निमित्त कुछ करे तो अनेकान्त होगा।'

यहाँ भी अनेकान्त, यह स्याद्वाद तो वर्णन किया जाता है। यह स्याद्वाद कहो या अनेकान्त कहो। अनेकान्त वस्तु का स्वरूप है, स्याद्वाद मुख्य-गौण कथन है। समझ में

आया? स्याद्वाद और अनेकान्त। अनेकान्त वस्तु और स्याद्वाद उसका वाचक, ऐसा नहीं। समझ में आया? स्याद्वाद वह वाचक और अनेकान्त उसका वाच्य, ऐसा नहीं है। 'अनेकान्त' शब्द जो है अनेकान्त, पदार्थ का वाचक है। क्योंकि अनेकान्त तो वस्तु है। द्रव्य द्रव्यरूप से है और पर्याय पर्यायरूप से है। अब स्याद्वाद तो मुख्य-गौण से कथन करता है। वस्तु एक समय में अनेकान्त है—द्रव्य और पर्याय। स्याद्वाद, वह अनेकान्त, 'अनेकान्त' शब्द जो है, वह अनेकान्त को बतलाता है। स्याद्वाद मुख्य-गौण करके कथन करता है। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं कि **स्याद्वादी के मत में...** अर्थात् कि अनेकान्त माननेवाले के मत में वस्तु वस्तुरूप से है और उसकी पर्याय **ज्ञान वस्तुरूप प्रगट हुआ।** ज्ञान वस्तुरूप प्रगट होती है। अनुभव में ज्ञान वस्तु स्वयं उसका अनुभव करने पर, स्वसन्मुख में रहने से ज्ञानरूप से अनुभवरूप से ज्ञान प्रगट होता है, पर प्रगट नहीं होता। समझ में आया?

किस कारण से प्रगट हुआ? 'दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः' ओहोहो! **'दूर' अनादि से....** लेकर! 'दूर' की व्याख्या। अनादि से वस्तु ज्ञानपुंज प्रभु है। **'उन्मग्न' स्वयंसिद्ध वस्तुरूप प्रगट है...** देखो! **'उन्मग्न'** स्वयंसिद्ध वस्तु है। **'ऐसा 'घन' 'घन'** अर्थात् **अमिट (-अटल)...** ज्ञानघन वस्तु है, वह अमिट है, मिटे नहीं ऐसी है। उसका एक ही घन है, वह तो मिटे नहीं परन्तु उसकी जो पर्याय उस क्षण में हुई, वह भी मिटे नहीं। समझ में आया? उस ज्ञायकमूर्ति का अनुभव होने पर वह वस्तु अमिट है, उस क्षण में उसकी पर्याय भी उस प्रकार की प्रगट होती है। ऐसा कहा न? समझ में आया?

स्वयंसिद्ध वस्तुरूप प्रगट है ऐसा अमिट (-अटल) ज्ञानवस्तु का सहज उसके.... ज्ञानवस्तु का सहजपना उसका **न्याय करने पर....** दो वस्तु लेंगे। **'भरतः'** की व्याख्या। **'भरतः'** भगवान आत्मा ज्ञानरूप है, उसका **'भरतः'** न्याय करने से, युक्ति करने से या अनुभव करने से ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा युक्ति करने से... समझ में आया? और **अनुभव करने पर...** दो बातें ली। समझ में आया? **ये दोनों जिस प्रकार होते हैं, उस प्रकार कहते हैं... न्याय करने पर, अनुभव करने पर 'ऐसा ही है' ऐसे सत्यपने के कारण।** ऐसा सत्त्वपना जो है। वस्तु वस्तुरूप से है, उसका अनुभव करने से अनुभव में

आनन्द आवे और ज्ञान का अनुभव हो। युक्ति भी ऐसी है कि वह वर्तमान पर्याय स्वयं भले पर के लक्ष्य से हो, परन्तु है स्वयं से। ऐसी युक्ति भी इस बात को सिद्ध करती है। कहो, समझ में आया?

अब कहते हैं, **अपने स्वभाव से वस्तु है। 'यत् तत् स्वरूपतः तत् इति' कैसा न्याय, कैसा अनुभव....** ऐसा आया न? **ये दोनों जिस प्रकार होते हैं, उस प्रकार कहते हैं 'यत् तत् स्वरूपतः तत् इति' जो वस्तु वह वस्तु... 'स्वरूपतः तत्' अपने स्वभाव से वस्तु है।** अपना ज्ञान स्वभाव, उससे अनुभव करने से '**स्वतः**' निर्विकल्प अनुभव होने पर वस्तु स्वयं से ही है। समझ में आया? सूक्ष्म है, इसीलिए तो धीरे से कहा जाता है।

वस्तु है, अस्ति—सत्ता, उसका अनुभव करने से वह वस्तु स्वयं अस्ति ऐसी है पूरी, स्वतः है, ऐसा अनुभव करने से, अनुभव निर्विकल्प है, वह अनुभव करने से यह वस्तु ऐसी ही है, ऐसा वह सत्यपने को प्रकाशित करता है। समझ में आया? वस्तु, **वस्तु अपने स्वभाव से वस्तु है। ऐसा अनुभव करने पर अनुभव भी उत्पन्न होता है,....** लो! **युक्ति भी प्रगट होती है।** पर की अपेक्षा, कहते हैं न?

अनुभव निर्विकल्प है। भगवान आत्मा यह ज्ञानपुंज ध्रुव है, इसकी पर्याय में इसका अनुभव होने पर यह अनुभव निर्विकल्प है, उसमें कोई भेद नहीं। यह ज्ञान वस्तु है, ज्ञानपुंज सत्ता है, ऐसा उसका अनुभव करने पर वह अनुभव निर्विकल्प है, अभेद है। वस्तु जो अखण्ड ज्ञायक है, उसका अनुभव भी अभेद अखण्ड है। उस अनुभव से स्व की सत्ता की सिद्धि होती है कि पर्याय भी स्वसत्ता से प्रगट हुई और स्वसत्ता ध्रुव त्रिकाल है। अर्थात् क्या कहा यह?

पर के लक्ष्य बिना स्व के लक्ष्य में आने से महासत्ता जो चैतन्य ध्रुव, उसके लक्ष्य में—महासत्ता के ध्रुव में आने से निर्विकल्प अनुभव हो, उसमें पर की कोई अपेक्षा रहती नहीं व्यवहार से, ऐसा कहते हैं। निर्विकल्प अनुभव वह वस्तु है, ऐसा इसमें सिद्ध होता है। समझ में आया? भाई! यह तो मार्ग ऐसा है। यह स्याद्वादमार्ग को सिद्ध करते हैं न! बहुत सूक्ष्म बात है।

अनेकान्तपना वह वस्तु का स्वरूप है। अनेकान्त सिद्ध होने पर अमृत का

अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह वस्तु वस्तुरूप से है, पर्याय-पर्यायरूप से है। वह भी (आत्मा) पर का लक्ष्य छोड़कर यह वस्तु, यह वस्तु है, ऐसा जहाँ अनुभव करे तो उसमें पर की अपेक्षा नहीं आती। बिल्कुल निर्विकल्प अनुभव हो गया। निर्विकल्प अनुभव हुआ, इसका नाम सत्ता का स्वीकार हुआ। आहाहा! समझ में आया?

यह ज्ञान वस्तु पूरी पूर्ण ध्रुव, उसका अनुभव होने पर उसे अनुसरकर होने से यह अनुसरण छोड़ा। पर्याय भी हुई, हुई पर्याय अनुभव की। समझ में आया? तथापि वह अनुभव निर्विकल्प है। **अनुभव भी उत्पन्न होता है, युक्ति भी प्रगट होती है। युक्ति ऐसी कि ज्ञानवस्तु द्रव्यरूप से विचार करने पर अपने स्वरूप है, पर्यायरूप से विचार करने पर ज्ञेय से है।** ज्ञेय से है, ऐसी युक्ति निमित्त की अपेक्षा से है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। नयी उत्पन्न हुई न? वस्तु तो वस्तु है परन्तु नयी उत्पन्न हुई, इससे ऐसा कहा जाता है कि निमित्त से, ज्ञेय से उत्पन्न हुई। परन्तु वास्तव में तो स्वयं से उत्पन्न हुई है। वह स्वयं से हुई, उसे निमित्त की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है। ऐसी एक युक्ति भी पर्याय के लिये है। समझ में आया?

क्योंकि उस समय ज्ञान की पर्याय (प्रगट होती है)। वस्तु के अनुभव में वह तो स्वयं ही अकेला आ गया। अब जब अकेला ऐसे साधारण पर्याय है, तब जैसा सामने निमित्त है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है। तब उसमें युक्ति से ऐसा कहा जाता है कि वह ज्ञान ज्ञेय से है। समझ में आया? **युक्ति ऐसी कि ज्ञानवस्तु द्रव्यरूप से विचार करने पर अपने स्वरूप है, पर्यायरूप से विचार करने पर ज्ञेय से है।** परन्तु इस प्रकार ज्ञेय है, हों! पर्याय पर से हुई, ऐसा नहीं, परन्तु पर्याय में भिन्न-भिन्नता आयी न? भिन्न-भिन्नता पर्याय में आयी, इसलिए मानो उससे है, ऐसा कहा जाता है।

ऐसा है नहीं परन्तु कहने में (ऐसा आता है)। वस्तु पूरी है वह तो ऐसी की ऐसी है। उसका ऐसा अनुभव होने पर निर्विकल्प वस्तु सत्तामात्र हुई, परन्तु जहाँ पर्याय पर लक्ष्य जाने से उस पर्याय में जिस-जिस प्रकार के संयोग (ज्ञात हो) वैसा ज्ञान होता है इसलिए ऐसा कहा जाता है कि ज्ञेय से है। (वरना) वास्तव में है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह गुरु भी आत्मा और देव भी आत्मा और सब आत्मा है। यह तो आ गया है, अपने नहीं आया? परमात्मप्रकाश में (आ गया) है। तीर्थ और गुरु, वह आत्मा है। अनन्त-अनन्त गुण का धनी भगवान वह तीर्थरूप से परिणमित हुआ, वह स्वयं तीर्थ है। वीतरागरूप से परिणति होना, वह स्वयं तीर्थ है। बाह्य के तीर्थ तो निमित्तमात्र हैं। आहाहा! समझ में आया? आ गया या नहीं परमात्मप्रकाश में? आया था? सब आया था। देव भी तू, गुरु भी तू, और तीर्थ भी तू। तीनों तू है। भाई! तुझमें कहाँ हीनता है कि जिससे पर की अपेक्षा रहे? ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

वस्तु तो वस्तु स्वयंसिद्ध निर्विकल्प अखण्डानन्द भगवान है, उसे अनुसरकर होता निर्विकल्प ज्ञान, उसे तो कोई अपेक्षा है नहीं। अब जब सामान्य जिस प्रकार से ज्ञान, ज्ञान पर्याय में आये, उस पर्याय को पर्याय पर लक्ष्य करने से मानो ऐसा ही निमित्त हो, ऐसा ज्ञान होता है, इसलिए व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। **पर्यायरूप से विचार करने पर ज्ञेय से है।** ऐसा इस प्रकार कहा जाता है, कर्ता वह नहीं। समझ में आया?

जिस प्रकार ज्ञानवस्तु द्रव्यरूप से ज्ञानमात्र है, पर्यायरूप से घटज्ञानमात्र है,... देखो! एक समय की पर्याय इतनी है और इस अपेक्षा से बात करते हैं। एक समय की पर्याय इस घट को जाने, घटज्ञानमात्र हुआ न? पूरा ज्ञानमात्र नहीं रहा। है तो स्वयं से परन्तु घटज्ञानमात्र, पटज्ञानमात्र, यह ज्ञानमात्र, शब्दज्ञान, जो शब्द वह ज्ञान, ऐसा। समझ में आया? **पर्यायरूप से घटज्ञानमात्र है,...** इतनी समय की वह पर्याय इतनी मात्र उसे पर की अपेक्षा लागू पड़ती है। है तो स्वयं से। अज्ञानी को तो पर्याय पर से ही अकेली है, ऐसे घुस गयी थी। समझ में आया? वस्तु को वर्तमान पर्यायरूप से देखो तो घटज्ञान (मात्र है) अर्थात् वह पूरे पूर्ण ज्ञानरूप पर्याय न रही न? वह घटज्ञानमात्र, पटज्ञानमात्र इस अपेक्षा से ज्ञेय से है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

इसलिए पर्यायरूप से देखने पर घटज्ञान जिस प्रकार कहा है कि घट के सद्भाव में है,.... क्योंकि उस समय की एक समय की पर्याय घट सम्बन्धी के ज्ञानवाली, इतना इतने में है, ऐसा। और पट आया तो पट सम्बन्धी का ज्ञान इतना इतने काल में है। समझ में आया? भारी है, जरा सूक्ष्म है। पहले कर्ता (रूप से) इनकार किया। यहाँ तो

अपेक्षा ली है वापस, भाई! पहले इनकार किया न? ज्ञेय से नहीं। यहाँ नहीं तो है परन्तु पर्याय में अन्तर... अन्तर होता है न? वस्तु तो एकरूप नहीं, पर्याय में अन्तर होता है, इसलिए ज्ञेय है, वैसा ज्ञान होता है, इस अपेक्षा से ज्ञेय से है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। ऐसा स्याद्वादी ज्ञान करता है। आहाहा! समझ में आया? जरा बात ऐसी है।

यहाँ तत्रूप से सिद्ध करना है न? तत्रूप से सिद्ध करना है न? तत्रूप से तो वापस द्रव्य तो त्रिकाल है, उसका अनुभव ऐसा का ऐसा है परन्तु ऐसे सामान्य पर्याय (में) जब ऐसे लक्ष्य में दूसरा आता है, तब उस ज्ञेयसम्बन्धी का भी ज्ञान यहाँ वर्तता है। एक समय में कहीं पूरे द्रव्य का ज्ञान है? पूरा द्रव्य एक पर्याय में आ जाता है? एक पर्याय के काल में इतना जो ज्ञेय है, उसका ख्याल आता है, इसलिए उस सम्बन्धी कहा जाता है कि घट सम्बन्धी का ज्ञान, पट सम्बन्धी का ज्ञान। इतनी अपेक्षा आने पर वह ज्ञान की पर्याय उतने ज्ञेय सम्बन्धी उसकी है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए पर्यायरूप से देखने पर घट ज्ञान जिस प्रकार कहा है, कि घट के सद्भाव में है, घट के नहीं होने पर नहीं है.... क्योंकि वह पर्याय बदल गयी। दूसरे समय में (दूसरी पर्याय होती है)। वस्तु बदलती नहीं। वस्तु तो ऐसी की ऐसी है। इसलिए उसे कोई अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। यहाँ अपेक्षा इतनी लागू पड़ी। पर्याय बदली इसलिए वस्तु भी बदली और यहाँ पर्याय बदली, इस अपेक्षा से कहा जाता है कि घट सम्बन्धी का ज्ञान, पट सम्बन्धी का ज्ञान। पर्याय सम्बन्धी ज्ञान तो अपना है। परन्तु इस अपेक्षा से घट सम्बन्धी का अपना ज्ञान, पट सम्बन्धी का अपना ज्ञान, अमुक सम्बन्धी का अपना ज्ञान ज्ञान तो अपनी पर्याय है। ऐसा सब समझना पड़ता होगा? भाई! दया, व्रत पाले और भक्ति करे, (इसलिए) हो जाये धर्म। हो गया। ऐसा समझने की सिरपच्ची मिटी। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! वे तो सब विकल्प हैं।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द मूर्ति प्रभु, एक समय में अकेला अखण्ड आनन्द ज्ञान का घन है। उसका अनुभव करने पर जो पर्याय हुई, उसमें तो कहते हैं कि पर की अपेक्षा है ही नहीं। परन्तु जब (पर) लक्ष्य में आने पर निमित्त का लक्ष्य—जहाँ ज्ञान होता है, तब घट सम्बन्धी का इतना ज्ञान घट सम्बन्धी का इतना ही ज्ञान है, पट सम्बन्धी

का उतना ही ज्ञान है। इस अपेक्षा से घट के सद्भाव में ज्ञान और घट के अभाव में नहीं। (ऐसा कहा जाता है।) इतनी अपेक्षा पर्याय में (आती है)। भिन्न-भिन्न अवस्था है न? भिन्न-भिन्न अवस्था है। अवस्था का एक समय है। दूसरे समय में दूसरी ओर का ज्ञान है, इस अपेक्षा से कहने में आता है। वैसे तो पूरी चीज़ का ज्ञान अनुभव में आवे, तब तो कुछ भेद है नहीं। परन्तु इस पूरी चीज़ के अनुभव के अतिरिक्त ज्ञानपर्याय उस-उस काल में ऐसे काम करे, तब उस-उस प्रकार से जो है, ऐसा ज्ञान करे, इस अपेक्षा से कहा जाता है ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान, ऐसा (कहते हैं)। समझ में आया? यह तो भाई! धीरज की बात है। यह बात कही एकदम रट जाये, वह यह बात (नहीं है)।

वस्तु है पूरा ज्ञान का पुंज प्रभु है। अकेला ज्ञान, जिसमें से केवलज्ञान झरे, ऐसा आत्मा है। इस आत्मा को कहते हैं कि, यह वस्तु पूरी है, वह सत् है और उसकी पर्याय भी सत् ही है। एक सत्ता के ही दो भाग हैं। समझ में आया? परन्तु जब पूरी चीज़ का अनुभव करें, देखें तो वह है तो पर्याय परन्तु पूरी चीज़ की अपेक्षा से वह पर्याय निर्विकल्प है, उसमें कुछ अपेक्षा नहीं परन्तु अकेला सामान्य, इसके अतिरिक्त दूसरी पर्याय हो, उसमें साथ में ऐस, तब उसे जिस सम्बन्धी ऐसा ज्ञेय हो, वैसा यहाँ ज्ञान होता है। ज्ञेय का ज्ञान, ज्ञेय का ज्ञान। इस अपेक्षा से स्याद्वादी को पर की अपेक्षा का ऐसा ही, इतना ही, ऐसा ही ज्ञान, ऐसे ज्ञेय का ही यह ज्ञान, ऐसे ज्ञेय का यह ज्ञान—ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया? कोमलचन्दजी! इसमें थोड़ी कोमल बुद्धि चाहिए, कहते हैं। इसमें कठोर बुद्धि काम न आवे। आहाहा!

ऐसा ही है। उसमें क्या, कहते हैं, ज्ञानपर्याय इतनी ही है, इतना ही है, ऐसा (कहते हैं)। जैसा ज्ञेय है, उतना ही ज्ञान है। **द्रव्यरूप से अनुभव करने पर घटज्ञान ऐसा न देखा जाये...** लो! स्व को पूरे द्रव्यरूप से देखते हैं **ज्ञान ऐसा देखा जाये तो घट से भिन्न अपने स्वरूपमात्र स्वयंसिद्ध वस्तु है।** घटज्ञान सम्बन्ध की, एक सम्बन्धी की पर्याय, इस अपेक्षा से न देखें (और) पूरी चीज़ सम्बन्धी देखें तो स्वयं वस्तु, वह वस्तु है। उसमें पर की अपेक्षा नहीं आती। वह तो स्वज्ञेय का ज्ञान हो गया। समझ में आया? **ज्ञान ऐसा देखा जाये तो घट से भिन्न अपने स्वरूपमात्र स्वयंसिद्ध वस्तु है। इस प्रकार**

अनेकान्त के साधने पर वस्तुस्वरूप सधता है। इस प्रकार अनेकान्त को साधने से वस्तुस्वरूप साधता है।

एकान्त से जो घट घटज्ञान का कर्ता है,.... समझ में आया? **एकान्त से जो घट घटज्ञान का कर्ता है, ज्ञान वस्तु नहीं है तो ऐसा होना चाहिए...** अब न्याय देते हैं। यदि घट उस घटज्ञान की पर्याय का कर्ता हो और यहाँ शक्तिरूप वस्तु—जाननेवाली न हो। घट, घटज्ञान की पर्याय का कर्ता हो **ज्ञान वस्तु नहीं है तो ऐसा होना चाहिए कि जिस प्रकार घट के पास बैठे पुरुष को...** घड़े के पास बैठा हुआ पुरुष, **घटज्ञान होता है....** उस पुरुष को घट का ज्ञान (होता है)। समझ में आया? घट के पास बैठा हुआ पुरुष जो ज्ञानस्वरूप पुरुष है, तो उसे घटज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। घट के पास बैठा हुआ ज्ञानस्वरूप पुरुष है, उसे घट का ज्ञान (होता है)। क्योंकि ज्ञानस्वरूप पुरुष है परन्तु स्तम्भ को रखकर देखो घट के पास (तो घट का ज्ञान होता है)? समझ में आया?

घट के पास बैठे पुरुष को घटज्ञान होता है, उसी प्रकार जिस किसी वस्तु को घट के पास रखा जाये... किसी भी वस्तु को। **उसे घटज्ञान होना चाहिए।** पर्याय में भी ज्ञान ज्ञानस्वरूप से भगवान आत्मा है, उसके पास बैठने से ज्ञान होता है। परन्तु जिसमें ज्ञानस्वरूप ही नहीं, उसे पास में बैठाओ, घट को रखो। किसे होगा? वह तो जड़ है। समझ में आया? स्तम्भ को रखो कि स्तम्भ के पास घड़ा रखो। लकड़ी में चौरी नहीं लगाते (बाँधते)? बाँधते हैं न स्तम्भ में? क्या कहलाता है वह? चार बाँस च्वरी बाँधते हैं या नहीं? चार ओर चार बाँस खड़े (रखे)। उन्हें—बाँस को कहीं होता होगा या नहीं घट का ज्ञान? जिसमें ज्ञान हो, उसे घटज्ञान होता है। परन्तु जिसमें ज्ञान नहीं, उसे किसका होता होगा? समझ में आया?

जैसे घट के पास बैठे पुरुष को घटज्ञान होता है उसी प्रकार जिस किसी वस्तु को घट के पास रखा जाये... कोई भी वस्तु घट के पास रखें तो **उसे घटज्ञान होना चाहिए। ऐसा होने पर स्तम्भ के पास घट के होने पर स्तम्भ को घटज्ञान होना चाहिए सो (परन्तु) ऐसा तो नहीं दिखाई देता।** शीशपेन को पुस्तक के पास बैठाओ। यह लकड़ी है न? इससे ज्ञान होता हो तो इसे ऐसे रखो, लो! इसमें ज्ञान स्वरूप ही नहीं। परन्तु ज्ञान स्वरूप के पास ये वस्तु आयी। यह वस्तु है तो ज्ञान, ज्ञान करता है। वह तो

ज्ञान करता है। ज्ञान वस्तु है, वह ज्ञान करती है। समझ में आया? ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है तो सामने आने पर ज्ञान, ज्ञान करता है। वह तो स्वयं ज्ञान है, वह ज्ञान करता है। कुछ इससे ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। उससे होता हो तो इस शीशपेन को होना चाहिए, लो! समझ में आया या नहीं? यह आँखें तो बहुत दूर है। इसमें भी ज्ञान हो, इसे ज्ञान हो। यदि इससे हो तो इस भी होना चाहिए। (शीशपेन में) ज्ञान कहाँ था, वह यह अक्षर है, ऐसा ज्ञान इसमें हो? ज्ञान स्वरूप भगवान है तो ऐसा करने से उसे ज्ञान होता है। वह तो ज्ञानवाला हो उसे ज्ञान होता है, उससे होता नहीं। उससे होता हो तो इसे भी होना चाहिए, अँगुली को होना चाहिए, लो न ऐसे। कहो, समझ में आया या नहीं?

अन्ध होते हैं न? अन्ध को उसके अक्षर होते हैं। जन्मांध होते हैं, उनके अक्षर होते हैं। रचे हुए होते हैं। परन्तु ज्ञानवाला है, उसे वहाँ ज्ञान होता है। ज्ञान बिना का आत्मा हो और अँगुली फेरना चाहिए, वहाँ ऐसे-ऐसे फिरावे तो किसे ज्ञान होगा? ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। नौ तत्त्व का ज्ञान करता हूँ। ऐसा शब्द से शब्द बोला जाता है न? क्योंकि उभरे हुए अक्षर होते हैं न? एक जीव में अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण में एक-एक गुण की अनन्त शक्ति है, एक-एक गुण तीन काल की पर्यायवाला है। ऐसे अक्षर लिखे हुए हों, तत्प्रमाण आत्मा एकदम बोल जाये। अँगुली फिराई, वहाँ (खबर पड़ जाती है), परन्तु ज्ञान अन्दर है, उसके कारण से होता है। समझ में आया?

सो (परन्तु) ऐसा तो नहीं दिखाई देता। तिस कारण ऐसा भाव प्रतीति में आता है कि जिसमें ज्ञानशक्ति विद्यमान है.... जिसमें ज्ञानस्वरूप से भगवान ज्ञानस्वरूप विराजमान है। **उसको घट के पास बैठकर घट के देखने-विचारनेपर.... घट के देखने-विचारनेपर घटज्ञानरूप इस ज्ञान की पर्याय परिणमती है।** लो! वह पर्याय ऐसे परिणमती है। पर के कारण परिणमती हो तो ऐसा होना चाहिए। स्तम्भ को भी ज्ञान परिणमना चाहिए। समझ में आया?

घटज्ञानरूप इस ज्ञान की पर्याय परिणमती है। देखा? **घटज्ञानरूप, घटज्ञानरूप इस ज्ञान की पर्याय परिणमती है।** परन्तु घट ज्ञानरूप परिणमती है। **इसलिए स्याद्वाद वस्तु का साधक है, एकान्तपना वस्तु का नाशकर्ता है।** समझ में आया? पर्याय पर से

अतत है, पर्याय अपने से तत् है। गुण भी तत् है और पर्याय भी तत् है। अतत है—पर से नहीं। वस्तु स्वयं से ही। इस प्रकार यह एक तत् का बोल सिद्ध किया। वस्तु तत्‌रूप से है, वह पररूप से नहीं। समझ में आया? उसमें तो बहुत थोड़ा लिखा है। इसमें तो तीन पृष्ठ भरे हैं। पण्डित जयचन्दजी के थोड़े शब्दार्थ हैं न? उसमें बहुत थोड़ा लिखा है।

अब दूसरा, अज्ञानी पर को ही अपना स्वरूप मानता है। वह पर सब स्वयं ज्ञान ही है, ऐसा मानता है। सब ज्ञान है, सब आत्मा ही है, मुझे भिन्न ज्ञेयवस्तु नहीं है।

कलश - २४९

(शार्दूलविक्रीडित)

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमय: पशु पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ।।३-२४९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो ज्ञान को द्रव्यरूप मानता है; पर्यायरूप नहीं मानता है। इसलिए जिस प्रकार जीवद्रव्य को ज्ञानवस्तुरूप से मानता है, उस प्रकार ज्ञेय जो पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य, उनको भी ज्ञेयवस्तु नहीं मानता है; ज्ञानवस्तु मानता है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञान, ज्ञेय को जानता है—ऐसा ज्ञान का स्वभाव है तथापि ज्ञेयवस्तु, ज्ञेयरूप है; ज्ञानरूप नहीं है— 'पशु: स्वच्छन्दं आचेष्टते' [पशु:] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, [स्वच्छन्दं] स्वेच्छाचाररूप-कुछ हेयरूप, कुछ उपादेयरूप—ऐसा भेद नहीं करता हुआ, समस्त त्रैलोक्य उपादेय—ऐसी बुद्धि करता हुआ— ऐसी प्रतीति करता हुआ, [आचेष्टते] नि:शंकपने प्रवर्तता है। किसके समान? [पशु: इव] तिर्यञ्च के समान। कैसा होकर प्रवर्तता है? [विश्वमय: भूत्वा] 'अहं विश्वं'—ऐसा जान, आप विश्वरूप हो प्रवर्तता है। ऐसा क्यों है? कारण कि 'सकलं स्वतत्त्वाशया दृष्ट्वा' [सकलं] समस्त ज्ञेयवस्तु को, [स्वतत्त्वाशया] ज्ञानवस्तु की बुद्धिरूप से [दृष्ट्वा] प्रगाढ़ प्रतीतिकर। ऐसी प्रगाढ़ प्रतीति क्यों होती है? कारण कि 'विश्वं ज्ञानं इति प्रतर्क्य' त्रैलोक्यरूप जो कुछ है, वह ज्ञानवस्तुरूप है—ऐसा जानकर। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु, पर्यायरूप से ज्ञेयाकार होती है सो मिथ्यादृष्टि, पर्यायरूप भेद नहीं मानता है; समस्त ज्ञेय को, ज्ञानवस्तुरूप मानता है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञेयवस्तु, ज्ञेयरूप है; ज्ञानरूप नहीं है। यही कहते हैं— 'पुन: स्याद्वाददर्शी स्वतत्त्वं स्पृशेत्' [पुन:] एकान्तवादी जिस प्रकार कहता है, उस प्रकार ज्ञान को वस्तुपना नहीं सिद्ध होता है। स्याद्वादी जिस प्रकार कहता है, उस प्रकार वस्तुपना ज्ञान को सधता है। कारण कि एकान्तवादी ऐसा मानता है कि समस्त ज्ञानवस्तु है, सो इसके माननेपर, लक्ष्य-लक्षण का अभाव होता

है; इसलिए लक्ष्य-लक्षण का अभाव होनेपर, वस्तु की सत्ता नहीं सधती है। स्याद्वादी ऐसा मानता है कि ज्ञानवस्तु है, उसका लक्षण है— समस्त ज्ञेय का जानपना; इसलिए इसके कहनेपर, स्वभाव सधता है; स्वस्वभाव के सधनेपर, वस्तु सधती है; अतएव ऐसा कहा। जो स्याद्वाददर्शी [स्वतत्त्वं स्पृशेत्] वस्तु को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है, ऐसा स्याद्वाददर्शी अर्थात् अनेकान्तवादी जीव, ज्ञान वस्तु है-ऐसा साधने के लिए समर्थ होता है। स्याद्वादी, ज्ञानवस्तु को कैसी मानता है? 'विश्वात् भिन्नं' [विश्वात्] समस्त ज्ञेय से [भिन्नं] निराला है। और कैसा मानता है? 'अविश्वविश्वघटितं' [अविश्व] समस्तज्ञेय से भिन्नरूप; [विश्व] [1]समस्त ज्ञेय से भिन्नरूप; [विश्व] अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से [घटितं] जैसा है, वैसा अनादि से स्वयंसिद्ध निष्पन्न है-ऐसी है ज्ञानवस्तु। ऐसा क्यों मानता है? 'यत् तत्' जो-जो वस्तु है 'तत् पररूपत: न तत्' वह वस्तु, पर वस्तु की अपेक्षा, वस्तुरूप नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्ञानवस्तु, ज्ञेयरूप से नहीं है; ज्ञानरूप से है। उसी प्रकार ज्ञेयवस्तु भी, ज्ञानवस्तु से नहीं है; ज्ञेयवस्तुरूप है। इसलिए ऐसा अर्थ प्रगट हुआ कि पर्यायद्वार से ज्ञान, विश्वरूप है; द्रव्यद्वार से, आपरूप है— ऐसा भेद, स्याद्वादी अनुभवता है। इसलिए स्याद्वाद, वस्तुस्वरूप का साधक है; एकान्तपना वस्तु का घातक है।।३-२४९।।

कलश - २४९ पर प्रवचन

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया
भूत्वा विश्वमय: पशु पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते।
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ।।३-२४९।।

अहो! अनेकान्त वस्तु! वस्तुरूप से है और पर्यायरूप से भी है। पररूप से नहीं, ऐसा अनुभव करनेवाले को अनेकान्त वस्तु का अनुभव का स्वाद आवे, तब वह अनेकान्त कहलाता है, ऐसा यहाँ कहना है। वस्तु त्रिकाल है, उसकी अपेक्षा से वर्तमान परिणति होती है, ऐसी परिणति करनेवाले को स्वयं अपने स्वरूप सन्मुख जुड़ गया है, इसलिए परिणति निर्मल अनुभव होता है, उसे अनेकान्त (कहते हैं)। समयमात्र का अनुभव,

वस्तु त्रिकाल। समयमात्र का अनुभव, वस्तु त्रिकाल, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? वस्तु त्रिकाल, उसका अनुभव पर्याय स्वयं से होकर, स्व के आश्रय से (हुई)। अपने से अर्थात् स्व के पक्ष से हुई। इसलिए सत्ता द्रव्यरूप भी हुई, पर्यायरूप हुई।

द्रव्य का लक्ष्य करने से, द्रव्य कायम रहनेवाला, पर्याय क्षणिक उतपन्न होनेवाली, ऐसे दो प्रकार का तत्त्व मानने से उसके द्रव्य सन्मुख के आश्रय से पर्याय में अनुभव होता है। यह अनेकान्त का फल है। समझ में आया? तब उसने द्रव्य द्रव्यरूप से, पर्याय पर्यायरूप से मानी, ऐसा कहने में आता है। इस प्रकार द्रव्य द्रव्यरूप से और अकेली पर्याय है, ऐसा यहाँ नहीं कहना वापस। इसलिए अन्दर अनुभव डाला है। समझ में आया? द्रव्य द्रव्यरूप से कायम है—तत्, उसका अनुभव पर्याय में होने से, पर्याय की दशा क्षणिक है। वस्तु पूरी उसके अनुभव में आने पर वस्तु पूरी रह गयी। पर्याय का अनुभव हुआ। इस प्रकार अनेकान्त तत्त्व सामान्य एकरूप, पर्याय एक क्षणिकरूप। (वस्तु) त्रिकालरूप। सामान्य में पर्याय नहीं और पर्याय में पूरा तत्त्व नहीं, ऐसा अनुभव होना, इसका नाम अनेकान्त का अमृत का वेदन कहने में आता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? है न? पीछे कुछ शब्द आते हैं न? अनेकान्त कहने से ऐसा है। ऐसा श्लोक में आता है। कहीं आता है या नहीं? पूरा होने के बाद कहते हैं। उसमें भावार्थ होगा, इसमें नहीं होगा। उसमें भरा है न भावार्थ? इसमें नहीं होगा। उसमें भरा है न मूल में? चौदह बोल के बाद होता है। १४ बोल। उसमें (समयसार में २६२ कलश) है न? उसमें इतना अधिक अर्थ नहीं है। उसमें साधारण भरा है। उसमें तो बहुत थोड़ा है। **यदि अपने आत्मा की ओर दृष्टिपात करके—अनुभव करके देखा जाये तो (स्याद्वाद के उपदेशानुसार) ज्ञानमात्र आत्मवस्तु अपने आप अनेक धर्मयुक्त प्रत्यक्ष अनुभवगोचर होती है। इसलिए हे प्रवीण पुरुषों! तुम ज्ञान को तत्स्वरूप... इत्यादि अनेक धर्मस्वरूप प्रत्यक्ष अनुभवगोचर करके प्रतीति में लाओ।** इसके अतिरिक्त दूसरा कहीं है। दूसरे शब्द में है कुछ।

(यहाँ अपने) तीसरा श्लोक। सीधा भावार्थ, कहने से पहले भावार्थ। अर्थात् कि इसमें भाव क्या कहना है, ऐसा इसका अर्थ शुरु करते हैं। **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो ज्ञान को द्रव्यरूप मानते हैं,...** यह बात जरा ध्यान रखना!

ज्ञान को—पदार्थ को वस्तुरूप से—वस्तुरूप से मानता है। **पर्यायरूप नहीं मानता है...** पर्यायस्वरूप से एक समय की पर्याय है, उसे मानता नहीं। **इसलिए जिस प्रकार जीवद्रव्य को ज्ञानवस्तुरूप से मानता है...** इस प्रकार जिस प्रकार से वस्तु को ज्ञानस्वरूप से द्रव्यरूप से मानता है, **उस प्रकार ज्ञेय जो पुद्‌गल धर्म-अधर्म-आकाश-कालद्रव्य उनको भी ज्ञेयवस्तु नहीं मानता है,...** भाषा ऐसी है कि पर्यायरूप नहीं मानता। समझ में आया? यह पर्याय का, यह जो छह द्रव्य का ज्ञान (कहा इसमें) एक जीव नहीं लिया। अपेक्षा से; जीव को यहाँ नहीं लिया, पाँच का लेना है।

वास्तव में तो एक समय की पर्याय, उसे जो पाँच का ज्ञान होने की एक समय में सामर्थ्य है, जड़ को जानने की एक समय की पर्याय की सामर्थ्य है। एक समय की वह पर्याय मानता नहीं, इसका अर्थ कि वह छह द्रव्य को मानता नहीं। ऐसे तो पर्याय को मानता (नहीं), परन्तु उस पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि यह जानूँ, इसलिए इतनी उस पर्याय को मानता नहीं। समझ में आया? पर्याय को स्वीकार करने पर पर्याय की जो छह द्रव्य को ज्ञेयरूप से जानने की सामर्थ्य है, उतनी पर्याय माने तो वह पर्याय मानी कहलाती है। द्रव्य तो इतना नहीं, द्रव्य तो पूरा अखण्डानन्द एकरूप है। समझ में आया? यह दूसरे ऐसा कहते हैं कि भाई! छह द्रव्य नहीं और अकेला आत्मा माने तो क्या (दिक्कत है)? तो उसने आत्मा जाना या नहीं? माना या नहीं? परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं है।

आत्मा के एक गुण की एक समय की पर्याय, उसे माना ही तब कहलाता है कि पर्याय का स्वरूप ही छह द्रव्य ज्ञेय, भले यहाँ जीव नहीं लिया एक अपेक्षा से, ऐसा लगता है, ज्ञानस्वरूप है न? सबका ज्ञान, इसलिए ज्ञान की पर्याय एक समय की ज्ञान की निश्चय (पर्याय) जो है, जीव के ज्ञान की वह पर्याय दूसरे सबको जानने की शक्तिवाली ही वह पर्याय है। इतनी पर्याय न माने, उसने छह द्रव्य को माना नहीं और छह द्रव्य को माना नहीं उसने जीव की एक समय की पर्याय ही मानी नहीं। समझ में आया?

छह विषय पूरे हैं। एक समय की पर्याय की, उसकी जानने की सामर्थ्य है। अब वह विषय है, उतनी ही यहाँ ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य है। वह पर्याय मानता नहीं

अर्थात् कि उस पर्याय में जाननेयोग्य वस्तु है, उसे सबको एक ही मानता है। समझ में आया? भिन्न नहीं मानता। सब उस पर्याय में ज्ञात हुआ वह सब... सब... सब... सब... एक ही है, तीन लोक एक ही है। समझ में आया इसमें? थोड़ी विशेषता है।

इसका अर्थ यह है कि वस्तु तो वस्तु है। **द्रव्यरूप मानता है,...** वस्तु वस्तुरूप से (मानता है)। परन्तु पर्याय नहीं मानता। इसलिए इसका अर्थ कि भिन्न वस्तु है, पृथक् है, उसे नहीं मानता। वह तो सब एक ही है, ऐसा मानता है। परन्तु पर्याय में ऐसा जानने की सामर्थ्य है, तथापि वह पर्याय पर से भिन्न है, पर से भिन्न है। इतनी एक समय की पर्याय वह मानता नहीं, इसलिए पर्याय न मानने से वह छह द्रव्य को मानता नहीं। पर्याय की सामर्थ्य ही इतनी शक्तिवाली है। द्रव्य की शक्ति तो उसकी अपार है, उसका प्रश्न यहाँ है नहीं। वह ज्ञान की पर्याय ही इतनी है कि छह द्रव्य को बराबर जाने। जाने, ऐसी (होने) पर भी वह पर्याय पररूप होकर नहीं जानती। तब अज्ञानी कहता है कि पर्याय नयी है। अर्थात् कि मैं नहीं। यह सब एक है। जानने की पर्याय उपादेय है और दूसरी चीज़ हेय है, ऐसा न मानकर वह पर्याय ही सब पर के रूप से है और पूरा तीन लोक ही मैं हूँ। मुझमें उस ज्ञेय का अतत्पना है, ऐसा वह नहीं मानता। यहाँ अतत् का प्रश्न है न भाई? यह अतत् का बोल है। यह गजब बात, भाई!

वीतराग देव का अनेकान्त तत्त्व उस कितने वर्ष के पुराने सम्प्रदाय के लोग यह पढ़े तो (कहे), हम कुछ समझते नहीं। परन्तु जैनदर्शन ही यह है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर ने कहा हुआ आत्मा ही इतना और ऐसा, ऐसा, दूसरा तीन काल में दूसरे धर्म में हो नहीं सकता। यह आत्मा आत्मा भले सब बात करते हैं। एक जाने, ऐसा जाने और अनुभव हो और ढींकणों हो और फींकणो हो न। परन्तु आत्मा ऐसा है, ऐसा माने नहीं, जाने नहीं, तब तक उसे अनुभव सच्चा होता ही नहीं। आता है न एक? एक है या नहीं? अनुभव करे तो भी समझे बिना... एक जगह नहीं आता? पण्डित जयचन्दजी ने भावार्थ में लिखा है, नहीं? वस्तु को समझे बिना ऐसा द्रव्य-पर्याय... ऐसा एक जगह आता है। यह अनुभव भी उसका व्यर्थ है। इतना भावार्थ में आता है। कहीं आता है, सब कहाँ से याद रहे? किस जगह है, कहाँ है? इस समयसार में है। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु जो है महान, सर्वज्ञ परमेश्वर तीन लोक के नाथ तीर्थंकर ने देखा हुअ आत्मा, वह आत्मा द्रव्यरूप तो अपार... अपार... अपार... जिसकी शक्ति है। परन्तु उसके एक समय की ज्ञान की पर्याय की कितनी सामर्थ्य है? कि वह सब छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्यवाली पर्याय है। उसकी पर्याय को माने, उसमें छह द्रव्य आ जाते हैं। समझ में आया? यह कहते हैं कि हम पर्याय को मानते हैं परन्तु छह द्रव्य मानते नहीं। तो छह द्रव्य जितना जानने की एक समय की पर्याय है, उतना आत्मा एक समय में है। पूरा (आत्मा) तो भिन्न वस्तु रह गयी। कहो, समझ में आया?

इसलिए एक जगह धर्मदास क्षुल्लक ने लिखा है, जिसने छह द्रव्य, द्रव्यरूप से जानने में नहीं है, उसे स्वद्रव्य जानने में आ नहीं सकता। भाई! धर्मदास क्षुल्लक ने (लिखा है)। उसका अर्थ यह है कि भगवान आत्मा ज्ञानज्योति स्वरूप प्रभु! ज्ञानगुण से पूरा भण्डार ज्ञान का पुंज प्रभु—द्रव्य, उसकी एक समय की अवस्था, श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय हो तो भी लोकालोक को जानने की सामर्थ्यवाली है, भले परोक्ष (जाने) परन्तु इतना उसका पर्यायधर्म है। कोमलचन्दजी! पर्याय का इतना धर्म है। आहाहा! उस पर्याय को इस प्रकार से न माने, वह छह द्रव्य को मानता नहीं। छह द्रव्य ज्ञेयरूप से इतने पूरे भिन्न हैं, उन्हें मानता नहीं। इतना जाननेवाली मेरी ज्ञान की पर्याय, मेरी पर्याय इतनी है। वे छह द्रव्य हैं, इसलिए पर्याय इतनी है—ऐसा नहीं है। ज्ञेय से वह पर्याय अतत् है। समझ में आया? आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! कहो, जुगराजजी! बहुत सूक्ष्म। ऐसा समझने में मेरा सिर फट जाता है। एक व्यक्ति कहे, उकता जाते हैं। परन्तु भगवान! यह तो तेरा सत् स्वरूप है, उसे समझने में उकताहट कैसी?

वस्तु स्वरूप भगवान आत्मा... कहते हैं कि पर्यायरूप नहीं मानता, भेदरूप नहीं मानता, दूसरी भाषा से कहें तो। एक स्वरूप की पर्याय, उसमें भेद—सामने चीज़ अनेक अनन्त है, उसे नहीं मानता। समझ में आया? **इसलिए जिस प्रकार जीवद्रव्य को ज्ञानवस्तुरूप से मानता है, उस प्रकार ज्ञेय जो पुद्गल....** अनन्त-अनन्त पुद्गल। **धर्म-अधर्म-आकाश...** एक-एक। **कालद्रव्य...** असंख्य। **उनको भी ज्ञेयवस्तु नहीं मानता है,...** भिन्न वस्तु, उस ज्ञान की पर्याय से भिन्न है, उसे नहीं मानता। ज्ञान की पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है, ऐसा नहीं माना, उसने ज्ञेय को भी नहीं माना। समझ में आया?

(अन्य वस्तु को) **मानता है, ज्ञानवस्तु मानता है।** अकेली ज्ञान ही वस्तु, वस्तुरूप से मानता है परन्तु वह एक समय की पर्याय और उसकी जानने की इतनी सामर्थ्यवाली और ज्ञेय भिन्न है, ऐसा वह नहीं मानता। समझ में आया? कोई कहे, तिर्यंच को सम्यग्ज्ञान होता है और उसे इतनी सब तो खबर नहीं होती। उसे वस्तु के स्वरूप का सामान्यपना और विशेष जो है, ऐसा उसे ख्याल में आ जाता है। समझ में आया? उसका विस्तार कर सके, ऐसा भले न हो, परन्तु वस्तु वस्तुरूप से है और वह पर्याय में जो अनुभव हुआ, वह आनन्दरूप हुआ, वह यह पर्याय पूर्ण में से आयी है। इसलिए पूर्ण भी स्वीकारा है और पर्याय भी स्वीकार की है। और उस पर्याय को अन्दर एकाग्र होकर बढ़ाना चाहता है तो मोक्ष भी स्वीकार किया है, और उसमें आस्रव, बन्ध आदि विकल्प है, उनमें से हटना चाहता है, इसलिए इस जाति से भिन्न है, ऐसी भी अन्दर स्वीकृति आ गयी है। समझ में आया?

ज्ञानवस्तु मानता है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेय को जानता है, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है.... ज्ञान ज्ञेय को पर्याय में जाने, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। ज्ञान वस्तु है, वह **ज्ञेय को जानता है, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है, तथापि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है,....** समझ में आया? **ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं है....** ज्ञानरूप नहीं। इतनी जानने की सामर्थ्य होने पर भी वह ज्ञेय है, तत्प्रमाण ज्ञान जाने, तथापि ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं। समझ में आया? ज्ञेय से अतत् रूप है। आहाहा!

केवलज्ञानी की पर्याय, पर्याय को जानने से उस पर्याय में लोकालोक ज्ञात होता है। समझ में आया? पर्याय को जानने से (लोकालोक ज्ञात होता है)। जैसे जल को जानने से जल में पड़े हुए (प्रतिबिम्बित) तारे ज्ञात होते हैं। जल की पर्याय को जानने से जल में तारे छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे, एक चन्द्र और सूर्य परिवार है। एक चन्द्र और सूर्य का परिवार, छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे। समझ में आया? यह क्या है? अंक कठिन पड़ता है। एक चन्द्र, एक सूर्य, उसके साथ २८ नक्षत्र और ८८ ग्रह और छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे। ऐसे जल को देखने से, ऐसे जल को देखने से वे ज्ञात हो जाते हैं, तथापि वह ज्ञान की

पर्याय, उस रूप जल की पर्याय परिणमी तो भी वह वस्तु से भिन्न है। समझ में आया? ऐसे ज्ञान की पर्याय उसी प्रकार से सामने चीज़ है, ऐसा यहाँ ज्ञात होता है, परिणमा है तथापि उस पर्याय से वह चीज़ भिन्न है, ऐसा अज्ञानी मानता नहीं। इसलिए एकान्त द्रव्य को मानता है परन्तु पर्याय को और पर्याय में ज्ञात होने योग्य जो विश्व है, उसे भिन्न मानता नहीं। इस प्रकार पूरा हूँ, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि एकान्त माननेवाला है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर शुक्ल १५, बुधवार, दिनांक-०८-१२-१९६५, कलश-२४९, प्रवचन-२६३

स्याद्वाद अधिकार, कलशटीका, तीसरा कलश है। थोड़ा चला है, फिर से (लेते हैं)। भावार्थ (अर्थात्) क्या कहना है? ऐसा। भावार्थ का अर्थ (यह कि) इसमें क्या कहना है? कह गये हैं, उसका भावार्थ, ऐसा नहीं। **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो ज्ञान को द्रव्यरूप मानता है,...** ज्ञान वस्तुरूप से है, ऐसा माने, वस्तुरूप से द्रव्य (माने) परन्तु **पर्यायरूप नहीं मानता है...** भेद नहीं मानता। समझ में आया? पर्यायरूप अवस्था जो अंश है, वह भेद है अथवा उसमें दूसरी चीज़ ज्ञात होती है, वह भेद है, भिन्न है, उसे वह नहीं मानता। समझ में आया?

इसलिए जिस प्रकार जीवद्रव्य को ज्ञानवस्तुरूप से मानता है... वस्तु ज्ञायक चैतन्य वस्तु ज्ञानरूप है, ऐसा मानता है। **उस प्रकार ज्ञेय...** ज्ञात होनेयोग्य वस्तु जो पर्याय में ज्ञात हो, ऐसा पर्यायधर्म और वह ज्ञात हो, ऐसी यह चीज़। **पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-कालद्रव्य उनको भी ज्ञेय वस्तु नहीं मानता है,...** अर्थात् कि उस पर्याय में ज्ञात हो वह सब मैं ही हूँ, ऐसा वह मानता है। भेद वस्तु है, मुझसे भिन्न है, भले मेरी ज्ञानपर्याय में वह ज्ञात हो, पर्याय में वह ज्ञात हो, ज्ञात होने पर भी है भिन्न, परन्तु वह भिन्न नहीं मानता, इसलिए वास्तव में वह भेद पर्याय; वस्तु जो त्रिकाल है, उसे माने, परन्तु एक समय की पर्याय को नहीं मानता। पर्याय में ज्ञत होनेयोग्य है, इसलिए यहाँ ज्ञेयाकार परिणमता है, (तो कहे), नहीं, ऐसा नहीं है। वह वस्तु नहीं। समझ में आया?

वस्तु जो है ज्ञानस्वरूप द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... वस्तु ध्रुव वह है, परन्तु वह ज्ञान की पर्याय उसमें ज्ञेयाकार परिणमन होता है न? यह, वह सब एक है, वह सब एक है। ज्ञान की पर्याय भिन्न है और वह भिन्न चीज़ है, ऐसा वह नहीं मानता। जानने में आवे, वह सब वस्तु एक है। समझ में आया? नहीं समझ में आता?

ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय आकार में छह द्रव्य जानने में आते हैं। यहाँ भले पाँच लिये। सब में ज्ञानमय एक लेना है न इसलिए। जानने में आते हुए जो भेदरूप ज्ञान की पर्याय से भिन्न चीज़ है, वह (ज्ञान में) ज्ञात होती है, पर्याय में ज्ञात होती है तो भी जानते

हुए 'यह चीज़ है, वह सब मैं ही हूँ', (ऐसा मानता है)। परन्तु पर्याय भेद है और एक अंश में वह ज्ञात हो ऐसी चीज़ है, ऐसा वह नहीं मानता। यह सूक्ष्म है, भाई! पर्याय में डाला है वापस डाला है न! इसका हेतु तो यह है कि पर्याय में वह द्रव्य जानने की सामर्थ्य है। इतना भेद का पर्याय का स्वभाव है, इतना वह मानता नहीं अर्थात् कि वस्तु अपने ज्ञान से, गुण से भिन्न चीज़ दूसरी है, पर्याय में जानने योग्य भले हो, परन्तु वह चीज़ मेरे ज्ञान की पर्याय से भी भिन्न है। उस भिन्न को नहीं मानता, इसलिए भेद को-पर्याय को नहीं मानता। समझ में आया? यह सब वह मैं हूँ, ऐसा मानता है, लो! परन्तु वह ज्ञानस्वरूप मैं (हूँ), पर्याय में ज्ञात होने पर भी वह वस्तु भिन्न है। ज्ञानपर्याय मुझमें अभेद है, ऐसा वह नहीं मानता। समझ में आया?

ज्ञेय जो पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-कालद्रव्य उनको भी ज्ञेय वस्तु नहीं मानता है,... भेद है, जगत में अपने से भिन्न पूरी चीज़ है, उसे मानता नहीं। ज्ञान वस्तु माने। वह सब होकर ज्ञान ही है। और भिन्न कोई चीज़ है, ऐसा मानता नहीं। वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी एकान्तवादी है। उसका ज्ञान हुआ, इससे कहीं सब ज्ञान वस्तु (रूप) हो गया? उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, इसलिए ज्ञान वस्तु सब हो गयी? अपने तो सब मानो एक ही है। समझ में आया? कहा न यह?

उसमें पढ़ा था। उसने लिखा है यह अलमारी का दृष्टान्त दिया है। तब का याद रह गया है। (संवत्) १९८७। यह पाट ज्ञात होता है। ज्ञान में यह ज्ञात होता है। (पाट में) ाान की जाति नहीं होती तो कैसे ज्ञात होता? ऐसा कहा। ज्ञान में यह ज्ञात होता है तो वह ज्ञान की जाति न हो तो कैसे ज्ञात हो? ज्ञान से भिन्न चीज़ है, ऐसा हो तब तो वह ज्ञात कैसे हो? ज्ञान की जाति है। ज्ञान की जाति ही वह चीज़ है। यहाँ कहते हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

ज्ञान में जानने का स्वभाव है और उस ज्ञेय का जनवाने का (स्वभाव है)। इतना भिन्न है तो (एकान्तवादी अज्ञानी) कहता है कि वह तो ज्ञेय है, वह ज्ञान ही है, वह ज्ञान ही है। क्योंकि यहाँ वस्तु ज्ञात हो गयी, यहाँ पर्याय में ज्ञात हुई, वह ज्ञात हुई की जाति की न हो तो ज्ञात कैसे हो? है न? भाई! बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ता कहलाते हैं। ऐसा नहीं है।

ज्ञान की पर्याय में, वस्तु तो त्रिकाल ज्ञान ध्रुव है। ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात होने पर भी उस पर्यायरूप वस्तु है, उस द्रव्य से अंश भिन्न है, और पर्याय में ज्ञात होती है, वह चीज़ भी भिन्न है, ऐसा नहीं मानता। सब एक है, हमें तो सब ज्ञात होता है (वह) जाति सब एक है, (ऐसा मानता है)।

ज्ञान वस्तु मानता है। वह सब होकर ज्ञान है। ज्ञान अर्थात् आत्मा। सब ज्ञान ही चीज़ है। मुझमें ज्ञान में आ जाती है या नहीं वह चीज़? (जानने में) आयी है वह। इसलिए वह सब ज्ञान की ही जाति है। भिन्न है, ऐसा नहीं मानता। सूक्ष्म विषय में अन्तर तो इतना पड़ता हो। बड़े हाथी का पैर बड़ा हो, उसमें कितने समाये? एक समय की पर्याय में यह सब जाने। जानने पर भी वस्तु उसमें आयी है और वह ज्ञानमय हो गयी है, ऐसा नहीं। चौदह बोल कहकर 'स्याद्वाद अधिकार' रखा है। समझ में आया?

उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेय को जानता है.... देखो! **ज्ञान ज्ञेय को जानता है, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है....** ज्ञान ज्ञेय को जाने, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। इससे कहीं ज्ञान ज्ञेय का हो गया? समझ में आया? ज्ञान में सब ज्ञात हो, लो! लोकालोक ज्ञात हो जाये। लोकालोक ज्ञान है, लोकालोक ज्ञात होता है और लोकालोक ज्ञान है, ऐसा नहीं है। ज्ञान का लोकालोक जानने का स्वभाव है। इससे कहीं ज्ञान ज्ञेयरूप हो जाता है या ज्ञेय ज्ञानरूप हो जाता है, ऐसा नहीं है।

तथापि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है,... लो! ज्ञान में यह ज्ञात होने पर भी ज्ञान का स्वभाव, वह है इसलिए। वह तो ज्ञान का स्वभाव है, इसलिए ज्ञात होता है। **तथापि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है,...** ज्ञात हो वह चीज़ पर, वह पर ही है। शरीर, कर्म, वाणी, पुद्गल **ज्ञानरूप नहीं।** परवस्तु, वह ज्ञानरूप नहीं। अतत् बोल है न यह? अतत् का बोल है अर्थात् उसरूप यह नहीं। तब यह (अज्ञानी) कहता है कि उसरूप मैं हूँ। यह सिद्ध करना है न? पहला बोल था, वह तत्‌रूप का था। तत्—उसरूप है, वह पररूप नहीं।

(यहाँ अतत् के बोल में) ज्ञेयाकाररूप से परिणमने पर भी, ज्ञान ज्ञेयाकाररूप से परिणमने पर भी, ज्ञेय जैसे हैं उस प्रकार से ज्ञेयाकाररूप से परिणमने पर भी उस ज्ञेय से अतत् भाव है। ज्ञान का स्वरूप ज्ञेय से अतत् भाव (अर्थात्) उस रूप है नहीं। समझ

में आया ? सूक्ष्म पड़े। कल (कोई) कहे, एक अक्षर समझा नहीं, लो! ठीक, कठिन भाई! आया ऐसा उसमें क्या करें ? सवेरे। दोपहर में तो इससे भी (सूक्ष्म) था। सवेरे तो अच्छा था। द्रव्य परमेश्वर है। अब वस्तु है, वस्तु है, यह तो अत्यन्त सादी बात थी। वस्तु स्वयं है, वह अनन्त गुण का पिण्ड परमेश्वर पूर्ण द्रव्य है। (परन्तु अपने को) रंक माना है न ? रंक भिखारी माना है वर्तमान में। यह पूरी चीज़ हे या नहीं परन्तु यह ? वस्तु है या नहीं ? कि एक समयमात्र की अवस्था जितना वह तत्त्व है ? और इसने अनादि से सब क्रीड़ा एक समय की अवस्था में लगाया है। यह जाना और यह माना और यह खाया और यह लिया, ऐसा इतना विकल्प (जितना माना) परन्तु पूरी चीज़ मोटी अनादि अनन्त ध्रुव है, वह (रह गयी)। भगवान जाने! परमेश्वर है, वह इसे बैठता नहीं। यह परमेश्वर कहाँ से आया ? ऊपर से यहाँ आया होगा ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भाई! वस्तु तो वस्तुरूप से ही है और उसके ज्ञान की दशा का स्वभाव तू नहीं मानता परन्तु वह ज्ञेयाकार होने का स्वभाव होने पर भी उस ज्ञेयरूप ज्ञान कभी होता नहीं। समझ में आया ? देखो! निश्चय में तो ऐसा है कि राग, विकल्प जिस जाति का उत्पन्न होता है न, ऐसा ही ज्ञान उसरूप से स्वयं जाननेरूप परिणमे। वस्तु की बात नहीं, एक समय की पर्याय की बात है। वस्तु तो वस्तु है, वह तो परिणमन (बिना की) ध्रुव एकाकार है। ज्ञान की एक समय की पर्याय में जिस प्रकार का विकल्प, जिस प्रकार का सामने निमित्त (हो), वैसे ही ज्ञान का परिणमन ज्ञेयाकाररूप से हो, तथापि उस ज्ञेयरूप वह ज्ञान हुआ नहीं। रागरूप ज्ञान हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

तब (कोई) कहे कि, ज्ञान में वही क्यों ख्याल में आया ? राग ही ख्याल में क्यों (आया) ? परन्तु ज्ञान का स्वभाव, जैसा हो, उसे जाने या दूसरे प्रकार से जाने ? समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय में यह क्यों आया ? यह क्रोध (हुआ तो) क्रोध ख्याल में क्यों आया ? परन्तु ख्याल में तो जिस समय ज्ञेय जो चीज़ है, वैसा ही ज्ञान का स्वपरप्रकाश का स्वभाव है। स्व को प्रकाशित करे और पर जैसी चीज़ है, उसे प्रकाशित करे। प्रकाशित करने पर भी उसरूप—ज्ञेयरूप ज्ञान होता है, ऐसा तीन काल में नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ?

ज्ञान ज्ञानरूप से त्रिकाल द्रव्य है, परन्तु वर्तमान ज्ञान में भी ज्ञात होनेयोग्य वस्तु

ज्ञात होने पर भी ज्ञेयाकाररूप से परिणमना, वह तो पर्याय धर्म, उसका स्वत: स्वभाव है, तथापि वह ज्ञेय से भिन्न रहकर परिणमता है और ज्ञान से ज्ञेय भिन्न टिककर रहता है। दोनों एक कभी होते नहीं। समझ में आया? **ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं है....** भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति त्रिकाल, उसकी वर्तमान ज्ञानपर्याय है, उसमें ज्ञेयाकार ज्ञात होने पर भी वह वस्तु ज्ञानरूप हो जाती है, ऐसा नहीं है। तथा यह ज्ञान उसरूप हो जाता है, ऐसा नहीं है।

'**पशुः**' अब यहाँ से आया। समझ में आया? वह तो पहले थोड़ी शुरुआत करते हैं न? क्या कहना है करके (शुरुआत करते हैं)। पशु। उसमें क्या कहा है? '**पशुः**' **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि...** यहाँ ऐसा कहा है, लो! '**पशुः स्वच्छन्दं आचेष्टते**' '**स्वच्छन्दं आचेष्टते**' अर्थात् ढोर जैसा कहते हैं कि सब एक है, ऐसा मानकर अब भोगना और खाना और राग को वेदना और पर को वेदना, उसमें मुझे कुछ दिक्कत नहीं, हम सब एक ही हैं। '**पशुः स्वच्छन्दं आचेष्टते**' कौन स्त्री और कौन पुरुष? सब ज्ञान ही है। कहो, समझ में आया? क्या माँस और क्या शराब? सब ज्ञान में ज्ञात होता है। ज्ञान की वस्तु, ज्ञान वस्तु ही है, वह तो आत्मा ही है। समझ में आया?

उसमें दृष्टान्त आया है न? 'अनुभव प्रकाश' किसमें आया है? 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' में। एक हाथी चला आता था। हाथी चला आता था (और) एक ही माननेवाला वेदान्ती चला आता था। (वह कहे), आगे हट जा! (तो यह कहे), आगे किसलिए हटूँ? अपने एक ही हैं। मैं कहनेवाला भी हूँ या नहीं? देखो न! मैं कहता हूँ। अपने सब एक हैं और मैं कहता हूँ कि तू आगे हट जा। अपन सब एक ही हैं। क्यों हट जायें? सब एक ही हैं। परन्तु मैं एक है न? तो मैं एक कहता हूँ, हट जा ले! मैं कहता हूँ, हट जा और तू कहता है कि एक हैं। परन्तु इसमें अन्तर तो पड़ा या नहीं इसमें? दृष्टान्त दिया है न? उसमें जरा दिया है। समझ में आया? खबर है? खबर नहीं। इसने कहाँ बहुत पढ़ा नहीं। ऐसा उसमें दृष्टान्त दिया है। समझे न? हट जा। क्या हट जाये? अपने एक ही हैं। मैं भी तेरे जैसा हूँ और तेरी जाति का हूँ। मैं तुझे कहता हूँ और हट जा। हाथी मारेगा, एक मानकर ऐसा करके मर जायेगा। समझ में आया?

इसी प्रकार ज्ञान में यह मेरी सब वस्तु ही है, ऐसा मानकर उससे भोगना, उसकी क्या चीज़, छोड़ना क्या, क्या आदरना, इसे कुछ रहता नहीं। अभी कहेंगे, हों! देखो! **'स्वच्छन्दं आचेष्टते' एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव,...** वह **'पशुः'** इसका अर्थ किया। **'स्वच्छन्दं आचेष्टते'** साधारण अर्थ किया। फिर **'पशुः'** (शब्द) रखा **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, 'स्वच्छन्दं' स्वेच्छाचाररूप....** समझ में आया? **'पशुः स्वच्छन्दं आचेष्टते'** दूसरे पद में कहते हैं न? **कुछ हेयरूप कुछ उपादेयरूप ऐसा भेद नहीं करता हुआ...** देखो! **स्वेच्छाचाररूप—कुछ हेयरूप कुछ उपादेयरूप....** सब समान है। माँस हो, माँस हो। समझ में आया? माँस भी ज्ञानस्वरूप है। शराब-माँस वह ज्ञानस्वरूप है, स्त्री आत्मस्वरूप है, पुत्री आत्मस्वरूप है, सब आत्मस्वरूप है। ऐसा मानकर अज्ञानी ज्ञेयरूप से कौन चीज़ छोड़नेयोग्य है और कौन चीज़ ज्ञान में जाननेयोग्य रूप से आदरणीय है, इसका वह विवेक नहीं करता। सब एक मानता है, उसे दो कहाँ रहे? सब एक माननेवाले को हेय और उपादेय कहाँ रहा? सब एक है, लो!

एक व्यक्ति यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक वाँचकर कहता था। (एक) साधु आया था। निश्चय फिर क्या हुआ? माँस हो या मदिरा हो या चाहे जो (हो), निश्चय दृष्टि में क्या? कहा, इसका पावर फटा है (अभिमान चढ़ा है)! ऐसा कि निश्चय दृष्टि हुई, फिर तो उसे निश्चय में सब समान है। ठीक! तो निश्चय में वापस यह विकल्प उठा कि यह खानेयोग्य है और खानेयोग्य नहीं, वह कैसे उठा? ऐसा का ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक वाँचन कर (कहे), बस! निश्चय में तो कुछ है नहीं। स्थानकवासी साधु था, फिर मन्दिरमार्गी हो गया। उसका चातुर्मास था। फिर यहाँ एक बार आया था। उसमें कुछ है नहीं (ऐसा कहे)। 'मर जायेगा' (हमने) कहा। निश्चय तो ज्ञानस्वरूप में, निश्चय में स्थिर हो उसकी बात है। विकल्प उठा और यह खानेयोग्य है या नहीं खानेयोग्य, उसका व्यवहार—विवेक नहीं करे तो मर जायेगा वहाँ। समझ में आया? अब हमारे निश्चय में क्या है? परन्तु निश्चय में अर्थात् स्थिर हो जा, उसमें कुछ नहीं, स्थिर हो जा तो उसमें कुछ नहीं परन्तु विकल्प उठा, उसमें (क्या)? इसका विवेक करना पड़ेगा या नहीं, कि यह खानेयोग्य चीज़ नहीं है और यह खानेयोग्य है। वे कहते हैं न? निश्चय में तो सब परमाणु की पर्याय है, माँस और रोटी। ऐसा करके निश्चय की मजाक करते

हैं। भाई! तुम्हें तो रोटी और माँस दोनों जड़ की एक पर्याय है। अरे! सुन तो सही जड़ की पर्याय में पर्याय, पर्याय में अन्तर है। ऐसा कि माँस है जड़ की पर्याय है, रोटियाँ भी जड़ की पर्याय है। तुम्हारे तो जड़ की पर्याय सबकी समान माननी है। परन्तु समान में अन्तर है, सुन न! रोटी की पर्याय का लेने का विकल्प मुनि को होता है, माँस की पर्याय नहीं होती, व्यवहार में अन्तर है, पर्याय में अन्तर है। समझ में आया? होता है या नहीं?

अज्ञानी **कुछ हेयरूप कुछ उपादेयरूप ऐसा भेद नहीं करता हुआ, समस्त त्रैलोक्य उपादेय ऐसी बुद्धि करता हुआ...** लो! हमारे तो सब एक है, हमारे अन्तर-बन्तर करना नहीं। समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं, यह भगवान ने सब लिखा है न! देखो! सब खाने के लिये नहीं, खाने के लिये तो विष्टा भी है, थोर भी है, खा न! विष्टा है और थोर भी है, जगत की चीज़ है। सब है उतना खानेयोग्य यह है? ऐसा अज्ञानी मूढ़ एकान्तवादी आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें वह चीज़ ज्ञात होती है, इसलिए उस रूप होता नहीं, तथापि एकरूप मानकर स्वच्छन्दी होता है। स्वच्छन्दी जो जाता है। हमारे क्या? इन्द्रिय के विषय इन्द्रिय भोगे, हमारे क्या है?

ऐसी प्रतीति करता हुआ-निःशंकरूप से प्रवर्तता है। परवस्तु खाने-पीने-भोगने में शंका नहीं करती। हम सब एक हैं, हमारे में और उसमें क्या अन्तर है? समझ में आया? भाई! उसमें पर्याय में विवेक चाहिए। परवस्तु है, उसकी जिस प्रकार की पर्याय है, वैसा उसे ज्ञान होना चाहिए, उस प्रकार का ज्ञान होना चाहिए। तथापि उस प्रकार का ज्ञान होने पर भी उसरूप कहीं ज्ञान नहीं होता। भिन्न वस्तु है, वह छोड़नेयोग्य है, उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, वह आदरनेयोग्य है। ऐसा व्यवहार का विवेक नहीं करके निःशंकरूप से चेष्टा, स्वच्छन्दी होकर दुनिया के भोग भोगे और कहे कि, हमारे तो एक ही है सब, उसमें हमको पाप-बाप कुछ है नहीं। समझ में आया?

किसके समान? 'पशुः इव' लो! **तिर्यंच के समान।** पशु के समान है, पशु को कुछ खबर है? चूरमा और घास दोनों इकट्ठे खाता है। घास में बिच्छू आया हो तो भी खाता है। उसे खबर है कुछ? घास के पूले में बिच्छू पड़ा हो। उसी प्रकार पशु के समान स्वच्छन्दी होकर भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है और पर्याय में उस वस्तु

का ज्ञान होने पर भी मैं तो मेरे स्वरूप में ही हूँ। मेरे स्वरूप को और उसे—राग को और पर को कुछ सम्बन्ध नहीं है, ऐसा वह नहीं मानता। पशु की भाँति सब भोगता है, सब खाता है, मानता है कि हम तो सब एक हैं, हमारे कुछ दिक्कत नहीं है।

कैसा होकर प्रवर्तता है ? 'विश्वमयः भूत्वा' देखो! **'अहं विश्वं' अर्थात् मैं विश्व, ऐसा जान आप विश्वरूप हो प्रवर्तता है।** हम एक एक ही हैं। समझ में आया ? बहुत ऐसे होते हैं या नहीं ? हम सब एक ही हैं। एक बाबा तो और पीवे न ? वह क्या कहलाता है ? गांजा! गांजा पीवे, इसलिए बहुत चढ़ने के लिये बिच्छू पकड़कर गांजा उसमें डाले। गांजा और बिच्छू दोनों एक ही है, उसमें क्या है ? सब एक ही है। गांजा हो या बिच्छू हो, उसमें कुछ नहीं। अग्नि में डाले, हों! पागल ऐसे मूर्ख न! नहीं भान कि यह क्या (करता हूँ) ? और उसे फिर बहुत जहर चढ़े नहीं। अन्दर जलकर राख हो न ? धुँआ। क्योंकि वह तो अन्दर चला जाये न! गिरनार में एक बाबा था। ऐसा था। कुछ अक्ल बिना का नग्न घूमे और मानो सब बस एक है अवधूत।

'अहं विश्वं' ऐसा जान आप विश्वरूप हो प्रवर्तता है। हम सब एक हैं, ऐसा मानकर स्वच्छन्दी होकर वर्ते परन्तु विवेक करते नहीं। मैं आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, वे ज्ञेय रागादि सब चीज़ मुझसे भिन्न है, मुझे भोगनेयोग्य वह चीज़ नहीं, ऐसा भिन्न नहीं मानता। समझ में आया ? **ऐसा क्यों है ? कारण कि 'सकलं स्वतत्त्वाशया दृष्ट्वा'** लो! **'सकलं स्वतत्त्वाशया दृष्ट्वा' समस्त ज्ञेयवस्तु को...** सभी चीज़ों को **'स्वतत्त्वाशया' ज्ञानवस्तु की बुद्धि से प्रगाढ़ प्रतीति कर।** लो! ऐसा भी मानते हैं न ? यह तो अद्वैत आत्मा है, सब एक ही हैं। अद्वैत न माने, उसे हिन्दुस्तान की जगह निषेध करते हैं। एक जगह ऐसा लिखा। जैन के वेश में रहे (ऐसा कहे), अद्वैत एक ही है, दूसरी चीज़ का नकार करे। नहीं, दूसरी चीज़ की सत्ता नहीं हो सकती। आर्य विद्या ऐसा कहती है कि दूसरी चीज़ हो नहीं सकती। समझ में आया ? (यह) तुम्हारे सब भाईबन्ध थे। भले वे भी यह तो बात है।

'स्वतत्त्वाशया' ज्ञानवस्तु की बुद्धिरूप से.... 'स्वतत्त्वाशया' क्या कहा ? यह आत्मा है न ज्ञानरूप ? उस स्वतत्त्व का आशय ऐसी बुद्धि से दूसरे को देखता है। अपने

ज्ञानरूप दूसरी चीज़ है, मेरे आत्मारूप से यह दूसरी चीज़ है, ऐसा देखे। **प्रगाढ़ प्रतीति कर।** '**दृष्ट्वा**' की व्याख्या की। जोरदार प्रतीति कर, ऐसा। जोरदार प्रतीति कर। एक ही हैं सब, दूसरा कुछ है नहीं। एक ही है, ऐसा प्रश्न क्यों उठा तो फिर तुझे? कुछ दो है, ऐसा प्रश्न उठे। वरना प्रश्न ऐसा उठे नहीं।

ऐसी प्रगाढ़ प्रतीति क्यों होती है? एक-एक शब्द को (स्पष्ट करते हैं)। **कारण कि** '**विश्वं ज्ञानं इति प्रतर्क्य**' विश्व अर्थात् **त्रैलोक्यरूप जो कुछ है, वह ज्ञानवस्तुरूप है....** हमारे से भिन्न कोई चीज़ है नहीं। भेद-बेद कोई है नहीं, सब अभेद एकाकार हैं। समझ में आया? वह स्याद्वाद को समझते नहीं। दूसरी चीज़ इसमें ज्ञात होने पर भी उन चीज़ों से आत्मा अत्यन्त भिन्न, अत्यन्त निराली चीज़ है, अनादि-अनन्त है, भिन्न है। **त्रैलोक्यरूप जो कुछ है,....** त्रैलोक्य में जो कुछ है, **वह ज्ञानवस्तुरूप है....** ज्ञान अर्थात् आत्मा, ऐसा। सब ज्ञान ही है, सब ज्ञान है। ज्ञान में सब ज्ञात होता है, ज्ञात होता है तो जानने की की जाति से ज्ञात होता है या दूसरे प्रकार से ज्ञात होता है? (ऐसा) कहे। लो! **ऐसा जानकर।** स्वच्छन्दी प्रगाढ़ प्रतीति पर में अपनी करता है।

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु पर्यायरूप से ज्ञेयाकार होती है,... देखो! है न? ज्ञानवस्तु ज्ञानपदार्थ पर्यायरूप से, हों! वस्तु तो वस्तु है। पर्यायरूप से ज्ञेयाकार होती है। जाननेयोग्य वस्तुरूप से पर्याय होती है, यह बात पर्याय और द्रव्य और यह बात जैनदर्शन के अतिरिक्त सत्य तीन काल में कहीं होती नहीं। इसे भी अभी तो कुछ समझते नहीं। कहीं का कहीं। समझ में आया?

सो मिथ्यादृष्टि पर्यायरूप भेद नहीं मानता है,... देखो! आया या नहीं? वहाँ कहा था न? पर्याय नहीं मानता। वहाँ वह कहा था, इसलिए ऐसा इसका अर्थ। मिथ्यादृष्टि पर्यायरूप भेद नहीं मानता। पर्यायरूप भेद ही मानता नहीं। ज्ञेयाकार होता है तो वह **पर्यायरूप भेद नहीं मानता है,...** यह और क्या? यह ज्ञेयाकार क्या? सब एक ही है, जाओ! **समस्त ज्ञेय को ज्ञानस्वरूप मानता है।** समझ में आया? देखो! यह सूक्ष्म अभिप्राय ऐसा है, ऐसा सब ऐसा का ऐसा जहाँ इसे पर से ऐसा भिन्न करने का विवेक नहीं, वहाँ वह सब एक ही मानता है। इस प्रकार एक मानता है; इसलिए उसे भोगने की वृत्तियों में विवेक नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वस्तु एक ही माने सूक्ष्मरूप से। सब हम एक ही हैं। उसे यह पर भोगना और न भोगना या मेरा स्वरूप भोगना, ऐसा विवेक उसे नहीं रहता। यह तो कोई भी दृष्टि का विषय लिया है। परन्तु ऐसी मान्यतावाले गहराई में ऐसे हों, उसे कुछ भी उसे यह वस्तु क्या है ? यह भोगनेयोग्य है या भोगनेयोग्य नहीं ?—ऐसा जिसे विवेक नहीं। वह सब पर को अपना प्रगाढ़ प्रतीति से मानता है। रागादि भोगनेयोग्य है, विषय आदि भोगनेयोग्य है। इसका अर्थ कि वह चीज़ ही मुझे अपने को आनन्ददायक है, इसलिए वह आनन्द देनेवाली है, इसलिए सब एक ही है, ऐसा मानकर पर से पृथक् नहीं करता। समझ में आया ?

मिथ्यादृष्टि पर्यायरूप भेद नहीं मानता है, समस्त ज्ञेय को ज्ञानस्वरूप मानता है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं है। जाननेयोग्य वस्तु तो जाननेयोग्य वस्तुरूप से है, भाई ! तेरे ज्ञान की पर्याय में वह प्रविष्ट नहीं है। वस्तु में तो नहीं परन्तु ज्ञान की पर्याय में भी प्रविष्ट नहीं हो गयी। समझ में आया ? वह पर ज्ञात होता है, वह तो ज्ञान की पर्याय है। समझ में आया ? ज्ञात होता है, वह पुद्गल, यह माँस, यह... यह... यह... यह... यह... वह ज्ञात हो, वह तो ज्ञान की पर्याय है। वह वस्तु तो अत्यन्त भिन्न है।

यही कहते हैं—'पुनः स्याद्वाददर्शी स्वतत्त्वं स्पृशेत्' अब सुलटे में आया। पहले उल्टे की बात ली थी। कथन की ऐसी शैली है न ? अतत्त्व (अतत्) का बोल है। यह अतत्त्व अर्थात् पर को सब एक मानता है, उसका बोल लिया। अब पररूप नहीं इसका बोल यहाँ स्याद्वाद की दृष्टि से लेते हैं। समझ में आया ?

एकान्तवादी जिस प्रकार कहता है उस प्रकार ज्ञान को वस्तुपना नहीं सिद्ध होता है। पुनः शब्द पड़ा है न इसलिए स्पष्टीकरण किया। **स्याद्वादी जिस प्रकार कहता है, उस प्रकार वस्तुपना ज्ञान को सधता है। 'पुनः'** की व्याख्या। जो यह कहते हैं, इससे दूसरे प्रकार से है, ऐसा। **कारण कि एकान्तवादी ऐसा मानता है कि समस्त ज्ञानवस्तु है,....** सब धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, कालद्रव्य, पुद्गल, परमाणु, नाकरी सब यह ज्ञानमात्र ही है। **सो इसके मानने पर लक्ष्य-लक्षण का अभाव होता है,....** देखो ! अब जरा डाला। क्या कहते हैं ? थोड़ा सूक्ष्म डाला। **लक्ष्य-लक्षण का अभाव होता है,....**

यह क्या डाला इसमें? **इसलिए लक्ष्य-लक्षण का अभाव होने पर वस्तु की सत्ता नहीं सधती है।** अर्थात् क्या? अर्थात् क्या अब?

स्याद्वादी ऐसा मानता है कि ज्ञानवस्तु है, उसका लक्षण है—समस्त ज्ञेय का जानपना,.... ऐसा कहते हैं। यह सब ज्ञेय को जानना, वह तो ज्ञान का लक्षण है। समझ में आया? यह जानना, जानना, वह पर्याय का लक्षण है न? पर्याय में है न जानना? जानना, वह लक्षण है, सबको जानना तो उसका लक्षण है परन्तु वह लक्षण लक्ष्य आत्मा का है। वह लक्षण कहीं दूसरी चीज़ ज्ञात हो, उसका नहीं है। समझ में आया? क्या कहा?

ऐसे एकान्तवादी मानने की अपेक्षा से **लक्ष्य-लक्षण का अभाव होता है,....** लक्ष्य, ऐसा जो द्रव्य भगवान और लक्षण, ऐसा जानने की पर्याय। उस जानने की पर्याय में सब ज्ञात होता है। तो भी वह लक्षण यहाँ है, उसमें ज्ञाता होता, इसलिए वह लक्षण है ज्ञान का, इसका लक्ष्य का लक्षण है। यह उसका (ज्ञेय का) लक्षण नहीं। उसका सब मानते लक्षण और लक्ष्य दोनों एक हो जाते हैं। सबका अभाव हो जाता है। क्या कहा?

ज्ञानवस्तु है,... वस्तु भगवान, **उसका लक्षण है—समस्त ज्ञेय का जानपना,....** लक्षण वर्तमान पर्याय में, हों! **समस्त (वस्तु का) ज्ञेय का जानपना, इसलिए उसके कहने पर स्वभाव सधता है,....** जानना उसका लक्षण समस्त ज्ञेय का जानपना। जानना, वह पर का भी जानना आया और स्व को जानना भी आया। समझ में आया? यह जानने की पर्यायमात्र पर को ही जाने, इतना उसका स्वरूप नहीं। यह जानना लक्षण समस्त ज्ञेय को जानना, (ऐसा है)। तो वह स्वयं भी पूरी चीज़ है और दूसरी भी चीज़ें हैं। उन्हें जानना उसका लक्षण है। अर्थात् वह लक्षण एकान्त से उसे ही मानकर तू एकरूप माने, ऐसी वस्तु नहीं है। जरा सूक्ष्म बात की है, हों!

आचार्य ने १४ बोल कहकर वस्तु के स्वरूप को बहुत सूक्ष्म रीति से भिन्न किया है। वे बातें हो तो एकदम समझ में आये। इसमें (ऐसा हो) यह क्या कहते हैं? बापू! तेरे द्रव्य और पर्याय की यहाँ सिद्धि करते हैं। तेरा अस्तित्व। और वह भी जानना, वह लक्षण है न? वह तो समस्त ज्ञेय को जाने, सबको जाने। स्व को जाने, पर को जाने। जानने का लक्षण पर और स्व को जानने का यदि न रहे तो लक्ष्य आत्मा—द्रव्य भिन्न

नहीं रहता। लक्ष्य-लक्षण का भेद नहीं पड़ता। उस जानने की पर्याय में स्व-पर सब ज्ञात होने पर भी वह लक्षण है स्व का; वह कहीं पर को जाने, इसलिए पर का लक्षण हो गया या पररूप हो गया, ऐसा है नहीं। समझ में आया? **इसलिए इसके कहने पर स्वभाव सधता है,....** देखो! ऐसा कहने से स्वभाव सधता है।

स्वस्वभाव के सधने पर वस्तु सधती है,... यह जानने का लक्षण है अपना। उस द्वारा लक्ष्य आत्मा को जानता हुआ, तू उस (ज्ञेय)रूप मान ले परन्तु जानने का लक्षण इसका (लक्ष्यरूप आत्मा का) है। ऐसी वस्तु सिद्ध हो, तब उसे वस्तु का अनुभव हो, तब सम्यक् अनुभव हो। परन्तु ज्ञात होनेयोग्य वस्तु ज्ञात हुई और उसमय है, (ऐसा माने) तो उसमें अनुभव कहाँ रहा? स्व लक्ष्य तो आया नहीं, पर में ही अकेला घुस गया अन्दर। समझ में आया? व्यापारी को यह बहुत सूक्ष्म पड़े, नहीं?

कहते हैं, भाई! देखो, शान्ति से (सुन)। कि जानने का भाव है और वह तो स्व-पर सब ज्ञेय को जाने, उस जानने का लक्षण, इसलिए (सब) एक ही हो जाये.... समझ में आया? तो लक्षण और यह लक्षण इसका है, ऐसा भेद नहीं रहा, उसका हो गया। जानने में जो वस्तु आयी तो सब उसकी हो गयी, ऐसा नहीं है। समझ में आया? मोहनभाई! अब एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदि में यह सूक्ष्म बात कहाँ पकड़ में आये इसे? तस्सूतरी करणेन, ठाणेण... जाणेण... भाई! भगवान आत्मा की एक समय की पर्याय ज्ञान का लक्षण, वह सब ज्ञेय को जानने का है। सब ज्ञेयरूप होने का है? क्या कहा? सब ज्ञेयरूप होने का (लक्षण) है? स्वज्ञेय पर लक्ष्य दे तो ज्ञान का अनुभव हो। पर को जानने पर भी पररूप नहीं होता। समझ में आया? देखो! इसमें वापस यह आया। उस विकल्प-फिकल्प को जाननेवाला है, तो भी विकल्परूप होता नहीं। वह विकल्प का लक्षण नहीं, वह विकल्प का लक्षण नहीं। लक्षण है ज्ञान का, वस्तु का लक्षण है, वह कहीं विकल्प का लक्षण नहीं। ज्ञात अवश्य हो ज्ञान में। समझ में आया?

इसके कहने पर स्वभाव सधता है,... स्वभाव साधा जा सकता है। स्वभाव साधा जा सकता है अर्थात् ज्ञानपना वह लक्षण सबको जानना। इसलिए उसे जाने (इसलिए) उसका हो गया, ऐसा नहीं है। जानने पर भी लक्षण ज्ञान का, आत्मा का है। समझ में

आया? वह पर में जाता नहीं, स्व में लक्ष्य करके अनुभव करे तो वस्तु सिद्ध होती है। समझ में आया?

स्वभाव सधता है, स्वस्वभाव के सधने पर वस्तु सधती है। देखो! जानने का लक्षण सिद्ध करने से सबको जानना ऐसा पर्याय का धर्म है—लक्षण, उस लक्षण से सिद्ध होता है कि वह जाननेवाला है, पररूप होनेवाला नहीं। जाननेवाला लक्षण ज्ञान का है, वस्तु का है। तो वस्तु सिद्ध होने पर, वस्तु पर दृष्टि जाने से उसे ज्ञानस्वरूप ऐसा है, ऐसा अनुभव होता है और अनुभव हो, उसे धर्म कहा जाता है। समझ में आया?

अतएव ऐसा कहा जो 'स्याद्वाददर्शी स्वतत्त्वं स्पृशेत्' देखो! आया न? यह लक्षण ज्ञान में जानने का है, परन्तु उस तत्त्व को—स्वतत्त्व को स्पर्शता है। उसका वह लक्षण है। वह (परज्ञेय) ज्ञात होने पर भी लक्षण उसका नहीं है। समझ में आया? गजब! लक्षण और लक्ष्य। सब वकीलों को बैठती होगी ऐसी बात होगी यह? कानून जैसी। यह तो आत्मा को बैठे। निरावरणीय मार्ग है। वह तो ज्ञान से सम्यक् प्रकार से जाना जा सके, ऐसी चीज़ है।

'स्याद्वाददर्शी स्वतत्त्वं स्पृशेत्' वस्तु को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है.... देखो! लक्षण है, वह पर्याय है, सबको जानने का स्वभाव है। तथापि वह ज्ञान का लक्षण है। पर को जानने पर भी पर का लक्षण हो जाये और पररूप हो जाता है, ऐसा नहीं है। इसलिए स्वतत्त्व स्पर्श। वह ज्ञान के लक्षण द्वारा लक्ष्य ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे वह लक्षण स्पर्शता है। स्पर्शता है, उसे अनुभव होता है। यह उसे स्याद्वाद कहा जाता है। समझ में आया? देखो! तीन लिये, हों! स्वतत्त्व स्पर्शे। समझ में आया? **वस्तु को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है....** आगे तीन बोल लेंगे। दो सिद्ध किये न यहाँ? **वस्तु को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है....** पर्याय का लक्षण जानना, वस्तु वह लक्ष्य है। जानने पर भी पर की वस्तु हो नहीं जाती या पररूप होती नहीं। जाननेवाला लक्षण भिन्न रहता है। ज्ञात हो, वह भिन्न रहता है और जाननेवाले लक्षणवाला लक्ष्य जो आत्मा, उसे स्पर्श कर तो आत्मा का अनुभव होता है। समझ में आया? ऐसा कहकर यह भी कहा कि यह विकल्प से स्वद्रव्य का अनुभव नहीं होता। लो! समझ में आया? क्योंकि वह तो ज्ञान

का स्वभाव है। वह ज्ञेय—राग को जाने परन्तु रागरूप ज्ञान होता नहीं। और वह लक्षण राग का नहीं। वह लक्षण आत्मा का है, ज्ञानस्वरूप का है, ध्रुव का है। समझ में आया ?

यह लक्षण तत्त्व को स्पर्श करता है, स्याद्वाद, जानने पर भी वह लक्षण पररूप नहीं होता। यह जाननेवाला लक्षण आत्मा का है। वह स्वतत्त्व को स्पर्शता है अर्थात् द्रव्य और पर्याय। स्वतत्त्व ध्रुव और पर्याय का अनुभव होता है। वह पर्याय (हुई)। स्पर्शता है अर्थात् पर्याय। द्रव्य और पर्याय दो की सिद्धि होती है। कहो, सोगनचन्दजी! कभी ऐसा पढ़ा भी नहीं होगा। बाप ने पढ़ा भी नहीं होगा परन्तु तुम तो सब दरकार करने खड़े हुए हो न! वह तो बेचारा कहाँ पड़ा था एक ओर। आहाहा! ऐसा कि पहले से नहीं। इसका अर्थ ऐसा हुआ। आहाहा!

वस्तु को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है.... समझ में आया? सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानी जीव, **स्याद्वाददर्शी** जीव ऐसा आया न? **स्याद्वाददर्शी**—देखनेवाला पर्याय में दूसरा ज्ञात होने पर भी उस पर्यायरूप आत्मा पररूप हुआ नहीं। ऐसा स्याद् अपेक्षा से पर को जानने पर भी वह लक्षण आत्मा का है, ऐसा स्याद्वाददर्शी अपने आत्मा को स्पर्शता है। आहाहा! वह पर्याय आत्मा के साथ अभेद होती है। वह पर्याय भले अंश है परन्तु वह अभेद आत्मा के साथ होती है। ऐसा जानने पर भी अपर के साथ अभेद नहीं होती, पर के साथ तो भिन्न रहती है। समझ में आया?

अर्थात् अनेकान्तवादी जीव ज्ञान वस्तु है, ऐसा साधने के लिये समर्थ होता है। लो! ऐसा अनेकान्तवादी जीव भगवान आत्मा वस्तु है, वह लक्षण से लक्षित हुआ, लक्षण के लक्ष्य में आवे, ऐसी एक वस्तु पूरी द्रव्य-पर्यायरूप है। समझ में आया? वह अपनी वस्तु को साधने के लिये समर्थ होता है। यह पुरुषार्थ की जागृति वहाँ होती है। रागादि ज्ञात होने पर भी उसरूप ज्ञान हुआ नहीं, पर्याय में उसरूप हुआ नहीं। वह पर्याय लक्षण, लक्ष्य का है, ऐसा वस्तु को सिद्ध (किया) द्रव्य और पर्याय को साध सकता है। अज्ञानी द्रव्य-पर्याय को साध नहीं सकता। समझ में आया? एक श्लोक का कितना लम्बा अर्थ किया है! बहुत स्पष्ट, बहुत स्पष्ट। ऐसी स्पष्ट कलशटीका। इसका काल आया है। बात सच्ची न! इसका काल जब प्रकाश—स्पष्ट होने का आवे, तब आया न!

वह तो पूरी जिन्दगी में पहले-वहले बाहर में वाँचन होता है, सभा में तो पहले-वहले (वाँचन होता) है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भरा तो कब का पड़ा था। पढ़ा हुआ कब का। बहुत वर्ष से (पढ़ा हुआ)। बाहर सभा में आवे तब यह गुजराती हुआ तब आया न सब! गुजराती अर्थात् हमारे मन तो यह सब गुजराती हो गया न! ऐसा। हो गया। क्योंकि यह चालू हिन्दी इसलिए हमको....

स्याद्वादी ज्ञानवस्तु को कैसी मानता है? 'विश्वात् भिन्नं' देखो! है न? **'विश्वात्' अर्थात् समस्त ज्ञेय से निराला है।** सब पुण्य-पाप के विकल्प शारीर, वाणी, मन सबसे भगवान आत्मा भिन्न है। वे चीज़ें होने पर भी और उन चीज़ों का ज्ञान होने पर भी, मैं उन सब विश्व के विकल्प से राग, दया, दान के राग से लेकर परचीज़ से मैं बिल्कुल भिन्न हूँ। समझ में आया? आहाहा! भेदज्ञान की ही यह बात है न! स्याद्वाद दर्शन में तो अनेकान्त सिद्ध करना है न! अनेकान्त अर्थात् स्व-रूप से है और पर-रूप से नहीं। स्वपने है, वह इस प्रकार से है और पररूप से नहीं है, तब ही ऐसा अनेकान्त हुआ। तब वस्तु का, दृष्टि का भान हुआ।

स्याद्वादी ज्ञानवस्तु को कैसी मानता है? 'विश्वात् भिन्नं'। सब ज्ञेय वस्तु, हों! फिर रागादि भी ज्ञेय है। यहाँ तो साधक की (बात है)। यहाँ कहाँ केवली की बात है। यहाँ तो निचले की बात है या नहीं? व्यवहार जाननेयोग्य है। वह तो सर्वत्र एक ही शैली डालते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु! चैतन्य वस्तु पर को जानने पर भी लक्षण का—पर्याय का वह जानना तो (उसका) स्वरूप है। ऐसी वस्तु होने पर भी विश्व अर्थात् विकल्प से, अनेक से, अनेक प्रकार के परपदार्थ आदि उनसे भगवान आत्मा अत्यन्त निराली चीज़ है। ऐसा सम्यग्दृष्टि स्याद्वादी अपने स्वरूप को पर से भिन्न साध सकता है। समझ में आया?

'विश्वात्' समस्त ज्ञेय से निराला है। और कैसा मानता है? 'अविश्वविश्वघटितं' 'अविश्व' समस्त ज्ञेय से भिन्नरूप.... अविश्व है न? विश्व से भिन्न—अ। समस्त ज्ञेय

से भिन्न। अविश्व—विश्वरूप नहीं। समस्त ज्ञेय से भिन्न। '**विश्व' अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से... 'घटितं'** लो! यह विश्व। अविश्व से भिन्न विश्व। '**अविश्वविश्वघटितं' समस्त ज्ञेय से भिन्नरूप....** सब विकल्प से लेकर कर्म, शरीर, अमुक सब धूल। समस्त अविश्व अर्थात् सबसे भिन्न और विश्व। '**अविश्वविश्वघटितं, अविश्वविश्वघटितं**' ओहोहो! संक्षिप्त शब्द में (बहुत भर दिया है)। समस्त वस्तु से, विश्व से 'अ' अर्थात् भिन्न और विश्व से अभिन्न। अपना विश्वरूप अर्थात् अपने द्रव्य-गुण-पर्याय। अखण्डानन्द प्रभु द्रव्य, उसकी ज्ञानगुण आदि शक्तियाँ, उस लक्षण से सिद्ध करके पर्याय से **जैसा है, वैसा अनादि से स्वयंसिद्ध निष्पन्न है....** लो! समझ में आया?

'**घटितं**' अर्थात् **जैसा है, वैसा अनादि से स्वयंसिद्ध निष्पन्न है....** अनादि का ऐसा का ऐसा है, कहते हैं। यहाँ तो दृष्टि में आया। सदा ऐसा का ऐसा हूँ। पर्याय भी रागरूप या पररूप कभी हुई नहीं। आहाहा! अविश्व अर्थात् विश्व से अ—भिन्न। और इस विश्व से अभिन्न, ऐसा। भिन्न कहा न? अर्थ ही भिन्न किया न! देखा न! अविश्व अर्थात् समस्त ज्ञेय से भिन्न, ऐसा। रागादि चीज़, पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर आदि सब विश्व ऐसा जो पर, उससे भिन्न। यह भिन्न। विश्व से '**घटितं' अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से... 'घटितं**' देखो! पहले दो बोल लिये थे, अब वापस तीन डाले हैं।

अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाल, उसके गुण अर्थात् उसके स्वभाव-शक्ति वर्तमान उसकी अवस्था। यह '**घटितं' स्वयंसिद्ध निष्पन्न है.... जैसा है, वैसा अनादि से स्वयंसिद्ध निष्पन्न है....** जैसा है वैसा, वस्तु बताते हैं। ऐसे अन्तर में स्याद्वाददर्शी को आत्मा पर से भिन्न अनुभव में आता है। उसे अनेकान्त दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया?

ऐसी है ज्ञानवस्तु। लो! ऐसा है ज्ञानपदार्थ—वस्तु। तीनों होकर एक कहा। द्रव्य-गुण-पर्याय। **ऐसा क्यों मानता है?** '**यत् तत्**' देखो! '**यत् तत्' जो जो वस्तु है... 'यत्**' अर्थात् जो '**तत्**' अर्थात् जो वस्तु। '**तत् पररूपतः न तत्**' जो वस्तु है—ज्ञान वस्तु है, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय। '**तत् पररूपतः न तत्', 'तत्**' वह '**पररूपतः न तत्' वह वस्तु परवस्तु की अपेक्षा वस्तुरूप नहीं है।** ऐसा। '**तत्**' वह '**पररूपतः न तत्**' पररूप से नहीं है, पररूप से नहीं है। राग, पुण्य, विकल्प, शरीर से, आत्मा नहीं है, आत्मा अपने से द्रव्य-गुण-पर्याय से है। ओहोहो! कहो, समझ में आया या नहीं? जुगराजजी!

बहुत सूक्ष्म! मुम्बई के व्याख्यान में ऐसा भाषण रखे तो कौन जाने क्या समझना? (ऐसा लोगों को लगे)। अरे! यह वस्तु ही यह है। लोगों को समझने चीज़ तो यह है। जो करनेयोग्य तो यह है कि जो पर से भिन्न और स्व से अभिन्न है।

पर तत्त्व पर है '**तत् पररूपतः न तत्**' उसरूप यह नहीं। **परवस्तु की अपेक्षा वस्तुरूप नहीं है**। आहाहा! पर की अपेक्षा से अतत् है, पर की अपेक्षा से तत् नहीं। पर की अपेक्षा से यह है नहीं, पर की अपेक्षा से यह नहीं। आहा! भाई! सहारा चाहिए, कुछ सहारा। किसी का सहारा चाहिए या नहीं? .... यह तो निमित्त का ज्ञान करने की बात है। वस्तु निरालम्बी चिदानन्द भगवान आत्मा अत्यन्त पर्याय से भी जहाँ राग से भिन्न है। कर्म-शरीर से तो भिन्न है। अपना ज्ञान स्वरूप से परिणमती पर्याय पर से भिन्न है और पर से स्वयं भिन्न तत्त्व अपना विश्व द्रव्य-पर्यायरूप स्वयं है। ऐसा अनेकान्त स्वरूप, ऐसी दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। वस्तु ऐसी है और ऐसा ज्ञान होना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान होने पर ही आत्मा को अमृतरूप शान्ति का अनुभव होता है, इसके बिना शान्ति का अनुभव नहीं होता। कहो, समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्ञानवस्तु ज्ञेयरूप से नहीं है,... जैसे भगवान आत्मा यह ज्ञात होनेयोग्य वस्तु से नहीं, **ज्ञानरूप से है,....** अपने से है। ज्ञान द्रव्य-गुण-पर्याय अपने से है, पर से तो तीन काल में नहीं। **उसी प्रकार ज्ञेयवस्तु भी ज्ञानवस्तु से नहीं है,...** लो! ऐसी ज्ञात होनेयोग्य वस्तु भी ज्ञान से नहीं। यह रागादि, पुण्य आदि, विकल्प व्यवहार आदि ज्ञेयरूप है, वह ज्ञानवस्तु से नहीं। आत्मा के चैतन्यस्वरूप लक्षण से वह भिन्न चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? यह दया का भाव, भक्ति का भाव, पूजा का भाव, वह ज्ञानरूप नहीं—ऐसा कहते हैं।

ज्ञेयवस्तु भी ज्ञानवस्तु से नहीं है,... राग आत्मा से नहीं, भगवान आत्मा के ज्ञानस्वरूप से राग नहीं। व्यवहार का विकल्प है, वह आत्मस्वरूप से नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह कहे, व्यवहार से साधन होता है। ज्ञान में व्यवहार ज्ञात हो सही, परन्तु व्यवहार से साधन होता है, ऐसा नहीं है। तो वह उस ज्ञेयरूप से ज्ञान हो गया। समझ में आया? ज्ञान ज्ञेयरूप हो गया। कषाय मन्दता का विकल्प हो, वह ज्ञेयरूप है। वह तो

ज्ञान की पर्याय से भिन्न है और ज्ञान से ज्ञेय भिन्न है तथा ज्ञान, वह ज्ञेय में आया नहीं। ज्ञानवस्तु से नहीं, राग ज्ञानवस्तु से नहीं। यह विकल्प आदि जो पुण्य-पाप का है, वह पर वस्तु से नहीं, इसका अर्थ पर आश्रय विकल्प, उसरूप भी नहीं। आहाहा! कर्म से आत्मा नहीं, शरीर से नहीं, इसलिए पर आश्रय से होते विकल्प से भी आत्मा नहीं। आहाहा!

ज्ञेयवस्तुरूप है.... यह तो रागादि पर वस्तुरूप है। शरीर शरीररूप, कर्म कर्मरूप, उसरूप से है। कहो, समझ में आया? इस शरीर में रोग हुआ, वह रोग रोगरूप से है, ऐसा कहते हैं, वह ज्ञानरूप हुआ नहीं और ज्ञान में से रोगरूप पर्याय हुई नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब! **इसलिए ऐसा अर्थ प्रगट हुआ है कि पर्यायद्वार से ज्ञान विश्वरूप है....** समझ में आया? जाननेयोग्य होता है न? जाने तो सही न? पर्याय में सब ज्ञात होता है न? इस अपेक्षा से विश्वरूप कहा जाता है। ऐसे इस अपेक्षा से। समझ में आया? **पर्यायद्वार से ज्ञान विश्वरूप है....** ऐसा कहा जाता है। **द्रव्य द्वार से आपरूप है।** लो! वस्तु से तो अपनेरूप से है। ऐसे लो तो अपने से ही सब है। ऐसी चीज़ भगवान आत्मा.... ज्ञान विश्वरूप कहा न? अनेकरूप है।

ऐसा भेद स्याद्वादी अनुभवता है। ऐसी भिन्नता अनेकान्त दृष्टि अनुभवती है। एकान्त दृष्टि को ऐसी खबर नहीं पड़ती। **इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूप का साधक है,...** लो! यहाँ तो वस्तुस्वरूप का स्याद्वाद साधक कहा। राग आदि साधक है, ऐसा नहीं कहा। ऐई! उसमें साधक कहा है न? कषाय मन्द वह साधक है, साध्य है। यहाँ तो कहते हैं, कषाय मन्द, वह तो ज्ञेय है। वह ज्ञेय ज्ञानरूप से हुआ नहीं और ज्ञान, वह ज्ञेयरूप से हुआ नहीं। परन्तु उन दोनों की भिन्नता का साधक जो स्याद्वाद, वह साधक है। मैंपने मैं हूँ, परपने मैं नहीं। यह उसे साधक सिद्ध करे, वस्तु को सिद्ध करे और पर्याय की निर्मलता को साबित करता है। समझ में आया? आहाहा! **स्याद्वाद वस्तुस्वरूप का साधक है, एकान्तपना वस्तु का घातक है।** राग, वह मैं और राग, वह मेरा ज्ञान, यह घातक है। राग, वह मैं नहीं, कषाय की मन्दता, वह मैं नहीं और मैं ज्ञान, वह कषाय की मन्दता नहीं। ऐसा वस्तु का साधकपना स्याद्वाद से वस्तु को सिद्ध करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान को साधता है। अज्ञान में वह साधन नहीं हो सकता। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण १, गुरुवार, दिनांक-०९-१२-१९६५, कलश-२५०, प्रवचन-२६४

स्याद्वाद अधिकार, कलश टीका। इसका तीसरा श्लोक पूरा हुआ। देखो! उसमें क्या कहा अन्तिम? कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप से द्रव्यरूप से स्वयं है। अन्तिम शब्द है न तीसरे के? **द्रव्यद्वार से आपरूप है।** अपने स्वरूप से है और **पर्यायद्वार से ज्ञान विश्वरूप है...** इसमें यह शैली ली है। विश्व अर्थात् पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञेयाकार परिणमन होता है। समझ में आया? ज्ञान की वर्तमान पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञेयाकार परिणमन होता है। उस पर्याय की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि विश्वरूप है। द्रव्य से अपनेरूप त्रिकाल एकरूप है। **ऐसा भेद स्याद्वादी अनुभवता है।** ऐसा प्रकार स्याद्वादी-अपेक्षा से समझनेवाला जानता है, अनुभव करता है। **इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूप का साधक है,...** देखो! साधकपने के ऊपर जरा जोर है। समझ में आया?

रागादि होते हैं, उन्हें ज्ञान की पर्याय जानती है। इस प्रकार से व्यवहार का ज्ञान यद्यपि परिणमा है, ऐसे विश्वरूप से अनेक को जाननेरूप परिणमा है, ऐसा उस ज्ञान की पर्याय की अपेक्षा से कहा जाता है। वस्तुरूप से देखें तो ज्ञान ज्ञानरूप द्रव्य स्वयं है। इस प्रकार वस्तु का साधकपना है। इस प्रकार वस्तु सिद्ध हो सकती है। पर्याय में विश्वरूप जानना, हों! राग के कारण सिद्ध हो सकती है, ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय में यह सब ज्ञात होता है, इस प्रकार से ज्ञान की पर्याय को विश्वरूप / अनेकरूप कहा जाता है। अनेक अर्थात् यह दूसरी अपेक्षा से। अपने अब आयेगा, वह दूसरी बात है। समझ में आया?

वस्तु के दो प्रकार। एक वस्तु त्रिकाल और एक समय की... यहाँ ज्ञान की अपेक्षा से अभी बात है। ज्ञान त्रिकाल और ज्ञान की एक समय की एक पर्याय। पर्याय द्वारा देखें तो पर्याय में एक समय में छह द्रव्य सम्बन्धी का ज्ञानरूप से परिणमना, वह पर्याय है, पर्याय है, वस्तुरूप से देखें तो स्वयं है। पर्याय द्वारा देखें तो मानों अनेक विश्वरूप, छह द्रव्य के ज्ञानरूप, ज्ञेयाकाररूप परिणमना है। ऐसे पर्याय को इस प्रकार से सिद्ध किया। द्रव्यरूप त्रिकाल है, उसकी दृष्टि करने से पर्याय में सम्यग्दर्शन का

अनुभव होता है। समझ में आया? यह उसका साधक है, ऐसा यहाँ तो कहना है। रागादि साधक है, निमित्त साधक है, यह यहाँ नहीं कहना, देखो! समझ में आया?

वस्तु के दो भाग में दो भाग जिस प्रकार से है, वैसा मानना, वह वस्तु का साधकपना है। इसलिए कहा न, **इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूप का साधक है,...** इस प्रकार स्याद्वाद साधक है। पर्याय में अनेकपना, राग, विकल्प, संयोग, छह द्रव्य—यह सब पर है। इसे ज्ञानपर्याय ज्ञेयाकाररूप से जाने सही, परन्तु उस जानने की अपेक्षा से विश्वरूप है, पररूप है—ऐसा अपेक्षा से कहा जाता है और वस्तुरूप से तो एक ही है। उसमें एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने, इतनी कहाँ वस्तु है? समझ में आया?

वस्तु तो त्रिकाल अखण्ड ज्ञायकमूर्ति चैतन्य वह तो अपनेरूप ही है। उस पररूप तो एक समय की पर्याय पर की अपेक्षावाली ज्ञेयाकाररूप परिणमी है, इतना। उस पर्याय की इतनी स्वीकृति की और द्रव्य आपरूप है, वस्तु एकरूप त्रिकाल है, ऐसे उस पर दृष्टि देने से पर्याय में अनन्त गुण के अंश का वेदन-अनुभव होता है। भारी सूक्ष्म, भाई! स्याद्वाद का। अब तीसरा श्लोक। वैसे चौथा है, ऐसे तीसरा है। यह 'एक' का श्लोक है।

कलश - २५०

(शार्दूलविक्रीडित)

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसद्
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन् पशुर्नश्यति।
एकद्रव्यतया सदा व्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसय-
न्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ।।४-२५०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, पर्यायमात्र को वस्तु मानता है; वस्तु को नहीं मानता है; इसलिए ज्ञानवस्तु अनेक ज्ञेय को जानती है, उसको जानती हुई (ज्ञानवस्तु), ज्ञेयाकार परिणमती है—ऐसा जानकर, ज्ञान को अनेक मानता है; एक नहीं मानता है। उनके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान को माने बिना, अनेक ज्ञान—ऐसा नहीं सधता है; इसलिए ज्ञान को एक मानकर, अनेक मानना, वस्तु का साधक है—ऐसा कहते हैं— 'पशुः नश्यति' एकान्तवादी, वस्तु को नहीं साध सकता है। कैसा है (एकान्तवादी)? 'अभितः त्रुट्यन्' जैसा मानता है, उस प्रकार वह झूठा ठहरता है। और कैसा है? 'विष्वग्विचित्रोल्लसद्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्ति' [विष्वग्] जो अनन्त है, [विचित्र] अनन्त प्रकार का है, [उल्लसत्] प्रगट विद्यमान है, ऐसा जो [ज्ञेय] छह द्रव्यों का समूह, उसके [आकार] प्रतिबिम्बरूप परिणमी है—ऐसी जो ज्ञानपर्याय, [विशीर्णशक्तिः] एतावन्मात्र ज्ञान है—ऐसी श्रद्धा करनेपर, गल गई है वस्तु साधने की सामर्थ्य जिसकी, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव। ऐसा क्यों है? 'बाह्यार्थग्रहण-स्वभावभरतः' [बाह्यार्थ] जितनी ज्ञेयवस्तु, उनका [ग्रहण] जानपना, उसकी आकृतिरूप ज्ञान का परिणाम, ऐसा जो है [स्वभाव] वस्तु का सहज (स्वभाव), जो कि [भरतः] किसी के कहने से वर्जा न जाये (छूटे नहीं)—ऐसा अमिटपना, उसके कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञान का स्वभाव है कि समस्त ज्ञेय को जानता हुआ, ज्ञेय के आकाररूप परिणमना। कोई एकान्तवादी एतावन्मात्र (इतना मात्र ही) वस्तु को जानता हुआ, ज्ञान को अनेक मानता है। उसके प्रति, स्याद्वादी, ज्ञान का एकपना साधता है— 'अनेकान्तविद् ज्ञानं एकं पश्यति' [अनेकान्तविद्] एक सत्ता को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है—ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, [ज्ञानं एकं पश्यति] ज्ञानवस्तु यद्यपि पर्यायरूप से अनेक है तथापि द्रव्यरूप से एकरूप अनुभवता है। कैसा है स्याद्वादी? 'भेदभ्रमं ध्वंसयन्' ज्ञान, अनेक

है—ऐसे एकान्तपक्ष को नहीं मानता है। किस कारण से? 'एकद्रव्यतया' ज्ञान, एक वस्तु है—ऐसे अभिप्राय के कारण। कैसा है अभिप्राय? 'सदा व्युदितया' सर्व काल उदयमान है। कैसा है ज्ञान? 'अबाधितानुभवनं' अखण्डित है अनुभव जिसमें, ऐसी है ज्ञानवस्तु।।४-२५०।।

कलश - २५० पर प्रवचन

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसद्
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन् पशुर्नश्यति।
एकद्रव्यतया सदा व्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसय-
न्नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ।।४-२५०।।

भावार्थ अर्थात् कि जो भाव कहना, वह इस प्रकार है कि **कोई एकान्तवादी...** एक ही पक्ष को माननेवाला वास्तविक तत्त्व को नहीं समझनेवाला **मिथ्यादृष्टि जीव पर्यायमात्र को वस्तु मानता है,...** सिद्ध तो एक को करना है। तथापि उस पर्याय में अनेकपना जो है, अनेकपने जानने की जो पर्याय है, वस्तु की पर्याय, ऐसी पर्याय को ही वस्तु मानता है, **वस्तु को नहीं मानता है,...** अनेक को मानता है। पर्याय में अनेकपना है, उसे मानता है परन्तु वस्तु एकरूप है, उसे नहीं मानता। यह एक का बोल है। इसके सामने अनेक ही मानता है और एक नहीं मानता, ऐसा पहले सिद्ध करेंगे और फिर एक माननेवाला स्याद्वादी एक मानता है, यह पर्याय का अनेकपना होने पर भी वस्तुरूप से एक है। समझ में आया?

यह स्याद्वाद अधिकार जरा सूक्ष्म है। **मिथ्यादृष्टि जीव पर्यायमात्र को वस्तु मानता है,...** एक समय की अवस्था में जो अनेकरूप वस्तु ज्ञात होती है, उस अनेकपने को ही वस्तु मानता है। पर्याय में अनेकपना ज्ञात होता है न! उसे अनेकपने को—पर्याय को ही मानता है। **वस्तु को नहीं मानता है,...** वस्तु एकरूप त्रिकाल है, पर्याय का अनेकपना होने पर भी वस्तु तो एक है। द्रव्यरूप से वस्तु एक है, उस एक को नहीं मानता। अकेली पर्याय (मानता है)। इतना द्रव्य, ऐसा (मानता है)। परन्तु पूर्ण वस्तु एक अखण्ड ज्ञायक है, उसे नहीं मानता।

इसलिए ज्ञानवस्तु अनेक ज्ञेय को जानती है,... देखो! भगवान आत्मा ज्ञानवस्तु अनेक ज्ञेय को जानती है, पर्याय में अनेक ज्ञेय को जानती है। **उसको जानती हुई...** वस्तु। वस्तु ली है न? जानती हुई, (ऐसी) ज्ञानवस्तु—भगवान आत्मवस्तु। पर्याय में **उसको...** ज्ञेय को **जानती हुई ज्ञेयाकार परिणमती है...** ज्ञेय—ज्ञात होनेयोग्य पदार्थरूप से पर्याय परिणमती है। परिणमती है तो अपनेरूप, परन्तु ज्ञेयाकाररूप अपनी पर्याय होती है। समझ में आया? पररूप नहीं होती, परन्तु जो ज्ञेय वस्तु है, इसकी पर्याय में ज्ञेयाकाररूप होती है।

ऐसा जानकर ज्ञान को अनेक मानता है,... यह ज्ञान का रूप अनेक ही है, ऐसा मानता है। एक वस्तु त्रिकाल द्रव्य है, उसमें दृष्टि देनेयोग्य है, ऐसा वह मानता नहीं। समझ में आया? **एक नहीं मानता है।** अनेक मानता है। पर्याय अपेक्षा से अकेला अनेक मानता है। अनेक अकेला मानने पर एक बिना अनेक भी सिद्ध नहीं हो सकता।

उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि एक ज्ञान को माने बिना... एकरूप ज्ञान को माने बिना। एकरूप वस्तु त्रिकाल को जाने बिना **अनेक ज्ञान ऐसा नहीं सधता है,....** एकपने की अपेक्षा बिना अनेकपना इसकी पर्याय में सिद्ध नहीं होता। कौन अनेकरूप परिणमा? द्रव्य कौन था? कौन द्रव्य अनेकरूप परिणमा? समझ में आया? कौन वस्तु स्वयं अनेकरूप वर्तमान पर्यायरूप हुई? उस अनेक को अकेला माननेवाला द्रव्य की अपेक्षा बिना अनेकपने की पर्याय भी सिद्ध नहीं कर सकता। कहो, समझ में आया? जमुभाई! उसमें—आंकडिया में तो कभी ऐसा आया नहीं होगा। आहाहा!

वस्तु भगवान आत्मा एकरूप त्रिकाल है। देखो न! सब जगह एक... एक... एक आता है। एकरूप। एक स्वभाव, एक स्वभाव, एक स्वभाव। वीतराग ज्ञानानन्द एक स्वभाव, एक वस्तु। भले गुण अनन्त हों, यह अपेक्षा से बात (ऐसी हो), परन्तु द्रव्यरूप से तो एक है। उसकी एक समय की पर्याय अनेक को जाननेरूप, ज्ञेय ज्ञात होते हैं, उनके जाननेरूप परिणमे, इससे उसे—अनेकपने को अर्थात् पर्याय को ही मानता है। वस्तु त्रिकाल एकरूप ज्ञेय एक है, उसे वह नहीं मानता। **एक ज्ञान को माने बिना अनेक ज्ञान ऐसा नहीं सधता है,....** किसका अनेकपना परिणमा? जड़ अनेकरूप परिणमा?

कौन सा द्रव्य अनेकरूप (परिणमा)? एकरूप रहनेवाले बिना अनेकरूप परिणमा कौन? समझ में आया? अनेकरूप हुआ कौन? एकरूप रहे बिना अनेकरूप हुआ कौन? उस अनेकरूप पर्याय—इसकी पर्याय हुई है, एक द्रव्य है, एकरूप रहनेवाला अनेकरूप परिणमा है। समझ में आया? अनेक को एक के साथ सम्बन्ध है, ऐसा कहना है। अनेकपने का पर्याय का परिणमन, उसका सम्बन्ध एक द्रव्य के साथ है। किसके साथ?—अपने साथ, पर के साथ नहीं। पर जो टिकी हुई चीज़ है, इसलिए उसके कारण यहाँ परिणमा अर्थात् वह है तो यह परिणमा, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इसलिए ज्ञान को एक मानकर अनेक मानना वस्तु का साधक है। देखो! है न? एक ज्ञान को माने बिना, एकरूप उस चीज़ का जो अंश है, वह अंश अनेकरूप हुआ तो एकरूप है, वह पर्याय में अनेकरूप (हुआ है)। वस्तुरूप से एक है, वह अवस्था में अनेकरूप हुआ है। ऐसे एकरूप की चीज़ को माने बिना अनेक ज्ञान, ऐसा साधा नहीं जा सकता। अर्थात् कि दूसरा कोई टिकता है अथवा दूसरा है, इसलिए अनेकरूप परिणमा है, (ऐसा नहीं है)। क्या? उसे (स्वयं को) आधार से अनेकरूप परिणमी है, सामने निमित्त के आधार से नहीं। समझ में आया?

बड़ा वज्र का स्तम्भ ध्रुव पड़ा है एक द्रव्य। वह एकरूप है, वह पर्याय में—अंश में अनेकरूप होता है। दूसरी चीज़ के कारण अनेकरूप है, (ऐसा नहीं है)। विश्व है अवश्य, उसके निमित्त से अपने ज्ञान की अवस्था, उस प्रकार से ज्ञेयाकाररूप से होना, ऐसा स्वभाव है, परन्तु वह अनेकपना होना, वह एक की अपेक्षा रखकर होता है। किसी की अपेक्षा रखकर अनेकरूप परिणमता है, (ऐसा नहीं है)। हमारे हिम्मतभाई दाँत निकालते हैं। देखो न! यहाँ क्या कहा है?

एक ज्ञान को माने बिना.... उसकी और उसकी चीज़ को। अनेकरूप पर्याय हुई, वही एकपने एकरूप को माने बिना उसका अनेकपना एक के सम्बन्ध बिना अनेकपना सिद्ध नहीं होता। आहाहा! कहो, समझ में आया? दूसरे हैं, इसलिए अनेकपना सिद्ध होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा सिद्ध नहीं होता। उसके सम्बन्धवाला तत्त्व एक है, उसके कारण अनेकपना सिद्ध होता है। गजब भाई! ऐसा। .... स्याद्वाद भारी सूक्ष्म।

इसलिए... इसलिए। **ज्ञान को एक मानकर...** एकरूप उसी और उसी को एकरूप मानकर। जो अनेकरूप परिणमा है, उसी और उसी को एकरूप मानकर—एकरूप रहनेवाला मानकर **अनेक मानना वस्तु का साधक है।** देखो! समझ में आया? वस्तु जो अनेकपने पर्याय में परिणमी है, उसी एक वस्तु को माने बिना अनेकपना सिद्ध नहीं होता। इसलिए एकरूप रहनेवाली चीज़, एकरूप, सदृशरूप, एकरूप के सम्बन्ध से वर्तमान पर्याय का अनेकपना है, उसके सम्बन्ध से। एक की अपेक्षा से अनेक है। यह एक अपने सम्बन्ध की अपेक्षा से अनेक है। अकेला अनेक माने, उसे एक की अपेक्षा बिना अनेकपने की सिद्धि नहीं होती। समझ में आया? यह तो स्याद्वाद के चौदह बोल ऐसे रखे हैं कि जो वह अकेला आत्मा-आत्मा करे न कि आत्मा ऐसा है, कूटस्थ है, ध्रुव है। ऐसी वस्तु नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समय-समय में पर्याय में—अवस्था में अनेकपनेरूप भास होने पर भी एकान्त से अनेक ही वह अंश नहीं है। वह अंश एकरूप रहनेवाली वस्तु है, उसके सम्बन्धवाली एक पर्याय अनेकपने को जाननेरूप परिणमित है, तब एक की अपेक्षा से अनेक सिद्ध होता है। एक के अनुभव में पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय का अनुभव आता है, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया?

ज्ञान को एक मानकर.... भगवान वस्तु एकरूप है, ऐसा मानकर उसकी पर्याय में एक वस्तु के लक्ष्य को अस्तित्व से सिद्ध करके, उसकी पर्याय में अनन्त गुण का एक समय में स्व-पर को जानने की पर्यायरूप परिणमे, तब अनेकपना सिद्ध होता है। समझ में आया? **ऐसा कहते हैं।** यह तो अभी इसका उपोद्घात किया है। यह तो इसका भावार्थ (किया)। भावार्थ (अर्थात्) क्या? कि यह कहना है।

'**पशुः नश्यति**' ऐसा सीधा शब्द ही लिया है। पशु अर्थात् **एकान्तवादी वस्तु को नहीं साध सकता।** अकेले अनेक को ही माननेवाला, एकरूप रहनेवाले भगवान आत्मा बिना पर्याय का अनेकपना भी अनुभव नहीं किया जा सकता। समझ में आया? समझ में आया? '**पशुः नश्यति**' पशु का अर्थ किया था पहले। '**पश्यते बध्ये इति कर्म इति पशुः**' क्या? एकान्त नहीं? पहले दूसरा अर्थ किया था। पहले पशु का अर्थ किया था। देखो! पहले पशु था न कहीं? कहाँ आया? अगली गाथा। समझ में आया? देखो! पशु। पहले वहाँ पशु कहा था और पहला पशु यहाँ था—२१९। पशु। '**पशुः नश्यति**'

आत्मा एकरूप अखण्ड आनन्द है, एकरूप अखण्ड है, उसके स्वीकार बिना अकेले पर्याय के क्षणिकपने को माननेवाला एकान्त पशु है। पशु जैसा अर्थात् कर्म से बँधता है। कर्म से बँधता है अर्थात् उसे अबन्ध परिणाम प्रगट नहीं होते। बँधता—रुक जाता है। एकान्तपने में रुककर चार गति में भटकने के कर्म बाँधता है। कहो, समझ में आया? एकान्तवादी—एक अन्त—एक ही पक्ष को माननेवाला। **वस्तु को नहीं साध सकता है।** वास्तविक पदार्थ भगवान, उसे सिद्ध—अनुभव में ला नहीं सकता।

कैसा है? 'अभितः त्रुट्यन्' जैसा मानता है, उस प्रकार वह झूठा ठहरता है। क्या कहते हैं? यह अनेकपना मानता है, इस प्रकार से उसका अनेकपना झूठा सिद्ध होता है। समझ में आया? भगवान एकरूप वस्तु त्रिकाल ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। ऐसे एकरूप को स्वीकार किये बिना जिस प्रकार से वह अनेक को ही अकेले मानता है, वह प्रकार झूठा सिद्ध होता है। '**अभितः**' अभितः का यह अर्थ किया। '**अभितः**' क्या आता है बारम्बार? सर्वथा। '**त्रुट्यन्**'। '**अभितः**' बहुत जगह आता है। बारम्बार, सर्वथा। पूरा झूठा सिद्ध होता है, लो न। पूरा झूठा सिद्ध होता है। वस्तु भगवान आत्मा एकरूप चिद्घन आत्मा है, उसे माने बिना अकेली अनेकपने की पर्याय को ही मानता है, वह पूरा झूठा सिद्ध होता है। थोड़ा झूठा नहीं, ऐसा कहते हैं। अकेली पर्याय का स्वीकार किया या नहीं?—नहीं।

श्रोता : सच्चे को सच्चा कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, जरा भी नहीं। एक अंश में पूरे पूर्ण को माना तो वह अंश भी उसका सत्य नहीं रहा, ऐसा कहते हैं। एक अंश भी सत्य नहीं। असर्वांश को सर्वांश स्वीकार किया तो उसका असर्वांश भी यथार्थ नहीं रहा। समझ में आया? असर्वांश और क्या?

पूरा सर्व स्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण, उसकी एक समय की पर्याय तो सर्वांश पूरा, पूरा रूप नहीं है। उस एक अंश को ही पूरा माना। अर्थात् एक अंश को पूरा मानने से अंश भी सिद्ध नहीं होता। वह किसका अंश? किसका वह अंश? किसमें उस अनेकपने की पर्याय का ज्ञान? समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य ने इस समयसार के ऊपर कलश किये। मन्दिर बनाते हैं न? मन्दिर के ऊपर कलश रखते हैं, ऐसे कलश रखे हैं।

क्या कहते हैं? **जैसा मानता है, उस प्रकार वह झूठा ठहरता है।** ऐसा कहा। जैसा यह मानता है, उस प्रकार से—उस प्रकार से यह झूठा सिद्ध होता है। अनेक किसकी अपेक्षा से? किसका अनेक? किसका अनेक? अनेक का अनेक, परन्तु अनेक का अनेक अर्थात् क्या? समझ में आया? एकरूप वस्तु की अपेक्षा बिना अकेले अनेक का अनेक, अनेक का अनेक, अर्थात् क्या? कहते हैं, तेरा जिस प्रकार तू मानता है, उसका अर्थ झूठा सिद्ध होता है।

और कैसा है? 'विष्वग्विचित्रोल्लसद्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्ति' 'विश्वक्' जो अनन्त है, अनन्त प्रकार का है। यह छह द्रव्य है न? छह द्रव्य हैं, अनन्त हैं और वापस उसमें अनन्त प्रकार की विचित्रता गुण-पर्याय की भी है। छह द्रव्य है न? छह द्रव्य, वे अनन्त हैं और वापस अनन्त प्रकार के। अनन्त का एक प्रकार नहीं। कोई चैतन्य है, कोई जड़ है। कोई चैतन्य के गुण हैं, कोई सामान्य, कोई विशेष, उनके बहुत प्रकार हैं। अनन्त हैं और अनन्त प्रकार के हैं। आहाहा! **'उल्लसत्' प्रगट विद्यमान है...** बाह्य। **'उल्लसत्'** उल्लसित हो गये हैं, ऐसा है, ऐसा। **प्रगट विद्यमान है - ऐसा जो...** ऐसे जो ज्ञेय **छह द्रव्यों का समूह...** देखो! यहाँ छह द्रव्य लिये, भाई! उसमें पाँच लिये थे, ज्ञेय में। यहाँ छह द्रव्य लिये, देखो!

एक ओर भगवान आत्मा, एक ओर भगवान वस्तु स्वरूप द्रव्य का तथा एक ओर एक पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान। एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान। समझ में आया? आहाहा! एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान। अनन्त सिद्ध आदि सब एक समय की पर्याय में आ गये। पूरी वस्तु तो महान बड़ी एक ओर रह गयी। ओहोहो! समझ में आया? भगवान आत्मा अकेला परमेश्वर प्रभु, उसकी एक समय की पर्याय में सब छह द्रव्य, सब, सब छह द्रव्य का समूह। ज्ञेय की व्याख्या।

उसके प्रतिबिम्बरूप परिणमी है... उनके प्रतिबिम्बरूप (परिणमी है), ऐसी जो ज्ञानपर्याय—ऐसी जो ज्ञान की अवस्था। छह द्रव्यों के समूहरूप अपनी ज्ञान की पर्याय में प्रतिबिम्बरूप (हुए हैं)। पर्याय है न? उनका प्रतिबिम्ब अर्थात् जैसा है, उसका बिम्ब यहाँ (पड़े)। उसरूप परिणमती है। ऐसी **जो ज्ञानपर्याय... 'विशीर्णशक्तिः'** गल गयी है। **एतावन्मात्र ज्ञान है ऐसी श्रद्धा करने पर गल गयी है वस्तु साधने की सामर्थ्य**

जिसकी। इतनी ही पर्याय को माननेवाला। **एतावन्मात्र ज्ञान है...** इतना ही वह ज्ञान है, एक समय की पर्याय और छह द्रव्य जाने, इतना ही वह ज्ञान है। ओहोहो! इससे बड़ा लगा इसे। आहाहा! छह द्रव्यों को जाने अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... और अनन्त प्रकार। अनन्त और अनन्त प्रकार। एक समय में जाने, इतना ही ज्ञान है—ऐसी श्रद्धा करनेवाले को **गल गयी है वस्तु साधने की सामर्थ्य....** इतनी एक समय की पर्याय से अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्तगुना पूरा द्रव्य जो है, उसे सिद्ध करने की दृष्टि गल गयी है, जल गयी है, दृष्टि मिथ्यात्व हो गयी है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म परन्तुभाई! समझ में आया? आहाहा!

भगवान कहते हैं कि इतना बड़ा है कि जिसकी एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का प्रतिबिम्बरूप होना, परन्तु इतना ही मानने से पूरे द्रव्य को सिद्ध करने की उसकी दृष्टि गल गयी है। **'विशीर्णशक्तिः' 'विशीर्ण'** जीर्ण हो गयी, नाश हो गयी, ऐसा। आहाहा! एक पर्याय में तो मानो ओहो! यह तो इतना बड़ा। उसमें पूरी वस्तु ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड। ऐसी तो अनन्त पर्याय का अकेला कन्द। महापरमेश्वर चैतन्यध्रुव को सिद्ध करने को अकेली एक बिना की अनन्त पर्याय को ही अकेले माननेवाला, इतना ही माननेवाला, उसे पूरी चीज़ को सिद्ध करने की दृष्टि गल गयी है। जल गयी है अर्थात् सुलग गयी है—नाश हो गयी है। आहाहा! समझ में आया?

बाकी विशिष्टता तो यह कि एक पर्याय में इतना सब माने तो भी। अकेली वस्तु और अकेली पर्याय और एक ही इतना नहीं ऐसा नहीं। वह एक पर्याय इतनी है कि छह द्रव्य के अनन्त-अनन्त प्रकार को जानना, प्रतिबिम्बरूप से परिणमे इतनी पर्याय। इतनी पर्याय को माने तो भी वस्तु को सिद्ध करने की जिसकी दृष्टि नाश हो गयी। आहाहा! समझ में आया? तो जो अभी छह द्रव्य, उनरूप परिणमित पर्याय, इतनी जो पर्याय है और छह द्रव्य है, उन्हें जो नहीं मानता... समझ में आया? उसने पूरा द्रव्य तो नहीं माना परन्तु पर्याय में इतनी ताकत है, इतनी पर्याय भी उसने नहीं मानी। समझ में आया?

एतावन्मात्र ज्ञान है ऐसी श्रद्धा करने पर... 'विशीर्ण' हो गयी है। **'विशीर्ण'** अर्थात् गल गयी है, नाश हो गयी है। **वस्तु साधने की सामर्थ्य जिसकी।** इतने एक समय की पर्याय में उसे छह द्रव्य (ज्ञात हुए)। छह द्रव्य में क्या आया? अनन्त केवली आये।

श्रोता : स्वयं आ गया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं आया, पर्याय अपेक्षा से सब आ गया या नहीं अन्दर? परन्तु इतनी ही पर्याय को माननेवाला, कहते हैं कि उसकी दृष्टि अकेले अंश में ही रही। इतनी पर्याय तो भी! जिसने—अज्ञानी ने तो एक ही साधारण पर्याय मानी है, जिसे छह द्रव्य भी उसके ज्ञान के प्रतिबिम्ब मानता नहीं। वह पर्याय की इतनी शक्ति अभी मानता नहीं, उसे तो द्रव्य भी दृष्टि में नाश हो गया और पर्याय भी दृष्टि में नाश हो गयी। ऐसा हुआ या नहीं? विमलचन्दजी! उसकी तो पर्याय भी नाश हो गयी। आहाहा!

यह तो एक पर्याय इतनी माने तो भी कहते हैं कि द्रव्य की दृष्टि सिद्ध करने के लिये उसकी दृष्टि नाश हो गयी है। इतनी पर्याय जो नहीं मानता कि जो एक समय की पर्याय में छह द्रव्य के ज्ञेयाकार प्रतिबिम्बरूप से परिणमती हैं, इतना ही एक पर्याय का स्वभाव और ताकत है। जुगराजजी! गजब यह तो वीतराग दृष्टि! इतनी पर्याय भी जो नहीं मानता, उसे तो पर्याय सिद्ध करने की दृष्टि में ताकत नहीं और वस्तु को सिद्ध करने की ताकत तो नहीं ही! समझ में आया? परन्तु जिसने ऐसे एक समय की पर्याय में छह द्रव्य के समूह को जानने की प्रतिबिम्ब होने की योग्यता मानी है, इतना ही माननेवाला है, उसे भी द्रव्य को सिद्ध करने की ताकत दृष्टि में नहीं रहती। आहाहा!

यह भगवान आत्मा इतना एक समय का इतना माने तो भी नहीं। यहाँ तो अभी एक समय की पर्याय में कितना? (उसमें भी) विवाद। केवलज्ञानी की एक समय की पर्याय, केवलज्ञानी की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को एक समय में प्रतिबिम्बरूप से जाने। तीन काल—त्रिकाल। समझ में आया? त्रिकाल भाव से परिणमना। अस्तित्व। छठवीं गाथा। वस्तु अस्तित्व है, वस्तु का जो अस्तित्व है, वह प्रत्येक पदार्थ तीन काल की पर्यायरूप... पर्यायरूप... पर्यायरूप परिणमती वस्तु है, ऐसी जो वस्तु की पर्यायरूप से परिणमती वस्तु, उसे ज्ञान की एक समय की पर्याय ज्ञेयाकाररूप से जानने की ताकतवाली पर्याय है। इतनी पर्याय को इतने सामर्थ्यवाली जो नहीं मानता, उसे तो पर्याय और द्रव्य की दोनों की श्रद्धा मिथ्यात्व है। समझ में आया? धरमचन्दभाई! बहुत कठिन निकला। यह सब रट-रटकर रटा, निकला दूसरा। दूसरा सीखना पड़ेगा। आहाहा! परन्तु गजब टीका की है न! टीका को सिद्ध करने की...

वस्तु जो भगवान कहना चाहते हैं, यह... एक समय की पर्याय भी... एक समय की पर्याय कितनी, उसे ज्ञान में जाने, उस श्रद्धा की एक समय की पर्याय, श्रद्धा की एक समय की पर्याय भी उसे पर्यायरूप से इतने को स्वीकार करे, इतने को स्वीकार करे। इतना स्वीकार नहीं करे उसकी तो कहते हैं, पर्याय और द्रव्य की, दोनों की श्रद्धा मिथ्यात्व है। इसलिए कहा कि **एतावन्मात्र...** एतावन्मात्र, इतना ही मात्र। इतना ही माने। आहाहा!

एतावन्मात्र ज्ञान है ऐसी श्रद्धा करने पर... 'विशीर्ण' जिसकी शक्ति—सामर्थ्य नाश हो गयी है। **वस्तु साधने की सामर्थ्य जिसकी, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव।** आहाहा! **ऐसा क्यों है? 'बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतः' 'बाह्यार्थ' जितनी ज्ञेय वस्तु, उनका जानपना...** देखा? ग्रहण की व्याख्या। जितनी बाह्य वस्तु है, भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में जो बाह्यार्थ **जितनी ज्ञेय वस्तु, उनका जानपना...** उनका ज्ञान। समझ में आया? उसे तो स्वयं द्रव्य स्वीकारता नहीं। स्वयं अपने पूरे (द्रव्य) तो स्वीकारता नहीं। इसलिए स्वयं पूरे बिना की एक पर्याय (जितना है)। ऐसा कहना है। उसमें आया था न? साधक है, वह तो स्व-पर को दोनों को जानने की पर्याय, वह ज्ञेय है। अज्ञानी को तो पर, वह ज्ञेय है। आया था न पहले? परज्ञेय भाई! पहले आया था न! पहले में आया था। **ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है।**

(कलश) २४८ में आया था। **'ज्ञानं पशोः सीदति।' एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जैसा मानता है कि ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है...** सातवीं लाईन। उसे मात्र (ऐसा लगता है कि) ज्ञान परज्ञेय के सहारे का है। और समकिती जो मानता है उसे... प्रश्न था न उसमें? दोनों। समझ में आया? **पर्यायरूप कहने से स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ ज्ञेय की...** २१८ पृष्ठ। इसका विवरण है न? विवरण। **द्रव्यरूप कहने से निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु; पर्यायरूप कहने से स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय को जानता हुआ...** ऊपर ऐसा आया था। सम्यग्ज्ञान की पर्याय तो स्व और पर को दोनों को जानती हुई। समझ में आया? और द्रव्य का भी स्वीकार हुआ; तथा मिथ्याज्ञान की पर्याय में अकेली पर्याय को माना, स्वद्रव्य को नहीं माना, उसने वस्तु को नहीं माना, परन्तु ज्ञान की पर्याय दूसरी वस्तु और दूसरी पर्याय है, वह ज्ञान में आकार परिणमती इतनी ही पर्याय को माना—पर्याय को इतनी माना। समझ में आया?

जितनी ज्ञेय वस्तु उनका.... 'ग्रहण' जानपना, उसकी आकृतिरूप ज्ञान का परिणाम ऐसा जो है वस्तु का सहज... वस्तु का सहज जो कि किसी के कहने से वर्जा न जाए (छूटे नहीं) ऐसा अमिटपना, उसके कारण। क्या कहते हैं ? यह तो पर्याय का धर्म है कि उसकी आकृतिरूप ज्ञान का परिणाम हो। **किसी के कहने से वर्जा न जाए....** यह तो पर्याय ऐसी होती ही है। अमिटपना—मिटे नहीं ऐसा। किस प्रकार से ? **ज्ञान का स्वभाव है कि समस्त ज्ञेय को जानता हुआ....** ऐसा कहते हैं। सब ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञान की वर्तमान दशा **ज्ञेय के आकाररूप परिणमना।** (होता है)। ओहोहो! देखो! इसमें यह आया है। समस्त को (ज्ञेय को) जानता हुआ ज्ञेयरूप ज्ञान परिणमता है, परन्तु ज्ञान परिणमता है, ऐसे ज्ञेय कहाँ परिणमते हैं ? परन्तु यह तो वह का वह है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। क्या कहा, समझ में आया ?

यहाँ तो सिद्ध पर्याय को अनन्तरूप सिद्ध करना है। बाकी तो ज्ञान की पर्याय जो पूर्ण है, वह जिस प्रकार से परिणम रही है, वह परिणमनेरूप जो परिणमा, उसी प्रकार से पूरे लोकालोक की पर्याय उस प्रकार से वहाँ उसके कारण से परिणम रही है। आहाहा! समझ में आया ? 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होशी वीरा, अनहोनी कबहू न होशी काहे होत अधीरा।' 'जो जो देखी वीतराग ने' उन्हें एक समय की पर्याय में पूरा लोकालोक और सब दिखता है, उसी अनुसार वहाँ होगा, आड़ा-टेड़ा नहीं होगा। (वीतराग ने जाना) इस कारण से नहीं परन्तु ऐसा जाना, उसी प्रकार से वहाँ उसे (स्वयं के) कारण से परिणमता है। 'अनहोनी कबहू न होशी, काहे होत अधीरा।'

यहाँ तो जरा दूसरी बात करनी है कि जो ज्ञान की पर्याय है, जैसा ज्ञेय सामने है... समझ में आया ? उस **समस्त ज्ञेय को जानता हुआ...** समस्त ज्ञेय को जानता हुआ। वे सब ज्ञेय और द्रव्य-गुण-पर्याय, भूत-भविष्य और वर्तमान, वह सब ज्ञेय है। आहाहा! त्रिकाल ज्ञेय है या एक वर्तमान ज्ञेय है ? वस्तु का सहज जो पर्यायधर्म **किसी के कहने से वर्जा न जाए (छूटे नहीं)...** वह उसका—ज्ञान का परिणाम, हों! यहाँ तो ज्ञान का परिणाम (लेना है)। आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाल, उसका एक समय का परिणाम—पर्याय, वह जितने ज्ञेय हैं, उस प्रकार से परिणमता है, ऐसा वस्तु का पर्यायस्वभाव है। **'भरतः' किसी के कहने से वर्जा न जाए (छूटे नहीं)....** ऐसा उसे अमिटपना, वह पर्याय

का धर्म है। मिटे नहीं ऐसा एक समय की पर्याय का धर्म। ओहोहो! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञान का स्वभाव है कि.... यह पर्याय की बात है, हों! **कि समस्त ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञेय के आकाररूप परिणमना।** ज्ञेय के आकार परिणमना। वह स्वयं उस प्रकार से परिणमता है। जैसा वहाँ है, उस प्रकार स्वयं से अपने में ज्ञेयाकाररूप परिणमता है। ओहोहो! समझ में आया? **कोई एकान्तवादी एतावन्मात्र वस्तु को जानता हुआ....** लो। कोई एकान्त माननेवाले अर्थात् अकेली पर्याय को ही माननेवाले। एक क्षणिक अवस्था, इतनी वापस क्षणिक अवस्था। बौद्ध की तो इतनी (भी नहीं)। आहाहा! यह तो वीतराग कहते हैं कि वस्तु का पर्यायधर्म ही इतना है, इतना धर्म है। एक समय में तीन काल तीन लोक का ज्ञेयरूप परिणमना, जानना, ऐसा एक समय का धर्म है। आहाहा! ऐसा जानना, इस प्रकार से श्रद्धा करना, ऐसा एक समय का पर्यायधर्म है। समझ में आया? **एतावन्मात्र वस्तु को जानता हुआ ज्ञान को अनेक मानता है।** उस एक समय की पर्याय में सब ज्ञात हुआ। अनेक... अनेक... अनेक... अनन्त और अनन्त प्रकार। अनन्त और अनन्त द्रव्य और अनन्त पर्याय के अनन्त प्रकार। ऐसा एक समय में जानता है।

उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञान का एकपना साधता है। अब सुलटा लेते हैं। वह जो एक है, उसे अकेला अनेक ही मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, उसका एक भाग कहा। अब एक है, उसे एकरूप मानता है, उसकी बात करते हैं। **उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञान का एकपना साधता है। 'अनेकान्तविद् ज्ञानम् एकं पश्यति' 'अनेकान्तविद्' स्याद्वादी अर्थात् एक सत्ता को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है...** देखो! क्या कहा यह? ये एक सत्ता के दो अंश हैं। एक ही पर्याय अंश सत्ता का है, ऐसा नहीं। क्या कहा? भगवान आत्मा एक सत्ता, असंख्य प्रदेशी एक सत्ता। उस सत्ता के दो अंश हैं। द्रव्य और पर्यायरूप मानता है। एक सत्ता को द्रव्य और पर्यायरूप मानता है। देखो! दूसरी सत्ता की अपेक्षा से नहीं, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया?

एक सत्ता के दो भाग—एक कायम रहनेवाला एकरूप तथा एक पर्यायरूप अनेकरूप अनन्त द्रव्यों को जाननेरूप परिणमित अनेक। यह एक और अनेक। एक

सत्ता का एकरूप। एक सत्ता का दो रूप। एक सत्ता का दो रूप। समझ में आया? एक ही अस्तित्व के दो भाग। '**अनेकान्तविद्**' अनेक अर्थात् दो आदि धर्म को जाननेवाला अर्थात् कि एक सत्ता को द्रव्यरूप (और) पर्यायरूप मानता है। ऐसा अनेकान्त कहा न? अनेक अन्त—धर्म। धर्म अर्थात् अनेक। कौन? दो। एक सत्ता के दो धर्म माननेवाला। एक ही सत्ता का द्रव्यधर्म और पर्यायधर्म। दूसरे की बात नहीं है। समझ में आया?

एक सत्ता को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव.... 'ज्ञानं एकं पश्यति' ज्ञानवस्तु यद्यपि पर्यायरूप अनेक है.... अवस्था में विश्व का जो स्वरूप है, उस रूप पर्याय परिणमित भासित होती है। अनेकरूप परिणमित पर्याय भासित होती है। **तथापि द्रव्यरूप से एकरूप अनुभवता है।** वस्तुरूप से एकरूप जानता है, पर्याय में अनेकरूप होने पर भी... वह की वह क्रीड़ा उसके पर्याय और द्रव्य में है। समझ में आया? पर के साथ कुछ लेना-देना नहीं। देखो! यहाँ कर्म की सत्ता के साथ सम्बन्ध नहीं, ऐसा सब यहाँ तो कहते हैं। ऐसा आया या नहीं इसमें? कर्म की सत्ता सब सत्ता है, ऐसा ज्ञान की पर्याय जानती है। उस सत्ता के कारण जानती है, ऐसा भी नहीं है। यहाँ पर्याय का स्वभाव है कि वह सत्ता है, उसे ज्ञानपर्याय जानती है, परन्तु वह ज्ञान की पर्याय स्वयं अपनी सत्ता के दो भाग (उसे ही जानती है)। एक ही सत्ता के दो भाग हैं— एक द्रव्यरूप और एक पर्यायरूप। समझ में आया?

कर्म की सत्ता का अस्तित्व, शरीर का अस्तित्व, उस सब अस्तित्व के कारण यह एक समय की पर्याय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है या नहीं? कर्म आदि अनन्त द्रव्य, रजकण हैं, शरीरादि सब हैं, अनन्त शरीर और पुद्गल हैं। छह द्रव्य में सब (आ गया)। बाकी क्या रहा? बाकी रहा? वह जितने हैं उनकी सत्ता, उस सत्ता के अस्तित्व का ज्ञानपर्याय में जानने का भाव आया। ज्ञान की पर्याय में जानने का भाव आया। उसकी सत्ता का भाव यहाँ आया, ऐसा नहीं; जानने का भाव आया। वह तो अपने जानने के पर्यायधर्म में आया है। समझ में आया? वह सत्ता के कारण नहीं। वह सत्ता—परसत्ता के कारण ज्ञान की पर्याय परिणमी, ऐसा नहीं है।

अनेकरूप, ज्ञान अनन्तरूप परिणमा, यहाँ अनेक कहना है न? अनेक अर्थात् दो

से अनन्त सबको अनेक कहा जाता है। यहाँ अनन्त का अनेक कहना है। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तुरूप से एक होने पर भी उसकी ज्ञानपर्याय में अनेकपना अर्थात् अनन्तपना, अनन्त को जानने की भी उस एक सत्ता का एक पर्याय अंश है। एक सत्ता का एक पर्याय अंश है। वह दूसरी सत्ता के अंश के कारण यह पर्याय अंश है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बादशाह की तलहटी की पर्याय भी कितनी! उसका आँगन कैसा! आहाहा!

महाप्रभु! चैतन्य महाप्रभु की एक समय की पर्याय! कहते हैं कि उस एक सत्ता के दो अंश हैं। एक द्रव्यसत्तारूप और पर्यायसत्तारूप। एक सत्ता। उस पर्यायसत्ता के अंश में अनन्त सत्ताओं सम्बन्धी का अपने सामर्थ्य के कारण (ज्ञान होता है), उनके कारण नहीं। इसलिए तो पहले कहा, स्वभाव। वस्तु का सहज जो स्वभाव। अमिटपना—मिटे नहीं ऐसा पर्यायधर्म है, उसके कारण अनन्त सत्ता को अपनी पर्यायसत्ता में अपने द्वारा सहजरूप से परिणमे, जाने—ऐसा पर्याय का धर्म है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म पड़े परन्तु सुननेयोग्य है। कोई बहिनों-महिलाओं को सूक्ष्म पड़े, यह सब कुछ (समझ में नहीं आता ऐसा लगे)।

यहाँ तो कहते हैं न? पुराने लोग प्रश्न तो करे या नहीं? अभी तक यह किया था, उसमें माना था एकान्त... एकान्त... एकान्त... राग मन्द किया, उससे कुछ लाभ नहीं? क्रियाकाण्ड से कोई लाभ नहीं? राग जो है, उसकी सत्ता थी। उसकी ज्ञानपर्याय स्वयं से, उसकी सत्ता है इसलिए जाना, ऐसा नहीं। यहाँ जानने की पर्याय परसत्ता को ही स्वयं जाने, इतनी परिणमी। इतनी परिणमी परन्तु वह अपनी सत्ता का वह तो एक अंश है। एक सत्ता का एक अंश है। वह पर के कारण से नहीं है, राग की मन्दता के कारण ज्ञान परिणमा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान! परसत्ता जो है—राग की मन्दता, कर्म, शरीर आदि सब, उसे ज्ञान की पर्याय उन्हें स्पर्श किये बिना, उसका—पर्याय का सहज स्वभाव है कि वह उसके ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान परिणमे। बस, इतनी बात है। इतना उस पर्याय का सहजस्वभाव है। इतनी ही उसकी मर्यादा है। इतनी मर्यादा को भी यदि आत्मा माने तो मिथ्यादृष्टि है,

ऐसा कहते हैं। राग के कारण ज्ञान की पर्याय की सत्ता है, ऐसा माननेवाला तो पर्यायमूढ़—महामूढ़ है। समझ में आया? क्या है? सेठ!

आहाहा! अरे! भगवान का वैराग्य तो उसे कहें, भाई! आहाहा! जिसने पुण्य और पाप के विकल्प भी जिसे अकेले ज्ञान की पर्याय में—सत्ता में अपने भासित हों। वह भी अपने पर्यायधर्म के कारण भासित हों, उनके कारण यह नहीं और इतने के कारण पूरा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो आचार्यों के हृदय तो गहरे-गहरे, इसलिए इसमें बहुत कहना है न? इसलिए बहुत गहरा कहीं अपन नहीं पहुँच सकेंगे। उसे इस प्रकार से सिद्ध करने में... ओहो! भाई! तू एक ही पर्याय के सामर्थ्यवाली, इतनी वाले को तू इतना पूरा माने तो भी तेरी दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया?

यह तो एक पर्याय, ऐसी समस्त पर्यायों में इतनी शक्ति, हों! यह ज्ञान की (बात की)। यह तो ज्ञानप्रधान से बात की। श्रद्धा की, शान्ति की, वीर्य की ऐसी-ऐसी शक्ति एक ही पर्याय में इतनी अधिक है। एक ही वीर्य की पर्याय भी इतनी अधिक है कि सबको जाननेरूप परिणमने का जो काम करे, वह तो एक समय के वीर्य का काम है। आहाहा! समझ में आया? इतनी पर्याय जो मानता है और द्रव्य एकरूप त्रिकाल जिसकी-जिसकी भूमिका में, जिसकी भूमिका में यह पर्याय का परिणमन है, एक सत्ता के दो अंश का, तो एक अंश यह माने और इस अंश माने नहीं तो मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि दोनों अंश का स्वीकार करता है। समझ में आया? ओहोहो! भारी सम्यग्दर्शन महँगा हुआ। वह तो सस्ता था। पुस्तक आदर करे उसमें था, बारह व्रत में नहीं था? आहाहा!

कहते हैं **एक सत्ता को द्रव्य-पर्यायरूप मानता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव... 'ज्ञानं एकं पश्यति' ज्ञानवस्तु यद्यपि पर्यायरूप से अनेक है....** पर्यायरूप से अनेक अर्थात् अनन्त को जाननेरूप अनन्तरूप परिणमित ज्ञान है। अनन्त को श्रद्धा करनेरूप एक समय की पर्याय है। आहाहा! **तथापि द्रव्यरूप से एकरूप अनुभवता है।** एक समय की पर्याय नहीं, उसकी द्रव्य पर दृष्टि है। उस सत्ता का इतना अंश है। इतना पूरा नहीं, पूरी सत्ता महा है। समझ में आया? ऐसे द्रव्य की महासत्ता पर दृष्टि होने से उस द्रव्य का अनुभव पर्याय में आता है। आहाहा!

'ज्ञानं एकं पश्यति' भगवान आत्मा एक स्वरूप निर्विकल्प वस्तु। देखा? यह भेदरूप अंश है, उसमें अनन्त (ज्ञात) होता है। वस्तु, एकरूप वस्तु अनन्त-अनन्त ऐसे पर्याय का एकरूप गुण और ऐसे अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य। वह वस्तु एक स्वभाव, एक स्वभाव, एक द्रव्य, एक रूप, उसके ऊपर दृष्टि है। यह स्वीकार है और इस स्वीकारसहित का उसका स्वीकार है। अर्थात् द्रव्य का स्वीकार होने से पर्याय में सम्यग्दर्शन की प्रतीति में पूरा द्रव्य क्या है, उसका अनुभव ज्ञान में आता है। समझ में आया? अकेली पर्याय ही ज्ञान में आती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

पर्यायरूप से अनेक है, तथापि द्रव्यरूप से एकरूप अनुभवता है। अनेक, एक की अपेक्षावाला। अनेक, पर की अपेक्षावाला नहीं। पर्याय का अनन्तपना, वह पर की अपेक्षावाला नहीं। भले ज्ञेयाकाररूप से परिणमा, इसलिए उसे अनन्त कहा (परन्तु है) एक की अपेक्षावाला। भगवान पूर्णानन्द प्रभु... आहाहा! पर्याय से अनेक, वस्तु से एक। यहाँ एक सिद्ध करना है न? एक सिद्ध करना है। अनेक बाद में सिद्ध करेंगे। यहाँ तो एक को सिद्ध करना है और वह एकान्त अनेक को ही मानता है, वह एक को मानता नहीं। ज्ञानी धर्मात्मा **द्रव्यरूप से एकरूप अनुभवता है।**

कैसा है स्याद्वादी? 'भेदभ्रमं ध्वंसयन्' 'भेदभ्रमं ध्वंसयन्' ज्ञान अनेक है ऐसे एकान्त पक्ष को नहीं मानता है। है न? **'भेदभ्रमं ध्वंसयन्'** है न भेद? भेद अर्थात् अनेक। एक समय की पर्याय में अनेकपना, अनन्तपना परिणमा है ज्ञेयाकाररूप से, उस भेदभ्रम का ध्वंस करता है—भेदभ्रम का ध्वंस करता है। यह भगवान आत्मा अनेक ही है—पर्यायरूप से अनेक ही है, ऐसे एकान्त पक्ष को नहीं मानता। क्यों नहीं मानता? अनजाने मनुष्य को ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं यह सब? हों! बात एकदम सत्य। जैन में होवे तो यह बात... भगवानजीभाई! ओहो! वस्तु को सिद्ध करने की ताकत, आचार्य की गजब बात है! ओहोहो! उसके दो अंशों को सिद्ध करना, उसकी स्थिति की मर्यादा संक्षिप्त शब्दों में, इस पद्धति में बहुत ही संक्षिप्त कथन। गागर में सागर भर दिया है। ओहो!

कहते हैं, भाई! यह अनेकपने के एकान्त अंश का समकिती पक्ष नहीं करता,

एकान्त पक्ष नहीं करता। है भले अनेक, परन्तु एक के कारण अनेक, एक की अपेक्षा में अनेक (है, ऐसा मानता है)। समझ में आया? **किस कारण से? 'एकद्रव्यतया' ज्ञान एक वस्तु है ऐसे अभिप्राय के कारण।** देखो! भगवान आत्मा वस्तु एकरूप है। वस्तु सदृश... सदृश... सदृश ध्रुव एकरूप है। अनन्तरूप पर्याय (होने) पर भी वस्तु एकरूप है। ऐसे एकरूप की दृष्टि की अपेक्षा से अनेकान्तवादी अकेले अनेक को ही नहीं मानता हुआ एकान्त पक्ष का ध्वंस करके एकरूप द्रव्य को मानता है। ज्ञान एक पदार्थ है, वस्तु है, **ऐसे अभिप्राय के कारण।** देखो! यह तो अभिप्राय है। ऐसे आशय के कारण, अभिप्राय के कारण। निर्णय—अभिप्राय है पर्याय में—अनेक में, परन्तु वह अभिप्राय एकरूप का है कि यह वस्तु एकरूप है। समझ में आया? **ज्ञान एक वस्तु है ऐसे अभिप्राय के कारण।**

कैसा है अभिप्राय? 'सदा व्युदितया' सर्व काल उदयमान है... ऐसा अभिप्राय है कि वस्तु त्रिकाल एकरूप है, पर्याय अनेक है, ऐसे अभिप्राय में—अनुभव में एकपने का आदर करके अनेकपने को पर्याय में है, ऐसा ज्ञान करता है। **'सदा व्युदितया' सर्व काल उदयमान है...** वस्तु सर्व काल ऐसी की ऐसी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? द्रव्यरूप से एक है। **कैसा है ज्ञान? 'अबाधितानुभवनं' अखण्डित है अनुभव जिसमें....** भगवान ज्ञायकस्वरूप ध्रुव वस्तु एकरूप है, उसका अबाधित अनुभव है। उसकी दृष्टि और एकता, वह अनुभव अबाधित है। जैसे वस्तु अखण्ड अबाधित है उसी प्रकार, अनेकपने का स्वीकार और एकपने के स्वीकार की अपेक्षा से, यह अनुभव है, वह अबाधित अखण्डित है। **ऐसी है ज्ञानवस्तु।** ऐसी भगवान आत्मवस्तु है, उसे अनेक की अपेक्षा में अकेला न मानकर, एक की अपेक्षा से अनेक का अनुभव करता है। ऐसी ज्ञानवस्तु सदा विद्यमान प्रगट है, ऐसा ज्ञानी अभिप्राय में मानता है। (विशेष कहेंगे...)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २५१

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय–
न्नेकाकारचिकीर्षयास्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वत: क्षालितं
पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित् ।।५–२५१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसा है कि वस्तु को द्रव्यरूपमात्र मानता है; पर्यायरूप नहीं मानता है। इसलिए ज्ञान को निर्विकल्प वस्तुमात्र मानता है; ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञान की पर्याय नहीं मानता है; इसलिए ज्ञेयवस्तु को जानते हुए, ज्ञान का अशुद्धपना मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी, ज्ञान का द्रव्यरूप एक, पर्यायरूप अनेक, ऐसा स्वभाव साधता है—ऐसा कहते हैं— 'पशु: ज्ञानं न इच्छति' [पशु:] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तु को [न इच्छति] नहीं साध सकता है— अनुभवगोचर नहीं कर सकता है। कैसा है ज्ञान? 'स्फुटं अपि' प्रकाशरूप से प्रगट है यद्यपि। कैसा है एकान्तवादी? 'प्रक्षालनं कल्पयन्' कलंक प्रक्षालने का अभिप्राय करता है। किसमें? 'ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति' [ज्ञेय] जितनी ज्ञेयवस्तु है, उस [आकार] ज्ञेय को जानते हुए हुआ है, उसकी आकृतिरूप ज्ञान—ऐसा जो [कलंक] कलंक, उसके कारण [मेचक] अशुद्ध हुआ है, ऐसी है [चिति] जीववस्तु, उसमें। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय को जानता है ज्ञान, उसको एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, स्वभाव नहीं मानता है; अशुद्धपनेरूप से मानता है। एकान्तवादी अभिप्राय, ऐसा क्यों है? 'एकाकारचिकीर्षया' [एकाकार] समस्त ज्ञेय के जानपने से रहित होता हुआ निर्विकल्प (एक रूप) ज्ञान का परिणाम, [चिकीर्षया] जब ऐसा होवे, तब ज्ञान, शुद्ध है–ऐसा है अभिप्राय एकान्तवादी का। उसके प्रति, एक–अनेकरूप ज्ञान का स्वभाव साधता है, स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि जीव— 'अनेकान्तविद् ज्ञानं पश्यति' [अनेकान्तविद्] स्याद्वादी जीव, [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तु को [पश्यति] साध सकता है—अनुभव कर सकता है। कैसा है ज्ञान? 'स्वत: क्षालितं' सहज ही

शुद्धस्वरूप है। स्याद्वादी, ज्ञान को कैसा जानकर अनुभवता है? 'तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायै: अनेकतां उपगतं परिमृशन्' [तत्] ज्ञानमात्र जीववस्तु, [वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां] अनेक ज्ञेयाकार की अपेक्षा, पर्यायरूप अनेक है तथापि द्रव्यरूप एक है; [पर्यायै: अनेकतां उपगतं] यद्यपि द्रव्यरूप एक है तथापि अनेक ज्ञेयाकाररूप पर्याय की अपेक्षा, अनेकपना को प्राप्त होती है—ऐसे स्वरूप को, अनेकान्तवादी साध सकता है—अनुभवगोचर कर सकता है। [परिमृशन्] ऐसी द्रव्यरूप-पर्यायरूप वस्तु को अनुभवता हुआ, 'स्याद्वादी'—ऐसा नाम प्राप्त करता है।।५-२५१।।

मागशर कृष्ण २, शुक्रवार, दिनांक-१०-१२-१९६५, कलश-२५१, प्रवचन-२६५

(वस्तु के एक ही धर्म को माननेवाला) उसे मिथ्यादृष्टि और एकान्तवादी कहा है। क्या कहते हैं? **वस्तु को द्रव्यरूप मानता है...** सब भाषा अलग प्रकार है यह। यह आत्मा है न आत्मा, उसे द्रव्यरूप से, द्रव्य अर्थात् वस्तु। द्रव्य अर्थात् शाश्वत् चीज़। द्रव्य अर्थात् यह पैसा नहीं, हों! यहाँ। द्रव्य अर्थात् वस्तु और पर्याय अर्थात् उसकी वर्तमान होती अवस्था—हालत—दशा। समझ में आया? वस्तु... वस्तु आत्मा पदार्थ त्रिकाल अनादि-अनन्त वस्तु है, पदार्थ है, अनादि-अनन्त तत्त्व है कि जैसे यह रजकण मिट्टी-धूल है। यह पदार्थ है न इस जगत के? यह परमाणु, मिट्टी, धूल पुद्गल अनन्त हैं। यह आत्मा भी एक पदार्थ है, ऐसे अनन्त आत्माएँ हैं। यह आत्मा अन्दर में ज्ञानानन्दस्वरूप अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड एक द्रव्य अर्थात् वस्तु है, उसे माने, पर्यायरूप न माने; परन्तु अज्ञानी, उसमें क्षण-क्षण में पर्याय होती है—अवस्था होती है, उसे मानते नहीं। पर्याय, यह सब नया होगा, धीरुभाई! पर्याय सुनी है कभी? कौन जाने क्या होगी पर्याय?

देखो! सोना है न? जैसे सोना, यह सोने का लट्ठा है, उसे वस्तु कहते हैं, उसे द्रव्य कहा जाता है और उसमें से कुण्डल, कड़ा, अंगूठी आदि अवस्थाएँ होती हैं, उसे पर्याय कहा जाता है। पर्याय अर्थात् अवस्था। अवस्था अर्थात् हालत। हालत अर्थात् दशा। इसी प्रकार आत्मा अनादि-अनन्त है, आदि-अन्तरहित (चीज़ है), वह कहीं

किसी से की हुई चीज़ नहीं, उसका कोई कर्ता नहीं तथा वह नाश होकर कहीं मिल जावे, ऐसी चीज़ नहीं है। अनादि-अनन्त वस्तु भगवान यह आत्मा अन्दर है। यह वस्तु है, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। द्रव्य क्यों कहते हैं? कि उसकी समय-समय में एक-एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण जो शक्तिरूप हैं, वे द्रवते हैं, द्रवते हैं।

पानी एकरूप न रहकर पानी में ऐसे तरंग उठती है—लहरें उठती हैं, उसका नाम द्रवता कहा जाता है, कहा जाता है। इसी प्रकार वस्तु एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है—द्रव्य। वह समय-समय में पर्याय अर्थात् द्रवता है। अवस्थारूप से—हालतरूप से वह परिणमता है। समझ में आया? कहो, छोटाभाई! यहाँ कहते हैं कि उस वस्तु की अज्ञानी को खबर नहीं है।

पर्यायरूप नहीं मानता है। जरा सूक्ष्म बात है, हों! इसका स्पष्टीकरण थोड़ा-थोड़ा होगा। वस्तु तो जितनी हो, उसकी हद प्रमाण उसमें आवे न? **इसलिए ज्ञान को निर्विकल्प वस्तुमात्र मानता है।** क्या कहते हैं? वस्तु है न, वस्तु एकरूप चिदानन्द ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... आनन्द... आनन्द... ऐसे अनन्त गुण का एकरूप, ऐसी निर्विकल्प अर्थात् एकरूप वस्तु को अज्ञानी मानता है, परन्तु **ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञान की पर्याय नहीं मानता है,....** क्या कहते हैं जरा? जो कोई शरीर को, वाणी को, कर्म को अपना माने, वह तो मिथ्यादृष्टि—मूढ़ अज्ञानी है, वह वीतरागतत्त्व को नहीं मानता। समझ में आया? यह शरीर की क्रिया है न? यह हिलना-चलना आदि यह जड़ की। ऐसे ये हलन-चलन, वह सब जड़ की पर्याय है, आत्मा की नहीं। मनसुखभाई! उससे कहीं आत्मा को होगा या नहीं? धर्म-बर्म शरीर से होगा या नहीं? उसकी तो यहाँ बात भी नहीं।

कहते हैं कि यह शरीर तो मिट्टी-जड़ है। अनन्त परमाणु का, रजकणों का बना हुआ (शरीर है)। अन्तिम पॉईन्ट है न अन्तिम टुकड़ा। यह कहीं मूल वस्तु नहीं। इसका अन्तिम टुकड़ा करते... करते... करते... अन्तिम अंश रहे, उसे भगवान परमाणु कहते हैं। परम—अणु। अन्तिम में अन्तिम सूक्ष्म टुकड़ा। ऐसे अनन्त सूक्ष्म टुकड़े इकट्ठे होकर यह शरीर दिखता है। इस एक-एक परमाणु में क्षण-क्षण में पलटने की, अवस्था होने की शक्ति है। इस परमाणु से यह अवस्था होती है, ऐसे आत्मा से नहीं। ऐसे होना,

हिलना, बोलना, वह आत्मा से नहीं। जो अभी आत्मा से उसकी (दशा) माने, उसकी यहाँ तो बात ली नहीं है, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि वीतराग के तत्त्व से अत्यन्त विपरीत मान्यतावाला है कि जो अजीव की पर्याय को अपनी मानता है और अजीव के द्रव्य की क्रिया होती है, वह मुझसे होती है—ऐसा माने, उसे तो मूढ़ जीव और महामिथ्यादृष्टि कहा है। समझ में आया?

अब यहाँ तो आत्मा में राग और द्वेष होता है, राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प—वृत्तियाँ होती हैं। शुभ-अशुभभाव होते हैं न! वे शुभाशुभभाव हैं, वे आत्मा नहीं, वह आस्रवतत्त्व है। नव तत्त्व है या नहीं? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। तब यह शरीर, कर्म, वाणी, यह अजीवतत्त्व है। इस अजीवतत्त्व की कोई भी क्रिया आत्मा करे और माने, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है क्योंकि वह अजीवतत्त्व को मानता नहीं। उस अजीव की होती क्रिया मुझसे होती है, (ऐसा मानता है), इसलिए उसकी बात नहीं है। अब आत्मा में होते पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, उन्हें आत्मा के पर्याय की मानता है, अपनी दशा के मानता है तो वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। उसे वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्व से, श्रद्धा से विपरीत मानता है।

अब तीसरी (बात) यह पुण्य-पाप के राग के विकल्प होते हैं, उनका यहाँ ज्ञान की अवस्था में जानना होता है। क्या कहा? यह विकल्प उठते हैं, शुभाशुभ वृत्तियाँ या यह देह की क्रिया होती हैं, उसका यहाँ ज्ञान की वर्तमान दशा में यह ज्ञेयाकार—ज्ञेय जैसी चीज़ है, वैसा ज्ञान की वर्तमान दशा में उसका जानने की दशारूप ज्ञान होता है। उस जानने की दशारूप ज्ञान हो, उसे ज्ञान की पर्याय कहते हैं। मनसुखभाई! भारी सूक्ष्म, भाई! उस पर्याय को नहीं मानता, ऐसा अभी तो कहते हैं। एक वस्तु अकेला द्रव्य ही हूँ, बस! एकरूप आत्मा त्रिकाल हूँ, ऐसा माने, परन्तु एक समय की पर्याय जो ज्ञान की है, उसमें अनेकपना का ज्ञान होता है, यह अनेकपना इसे सुहाता नहीं है। समझ में आया? राग-द्वेष और पुण्य-पाप तथा देहादि की क्रिया की तो यहाँ बात नहीं ली, भाई! क्योंकि वह तो बहुत स्थूल दृष्टि मिथ्यात्व में गया, उसकी बात तो छोड़ दी है।

मात्र भगवान आत्मा वस्तु जो अन्दर है, चिदानन्द सिद्धस्वरूप अन्दर शुद्ध शक्ति का है और उसकी होनेवाली अवस्थाएँ, पुण्य-पाप के विचार-ज्ञान और पुण्य-पाप के

भाव। अब यहाँ तो कहते हैं कि भाई! जो जीव वस्तु त्रिकाली ज्ञानमूर्ति वस्तु है, ऐसा कहे—माने परन्तु वर्तमान में वे ज्ञेय जो अवस्था में ज्ञात होते हैं, उनका ज्ञान की दशा में अनेकरूप परिणमना, ऐसा ज्ञानपर्याय का स्वभाव धर्म है। समझ में आया? प्रभुभाई! यह बहुत सूक्ष्म है, हों! धन्धा-बन्धा में तो सब उल्टा-सीधा गोला मारे। वहाँ तो चले, पुण्य हो तो चले वहाँ, हों! नहीं तो वहाँ भी कुछ चले नहीं।

यहाँ तो भगवान कहते हैं, बापू! तुझे नव तत्त्व की खबर नहीं। नव तत्त्व किसे कहना? ऐसे तो नाम और बोल सब रटता है। यहाँ तो एक जीवतत्त्व के दो भाग। भाई! शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के भाव वे तो दूसरे तत्त्व में गये, वे आत्मा में नहीं। यहाँ स्वतत्त्व के दो भाग की बात चलती है। आहाहा! मलूकचन्दभाई! वह भूल तो इसकी निकल गयी हो, तथापि यह भूल है, उससे अज्ञानी कहने में आता है। यह तो निकले तब सब एकसाथ निकलती है, परन्तु यह भूल पहली यह सूक्ष्म बताते हैं। क्या कहा?

जो कोई यह भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण तत्त्व—वस्तु है, अनन्त गुण का पिण्ड और एक समय-समय सेकेण्ड के असंख्य भाग में अवस्था होती है—प्रत्येक गुण की पर्याय होती है, वह पर्याय और आत्मा; पर्याय का एक समय है, वस्तु त्रिकाली है—यह उसके दो भाग। इसके अतिरिक्त पर को अपना माने, उसकी यहाँ बात नहीं ली है। क्योंकि वह तो स्थूल अज्ञान की बात है। समझ में आया? उसे तो धर्म की गन्ध भी नहीं है। व्यवहारधर्म कैसे होता है, इसकी उसे खबर नहीं है। न्यालभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु, भाई!

यहाँ तो भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में उसके दो अंश हैं। एक त्रिकाली तत्त्व (जो कि) अनादि-अनन्त वस्तु है और एक अवस्था होती है। (कि) जिसे हालत-पर्याय भगवान कहते हैं। वस्तु के शाश्वत को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य कहो, पदार्थ कहो और अवस्था हो उसे पर्याय कहते हैं। अब दो भाग के अन्दर में भूल क्या होती है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? अरे! वीतराग का मार्ग कहाँ किस प्रकार से है, इसे सुनने को मिलता नहीं और ऐसा कहे कि हम धर्म करते हैं। मूढ़ है। धर्म कहाँ था! धर्म क्या दशा है? धर्म किसे कहते हैं? आहाहा! समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, अनन्त तीर्थंकर और महाविदेह में विराजते हैं तीर्थंकरदेव सीमन्धर प्रभु। उनका प्रत्येक अनन्त तीर्थंकर का कथन तो एक ही प्रकार का होता है, कोई दूसरे प्रकार का नहीं हो सकता। वे भगवान ऐसा कहते हैं कि भाई! तू एक अनादि-अनन्त वस्तु है न! शक्तिरूप तत्त्व है। है... है... है... है... है... है... वह अनादि-अनन्त। वह वस्तु—द्रव्य कहलाता है और समय-समय में उसकी विचारधारा, श्रद्धाधारा, विचारधारा बदलती है, उसे पर्याय कहा जाता है। उस पर्याय में जो विकार को अपना माने, शरीर को अपना माने, वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है, उसे धर्म की गन्ध भी नहीं है और धर्म करने की योग्यता भी नहीं है, परन्तु जिसे आत्मद्रव्य में दो भाग है, उसका एक भाग त्रिकाली को माने और एक भाग ज्ञान की वर्तमान अवस्था, उसमें अनेक प्रकार के रागादि और पर आदि का ज्ञान, ज्ञान में हो, उस अनेकपने को न माने, उस ज्ञान में अनेकपना है, उसे न माने और अकेले तत्त्व को माने तो वह मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी और मिथ्याश्रद्धा को सेवन करता है। आहाहा! समझ में आया?

पहले में भाई! ऐसा आया था कि पर्याय को माने और द्रव्य को न माने। कल यह बोल आया था। वह इस प्रकार से था, उसमें ऐसा था कि जो जीव शरीर, वाणी, मन को अपना माने, उसका यहाँ प्रश्न है नहीं। मात्र वस्तु जो है ज्ञानानन्दस्वरूप त्रिकाल... त्रिकाल ध्रुव-ध्रुव अनादि-अनन्त, अकृत, नाश को न प्राप्त हो, ऐसी वस्तु है, ऐसी वस्तु को कोई न माने और अकेली वर्तमान अवस्था को ही माने, वह अवस्था, वह कौन सी? —राग नहीं। यह दूसरे ज्ञेय को जाननेयोग्य जो अवस्था है, इतनी अवस्था को ही माने। समझ में आया? एकरूप त्रिकाली द्रव्य है, उसे नहीं माने। तो वस्तु की दृष्टि बिना इसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। समझ में आया?

यह २५० में ऐसा कहा था कि, वह पर्याय को माने। पर्याय अर्थात् परवस्तु नहीं। यहाँ तो पर्याय में परवस्तु का ज्ञान होता है न, इतनी पर्याय को माने। भगवान चैतन्यज्योति सूर्य है। आत्मा अर्थात् चैतन्यसूर्य। अकेले चैतन्य के प्रकाश का तेज। चैतन्य का तेज सूर्य भगवान आत्मा है। उसकी वर्तमान दशा में ज्ञान का जो अंश प्रगट है, उसमें राग और पुण्य-पाप के भावों का ज्ञान होता है, ज्ञान होता है... समझ में आया? यह ज्ञान होता है, उस अनेकपने की पर्याय को माने। यहाँ अभी शरीर, वाणी की बात नहीं है।

उसकी ज्ञान की दशा को माने। क्योंकि अनेकपना उसमें ज्ञात होता है, परन्तु एकरूप द्रव्य को न माने तो उसे एकान्तदृष्टि मिथ्यात्व हुई, उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ अब दूसरा इससे उल्टा बोल है। वह द्रव्य को मानता था और पर्याय को नहीं मानता था। पर्याय अर्थात् राग-द्वेष और शरीर, यह नहीं। आहाहा! अपने दो भाग—एक कायम रहना और एक अवस्था, वर्तमान परिणमना, परिणमना, जिसे भगवान उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् कहते हैं। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। वर्तमान में नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था जाए और वस्तुरूप से ध्रुव कायम रहे—इन तीनों अंशोरूप पूरा आत्मा कहा जाता है। उस आत्मा के उत्पाद-व्यय की पर्याय जो ज्ञान की है—जानने की, उसमें अनेक दूसरा ज्ञात हो—दूसरा ज्ञात हो, उसमें आवे नहीं। ज्ञान की दशा में दूसरा आता नहीं। राग आता नहीं, द्वेष आता नहीं, दया के परिणाम ज्ञान में नहीं आते। शरीर की क्रिया होती है, वह ज्ञान में नहीं आती। क्रिया नहीं आती परन्तु वह है, उसका ज्ञान यहाँ आता है। उस ज्ञान की पर्याय को माने। अनेकरूप जो ज्ञान वर्तमान परिणमे, उतने को माने और पूरी चीज़ को न माने तो उसका लक्ष्य द्रव्य पर नहीं जाता, तो सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? छोटाभाई! यह तो मस्तिष्क को फैलाये ऐसी यह बात है। आहाहा! यह बात ऐसी हो पड़ी है अभी कि लोगों को कुछ ज्ञान नहीं होता और बाहर से मान बैठे कि हम यह करते हैं, यह करते हैं। जाओ! तावकाणी... ठाणेण... अप्पाणं... जाओ! आत्मा को छोड़ दिया पूरा। आत्मा कौन है, कैसा है, इसकी खबर नहीं होती।

यहाँ तो भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ कहते हैं, भाई! हम तो तेरी शाश्वत् की चीज़, वस्तु और उसकी अवस्था—उसकी अवस्था, हों! दूसरी अवस्था से माने (कि) हम शरीर की क्रिया करते हैं तो धर्म होता है, वह तो महामूढ़ मिथ्यादृष्टि है। ऐ... मनसुखभाई! आहाहा! कहो, यह भगवान की पूजा-बूजा की ऐसे-ऐसे हाथ और क्रिया होती है न, वह जड़ की क्रिया है, वह आत्मा की नहीं। उस समय जरा भक्ति का शुभभाव हो, वह पुण्य है, वह धर्म नहीं। होता अवश्य है, परन्तु धर्म नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि वह शुभभाव होता है, उसका यहाँ ज्ञान होता है और ज्ञान

की दशा में अनेकपने का ज्ञान अनेक चीज़ का होता है। उस अनेकपने के ज्ञान को ही अकेली दशा को माने, पूरी चीज़ को न माने तो उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर गयी नहीं, इसलिए मिथ्यादृष्टि है, परन्तु समकितदृष्टि नहीं। यहाँ उससे दूसरा है कि वस्तु को माने कि त्रिकाल एक मैं आत्मा हूँ, त्रिकाल एक आत्मा हूँ, एकरूप हूँ, परन्तु उसकी ज्ञान की दशा में यह रागादि का ज्ञान हो—अनेकपने का ज्ञान (हो), वह अनेकपना इसे लगे कि अनेक हूँ। अनेक को धो डालो। क्या कहा?

दर्पण है न, दर्पण? उसमें सामने आम या जामुन पड़े हों। ऐसे दर्पण में ऐसी चीज़ दिखे न! वह चीज़ उसमें नहीं है, हों! वह चीज़ तो यहाँ है, वहाँ तो दर्पण की स्वच्छता है। दर्पण की स्वच्छता में यह काला और पीला दिखता है, वह दर्पण की दशा है, वह दर्पण की दशा है। उसे कोई धो डालना चाहे तो दर्पण ही धुल जाता है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान चैतन्यदर्पण आत्मा है। चैतन्यबिम्ब भगवान। उसकी वर्तमान ज्ञानदशा में राग-द्वेष, पुण्य-पाप का ज्ञान, ज्ञान में ज्ञात हो। उस ज्ञान में परवस्तु ज्ञात होने से अज्ञानी को ऐसा लगता है कि यह और क्या ज्ञात हुआ? यह सब क्या? निकाल डालो पर्याय में से। वह अपनी ज्ञानपर्याय में दूसरा ज्ञात हो, उसे निकाल डालना चाहने पर उस ज्ञान की दशा का नाश कर डालता है। भारी बात! ऐ... रतिभाई! इस बार दूसरा प्रकार है, हों! हर समय सुनने आते हैं उसकी अपेक्षा। कभी निवृत्त हो दो-चार महीने मुश्किल से, उसमें कोई दो-चार दिन सुने। कहाँ गये कनुभाई? गये? गया होगा। एकदम दुकान से मुश्किल से आये हैं, वहाँ क्या करे? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

कहते हैं, भाई! जो कोई वस्तु को माने। उस वस्तु की उसे तो खबर नहीं। यह तो एक वस्तु को यहाँ जानने में आया और उसे ख्याल (हुआ कि) यह एक चीज़ आत्मा अनादि-अनन्त है। वस्तु... वस्तु... वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड, परन्तु उसकी दशा में—ज्ञानदशा में—जानने में दूसरी चीज़ ज्ञात होती है न! अज्ञानी को ऐसा लगता है यह क्या? यह कैसे ज्ञात हुआ? परन्तु वह तो जानने की दशा का स्वभाव है। स्वभाव है तो दूसरी चीज़ उसमें ज्ञात हो, परन्तु दूसरी ज्ञात होने पर अज्ञानी को ऐसा होता है... अर र! यह क्या? निकाल डालो इसे। यह परसम्बन्धी का अपनी ज्ञान की दशा का भाव

निकाल डालना चाहता है। क्योंकि वह एकरूप रहना चाहता है, परन्तु ज्ञान की पर्याय में अनेक ज्ञात हो, ऐसा तो पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? नेमिदासभाई! क्या कहते हैं यह? यह तो सिर घूम जाता है। इसकी अपेक्षा तो एकन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय... तस्स मिच्छामि दुक्कडम। लो! कुछ रटने का, कुछ सीखने का है कोई? मर गया पचास-सौ-सौ वर्ष या अनन्त भव करके। तस्स मिच्छामि दुक्कडम। जाओ! हो गया धर्म। धूल में भी (धर्म) नहीं। सुन न अब। वाणी किसकी? यह मिच्छामि दुक्कडम किसका करते हो? कौन सी दशा? वह दशा कौन सी थी? कहाँ से टलती है? कहाँ से आती है? इसकी तुझे खबर बिना किसका मिच्छामि दुक्कडम? भगवानभाई! बराबर है? पिचहत्तर वर्ष तक यह सब सुना है न!

यहाँ कहते हैं, भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! तेरी प्रभुता के दो अंश हैं। एक तो त्रिकाली वस्तु और एक वर्तमान ज्ञान की अवस्था का परिणमना-होना। वर्तमान दशा का होना एक अंश है। उस अंश में अनेक ज्ञात हो, ऐसा तेरा स्वभाव है—अनेक ज्ञात हो। दर्पण में विष्टा ज्ञात हो (झलके) तो कहीं विष्टा वहाँ घुस गयी है? वहाँ सूंघे तो? विष्टा है वहाँ? विष्टा तो विष्टा में है। इसी प्रकार ज्ञान की दशा में राग, द्वेष, पुण्य, पाप हों, वे ज्ञात हों। यह राग है, ऐसा ज्ञात हो। वह ज्ञात होने पर भी जानने की दशा अनेकपने को जाने। वह अनेकपना जानना दोष नहीं है। क्या कहा? रागादि का ज्ञान हो, वह दोष नहीं है। वह तो ज्ञान की वर्तमान दशा का स्वभाव है, परन्तु अज्ञानी को ऐसा लगता है कि अरे! यह कैसे ज्ञात होता है? अर र! यह कैसे ज्ञात होता है? इसलिए जानना छोड़ दूँ। ऐसे जानना छोड़ देने से उसकी ज्ञान की दशा का नाश हो जाता है। उसे पर्याय में अनेक(रूप) होने का ज्ञान स्वभाव है, उसकी श्रद्धा की इसे खबर नहीं है। समझ में आया? भाई! पहले से कहा था कि यह बात सूक्ष्म है। यह तो तुमने कभी जिन्दगी (में सुनी नहीं होगी), बाप के बाप ने नहीं सुनी होगी। थी कब? बड़ा फेरफार... फेरफार... ऐ... रतिभाई! इसका पिता तो और वह था। विठो... विठल... विठोबा। हैरान हो गया विठोबा-विठोबा करके। विठोबा कैसा? यहाँ तो परमेश्वर सर्वज्ञ ने कहे हुए आत्मा की बात है। विठोबा कौन? दूसरा कोई परमेश्वर कर्ता-फर्ता है नहीं, तीन काल में, तीन लोक में। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञान की पर्याय नहीं मानता है,....** इस ज्ञान में अनेक ज्ञात होते हैं। उस रूप हूँ, ऐसा नहीं, परन्तु वह अनेकपना जाना, वह अनेक कैसे? अनेक कैसे? समझ में आया? वह अनेकपना ज्ञान में ज्ञात होता है, उसे निकाल डालूं तो एक तो होऊँ, अकेला होऊँ। ऐसा माननेवाला ज्ञान की वर्तमान दशा में अनेक जानने की स्वभाव की दशा को नहीं मानता। छोटाभाई! यह वस्तु। इसमें चौदह श्लोक तो सूक्ष्म में सूक्ष्म वीतराग के पेट के हैं। आहाहा! यह स्याद्वाद कहा है। स्याद्—अपेक्षा से, वाद अर्थात् कहना।

जो वस्तु त्रिकाल तत्त्व है, उसे त्रिकालरूप जानना और वर्तमान अवस्था जो है, उस अनेकरूप अवस्था को अनेकरूप जानना, वस्तु को एकरूप जानना। इस प्रकार जिसका ज्ञान यथार्थ हो, उसे सम्यग्दर्शन होकर आत्मा का अनुभव होता है। समझ में आया? यहाँ तो यह बात की है कि ज्ञान की दशा है, उसमें अनेक ज्ञात होते हैं। वह चीज़ यहाँ आती नहीं। इस चैतन्य के प्रकाश की पर्याय का—अवस्था का स्वभाव है कि अनेक को जाने। वह अनेकपना जो ज्ञान में आता है, अज्ञानी को वह अनेकपना रुचता नहीं। अनेक हो गया, अनेक हो गया, अनेक हो गया। इसलिए मुझे एक होना है, मुझे एक होना है, निर्विकल्प होना है, परन्तु उस ज्ञान की पर्याय में अनेकपना, वह निर्विकल्प ही पर्याय है। उसमें पर की वस्तु नहीं है। समझ में आया? ऐ... जुगराजजी! भारी बातें। यह याद रहे ऐसी वस्तु है। वह मर गया कर-करके मुफ्त का। आहाहा!

यहाँ तो सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर जीवतत्त्व की व्याख्या करते हैं। अजीव, पुण्य, पाप वे तो बाहर रह गये, वे कहीं आत्मा में घुस नहीं गये। यह वाणी, शरीर, यह तो मिट्टी-जड़ है, ये कहीं आत्मा में घुसे नहीं हैं। अब आत्मा की एक समय की पर्याय में राग-द्वेष, पुण्य-पाप भी घुस नहीं गये हैं। आहाहा! मात्र एक समय की दशा में वह अनेकपना जो है, उसका यहाँ ज्ञान होता है। उस ज्ञान के अस्तित्व की पर्याय अनेकरूप होना, वह तो आत्मा का स्वभाव है। ऐसे अनेकपने की पर्याय को न मानकर, अकेला ज्ञान हो जाऊँ और यह सब इसमें से निकाल डालूँ। जैसे राग, द्वेष,पुण्य, पाप, शरीर मेरा नहीं, ऐसे निकाल डाला। शरीर मेरा नहीं, कर्म मेरे नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वे मेरे नहीं, यह निकाल डाला, परन्तु इन सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ होता है,

उसे निकाल डालना चाहता है, वह पर्याय को नहीं समझता। बराबर है ? आहाहा! यह क्या परन्तु बात ऐसी कैसी होगी ?

यह कहते हैं, देखो! क्या कहा ? **ज्ञान को निर्विकल्प वस्तुमात्र मानता है...** २२४ पृष्ठ की पहली लाईन। यह तो भगवान के घर के महामन्त्र हैं। यह कहीं एकदम पुस्तकें सीख जाने की नहीं हैं। एक लाईन में क्या कहा ? पहली लाईन—२२४ (पृष्ठ)। ज्ञान अर्थात् आत्मा वस्तु त्रिकाली। उसे निर्विकल्प अर्थात् एकरूप—एकरूप, निर्विकल्प अर्थात् अभेद वस्तुमात्र मानता है। अज्ञानी एकरूप त्रिकाल है, उसे मानता है। **ज्ञेयाकार परिणतिरूप...** परन्तु जो ज्ञान की वर्तमान दशा में जो राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, शरीर की क्रियाएँ, उनरूप ज्ञान जाननारूप परिणमता है, जाननेरूप होती है ज्ञान की अवस्था, उसे नहीं मानता। ऐसा इसका अर्थ है। इतने में से ऐसा इसका अर्थ है। शुकनचन्दजी! बहुत सूक्ष्म निकाला। बहुत सूक्ष्म निकाला। आहाहा!

अरे! भाई! तेरी मर्यादा में तू है, उसके दो अंश की वास्तविक श्रद्धा-ज्ञान न हो, तब तक सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा ? और सम्यग्दर्शन बिना धर्म-बर्म तीन काल में नहीं होता। व्रत और तप करके मर जाए। वे सब बालतप और बातव्रत हैं। समझ में आया ?

इसलिए ज्ञेयवस्तु को जानते हुए.... दूसरी लाईन। इस जानने की ज्ञानदशा में दूसरा जो ज्ञात होता है, उसे जानते हुए **ज्ञान का अशुद्धपना मानता है।** देखो! क्या कहा ? इस जानने की दशा में अनेकपना ज्ञात होता है, वह ज्ञान की अशुद्धता है—ऐसा अज्ञानी मानता है। उसे पर्याय की निर्मलता में दूसरा ज्ञात हो, ऐसा मेरा ज्ञानधर्म है, पर्याय का स्वभाव है, ऐसी उसे खबर नहीं है। आहाहा! इससे कहीं दूसरा सस्ता मार्ग होगा कोई ? बापू! परन्तु जैसा हो, वैसा सस्ता हो या न हो, वह सस्ता होगा ? आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञेयवस्तु को जानते हुए....** भगवान आत्मा वस्तुरूप से तो कायम रहनेवाला पदार्थ अनादि-अनन्त स्वयं है, परन्तु उसकी ज्ञान की वर्तमान दशा में जो वस्तु अपनी पर्याय में ज्ञात हो, उसे जानने पर अज्ञानी **अशुद्धपना मानता है।** यह मेरी अशुद्धता मुझे हो गयी। परवस्तु, राग-द्वेष, पुण्य-पाप मेरे नहीं, शरीर मेरा नहीं। यहाँ तक तो उसकी बात बराबर है, परन्तु राग-द्वेष और शरीर का यहाँ आत्मा में—अपनी दशा में ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में अनेकपना ज्ञात हुआ, उस अनेकपने को निकाल

डालना चाहता है। वह जैसे निकल जाए, वह तो निकली हुई चीज़ ही अलग है। समझ में आया ?

भगवान चैतन्यसूर्य चैतन्य के प्रकाश का बिम्ब भगवान पूरा आत्मा है। उसकी एक समय की वर्तमान दशा में जो अनेकपने ज्ञात हो, ज्ञान में अनेकपना हो, वह पर्याय का धर्म है। दूसरा निकाल डालने पर अब मुझे आत्मारूप होना है। इसलिए शरीर मैं नहीं, वाणी मैं नहीं, कर्म मैं नहीं, यह पुण्य-पाप के भाव मैं नहीं। यहाँ तक तो उसकी बात बराबर है, परन्तु ये पुण्य-पाप के भाव और शरीरादि का यहाँ ज्ञान हो, वह तो उसका स्वभाव है। दर्पण की स्वच्छ अवस्था में काले कोयले और बिच्छु पड़ा हो तो ज्ञात होता है वह दर्पण की अवस्था है। समझ में आया ? दर्पण में से दूसरा निकाल डाले कि यह ऊपर पड़ा है, इसे निकाल डालो, मैल है, इसे निकाल डालो। अमुक ऊपर है, उसे निकाल डालो; परन्तु दर्पण में यह वस्तु दिखती है, वह वस्तु उसमें नहीं है, वह तो दर्पण की स्वच्छता है। उसे निकाल डालना चाहे तो दर्पण की दशा को समझता नहीं। समझ में आया ? यह पुस्तक है या नहीं वहाँ घर में, दुकान में ? पड़ी रखी है या पढ़ी है कभी ? पढ़ते हैं। पढ़ा, इतना तो कहा। समझे, न समझे (यह) बाद की बात। आहाहा !

कहते हैं, भगवान आत्मा... परमात्मा तो ऐसा बोलते हैं कि हे भगवान आत्मा ! क्योंकि वस्तु भगवान स्वरूप है या नहीं ? उसमें अन्दर परमात्मशक्ति न पड़ी हो तो बाहर से कहाँ से आयेगी ? सवेरे कहा था, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य भगवान को जो प्रगट होता है, वह कहाँ से आया ? बाहर लटकता है तो आवे ? अन्दर में आत्मा में पड़ा है। यह दृष्टान्त नहीं दिया था सवेरे ? पीपर का दृष्टान्त दिया था या नहीं ? पीपर... पीपर। लींडीपीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट पड़ी है या नहीं ? पड़ी है या नहीं ? घूंटते हैं, तब कहाँ से आती है ? पत्थर में से आती है ? पाँच पहरी, पच्चीस पहरी, पचास पहरी, चौंसठ पहरी कहाँ से आयी ? अन्दर में पड़ी है, उसमें से आती है परन्तु उसे खबर कब है ? घिसने से आवे तो कंकर और कोयला घिस डाले। धूल में से आयेगी ? वहाँ कहाँ अन्दर में थी !

इस पीपर के दाने-दाने में जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट अर्थात् पूरी। चौंसठ अर्थात् रुपया। पूरा-पूरा। अब सौ पैसे का रुपया (हुआ), पहले अपने चौंसठ चलता

था न! चौंसठ पैसे का रुपया कहो, सोलह आना कहो, पूर्ण कहो या रुपया कहो। चारों बोल एक है। एक पीपर में पूरा-पूरा चरपरा रस शक्तिरूप पड़ा है और हरा रंग भी पूरा-पूरा पड़ा है, इसी तरह कोमलता भी पूरी-पूरी अन्दर पड़ी है। बाहर तो कड़काई है न? क्या कहलाता है वह? कर्कर। दाना-दाना जरा बारीक-बारीक होवे न! अन्दर कोमलता पूरी पड़ी है, हरा रंग पूरा पड़ा है, चरपरा पूरा पड़ा है। समझ में आया? तीन हो गये। चौथा खोजे, परन्तु हाथ आना चाहिए न अन्दर से!

इसी प्रकार भगवान आत्मा के अन्दर में—शक्ति में; वर्तमान अवस्था तो एक समय की दशा है, परन्तु अन्दर में अनन्त ज्ञानरूपी चौंठस पहरी शक्ति पड़ी है, अनन्त आनन्दरूपी चौंसठ पहरी शक्ति पड़ी है, अनन्त वीर्यरूपी चौंसठ शक्ति पड़ी है और ज्ञान के साथ दर्शन भी चौंसठ पहरा पड़ा है। अरे भगवान! कौन जाने यह तत्त्व क्या है, इसका कभी विचार किया (नहीं)। सुना हो, तब विचार किया हो न! मुश्किल से अवसर आया तब बन्द कर दूँ। नहीं, सुनना नहीं, भाई! वहाँ सुनने जाओगे तो मर जाओगा। ऐ! मगनभाई! बात तो सत्य है। अरे! भगवान! ठेठ से चलता है न! अरे ! भगवान! बापू! तेरी बात प्रभु कहते हैं, वह तुझे सम्प्रदाय में कहीं नहीं है, वाड़ा में कहीं नहीं है। तुझे क्या खबर पड़े, यह क्या वस्तु है। आहाहा! कहते हैं कि भाई! तुझे धर्म करना है न? आहाहा! किसमें? वह धर्म क्या होगा? खबर है इसे? पर्याय होगी या द्रव्य होगा? भगवान जाने, किसे क्या खबर? यहाँ द्रव्य और पर्याय दो बातें ली हैं।

श्रोता : द्रव्य की तो खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य अर्थात् क्या खबर पड़े? पैसे की? एक व्यक्ति को मैंने पूछा था, बहुत वर्ष पहले। सुन्दर वोरा के उपाश्रय में एक साधु इकट्ठे हुए थे। मोहनलालजी। मैंने कहा, तुम त्रस हो या स्थावर? वे कहें, गुरु ने सिखाया नहीं। कहा, देखो! अन्ध चला है। उसमें पर्याय है यह पर्याय शब्द कितनों ने सुना नहीं होगा। जो वीतरागमार्ग का मूल एकड़ा है।

त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व और उसकी अवस्था क्षण-क्षण में होती है, उसे पर्याय कहते हैं। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, यह तो वीतराग के घर का महा सिद्धान्त है। अब वे सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि जो अवस्था पलटती है, ऐसे आत्मा त्रिकाल रहनेवाला,

उसकी ज्ञान अवस्था पलटती है। वह पर्याय पलटे, उसे पर्याय कहा जाता है; कायम रहे, उसे द्रव्य कहा जाता है। अब यहाँ शुभ-अशुभराग, कर्म, शरीर, वाणी, मन तो इसकी पर्याय में भी नहीं है। द्रव्य में तो नहीं, द्रव्य में तो अनन्त चतुष्टय है। क्या कहा? द्रव्य में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, बेहद शक्ति—आनन्द आदि वस्तु में पड़ी है, ऐसे त्रिकाल अनादि-अनन्त। उसकी एक समय की पर्याय में क्या है? यहाँ जानने की ताकतवाली दशा है। एक समय की पर्याय जितनी। यहाँ तो पूर्ण जानने का, पूर्ण देखने का, आनन्दरूप वस्तु त्रिकाल आत्मा है कि जिसमें से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, वीर्य उसमें से प्रगट होता है परन्तु उसकी वर्तमान दशा में जो ज्ञान की वर्तमान पर्याय—मतिज्ञान आदि एक समय की पर्याय कहते हैं... समझ में आया? अभी तो एक समय की पर्याय लेना। यहाँ तो वापस मति आदि के सब भेद हैं न, उस भेद को भेदरूप से न माने और उनका एकपना (एक ही माने), ऐसी पर्याय होने पर भी ज्ञान की पर्याय एकरूप है।

यहाँ तो एक समय में अनेकपना जो जानने का भाव है, इतना उस पर्याय का स्वभाव है। रागादि, पुण्य आदि, शरीर आदि इसका स्वरूप नहीं है, इसका धर्म नहीं है, इसमें वे नहीं हैं, परन्तु उन सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान होता है, ज्ञान में ज्ञात होता है कि यह राग है, दया है, पुण्य है यह भाव, यह जानने की पर्याय में अनेकपने का ज्ञान (हो), उतना आत्मा का वर्तमान पर्याय का स्वभाव है। परन्तु वह अज्ञानी इतनी पर्याय में अनेकपना है, ऐसा न मानकर, एकपना करना चाहता है कि यह सब ज्ञात होता है न, इसमें से निकाल डालूँ। निकाल डालूँ तो अकेला मेरा ज्ञान स्पष्ट रहे। यह उसकी मान्यता अत्यन्त मूढ़ की है। यह तो सादी भाषा में बात चलती है, बहुत गहरे से नहीं चलती। यह सब बैठे हैं।

श्रोता : कल की अपेक्षा दूसरे प्रकार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल की अपेक्षा दूसरे प्रकार से है। परन्तु यह सब आये हैं तो यह क्या कहते हैं, इतना ख्याल न आवे तो वह लगावे अकेला तो क्या करे? कल तो दूसरी सूक्ष्म बात की थी। समझ में आया? आहा!

अरे! भगवान! तेरी चैतन्यशक्ति! कहते हैं कि उस पूर्ण शक्ति की तो क्या बात

करना! परन्तु तेरी एक समय की एक ज्ञान की वर्तमान अवस्था का स्वभाव अनेक को जाननेरूप है, अनेक को अपने करनेरूप नहीं। इसलिए और दो बोल हुए। इस ज्ञान की वर्तमान अवस्था को जड़ आदि अनेक की क्रिया करे, ऐसा धर्म नहीं और इन अनेक वस्तु को पर्याय में, अपनी माने, ऐसा इसका धर्म नहीं। मात्र इसका पर्याय का स्वभाव अनेक है, उसे अनेकरूप से ज्ञान की दशा में जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। इतना ज्ञान का अनेकपने का स्वरूप न मानकर, अकेला ऐसे रह जाऊँ, उसे निकाल डालूँ, कहते हैं। तो कहते हैं कि वह अनेकपना इसका ज्ञान में जानने का स्वभाव है, उसे धो डालना चाहता है तो उसकी ज्ञानदशा धुल जाती है। समझ में आया? भारी बात! इसकी अपेक्षा तो ऐसा कहे कि यह कन्दमूल न खाना। ऐसा कुछ है? ऐई..!

यहाँ कहते हैं, मिथ्यात्व के बड़े भसरडे हो। सुन न! मिथ्यात्व के खां हो। अनन्त जीव को मार डालने का भाव मिथ्यात्व का है। उस मिथ्यात्व को तू अन्दर में भरडे हो, घोंटते हो। क्या?—कि ज्ञान की एक समय की दशा में अनन्त चीज़ें पर हैं, उन्हें मैं कर सकता हूँ, यह मानता है वह मिथ्यात्व को घोंटता है। अनन्त जीवों को मार डालने के मिथ्यात्वभाव को घोंटता है। अपने चैतन्य के जीवन की शक्ति की उसे खबर नहीं है। समझ में आया? आहाहा! प्रभु कहते हैं, देख तो सही, भाई! अरे! तेरी बात तू सुन, बापू! तूने तेरी बात सुनी नहीं, भाई! तू कितना बड़ा द्रव्य और कितनी तेरी एक समय की दशा पर से पृथक्! यह क्या है, वह बात तूने सुनी नहीं, भाई! और सुने बिना तुझे उसकी पहिचान तथा श्रद्धा कहाँ से होगी? और पहिचान तथा श्रद्धा बिना तुझे सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : महा कठिनता से यहाँ सुनने आये...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनते हैं न। इसलिए आये भी न! यह कहते हैं ऐइ... जयन्तीभाई! परन्तु आये हैं या नहीं? परन्तु आये या नहीं? यह तो अन्दर बैठे थे। आये तो सही। कुछ कहते हैं तो सुनेंगे। कुछ दूसरा कहते हैं। यहाँ काका कितने वर्ष से ऐसे के ऐसे बैठे हैं। बनिया है या नहीं? कुछ तौलेगा या नहीं? तुलना करेगा या नहीं? ऐसा का ऐसे पागलपने कहीं यह बात नहीं है। धीरुभाई! आहाहा!

भाई! सर्वज्ञ परमात्मा... देखो! २५ मिथ्यात्व में आता है या नहीं? कि अजीव को जीव माने, वह मिथ्यात्व। आता है? अधर्म को धर्म माने तो मिथ्यात्व। आता है? अब इसका अर्थ अपन करते हैं कि यह शरीर, वाणी, मन, कर्म है, वह अजीव है। यह उनकी हालत होती है, वह भी अजीव है। वह मुझसे होती है यह अजीव को जीव माना, यह मिथ्यादृष्टि है। ऐ... नेमिदासभाई! यह सब सेठिया रहे, देखो न! ये सब सेठिया बड़े सिरवाले थे। कलकत्ता के स्थानकवासी के प्रमुख। यह सब प्रमुख थे। यह सब बड़े प्रमुख। देखो! 'वडिया' के। वडिया? 'वडा.. वडा।' भूधर जेचंद न्यालचंद। उपाश्रय के अग्रेसर सामने। बापू! सुनो! बापू! भाई! तुझे परमात्मा परमेश्वर ने तत्त्व कहा है, वह जानना है या तेरे आग्रह की मानी हुई बातें अनादि की, वे जाननी हैं? यह तो तू कर रहा है।

यहाँ तो क्या कहना है? सुनो! अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व और जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व। यह तो आता है या नहीं? अब इसकी व्याख्या क्या? यह तो शब्द हुए। अजीव अर्थात् शरीर, कर्म, वाणी यह सब अजीव है। इस अजीव का कोई भी अंश पर्याय का जो है, वह मुझसे होता है, ऐसा माने तो अजीव को जीव माना। समझ में आया? अब अधर्म को धर्म माने। आत्मा की दशा में पुण्य-पाप के विकल्प और भाव होते हैं, वह विकार है। वह विकार मेरा धर्म है, ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। यहाँ तो अभी इससे तीसरी बात लेनी है। ऐ... रतिभाई!

यह तो वीतराग के घर में ही यह होता है। वीतराग के अतिरिक्त अन्यमति में तीन काल-तीन लोक में यह वीतराग कथित ऐसा मार्ग अन्यत्र हो नहीं सकता। सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे हैं। ऐसे परमेश्वर अरिहन्त देव अनन्त हुए। वर्तमान में बीस तीर्थंकर विराजते हैं। लाखों केवली प्रभु परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान मौजूद है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ। आज थोड़ा लेख आया है। भाई! अभी पढ़ा न वह सर्वज्ञ का। सन्मति सन्देश। थोड़ा पीछे से बाकी रहा। थोड़ा पढ़ा। यह सब देखो। सर्वज्ञ जो पहले हैं, उन्हें तो तुम पहिचानते नहीं और तुम धर्म (मान बैठे)।

सर्वज्ञ पूरे धर्म का आधार है और सर्वज्ञ हैं वे तीन काल को जानते हैं। सर्वज्ञ

कहाँ यहाँ आये ? सर्वज्ञ अर्थात् ? सर्व—ज्ञ। तीन काल—अनन्त पदार्थों की जो अवस्था हो गयी, जो होती है और होगी (वे) तीन काल भगवान जानते हैं और तीन काल जाने ऐसा यदि निर्णय करने जाए तो जो द्रव्य की पर्याय समय-समय में होनेवाली है, वह क्रम-क्रम से होनी है, ऐसा होने पर सर्वज्ञ में तुम्हें क्रमबद्ध को उड़ाना है, इसलिए सर्वज्ञ को उड़ाओ। बेचारे ने ठीक लिखा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! प्रभु! एकबार सुन तो सही, बापू! ऐसा मनुष्यदेह मिला। अनन्त काल में मुश्किल से पाँच-पचास वर्ष, साठ वर्ष (मिले)। फू... होकर चला जाएगा। अनन्त काल से भटकता इसमें। उसमें यह वीतराग ने कहा हुआ ऐसा आत्मा, वीतराग ने कहे हुए जड़ और चैतन्य दो भिन्न, और पुण्य-पाप के भाव तथा आत्मा की धर्मपर्याय भिन्न। समझ में आया? ऐसा जानने में, मानने में, पहिचानने में नहीं आया (तो) वह सब उसका व्यर्थ अवतार है। रतिभाई!

श्रोता : जैन तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन कहाँ था? कौन जैन कहते हैं? ऐ... न्यालभाई! यह सेठिया है न वहाँ का।

जैन अर्थात् क्या? जैन अर्थात् जीतना। जीतने में दो प्रकार आये। एक कायम रहनेवाली चीज़, वह अज्ञान, राग को जीतकर वीतरागरूप हो, उसे जैन कहा जाता है। द्रव्य और पर्याय दो माने तो जैन कहलाये, परन्तु वह इस प्रकार से माने (तो)। समझ में आया? जैन अर्थात् कहीं सम्प्रदाय है? वह तो वस्तु का स्वरूप है। जैसा वीतराग ने वस्तु का स्वभाव देखा, वैसा कहा, वैसा जाना, वैसा है। कहीं भगवान वाडा नहीं यह जैन का। वस्तु स्वभाव ऐसा है अनादि-अनन्त आत्माओं का, अनन्त... यह भगवान के ज्ञान में देखा। और देखा कि जीते। इसलिए तेरा भगवान आत्मा अनन्त गुणसम्पन्न, अनन्त चतुष्टय सम्पन्न है। तेरी पर्याय में-अवस्था में राग-द्वेष आदि, पर आदि हो वह तेरी चीज़ नहीं, पुण्य-पाप आदि तेरी (चीज़) नहीं, परवस्तु तेरी नहीं। इतना नहीं परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान हो, उतनी पर्याय जितना भी तू नहीं है। क्या कहा?

शरीर, वाणी, मन तो नहीं, पुण्य-पाप के भाव तो नहीं और एक समय के ज्ञान

की दशा में यह सब ज्ञात हो, ऐसी अपनी ज्ञानपर्याय, इतना भी तू पूरा नहीं। पूरा तो अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य है, वह पूरा है। ऐसे आत्मा की दृष्टि करके राग-द्वेष, पुण्य-पाप मेरे नहीं और इसके (स्वयं के) स्वभावसन्मुख ढले और सम्यग्दर्शन करे, उसे जैन कहा जाता है। जैन क्या कोई वाडा बाँधा है? कोथली में भरा हो चिरायता और ऊपर लिखा मिश्री। चिरायता मिश्री हो जाता होगा? चालीस रुपये का मण। लिखो न, कौन इनकार करता है। भरा है अन्दर चिरायता। इसी प्रकार अन्दर मिथ्यात्व के जहर भरे हों और ऊपर लिखे—हम जैन हैं। कहाँ से जैन हो जाता था? ऐसा होगा? ऐई! सेठ! क्या होगा? ऐसा है? आहाहा!

अरे! भगवान! कहते हैं कि तेरी दशा के अंश में और अंशी त्रिकाल अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें यह पर को इतना... इतना... इतना मानने जाए, कहते हैं उसकी तो बात छोड़ दे, परन्तु तेरे ज्ञान की पर्याय में अनेकपने का ज्ञान होता है, वह तो तेरा स्वरूप है। इतना पर्याय का स्वरूप, हों! इतने पर्याय को भी माने परन्तु त्रिकाली को न माने तो मिथ्यादृष्टि है और त्रिकाली को माने, तो माने ऐसा जहाँ आया, वह मानने की पर्याय तो ज्ञान की वर्तमान हुई है। उस पर्याय में तो अनेकपने का ज्ञान होता है। उस ज्ञान की पर्याय को अनेकपने हो, उसे इतने को न माने और पूरे द्रव्य को माने, तो भी वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐ... नटुभाई! पढ़ा है न सम्यग्दर्शन? आहाहा! अरे! यह समझने जैसा है। हसमुख! वहाँ कमा-कमाकर पूरा मजदूर है पूरे दिन? मजदूर होगा या क्या होगा? बड़ा मजदूर है। सेठ कौन कहता था? वे सब मजदूर हों, वे इसे सेठ कहे। छोटा मजदूर बड़े मजदूर को सेठ कहे। सेठ अर्थात् श्रेष्ठ। मजदूरी करने में श्रेष्ठ। राग-द्वेष करने में बड़ा।

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं... आहाहा! यह तो तुम्हारे प्रमाण में बात आयी है आज, हों! कहते हैं, '**पशु ज्ञानं न इच्छति**' शब्द तो अब आयेगा। यह तो अभी उपोद्घात चलता है। आहाहा! भाई! आहा! अरे! प्रभु! तेरी चैतन्य रत्नाकर शक्ति, तत्त्व, अरे! उसे तू न माने और यह शरीर, वाणी अपना माने, उसकी बात तो छोड़ दे, परन्तु पूरी चीज़ को न माने और एक समय की अवस्था को माने तो भी अज्ञान है, मिथ्यात्व है। इस एक समय की अवस्था में अनेकपना है, उसे न माने, अकेला

आत्मा करना चाहे तो वह तेरी दृष्टि में मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए ज्ञेय वस्तु को जानते हुए ज्ञान का अशुद्धपना मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञान का द्रव्यरूप एक पर्यायरूप अनेक ऐसा स्वभाव साधता है। इतना तो अभी उपोद्घात किया है। श्लोक में हमारे क्या कहना है, इसकी बात की है। इस श्लोक में हमारे अब ऐसा कहना है। वस्तुरूप से भगवान आत्मा वस्तुरूप से एक है। यह रजकण, शरीर, कर्म आदि से भिन्न और पर्यायरूप से अनेक। ज्ञान की दशा में अनेकपना लोक का ज्ञात हो इतना, हों! ज्ञात हो इतना। मेरापना नहीं, मात्र ज्ञात हो इतना। यह अनेकपना पर्याय का धर्म है, उसे ऐसा जानना चाहिए। वस्तु एकरूप है, उसे एकरूप जानना चाहिए। ऐसा न जानकर अकेले द्रव्य को एकरूप जाने और पर्याय में अनेकपना है, उसे निकाल डालना चाहे—अनेकपने का ज्ञान निकाल डालना चाहे; वस्तु निकाल डालना चाहे अलग बात है। राग-द्वेष, शरीर, वाणी वह तो निकाल डाली हुई चीज़ इसमें है ही नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान निकाल डालना चाहे तो मूढ़ है। आहा! **ऐसा कहते हैं।**

'**पशुः ज्ञानं न इच्छति**' अब शब्द शुरु होते हैं। अरे पशु! आचार्य महाराज ने तो पशु कहा है। अरे पशु! पश्यते बध्यते इति कर्म इति पशु। जो अज्ञानभाव से नये अनन्त कर्म को बाँधे, उसे यहाँ अज्ञानी को पशु कहा है। फिर भले त्यागी होकर मानता हो, गृहस्थ होकर बैठा हो, करोड़ों-अरबोंपति हो, साधु होकर पंच महाव्रत की क्रिया के राग को करता हो! परन्तु उस राग की क्रिया, वह मेरा धर्म; जड़ की क्रिया मैं कर सकता हूँ और मेरे ज्ञान की पर्याय में जानने का हो, उतना उसे भिन्न पड़ता नहीं और जानने का हो उतना मैं नहीं, पूरा त्रिकाल हूँ और त्रिकाल होने पर भी ज्ञान की पर्याय में अनेक जानना, वह मेरा पर्यायधर्म है, ऐसा नहीं मानता, उसे यहाँ पशु कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? भाषा भी कठिन कही जाती है, हों! मनुष्य को उसका पिता नहीं कहता, पागल! नहीं कहता? लड़का-बड़का तूफान करे (तो कहे) मूर्ख! पागल! नहीं कहते? उसकी माँ कहती है या नहीं?

श्रोता : चतुर करने लिये कहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे चतुर करने के लिये कहती है। भाई! प्रभु! तेरी चीज़ क्या है? तेरी दशा की मर्यादा कितनी है? तेरे ज्ञान की वर्तमान दशा की मर्यादा कितनी है? और उस मर्यादा में कितना ज्ञान पर का आने पर भी उसका अनेकपना, परवस्तु उसमें आ नहीं गयी, अनेकपने का ज्ञान वह तो पर्यायस्वभाव का धर्म है। एकपने का त्रिकालपना वह द्रव्य का स्वभाव है। ऐसा न माने, वह '**पशुः ज्ञानं न इच्छति**'

एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानमात्र जीववस्तु को नहीं साध सकता है... क्या कहते हैं? अकेली ज्ञान की पर्याय अनेकपने को जाननेवाली है, उसे वह नहीं साध सकता। **अनुभवगोचर नहीं कर सकता है।** लो! क्या कहते हैं? आत्मा त्रिकाली एकरूप होने पर भी और ज्ञान की पर्याय में अनेक का जानना होने पर भी, वह ज्ञान एकरूप ही है। अनेकरूप दशा में जाननेरूप हुआ, परन्तु ज्ञान अनेकपने के पदार्थरूप नहीं हुआ। ऐसी अन्तर की दृष्टि में द्रव्य को लेकर और ज्ञान की पर्याय में अनेकपना जानने पर भी वह आत्मा के अनुभव की पर्याय दशा, वह मेरी दशा है—ऐसे आत्मा के लक्ष्य से अनुभव करे तो उसे अनुभव, सम्यग्दर्शन होता है। यह अज्ञानी **अनुभवगोचर नहीं कर सकता है।** पर्याय का अनेकपना जानने का निकाल डाले तो वस्तु को अनुभवगम्य नहीं कर सकता।

कैसा है ज्ञान? ऐसा करके फिर जरा सूक्ष्म बात है। '**स्फुटं**', **प्रकाशरूप से प्रगट है यद्यपि।** क्या कहा जरा देखो! ज्ञान की पर्याय प्रकाशरूप प्रगट होती है। आहाहा! वर्तमान ज्ञानदशा में उस पर का जानना होता है, वह तो ज्ञान का प्रकाश प्रगट है। अपने अस्तित्व में उस ज्ञान की पर्याय को जानना होता है, ऐसे प्रकाश के पर्याय धर्म को न जानता हुआ, अनेकपना कलंक है—ऐसा निकाल डालना चाहता है, उसे आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन नहीं होता। इसलिए, इस प्रमाण आत्मा जैसा पूर्ण है, उसकी पर्याय में अनेकपना है, ऐसा जानकर आत्मा की दृष्टि करना, उसे अनुभव हो सकता है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण ३, शनिवार, दिनांक-११-१२-१९६५, कलश-२५१, प्रवचन-२६६

पाँचवाँ कलश चालू है। फिर से भावार्थ है। इसमें ही की कही है, कल कुछ नयी कही नहीं। **कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसा है कि वस्तु को द्रव्यरूप मात्र मानता है,...** क्या कहते हैं? यह आत्मा है न? आत्मा, वह द्रव्यरूप से एक वस्तु है, ऐसा मानता है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, पदार्थ। परन्तु **पर्यायरूप नहीं मानता है।** उसकी अवस्था—ज्ञान की जो दशा होती है—अवस्था, उसे मानता नहीं।

यहाँ तो दो बात में कल बहुत बात कही गयी है। वे सब जरा अनजाने लोग थे न? पालेज के। किसी दिन मुश्किल से सुनने आये हों। यह आत्मा पुण्य-पापवाला मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। वह आत्मा ऐसा नहीं, उसे यहाँ निकाल दिया। उसकी यहाँ ऐसी स्थूल मिथ्यात्व की बात ही ली नहीं।

आत्मा के सत्ता के दो अंश—सत्ता अस्तित्व वस्तु त्रिकाल रहनेवाली और उसकी एक समय की पर्याय। यहाँ ज्ञानप्रधान से कथन है। ज्ञान की पर्याय—अवस्था। उसके दो अंशों में अज्ञानी उस द्रव्य—चीज़ को माने परन्तु उसके ज्ञान में—वर्तमान ज्ञान दशा में अनेकपने का ज्ञान होता है, इससे ज्ञान का एकपना रहता नहीं, इसलिए अनेकपना होता है, उस अनेकपने को मानता नहीं, वह अनेकपना निकाल डालना चाहता है। समझ में आया? कल बहुत कहा गया था।

मिथ्यादृष्टि शरीर, कर्म, वे आत्मा में नहीं हैं, उन्हें तो निकाल डाले बराबर है। समझ में आया? और पुण्य-पाप के विकल्प जो मलिन विकार है, वह भी वास्तव में उसकी मूल पर्याय का स्वभाव नहीं है। उसे निकाल डाले, वह (स्वरूप) नहीं, यह तो बराबर है। यह रखे और माने कि मैं आत्मा मानता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। चाहे तो जैन में जन्मा हो और जैन में माने तो वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? शशिभाई!

आत्मा, उसकी त्रिकाली द्रव्य वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड, सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर ने देखा हुआ आत्मा और उस आत्मा की एक समय में ज्ञान की पर्याय का अंश, कि

जिस अंश में दूसरे राग-द्वेष, विकल्प आदि अनेक हैं, उनका यहाँ ज्ञान हो, ऐसा वर्तमान ज्ञान की पर्याय का सहज स्वभाव है। अब जो कोई पुण्य-पापसहित और कर्मसहित आत्मा को माने, वह उसके अस्तित्व में है, ऐसा माने, उसकी पर्याय के अस्तित्व में है ऐसा माने, उसकी पर्याय के अंश के अस्तित्व में (माने), पुण्य-पाप और कर्म उसके अस्तित्व में माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म की खबर नहीं। समझ में आया?

परन्तु आत्मा एक समय में उसकी एक सत्ता त्रिकाली वस्तु और एक उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय, ऐसे एक सत्ता के दो भाग। उनमें का एक भाग त्रिकाली को माने। क्योंकि मुझे एकरूप रहना है। और ज्ञान की वर्तमान पर्याय में—अवस्था में अनेकपने का ज्ञान होता है, ज्ञान, वह अनेकपने का अनेकपना उसे रुचता नहीं। राग नहीं रुचता, पर नहीं रचता, यह तो बराबर है। ज्ञान में यह राग ज्ञात होता है, विकल्प ज्ञात होते हैं, दया-दान का राग आया, उसका ज्ञान हुआ। राग यहाँ पर्याय में आया नहीं। मात्र ज्ञान की पर्याय में... यह पूरी बात सूक्ष्म है, उसे राग का या दया का विकल्प है, ऐसा ज्ञान होता है। वह विकल्पवाला आत्मा माने तो वह वस्तु का स्वरूप नहीं। अर्थात् उस दृष्टि में मिथ्यात्व है। परन्तु उसकी पर्याय में रागादि अनेक प्रकार का ज्ञान होता है, उसे अनेकपनेरूप न मानकर और एकपना रखने के लिये, उस ज्ञान में अनेकपने का ज्ञान, उसे निकाल डालना चाहे तो भी वह द्रव्य को मानता है परन्तु पर्याय को नहीं मानता। ओहोहो! ऐसा सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

कहते हैं कि **ज्ञान को निर्विकल्प वस्तुमात्र मानता है,...** वह तो वस्तु (ही मानता है)। और यह भेद क्या? समझ में आया इसमें? यहाँ सूक्ष्मरूप से मिथ्या अभिप्राय की भूल अनादि अज्ञानी को कैसे रहती है, उसकी बात की है। समझ में आया? ऐसे तो सब ऐसा कहते हैं, हम धर्म करते हैं... धर्म करते हैं... धर्म करते हैं... परन्तु धर्म कहाँ होता है और धर्म क्या है? उसकी खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, अज्ञानी ऐसा आत्मा के वास्तविक तत्त्व के भान बिना **ज्ञान को निर्विकल्प...** वस्तु को एकरूप मानने का अभिलाषी, एकरूप मानने का अभिलाषी, यह भंग तो अनेक का है, परन्तु अनेक के सामने पहला भंग लेते हैं न? आहाहा! समझ में

आया ? वह एकरूप वस्तुमात्र मानने का कामी और एकरूप यह मेरी ज्ञानदशा में यह अनेक क्यों ज्ञात होते हैं ? उसमें से अनेकपना निकालकर एकपना जिसमें मुझे भासित हो, उसे माननेवाला **ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञान की पर्याय नहीं मानता है,...** समझ में आया ? वह ज्ञान की वर्तमान दशा में जो ज्ञेय शरीर, वाणी, मन की क्रियायें जड़ में स्वतन्त्र होती है और विकल्प उठे विकार का स्वतन्त्र, उस सम्बन्धी ज्ञेय का ज्ञान की पर्याय में जानना होता है। ज्ञेयाकार, ज्ञेयाकार—ज्ञात होनेयोग्य वस्तु के स्वरूप से परिणतिरूप वर्तमान ज्ञान की दशा में ऐसी पर्यायरूप, आत्मा के त्रिकाली गुण की पर्याय वर्तमान हो, उसे वह मानता नहीं। समझ में आया ? शशिभाई ! कल नहीं थे। आज सवेरे आये न ? कल तो पालेज की पूरी बारात आयी थी। इसलिए उनके प्रमाण में (बात आयी)। किसी दिन बेचारे धन्धे में से निकलकर आवे, उसमें कहीं धर्म क्या है भगवान जाने। इसलिए कल एक घण्टे इतने में इसमें ही चला था। नहीं ? ऐ... देवानुप्रिया !

मुमुक्षु : तीन-चार दिन से चलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसमें जितना डाले उतना निकले। यह तो महा स्याद्वाद वस्तु है न ! भगवान आत्मा... दूसरे द्रव्यों की यहाँ बात नहीं। दूसरे उसके घर में रहे। अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, काल आदि वस्तु, धर्मास्ति आदि (वे तो कहीं रह गये)। यहाँ तो कर्म, शरीर आदि अजीव उसके घर में (—उसके) अस्तित्व में—उसकी अस्ति में वे रह गये। परन्तु यहाँ ज्ञान की दशा में और ज्ञानस्वरूप त्रिकाल द्रव्य में, दो की बात चलती है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा भगवान सर्वज्ञस्वरूप त्रिकाली वस्तु है। सर्वज्ञ अर्थात् ज्ञानस्वभाव जिसका, बस ! सर्व ज्ञान स्वभाव, वह द्रव्य वस्तु, द्रव्य वस्तु। सर्वज्ञ स्वभाव अर्थात् द्रव्य। ऐसे अनन्त स्वभावस्वरूप एक द्रव्य—वस्तु, उसे एकरूप माननेवाला उसे माने परन्तु उसकी वर्तमान दशा में अनेकपने का हो, उसे वह मैल देखता है। समझ में आया ? ज्ञान की अवस्था में अनेक सम्बन्धी रागादि का ज्ञान हो, वह ज्ञान की अवस्था में अनेकपने का परिणमन होता है, उसके ऊपर मैल देखता है (कि) अरे ! यह क्या ? इसलिए निकाल दो इसे। मुझे अकेला ज्ञान रहना है, ऐसे ज्ञान की पर्याय नहीं मानता,

इसलिए ज्ञेय वस्तु को जानते हुए... वस्तु में, ज्ञान की दशा में ज्ञात हो ऐसी वस्तु, हों! ज्ञात हो इतना ही सम्बन्ध, दूसरा कुछ नहीं। वे चीज़ें ज्ञान की वर्तमान अवस्था है, इसलिए है, ऐसा भी नहीं और वे चीज़ें हैं, इसलिए ज्ञान की अवस्था है, ऐसा भी नहीं। मात्र ज्ञेयाकार ज्ञान की पर्याय में अवस्था का होना होता है, उसे—अज्ञानी को वह अनेकपने का ज्ञेयाकार परिणमन अशुद्ध भासित होता है। एकपने—एकान्त से एकपने रहनेवाले को ज्ञान की दशा में अनेकपने का भास (हो), उसे एकपने करना चाहता है और अनेकपना टालना चाहता है, तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है कि अनेक को जाने। उसे टालने पर रहेगा क्या? समझ में आया? वह ज्ञान की पर्याय बिना का हो गया तो वस्तु ही न रही। सूक्ष्म बहुत, हों! जुगराजजी! यह सब धर्म... धर्म करते हैं न लोग चारों ओर। अभी तो और आत्मा और अध्यात्म... अध्यात्म चला है। यहाँ का अध्यात्म चला है न, इसलिए अब नाम तो सब पुकारते हैं। अरे! भगवान! अध्यात्म तो सूक्ष्म बात है, बापू!

अध्यात्म (अर्थात्) आत्म आश्रय से बात। यह आत्मा (अर्थात्) एक समय में अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने देखा हुआ केवली कहते हैं ऐसा आत्मा माने, परन्तु उसकी वर्तमान दशा में भगवान ने देखा हुआ है कि उसकी ज्ञान की अवस्था में अनेक का ज्ञान होता है, ऐसा उसका—पर्याय का स्वभाव है, सहज स्वभाव है। उस भाव को न मानकर एकपना करना चाहता है, वह मिथ्यादृष्टि ज्ञेय को जानने से ज्ञान का अशुद्धपना मानता है। समझ में आया?

पुण्य-पाप के परिणाम हैं, वे अशुद्ध हैं, वे नहीं। यह तो ज्ञान की पर्याय में यह दया-दान का विकल्प उठा, उसके ख्याल में यही आता है, ख्याल में यही आता है। ज्ञान का स्वभाव क्या? जैसा विकल्प हो। जैसी सामने यह देह की क्रिया ऐसे-ऐसे होती है, देखो! तो ज्ञान की पर्याय में भी ऐसे ज्ञात होता है। दूसरे प्रकार से ज्ञात होगा? यह एकपने की स्थिति ऐसी हो, उसका यहाँ ज्ञान हो, उसे ऐसा लगता है कि अरे! परन्तु यह क्या मुझमें? समझ में आया? शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप की अशुद्धता, वह तो अलग रह गयी, वह कहीं आत्मा का मूल पर्यायधर्म भी नहीं है, तथा उसका द्रव्यधर्म तो है ही नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, न्यालभाई! यह तो सब भाग जाये ऐसा है,

हों! जैन में दया पालना, रात्रिभोजन नहीं करना, धर्म माने। उसे बैठेगी यह बात? (धर्म) किसे कहते हैं? परन्तु सुन तो सही! हरितकाय खा सकने की क्रिया का अस्तित्व ही तेरे द्रव्य में भी नहीं और तेरी पर्याय में भी नहीं।

यहाँ तो विकारी पर्याय में वह खाने की क्रिया या छोड़ने की क्रिया विकारी पर्याय में नहीं है। तथापि यह क्रिया करूँ और यह करना छोड़ूँ, यह तो दृष्टि में मिथ्यात्व भरा है। उसके कारण भ्रम खड़ा होता है। अरे! यहाँ तो मात्र विकल्प, राग जो उठता है, उसके सम्बन्धी ज्ञान की दशा का स्वभाव प्रज्ञा का है, कि जैसा हो, वैसा यहाँ जाने। उस जानने में अनेकपने का भास होने से अज्ञानी को एकपने रहना है, इसलिए उसे अनेकपना अशुद्ध भासित होता है। अनेकपना अशुद्ध भासित होता है, इसलिए उसे अनेकपना सुहाता नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव, द्रव्य को माने और पर्याय को मानता नहीं। आहाहा! गजब भाई यह तो! समझ में आया?

इसलिए ज्ञेय वस्तु को जानते हुए ज्ञान का अशुद्धपना मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी ज्ञान का द्रव्यरूप एक (और) पर्यायरूप अनेक ऐसा स्वभाव साधता है, ऐसा कहते हैं... सम्यग्दृष्टि जीव, धर्मी जीव; धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसे सम्यग्दर्शन हो। सम्यग्दृष्टि धर्मी ऐसास होता है कि वह द्रव्य आत्मा वस्तुरूप से 'एक' स्वीकार करता है और पर्याय में 'अनेकपना' स्वीकार करता है। **पर्यायरूप अनेक, ऐसा स्वभाव साधता है....**

'पशुः ज्ञानं न इच्छति' पशु—एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव... पशु अर्थात् भगवान आत्मा एक समय में द्रव्यरूप से पूर्ण और पर्याय में अनेकपने के जाननेरूप अनेक, ऐसा जो जानता नहीं (और) अकेली चीज़ को माने और पर्याय को, व्यवहार को न माने। अब दूसरी (बात), यह द्रव्य अकेला त्रिकाली, वह निश्चय और पर्याय के अंश में अनेकपना ज्ञात हो, परन्तु यह पर्याय, वह व्यवहार। ऐई! उस व्यवहार को मानता नहीं और अकेले निश्चय को मानता है। जुगराजजी! यह व्यवहार, हों! एकरूप त्रिकाल वस्तु है, वह निश्चय। परम सत्य भगवान अनादि-अनन्त एकरूप रहनेवाला तत्त्व, वह निश्चय। एक समय की दशा, जिसमें राग (हो, उसकी) यहाँ अभी बात नहीं है, पुण्य

की बात नहीं है, कर्म की बात नहीं है। ज्ञान की दशा में अनेकपना ज्ञात हो, ऐसा अंश, उसे त्रिकाल की अपेक्षा से उसे भेदरूप से व्यवहार कहते हैं। समझ में आया?

पहले श्लोक में ऐसा आया था कि, पर्याय को माने और द्रव्य को न माने। वह व्यवहार को माने और निश्चय को न माने। वह तो एक के श्लोक में (आ गया)। यह श्लोक तो अनेक का है न? वह पर्याय को माने, इस बोल में ऐसा था। एक समय की पर्याय है, वह कैसी? राग-द्वेष, ऐसा भी नहीं। जानने की पर्याय का स्वभाव अनेक का है, उस पर्याय को माने, परन्तु त्रिकाली द्रव्य को मानता नहीं। क्योंकि वह चीज़ क्या है, उसका अन्तर में लक्ष्य किया नहीं। समझ में आया? अर्थात् कि व्यवहार के अंश को व्यवहार स्वीकार करे परन्तु निश्चय मानता नहीं। वह एकान्त मिथ्यादृष्टि, इसलिए कहा है। समझ में आया इसमें?

यहाँ कहते हैं कि निश्चय माने, व्यवहार मानता नहीं। व्यवहार है, ऐसा मानता नहीं, हों! व्यवहार साधन है या (नहीं), यह यहाँ प्रश्न है ही नहीं। समझ में आया इसमें? एक समय की ज्ञान पर्याय अथवा अनन्त गुण का भेदरूप हुआ न एक अंश? उस अंश को स्वीकारता नहीं, अर्थात् व्यवहार को मानता नहीं। अकेला निश्चय को माननेवाला निश्चयाभासी अज्ञानी है। विमलचन्दजी! लो! यह दूसरी बात हुई।

यह तो स्याद्वाद सर्वज्ञ का अनेकान्त तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है कि अन्य में कहीं तीन काल में अन्यत्र हो नहीं सकता। यह ऐसी चीज़ है, वस्तु की स्थिति ऐसी है। यह एक बार नहीं कहा था? भाई! हाथ नहीं आया था। एक बार कहा था परन्तु वह तब हाथ नहीं आया था, और फिर हाथ आया। शुरुआत करने से पहले है न? यह सब बोल शुरु करते हैं न? उसके पहले है। मैंने कहा कहीं आया था। तत्-अतत् के बोल गद्य के हो गये न? गद्य के, उसके पद्य शुरु करते हुए कहा है, देखा! यहाँ तत्-अतत् के भंग एक आदि चौदह भंगों का बताया। एकान्त से ज्ञानमात्र आत्मा का अभाव होता है, अनेकान्त से आत्मा जीवित रहता है। यह तब हाथ नहीं आया था। अर्थात् एकान्त से आत्मा जिस स्वरूप से है, उस स्वरूप से समझ में नहीं आता और स्वरूप में परिणमता नहीं। यह कहना था। भाई! (मैं) पीछे का देखने गया था परन्तु उसमें पहले ही यह है। गद्य कहने

के बाद और पद्य कहने से पहले (आता है)। तब पद्य के बाद देखा था। समझ में आया? यह वस्तु है, देखो!

एकान्त से अर्थात् एक पक्ष के भाव से वस्तु ज्ञानमात्र आत्मा का अभाव होता है। अनेकान्त द्रव्य और पर्याय आदि, स्वद्रव्य आदि एब चौदह बोल। उनसे आत्मा जीवित रहता है। जीवित अर्थात् जैसा स्वरूप है, वैसा अनुभव में आता है। अर्थात् इसकी व्याख्या की, वह अभाव हो, जीवित रहे, उसकी व्याख्या। एकान्त से आत्मा जिस स्वरूप से है, उस स्वरूप से समझ में नहीं आता। एक पक्ष से देखने पर द्रव्य ही है और पर्याय नहीं तथा पर्याय है और द्रव्य नहीं, ऐसा देखने से वह जिस स्वरूप से है, उस स्वरूप से समझ में नहीं आता, स्वरूप में परिणमता नहीं, ऐसा है। स्वरूप में परिणमता नहीं। एकान्त से माननेवाले का स्वरूप का परिणमन नहीं होता और अनेकान्त से वह वास्तविक स्वरूप से समझ में आता है और स्वरूप में परिणमता है। मैंने एक बार नहीं कहा था? परन्तु पिछले बोल में कहा था। चौदह हो गये न? (वहाँ) भी उसमें यह नहीं आया। उसमें आया (कि) तत्-अतत् आदि अनेक धर्म स्वरूप प्रत्यक्ष.... इतना ही आया था, यह नहीं आया था। यह पहला बहुत सरस है! समझ में आया?

क्या कहते हैं? अनन्त आत्मायें और अनन्त रजकण वे तो भिन्न रह गये, उनकी यहाँ बात नहीं। अब उनकी भी एक बात है एक न्याय से, क्या (बात है)? कि ाान की एक समय की पर्याय में ये छहों द्रव्य ज्ञात होते हैं, ऐसा पर्याय का धर्म है, पर्याय का धर्म—स्वभाव है। उस पर्याय को न माने तो उसने छह द्रव्य को माना नहीं। वह अशुद्धवाला और ऐसा नहीं, उसके ज्ञानवाला। आत्मा की एक समय की ज्ञानपर्याय में छह द्रव्य जानने का एक समय की ज्ञानपर्याय का स्वभाव है। वह तो पर्याय को न माने, तो पर्याय में अनेकपने का अनन्त ज्ञान है, एक समय में, उसे उस प्रकार से न माने, उसने छह द्रव्य को माना नहीं, उसने पर्याय को माना नहीं। उसने अकेला द्रव्य माना, वह भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। पहले में ऐसा कहा था कि पर्याय को माने परन्तु द्रव्य को न माने, पहले भंग में (ऐसा कहा था)। एक समय की ज्ञान अवस्था कि जिसका स्वभाव,

वह पर्याय इतनी ही है कि छह द्रव्य को जाननेरूप परिणमे, इतनी एक पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था। उस अवस्था को माने और द्रव्य को न माने, वस्तु को न माने तो एकान्त मिथ्यादृष्टि हुआ। पूरा तत्त्व रह गया और वह वस्तु पूरी को माने परन्तु एक समय की पर्याय में वे छह द्रव्यों को जानने का एक पर्याय अनेक को जानने की है, ऐसा एक पर्याय अनेकरूप परिणमने की अपनी पर्याय की सामर्थ्य है, उसे न माने और अकेले द्रव्य को माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अरे! भारी सूक्ष्म बातें! समझ में आया? साधारण मनुष्य को इसमें अता-पता सूझे, ऐसा नहीं। सूझे ऐसा इसमें ही है। ऐ... शशिभाई! सत्य बात, सत्य का स्वरूप ही ऐसा है। सत् साहेब परमात्मा स्वयं ही ऐसा आत्मा है। आहाहा!

एक-एक भगवान आत्मा जिसके स्वरूप में अनन्त-अनन्त अनन्त शक्ति के अनन्त गुण का अनन्त स्वरूपरूप एक तत्त्व—ऐसे एक तत्त्व को न माने और अकेली पर्याय को माने तो वह छह द्रव्य को जानने के एक अंश को माना, परन्तु यह तो बड़ा महा भगवान, जिसके एक समय में यह सब समाहित हो जाये। यह तो बड़ा भगवान है। एक समय में इतना (ज्ञात हो)। यह तो महान प्रभु है। समझ में आया? पर्याय को माना और द्रव्य को नहीं माना तो मूढ मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्य को माना परन्तु छह द्रव्य को जाननेवाली एक समय की पर्याय, ऐसी पर्याय को न माने और द्रव्य को माने तो वह वस्तु का स्वरूप रूप से समझ में आये नहीं और वस्तु के स्वरूप का परिणमन यथार्थ हो नहीं। दो बोल याद आवे तब हो न! व्याख्यान हुआ था, तब हो गया था पहले। समझ में आया? एकान्तरूप से माननेवाले को वस्तुस्वरूप है, वह समझ में नहीं आता और एकान्तरूप से माननेवाले को वस्तु के स्वरूप की सच्ची परिणति होती नहीं, सम्यक् परिणति अवस्था होती नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना, वाँचन किया हो परन्तु क्या करे? सुने, वाँचे तो क्या हो? पहाड़े तो (रट जाये)। सुना, वाँच, इसलिए ख्याल आ जाता होगा? तब तो सुनने, वाँचने के कारण ख्याल आवे, ऐसा हो गया। कहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किया होगा न ? कहा था न यह ? सुनकर, वाँचकर कहे कि मुझे ऐसा भासित होता है। एक वस्तु है पूरी ऐसी, उसे भासित हो। पर्याय में अनेकपना (आवे तो ऐसा कहे), यह क्या ? नहीं। पर्याय कैसी ? एक समय का अंश कैसा ? यह क्या ? एक समय के अंश को माननेवाला, (उसे) पूरा द्रव्य तो रह गया। पूरी चीज़ अव्यक्त है। प्रगट अवस्था व्यक्त है। प्रगट अवस्था वह व्यक्त है, उसे माना। अनेक है, छह द्रव्य है। पूरी यह चीज़ क्या ? अव्यक्त (चीज़ क्या) ? कौन जाने। ऐसा नहीं कहते ? यह क्या है ? यह कहाँ गया आत्मा ऐसा का ऐसा ? समझ में आया ?

यहाँ दूसरे बोल में ऐसा हो गया, ऐसा यह चौथा बोल है। भगवान आत्मा महा महिमाशाली चीज तो... परन्तु वापस यह भंगरूप अंश है और अंश में अनेक जाने। यह क्या ? यह क्या ? यह तो सब विकल्प का (ज्ञान हुआ)। भेदरूप अंश और अनेक ज्ञात हो, वह तो विकल्प का कारण होगा, मैल का कारण होगा, बन्ध का कारण होगा। ऐसा भेद जानना हो तो बन्ध का कारण होगा, ऐसा मानकर अनेकपना—ज्ञान की पर्याय को मानता नहीं। समझ में आया ? वह जो है, वह (ऐसा मानता है कि) एक समय की पर्याय में प्रगट है, उसे ज्ञान का अंश, आहाहा ! यह है, यह सब है। छह द्रव्य को जाने ऐसी पर्याय है। वह चीज़ पूरी क्या है ? ऐसे अखण्ड की दृष्टि की नहीं। इसलिए एक समय की पर्यायदृष्टि में रुककर द्रव्य को माना नहीं तो अनेकान्तरूप से द्रव्य है, वह समझ में नहीं आया और समझ में नहीं आया तो अनेकान्तरूप से उसका परिणमन सम्यग्दर्शन का हुआ नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि, '**पशुः ज्ञानं न इच्छति**'। '**पशुः**' आहाहा ! आचार्य का भी दया का शब्द है, हों ! यह। अरे ! पशु जैसे। आहा ! मनुष्य हो तो विवेक हो। आहा ! भाई ! तुझे खबर नहीं, हों ! प्रभु ! तू क्या कहता है ? और ऐसी एकान्त मान्यतावाले पशु में ही, परम्परा से निगोद में ही जानेवाला। आहाहा ! समझ में आया ? भले त्यागी में नाम धराता हो, साधु नाम धराता हो, श्रावक नाम धराता हो, परन्तु जिसे ऐसी चीज़ एकरूप अखण्डानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि पर्याय के लक्ष्यसहित की हुई नहीं, वह मिथ्यादृष्टि

निगोद के ही अधिकारी हैं। एकाध भव कदाचित् वह वर्तमान स्वर्ग आदि में जाये, उसका योगफल तो निगोद है। इसलिए यह पशु कहा है। निगोद की गति, वह पशु की—तिर्यंच की गति है। जुगराजजी! आहाहा! समझ में आया? ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा यह नहीं है, हों!

भगवान! तेरी चीज़ जो है, (उसमें) एक समय की ज्ञानदशा में अनन्त-अनन्त अनन्त पदार्थों को जानने का जितना पर्यायधर्म, उतना यदि न स्वीकार करे, तब तो उसका व्यवहार भाग, द्रव्य का व्यवहार भाग का भी स्वीकार नहीं आया। और इतना स्वीकार और महापदार्थ निश्चय महापदार्थ, जिसके एक समय में तीन काल तीन लोक के छह द्रव्य ज्ञात हों, ऐसा महान पदार्थ भगवान को नहीं माने तो एकान्त मिथ्यादृष्टि होने से यह वस्तु की स्थिति की समझ भी सच्ची नहीं हो सकती, इसलिए वस्तु का सम्यक्रूप से परिणमन नहीं होता। क्या कहते हैं?

एक घण्टे सुनने के बाद पूछो, समझे कुछ? ऐ... चिमनभाई! तुम्हारे बड़े साला को पूछा था। एक भी कुछ समझ में नहीं आया। परन्तु पूरे दिन मजदूरी की हो, मजदूर बड़ा कमाना... कमाना... कमाना... निवृत्त न हो और धर्म के नाम से गया हो तो सुने एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, मिच्छामि दुक्कडम, लो! ऐसा सुना हो। ऐ... ताराचन्दभाई! परन्तु जीव किसे कहना, जीव की पर्याय में मृत्यु किसे होती है, किस प्रकार से होती है, जीवता जीव किसे कहना, इसकी खबर बिना (धर्म कहाँ से हुआ)?

यहाँ तो कहते हैं कि एक समय की अवस्था में अनन्त-अनन्त पदार्थों को जानने का पर्याय का स्वभाव है, उसे न माने तो उसने आत्मा के व्यवहार आत्मा को मार डाला। समझ में आया? और ऐसी एक समय की पर्याय में अनन्त द्रव्य ज्ञात हों, इतनी ताकतवाली पर्याय को माने, परन्तु भगवान पूरा तो उससे अनन्तगुणी कोई दूसरी महान चीज़ है, उसे न माने तो पूरे द्रव्य के जीवत्व का उसने नाश किया। आहाहा! शब्द ऐसे भी आते हैं न? जीते जी मार डाला, ऐसा आता है न हिन्दी में? हिन्दी में गद्य में। समझ में आया? ऐसी वस्तु है।

अरे! इसके ख्याल में तो ले, इस बात का कभी ख्याल किया भी नहीं। महान

पदार्थ बड़ा, जिसके ज्ञान की एक दशा के अंश में जिसे तीन काल, तीन लोक ज्ञात हो जायें। उसके एक गुण के एक अंश में (ज्ञात हो जाये), ऐसे अनन्त गुण का पूरा पिण्ड प्रभु द्रव्य। आहाहा! समझ में आया? जिसे एक समय की अवस्था की स्वीकृति हो, वह पुण्य-पापवाली, अमुकवाली, ऐसा नहीं, एक समय में इतना जानने की इतनी स्वीकृति हो तो भी त्रिकाली द्रव्य की स्वीकृति न आवे तो द्रव्य का स्वरूप जैसा है, वैसा इसकी समझ में न आने से उसे सम्यग्दर्शन का स्वरूप परिणमता नहीं है। समझ में आया?

यहाँ (इस) भंग में तो कहते हैं कि भाई! तू कदाचित् एकदम बड़ा चढ़ जाये कि ओहोहो! वस्तु... वस्तु... वस्तु... तो एकरूप... एकरूप... एकरूप... हो। ऐसी तुझे दृष्टि हुई हो, परन्तु वर्तमान ज्ञान में अनन्त जानने की सामर्थ्य का अंश है, उसे न स्वीकार करे तो उस व्यवहार का नाश होने से निश्चय का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? यह व्यवहार और निश्चय की बात है, भाई! आहाहा! अरे! कहाँ का कहाँ विवाद (करे)। बहुत हुआ, प्रभु! तेरे लिये तो बहुत हुआ, भाई! तू इतना बड़ा! अरे! तेरी बातें करते हुए भगवान भी पहुँच न सके। आहाहा!

जो पद झलका श्री जिनवर के ज्ञान में
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो,
उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?

सर्वज्ञ भगवान की पर्याय प्रगट होकर वाणी में ऐसा पूरा न आवे तो जिसे अज्ञान दशा वर्तती है, यह वह वाणी उसकी कैसी होती? कहते है। उस वाणी में तो उसके तत्त्व का अंश भी नहीं आता।

उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?

आगे बढ़ते-बढ़ते ले गये। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, अरे! वह '**पशुः ज्ञानं न इच्छति**' अरे! एकान्त माननेवाला **ज्ञानमात्र**

जीववस्तु को नहीं साध सकता है—अनुभवगोचर नहीं कर सकता है। पर्याय में अनेकपना न माने.... समझ में आया? और अकेला द्रव्य माने तो परिणति ही नहीं हो सकती। ज्ञान की परिणति ही नहीं हो सकती। क्योंकि, परिणति में ही अनेकपने का ज्ञान है। अनेकपने की ज्ञान परिणति ही एकपने को पहुँच जाती है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, यह विश्राम का वाक्य है।

ज्ञानमात्र भगवान आत्मा को **नहीं साध सकता है—अनुभवगोचर नहीं कर सकता है। कैसा है ज्ञान? 'स्फुटं अपि' प्रकाशरूप से प्रगट है यद्यपि।** भगवान वस्तु तो प्रगट... प्रगट है और उसमें ज्ञान की पर्याय भी अनेक को जाननेरूप से व्यक्त-प्रगट है। समझ में आया? तथापि एक समय की पर्याय का प्रकाशपना एक समय में ज्ञान ज्योति के पर्यायरूप से प्रगट है, व्यक्त है, प्रगट है जिसमें अनेकपना ज्ञात होता है।

कैसा है एकान्तवादी? 'प्रक्षालनं कल्पयन्' कलंक प्रक्षालने का अभिप्राय करता है। अरे! यह अनेक कैसे ज्ञात होता है? यह अनेक जानना, (उसे) कलंक मानता है। समझ में आया? दर्पण में विष्टा और कोयला तो बाहर रह गये। (ऐसे देखे वह कहे) क्या है? वहाँ कहाँ विष्टा है? बाहर में ऐसे ढ़ेर विष्टा का दिखता है न? वह तो दर्पण की अवस्था है। नाक मरोड़े। परन्तु किसका नाक मरोड़ता है? क्या हो गया तुझे? वहाँ विष्टा है? वह तो दर्पण की स्वच्छ अवस्था देखता है परन्तु वह बाहर की नाक सिकोड़ने की आदत पड़ गयी न, (इसलिए) ऐसा देखे वहाँ उं..हूं.. (करता है)। समझ में आया? ऐसी दूसरी चीज़ की ग्लानि आने से एक पर्याय में अनेकपना भासित हुआ, उसकी उसे ग्लानि आती है। पर्याय में ग्लानि आती है। अनेकपने की—अनेक बाहर की चीज़ (की) भले ग्लानि (आवे) परन्तु वह अनेकपना रह गया बाहर और उसकी पर्याय में तो अनेक को जाननेरूप उसका अपना सहज परिणमन हुआ। (तो) उसकी उसे (ग्लानि आती है कि) अनेक कैसे? मैं तो अकेला होऊं, अनेक कैसे? मैं अकेला होऊँ। उससे आँखें मूँदना चाहता है। समझ में आया? मैं एक में दो कैसे? यह अनेक कैसे? परन्तु तू एक ही है, सुन न! आहाहा! समझ में आया?

यह ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, वह तो तेरी ज्ञान अवस्था का अंश ज्ञात होता

है, वह चीज़ नहीं ज्ञात होती। आहाहा! समझ में आया? इस ज्ञान की वर्तमान दशा में अनेकपना का ज्ञान (हो) वह तो तेरा अंश पर्याय वह ज्ञात होती है। उसकी इसे ग्लानि (आती है)। एकरूप से रहना चाहता है न, (इसलिए) अनेकपने के ज्ञान की इसे ग्लानि लगती है अर्थात् इसे कलंक लगता है, ऐसा। निकाल डालो।

कितने ही ऐसे होते हैं न? अमुक बात होती हो तो उं..हूं... (करे)। तो क्या है परन्तु तुझे? बात सुनने में, ज्ञान में क्या घुस गया बात में? समझ में आया? ऐ... न्यालभाई! यह बात आवे न कोई कोई? तो उं..हूं... (करे)। क्या है? पागल हुआ, क्या हुआ पागल? बात—शब्द वह तो जड़ की पर्याय है। वह तो तेरी ज्ञान पर्याय में ज्ञात होते हैं। उसमें तुझे जानने का निषेध करके अन्ध होना है? क्या करना है तुझे? समझ में आया या नहीं?

वे थे न? भाई! स्त्री को देखे तो आँख फोड़ डाल। उस आँख का क्या दोष है? वह तो जड़ है। और ज्ञान की पर्याय जो अवस्था है, उसमें तो अनेक ज्ञात हो, वह तो उसका पर्यायधर्म है। उस पर्यायधर्म को तुझे मूँद देना है? अन्ध करना है? क्या करना है तुझे? समझ में आया? ऐसे स्त्री दिखाई दे, वह तो रागभाव से देखना नहीं, ऐसा है। परन्तु ज्ञान में ज्ञात हो, उसमें दोष कहाँ आ गया? आहाहा! ....क्या कहा? ऐसे स्त्री और उसके अवयव (दिखे)। तो क्या है? क्या है? खबर है तुझे? वे दिखते हैं? वह तो तेरे ज्ञान की पर्याय दिखती है, ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है। किसकी ग्लानि आयी तुझे? समझ में आया? वह तो ज्ञेय है। ज्ञेयाकार परिणमित ज्ञान ज्ञात होता है। उं... हूं... हूं.... (करे)। परन्तु क्या हो गया (तुझे) ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाधा ही है इसे आत्मा की, आत्मा समझना नहीं इसकी बाधा (नियम) है इसे। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! भगवान ने सात वाड़ टालने का कहा है न? परन्तु सुन, वह तो राग की अपेक्षा छोड़ने की अपेक्षा से बात है। उसे जानना, उसमें भी राग आ जाता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न! ज्ञेयाकार परिणतरूप ज्ञान की पर्याय है। समझ में आया? परन्तु ऐसा गृद्धि भाव हो गया हो न! कि उसे ऐसे देखने से उसे ऐसा होता है कि अर र र र! क्या हैं परन्तु? केवलज्ञानी की पर्याय तीन काल-तीन लोक को देखती है, ले! समझ में आया? यह विषयभोग की वासना के विकल्प की जाति कैसी है, उसे भगवान जानते हैं और उसके अवयवों के शरीर के एक-एक रजकण की पर्याय भगवान के ज्ञान में ज्ञात होती है। जानना, वह दोष हो गया? शशिभाई!

ज्ञान की पर्याय जाने, वह तो उसका स्वभाव है। उस पर्याय में अनेकपना ज्ञात हो जाता है, इसे—भाईसाहब को सुहाता नहीं। निकाल डालो। निकाल डालकर क्या (करना है)? दर्पण में से विष्टा और कोयला दिखाई दे, उसे निकालना चाहे तो दर्पण चला जायेगा। समझ में आया? बहुत भाई! यह तो सर्वज्ञ भगवान का अनेकान्त तत्त्व ऐसा सूक्ष्म और अलौकिक है। सूक्ष्म और अलौकिक वापस दोनों। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **एकान्तवादी? 'प्रक्षालनं कल्पयन्'** यह मेरी पर्याय में, यह सब क्या ज्ञात होता है? यह सब कहाँ ज्ञात होता है? बापू! तुझे तो ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है। परन्तु इस पर्याय में एकरूप नहीं और अनेक क्या? वह अनेकपना परिणमना, वह तो ज्ञेयाकार परिणमने का ज्ञान का पर्याय स्वभाव है। प्रकाश स्वभाव क्या न प्रकाशित करे? प्रकाशा स्वभाव क्या न प्रकाशित करे? कि प्रकाश, वह तो पर्याय अपनी हुई है। वह अज्ञानी को कलंक लगता है। समझ में आया? कान में लकड़ी नहीं डालते? सुनते हुए लकड़ी डाले। परन्तु सुनना, वह तो ज्ञेय है। वह तो ज्ञान की पर्याय का जानने का स्वभाव है। लकड़ा यहाँ डालकर क्या करना है यहाँ तुझे। पर्याय में तूने लकड़ा डाला मिथ्यात्व का।

एक आया था न? एम.ए. पढ़ा हुआ, हों! पालनपुर का। एम.ए. पढ़ा हुआ, हों! (संवत्) १९९० के वर्ष में आया था। होशियार व्यक्ति, जवान व्यक्ति ३५ वर्ष का।... पहना हुआ। थोड़े मूंग खाये। अरे! परन्तु तुम क्या करके आये? तुम्हारे साथ बातचीत करनी है। यह तत्त्व, वह कहीं ऐसा है? हठ करके बोलना नहीं। परन्तु बोलना और न

बोलना वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया? वह ज्ञान की पर्याय उस समय ऐसी ही जानने की होती है। जो बोलने की भाषा हो, ऐसा ही ज्ञान की पर्याय को जानने का आवे। तो क्या निकाल डालना है तुझे वह जानने का? समझ में आया इसमें? आहाहा! मिथ्यात्व की सूक्ष्म शल्य कैसे रहती है, उसके कण की यह बात करते हैं। समझ में आया इसमें?

कहते हैं कि अरे! '**प्रक्षालनं कल्पयन्**' प्रभु! तू चैतन्य का पर्वत प्रभु द्रव्य है न! द्रव्य तुझे मानना है और इस ज्ञान के अंश का पूरा अंशी मानना और अंश की दशा को मानना नहीं और उस अंश में अनेक ज्ञात हो, उन्हें धो डालना चाहता है। समझ में आया? वस्त्र में काला, सफेद रंग हो तो धोवे परन्तु सफेद रंग को धोकर करना क्या है तुझे अब? यह दाग-बाग पड़ते हैं न सब्जी के? यह सब्जी का नहीं पड़ता? फिर फिटकड़ी लगावे, साबुन से ऐसे लाल हो जाये, और यह धूप में वहाँ सूख जाये। वह गया परन्तु यह सफेद कहीं जाता नहीं। परन्तु सफेद तो उसका पर्याय धर्म है। उसी प्रकार ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा की वर्तमान ज्ञान की दशा में अनेक को, अनेकरूप से ज्ञेय है, उसे अपनेरूप से परिणमकर जानना, अपनेरूप जानना, वह पर्याय है। ऐसा धर्म, उसे प्रक्षालन करके धो डालकर क्या करेगा? कह। सफेद को धोकर क्या रहेगा? दर्पण को धोकर क्या रहेगा? दर्पण में दिखाई दे, विष्टा और वह दिखाई दे न? विष्टा नहीं कहीं, (वह तो) दर्पण की दशा है। धो डालेंगे। (तो) रहेगा क्या परन्तु? आहाहा! समझ में आया? शशिभाई!

कहते हैं, '**ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति**' **जितनी ज्ञेयवस्तु है, उस ज्ञेय को जानते हुए हुआ है, उसकी आकृतिरूप ज्ञान, ऐसा जो कलंक उसके कारण अशुद्ध हुआ है, ऐसी है जीववस्तु...** ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में अनेकपने को जानने की पर्याय (हो), उसे अज्ञानी कलंक मानकर, मेचक मानकर, मलिन मानकर ऐसी वस्तु को मानता है, परन्तु वस्तु ऐसी मानता है, वैसी नहीं। कलंक नहीं, वह तो ज्ञान पर्याय का धर्म है, अंशरूप का ऐसा स्वभाव है। इतने अंश में इतना कितना? एकरूप क्यों नहीं? परन्तु एकरूप न रहना और ज्ञान में ज्ञेय के परिणमनरूप परिणमना, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसी वस्तु को अज्ञानी मानता नहीं।

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय को जानता है ज्ञान, उसको एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव स्वभाव नहीं मानता है,... देखो! समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान की (एक) समय की पर्याय में ज्ञेय को जाने, ऐसा जानने से **ज्ञान, उसको एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव स्वभाव नहीं मानता है,...** वह स्वभाव ऐसा होगा? अनेक को जानना स्वभाव होगा? अरे! अनन्त को जानना स्वभाव होता है, सुन न! यहाँ अनेक अर्थात् अनन्त कहना है। वह अनेक अर्थात् दो से लगाकर अनन्त को अनेक कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

एक समय में अनन्त को जाने, वह तो ज्ञान का पर्याय स्वभाव सहज धर्म है। आहाहा! इतनी स्वीकृति न आवे और पूरा द्रव्य बड़ा... बड़ा... ओहोहो! ऐसा माने, उसे कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि को वस्तु की सच्ची समझ नहीं है। समझ नहीं, इसलिए सम्यक्‌रूप से वस्तु परिणमेगी नहीं, मिथ्यारूप से परिणमेगी। आहाहा! समझ में आया? जीव की दया उसे कहा जाता है और जीव की हिंसा उसे कहा जाता है। अर्थात् भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण वस्तु और एक समय में ज्ञान की अवस्था अनन्त को जाने, इस प्रकार पर्याय को माने और वस्तु को त्रिकाली को जाने, उसने आत्मा के जीव की दया अर्थात् जैसा है, वैसा रखा। उसने जीव की अपनी दया पालन की, पर की तो कौन पाल सकता है? कहो, जुगराजजी! अपनी करे, दूसरे पर की कौन कर सकता है? कर कौन सकता है तीन काल में? परजीव की दया पाले कौन और हिंसा करे कौन? वह तो स्वतन्त्र पदार्थ है। उसकी पर्याय उससे होती है, उसे दूसरा करे कौन? समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई!

कहते हैं, अज्ञानी उन अनेक ज्ञेय को जानने का पर्यायस्वभाव... यह जानने की बात, हों! पर को (अपना) मानने की बात नहीं। पर को मेरा माने, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, उसकी तो बात यहाँ अनेकान्त में ली नहीं। समझ में आया? यह तो कल बहुत बात की थी। मेरी ज्ञानपर्याय, ज्ञान की पर्याय परिणमती है न? परिणमती है तो पर को भी परिणमावे। एकरूप पर्याय रहती नहीं तो एकरूप नहीं रहनेवाला दूसरे को भी एकरूप न रहे, ऐसा परिणमावे। नहीं; यह तो तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? और अनन्त ज्ञेय हैं, इसलिए भिन्न-भिन्न काल में परिणमते भिन्न-भिन्न अवस्था होती है

न? इसलिए मेरी पर्याय भी उसी प्रकार से भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए उसके कारण से यहाँ ज्ञान परिणमता है, (ऐसा मानता है) वह मूढ़ है। ऐसा भी नहीं है। परन्तु ज्ञान का अनन्तरूप परिणमने की जानने की पर्याय, उसका धर्म है, उसमें अनन्तपने को निकाल डालना चाहे तो वह वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। इसलिए उसकी दृष्टि में मिथ्यात्व आने से उसे सम्यक् का (परिणमन नहीं होता)। स्वरूप की समझ होगी नहीं और स्वरूपरूप परिणमेगा नहीं।

एकान्तवादी का अभिप्राय ऐसा क्यों है? देखो! अब कहते हैं। ऐसा माननेवाले के अभिप्राय को ऐसा क्यों आया? ऐसी भूल क्यों आयी? कि '**एकाकारचिकीर्षया**' यह उसका उत्तर देते हैं। **क्योंकि समस्त ज्ञेय के जानपने से रहित होता हुआ निर्विकल्परूप ज्ञान का परिणाम...** अर्थात् क्या? एकरूप परिणमन करना चाहता है। यह अनेकपना होता है, उस परिणमन को करना नहीं चाहता। एक आकार अर्थात् ज्ञान की पर्याय में एकरूप रहना चाहता है और एकरूप रहना, ऐसा पर्याय का धर्म है ही नहीं। समझ में आया? यह श्लोक तो भाई! यह व्याख्यान में तो पहले-वहले वाँचन होता है। यह कलश प्रकाशित हुए है पहले न? अब ३१-३१ वर्श हुए अब तो कुछ इसे समझने की तैयारी तो रखते होंगे या नहीं?

कहते हैं, यह तेरी जितनी पूँजी अंशवाली और जितनी अंशीवाली है, उस प्रकार से दो की जब तक यथार्थ दृष्टि और ज्ञान न हो, तब तक वस्तु जैसी है, वैसा उसे परिणमन नहीं होता। समझ में आया? अब वस्तु ही ऐसी है, कि एक समय में भगवान पूर्णानन्द, पूर्ण ज्ञान और एक समय की पर्याय में अनन्त को जानना, ऐसी (पर्याय)। अब यह एक समय की पर्याय को अनेक को जानना (होता है)। उसे एकाकार करना चाहता है। एक स्वरूप (करना चाहता है)। अनेक जानना, उसे एकरूप करना चाहता है। ज्ञान की पर्याय में अनेक जानना (होता है), उसे एक करना चाहता है। इस कारण से भूल गया है, वस्तु को भूल गया है। समझ में आया? ऐ... चिमनभाई! तुम्हारे वहाँ उसमें कुछ आता न हो, आवे यह? सब गप्प ही गप्प चलती हो। यह मानना और ऐसा करना और यह करना। ... न? क्या कहलाता है तुम्हारे? यह तो बारीक-बारीक माप है पूरे। आहाहा!

भाई ! वस्तु जैसी है, वैसा ज्ञान होना चाहिए या नहीं ? ज्ञान का अर्थ क्या है ? प्रतिभास। किसका ? कि जैसी चीज़, उसका अन्दर भास होना। तब वस्तु वस्तुरूप से अखण्ड एकरूप है और ज्ञान पर्याय में अनेक का जानना, वह उसका पर्यायधर्म है। इस प्रकार ज्ञान में न आवे, तब तक वस्तु को ज्ञान में यथार्थ लिया नहीं। समझ में आया ? पर को जानने का यहाँ नहीं रहा। यहाँ तो परसम्बन्धी का अपनी पर्याय का धर्म उसे ज्ञान में आया। आहाहा !

कहते हैं, '**एकाकारचिकीर्षया**' उन **समस्त ज्ञेय के जानपने से रहित होता हुआ...** अर्थात् क्या ? एकाकार करना चाहता है। शब्द तो इतना लेना है, '**एकाकारचिकीर्षया**'। अब उसे विशेष समझाने के लिये (कहते हैं) **समस्त ज्ञेय के जानपने से रहित होता हुआ...** अर्थात् ? बहुत ज्ञेय को जानने का जिस पर्याय में अनेकपना है, उससे रहित होता हुआ। नास्ति से बात ली है **निर्विकल्परूप ज्ञान का परिणाम...** ज्ञान को एकरूप करना चाहता है। अनेकपने में हटकर एकरूप करना चाहता है। समझ में आया इसमें ? है तो ज्ञान के परिणाम वापस यहाँ लिये हैं।

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण वस्तु, उसकी एक समय की पर्याय में '**एकाकारचिकीर्षया**' '**एकाकारचिकीर्षया**' का अर्थ पहले नास्ति से किया था कि अनेकपने से हटकर एकपना करना चाहता है। आहाहा ! समझ में आया ? **ज्ञान का परिणाम... 'चिकीर्षया' जब ऐसा होवे तब ज्ञान शुद्ध है,...** ऐसा ज्ञान हो तो शुद्ध हो, ऐसा अभिप्राय अज्ञानी रखता है। आहाहा ! तत्त्व, वह तत्त्व है न ? समझ में आया ? **ऐसा है अभिप्राय एकान्तवादी का।** इसके लिये ऐसा करना चाहता है, कहते हैं। ज्ञान की पर्याय में अनेकपना है, उसे दूर करके एकाकार '**चिकीर्षया**' एकपना करना चाहता है। समझ में आया ? **जब ऐसा होवे, तब ज्ञान शुद्ध है,...** ऐसा करना चाहता है। समझ में आया ?

यह सब कितनी ही बात तो कितनों को नयी लगेगी, हों ! परन्तु क्या है इसमें ? अपना जैनपना क्या आया इसमें ? छह काय की दया और रात्रिभोजन नहीं करना और कन्दमूल नहीं खाना, यह कहाँ आया इसमें ? अरे ! सुन तो सही ! कौन पर को खाये और

कौन न खाये, इसकी बात ही कहाँ है, यहाँ आत्मा में। ऐई! यह सब भाई! पुराने हैं मारे वहाँ, बड़े स्तम्भ। ऐसी कहाँ से लगायी। यह जैन की बात होगी? वहाँ तो ऐसा माने, छह काय नहीं मारना, ऐसा नहीं मारना। एकेन्द्रिय के अनन्त जीव हैं, निगोद के जीव हैं। अरे! भगवान! सुन तो सही! उसे मारे डालूँ, ऐसा अभिप्राय है, और उसे मार सकता हूँ, यही बड़ा पाप है। और जिला सकता हूँ, ऐसा तेरा भाव—अभिप्राय है, वही बड़ा पाप है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय में अनेकपना (ज्ञात होता है), वह अनन्त जीव ज्ञेय है, अनन्त निगोद है, ऐसा ज्ञात हुआ ज्ञान, उस अनेकपने में से एकपना करना चाहता है, वही यह मिथ्यादृष्टि जीव की पर्याय का नाश (करता है)। आहाहा! समझ में आया? उसके प्रति एक-अनेकरूप ज्ञान का स्वभाव साधता है सम्यग्दृष्टि। अब इसके सामने सम्यग्दृष्टि साधता है। वस्तु से एक है और पर्याय से अनेक है। किस प्रकार साधता है—यह स्पष्टीकरण करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण ४, रविवार, दिनांक-१२-१२-१९६५, कलश-२५१-२५२, प्रवचन-२६७

समयसार कलश, स्याद्वाद अधिकार, २५१वाँ कलश है, २५१ चलता है। ऐसा पाँचवाँ श्लोक, बीच में आया है देखो! **ऐसा है अभिप्राय एकान्तवादी का।** यहाँ आया है। **उसके प्रति एक-अनेकरूप ज्ञान का स्वभाव साधता है, स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि...** क्या कहा? यह आत्मा वस्तु से एक है। यह स्व तत्त्व की अपेक्षा चलता है। एक वस्तु द्रव्य से एक है और उसकी ज्ञानपर्याय में अनेक चीज़ें ज्ञात हो, ऐसा पर्याय का स्वभाव—धर्म है। एक वस्तु एकाकार द्रव्य है, एक ही वस्तु है, ऐसा मानकर पर्याय में अनेकपने का ज्ञान होने से वह मैल है, अशुद्धता है, (ऐसा अज्ञानी मानता है)। एकपना ज्ञान का करना चाहे, उसमें ज्ञेयों का अनेकपने का ज्ञान (हो), उसे निकाल डालना चाहता है, वह मिथ्यादृष्टि एकान्ती अनेक ज्ञान का पर्याय धर्म है, उसे मानता नहीं। क्या कहा सूक्ष्म? पर के साथ यहाँ कुछ सम्बन्ध की बात नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कहीं सम्बन्ध आवे व्यवहार से। आस्रव का तत्त्व उसकी पर्याय में है। समझ में आया? जीवद्रव्य की व्याख्या करनी हो, जीवद्रव्य। छह द्रव्यरूप से (व्याख्या करनी हो) तो पाँच द्रव्य निकालकर जीव द्रव्य में पुण्य-पाप, आस्रव सहित का द्रव्य, उसे जीवद्रव्य कहा जाता है। समझ में आया?

यहाँ तो तत्त्व की—नौ तत्त्व की व्याख्या की बात है। समझ में आया? नौ तत्त्व में यह ज्ञायकस्वरूप जो चिद्स्वरूप आत्मा, उसकी पर्याय में—ज्ञान की पर्याय में वे आस्रव आदि के विकल्पों का ज्ञान वर्ते और इसलिए वह ज्ञान की पर्याय अनेकरूप परिणमने का उसका स्वत: अपने कारण से (स्वभाव धर्म है)। वह अनेक है—रागादि अनेक है, इसलिए ज्ञान में अनेकपना होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

यह ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है कि अनेक ज्ञेयों को (जानते हुए) स्वयं ज्ञेयाकाररूप से परिणमने का स्वत: स्वभाव है। उसे न मानकर, यह क्या दिखता है? यह सब दिखता है, वह ज्ञान की पर्याय परन्तु उसमें यह दिखता है और यह राग है और

यह है, ऐसा जानकर उसके अनेकपने का ज्ञान (होता है, उसे) मैल मानता है। ज्ञान एकरूप रखना चाहता है और अनेकपने का ज्ञान (हो), उसे मैल मानता है। समझ में आया? इसलिए वह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में अनेकपने का ज्ञान (होता है), इस प्रकार से आत्मा को साध नहीं सकता। इसलिए आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता। उसके प्रति अब कहते हैं।

एक-अनेकरूप ज्ञान का स्वभाव साधता है, स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि जीव... यहाँ से शुरु होता है। समझ में आया? '**अनेकांतविद् ज्ञानं पश्यति**' '**अनेकांतविद्**' **स्याद्वादी जीव...** अनेकान्त की व्याख्या स्याद्वादी की, देखा? वरना अनेकान्त (अर्थात्) तो द्रव्यरूप एक और पर्यायरूप अनेक, ऐसा अनेकान्तपना यहाँ सिद्ध करना है। वह अनेक उसका स्वरूप ही ऐसा है। वस्तुरूप से द्रव्य एक, ज्ञान की पर्याय में अनेक ऐसी वस्तु। एक-अनेक। एक है, वह पर्याय से अनेक है। और अनेक है पर्याय से, वह द्रव्य से एक है। ऐसा यहाँ अनेकान्त तो उसका स्वभाव है। उसे यहाँ स्याद्वाद जीवरूप से लिया है।

स्याद्वादी अर्थात् अपेक्षा से माननेवाला, ऐसा लेना है। समझ में आया? वरना स्याद् अर्थात् कथंचित्, वाद अर्थात् कहना। ऐसे वस्तु से एक है, पर्याय अनेक है, ऐसा वाद अर्थात् कथन में कहना। यहाँ तो स्याद्वाद अर्थात् वस्तु एक स्वरूप भगवान पूर्णानन्द एक द्रव्य है, पर्याय में अनेकपने के ज्ञानरूप अनेक है। ऐसा साधनेवाले को अनेकान्त का जाननेवाला और उसे स्याद्वादी कहा जाता है। समझ में आया? देखो! यहाँ तो '**अनेकान्तविद्**' को स्याद्वादी जीव कहा है।

यह **ज्ञानी अर्थात् ज्ञानमात्र जीववस्तु को साध सकता है...** '**पश्यति**' अर्थात् ज्ञान चैतन्य वस्तु मैं महान पदार्थ हूँ। वह वस्तु से एक है परन्तु उसकी एक वर्तमान ज्ञान की पर्याय अनेकपने का—ज्ञेय को जाननेरूप परिणमा, वह भी मेरा अंश है। अनेकरूप परिणमने पर भी मैं ज्ञान मिटकर राग और पर हुआ नहीं। समझ में आया? अनेकरूप ज्ञान की पर्याय होने पर भी मैं कहीं रागरूप, कर्मरूप हुआ नहीं। वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव व्यवहार के विकल्प उठें, उन्हें जानना, ऐसा पर्याय का धर्म है। उसे व्यवहाररूप से जानकर, त्रिकाल द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेता है। कठिन बात, भाई! ऐसा धर्म भारी कठिन! क्या है?

यह नजर करनेवाला यह नजर की बातें करते हैं। समझ में आया? भाई! नजर करनेवाली पर्याय है और नजर करनेयोग्य वस्तु त्रिकाल है। वह नजर करनेवाली पर्याय अनेकरूप परिणमी, तो भी उसका ज्ञानपने का एकरूप टला नहीं। वह कहीं रागरूप या पररूप हुई नहीं। समझ में आया? वह ज्ञान और एकपने के भान द्वारा एक ऐसे त्रिकाली स्वरूप को साधता हुआ, उसमें दृष्टि करता हुआ स्वरूप का अनुभव यथार्थ कर सकता है। ओहोहो! यहाँ तो अभी कितने विवाद ओहोहो! भगवान! तेरी सूक्ष्मता की पर्याय की अनेकता और सूक्ष्म, वह महा द्रव्य सूक्ष्म, सूक्ष्म। जिसने अन्तर में यह स्वभाव है, ऐसा कभी उसने लक्ष्य में लिया नहीं। समझ में आया?

धर्मी जीव अपनी वर्तमान पर्याय के अंश में अनेकपने का ज्ञान होने पर भी मैं राग और पुण्य और पररूप अनेक नहीं हो गया। मैं तो ज्ञान की पर्याय में अनेकपने का ज्ञान होता है, वह तो मेरी पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? ऐसा साधकर एकरूप त्रिकाल द्रव्य है, उसमें वह दृष्टि लगाता है। गजब धर्म, भाई!

'अनेकांतविद् ज्ञानं पश्यति' अर्थात् वस्तु को एक समय में मेरा ज्ञान अनेकपनेरूप परिणमा, तथापि वह रागरूप, कर्मरूप हुआ नहीं। ऐसी अपनी निर्मल पर्याय में अनेकपने का भास होने पर भी, उस पर्याय को यह पूरे त्रिकाल द्रव्य के ऊपर लक्ष्य देने से वस्तु को साबित करके अनुभव कर सकता है। समझ में आया?

कैसा है ज्ञान? 'स्वतः क्षालितं' सहज ही शुद्धस्वरूप है। भगवान ज्ञान की पर्याय निर्मल, वह स्वतः शुद्ध ही है। वर्तमान ज्ञान, हों! उस ज्ञान की वर्तमान दशा, राग, पुण्य और शरीर आदि को जानने पर भी; उसे जानती है—ऐसा कहना, यह भी व्यवहार है, ज्ञान की पर्याय में वह अनेक प्रकार का ज्ञेय है, उसरूप अपना ज्ञान अपनेरूप परिणमता है। ऐसा जो ज्ञान... समझ में आया? कहते हैं कि शुद्ध स्वरूप है। उस ज्ञान की दशा में विकार या राग नहीं है। समझ में आया?

'बिजली के झपकारे में मोती पिरो लो' उसे कितनी उग्रता होगी? भगवान आत्मा धीर होकर, धीर होकर उसकी ज्ञान की पर्याय में (अनेक को जाने)। अभी द्रव्य एक ओर रखो। वर्तमान ज्ञान में अनेकपना जानता है, वह अनेकपने का परिणमनरूप

ज्ञान एकरूप है। ऐसे एकरूप में स्वतः शुद्धता है। उसमें राग-द्वेष या पुण्य-पाप आये नहीं। समझ में आया? वर्तमान ज्ञान की दशा में शरीर, वाणी, कर्म सम्बन्धी का ज्ञान हो परन्तु उसमें—ज्ञान की पर्याय में वे आये नहीं। और ज्ञान की पर्याय—वर्तमान अवस्था वे विकल्प, दया, दान के उठें, उसमें वह ज्ञान की पर्याय गयी नहीं। समझ में आया? वह ज्ञान की वर्तमान ज्ञेयाकार परिणति ज्ञानस्वरूप, वह कहीं ज्ञेयस्वरूप में गयी नहीं तथा वह ज्ञेय जो होनेयोग्य हैं, वे कहीं ज्ञान की पर्याय में एकमेक आये नहीं। ओहोहो!

ऐसी जो ज्ञानपर्याय। '**स्वतः**' क्या (कहते हैं) ? '**क्षालितं' सहज ही शुद्धस्वरूप है।** वह पर्याय स्वभाव से शुद्ध ही है। समझ में आया? यह पुण्य-पाप के विकल्प का ज्ञान, वह ज्ञान सहज विकल्प बिना का शुद्ध ही है। गजब बात, भाई यह! ओहो! वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है, भाई! यह वस्तु जिस प्रकार से है, उस प्रकार से भासन न हो और धर्म हो, यह कैसे बने? समझ में आया? आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द एकरूप है, वह भी उसका स्वरूप है और वर्तमान ज्ञान की अवस्था में अनेक को जाने, वह भी उसका अपना सहज स्वरूप शुद्ध है। वह अनन्त को जाने, इसलिए पर्याय अशुद्ध और मैली है, ऐसा नहीं है। ऐसी निर्मल पर्याय द्वारा वस्तु को साधता है। वस्तु अखण्ड आनन्दकन्द के ऊपर दृष्टि देने से पर्याय में अनेकपने के ज्ञान से परिणमित शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्तिरूप परिणमता है। आहाहा! समझ में आया?

सहज ही शुद्धस्वरूप है। स्याद्वादी ज्ञान को कैसा जानकर अनुभवता है? देखो! सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, धर्मी जीव इस आत्मा को कैसा जानकर अनुभव करता है? **'तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायैः अनेकतां उपगतं परिमृशन्' 'तत्' ज्ञानमात्र जीववस्तु 'वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां' अनेक ज्ञेयाकार की अपेक्षा पर्यायरूप अनेक है,...** भगवान ज्ञान की अवस्था में अनेक जाननेयोग्य पदार्थ की अपेक्षा से अपनी अपेक्षा में पर्यायरूप परिणमता वह ज्ञान अनेक है। समझ में आया? ऐसा है। जमुभाई! यह कहीं 'आंकडिया' में सुनाई नहीं देता।

मुमुक्षु : अब तो जगजाहिर हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगजाहिर हो गया? आहाहा! अरे! भगवान! बापू! यह तो धीर का मार्ग है। समझ में आया?

कहते हैं, भाई! तुझे वस्तु साधनी है न? वस्तु साधनी है अर्थात् कि मोक्षमार्ग प्रगट करना है न? भगवान आत्मा पूरी वस्तु है, वह तो एकरूप है। उसकी ज्ञानपर्याय में, अहो! राग से पृथक् किया हुआ ज्ञान राग को जानता हुआ, राग से पृथक् किया हुआ ज्ञान (परिणमता है)। समझ में आया? शुभाशुभ विकल्प और शरीर, कर्म को पृथक् करता ज्ञान, उसे जानता हुआ परन्तु उससे पृथक् करता ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की वर्तमान अवस्था में अस्तित्वरूप से रहा हुआ ज्ञान, पर को उस प्रकार जैसा है वैसा जानता हुआ पर से पृथक् करता हुआ ज्ञान, अनेकपना है, ऐसा निर्णय करके वस्तु के स्वरूप को एकपने साधता है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा विचारने का समय रहता है। नहीं? समझ में आया ऐसा यहाँ आता है या नहीं?

'तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायैः' 'पर्यायैः अनेकतां उपगतं परिमृशन्' भगवान आत्मा, यह ज्ञान का महा गोला पूरा ध्रुवतारा, ध्रुव वस्तु एकरूप है। उसकी ज्ञान पर्याय... अहो! द्रव्य तो पर्याय से पृथक् है, एक पर्यायरूप नहीं, परन्तु पर्याय है, वह राग-द्वेष से पृथक् की है। समझ में आया? जिस पर्याय में—ज्ञान की अवस्था के अस्तित्व में अनेक विकल्पों सम्बन्धी अपना ाान अपनेरूप परिणमित हुआ है, वह राग से पृथक् हुई पर्याय अनेकपने के ज्ञानरूप परिणमने पर भी वह शुद्ध ही है, शुद्ध है।

यह विचित्ररूप से परिणमा है, तथापि **'अविचित्रतां' तथापि द्रव्यरूप एक है,... 'अविचित्रतां'** क्या कहा? पर्याय में अनेकपने का ज्ञान (होने) पर भी वस्तुरूप से एक है। एक व्यक्ति कहे, यह तो आत्मा... आत्मा... बात करते थे। यहाँ क्या कहते हैं? फिर भागे। कोई कहता था। भाई! यहाँ सुनो तो सही, थोड़ा सुनो तो सही। यह भाई कहते थे, चाँदमलजी के भाई (कहे), सुनो तो सही। परन्तु आत्मा... आत्मा (करते हैं)। बापू! भाई! आत्मा अर्थात् कि मोक्ष, आत्मा अर्थातृ मोक्ष का कारण और संवर-निर्जरा का कारण, धर्म का कारण। अब आत्मा-आत्मा करना नहीं (तो) तुझे क्या करना है? कह। आहाहा! आत्मा अर्थात् परमात्मा और आत्मा अर्थात् मुक्ति के कारणरूप वस्तु और

आत्मा अर्थात् उसके मोक्ष के कारणरूप संवर-निर्जरा का कारण। आहाहा! अरे! ऐसे आत्मा के लिये उकताहट आवे, तब किसकी बात करनी है तुझे अब? कह। कहो, जुगराजजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके घर में कुछ न हो तो भी बड़ी बातें करे। आहाहा! 'थाळ भर्यो रे सग मोती' हराम एक भी मोती अच्चा हो तो। परन्तु ममता के मोती चढ़ता था। 'ममता के मोती थाल भरे' वह सगे-सग वापस, हों! ममता कम कहाँ माँगे? समझ में आया? ऐसी अन्तर्दृष्टि कम कहाँ माँगे? वह तो पूर्णानन्द का नाथ दृष्टि माँगती है। आहाहा! समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय में अनेकपने का ज्ञान होने पर भी पर्याय एकपने में ढलती है। समझ में आया? जिसका एक अंश तो कहीं अनन्तवें भाग रह गया। आहाहा! वह पूरा ढले, ऐसा ढले। राग से पृथक हुई पर्याय का अनन्तपने का ज्ञान, वह ढलता है ज्ञान के ऊपर, वस्तु के ऊपर। तब उसे संवर और निर्जरा की पर्याय प्रगट होती है। तब अब छोड़ना क्या, आत्मा के अतिरिक्त तुझे? कहो, शशिभाई! आहाहा!

अरे! यह तो पूजा, भक्ति और यात्रा चढ़ना और उतरना और ऐसी बातें करे कि मन्दिर बनान, यह दया पाली, भक्ति करना (ऐसा) कहो तो उसे अच्छा लगे। ए... न्यालभाई! भाई! वह शुभभाव बीच में हो, परन्तु वह वस्तु नहीं, संवर-निर्जरा नहीं, मोक्ष नहीं, मोक्ष कारण नहीं, संवर-निर्जरा का हेतु नहीं है, ले! आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा तो वीतराग पिण्ड है। आत्मा अर्थात् वीतरागी गुणों का पिण्ड। अब उसे वीतराग पर्याय द्वारा पकड़ में आये या कोई राग द्वारा पकड़ में आये? आहाहा! समझ में आया? यह बहिर्मुखी लक्ष्य की वृत्ति से अन्तर्मुख पकड़ में आये या अन्तर्मुख की वृत्ति द्वारा अन्तर्मुख पकड़ में आये? अरे! भगवान! कहाँ इसे जाना है और क्या करना है? यात्रा में ऊपर चढ़े और नीचे उतरे निन्यानवें (बार)। तब उसे चैन आवे कि निन्यानवें यात्राएँ की, हों! धूल में भी नहीं, मजदूरी की है, सुन न अब। हाय...

हाय... ! जुगराजजी ! 'पूर्व में निन्यानवें बार ऋषभदेव' यहाँ आये हैं न शत्रुंजय ? भाई ! वे तो भगवान भले आये हों और आवे, उसे शुभभाव के समय उसका ख्याल हो। भक्तिभाव व्यवहार बीच में आता है, परन्तु उस व्यवहार के ज्ञान की पर्याय उसकी है, वह व्यवहार उसका नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? इस प्रकार जब तक इसे ज्ञान की पर्याय का साधनपना भी समझ में नहीं आये तो यह वस्तु त्रिकाल साध्य कैसे इसे पकड़ में आवे ? आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं **'वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां' तथापि द्रव्यरूप एक है,... 'पर्यायैः अनेकतां उपगतं', 'पर्यायैः अनेकतां उपगतं' यद्यपि द्रव्यरूप एक (वस्तु) है, तथापि अनेक ज्ञेयाकाररूप पर्याय की अपेक्षा अनेकपना को प्राप्त होती है...** इससे कुछ दोष नहीं, ऐसा कहते हैं। वस्तु एकरूप है, उसके ज्ञान की पर्याय में अनेकपने का ज्ञान (हो), वह दोषरूप नहीं, वह तो लाभरूप है। रागादि का भाव, वह दोषरूप है परन्तु रागादि का ज्ञान है, वह दोषरूप नहीं। वह तो स्वपर्याय परिणति अनेकपने को जानना, ऐसा उसका स्वभाव है, वह कहीं दोषरूप नहीं। समझ में आया ?

द्रव्यरूप एक, वस्तुरूप एक, तथापि **अनेक ज्ञेयाकाररूप अपेक्षा (पर्याय) अनेकपना को प्राप्त होती है...'उपगतं'** पर्याय अनेकपने को प्राप्त हुई है। **ऐसे स्वरूप को अनेकांतवादी साध सकता है...** पर्याय अंश है, द्रव्य उसरूप नहीं। द्रव्य पर्याय में आया नहीं और पर्याय द्रव्य में प्रविष्ट नहीं। पर्याय में अनेकपने का ज्ञान होने पर भी वह पर्याय निर्दोष है, सदोष नहीं। समझ में आया ? एक तो ज्ञान की पर्याय अनेक को जानने पर भी निर्दोष है, सदोष नहीं, रागरूप नहीं और वह पर्याय इतनी निर्दोष होने पर भी पूरा द्रव्य नहीं है। समझ में आया ? और पूरा द्रव्य एकरूप होने पर भी उस एक समय की पर्याय में वह द्रव्य आ नहीं जाता। एक समय की पर्याय में द्रव्य आ जाये तो फिर रहे क्या ?

यह भगवान सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग अनेकान्त इस जगत को समझने से ही छुटकारा है, शान्ति चाहिए हो तो, बाकी कोई उपाय है नहीं। सूक्ष्म पड़े, वैसा पड़े, बापू ! मार्ग तो यह है, भाई ! समझ में आया ? यह मोती का क्या कहलाता है ? लटकता तोरण।

तो भी वह करते हैं, वे सब चित्र उत्कीर्ण करते हैं,महिलायें नहीं करतीं ? लड़कियाँ। बारीक-बारीक ऐसे पकड़-पकड़कर व्यवस्थित करती हैं, यहाँ रखे, यहाँ रखे, मोर की चोंच में ऐसे आवे और अमुक में ऐसे (आवे)। कितना ध्यान रखती हैं ? तथापि उस क्रिया में इसके ध्यान के कारण वहाँ व्यवस्थित नहीं होती, तथापि एकाग्र कितनी होती है वहाँ ? ऐसा चाहिए... ऐसा चाहिए... ऐसा चाहिए... चोंच ऐसी आती है, मोर की चोंच में ऐसा आना चाहिए, आँख आवे वहाँ दो इतने बड़े चाहिए, अमुक हो तो ऐसा चाहिए। उसकी पूंछ आवे, तब ऐसा चाहिए। उसका ज्ञान तो कितना बारीक करती है या नहीं ? शशिभाई ! तो यह भगवान पूरा कैसा चित्राम है आत्मा का ? त्रिकाल कौन है ? पर्याय कौन है ? इसके लिये जरा चित्रण में एकाग्र तो होना पड़ेगा या नहीं इसे ? समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान आत्मा... ! अनेकान्तवादी, एकरूप द्रव्य होने पर भी पर्याय अनेकपने को पाती है, ऐसे स्वरूप का अनुभव कर सकता है। समझ में आया ? **स्वरूप को अनेकांतवादी साध सकता है—अनुभवगोचर कर सकता है।** '**परिमृशन्**' स्पर्शता है। **ऐसी द्रव्यरूप पर्यायरूप वस्तु को अनुभवता हुआ...** '**परिमृशन्**' का अर्थ तो 'अनुभवता है' (ऐसा होता है)। ऐसा द्रव्यरूप अर्थात् एकरूप पदार्थ, पर्याय अनेक। ऐसी वस्तु को **अनुभवता हुआ स्याद्वादी ऐसा नाम प्राप्त करता है।** '**परिमृशन्**' **अनुभवता हुआ स्याद्वादी ऐसा नाम प्राप्त करता है।** ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? स्याद्वादी बोलनेमात्र से नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई ! आहाहा !

'**तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायैः अनेकतां उपगतं परिमृशन्**' तब स्याद्वादी होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! भगवान आत्मा महान स्वरूप से द्रव्य से एक, पर्याय में अनेक का निर्मल ज्ञान शुरु हो, उसे पृथक् करके साधा है, उसके द्वारा पूरे द्रव्य पर झुकाता है, तब उस द्रव्य का अनुभव '**परिमृशन्**' अर्थात् अनुभव होता है। तब उसे स्याद्वादी नाम दिया जाता है, तब उसे स्याद्वादी कहा जाता है।

एकरूप होने पर भी अनेक पर्याय का अनुभव और अनेक पर्याय होने पर भी एक द्रव्य का लक्ष्य। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? **ऐसा नाम पाता है।** जैसा वह

आया है न? सम्यग्दर्शन अर्थात् व्यवसाय... क्या कहा? व्यपदेश। आहाहा! इनकी शैली अलग है। तब नाम पाता है कि यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, तब स्याद्वाद कहलाता है। भाई! कथन की शैली में रचा है, वहाँ यह बात आ गयी है। समझ में आया? भगवान आत्मा '**अनेकांतविद् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायैः अनेकतां उपगतं परिमृशन्**' तब स्याद्वादी कहलाता है। लो! यह श्लोक पूरा हुआ, ढाई घण्टे चला।

अब छठवाँ श्लोक। द्रव्य के अस्तित्व का यह (श्लोक) है। चार श्लोक हुए। तत्‌रूप से आत्मा है। वह तत्‌रूप से है, वह अतत्—पररूप से नहीं। तत्—अतत् ऐसे दो श्लोक हुए। एक वस्तु से एक है, पर्याय से अनेक है, एक और अनेक, ऐसे दो बोल हुए। अर्थात् (कुल) चार बोल हुए।

कलश - २५२

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चित:
स्वद्रव्यानवलोकनेन परित: शून्य: पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्य: समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ।।६-२५२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि ऐसा है, जो पर्यायमात्र को वस्तुरूप मानता है; इसलिए ज्ञेय को जानते हुए, ज्ञेयाकार परिणमी है जो ज्ञान की पर्याय, उसका ज्ञेय के अस्तित्वपने से अस्तित्वपना मानता है; ज्ञेय से भिन्न, निर्विकल्प ज्ञानमात्र (आत्मामात्र) वस्तु को नहीं मानता है। इससे ऐसा भाव प्राप्त होता है कि परद्रव्य के अस्तित्व से, ज्ञान का अस्तित्व है; ज्ञान के अस्तित्व से, ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार कि ज्ञानवस्तु का अपने अस्तित्व से अस्तित्व है। उसके भेद चार हैं— ज्ञानमात्र जीववस्तु (की) स्वद्रव्यपने अस्ति, स्वक्षेत्रपने अस्ति, स्वकालपने अस्ति, स्वभावपने अस्ति। परद्रव्यपने नास्ति, परक्षेत्रपने नास्ति, परकालपने नास्ति, परभावपने नास्ति। उनका लक्षण— स्वद्रव्य-निर्विकल्पमात्र वस्तु; स्वक्षेत्र-आधारमात्र वस्तु का प्रदेश; स्वकाल-वस्तुमात्र की मूल-अवस्था; स्वभाव-वस्तु की मूल की सहज शक्ति। परद्रव्य-सविकल्प भेद-कल्पना; परक्षेत्र-जो वस्तु का आधारभूत प्रदेश, निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था, वही प्रदेश, सविकल्प भेद-कल्पना से, 'परप्रदेश' बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है; परकाल-द्रव्य की, मूल की निर्विकल्प अवस्था, वही अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना से, 'परकाल' कहलाता है; परभाव-द्रव्य सहज शक्ति के पर्यायरूप (भेदरूप) अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना, उसे 'परभाव' कहा जाता है। 'पशुः नश्यति' एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, जीववस्तु को नहीं साध सकता है। कैसा है? 'परित: शून्य:' सर्व प्रकार तत्त्वज्ञान से शून्य है। किस कारण से? 'स्वद्रव्यानवलोकनेन' [स्वद्रव्य] निर्विकल्प वस्तुमात्र के [अनवलोकनेन] प्रतीति नहीं करने के कारण। और कैसा है? 'प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिर-परद्रव्यास्तितावञ्चित:' [प्रत्यक्ष] असहायरूप से [आलिखित] लिखे हुए के समान,

[स्फुट] जैसे का तैसा [स्थिर] अमिट, जो [परद्रव्य] ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम, उससे माना जो [अस्तिता] अस्तित्व, उससे [वञ्चित:] ठगा गया है–ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। 'तु स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति' [तु] एकान्तवादी कहता है, उस प्रकार नहीं है। [स्याद्वादी] सम्यग्दृष्टि जीव, [पूर्णो भवन्] पूर्ण होता हुआ, [जीवति] ज्ञानमात्र जीववस्तु है—ऐसा साध सकता है–अनुभव कर सकता है। किसके द्वारा? 'स्वद्रव्यास्तितया' [स्वद्रव्य] निर्विकल्प ज्ञानशक्तिमात्र वस्तु, उसके [अस्तितया] अस्तित्वपने के द्वारा। क्या करके? 'निपुणं निरूप्य' ज्ञानमात्र जीववस्तु का अपने अस्तित्व से किया है अनुभव जिसने—ऐसा होकर। किसके द्वारा? 'विशुद्धबोधमहसा' [विशुद्ध] निर्मल जो [बोध] भेदज्ञान, उसके [महसा] प्रताप के द्वारा। कैसा है? 'सद्यः समुन्मज्जता' उसी काल में प्रगट होता है।।६–२५२।।

कलश - २५२ पर प्रवचन

अब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारों ही आत्मा है और पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से आत्मा नहीं है। इसके आठ श्लोक शुरु होते हैं। समझ में आया? उसका यह पहला श्लोक है। स्वद्रव्य स्वयं वस्तुरूप से अस्ति है, ऐसा यहाँ कलश में सिद्ध करना है। अस्तित्व है। अपने द्रव्यरूप से, अपने द्रव्यरूप से, वस्तुरूप से अस्तित्व है।

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चित:
स्वद्रव्यानवलोकनेन परित: शून्य: पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ।।६–२५२।।

लो, आया, जीता है। जीता है, वह मर जाता है—एकान्तवादी मर जाता है, अनेकान्तवादी जीता है। यह गजब बात! कोई जीव को मारे नहीं तो भी मर जाता है, कहते हैं। वस्तु स्वद्रव्यरूप से है और परद्रव्यरूप से नहीं। ऐसे अनुभव करनेवाले अपने जीवत्व को जीवित रखता है और आत्मा स्वद्रव्यरूप से भी है और परद्रव्यरूप से भी है, परद्रव्यरूप से आत्मा है, ऐसा रखनेवाला अपना अस्तित्व जैसा है, उसे मार डालता

है। आहाहा! इसमें तो बहुत सूक्ष्म बोल आयेगा, हों! चार। आठ बोल कहने हैं न? पहले स्वद्रव्य के चार बोल सूक्ष्मरूप कहेंगे।

भावार्थ। भावार्थ पहले (कहते हैं)। अर्थात् इसमें क्या कहना है। माण्डे बिना क्या समझेंगे? कहते हैं। कहे बिना भावार्थ? परन्तु भाई! क्या कहना है उसका थोड़ा उपोद्घात करना, उसका नाम भावार्थ कहा जाता है। आहाहा! कलश, वह कलश है, परन्तु हों! अमृत के कलश चढ़ाये हैं, अमृतचन्द्राचार्य ने! आहाहा!

मुमुक्षु : कलश का वाँचन कितनी बार है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली बार यहाँ इस सभा में (वाँचन होता है)। अन्दर में चाहे जितनी बार हुआ हो, तुम्हारी सभा में पहला-पहला है, पहला-पहला इस जिन्दगी में (वाँचन है)। खबर नहीं? इस कलश का व्याख्यान। उन कलश का अर्थ तो उसमें लेखन साधारण था, वह तो चौदह बार हो गये हैं। चौदह बार (हुए), इस अपेक्षा से पन्द्रहवीं बार (होता है)। इस कलश (टीका) की अपेक्षा से पहला। समयसार में आये हुए कलश, उनमें भरा हुआ पण्डित जयचन्द्रजी का अर्थ तो चौदह बार व्याख्यान में चल गया है। इस कलश की टीका की इस पद्धति का व्याख्यान पन्द्रहवीं में इस हिसाब से पहला-पहला चलता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो सहज ही कितने ही तैयार हुए बिना ऐसी बात न समझ में आये, इसलिए अभी यह आया।

मुमुक्षु : उसका काल हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका काल हो, उसके प्रकार हों। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी... एक पक्ष को माननेवाला कि मेरा द्रव्य वह पर के कारण ही है, मेरी चीज़ पर के कारण ही है, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि असत्यबुद्धि **ऐसा है जो पर्यायमात्र को वस्तुरूप मानता है,...** अर्थात् कि पर के कारण हूँ, ऐसा माननेवाला पर्यायमात्र को मानता है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? भेदरूप वस्तु को ही मानता है पर्याय को। परवस्तु से मैं हूँ। मेरी चीज़ एकाकार द्रव्य वस्तु त्रिकाल है, ऐसा मानता नहीं। पर्यायमात्र को वस्तु मानता है। ऐसा कहकर परद्रव्य से अर्थात् कि उसके भाग करेंगे अभी। समझ में आया न? थोड़ी सूक्ष्म बात लेनी है न?

इसलिए ज्ञेय को जानते हुए ज्ञेयाकार परिणामी है... भगवान आत्मा ज्ञेय को जानते समय ज्ञेयाकार परिणमता है, परद्रव्य के ज्ञानरूप ज्ञान परिणमता है। **जो ज्ञान की पर्याय उनका, ज्ञेय के अस्तित्वपने से अस्तित्वपना मानता है,...** वह ज्ञेय का अस्तित्व, वह मेरा अस्तित्व है। जो चीज़ है, यहाँ मुझमें ज्ञात होती है, उसके कारण मैं यहाँ द्रव्य हूँ, उसके कारण मैं, यह अस्ति मेरी है। जाननेयोग्य वस्तु के अस्तिपने के कारण मैं जाननेवाला हूँ। जाननेवाला, जाननेवाले के कारण है, ऐसा एकपक्षी दृष्टिवाला मानता नहीं। समझ में आया? बाहर के क्रियाकाण्डवाले को यह बात तो ऐसी लगे, हों! यह क्या आत्मा... आत्मा पूरे दिन? (संवत्) १९९५ में ऐसा हुआ था हमारे यहाँ। दस महीने के दस दिन आत्मा आत्मा ही घोंटा है। १९९५ में, राजकोट। अरे! भगवान! आत्मा संवर-निर्जरा, वह आत्मा; मोक्ष, वह आत्मा और आत्मद्रव्य, वह आत्मा। अब इस के अतिरिक्त तुझे क्या करना, लेना है? आहाहा! आस्रव और बन्ध, वह अनात्मा; अजीव, वह अनात्मा। कहो, समझ में आया? द्रव्यबन्ध तो अनात्मा परन्तु परन्तु विकारी भावबन्ध भी अनात्मा। इसीलिए आचार्य महाराज ने पहले यह कहा था। '**नमः समयसाराय:**' में। हम यह बात करेंगे। वहाँ ऐसा नहीं कहा कि हम आस्रव, बन्ध का भाव है और अमुक है। हम तो यह अस्ति है, उसकी बात करेंगे, लो!

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥१॥

कैसा है आत्मा? '**भावाय**' वस्तु, वस्तु। '**चित्स्वभावाय**' ज्ञान जिसका स्वभाव है—गुण, ज्ञान जिसका स्वभाव है—गुण। '**स्वानुभूत्या चकासते**' वह तो उसकी अनुभवन क्रिया, संवर-निर्जरा की क्रिया द्वारा वह प्रकाश में आ सकता है। लो! यह संवर-निर्जरा कही। आहाहा! '**नमः समयसाराय**' ऐसा समयसार आत्मा उसे मैं शुद्ध परिणति से नमता हूँ, यह संवर-निर्जरा कही। और उसकी शक्ति की व्यक्तता कितनी है? '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' अपना स्वभाव और '**भावान्तर**' अपने अतिरिक्त के अन्य अनन्त। उन्हें एक समय में जानने का स्वभाव, ऐसा वह मोक्ष प्रगट कर सकता है, बस! इतनी बात की है। एक शुरुआत की वहाँ आस्रव-बन्ध और अजीव-फजीव और अमुक कुछ

बात ही नहीं थी। अस्तिपने का तत्त्व ऐसा है, उसका स्वभाव ऐसा है, उसकी पर्याय— स्वानुभूति की पर्याय स्वआश्रय दशा से वह यह आत्मा प्रसिद्ध होता है। पूर्ण प्रसिद्ध होने पर सर्व को जानने की पर्याय प्रगट होती है। आहा! समझ में आया? यह पहला कलश। इसमें बहुत सरस आया है। सार कौन? सार क्या? समझ में आया? स्व को जानता नहीं। पर को जानना, वह कहीं सुखरूप नहीं और पर में सुख नहीं। समझ में आया? यह पहले में बहुत आया, बहुत आ गया। (तुम) पहले में नहीं थे? थे? पहले से थे? नौ महीने होंगे। फाल्गुन शुक्ल दूज को शुरु किया है। फाल्गुन शुक्ल दूज। भगवान को (विराजमान किया न), २५वाँ वर्ष लगा था, तब शुरु किया था। यह फाल्गुन शुक्ल दूज को २५ पूरे होंगे।

कहते हैं, विशिष्टता क्या करते हैं? अभी सूक्ष्मपना कहना है क्या? कि इस वस्तु को मानता नहीं। मात्र भेद को, पर्याय को मानता है, भाई! यह चार बोल सूक्ष्म उतारने हैं न? भेद को ही मानता है, परन्तु अभेद वस्तु एकाकार है, उसे मानता नहीं। अर्थात् स्वद्रव्य को मानता नहीं। भेद को माने, वह परद्रव्य को ही माने, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भेद अर्थात् क्या, इसकी व्याख्या आयेगी, हों! व्यवहार को ही मानता है, वह भेद को ही मानता है, अंश को ही मानता है। अखण्ड वस्तु एकाकार है, उसे मानता नहीं। व्यवहार को ही मानता है, निश्चय को मानता नहीं। पर्याय के भेद को ही, पूरा द्रव्य अखण्डानन्द है, उसे गुण-गुणी के भेदरूप से ऐसे विकल्प उठें, उसे ही यहाँ परद्रव्य गिनकर पर्याय कहा गया है। समझ में आया?

जानने (योग्य चीज़ के) अस्तित्व से मानो आत्मा का त्रिकाली अस्तित्व हो, ऐसा मानता है। **ज्ञेय से भिन्न निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु को नहीं मानता है।** वह भेदरूप जो विकल्प आदि है, उससे भिन्न निर्विकल्प एकाकार आत्मा है, उसे मानता नहीं। **इससे ऐसा भाव प्राप्त होता है कि परद्रव्य के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व है,...** यह भेद से, एक अंश से और राग से तथा पर से आत्मा का त्रिकाली अस्तित्व है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! हों! यह।

भगवान आत्मा एक समय में पूरी चीज़ अखण्ड अभेद एकरूप है। उसे न म

मानकर, उसका भेद पड़ा न? विकल्प पड़ा कि 'यह गुणी, यह गुण'—ऐसा जो विकल्प उठा है, उसे ही यहाँ परद्रव्य गिनने में आया है। जुगराजजी! यह बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! एकरूप चिदानन्द अभेद परमात्मा अपना स्वभाव, वही उसका अस्तित्व है। अन्दर से भेदरूप विकल्प उठना कि गुण-गुणी यह हूँ, एकद्रव्य इस रूप हूँ—ऐसा भेद उठना, वास्तव में वह पर्याय है, वह भेद है, वह व्यवहार है, वह पर है। उस पर की स्वद्रव्य में नास्ति है तो भी उस परद्रव्य जितना ही आत्मा को माने, वह आत्मा के पूर्ण अभेद अस्तित्व को नहीं मानता। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

इससे ऐसा भाव प्राप्त होता है कि परद्रव्य के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व है, ज्ञान के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। अपना एकरूप त्रिकाली भगवान आत्मा अखण्ड द्रव्य एक है, उससे एक मैं हूँ, ऐसा वह मानता नहीं। **उसके प्रति उत्तर इस प्रकार कि ज्ञानवस्तु का अपने अस्तित्व से अस्तित्व है।** भगवान आत्मा अपने अस्तिरूप स्वयं है। **उसके भेद चार हैं...** पहले में चार प्रश्न उठाये हैं, नहीं? अपने सहारे का है या पर के सहारे का है? एक है या अनेक है? नित्य है या अनित्य है? समझ में आया? यहाँ ऐसा है। अस्ति-नास्ति।

यहाँ अस्ति का इस प्रकार से घटित किया है। **ज्ञानमात्र जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ऐसे ध्रुव अभेद एक वस्तु, ज्ञायक चैतन्य भगवान ध्रुव अभेद एक वस्तु है। वह ज्ञानमात्र जीववस्तु अपने स्वद्रव्यरूप से है, अपने स्व वस्तुरूप से है। एकरूप त्रिकाल ज्ञायकभाव एकरूप स्वभाव भगवान आत्मा के अस्तिरूप आत्मा है।

स्वक्षेत्रपने अस्ति,... समझ में आया? स्वक्षेत्रयप से अस्ति। अपने असंख्य प्रदेश स्वक्षेत्र है न? वह पूरा एकरूप स्वक्षेत्ररूप से अस्ति है। एकरूप असंख्य प्रदेशी वस्तु स्वयं एकरूप है, उसरूप स्वयं आत्मा है। **स्वकालपने अस्ति,...** भगवान आत्मा स्वकाल से है। और **स्वभावपने अस्ति।** अपने स्वभाव से है। चार बोल लिये।

परद्रव्यपने नास्ति,... भगवान आत्मा वस्तु एकरूप चिदानन्द प्रभु, वह परवस्तु से अभावरूप है, परवस्तु से नास्तिरूप है। थोड़ी सूक्ष्म व्याख्या आयेगी, हों! **परक्षेत्रपने**

नास्ति,... उस परक्षेत्र से आत्मा स्वक्षेत्र से नहीं। क्षेत्र—चैतन्य की भूमिका। वह पर भूमिका, भेद भूमिका वह आत्मा स्वक्षेत्र की भूमिका में नहीं। क्या कहते हैं यह? **परकालपने नास्ति, परभावपने नास्ति।**

अब **उनका लक्षण—** यह उसका लक्षण, अब उसका लक्षण (कहते हैं)। स्वद्रव्यरूप से है, स्वक्षेत्ररूप से है, स्वकालरूप से है, स्वभावरूप से है। परद्रव्यरूप से नहीं, परक्षेत्ररूप से नहीं, परकालरूप से नहीं, परभावरूप से नहीं। इसका लक्षण। अर्थात् यह क्या कहते हो? इसका अर्थ क्या? और लक्षण क्या? यहाँ तो विशिष्टता भरपूर लक्षण वर्णन किया है न? आहाहा! यह आगे (स्पष्ट) करेंगे। '**स्वद्रव्यानवलोकनेनः**' यह तो अभी डालते हैं। पहले में डाला था न? ऐसे यहाँ डालते हैं। '**परितः शून्यः स्वद्रव्यानवलोकनेनः**' यहाँ से शुरु करेंगे। परन्तु इसमें क्या कहना है, उसका यहाँ उपोद्घात बाँधा, उपोद्घात (किया)। समझ में आया? कहते हैं, ये आठ बोल कहे, उनका लक्षण क्या? वह किस प्रकार से है? उसका स्वरूप क्या है?

स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु,.... स्वद्रव्य उसे कहते हैं आत्मा को, निर्विकल्प भेद बिना की अकेली वस्तु, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा निर्विकल्प अर्थात् एकरूप अभेद, उसे स्वद्रव्य कहते हैं, स्ववस्तु कहते हैं। स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु, वह इसकी व्याख्या की। स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु। एकरूप अभेद एकाकार भगवान स्वद्रव्य, एक निर्विकल्पमात्र वस्तु, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। और स्वद्रव्य क्या होगा? पैसा होगा? आहाहा! स्व अर्थात् तू पूरा कौन है? एकरूप अभेद वस्तु, उसे स्वद्रव्य कहते हैं, उसे अस्ति कहते हैं, उसे सत् कहते हैं, उसे निश्चय कहते हैं। समझ में आया?

स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु का प्रदेश,... असंख्य प्रदेश है न? सत्ता, भूमि। जिसमें अनन्त गुण रहे हैं, अनन्तु गुण रहे हैं, ऐसा स्वक्षेत्र। स्वक्षेत्र आधारमात्र वस्तु का प्रदेश। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश की भूमिका में अनन्त गुण रहे हैं, वे असंख्य उसका स्वक्षेत्र है। और आत्मा को क्षेत्र होगा? परन्तु कितना चौड़ा, उसकी भूमिका होगी या नहीं? यह तुम्हारे मकान ले तब चौदह, क्या कहते हैं? चतुर्दिशा बाँधते हैं या

नहीं ? कि पूर्व में यह मकान था, पश्चिम में यह था, पूर्व में यह था और उत्तर में यह था। लिखनेवाला मफतलाल नहीं। मकान कहीं अध्धर का नहीं। इस जगह है और लिखनेवाला मैं हूँ। ऐसा करते हैं या नहीं ? ऐ... जुगराजजी ! जमीन-मकान लेते हैं, देते हैं, तब चौदिशा (बाँधते हैं)। कि भाई ! यह मफतलाल लिखनेवाला नहीं और किसी का मकान कहीं नहीं ऐसा नहीं, इस जगह है। इसी प्रकार यह आत्मा, यह द्रव्य, इस क्षेत्र में है। अध्धर से लिखनेवाला और मुफ्त का नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

ऐसा कहकर कोई द्रव्य को पूरा सर्वव्यापक कहता है, इससे पृथक् करना है। समझ में आया ? और स्वयं अकेली स्वयं ही निर्विकल्प अभेद वस्तु, उसे स्वद्रव्य कहा जाता है। वह स्वद्रव्य अर्थात् सब होकर स्वद्रव्य, ऐसा नहीं। समझ में आया ? स्वक्षेत्र— आधारमात्र वस्तु। अनन्त गुण का आधार, वह उसका क्षेत्र है। अनन्त गुण का एकरूप आधार, वह उसका स्वक्षेत्र है।

स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था,... इसका पूरा रूप ही स्वकाल है, सब पूरा रूप ही स्वकाल है। एकरूप—भेद बिना का पूरा वस्तु का एकरूप है। स्वकाल—वस्तुमात्र की मूल अवस्था, अवस्था अर्थात् मूलस्वरूप। मूलस्वरूप पूरा एकरूप वस्तु है, वही उसका स्वकाल है।

स्वभाव अर्थात् वस्तु की मूल की सहज शक्ति। स्वभाव (अर्थात्) वस्तु की मूल से सहज (शक्ति)। भगवान आत्मा की मूल शक्तियाँ, मूल स्वभाव, मूल गुण वह उसका स्वभाव है। ओहोहो ! समझ में आया ?

अब जरा सूक्ष्म आया। यह **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,...** देखो ! विशिष्टता क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा निर्विकल्प एकरूप वस्तु द्रव्य है, उसे सविकल्प भेद-कल्पना। यह वस्तु हूँ, यह वस्तु नहीं—ऐसा भेदरूप से विकल्प उठा। यह गुण-पर्यायवाला हूँ, गुण-पर्याय स्वरूप हूँ—ऐसा विकल्प उठना, वही परद्रव्य है, वह परवस्तु है, वह स्व की अपेक्षा से अवस्तु है, पर की अपेक्षा से वस्तु है। स्व की अपेक्षा से विकल्प भेदरूप (वह परद्रव्य है)। एक चिदानन्द भगवान आत्मा को गुणभेद से

विकल्प उठाना, वही परद्रव्य है, वही व्यवहार है, वह हेय है। आहाहा! समझ में आया? बेचारे साधारण लोगों को, बहिनों को तो ऐसा लगे कि यह महाराज क्या कहते हैं? क्या कहते हैं यह? यह और भेद... अरे! भगवान! तेरे घर की बात है, भाई! तू प्रभु है। (दूसरा) देखना छोड़ दे। यह शरीर ऐसा और ऐसा, धूल, वह तुझमें कुछ नहीं है। तुझमें निश्चय और व्यवहार कैसा है, वह यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा! निश्चय अर्थात् निर्विकल्प भगवान आत्मा एक स्वरूप को निश्चय कहते हैं, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। ऐसे ही भगवान को गुण-गुणी के भेद से भेद पाड़कर विचार में रुकना, उसे परद्रव्य कहते हैं। जुगराजजी! वस्तु में कहाँ, भेद कहाँ है? वह तो अभेद है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहीं गये। उसका यहाँ काम भी क्या है तुझे? अनन्त निगोद के जीव और अनन्त परमाणु और.... अरे! सुन न! वे तो कहीं गये, सुन न! भाई! एकरूपता में भेद डालना, वही व्यवहार और वही परद्रव्य है। आहाहा! स्वद्रव्य की अपेक्षा से वह भेद अवस्तु है, और उस अस्तित्व के अन्दर ऐसा भेद है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो अभी चिल्लाहट मचाते हैं कि दया, दान और विकल्प और शुभराग को साधक कहो, साधक कहो, साधक कहो। भगवान ने साधक (कहा है)। अरे! सुन भगवान! सुन भाई! आहाहा! भाई! तुझमें और तुझमें भेद उठना, वही वस्तु का स्वरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। वस्तु का स्वरूप नहीं; इसलिए उसे परद्रव्य कहा है। आहाहा! शशिभाई! उस व्यवहार को व्यवहाररूप से जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा! बापू! साधा है उसने आठ-आठ वर्ष की उम्र में आत्मा को साधा है। समझ में आया? ऐसा नहीं लेना कि ऐसा-ऐसा बड़ा है। आठ वर्ष की कन्या, राजा की कन्या, चक्रवर्ती की बालिका ने साधा है तो ऐसे साधा है। ऐसा न समझो कि यह वह ओहोहो! वह कौन साधेगा? आत्मा साधक है, साध सकता है। शरीर चाहे जैसे हो, कर्म के सम्बन्ध चाहे जैसे हों, उसके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह

सम्बन्ध खड़ा किया, भेद डाला इतना सम्बन्ध कहते हैं, उसे हम व्यवहार कहते हैं। आहाहा! उसका यह निश्चय सम्बन्ध नहीं है। व्यवहार है। आहाहा! यह वह कुछ बात करते हैं न! यह अलौकिक बात है।

भगवान ऐसा परमात्मा आनन्द का कन्द एकरूप प्रभु निर्विकल्प वस्तुमात्र, उसे अपना अस्तित्व कहते हैं। उसे स्वद्रव्य कहते हैं, उसे निश्चय कहते हैं, अभेद कहते हैं। ऐसी एक वस्तु में गुणभेद (करना कि) 'यह ज्ञानवाला आत्मा' ऐसा भेद उठना, उसे परद्रव्य कहते हैं, व्यवहार कहते हैं, उस अभेद में भेद की नास्ति कहते हैं। ऐई! बहुत सूख्म आया? अरे! उतरे ऐसा है यह। प्यास लगी हो और मौसम्बी का पानी उतरे गटक... गटक। ऐसी चीज़ है परन्तु अब, इसे गरज नहीं होती। अन्दर में (ऐसा होता है) वह यह क्या? हमें तो यह करना है और यह करना है, धूल करनी है। करे कुछ धूल भी कर नहीं सकता। विकल्प का जाल खड़ा करता है। और यह तो कर सकता है, अस्तित्व है, ऐसा कर सकता है। समझ में आया? आहा! एक व्यक्ति कहता था न? यह तो बाबा होंवे (तब समझ में आये)। परन्तु बाबा ही है, सुन न! यह तो सिद्ध करते हैं। परद्रव्य से तो खाली है। उस परवस्तु से, परक्षेत्र, काल, भाव से तो खाली है परन्तु तेरे एक द्रव्य की अखण्डता में खण्ड पाड़कर लक्ष्य रखना, इसका नाम परद्रव्य। उससे खाली है, लो! आहाहा! समझ में आया?

अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मायें आदि भले उसके घर में—उनके अस्तित्व में हो, उनका अस्तित्व यहाँ आत्मा में कहाँ आया? यहाँ तो आत्मा निर्विकल्प अभेद वस्तुमात्र ज्ञायक का गोला अकेला, उसमें भेद उठाना—सविकल्प भेद उठाना.... समझ में आया? आहाहा! सविकल्प भेद, परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना। समझ में आया? यह भगवान एकरूप वस्तु परमात्मा स्वयं निज स्वरूप से एक वस्तु है, उसमें परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना (करना)। भेद-कल्पना। वस्तु भेद हो नहीं सकती, कहते हैं। परन्तु अन्दर में यह गुणी और यह गुण, यह गुण और धरनेवाला गुणी, ऐसा मन के सम्बन्ध से परद्रव्य अर्थात् भेद-कल्पना उठना, उसे ही भगवान परद्रव्य कहते हैं कि हम कहते हैं। आहाहा! उस परद्रव्य के साधन से तेरी सिद्धि नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

इस भेद के साधन से तेरा साधन नहीं होता—ऐसा कहते हैं। यह स्वद्रव्य अभेद है, उसके साधन से साधन होता है। आहाहा! अभी तो इसे दूसरे से भिन्न मानने में पसीना उतर जाता है। अभी तो इसका करूँ, और इसका करूँ। जिसका 'करूँ'—ऐसा माने, उसे एकपने माने बिना 'करूँ' ऐसा नहीं हो सकता। राग का करूँ, ऐसा जो माने, उसे आस्रव को एकपने माने बिना (राग को) करूँ—ऐसा हो नहीं सकता। अब यह भेद है, उसे करूँ ऐसा माने वह अभेद के साथ भेद को एक मानता है। इसकी बात विशेष आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोंध :— २५२ वाँ कलश सन् १९६६ के वर्ष में अपूर्ण था। इसलिए सन् १९६८ वें वर्ष के प्रवचन भी यहाँ लिये गये हैं।

श्रावण कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक-१५-०८-१९६८, कलश-२५२, प्रवचन-२४७

स्याद्वाद अधिकार, २५२ कलश। इसमें सब सार है। चौदह (कलशों का) सार है। कल पहले आया था। स्वद्रव्य की अस्ति और परद्रव्य आदि की नास्ति। उसका स्वरूप क्या है, वह यहाँ २५२ में कहते हैं।

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चित:
स्वद्रव्यानवलोकनेन परित: शून्य: पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्य: समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ।।६-२५२।।

२५२ कलश। भावार्थ, देखो! अभी कहने से पहले भावार्थ। क्या कहना है, यह पहले से कहते हैं, फिर शब्द के अर्थ में तो बाद में कहेंगे। उनकी शैली ऐसी है। भावार्थ, कहने से पहले भावार्थ? जो कहना है, उसका भाव—अर्थ क्या है, यह हम पहले कहते हैं। **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि...** जिसकी दृष्टि मिथ्या अर्थात् तत्त्व से विरुद्ध है, **ऐसा है जो पर्यायमात्र को वस्तुरूप मानता है,...** एक समय की पर्याय को वस्तु मानता है परन्तु त्रिकाली अस्ति तत्त्व द्रव्य जो है, उसे मानता नहीं। समझ में आया? यहाँ दूसरे को मानता नहीं, अपने को मानता है, यह बात चल गयी है।

अपनी एक समय की पर्याय को मानता है तो उसमें छह द्रव्य आ गये। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र, छह द्रव्य सब एक समय की पर्याय में आ गये। एक समय की पर्याय में इतना जानने की ताकत है। कोई जीव एकान्ती मिथ्यादृष्टि इतनी एक समय की पर्याय को मानता है। समझ में आया? पर्याय को मानता है, ऐसा कहो या परद्रव्य को मानता है, ऐसा कहो।

पर्यायमात्र को वस्तुरूप मानता है,... पूरी वस्तु को एक पर्यायमात्र में मानता है। **इसलिए ज्ञेय को जानते हुए... इसलिए ज्ञेय को जानते हुए...** जाननेयोग्य जो ज्ञेय है। जो ज्ञेयाकार परिणति है, जो ज्ञान की पर्याय। ज्ञान की पर्याय जो ज्ञेयाकार छह द्रव्य है,

उसरूप ज्ञानपर्याय परिणमती है। समझ में आया? छह द्रव्य जो ज्ञेय है, उनसे अपनी ज्ञान की पर्याय, छह ज्ञेय आकार, ज्ञेय से ज्ञेयाकार अपनी पर्याय (होती है)। ज्ञेयाकार का अर्थ—उस ज्ञेय का आकार यहाँ आ नहीं जाता, परन्तु छह द्रव्य जो जाननेयोग्य वस्तु है, वह अपने एक समय की पर्याय में ज्ञेयाकार ज्ञानरूप पर्याय परिणमती है। समझ में आया?

उनका, ज्ञेय के अस्तित्वपने से अस्तित्वपना मानता है,... वह तो पर्याय से अपना द्रव्य मानता है अथवा छह द्रव्य जो पर्याय में जानने में आये, वे छह द्रव्य ही मैं हूँ। वे मैं हूँ। मैं ज्ञायक त्रिकाल हूँ, ऐसे स्वस्वरूप की सत्ता, महासत्ता को मानता नहीं, वह मिथ्यादृष्टि है। छह द्रव्य माने, छह द्रव्य ज्ञेयाकाररूप ज्ञान की पर्याय हुई, उसे माने, परन्तु द्रव्य त्रिकाल एक समय में शुद्ध ज्ञायक पिण्ड परमात्मा है, उसे मानता नहीं, वह भी पर्यायदृष्टि, परद्रव्यदृष्टि, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय में द्रव्य भी आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में स्वयं आया नहीं, पर्याय एक समय की है, द्रव्य त्रिकाल अस्ति है। कल आया था, पर्याय में स्वज्ञेय, परज्ञेय का ज्ञान है, परन्तु एक समय की पर्याय है। वह पर के सहारे की हुई, ज्ञेय के सहारे की हुई, स्वतन्त्र एक समय की हुई परन्तु त्रिकाल नहीं हुई। सूक्ष्म बात है। कल यह भी आया था और आज यह (आया)। आज थोड़ा सूक्ष्म है। परन्तु सब चौदह बोल का सार है। तत्-अतत्, एक-अनेक, स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्ति, और नित्य-अनित्य। ऐसे चौदह भंग हैं। चौदह में भी यह सार है। चार प्रश्न का सार हुआ, वह ही चौदह का सार है। यह दूसरे प्रकार से (कहते हैं)। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपने क्या और परद्रव्य के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव क्या, उसे बहुत दूसरे प्रकार से समझाते हैं।

कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय वह ज्ञेय के अस्तित्वपने से अस्तित्व मानता है। वह ज्ञान की पर्याय, एक समय का जो ज्ञेय का ज्ञान (होता है), उतना अस्तित्व मानता है। अपना ज्ञायक त्रिकाल अखण्ड अभेद चैतन्य वस्तु है, उस ओर दृष्टि नहीं करता। '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' ऐसा है न? दूसरी लाईन है। पहली लाईन में यह आया,

'**प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः**' ठगाया है। एक समय में छह द्रव्य जाने, वह मैं हूँ, उसमें ठागा गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या ठगाया? एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का जानना हुआ तो वह मैं हूँ, ऐसा ठगा गया, अपनी चीज़ से ठगा गया। सूक्ष्म है, शोभालालजी!

'**स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः**' दूसरा पद है न? यह आगे आयेगा, उसका सार पहले कहते हैं। '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' भगवान पूर्णानन्द प्रभु के '**अनवलोकनेन**' उसका अवलोकन करता नहीं। अन्तर स्वरूप भगवान पूर्ण ज्ञायकभाव का अवलोकन, अस्तिपना है, ऐसा अन्तर में मानता नहीं और उस पर्यायमात्र को, ज्ञेयाकार ज्ञान की पर्याय को ही इतना आत्मा मानता है, वह आत्मा को ठगता है। ठगा जाता है। कहो! पैसे में ठगा जाता है, ऐसा नहीं। अपने को वंचित करता है, ऐसा कहते हैं। एक समय के अंश में पूरा द्रव्य भूल जाता है। एक समय के अंश के प्रेम में पूरा द्रव्य भूल जाता है, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! मूल मुद्दे की चीज़ है न थोड़ी! कितने वर्ष हुए? थोड़ा-थोड़ा निर्णय तो करे। ऐ... सेठ!

अहो! भगवान आत्मा एक समय की पर्याय को भी यहाँ तो परकाल कहेंगे। आहाहा! कहते हैं, भगवान! '**प्रत्याक्षालिखित**' एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ख्याल आया, वह तो ज्ञेयाकार ज्ञान है, एक समय की पर्याय, वह तो ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, उसमें अपनी त्रिकाली वस्तु आयी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **ज्ञेय से भिन्न निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु को नहीं मानता है।** यह '**अनवलोकनेन**' का अर्थ किया। आगे विशेष कहेंगे, परन्तु पहले सामान्य भावार्थ कह देते हैं। भिन्न निर्विकल्प ज्ञान... एक समय की पर्याय छह द्रव्य के ज्ञेयाकार से ज्ञान की पर्याय हुई तो वास्तव में उतने को ही पूरा द्रव्य मान लिया। ठगाया, पर्यायबुद्धि ठगाया, अपने आत्मा के साथ छेतरपिण्डी करता है। समझ में आया? पूरा बादशाह चैतन्य प्रभु का अनादर करके एक अंशमात्र में छह द्रव्य के ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, उतनी पर्याय ही मानो मैं हूँ, ऐसा मानकर मिथ्यादृष्टि एकान्ती अपना अनेकान्त—पर से भिन्न ऐसे स्वरूप को जानता नहीं। समझ में आया?

इससे ऐसा भाव प्राप्त होता है कि परद्रव्य के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व है,... देखो! एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान हुआ तो उतना मैं हूँ, (ऐसा माना)। छह द्रव्य ज्ञेय है तो मेरी पर्याय भी ऐसी है, परन्तु जिसने पर्यायमात्र मानी, उसने अपने त्रिकाली स्वरूप को माना नहीं, यहां तो ऐसा ही कहना है। समझ में आया?

ज्ञान के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। ऐसा माना। क्या कहते हैं? मैं तो त्रिकाल ज्ञान ध्रुव चैतन्यबिम्ब हूँ, ऐसे ज्ञान का, अपने आत्मा के अस्तित्व से अपना अस्तित्व नहीं माना। पर्यायमात्र से और परज्ञेय से ही अपना आत्मा माना। समझ में आया? **परद्रव्य के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व है, ज्ञान के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु का अपने अस्तित्व से अस्तित्व है।** देखो! ज्ञान शब्द से आत्मा, हों! पूरा आत्मा अखण्ड पूर्ण ज्ञानस्वभाव अपना अस्तित्व त्रिकाल रखता है। उसका अस्तित्व—हयाती महासत्ता स्वयं से है। ऐसी दृष्टि अन्तर में करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

उसके भेद चार हैं— भगवान आत्मा ज्ञान वस्तु। भाई! है न? ज्ञानवस्तु अपने अस्तित्व से, अपनी हयाती से है। एक समयमात्र की पर्याय ज्ञेयाकार है, उससे नहीं। चार भेद है। **ज्ञानमात्र जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति,...** भगवान आत्मा वस्तुरूप से ज्ञानस्वरूप परमपारिणामिकस्वभाव ज्ञायकभाव, ऐसे ज्ञानमात्र से **जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति,...** स्व वस्तुरूप से है। यह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के आठ बोल हैं न? सबका स्पष्टीकरण इसमें दे दिया है। स्वक्षेत्ररूप से अस्ति, स्वक्षेत्ररूप से अस्ति। असंख्य प्रदेश अपना स्वक्षेत्र एकरूप है, उसरूप आत्मा है। स्वकालरूप से अस्ति। अपनी पर्यायरूप से स्वकालरूप से अस्ति त्रिकाल है। यह विशेष लेंगे। स्वभावरूप से अस्ति। अपने भावरूप से है। अपने द्रव्यरूप से है, क्षेत्ररूप से है, कालरूप से है, भावरूप से है। यह सामान्य व्याख्या की।

परद्रव्यपने नास्ति,... परद्रव्य से आत्मा नास्ति—नहीं। परद्रव्य से नहीं। स्वद्रव्य से है, परद्रव्य से नहीं। व्याख्या थोड़ी सूक्ष्म आयेगी, हों! **परक्षेत्रपने नास्ति,...** परक्षेत्र से आत्मा नहीं। **परकालपने नास्ति,...** परकालरूप से वस्तु नहीं। **परभावपने नास्ति।**

परभावरूप से वस्तु नहीं। अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं। इतनी सामान्य व्याख्या की।

अब वह स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपना क्या? और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव क्या? इसका स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया? सामान्यरूप से व्याख्या की है कि, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव से है। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव से नहीं। इतनी सामान्य व्याख्या की। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव क्या? परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव क्या? उसकी व्याख्या अब स्पष्ट करते हैं।

उनका लक्षण—स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु, अकेला निर्विकल्प भेद बिना। विकल्प अर्थात् भेद, निर्विकल्प अर्थात् अभेद। एक स्वद्रव्य अभेदमात्र वस्तु, वह स्व द्रव्य। त्रिकाली अभेद निर्विकल्प भेद नहीं, निर्भेद, अभेद—ऐसी वस्तु। समझे? **स्वद्रव्य अर्थात....** स्वद्रव्य अर्थात्। इसमें लाईन की है न? **निर्विकल्पमात्र वस्तु....** अभेदमात्र वस्तु, वह स्वद्रव्य। भाषा देखो! समझ में आया? यहाँ लिया न? भाई! ५६वीं गाथा। द्रव्य आत्मलाभ पारिणामिक। द्रव्य के स्वरूप की अस्ति। यह द्रव्य। पर्याय-फर्याय नहीं। पंचास्तिकाय संग्रह ५६ गाथा। अपना द्रव्यात्मक। आत्म अर्थात् स्वरूप। द्रव्य के स्वरूप का लाभ अर्थात् अस्ति है। मौजूदगी है। उत्पाद-व्यय नहीं। उत्पाद-व्यय वह अपना स्वरूप ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पंचास्तिकाय में पारिणामिकभाव की व्याख्या की है कि पारिणामिक अर्थात् सहज वस्तु का स्वरूप क्या? सहज वस्तु जिसमें पर्याय की अपेक्षा नहीं, निमित्त के भाव की या निमित्त के अभाव की कोई अपेक्षा नहीं, ऐसी चीज़ कैसी है? जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, धर्मी का ध्येय, वह चीज़ कैसी है? द्रव्य आत्मलाभ, द्रव्य आत्मस्वरूप। द्रव्य का आत्मा अर्थात् स्वरूप। द्रव्य का स्वरूप—लाभ। लाभ अर्थात् है। द्रव्य का स्वरूप है, वही पारिणामिकभाव। उत्पाद-व्यय नहीं। समझ में आया? अमरचन्दभाई!

वस्तु एक समय में परिपूर्ण ध्रुव है। वस्तु के स्वरूप की अस्ति है, वस्तुस्वरूप है, वस्तुस्वरूप है। वस्तुस्वरूप है, वह पारिणामिकभाव। उत्पाद-व्यय नहीं, राग नहीं,

विकार नहीं, पर नहीं, वह तो पर तो कहीं रह गये। आहाहा! अकेला वस्तुस्वरूप द्रव्यस्वभाव स्वरूप है। लाभ अर्थात् 'है' बस! द्रव्य के स्वरूप की अस्ति। वह परमपारिणामिकभाव, वह त्रिकाली वस्तु, वह स्वद्रव्य। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्प मात्र वस्तु, स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु-का प्रदेश,... असंख्य प्रदेश है न? असंख्य, भेद नहीं। प्रदेश, बस! स्वक्षेत्र आधारमात्र—आधारमात्र। अनन्त गुण की आधार ऐसी भूमि। ऐसी भूमि, अपनी निज भूमि। सेठ! भूमि बहुत रखते हैं न? बँगले और मंजिल, भूमि। कहते हैं, स्वक्षेत्र आधारमात्र वस्तु के प्रदेश। वह अपनी निज भूमि, अपने निज क्षेत्र, अपना निज निवास। समझ में आया? **स्वक्षेत्र अर्थात्....** लाईन है न? **आधारमात्र वस्तु-का प्रदेश,...** अनन्त गुण के आधारमात्र वस्तु के प्रदेश, वह स्व भूमि, स्व क्षेत्र, अपना क्षेत्र, अपनी भूमि, निज निवास स्थान। समझ में आया? स्थान है न? स्थान—क्षेत्र। अपने रहने का आधार स्थान स्वक्षेत्र, वह अपना क्षेत्र है। मकान-बकान, बँगला-फँगला नहीं, ऐसा कहते हैं। बँगला तो नहीं अभी यहाँ दूसरा निकाल देंगे। आहाहा!

अभी तो वे कहे, देव-गुरु-शास्त्र शुद्ध है। हमारे बोटाद में कहते थे। देव-गुरु-शास्त्र शुद्ध, वे परद्रव्य? देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य? शुद्ध हैं वे परद्रव्य? यह भक्ति के करनेवाले मानते हैं न? अपने गुरु और देव की भक्ति करें तो मुक्ति होगी। समझ में आया? पर की भक्ति से कर्म खिपे, यह मान्यता ही जैनदर्शन से अत्यन्त विरुद्ध है। जैनदर्शन अर्थात् आत्मदर्शन से विरुद्ध है, ऐसा। समझ में आया? बहुत भक्ति करो, उससे कर्म खिपेंगे। महापुरुष कैसे कह गये हैं कि हमारी भक्ति करो, जाओ! तुमको लाभ होगा? अब, ऐसा प्रश्न करते हैं।

स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु-का प्रदेश,... ओहोहो! वह अपनी निज भूमि, निज क्षेत्र, निज चौड़ाई, अपने प्रदेश। एक बात। **स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था,...** त्रिकाल, एक समय की नहीं। वस्तु ... है न? **वस्तुमात्र की मूल अवस्था,...** भाई! ऐसा लिया है न? वस्तुमात्र की। एक समय की अवस्था, ऐसा नहीं। वस्तुमात्र त्रिकाल, वह उसका स्वकाल है। आहाहा! भाषा देखो ने लिखी है। वस्तुमात्र का

स्वकाल। **वस्तुमात्र की मूल अवस्था,...** पूरी वस्तु एकरूप त्रिकाल ध्रुव, वह स्वकाल, वह अपना स्वकाल। ओहोहो! समझ में आया? आगे तो पर्याय को स्वकाल कहेंगे। परन्तु यहाँ तो इस प्रकार से सिद्ध करके फिर समझायेंगे।

स्वद्रव्य निर्विकल्पमात्र वस्तु। स्वक्षेत्र अपने आधाररूप प्रदेश, आधाररूप प्रदेश, स्वभाव वस्तुमात्र। मात्र अर्थात् पूरी चीज़। पूरी अर्थात् ध्रुव चीज़, परमपारिणामिक अभेद चीज़, वह स्वकाल। वह उसका स्वकाल है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! नया है, शोभालालजी! कानपुर जाये तब सज्झाय में तो बैठते हैं।

वस्तुमात्र की मूल अवस्था। अवस्था शब्द से यहाँ पर्याय नहीं लेना है। अवस्था—अव-स्थ। त्रिकाल एकरूप रहे, वह इसका स्वकाल। यहाँ तो त्रिकाल वस्तुमात्र शब्द प्रयोग किया है न? वस्तुमात्र अर्थात् समाप्त हो गयी। पूरी वस्तु जो त्रिकाल ध्रुव है, वह अवस्था। अवस्था अर्थात् कायम रहनेवाली चीज़, वह उसका काल है। वह उसका ही शाश्वत् काल है। समझ में आया?

स्वभाव अर्थात् वस्तु की मूल की सहज शक्ति। भगवान आत्मा का मूल का सहज भाव—शक्ति। ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि जो भाव है न? एकरूप त्रिकाल, वह वस्तु का स्वभाव, वस्तु की शक्ति। भाषा देखो! स्व-भाव **वस्तु की मूल की सहज शक्ति।** ऐसी भाषा ली है। देखो! जो सामर्थ्य पड़ा है, त्रिकाल एकरूप भाव सामर्थ्य है, वह वस्तु का भाव। समझ में आया? भेद-बेद नहीं। यहाँ तो अभी स्व में पूरी एकरूप शक्ति। भेद पड़े, वह परभाव में जायेंगी। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो न!

वस्तु की मूल की सहज शक्ति। मूल की स्वाभाविक शक्ति, एकरूप त्रिकाल भावरूप शक्ति। ऐसे ज्ञानभेद और गुणभेद, ऐसा नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! बहुत सूक्ष्म है। देखो! राजमलजी ने कैसा लिया है! 'राजमल जैनधर्मी समयसार नाटक के मर्मी।' बनारसीदासजी ने कहा है। मूल चीज़ यह है। मूल चीज़ समझे बिना चारों ओर भटकाभटक है। आहाहा! निजघर में... वह आता है न? भजन आता है न? 'अब हम निजघर न आये।' 'अब हम कबहू न निजघर आये, पर घर भटकत अनन्त नाम धारये।' निजघर—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव। यह चार भेद भी व्यवहारनय

का विषय है। समझ में आया? चारों का एकरूप त्रिकालरूप, वह निश्चयनय का विषय है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु का स्वभाव, अपना भाव, निजभाव स्वभावस्वरूप वस्तु की सहज, **मूल की सहज शक्ति।** मूल की सहज शक्ति ध्रुव एकरूप त्रिकाल। वह स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव (हुए)।

अब, नास्ति। **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,...** यह परद्रव्य। पर देव-गुरु-शास्त्र तो कहीं रह गये, सम्मेदशिखर तो कहीं रह गया, अरिहन्त-सिद्ध तो कहीं रह गये। अरिहन्त, सिद्ध तो परद्रव्य में गये, पंच परमेष्ठी परद्रव्य में गये। आहाहा! यह तो दूसरी बात करते हैं। निज परमेश्वर में भेद करना, वह परद्रव्य है। आहाहा! भेद हुआ न? सविकल्प। देखो! **सविकल्प भेद-कल्पना....** सविकल्प भेद-कल्पना। वस्तु तो निर्विकल्प एकरूप है। उसमें भेद-कल्पना करे कि यह मैं हूँ, यह मैं हूँ, यह मैं हूँ। गुण-गुणी का भेद—यह गुण, इस गुणी का है और ऐसा मैं हूँ—ऐसी भेद-कल्पना, वह परद्रव्य है। देखो! परद्रव्य की व्याख्या। समझ में आया? राग तो कहीं उसके घर में रह गया। समझ में आया?

यहाँ तो अखण्ड भगवान निर्विकल्प वस्तु में भेद-विकल्प करना कि यह आत्मा ऐसा है, यह ज्ञानवाला है, दर्शनवाला है। द्रव्य, हों! ऐसे द्रव्य की बात है। ऐसी भेद-कल्पना करना, वही परद्रव्य है। ऐसी भेद-कल्पना परद्रव्य की जिसमें नास्ति है, ऐसा कहना है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, मेरु, सम्मेदशिखर इत्यादि अपने में नास्ति है, परन्तु अपना अखण्डरूप जो निर्विकल्प अभेद वस्तु है, अभेद में भेद-कल्पना करना, वही परद्रव्य है। आहाहा! वह परद्रव्य है और वह परद्रव्य अपने में नहीं। अभेद में परद्रव्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : परभेदबुद्धि, विकल्पबुद्धि कल्पना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भेदबुद्धि हुई न? कल्पना। कहा न। भेद होते तो नहीं। भेद किस प्रकार हों? वह तो अभेद चिदानन्द है। लक्ष्य में भेद करना कि यह आत्मा, यह ज्ञान ऐसी भेद-कल्पना, वह भेद विकल्प, वही परद्रव्य है, वह परद्रव्य है। भेद ही परद्रव्य है। विकल्प तो परद्रव्य है, वह बात नहीं। यहाँ तो अभेद एकरूप में भेद करना

उस भेदरूप वह परद्रव्य है। समझ में आया? अभेद में भेद कहाँ है? एकरूप वस्तु में भेद (कहाँ है)? यह भेद तो कल्पना करता है। भेद-कल्पना करता है। अन्दर भेद है ही नहीं, भेद परद्रव्य हो गया। समझ में आया? अभेद में भेद-कल्पना करना, वह परद्रव्य हुआ।

सविकल्प भेद-कल्पना... ऐसा है न? यह तो फिर भेद की व्याख्या की। परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद। सविकल्प भेद अर्थात् कल्पना, ऐसा। भाई! कल्पना है न? वहाँ कहाँ भेद पड़ते हैं? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ओहोहो! यहाँ तो अभी (ऐसा माने) परद्रव्य से मुझे लाभ होगा, परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र से (लाभ होगा)। निमित्त को खोजो, उपादान-निमित्त को स्थापित करते हैं कि कब निमित्त आवे तो मेरा काम हो? समझ में आया? अरे... भगवान! जिनबिम्ब से सम्यग्दर्शन होता है, मिथ्यात्व के टुकड़े होते हैं। वह जिनबिम्ब तो परद्रव्य है। वह तो परद्रव्य है, उससे तो आत्मा में लाभ होता नहीं, परन्तु आत्मा अभेद में भेद करे तो आत्मा में लाभ होता नहीं। सेठ! आहाहा!

यह तो (कहे), सम्मेदशिखर के दर्शन से... जाओ! एक बार... क्या कहते हैं? 'एक बार वन्दे जो कोई (ताहीं) नरक पशु (गति) न होई' क्या है? वह तो परद्रव्य है। क्या परद्रव्य से अपने में लाभ होता है? यह बात तो कहीं रही, अपनी अभेद वस्तु में भेद करना, उस भेद से भी आत्मा को लाभ नहीं है। समझ में आया? भेद करना, वह पुण्यबन्ध का कारण है। वह तो बन्ध का कारण है, ऐसा कहा। वह कहीं अबन्ध का कारण नहीं। आहाहा! कहाँ ले जाते हैं? समझ में आया?

देखो! **परद्रव्य सविकल्प भेद-कल्पना,...** ऐसा। यह कल्पना है। वहाँ वस्तु में कहाँ भेद पड़ते हैं? ऐसा कहते हैं। परन्तु भेद कल्पित करता है न? यह ज्ञान, यह दर्शन, यह आनन्द, इस गुणी का यह गुण ऐसे भेद (करना), वह परद्रव्य है। समझ में आया? निर्विकल्प अभेद वस्तु, वह स्वद्रव्य। भेद करना, वह परद्रव्य। उस भेद की स्वद्रव्य में नास्ति, परद्रव्य की नास्ति। अपने अभेद द्रव्य की अस्ति और गुण-गुणी के भेद भी करना, उस भेद की नास्ति। भेद परद्रव्य की नास्ति। अभेद स्वद्रव्य और भेद

परद्रव्य। तो स्वद्रव्य अभेद में परद्रव्य की नास्ति। आहाहा! समझ में आया? सेठी! उसमें परद्रव्य क्या आया? स्वद्रव्य और परद्रव्य क्या आया? महेन्द्रभाई परद्रव्य में आये या नहीं? दूर रह गये?

यहाँ तो कहते हैं कि राग परद्रव्य है, वह तो कहीं रह गया, उसकी तो बात भी नहीं। देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य, सम्मेदशिखर परद्रव्य, यह पुस्तक परद्रव्य, शास्त्र परद्रव्य, पृष्ठ परद्रव्य, जिनवाणी परद्रव्य। सेठ! जिनवाणी परद्रव्य? परद्रव्य से अपने को लाभ होता नहीं, परद्रव्य से लाभ होता नहीं। जिनवाणी से लाभ होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कोई सुनेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका ख्याल कराते हैं। पुराने हैं न! मूल चीज़ का ख्याल कराते हैं। यह तुम्हारे मित्र हैं कपूरचन्दजी। मूल का ख्याल कराते हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : विचार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार करे वह परद्रव्य है। जितने विकल्प करता है, वह तो परद्रव्य है परन्तु भेद का विकल्प करना, वह परद्रव्य है। सूक्ष्म बात है। आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है। समझ में आया? सुनो! आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, यह भेद हो गया। अनन्त गुण का पिण्ड, यह भेद हो गया। भेद परद्रव्य है, परद्रव्य अपने है ही नहीं। अभेद में परद्रवय है ही नहीं। भेद से आत्मा को लाभ होता नहीं। क्योंकि भेद परद्रव्य है। परद्रव्य से आत्मा में लाभ—सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी भगवान के दर्शन से, मूर्ति से सम्यग्दर्शन होता है। मिथ्यात्व का नाश होता है (ऐसा लोग कहते हैं)। अरे! सुन तो सही! वह तो निमित्त के कथन हैं। वहाँ आगे जिनबिम्ब अपना स्वरूप जिनबिम्ब अभेद है, अभेद की दृष्टि की तो सम्यग्दर्शन हुआ तो निमित्त से कहने में आया है। आहा! समझे नहीं न।

साक्षात् भगवान हो तो वे भी अपने से परद्रव्य है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में विराजते हैं, (वे) अपने से परद्रव्य है, तो परद्रव्य से आत्मा में बिल्कुल लाभ होता नहीं। परद्रव्य की पर्याय तो उसके पास रही। यहाँ तो विकल्प आया कि, यह

परद्रव्य है। विकल्प आया, वह राग है, वह भी परद्रव्य है। वह तो परद्रव्य है ही, परन्तु अभेद में भेद करना, वह भेद परद्रव्य है। आहाहा! यहाँ तो जरा यह सूक्ष्म बात है। समझ में आया? थोड़ा सुने तो सही। इनका १७वाँ दिन है, तीन दिन रहे न? कितने ही तो जाते हैं, भागते हैं। कितने ही कल गये, कितने ही आज जानेवाले हैं।

मुमुक्षु : अनुपचरित सद्भूत ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सद्भूत अनुपचरित। भेद सद्भूत अनुपचरित परद्रव्य। समझ में आया? आहाहा! ठीक कहा, नय का प्रश्न है। बराबर है।

भेद करना। है, तो भेद करना वह सद्भूत है। परन्तु है अनुपचार व्यवहार। अनुपचार व्यवहार। परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? बहुत अलौकिक बात! ओहोहो!

अमृत का सागर जहाँ भरा है सारा, उसमें भेद क्या करना? कहते हैं। समझ में आया? जिसका आश्रय लेना है, पर्याय भले आश्रय ले, परन्तु आश्रय तो पूरे अभेद का है, अभेद है। उस अभेद में भेद करना (कि) अहो! मैं अनन्त गुणसम्पन्न हूँ। वह परद्रव्य हो गया। जिनेश्वरदासजी! आहाहा! निर्विकल्प अभेद वस्तु जो पहले कही,... पहले कहा न? **स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु,...** यह स्वद्रव्य। उसके सामने **परद्रव्य सविकल्प भेद-कल्पना,...** देखो! सामने (लिया)। यह निर्विकल्प, यह सविकल्प। वह निर्विकल्पमात्र था, यह सविकल्प भेद-कल्पना, ऐसा कहा। समझ में आया? कहो, अमुलखचन्दजी!

मुमुक्षु : अभेद में किस प्रकार पहुँचा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद के कारण से अभेद में नहीं पहुँचा जाता। कहो! भेद परद्रव्य है, परद्रव्य से स्वद्रव्य में पहुँचा जा सकता है?

मुमुक्षु : भेददृष्टि बाह्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो भेद पड़ गया। आहाहा! कठिन काम है, भाई!

यह चार बोल बराबर लिये हैं। अन्दर में और अन्दर में भेद और अभेद। बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अपना निर्विकल्प

वस्तुमात्र जो द्रव्य है, वह अस्ति, वह अस्ति। अपना अस्तित्व। और भेद-कल्पना, सविकल्प भेद-कल्पना, वह परद्रव्य। उस परद्रव्य की स्वद्रव्य में नास्ति। परद्रव्य की स्वद्रव्य में नास्ति। स्वद्रव्य की स्वद्रव्य में अस्ति। स्वद्रव्य में परद्रव्य की नास्ति। ऐसी बात है। समझ में आया? भेदबुद्धि भी पर्यायबुद्धि हो गयी, ऐसा कहते हैं। द्रव्यबुद्धि में भेदबुद्धि की नास्ति है, ऐसा कहते हैं। अभेद वस्तु है, (उसमें) भेद करता है, वह पर्यायबुद्धि हो गयी। पर्यायबुद्धि भेदबुद्धि हो गयी, व्यवहारबुद्धि हो गयी। समझ में आया? कहते हैं कि यहाँ उसे परद्रव्य कहते हैं।

यहाँ तो अभी देव-गुरु-शास्त्र, ऐसे निमित्त की राह देखना, तब उपादान में काम होता है, (ऐसा अज्ञानी कहते हैं)। और उनकी श्रद्धा से धर्म होता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से धर्म होता है। महामूढ़ दशा है। महामूढ कहा न? समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि अभेद में भेद से लाभ मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। परद्रव्य से लाभ माना। समझ में आया? जो अपने में नहीं, उससे लाभ माना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहोहो!

कहते हैं, एकबार तेरे लक्ष्य में तो ले कि भगवान आत्मा एकरूप अभेद शुद्ध, एकरूप अभेद शुद्ध, वह स्वद्रव्य। उसमें गुण-गुणी का अनेकपना, अशुद्धपना, भेदपना वह परद्रव्य है। समझ में आया? एकरूप अभेद शुद्ध। अनेकरूप भेद अशुद्ध। एकरूप अभेद शुद्ध, वह स्वद्रव्य। विशेष में भले भेद पड़ जाये, परन्तु वहाँ भेद नहीं। वहाँ जो एक है, उसे ही शुद्ध कहते हैं और उसे ही अभेद कहते हैं। समझ में आया? यह एक है और फिर अभेद है और फिर शुद्ध है, ऐसे तीन भेद नहीं। यह तो वह की वह चीज़ को एक को उसी वस्तु को शुद्ध और उसे ही अभेद (कहते हैं)। समझ में आया? और उससे भेद किया तो अनेक हो गया, अशुद्ध हो गया... समझ में आाय? परद्रव्य हो गया। एक से अनेक, अभेद से भेद, शुद्ध से अशुद्ध। एक से अनेक हो गया, अभेद से भेद हो गया, शुद्ध से अशुद्ध हो गया। समझ में आया?

ऐसा कहा कि भगवान आत्मा एकरूप अर्थात् अभेदरूप अर्थात् शुद्धरूप। वस्तु एक ही। वह स्वद्रव्य। और उसमें भेद करना, अभेद से भेद परद्रव्य। वह अनेक और अशुद्ध परद्रव्य की नास्ति। परद्रव्य से लाभ मानना मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : वह भी परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परद्रव्य है, उसकी तो बात ही कहाँ है? भेदरूपी, अनेकरूपी, अशुद्धरूपी परद्रव्य जो भेद किये, उससे लाभ माने (तो) वह अपने में है नहीं। है नहीं, इससे लाभ माना, (वह तो) मिथ्यात्व है। ओहोहो! ऐई! माणेकलालजी! कहाँ गया तुम्हारी उस पर्याय का..? बहुत प्रश्न करते थे, नहीं? पर्याय... पर्याय... पर्याय... द्रव्य की पर्याय और दृष्टि की पर्याय में पर्याय आती है और द्रव्य आता है न....

यहाँ तो कहते हैं, गुण का भेद भी दृष्टि में नहीं आता। गुण-गुणी का भेद कहो या पर्याय-पर्यायवान का भेद कहो। ऐ... हीरालालजी! है न इसमें? बहुत है उसमें। हमारे पण्डितजी ने किया है। हिम्मतभाई ने। कुचामण के नहीं एक? अजितकुमार।

यहाँ तो कहते हैं कि यह पर्याय और यह पर्यायवान, (यह) परद्रव्य (हो गया)। पर्याय तो दृष्टि का विषय नहीं, दृष्टि का पर्याय तो विषय नहीं, परन्तु यह पर्यायवान, उसकी यह पर्याय, ऐसा भेद भी दृष्टि का विषय नहीं। समझ में आया? ओहो!

मुमुक्षु : जब विचार बन्द हो जाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार इसमें है ही कहाँ? विचार अर्थात् विकल्प है ही नहीं। तुम्हारा रजनीश कहता है, ऐसा नहीं। वह तो शून्य नास्तिक होने का कहता है।

यहाँ तो जो वस्तु एक अभेद निज है, उसमें दृष्टि देने से भेद परद्रव्य हो जाते हैं, वह बात है। यहाँ तो वस्तु जो त्रिकाल एकरूप है, वह एकरूप अर्थात् सर्व होकर एकरूप नहीं। सर्व आत्मा और सर्व द्रव्य नहीं। यह तो अत्यन्त नास्तिक बात है। आत्मा द्रव्य है और उसमें गुण हैं और पर्याय है और भेद-अभेद कोई बात ही नहीं। वहाँ तो तर्क नहीं, अकेली तर्कशून्य बात। परन्तु लोग ऐसे आकर्षित हो जाते हैं। उसकी कथनी, उसका दिखाव, दाढ़ी-मूंछ... कपूरचन्दजी उसमें लोग आकर्षित हो जाते हैं। आहाहा! नयी बात है, ऐसा कहे। लो, ठीक! लोग ऐसा कहे, वाह! धूल भी नहीं। सुन न! महा मिथ्यात्व के भ्रम में पड़े हैं। समझ में आया? शोभालालजी! तुम्हारे घर में भी पहले था न? तुम्हारा लड़का पैसे देकर बहुत पढ़ता था। वहाँ कहा था, मल्हारगढ़ में डालचन्दजी के। क्या है? सब विपरीत है। वह कोई पुस्तक लेकर आये थे न? दाढ़ीवाला था।

पुस्तक लेकर आया था। मुझे पुस्तक देते थे। लो! कहा, गृहीतमिथ्यात्व का पुस्तक है। समझ में आया?

सर्वज्ञस्वभावी भगवान सर्वज्ञ स्वभाव, ऐसा गुण का एक भेद करना, वह भी अभेद में भेद पड़ गया। आहाहा! समझ में आया? एक सर्वज्ञ गुणवाला आत्मा, ऐसा भेद करना, वह परद्रव्य है, ऐसा कहते हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त गुणरूप एकरूप, अनन्त गुण का एकरूप अभेद, वह स्वद्रव्य। ब्रह्मचारीजी! देखो! संवर, निर्जरा की पर्याय कहाँ? वह तो भेद हो गया। ओहोहो!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वैसा तत्त्व लोगों को सुनने को मिलता नहीं, इसलिए ऐसी गड़बड़ हो जाती है। अपनी कल्पना से अर्थ करे, ऐसी बात नहीं होती। यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे। ऐसा आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है। ऐसा एक-एक आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है। परन्तु अकेला सर्वज्ञस्वभाव नहीं, ऐसे अनन्त स्वभाव आत्मा में हैं। उन अनन्त स्वभाव का एकरूप, उसे अभेद आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? कहाँ गये तुम्हारे सोमचन्दभाई? गये? अच्छा। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा ही है। पर सर्वज्ञ हैं, वह परद्रव्य हुए। ओहोहो! समझ में आया? कहते हैं न कि '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं। सो जाणदि अप्पाणं...**' वह तो परद्रव्य है, अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय पर है। वह तो पर को जाने, फिर अपने द्रव्य में समाता है, अभेद होता है, तो सम्यग्दर्शन होता है, मात्र परद्रव्य से नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : अध्यात्म का व्यवहार, वह भी परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य है। यह गुण-गुणी का भेद करना, वह परद्रव्य है। आहाहा! वीतरागमार्ग कैसा है, देखो तो सही! सर्व से उपेक्षा और एक की अपेक्षा। सर्व की उपेक्षा और एक की अभेद की अपेक्षा, वह स्वद्रव्य। यह तो अभी चार (भंग से) बतलाते हैं, हों! स्वद्रव्य और स्वक्षेत्र, वहाँ तो चार भेद भी नहीं। यह तो पहले अभी पर में नास्ति... नास्ति करते हैं, पर की नास्ति (कहते हैं) तो यह वास्तव में चार की नास्ति

है। फिर वे चार भी नहीं, एकरूप की अस्ति। आहाहा! समझ में आया? यह आता है, इसमें आता है न? 'ण द्रव्येण खण्डयामि' 'न द्रव्येन खण्डयामि' नहीं? देखो! आया। २७० के बाद है, २७० कलश है न? २७० कलश है, उसके बाद है।

'**ण द्रव्येण खण्डयामि, न क्षेत्रेण खण्डयामि, न कालेन खण्डयामि, न भावेन खण्डयामिः**' २७० के बाद है। यह चार तो अभी अभेद का विचार करते हैं। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की नास्ति करके बतलाना है। परन्तु अपने में भी स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव ऐसे भाव (भेद) भी नहीं। समझ में आया? २७० कलश के बाद है। इसमें कितना अन्तर कहे? सेठी! यह निचोड़ है। आहाहा! वहाँ आनन्द का चूवा चूता है। आहाहा!

ओहो! पर की कल्पना तो छोड़ना, पर से लाभ मानना तो छोड्ना परन्तु भेदकल्पना छोड़ना। कितना पुरुषार्थ है! समझ में आया? एक निर्विकल्पमात्र वस्तु में अन्दर में गुण-गुणी के भेद छोड़ना, उसमें क्या कम पुरुषार्थ है? आहाहा! भेदबुद्धिसे हटकर अभेदबुद्धि में उपयोग को ले जाना, उसमें अनन्त पुरुषार्थ है। पूरे परमेश्वर को उपयोग से तौल लिया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अपने में ही बहुत पुरुषार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पुरुषार्थ स्वस्वभाव पूरा पूर्णानन्द प्रभु, औंदि में अपने उपयोग को ले जाना वह भी भेद से कथन है। इस उपयोग को मैं ले जाऊँ, यह भी भेद है। अरे! कठिन बात, भाई! परन्तु उस ओर, द्रव्य की ओर का सहज झुकाव हो जाये तो भेद से (मानना) लाभ मिट जाये। यहाँ तो अभी दया, दान, भक्ति, पूजा और व्रत के नियम के विकल्प से लाभ होता है, भगवान के दर्शन से लाीा होता है। यह तो शुभभाव होता है, अशुभ से बचने के लिये, ऐसा कहा जाता है। बाकी तो वह काल है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अकर्म हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अकर्म ही आत्मा का स्वभाव है। यह भेदरूप कर्म स्वभाव है। वस्तु आत्मा ही अकर्म है। रागरहित अभेद में दृष्टि करना, वही उसका कर्म अर्थात् कार्य है। समझ में आया? भेद से अकर्म हो जायेगा, परन्तु अभेद में तो कर्म है,

विज्ञानघन की एकाग्रता होती है, वह अपना कर्म है, कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा! ऐसा कि अकर्मणी हो जायेगा। कुछ करना नहीं... कुछ करना नहीं, इसमें ही करना है। कुछ करना नहीं, इसमें करना है। कुछ भेद का करना नहीं और अभेद का करना, वही पर्याय में करना है। आहाहा! समझ में आया? ओहो! अभी तो परद्रव्य में बात अटकी है।

परवस्तु तो कहीं रह गयी। अरिहन्त परमेश्वर और पंच परमेष्ठी... शास्त्र में भाषा ऐसी आती है, हों! पंच परमेष्ठी की कृपा से आत्मा की मोक्षलक्ष्मी होती है। प्रवचनसार। प्रसाद-कृपा। और दूसरे में आता है न? आप्तमीमांसा में आता है, न नियमसार में (उद्धरण)। भगवान के कारण मिला, ऐसा। भगवान के कारण शास्त्र, शास्त्र के कारण ज्ञान, वह भगवान की कृपा है। परम्परा निमित्त का कथन है। अपनी कृपा हुई उसमें निमित्तता परमेश्वर की थी, इतना बतलाने के लिये भगवान की कृपा और प्रसन्नता (कही)। भगवान वीतराग हैं तो प्रसन्न होते हैं? मैं मुझमें अभेद में प्रसन्न हुआ तो भगवान की प्रसन्नता मुझ पर है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! लो!

यह **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,....** उसे छोड़, वह परद्रव्य है। अभेद स्वद्रव्य में दृष्टि कर तो सम्यग्दर्शन होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ८, शुक्रवार, दिनांक-१६-०८-१९६८, कलश-२५२, प्रवचन-२४८

स्याद्वाद अधिकार २५२ कलश है। देखो! ज्ञान निश्चय से स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव क्या है और व्यवहार से परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव क्या है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव आत्मा के स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में उनका अभाव है। समझ में आया?

पहला बोल यह कहा कि स्वद्रव्य किसे कहा? निर्विकल्पमात्र वस्तु। स्वद्रव्य-स्ववस्तु निर्विकल्प अर्थात् अभेदमात्र वस्तु, वह स्वद्रव्य। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। वह निश्चयनय का विषय, वह सम्यग्दर्शन का ध्येय स्वद्रव्य और परमपारिणामिकभाव एकरूप ज्ञायकभाव के अवलम्बन से शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान, वीतरागता आदि पर्याय प्रगट होती है। वह धर्म है। समझ में आया?

स्वद्रव्य के बाद स्वक्षेत्र। स्वद्रव्य के सामने परद्रव्य। स्वद्रव्य के सामने परद्रव्य। **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,....** बस! इतना। परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना। अपना एकरूप है, उसमें सविकल्प भेद, विकल्पसहित भेद करना कि यह गुणी है और यह गुण है, ऐसी सविकल्प भेद-कल्पना करना, (वह परद्रव्य है)। कल्पना किसलिए कही? क्योंकि उसमें भेद नहीं। भेद नहीं। सविकल्प भेद-कल्पना का नाम परद्रव्य। जिस परद्रव्य की स्वद्रव्य में नास्ति है। जिस स्वद्रव्य में परद्रव्य का अभूतार्थपना है। परद्रव्य अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। समझ में आया? और स्वद्रव्य ही भूतार्थ और सत्यार्थ है। समझ में आया?

कहते हैं कि **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,...** शास्त्र में परद्रव्य की व्याख्या तो बहुत प्रकार से चली है। नियमसार में (ऐसा कहा कि) '**जीवादिबहित्तच्चं**'। परद्रव्यं। जीवादि सातों तत्त्व का समूह परद्रव्य है। पण्डितजी! जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। सात भेद हैं न? (इसलिए) वह परद्रव्य। सेठी! '**जीवादिबहित्तच्चं हेयमुपादेयमप्पणो अप्पा**' इतने शब्द मूल पाठ (नियमसार, गाथा ३८) में हैं। टीकाकार ने इसका अर्थ किया है कि जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य

है। संवर, निर्जरा, मोक्ष परद्रव्य है। सेठ! क्योंकि उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती।

स्वद्रव्य तो उसे कहते हैं कि जिसमें से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति, आनन्द प्रगट होता है, उस खान को स्वद्रव्य कहते हैं। समझ में आया? जिसमें से नया आनन्द प्रगट हो, जिसमें से अतीन्द्रिय शान्ति प्रगट हो, वह स्वद्रव्य। सात तत्त्वों का समूह तो परद्रव्य है। उसमें से नयी शान्ति की, आनन्द की पर्याय प्रगट नहीं होती। क्योंकि वह तो एक समय की पर्याय का—भेद है। समझ में आया? उसी तत्त्व को ५०वीं गाथा में लिया है, इसी बात को (नियमसार) ५०वीं गाथा में विस्तार किया है। जितनी क्षायिक पर्याय है, उपशम पर्याय है, क्षयोपशम पर्याय है, उदय पर्याय है, सब परद्रव्य है, सब परद्रव्य है। सेठी!

जैसे परद्रव्य में से नया आनन्द नहीं आता, उसी प्रकार क्षायिक पर्याय, उपशम पर्याय, क्षयोपशम पर्याय, उदय पर्याय में से नयी पर्याय, आनन्द नहीं आता। नयी पर्याय नहीं आती तो जैसे परद्रव्य है, वैसे यह परद्रव्य गिनने में आयी। समझ में आया? परद्रव्य में से कहीं अपनी पर्याय प्रगट होती है? तो इस पर्याय में से भी नयी पर्याय प्रगट नहीं होती। इस अपेक्षा से संवर, निर्जरा, मोक्ष, आस्रव, बन्ध आदि सात तत्त्व का समूह और क्षायिक पर्याय, क्षयोपशम पर्याय, उपशम पर्याय, निर्मल पर्याय; उदय पर्याय तो ठीक, सब परद्रव्य है। क्योंकि उसमें नजर करने से नयी पर्याय उत्पन्न हो, (ऐसा नहीं है)। वह पर्याय अनन्त आनन्द की खान नहीं है, एक समय की है। समझ में आया? अपने अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव जिसमें हो, जिससे हो, जिसमें से आये, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। आहाहा! यहाँ बहुत सूक्ष्म बात है। यही वस्तु है।

भगवान आत्मा स्वद्रव्य अकेला ज्ञायक और आनन्द पिण्ड एकरूप ध्रुव द्रव्य में एकाग्र होने से (आनन्द की पर्याय प्रगट होती है)। गुण-गुणी का भेद करना, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! यह कहा, देखो! **सविकल्प भेद-कल्पना,...** भेद-कल्पना करने से भेद में से नयी आनन्द की पर्याय नहीं आती।

मुमुक्षु : निज नित्य द्रव्य, वह भी अभूतार्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नित्य जीवद्रव्य भूतार्थ अकेला। अभूतार्थ नहीं। नित्य जीवद्रव्य

भूतार्थ। निज नित्य द्रव्य भूतार्थ। नित्य अकेला अभेद द्रव्य भूतार्थ। निज द्रव्य विकल्प अभूतार्थ है। नौ तत्त्व में यह आया न? सात तत्त्व में एक प्रश्न लिया। सात तत्त्व में जीवद्रव्य अभूतार्थ? नहीं... ऐसा नहीं। जीवद्रव्य का अर्थ यह विकल्प (कि) मैं जीवद्रव्य हूँ, वह अभूतार्थ है। बाकी नित्य द्रव्य जो है, वह तो भूतार्थ है। समझ में आया? यह तो मैं जीव हूँ, मैं जीव हूँ, मैं आत्मा हूँ, परम स्वभाव हूँ—ऐसा जो विकल्प, वह जीवद्रव्य व्यवहार से (कहा जाता है)। उसका नित्य द्रव्य में अभाव है। वह विकल्पवाला जीव है, वह अभूतार्थ है और नित्य द्रव्य जो ध्रुव है, वह स्वद्रव्य है, वह भूतार्थ है। समझ लेना, हों! जरा गड़बड़ न हो जाये। और नित्य जीवद्रव्य भी अभूतार्थ है, ऐसा नहीं। वे सात कहे न? सात। जीवादि सात तत्त्व (कहे)। उस सात तत्त्व का अर्थ (कि) भेदरूप। मैं जीव हूँ, मैं जीव हूँ—ऐसा भेदरूप भाव अभूतार्थ है, वह परद्रव्य है। आहाहा!

मैं संवर हूँ, मैं निर्जरा हूँ—ऐसा विकल्प तो ठीक, परन्तु यह संवर, निर्जरा पर्याय भी परद्रव्य है। क्योंकि उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। ऐसा मैं जीव हूँ, आत्मा हूँ, शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ—ऐसा विकल्प भी परद्रव्य है। क्योंकि उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह परद्रव्य है, यह भेद पड़ गया। ज्ञायक का अनुभव करना, अन्दर अभेद से अनुभव करना, जो पर्याय का विषय हुआ, वह अभूतार्थ है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि स्वद्रव्य निर्विकल्पमात्र वस्तु। उसके सामने परद्रव्य सविकल्प भेद-कल्पना। भेद-कल्पना। वस्तु में कहाँ भेद पड़ते हैं? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मैं जीव हूँ.... समझ में आया? आदि जो भेद। पूरे द्रव्य में भेद (करना), यह गुणी और यह गुण, केवलज्ञान ज्ञान गुण और गुणी यह, ऐसी भेद-कल्पना, सविकल्प भेद-कल्पना परद्रव्य है। उस परद्रव्य की स्वद्रव्य में नास्ति है। वह परद्रव्य अभूतार्थ और व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

नौ तत्त्व को परद्रव्य कहा है। यहाँ सात तत्त्व को कहा। (नियमसार) शुद्धभाव अधिकार की पहली गाथा में सात तत्त्व (कहे)। सात तत्त्वों का समूह। समूह अर्थात्

भेद है न ? उसे परद्रव्य कहा। और फिर नौ पदार्थ को भी परद्रव्य कहा है। क्योंकि फिर उसमें पुण्य-पाप डाले। नौ भेद पड़े न ? वास्तव में तो नौ तत्त्व का भेदरूप अनुभव मिथ्यात्व है। समझ में आया ? यह पहले आ गया है। कलशटीका में आ गया है। समझ में आया ?

नौ तत्त्व भेदरूप है न ? मैं जीव हूँ, यह आस्रव है, यह संवर है, निर्जरा है। नौ तत्त्व में मोक्ष का अर्थ वह मोक्ष नहीं, हों ! यहाँ राग की आंशिक बन्ध की अबन्धता गिनकर उसे मोक्ष गिनने में आया है। तो नौ तत्त्व का जो अनुभव है, भेदरूप अनुभव हुआ, वह मिथ्यात्व है। ओहोहो ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : वीतरागभाव है...।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागभाव तो पर्याय है, यहाँ पर्याय की बात नहीं। वीतरागभाव पर्याय है, वह भी परद्रव्य। क्योंकि वीतरागभाव की पर्याय में से नयी वीतरागता नहीं आती। छठवें गुणस्थान में क्षायिक समकित और तीन कषाय के अभावरूप चारित्र की वीतरागी पर्याय है समझो, छठवें गुणस्थान में क्षायिक समकित और तीन कषाय के अभाव की पर्याय है, उस पर्याय को यहाँ परद्रव्य गिनने में आया है। क्योंकि भेद है, अंश है। समझ में आया ? और वह क्षायिक समकित और वीतरागी पर्याय है, उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। नयी पर्याय तो द्रव्य में से आती है। उसे द्रव्य कहा गया है और उसे (पर्याय को) परद्रव्य कहा गया है। आहाहा ! सेठी ! समझ में आया ? वहाँ तीन-चार जगह है।

एक जगह उत्तम अर्थ है न ? नौ पदार्थ में उत्तम पदार्थ आत्मा है। ऐसा लिया है। प्रतिक्रमण का अधिकार है। नियमसार। उत्तम अर्थ एक। उत्तम मोक्ष और संवर, निर्जरा आदि उत्तम नहीं। उत्तम अर्थ (आत्मा)। नियमसार में प्रतिक्रमण अधिकार में आया है। उत्तम पदार्थ द्रव्य स्वभाव त्रिकाल ज्ञायकभूत भूतार्थ उत्तम पदार्थ है, बाकी कोई उत्तम नहीं है। मोक्षादि पर्याय, संवर, निर्जरा आदि उत्तम नहीं है। परमभाव उत्तम है, बाकी सब अपरमभाव हैं। क्षयोपशम भाव, संवर, निर्जरा, मोक्ष भी अपरमभाव। आहाहा ! कठिन बात, भाई ! समझ में आया ?

यह वीतरागमार्ग की लीला है। 'कोई कहे लीला रे, लीला अलख तणी' ईश्वर की। वह नहीं, यह आत्मा—ईश्वर की लीला है। समझ में आया? कोई दूसरा ईश्वर है और उसकी लीला है, ऐसी कोई चीज़ है नहीं। यह निज ईश्वर की लीला है। सेठ!

मुमुक्षु : तो फिर करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना। द्रव्य अखण्ड है, उस पर दृष्टि करना, यह (करना है)। करना क्या कूदना है? पैसा-बैसा देकर धर्म लेना है? परन्तु भाई ऐसा माने न, हम पैसेवाले हैं, पैसा देते हैं, पचास हजार, दस हजार, अमुक हजार। एक लाख रुपये। कितने खर्च किये मल्लाश्गढ़ में? धूल में भी धर्म नहीं। लाख खर्च करे या करोड़ खर्च करे। सेठी! दोनों भाईयों ने बहुत मेहनत की थी। मलाड में दस-दस हजार लोग ऐसे जंगल में, हों! जंगल में। जहाँ डाकू हो वहाँ नगर बना दिया था। रास्ता-बास्ता साफसूफ। मानो कि यह नगर हो, ऐसा। उसमें क्या? तुमने उसमें कुछ किया था? वह जड़ की पर्याय तो उसके कारण से हुई थी। शोभालालजी!

तुम्हारा भाव हो और कदाचित् मन्द राग का भाव हो, प्रसिद्धि न लेनी हो तो पुण्य है। पुण्य है, वह धर्म नहीं। और धर्म की पर्याय प्रगट हो, उसमें से नयी धर्म की पर्याय प्रगट नहीं होती। इसलिए धर्म की पर्याय भी स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : अलौकिक बात है, परन्तु पचती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी चीज़ है। यह तो आज सवेरे कहा था। जठर मन्द हो तो नहीं पचता। समझ में आया? पकवान तो पकवान ही है। पकवान तो दूसरी चीज़ हो नहीं जाती। (संवत्) १९८६ के वर्ष में एक बार कहा था, अमरेली में चातुर्मास था, व्याख्यान चलते थे। वहाँ रामजीभाई थे न? रामजी हंसराज, उस समय तो पैसे दस लाख थे। अब तो बढ़ गये। (वे कहे), महाराज! यह पचता नहीं। (तो हमने कहा), जठर तैयार करो। पचता नहीं तो क्या है? रोटी खाते हो तो मैसूर खाने की इच्छा नहीं करते? वहाँ ऐसा कहते हैं कि हमारा जठर मन्द है, खाया नहीं जाता? मैसूर समझे न? मैसूर... मैसूर। चने के आटे का (बनता है)। एक सेर चने का आटा और चार सेर घी।

मैसूर होता है न? मैसूर होता है। रोटी खाते समय मैसूर खाने का विचार आता है या नहीं? हाँ, विचार तो है। क्यों? जठर मन्द है ऐसी पुकार क्यों नहीं करते? गृहस्थ व्यक्ति थे।

उसमें लगन है। जिसमें लगन है उसमें न पचे ऐसा नहीं कहते। यह लगन नहीं। समझ में आया? गृहस्थ व्यक्ति थे। उस समय (संवत्) १९८६ के वर्ष में उसके पास दस लाख रुपये थे। अभी दो-ढाई करोड़ हो गये, तीन करोड़। रामजी हंसराज। अब कीमत घट गयी। कहते हैं कि... हों! अच्छी चीज़ खाने की इच्छा नहीं होती? अन्दर नहीं पचता, ऐसा विचार करते हो? जठर तैयार करो। इसी प्रकार सुनने की यथार्थ तैयारी करो। ऐसा मनुष्यभव मिला, तुझे फिर कब मिलेगा? समझ में आया?

ओहो! देखो न! बाहर में जीवन चला जाता है। देखो न! यह नर्मदा का सुनते हैं। नर्मदा नदी के किनारे पूरा गाँव पायमाल। गाँव, मनुष्य, पशु और मकान। इतना पानी, इतना पानी... मुर्दे... मुर्दे... ऐसे अवतार अनन्त बार हुए। उस अवतार में से निकलने का उपाय एक ही आत्मा द्रव्यस्वरूप अखण्डानन्द अभेद का आश्रय लेना, वही एक संसार से तिरने का उपाय है? चिमनभाई! यह पैसा-बैसा में कुछ नहीं, हों! धूल में कुछ नहीं। यह तो खबर नहीं सब? कितने तक फँसे थे। अमुक के लिये, अमुक के लिये। मुश्किल-मुश्किल से छूटे। समझ में आया? कारण कि यह पळोजण (उपाधि) ऐसी है न! पळोजण हमारी काठियावाड़ी भाषा है। उपाधि।

यहाँ कहते हैं कि परद्रव्य। ओहोहो! लाईन है, वह बराबर है। **सविकल्प भेद-कल्पना,...** पुराने में बीच में लाईन नहीं है। पुराने में सविकल्प भेदकल्पना, बीच में लाईन (-) नहीं है। सविकल्प भेदकल्पना साथ में, इकट्ठा है। सविकल्प भेदकल्पना। क्योंकि वस्तु भगवान आत्मा चिदानन्द एक अखण्ड अभेदरूप है, उसमें पर्याय का भेद, विकल्प गुण-गुणी का भेद सबको परद्रव्य में गिनने में आया है। क्योंकि वस्तु की दृष्टि में अथवा वस्तु में उस परद्रव्य का अभाव है। समझ में आया? और परद्रव्य—भेद कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। अभेद है, वह कायम रहनेवाली चीज़ है। समझ में आया?

नौ तत्त्व भी परद्रव्य है। सात तत्त्व के भेद का समूह परद्रव्य है। निर्मल पर्याय और क्षयोपशम समकित और क्षायिक समकित, क्षयोपशम चारित्र, गणधर का छठवाँ गुणस्थान का क्षयोपशम चारित्र और भगवान तीर्थंकर जब छद्मस्थ हों, तब उन्हें छठवें गुणस्थान आता है। क्षायिक समकितसहित उन्हें (चारित्र) कितने ही तीर्थंकर, हों! कोई तीर्थंकर, कहते हैं कि वह पर्याय है, वहाँ दृष्टि देने से स्वयं को लाभ होता है? उस पर्याय को तो यहाँ परद्रव्य गिनने में आया है। क्योंकि वह पर्याय स्वद्रव्य में नहीं। स्वद्रव्य तो पूरा अखण्ड अभेद द्रव्य है। उसके आश्रय से, उस पर नजर करने से, उसका सत्कार-स्वीकार करने से सम्यग्दर्शन और आनन्द की पर्याय उसमें से प्राप्त होती है। सेठ! क्या करना (पूछा था)। तो यह करना। बाहर में सूझ पड़ती नहीं, यह सुना नहीं। पैसा खर्च खर्चकर सबने धर्म मनवा दिया। जाओ! क्या कहलाता है? समाज... क्या भाषा है तुम्हारे? समाज भूषण!

आत्मा के देश में सब है। स्वदेश में सब पड़ा है। बाहर से उसे जरूरत नहीं है। भेद की जरूरत नहीं है, विकल्प की जरूरत नहीं है, निमित्त की जरूरत नहीं है; यह तो कहीं रह गया। भेद डालने की जरूरत नहीं है, ऐसी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

निर्विकल्प वस्तु के सामने (सविकल्प भेदकल्पना लिया)। निर्विकल्प मात्र शब्द है न? मात्र। पहले स्वद्रव्य में। परद्रव्य में सविकल्प भेद-कल्पना, ऐसा आमने-सामने है। सविकल्प भेद-कल्पना। भेद-कल्पना है। वस्तु में भेद कहाँ है? वह तो अभेद अखण्डानन्द एकरूप चिदानन्दस्वरूप है। उसे स्वद्रव्य कहा जाता है। भेद-कल्पना तो कल्पना है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! धवल है न, उसमें आता है। भाई! ध्येय, ध्येय के बोल बहुत आते हैं। द्रव्य ही ध्येय है, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। बहुत कथन आता है। यह ध्येय, यह ध्येय, यह ध्येय... बहुत आता है। व्यवहारनय का ग्रन्थ है न! ध्येय का अर्थ लक्ष्य में लेकर फिर उसे छोड़कर अन्दर में जाना। उसे व्यवहार ध्येय कहा गया है। आहाहा! यह कहते हैं, नहीं। द्रव्य ही ध्येय है? ऐसा लेख आया था। धवल में कथन है। ध्यान के विषय में ध्येय का कहा है, उसमें ध्येय बहुत लिया है। तेरहवें में बहुत लिया है। तेरहवाँ बहुत अच्छा है।

ध्येय कौन है ? पर्याय ध्येय है ? यह ध्येय है ? गुण-गुणी ध्येय है ? अनन्त गुण ध्येय है ? समझ में आया ? धवल में ऐसा पाठ है। समझना चाहिए न ! ध्येय क्या ? पर्याय ध्येय वह तो अपेक्षित, पहले लक्ष्य वहाँ था, उसे छोड़कर अन्दर में गया, तब उसे व्यवहार ध्येय कहा गया है। ऐसी बात है। कठिन, भाई ! धवल पढ़कर और धवल समझकर मानो हम कुछ नया समझ गये !

यहाँ तो कहते हैं कि सविकल्प अर्थात् विकल्पसहित भेद-कल्पना करना, उसका नाम ही परद्रव्य है। उसमें स्वयं को कुछ लाभ नहीं होता। इसलिए उसे परद्रव्य कहा गया है। परक्षेत्र। पहले स्वक्षेत्र कहा था कि **आधारमात्र वस्तु का प्रदेश,....** पहले। स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र। अनन्त गुण के आधारमात्र क्षेत्र, वस्तु के प्रदेश। आधारमात्र वस्तु का प्रदेश। असंख्य (प्रदेश) ऐसा अंक नहीं। स्वक्षेत्र—आधारमात्र वस्तु का प्रदेश, वह स्वक्षेत्र, स्वस्थान, स्व निवासस्थान, अपना रहने का स्वक्षेत्र—भूमि—स्वस्थान। वहाँ भगवान आत्मा रहता है। समझ में आया ? स्वक्षेत्र आधारमात्र (वस्तु का प्रदेश)। यह स्वक्षेत्र की व्याख्या। आधारमात्र वस्तु के प्रदेश, वस्तु के प्रदेश—क्षेत्र, वह स्वक्षेत्र।

अब इसके सामने परक्षेत्र। **जो वस्तु का आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था...** यहाँ तक तो अभी स्वक्षेत्र की व्याख्या की। जो वस्तु का आधारभूत, आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प अभेद एकरूप एक प्रदेश आधार। असंख्य आदि भेद नहीं। अखण्ड—अखण्ड। समझ में आया ? **निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था...** एकरूप वस्तु का क्षेत्र त्रिकाल। **वही...** वही **प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना...** वजन यहाँ है। **वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना...** यह जितने प्रदेश हैं, उनमें सविकल्प, विकल्पसहित भेद करके कल्पना (करना), वह **परप्रदेश बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है।** बुद्धिगोचर अर्थात् कल्पना से यह भेद डालकर जानना, यह बुद्धिगोचर की अपेक्षा से असंख्य प्रदेश में भेद डालना, यह बुद्धिगोचररूप से परक्षेत्र कहने में आता है। परक्षेत्र हो जाता नहीं। समझ में आया ? ओहोहो ! कठिन बात, भाई !

परक्षेत्र अर्थात् जो वस्तु के आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प अर्थात् एकरूप **वस्तुमात्ररूप से कहा था...** वस्तुमात्ररूप से कहा था **वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना...** यह

असंख्य (प्रदेश) है, ऐसी भेद-कल्पना। असंख्य कल्पना से कहीं भेद हो नहीं जाते। असंख्य एकरूप है। भले असंख्य हैं, परन्तु यह असंख्य हैं—ऐसी भेद-कल्पना... समझ में आया? वह परक्षेत्र है। **भेद कल्पना से परप्रदेश बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है।** बुद्धिगम्य में इतना भेद डालना, इसका नाम परक्षेत्र है, उस परक्षेत्र का विषय व्यवहारनय का है। वह परक्षेत्र अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, परक्षेत्र स्वक्षेत्र में नहीं। अभेद में भेद नहीं। समझ में आया?

अभी तो चार की बात करते हैं, बाद में तो चार भी नहीं। जैसे आम है न? आम। उसमें गुठली है। गुठली को क्या कहते हैं? गुठली है, ऊपर की छाल है, रस है, ऐसे चार भेद। ऐसे चार भेद आत्मा में नहीं कि आत्मा का द्रव्य यह है, क्षेत्र यह है, काल यह है और भाव यह है। ऐसे चार भेद नहीं हैं। आम में जैसे चार भेद पड़ते हैं, छाल है, जाली है। जाली कहते हैं न? यह अपने कहते हैं, हों! अथाणा लेते थे न? यह जालीवाले आम काम नहीं आते। ऐसा आता था न? भाई! अथाणा में आता था। जालीवाला आम अर्थात् बारीक रेशा होते हैं न? आम काम नहीं आते। छुरी लगाने से कटे और रेशा न निकले, वह आम अथाणा में काम आवे। अथाणा समझ में आता है? अचार। आम भी कड़क और कठोर (होना चाहिए)। जिसमें छुरी से काटने पर जाली अर्थात् जैसे अंतड़ियाँ दिखती हैं, बारीक रेशा न हो, ऐसा आम अथाणा में काम आता है। यह तो हमने पहले देखा है न! फिर कहाँ दिखता है? समझ में आया? उसे अपने जाली कहते थे। वजुभाई! महिलायें कहे, जिस आम में जाली न हो वह लाना। उसका अथाणा होता है। जालीवाले आम का अथाड़ा नहीं होता। यह सब हमने कुछ किया नहीं, हमने तो सब सुनी हुई बातें हैं। लोग कहे, उसमें से सुनी हो। एक बार सुनी हो तो ख्याल में आ जाता हो।

जो आम है, उसमें ऊपर की छाल, रस, जाली और गुठली, ऐसे चार (भेद) आत्मा में नहीं कि द्रव्य यह, क्षेत्र यह, काल यह, भाव यह—ऐसा नहीं है। समझ में आया? परन्तु जैसे आम में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है, वैसे (आत्मा में) है। यह बनारसीदास में, पंचाध्यायी में दृष्टान्त है। पंचाध्यायी में है। समझ में आया? पूरा आम है उसमें से चार भाग ऐसे नहीं करना कि ऊपर की छाल है, तुष... तुष... सवेरे तुष

आया था। नहीं ? छाल आया था। तत्त्वज्ञान मीमांसा में। तुष... तुष। तुष अर्थात् छिलका। केरी की छाल अलग है, रस अलग है, गुठली अलग है, जाली अलग है। वे जैसे अलग हैं, वैसे आत्मा में द्रव्य अलग है, क्षेत्र अलग है, काल अलग है, भाव अलग है, ऐसा नहीं है।

परन्तु जैसे आम में वर्ण से देखो तो पूरा आम है, गन्ध से देखो तो पूरा आम है, रस से देखो तो पूरा आम, स्पर्श से देखो तो पूरा आम है। उसी प्रकार द्रव्य से देखो तो भी वही, पूरे क्षेत्र से देखो तो भी वही, पूरे काल से देखो तो भी वही, पूरे भाव से देखो तो भी वही। समझ में आया ? आहाहा! यह तो अभी समझाते हैं। चार भेद में स्व-परद्रव्य इतना ही बताते हैं। बाकी तो फिर चार (भेद) भी नहीं। क्या उसमें चार भाग पड़ते हैं ? द्रव्य यह है, द्रव्य दूसरा है, क्षेत्र दूसरा है, त्रिकाल रहनेवाला काल दूसरा है, भाव—शक्ति भिन्न है, ऐसा है ? समझ में आया ? भाई ! तत्त्वज्ञान का विषय सूक्ष्म है। अलौकिक बात है।

यहाँ डाला, देखो न! मूल वस्तु डाली है। नियमसार में जो मूल कही थी, वह इसमें डाल दी। पहले ऐसा कहा। कहते हैं, परक्षेत्र किसे कहना ? जो एकरूप क्षेत्र है... यह पंचास्तिकाय में आया है न ? भाई ! एक प्रदेशी। एकप्रदेशी लिया है। असंख्य प्रदेश हैं परन्तु एकप्रदेश अर्थात् एकरूप, उसे एकप्रदेश कहा है। एक ही प्रदेश कहा है। एक... एक, अभेद प्रदेश। असंख्य प्रदेश का एकरूप असंख्य प्रदेश। एकरूप प्रदेश का नाम क्षेत्र। एकरूप क्षेत्र में विकल्प से भेद करना कि यह क्षेत्र, यह क्षेत्र, वह परक्षेत्र। (वस्तु में) भेद नहीं होता। समझ में आया ? कठिन बात, भाई ! पण्डितजी ! ऐसी बात है।

माल की बात ले नहीं और ऊपर से (चले)। (जीमने में) भुजिया खाये, दाल, भात, साग खाता है, चटनी खाता है परन्तु माल तो ले। माल क्या चीज़ है ? माल बिना अकेली चटनी से पेट भरना है ? समझ में आया ? ऐई ! तुम्हारे पोरबन्दर में चटनी-बटनी होती है। कितने प्रकार की चटनी ! चटनी और छाछ से पेट भरना है ? बस ! उससे प्रसन्न होना है ? बाहर से ऐसा है, बाहर का जानपना, अमुक... माल क्या है, वह तो ले। कितने ही ऐसे होते हैं कि चटनी-सब्जी खाये नहीं, मात्र माल खाते हैं।

हमारे वढवाण में एक पोपटभाई थे। दाल, सब्जी, भात खाये ही नहीं। दो लड्डू, तीन लड्डू खाकर पानी पीकर खो जाये। एक पोपटभाई थे। सन्त कहलाते थे। नहीं? पोपटलाल सुखलाल सन्त कहलाते थे। ग्रेजुएट हुए निवृत्ति बहुत। परन्तु बुद्धि बराबर परन्तु अस्थिर बहुत। यहाँ प्रेम बहुत। समझ में आया? तुम तो पहिचानते थे, नहीं? मात्र लड्डू खाये, लड्डू खाकर, पानी पीकर उठ जाये। चावल और सब्जी खाना तो साथ में लड्डू न खा लें? शोभालालजी! चावल सब्जी समझते हो? चावल, सब्जी और चटनी खाते साथ में लड्डू न खा लें?

यहाँ कहते हैं कि माल-माल चीज़ यह है। निमित्त आदि भेद, पुण्य आदि की बात साथ की चटनी है। समझ में आया? पुण्य बँधे और तीर्थंकरगोत्र बँधे, यह सब चटनी है, यह कहीं माल नहीं है। यह तो माल है। ओहो! भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी एकप्रदेशरूप, उसकी भेद-कल्पना, वह परप्रदेश, वह परक्षेत्र।

पहले काल में कहा था काल में। काल में क्या कहा था? स्वकाल—**वस्तुमात्र की मूल अवस्था,...** मूल अवस्था अर्थात् वस्तुमात्र पूरी चीज़ वह स्वकाल। वर्तमान पर्याय का भेद न करना। आत्मा पूरी चीज़ है, पूरी चीज़ एकरूप है, वह स्वकाल। पूरी चीज़ वह उसका स्वकाल। भोगीभाई! अवस्था अर्थात् निश्चय अव... स्थ। हमको कहाँ आता है? तुम्हारे पण्डितजी को पूछो न! समझ में आया? यह यहाँ आता है। नहीं? द्रव्य की अवस्था, द्रव्यरूप अवस्था। सोलहवें कलश में आता है न? सब आता है। एक-एक टीका में इतने शब्द पड़े हैं कि उसे दूसरा देखना न पड़े, इतना सब पड़ा है। टीका में सोलहवाँ कलश है न? सोलहवीं गाथा का कलश है, भाई! एकरूप द्रव्य अवस्था, एक पर्यायरूप अवस्था, ऐसा लिखा है। द्रव्यरूप अवस्था अर्थात् त्रिकाल द्रव्यरूप रहना। समझ में आया?

इस शब्द में थोड़ा फेरफार क्या है? देखो! स्वकाल में क्या लिया था? स्वकाल अर्थात् **वस्तुमात्र की मूल अवस्था,...** वस्तुमात्र की मूल अवस्था अर्थात् वस्तु, त्रिकाली वस्तु स्वकाल, वह स्वकाल। अब परकाल। **द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था,...** द्रव्य की मूल की निर्विकल्प वस्तु। वह अवस्था अर्थात् वस्तु त्रिकाल। **वही...** वहीं

अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना से... यह भाषा। काल की यह भाषा है, क्षेत्र की भाषा दूसरी थी। समझ में आया? सविकल्प भेद-कल्पना से प्रदेश थे। पहले में सविकल्प भेद-कल्पना से परद्रव्य था। काल में **अवस्थान्तर भेदरूप...** रूप शब्द विशेष डाला है, पहले में रूप नहीं था। **अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना से परकाल कहलाता है।** क्या कहा? स्वकाल अर्थात् एकरूप द्रव्य वस्तु त्रिकाल, उसकी एक समय की अवस्थान्तर देखो, एक समय की अवस्था (देखो) तो परकाल है। पर्याय परकाल है। वह तो पर की अवस्था की अपेक्षा से यह अवस्था स्वकाल है, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय परकाल है। गजब बात! आहाहा! क्या कहा?

परमाणु आदि है या.... उसकी जो एक समय की अवस्था है। जैसे यह शरीर देखो! इस शरीर की अवस्था है न? तो आत्मा की जो ज्ञान की अवस्था है, वह स्वकाल और यह अवस्था उसका परकाल। उसकी अपेक्षा से परकाल। इस अपेक्षा से स्वकाल और उसकी अपेक्षा से परकाल। यहाँ तो दूसरी बात है। त्रिकाल अपेक्षा से स्वकाल और एक समय की अवस्था, वह परकाल। समझ में आया? क्योंकि परकाल का आश्रय लेने से नयी अवस्था प्रगट नहीं होती, तो परकाल भी अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, व्यवहार है। क्यों? द्रव्य, वह निश्चय है और पर्याय, वह व्यवहार है। समझ में आया? त्रिकाल द्रव्य जो है, वह निश्चय स्वकाल है और गुण की एक वर्तमान एक समय की अवस्था है, वह परकाल है। त्रिकाल की अपेक्षा से भेद पड़ा, इसलिए वह परकाल, वह व्यवहार और वह व्यवहार और परकाल स्वकाल में नहीं हैं। देवीलालजी! गजब बात, भाई! यह तो बहुत ऊँची बात! ऊँची नहीं सत्य ही यह है। आहाहा! मूल बात यह है परन्तु अब लोगों को अभ्यास नहीं होता। बाहर के रहे, बाहर की धमाधम।

कहते हैं, परकाल। **द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था,...** अवस्था अर्थात् वस्तु, **वही अवस्थान्तर...** वही पदार्थान्तर। वही पदार्थ एकरूप नहीं परन्तु अन्य अवस्थारूप भेदरूप कल्पना। उसमें भेदरूप कल्पना से परकाल कहलाता है। समझ में आया? वह परकाल व्यवहार है, अभूतार्थ है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। त्रिकाल वस्तु सत्यार्थ है, भूतार्थ है, आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया? तीन बोल हुए।

मुमुक्षु : क्षायिक पर्याय है, वह भी परद्रव्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक पर्याय है, वह भी अवस्थान्तर है, त्रिकाल वस्तु वह द्रव्य है। एक समय की पर्याय का स्वकाल, वह त्रिकाल की अपेक्षा से परकाल है। त्रिकाल है, वह स्वकाल है। उसका एक अंश भेद पड़ गया, वह परकाल है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, है नहीं, अन्दर में है नहीं। व्यवहार उसकी अपेक्षा से भले हो, व्यवहार से व्यवहार हो, परन्तु निश्चय में वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परकाल हो गया।

अब परभाव। पहले स्वभाव क्या कहा था? देखो! **स्वभाव अर्थात् वस्तु की मूल की सहज शक्ति।** है न पहला बोल। स्वभाव अर्थात् वस्तु की... आत्मा-भगवान की मूल की सहज शक्ति। सहज ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि एकरूप। सहज एकरूप भाव, हों! ज्ञान, दर्शन ऐसे भेद नहीं। एकरूप सहज शक्ति। वस्तु की एकरूप सहज शक्ति। अनन्त शक्तिरूप एकरूप शक्ति, वह स्वभाव है। समझ में आया? वह अपना निज स्वभाव है।

परभाव—**-द्रव्य की सहज शक्ति के पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना,...** यहाँ से यह लिया, देखो! उसमें **अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना...** (था)। (स्वद्रव्य में) सविकल्प भेद-कल्पना। पहले में सविकल्प भेद-कल्पना था। यहाँ **अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना,...** (कहा है)। क्या कहा? परभाव अर्थात् जो अनन्त स्वभाव है, एकरूप स्वभाव है, उसमें एक शक्ति को भिन्न करना, लक्ष्य में भिन्न करना, वह परभाव। अनन्त शक्ति के एकरूप में से एक शक्ति को लक्ष्य में लेकर भिन्न कल्पना करना, वह परभाव। आहाहा! यह गुणभेद। एक शक्ति का भेद (करना कि) यह ज्ञान। अन्दर तो भेद नहीं है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे अनन्त गुण में से, एकरूप है उसमें एक गुण का लक्ष्य करना, वह परभाव है। न्यालभाई! यह तो सब (तुम) आये और बहुत सूक्ष्म निकला कल से। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदरूप परभाव। एकरूप स्वभाव। उसमें—एकरूप में एक

शक्ति की कल्पना करना कि यह। उसमें—अभेद में कहाँ भेद है ? यह ज्ञान, यह दर्शन। तो उसमें ज्ञान, दर्शन भिन्न पड़ते हैं ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : द्रव्य को माननेवाला मिथ्यादृष्टि सिद्ध हो गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार को आश्रय करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। यह पंचाध्यायी में लिया है, पंचाध्यायी में लिया है। व्यवहार को माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। अनेकान्त ज्ञान का भान करके व्यवहार है, ऐसा जानना, वह दूसरी बात है। परन्तु अकेला व्यवहार और परभाव और यह ऐसा और वैसा, ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है। गुणभेद को अपना आत्मा माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। अभेद में भेद मानना, अकेला भेद मानना (उसमें) अभेद चीज़ भिन्न रह गयी। समझ में आया ? ओहोहो !

यहाँ तो यह भी कहते हैं, अभेद है एकरूप है, उसकी दृष्टि करने से सब अनन्त गुणों के अंश प्रगट होते हैं। दूसरा एक विचार आया, भाई ! समझे ? एकरूप अभेद स्वरूप वस्तु है, उसकी दृष्टि करने से सब जितने गुण हैं, उनके अंश प्रगट होते हैं। इसके बिना एक ही गुण प्रगट हो और लक्ष्य करे कि मुझे ज्ञान का उघाड़ हुआ है, तो व्यवहारनय अभूतार्थ है। व्यवहार निश्चय में नहीं है। एक ही गुण को प्रगट करना और लक्ष्य करना, वह परभाव है। क्या कहा ?

अनन्त गुण का एकरूप भगवान, वह स्वभाव। स्व-भाव। उस स्वभाव का आश्रय करने से अनन्त गुण की निर्मल अवस्था (एक) समय में प्रगट होती है। ज्ञान का विकास हो और आनन्द का न हो, शान्ति का न हो... शान्ति अर्थात् स्वरूपचारित्र आदि। समझ में आया ? तो उसने द्रव्यदृष्टि की ही नहीं। और द्रव्य का आश्रय लिये बिना अकेले ज्ञान का उघाड़, समझ में आया ? व्यवहारिक श्रद्धा का उघाड़, वह भी ज्ञान का ही उघाड़ है न ? राग की मन्दता का भाव। राग की मन्दता में थोड़ी शान्ति दिखाई दे, वे सब परभाव हैं। समझ में आया ? उसमें पूरे द्रव्य का आश्रय आया नहीं। पूरे द्रव्य की अनन्त आनन्द आदि शक्ति प्रगट नहीं हुई। समझ में आया ?

नौ पूर्व आदि मात्र ज्ञान का क्षयोपशम हो जाये तो भी वह त्रिकाल की अपेक्षा से

परभाव है। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है, शोभालालजी! अमरचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : यह समझना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना पड़ेगा। पड़ेगा अर्थात् जोर देकर क्या करें, समझना पड़ेगा, ऐसा नहीं। यह तो बोझरूप हुआ। परन्तु यही चीज़ है, ऐसा समझने से आत्मा को लाभ होगा। बराबर सुनायी देता है न? ये बहुत प्रसन्न होते हैं। तुम आये और बराबर आज ऐसी चीज़ आयी है। सात वर्ष में आये परन्तु बात दूसरी चीज़ है। आहाहा! सब वर्ष का बराबर साथ में कर दिया गया। पाँच गाथायें दोपहर की आयी और यह भी सार-सार।

कहते हैं, परभाव। **द्रव्य की सहज शक्ति के पर्यायरूप....** पर्यायरूप अर्थात् भेदरूप। अथवा एक पर्यायरूप, एक ही अंश का, गुण का भाग। ऐसे **अनेक अंश द्वारा...** देखो! एकरूप है, उसमें अनेक अंशों द्वारा, अनेक अंशों द्वारा भेद करके उसे जानना, वह परभाव है। ओहोहो! राग को परभाव कहा।

तीन प्रकार के परभाव—(१) परद्रव्य का परभाव। अपनी अपेक्षा से परद्रव्य की पर्याय और परद्रव्य, परभाव।

(२) पुण्य-पाप के भाव स्वभाव की अपेक्षा से परभाव और

(३) अनन्त गुण के एकरूप में से भेद करना, वह परभाव।

अरे... अरे...! कठिन भाई! जैनदर्शन, वह अलौकिक बात है न! आहाहा! ऐसी वस्तु है और कहे कि हम कहते हैं वह (बराबर)। अरे! तू क्या कहता है? वस्तुस्थिति ऐसी है। सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा है। समझ में आया? कहते हैं न, धीरे-धीरे कहते हैं।

परभाव के तीन प्रकार लिये। अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से परवस्तु परभाव है। समझ में आया? परभाव। पर के ज्ञान, दर्शन, आदि पर के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि अपनी अपेक्षा से परभाव। एक बात। और अपने स्वभाव की अपेक्षा से पुण्य-पाप के विकल्प परभाव, दो (बात) और अभेद की अपेक्षा से अनेक अंश भेदरूप कल्पना (करना), वह भी परभाव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जगह महा रही। दृष्टि देने के लिये अभेद चीज़ रही। ऐ... वजुभाई! वहीं के वहीं फँसे हैं, पैसे में और यह उसमें पूरे दिन। उसमें यह बात कभी कान में आवे। कहते हैं, भाई! उसमें से निकलकर द्रव्य में आ जाओ। वहाँ तेरा स्थान है, वह तेरा धाम है, ऐसा कहते हैं। अन्दर रहने का निवासस्थान है। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक मार्ग है। ऐसी चीज़, ऐसी वस्तु की स्थिति कहीं तीन काल तीन लोक में वीतराग के अतिरिक्त, सर्वज्ञ के अतिरिक्त (है नहीं)। सर्वज्ञस्वभाव और सर्वज्ञ (पना) प्रगट हुआ, उसमें जो देखा, वह चीज़ ऐसी है। सम्यग्दृष्टि को भी ऐसी चीज़ भासित होती है। आहाहा! समझ में आया?

परभाव अर्थात् **द्रव्य की सहज शक्ति के...** बस! इतनी बात। पहले स्वभाव की बात (की)। वहाँ से अब परभाव। **शक्ति के....** बस! इतना। **पर्यायरूप....** उसमें भेदरूप था न? इसमें **पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा...** किसी भी गुण के अंश द्वारा गुणी में से एक भेद करके, एक गुण का एक भेद लक्ष्य में लेना, वह सब परभाव है। चाहे तो ज्ञान को लक्ष्य में लेना, दर्शन को लक्ष्य में लेना, एक गुण को लक्ष्य में लेना, वह व्यवहार हो गया। व्यवहार हो गया तो वह अनेक अंश द्वारा परभाव हो गया। तो परभाव स्वभाव में है नहीं। यह परभाव व्यवहार हो गया, अभूतार्थ हो गया, आश्रय करनेयोग्य रहा नहीं। समझ में आया? यहाँ तो तुम्हारे १८ दिन चला, आज तो १८वाँ दिन है तो थोड़ा-थोड़ा सूक्ष्म भी आवे या नहीं? धन्नालालजी! मूल रहा बाकी निकल गया।

द्रव्य की सहज शक्ति के पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना, उसे परभाव कहा जाता है। यह तो अभी शब्द का अर्थ किये बिना भावार्थ किया है। इस श्लोक का एक शब्द का अर्थ किये बिना ऊपर से भावार्थ करते हैं। यह तो भावार्थ पर चलता है कि इसमें यह कहना है। ऐसा सरलता से पहले समझाया। इस दृष्टि से तू दूसरा पढ़ना। ऐसा। इनकी शैली ऐसी है, हों! अलौकिक बात है। इस शैली से तुझे चौदह बोल में अपने से अस्ति, पर से नास्ति। सत्‌रूप से है, ज्ञेरूप से नहीं, एकरूप है, अनेक आदि नहीं (यह सब) इस दृष्टि से पढ़ना। समझ में आया? वाह! कितनी बात की है! देखो

न! अभी एक भी शब्द लिया नहीं, भाई! अब शब्द शुरु होगा। आहाहा! कठिन बात! वाह रे वाह! ज्ञान की लीला तो देखो!

'**पशुः नश्यति**' यह पहला शब्द आया। पशु 'पश्यते बध्यते इति पशु'। जो दर्शनमोहनीय आदि से बँधता है, उसे यहाँ पशु कहते हैं। इसमें है, पहले श्लोक में है। पशु यह तो चौथा-पाँचवाँ है। पहले श्लोक में है। पशु—'कर्मे बध्यते इति पशु' अबद्ध हो वह समकिती, ज्ञानी, विवेकी। समझ में आया? अबन्ध परिणाम उत्पन्न करे, वह विवेकी समकिती और बद्ध परिणाम उत्पन्न करे, वह बध्यते पशु, वह पशु कहा जाता है। ओहोहो! क्योंकि वर्तमान में विकल-भान बिना का है। जैसे पशु को सुन्दर आहार और घास का विवेक नहीं है, उसी प्रकार अज्ञानी को सत्य और असत्य का विवेक नहीं है। तो अविवेक से जैसे पशु कर्म से बँधता है तो वह भी पशु ही है। अथवा भावि लो तो भविष्य में पशु में जायेगा तो भावि... पशु है। फिर अमुक भव के बाद निगोद में ही जायेगा। पण्डितजी! समझ में आया? देवलोक में जानेवाला हो तो यहाँ उसे भविद्रदेव कहा जाता है। भविद्रदेव। भविद्रदेव। मनुष्य में जानेवाला हो तो भविद्रमनुष्य (कहलाता है)। नरक में जानेवाला हो तो भविद्रनारकी (कहलाता है)। निगोद में जानेवाला हो तो भविद्रनिगोद। मोक्ष में जानेवाला हो तो भविद्र वर्तमान मोक्ष है। प्रवचनसार में आया है, साधु सिद्ध समान ही है। समझ में आया?

कहते हैं, '**पशुः**' **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूप को नहीं साध सकता है**। अभी ऐसी जो बात की, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अभेद है, उसे अज्ञानी साध नहीं सकता। समझ में आया? **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूप को नहीं साध सकता है**। देखो! जीवस्वरूप को (अर्थात्) जो अभेद चार कहे ऐसा। **कैसा है? 'परितः शून्यः' 'परितः शून्यः' सर्व प्रकार तत्त्वज्ञान से शून्य है**। या राग को अपना मानता है, यह पर्याय जितना अपने को मानता है, भेद को अपना मानता है... समझे? पर से अपना स्वरूप मानता है, वे सब '**परितः' तत्त्वज्ञान से शून्य है**। समझ में आया? स्पष्टीकरण दूसरा करेंगे। अपनी ज्ञानपर्याय में, यह स्पष्टीकरण करेंगे।

सर्व प्रकार तत्त्वज्ञान से शून्य है। किस कारण से? देखो! किस कारण से? यह

कारण बताते हैं। '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' बस! तत्त्वज्ञान से क्यों शून्य है? ओहोहो! **निर्विकल्प वस्तुमात्र के नहीं प्रतीति करने के कारण।** भाषा देखो! आहाहा! पहले जो अभेदरूप स्वद्रव्य कहा। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, फिर चारों का एकरूप। ऐसा जो स्वद्रव्य निर्विकल्प वस्तुमात्र है (उसकी) प्रतीति नहीं करनेवाला, नहीं अवलोकन करनेवाला। उसका अवलोकन करता नहीं अथवा प्रतीति करता नहीं, वह पशु तत्त्वज्ञान से शून्य है। समझ में आया?

निर्विकल्प वस्तुमात्र के नहीं प्रतीति करने के कारण। और कैसा है? यह प्रतीति करता नहीं तो है कैसा? कैसा करता है? अज्ञानी तत्त्वज्ञान से शून्य हो, वह कैसी प्रतीति करता है? समझ में आया? '**प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः**' वह स्वद्रव्य का अवलोकन। यह। '**अस्तितावश्चितः**' देखो! क्या कहते हैं? प्रत्यक्ष अर्थात् अपनी ज्ञानपर्याय में प्रत्यक्ष दिखता है और उसमें जानने में परद्रव्य दिखते हैं। वह परद्रव्य और पर्याय मानो मैं हूँ, उसमें मानो प्रत्यक्ष हो, यही प्रत्यक्ष है, यही चीज़ है। पर्याय चीज़ है और पर्याय में जो छह द्रव्य का, परद्रव्य का जानना होता है तो यह है, यह ही है, यह स्थिर है, यह है। त्रिकाल द्रव्य स्थिर है, उसकी दृष्टि नहीं है।

प्रत्यक्ष अर्थात्? प्रत्यक्ष अर्थात् हमको तो पर की सहायता बिना प्रत्यक्ष दिखता है। हमारी ज्ञान की पर्याय में यह ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है। यह दिखता नहीं? यह शरीर है, कर्म है, यह है, राग है, पुण्य है, यह है... यह है, एक समय की पर्याय है। एक समय की पर्याय तो प्रत्यक्ष अंशरूप दिखती है। उसे प्रत्यक्ष दिखती है, उसका कारण **जैसे का तैसा...** जैसी है, वैसी परचीज़, हों! **अमिट...** उसका नाश नहीं होता। मेरी पर्याय में वह दिखते हैं, बराबर दिखती है, ऐसा है, ऐसा है। **ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम उससे माना जो अस्तित्व...** उससे अपना अस्तित्व माना है। वह है, वह मैं हूँ, वह है उसमें मैं हूँ। **अस्तित्व उससे ठगा गया है ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव।** इस प्रकार अज्ञानी ठगाया है, अपने स्वरूप का भान नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १०, रविवार, दिनांक-१८-०८-१९६८, कलश-२५२, प्रवचन-२४९

स्याद्वाद अधिकार २५२ कलश है। देखो! अन्दर में। **उसके भेद चार हैं—** यहाँ से लेना है। है न उसमें, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, चार है। वस्तु के भेद चार हैं। उसमें अस्ति कौन और नास्ति कौन, यह बात बताते हैं। जो सम्यग्दर्शन का विषय '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ जो एक समय में ध्रुव अभेद एकरूप वस्तु है, उसी वस्तु का स्वरूप कहा जाता है और वही सम्यग्दर्शन का विषय है और वही सम्यग्दर्शन में आश्रय करनेयोग्य है। पहली चीज़ यह है।

कहते हैं कि चार प्रकार हैं, चार प्रकार बताते हैं, परन्तु चार में भी एक ही प्रकार लेना, यह बाद में कहेंगे। **ज्ञानमात्र जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति,...** देखो! भगवान आत्मा ज्ञान चैतन्य ज्ञायकस्वरूप से अस्ति है। स्वक्षेत्रपने अस्ति। अपनी चौड़ाई ऐसा जो स्वक्षेत्र, उससे वह है, अस्ति है। स्वकालपने अस्ति। अपनी वर्तमान पर्यायरूप से अस्ति अथवा त्रिकालरूप से अस्ति, ऐसा यहाँ तो लेंगे। यहाँ त्रिकालरूप तो लेंगे। और स्वभावरूप से अस्ति। अपनी शक्ति—गुण—स्वभाव सत् का सत्त्व, सत् का जो त्रिकाल सत्त्व, उसे यहाँ स्वभाव कहा जाता है।

और **परद्रव्यपने नास्ति,...** फिर इसका स्पष्टीकरण करेंगे। परक्षेत्ररूप से नास्ति, परकालरूप से नास्ति, परभावरूप से नास्ति। **उनका लक्षण—**स्वद्रव्यरूप से अस्ति का अर्थ क्या? कि **स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु,...** निर्विकल्प अर्थात् अभेद, भेद बिना अकेला वस्तु स्वरूप, जिसे यहाँ स्वद्रव्य कहते हैं। अकेली चीज़, अकेली। पर्याय नहीं, भेद नहीं, गुण-गुणी भेद भी नहीं। अकेली अभेद वस्तु, वह स्वद्रव्य। **निर्विकल्पमात्र वस्तु,...** यह अस्ति, यह भूतार्थ, यह शुद्धनय। शुद्धनय का विषय, ऐसा भी नहीं, यह स्वयं ही शुद्धनय। समझ में आया?

स्वद्रव्य निर्विकल्पमात्र वस्तु, वही स्वद्रव्य। नियमसार शुद्धभाव अधिकार में लिया है कि जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। क्योंकि जीव मैं हूँ—ऐसा जो विकल्प, (ऐसा) भेद करना, वह भी परद्रव्य

है और संवर, निर्जरा, मोक्ष की एक समय की पर्याय है, वह भी परद्रव्य है। क्योंकि जिसमें से अपनी नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, ऐसी जो संवर, निर्जरा आदि पर्याय होती है, उसमें से भी नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। जैसे परद्रव्य से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार क्षायिक आदि पर्याय हो, क्षायिक समकित हो, छठवें गुणस्थान का चारित्र वीतरागी पर्याय हो परन्तु उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, इस कारण से पर्याय को भी परद्रव्य कह दिया है। समझ में आया?

जिसमें से 'द्रव्यति इति द्रव्यम्' द्रवे। जो अन्तर में से शुद्धता को द्रवे, वह द्रव्य। तो पर्याय कुछ द्रवति नहीं। समझ में आया? संस्कृत में यह शब्द है। भाई! 'परमअध्यात्म तरंगिणी' में यह शब्द पड़ा है। द्रव्य—निर्विकल्प अभेदमात्र वस्तु द्रव्य। पर्याय द्रवती नहीं। पर्याय में से पर्याय आती नहीं, वह द्रवति नहीं, इसलिए पर्याय को भी यहाँ स्वद्रव्य भूतार्थ अस्तित्वनय की अपेक्षा से, शुद्धनय की अपेक्षा से इस पर्याय को भी परद्रव्य कहकर, अभूतार्थ कहकर, असत्यार्थ कहकर छोड़ दिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस अपेक्षा से भूतार्थ हो, 'है' अपेक्षा से हो। परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से तो यह असत्यार्थ और अभूतार्थ ही है। समझ में आया? नियमसार में यह तीन-चार जगह लिया है। शुद्धभाव अधिकार में परद्रव्य लिया है। प्रतिक्रमण अधिकार में लिया है, आत्मा एक ही उत्तम पदार्थ है। पर्यायादि उत्तम पदार्थ नहीं। परमभाव त्रिकाल चीज़, वही परमभाव है। चाहे तो क्षायिकभाव हो तो भी अपरमभाव है। समझ में आया?

ऐसी जो ध्रुव चैतन्य वस्तु, यह निर्विकल्पमात्र वस्तु वह द्रव्य। पंचास्तिकाय संग्रह की ५६वीं गाथा में भी ऐसा कहा, '**द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः**'। द्रव्य के स्वरूप की अस्ति, वह पारिणामिकभाव है। उत्पाद-व्यय को यहाँ गिनने में आया नहीं। समझ में आया? पंचास्तिकाय है न? ५६ (गाथा) है न? ५६। देखो! पंचास्तिकाय है न? '**द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः**' संस्कृत है। द्रव्य-आत्म। द्रव्य का स्वरूप। लाभ अर्थात् होना। द्रव्य का स्वरूप होना, अस्ति, वह पारिणामिक है, वह स्वद्रव्य है। समझ

में आया ? अपने भाई ! अर्थ किया है। आत्मलाभ=स्वरूपप्राप्ति। स्वरूप को धार रखना, अपने को धार रखना, अस्ति, द्रव्य अपने को धार रखता है अर्थात् स्वयं अस्ति है, इसलिए उसे 'परिणाम' पारिणामिक कहा जाता है। समझ में आया ?

नियमसार की ५० गाथा में तो परभाव, परद्रव्य और हेय (कहा है)। पाठ तो ऐसा है कि जो क्षायिक पर्याय है, उदयपर्याय है, उपशम हो, क्षयोपशम हो... तो पाठ में पहले ऐसा लिया है कि परद्रव्य है, परभाव है, हेय है। परन्तु टीका में उसका क्रम ऐसा लिया है कि परभाव है, इस अपेक्षा से परद्रव्य है, इस अपेक्षा से हेय है। अमृतचन्द्राचार्यदेव (पद्मप्रभमलधारिदेव ने) ऐसी शैली ली है। परभाव है। आहाहा ! समझ में आया ?

क्षणिक पर्याय, चारित्र की पर्याय जो क्षयोपशम छठवें में हो और क्षायिक समकित हो तो भी त्रिकाल द्रव्य की एक अपेक्षा से, त्रिकाल सत्यार्थ भूतार्थ शुद्धनय की अपेक्षा से एक समय की पर्याय, वीतरागी पर्याय हो तो भी उसे परभाव कहकर, परद्रव्य कहकर (हेय कहा है)। दूसरा बोल परद्रव्य है। श्लोक में पहला परद्रव्य है, फिर परभाव है। टीका में क्रम ऐसा लिया है कि परभाव है, इसलिए परद्रव्य है। परद्रव्य है, इसलिए हेय है। .... समझ में आया ?

यहाँ स्वद्रव्य इतना सिद्ध करना है। स्वद्रव्य (अर्थात्) क्या ? कि निर्विकल्पमात्र, निर्विकल्पमात्र अभेद एकरूप वस्तु, वह स्वद्रव्य। पर्याय का अंश और गुण-गुणी का भेद भी स्वद्रव्य नहीं। यह बाद में कहेंगे। समझ में आया ? **स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु का प्रदेश,...** यहाँ तो चार भेद पाड़ते हैं, हों ! चार भेद भी दृष्टि का विषय नहीं। यह तो समझाने के लिये (कहते हैं)।

पहले दृष्टान्त दिया था। आम होता है न ? आम। आम में चार प्रकार हैं— छिलका है, रस है, जाली है, गुठली है। ऐसे चार नहीं, ऐसे चार नहीं। वे तो भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु जैसे आम में वर्ण है, गन्ध है, रस है, स्पर्श है। ऐसे यह चार एकरूप में है। द्रव्य भी वह, क्षेत्र भी वह, काल भी वह और भाव भी वह। समझ में आया ? आम में तो चार बोल भिन्न पड़ते हैं। छिलका, जाली—रेशा, रस, छिलका और गुठली। चार (भेद) पड़ते हैं तो चार तो भिन्न चीज़ हो गयी। इसी प्रकार यह चार भिन्न नहीं। तो किस प्रकार

से चार हैं ? द्रव्य भी वही, क्षेत्र भी वही, काल भी वही और भाव भी वही। जैसे आम में वर्ण भी वही, गन्ध भी वही, रस भी वही, और स्पर्श भी वही। समझ में आया ?

कहते हैं कि, क्षेत्र—निज क्षेत्र आधारमात्र वस्तु का प्रदेश। गुण का-वस्तु का आधार स्वक्षेत्र, अपना आधार वह स्वक्षेत्र। बस ! वह अपना स्वक्षेत्र। और **स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था,...** स्वकाल। त्रिकाल वस्तु, वह स्वकाल। वस्तुमात्र की मूल अवस्था। अवस्था शब्द से पर्याय नहीं लेना। अवस्था—अव-स्थ। वस्तु अव-स्थ। निश्चय त्रिकाल रहती है, उसे वस्तु की अवस्था कहते हैं। समझ में आया ? स्वकाल (किसे) कहते हैं ? वस्तु की, वस्तुमात्र की। वस्तुमात्र की देखो ! इसमें कोई भेद नहीं। पूरी वस्तु एकरूप वही उसका स्वकाल। समझ में आया ? अवस्था शब्द है तो वह पर्यायवाचक शब्द नहीं है। अवस्था त्रिकालरूप निश्चय स्थ। अ, निश्चय स्थ। द्रव्य का एकरूप रहना, वह उसका स्वकाल है। समझ में आया ?

देखो ! यह सम्यग्दर्शन का विषय भूतार्थ शुद्धनय किसे कहते हैं, उसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया ? जो समयसार में लिया है कि '**ववहारोऽभूदत्थो**' ११वीं गाथा, पूरे तत्त्व का मर्म है। जैनदर्शन का, वस्तुदर्शन का यह मर्म है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार असत्यार्थ है, व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार भले सत्य हो, परन्तु आश्रय करनेयोग्य भूतार्थ की अपेक्षा से वह असत्यार्थ है। समझ में आया ? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ त्रिकाली एकरूप ज्ञायक वज्रबिम्ब ध्रुव सदृशरूप एकरूप, वही शुद्धनय है, वही शुद्धनय है। और '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ का आश्रय करने से, यह पर्याय आयी। आश्रय करनेवाली पर्याय आयी। '**भूदत्थ**' भूतार्थ का आश्रय करनेवाली पर्याय है। परन्तु आश्रय भूतार्थ का किया तो पर्याय में सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ?

यहाँ ऐसा कहते हैं, वस्तुमात्र मूल अवस्था। त्रिकाल एकरूप वस्तु। **स्वभाव अर्थात् वस्तु की मूल की सहज शक्ति।** वस्तु की मूल की सहज शक्ति। ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति आदि सम्पूर्ण शक्ति है। एक-एक शक्ति, ज्ञ-स्वभाव, वस्तु की ज्ञ शक्ति, यह ज्ञ है, वह सम्पूर्ण ही है। क्योंकि ज्ञ एकरूप है, अखण्डरूप है तो ज्ञ भी

सर्वज्ञ कहो, पूर्ण कहो, एकरूप कहो, अखण्ड कहो, ऐसी एक-एक शक्ति, ऐसी सर्व शक्ति का पिण्ड। वह सर्व शक्ति उसका स्वभाव है। समझ में आया?

एक-एक शक्ति पूर्ण है। जैसे कि ज्ञ स्वभाव, ज्ञ। ज्ञ में फिर अपूर्णता नहीं आती, अल्पता नहीं आती। ऐसा ज्ञ पूर्ण। ऐसा दर्शन-दृष्टि पूर्ण। ऐसे आनन्द पूर्ण, स्वच्छता पूर्ण, प्रभुता पूर्ण, कर्ता, कर्म, करण आदि ४७ शक्तियाँ जो हैं, ऐसी समस्त शक्तियाँ एक समय में पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण है। ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्डरूप भाव, उसे उसका स्वभाव कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

स्वभाव— **वस्तु की मूल की...** मूल की, मूल की। स्वाभाविक सहज अर्थात् स्वाभाविक शक्ति। यह चार भेद किये। भेद चार किये परन्तु चार भेद लक्ष्य करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। वह तो वस्तु की स्थिति बतायी। द्रव्य भिन्न है, क्षेत्र भिन्न है, स्वकाल भिन्न है, स्वभाव भिन्न है, ऐसा नहीं है। द्रव्य से देखो तो वही, क्षेत्र से देखो तो वही, काल से दुखों तो वही और भाव से देखो तो भी वही। समझ में आया? सूक्ष्म विषय है। अद्भुत आनन्दस्वरूप भगवान का भाव, उसकी स्वभाव शक्ति, ऐसी एक-एक शक्ति पूर्ण, उसका स्वभावभाव पूर्ण, उसका नाम स्वभाव है। यह चार बोल भिन्न करके बताये परन्तु चार बोल में यह द्रव्य है, यह क्षेत्र है, यह काल है, ऐसा (भिन्न-भिन्न) नहीं है। वह तो इसे बताया। द्रव्य भी वह का वही है, क्षेत्र देखो तो भी वही है, काल देखो तो वह वस्तु है, भाव देखो तो अकेली शक्ति है। तो भूतार्थ वस्तु जो है, उस वस्तु को स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव कहा गया है। भेद से कहा परन्तु अन्दर भेद नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अब कहते हैं, यह चौदह बोल हैं न? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के आठ बोल हैं, वे सब इसमें समाहित कर दिये हैं। श्लोक तो आठ आयेंगे परन्तु सब इसमें समाहित करके इस दृष्टि से पढ़ना, ऐसा कहते हैं। चौदह बोल हैं न? तत्-अतत्। यह चौदह बोल इसमें समाहित कर दिये हैं। तत्-अतत्, एक-अनेक, स्व से अस्ति, पर से नास्ति (के) ये आठ बोल हुए। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्ति, ये आठ बोल, और नित्य-अनित्य।—ऐसे चौदह बोल हैं।

यहाँ जो आठ बोल बतलाने हैं, उसकी शुरुआत करते हैं यहाँ। समझ में आया? कहते हैं, कि परद्रव्य किसे कहते हैं? भगवान आत्मा की अपेक्षा से परद्रव्य किसे कहते हैं? परआत्मा, पर परमाणु, सिद्ध भगवान और पंच परमेष्ठी, वे तो परद्रव्य हैं ही। समझ में आया? वे तो परद्रव्य हैं ही और कर्म आदि तो परद्रव्य हैं ही और विकल्प, राग उठता है, वह भी परद्रव्य है ही। अब अपना जो स्वद्रव्य है, उसमें सविकल्प भेद-कल्पना, भेद-कल्पना (करना) कि यह गुणी है और यह गुण है, ऐसी भेद-कल्पना (उठे), वह परद्रव्य है। समझ में आया?

शरीर, वाणी, कर्म, पंच परमेष्ठी आदि तो परद्रव्य है, उसकी तो यहाँ बात ही नहीं। वह तो स्पष्ट परद्रव्य है। स्पष्ट परद्रव्य है और उसमें व्यवहाररत्नत्रय के रागादि उत्पन्न होते हैं, व्यवहाररत्नत्रय के, वे भी परद्रव्य ही हैं। वह तो निकाल दिया। अब अपने में वस्तु जो है, निर्विकल्प वस्तु एक अभेद, अभेद में भेद करना कि यह गुणी और यह गुण, बस! इतना भेद करना, वह परद्रव्य है। क्योंकि भेद है, वह व्यवहारनय का विषय है। व्यवहारनय अभूतार्थ है तो यह परद्रव्य अपनी अपेक्षा से अभूतार्थ है। समझ में आया? गजब बात!

कहा न? वस्तु जो अभेद है, एकरूप में भेद करना कि यह गुणी अथवा इस गुणी का यह द्रव्य, इस गुणी का यह क्षेत्र, इस गुणी का यह काल और इस गुणी का यह भाव।—ऐसे भेद करना भी परद्रव्य है। परद्रव्य का अर्थ उसमें से अपनी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। तो जैसे परद्रव्य है, वैसे यह भेद परद्रव्य है। उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती तो उसे परद्रव्य कहकर, व्यवहार कहकर, अभूतार्थ कहकर, अपने में वह नहीं है। अभेद द्रव्य में भेद नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु ऐसी है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

एकरूप स्वरूप, उसमें कहते हैं कि एक में दो करना, दो (भेद) करना कि यह है, मैं हूँ, मैं हूँ—ऐसा भेद करना, वह परद्रव्य है। समझ में आया? चन्दुभाई! आहाहा! क्यों परद्रव्य है? कि अपनी अभेद चीज़ में वह वस्तु नहीं है। अभेद में भेद है नहीं और अभेद की दृष्टि से देखने पर अभेद में भेद दिखते नहीं। समझ में आया? इस कारण से

उस भेद को, गुणी-गुण के भेद को, हों! विकल्प को, कर्म को, शरीर को, परमेष्ठी को तो परद्रव्य कहा। शुद्ध-अशुद्ध द्रव्य पर है, वह तो परद्रव्य है ही।

भगवान आत्मा अभेद चिदानन्द निर्विकल्प वस्तु जो कही थी, ऊपर कही थी, देखो! निर्विकल्प वस्तु जो कही थी, निर्विकल्पमात्र वस्तु। उसके सामने सविकल्प भेद-कल्पना। उसके सामने (ऐसा लिया)। निर्विकल्पमात्र वस्तु वह स्वद्रव्य और सविकल्प भेद-कल्पना। कल्पना करना। अभेद में कुछ भेद होते नहीं। यह द्रव्य है, यह क्षेत्र है, यह आनन्द है—ऐसे भेद करना, वही परद्रव्य हो गया। समझ में आया? यह व्यवहारनय का विषय हुआ, असत्यार्थ हुआ, आश्रय करनेयोग्य रहा नहीं। समझ में आया? जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

कहते हैं, परद्रव्य। सविकल्प भेद, यह लाईन है न? लाईन नहीं चाहिए। परद्रव्य के पास जो लाईन है, वह तो बराबर है। परद्रव्य किसे कहते हैं? यह बराबर है। सविकल्प भेद-कल्पना जो बीच में लाईन है न? बीच में उस लाईन की आवश्यकता नहीं। सविकल्प भेदकल्पना, बस! इतना शब्द लेना। समझ में आया? यह परद्रव्य शब्द है न? परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेदकल्पना, बस! इतना। भेदकल्पना के साथ बीच में जो लाईन है, उसकी आवश्यकता नहीं। मूल में है नहीं। यह तो यहाँ छपाई है। समझ में आया? ओहोहो!

एक व्यक्ति तो कहता है, सच्चे शुद्ध देव, शुद्ध गुरु, परमेश्वर परद्रव्य? ऐसा प्रश्न हुआ था। (संवत्) २०१० के वर्ष में बोटाद में। देव सिद्ध भगवान, अरिहन्त परमेश्वर, गुरु वीतराग मुनि सन्त निर्ग्रन्थ, वे परद्रव्य? अनन्त बार परद्रव्य। वे तो परद्रव्य हैं ही। अपनी शुद्ध चीज़ एकरूप अभेद, उसमें एक विकल्प उठाना कि यह है, यह है। यह परद्रव्य है। समझ में आया? कहो, वजुभाई! आहाहा!

परद्रव्य सविकल्प भेदकल्पना। ओहो! ५०वीं गाथा में कहा। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव। चारों भाव पर्याय है तो चारों को हम परभाव कहते हैं। स्वभाव परमभाव त्रिकाली की अपेक्षा से त्रिकाल जो है, उस अपेक्षा से पर्याय

को परभाव कहते हैं। परभाव कहा तो परद्रव्य कहते हैं, परद्रव्य कहा तो हेय कहते हैं। तीन बोल ले लिये। (नियमसार) ५०वीं गाथा में तीन बोल (लिये)। पर्याय को— क्षयोपशम पर्याय को, क्षायिक पर्याय को परभाव कहकर वस्तु परमभाव की अपेक्षा से, एकरूप त्रिकाल परमभाव की अपेक्षा से एक अंश जो पर्याय है, उसे परभाव (कहते हैं)। उसकी अपेक्षा से परभाव है। समझ में आया? और परभाव है तो वहाँ परभाव है कहकर फिर परद्रव्य है, ऐसा कहा। परभाव है, इस कारण से परद्रव्य है। पश्चात् कहा, परद्रव्य है तो हेय है। ओहोहो! समझ में आया?

क्षायिक समकित की पर्याय, मुनि की छठवें गुणस्थान की चारित्र की वीतरागी पर्याय परभाव, परद्रव्य, हेय है। आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा ध्रुव परमात्मा वज्रबिम्ब जैसे अनादि-अनन्त एकरूप है, बस! वही स्वद्रव्य। जरा भी कल्पना से अन्दर से हटकर यह ऐसा है, यह गुणी ऐसा है, उसमें गुण है, उसमें गुण है, ऐसा आधार-आधेय गुण है, वह आधेय, गुणी आधार है—ऐसी आधार-आधेय कल्पना (उठना), वह परद्रव्य है। समझ में आया?

अनुभूति तो अभेद के आश्रय से होती है, वह कहीं भेद से होती है? शुरुआत उससे होती है। सम्यग्दर्शनरूप अनुभूति अथवा ज्ञानरूपी अनुभूति, ज्ञानानुभूति, नयानुभूति या द्रव्यानुभूति, वह तो अभेद के अवलम्बन से होती है। भेद के अवलम्बन से होती है? भेद के अवलम्बन से विकल्प उत्पन्न होता है और विकल्प में लाभ माने, वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी (ऐसा कहते हैं), व्यवहाररत्नत्रय है, वह हमको लाभ करेगा। व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम व्यवहार है तो निश्चय टिकता है। धूल में भी नहीं, सुन तो सही! हमारा व्यवहार चुस्त है तो निश्चय को बताता है, प्रसिद्ध करता है। देखो! हमारे पास निश्चय है। झूठ बात है। समझ में आया? परद्रव्य स्वद्रव्य को बताता है? और परद्रव्य से स्वद्रव्य की प्रसिद्धि होती है? गजब बात, भाई! यहाँ तो अभी यह अर्थ करते हैं। व्यवहाररत्नत्रय तो है नहीं, व्यवहाररत्नत्रय तो है नहीं। धूल में भी नहीं, सुन तो सही!

व्यवहाररत्नत्रय परद्रव्य है। पुद्गल के परिणाम हैं, अचेतन है। क्यों? चैतन्य की

किरण का उसमें अभाव है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श भले न हो। समझ में आया? परन्तु व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प में, राग में, चैतन्यबिम्ब भगवान आत्मा, जैसे सूर्य के प्रकाश की किरण में कोई काली किरण नहीं होती, सूर्य की किरण में कोई कोयले की किरण होती है। कोयले की एक भी किरण निकलती है? वह तो सीधे सफेद किरण है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में से सीधी किरण निकले तो सफेद—शुद्ध आनन्दकन्द की किरण निकले। रागादि किरण है, वह आत्मा की है ही नहीं। वह अन्ध कोयले की किरणें हैं। समझ में आया? व्यवहार इतना गले पड़ा है, इतना गले पड़ा है... आहाहा! व्यवहार पहले और निश्चय बाद में (ऐसा अज्ञानी कहते हैं तो) यहाँ कहाँ रहा? समझ में आया?

पहले अपने आ गया है। कर्ता-कर्म। सम्यग्दृष्टि को अपने शुद्ध द्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय उत्पन्न हुई, वह स्व और वही पर्याय में दूसरा एक व्यवहार का भाग आ गया, उसी पर्याय में। एक पर्याय के दो भाग। जितनी स्वद्रव्य के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता प्रगट हुई, वह स्व चीज़। उसी पर्याय में व्यवहार का, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, वह बहिरचीज़ अन्तर चीज़ नहीं। समझ में आया? एक पर्याय के दो भाग में एक पर्याय (भाग) शुद्ध है, वह अपने में है, अशुद्ध है, वह बहिरस्थित है। आहाहा! यह कर्ता-कर्म (अधिकार) में आ गया है। ७६-७७-७८ (गाथा)। बहिरस्थित है।

भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति, ज्ञायक प्रभु अपने से आश्रय लेकर जो शुद्धता प्रगट हुई, वह अपनी पर्याय अपनी, बस, इतना। तथापि वह पर्याय स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य (कही जाती है)। आहाहा! और उस पर्याय की अपेक्षा से जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह बहिरस्थित है। बहिरस्थित पुद्गल (द्रव्य) के परिणाम हैं। उसे ज्ञाता-ज्ञान की पर्याय अपने में रहकर, भिन्न रखकर जानती है। भिन्न रखकर जानती है कि है। वह पर को जानना भी व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा! भगवान! उसकी चीज़ देखो! चैतन्य चमत्कार पूरी सृष्टि पड़ी है।

यह परमात्मा स्वयं कहते हैं और यह परमात्मा अन्दर में से पुकार करता है कि

मैं तो अभेद एकरूप हूँ। आहाहा! और परद्रव्य सविकल्प भेदकल्पना। उसमें एक समय की पर्याय को भिन्न करना... समझ में आया? गुण-गुणी के भेद, मन के संग से चलते विचार। मन का संग हुआ तो भेद पड़ा तो राग आया, राग आया तो मन का संग हो गया। स्वभावसंग छूट गया। समझ में आया?

कहते हैं कि अभेद वस्तु तो स्वसंगी चीज़ है। उसमें भेद करना, उसे यहाँ परद्रव्य कहा गया है, और परद्रव्य की स्वद्रव्य की नास्ति। अभूतार्थ है, उसकी भूतार्थ में नास्ति है। व्यवहार है तो निश्चय में नास्ति है। वह अशुद्धनय है तो शुद्धनय में नास्ति। समझ में आया? गोदिकाजी! बहुत सूक्ष्म है। तुम्हारे लिये रखा है। देखो! लालचन्दभाई ने फिर से लिवाया है। समझ में आाय? ओहो!

राजमलजी अपनी कल्पना से नहीं लिखते, हों! वस्तु की स्थिति है। कोई कहे, इसमें कहाँ ऐसा है? ऐसा है। यह तो पहले से कहते हैं, पर्यायमात्र को वस्तुरूप मानता है। भाई! दूसरी लाईन में ऐसा कहा है, दूसरी लाईन। पर्याय भी परद्रव्य है। लिखा है, देखो! **पर्यायमात्र को वस्तुरूप मानता है,...** दूसरी लाईन में है। वह पर्याय को मानता है, वही परद्रव्य को मानता है, ऐसा कहते हैं। एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने और उस पर्याय में छह द्रव्य के ज्ञेयाकाररूप परिणमन है तो मैं हूँ, ऐसा मानता है। ऐसा है नहीं। समझ में आया? अकेला चिदानन्द ज्ञायकस्वरूप अभेदरूप की अपेक्षा से जितने भेद करो, वह सब परद्रव्य है। परद्रव्य से अपने को बिलकुल लाभ नहीं होता। जैसे पर परमात्मा है, उनसे अपने में लाभ नहीं होता, उसी प्रकार स्वद्रव्य में भेद करने से अपने को लाभ नहीं होता, भेद करने से नुकसान होता है। समझ में आया? 'तदात्वे' जाना हुआ प्रयोजनवान है। इतना (समयसार की) १२वीं गाथा में लिया है। उस समय जितने भेद आदि लक्ष्य में आवे, (उतना) जानना प्रयोजनवान है, आदरना प्रयोजनवान नहीं। समझ में आया?

परद्रव्य सविकल्प भेदकल्पना, हों! भेदकल्पना शब्द प्रयोग किया है। भेद हो सकता नहीं। पण्डितजी! तुम्हारे सामने (प्रश्न) आया था न कि कल्पना, कल्पना क्या करते हो? खानिया की चर्चा में आया है। (पण्डितजी ने) निज कल्पना लिखा था।

कल्पना... कल्पना, यह कल्पना देखो! पण्डितजी! ऐसा लिखा है। सुन न! यह देखो! क्या शब्द पड़े हैं? उसमें है तो कल्पनामात्र भेद है। अभेद है, अभेद में भेद है। अभेद में भेद कल्पनामात्र है। ओहो! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प वह तो कल्पनामात्र है, सुन न! अपने में है कहाँ? समझ में आया? मूलचन्दभाई! आहाहा! ऐसा रणकार बजता है... आज मूलचन्दभाई ने कहा था, रणकार बजने से अहंकार टूट जाता है। इसी प्रकार द्रव्य का रणकार बजने से भेद की कल्पना का अहंकार छूट जाता है। समझ में आया? सूक्ष्म है, सेठ!

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभेद की दृष्टि करना। जहाँ भगवान विराजता है, वहाँ जाना, ऐसा कहते हैं। करना क्या?

मुमुक्षु : भगवान की खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बताया न! अभेद भगवान चिदानन्द परमात्मा विराजता है। जिसकी शक्ति में अनन्त परमात्मा विराजते हैं। आत्मा में अनन्त सिद्ध विराजते हैं। क्योंकि सिद्ध तो एक समय की पर्याय है। सिद्ध अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि अनन्त गुण की पर्याय है परन्तु एक समय की पर्याय है। ऐसे अनन्त सिद्ध आत्मा को एक-एक गुण में स्थित हैं। एक समय का केवलज्ञान, ऐसा सादि-अनन्त केवलज्ञान। भूतकाल से भविष्यकाल अनन्तगुना है। एक केवलज्ञान जब से उत्पन्न हुआ, दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा। उसी जाति का हो परन्तु दूसरा है। ऐसा सादि-अनन्त भूतकाल से अनन्तगुना काल, ऐसा एक केवलज्ञान। ऐसे एक ज्ञानगुण में ऐसी केवलज्ञान की पर्याय वर्तमान में अन्दर विराजती है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा आनन्दगुण भगवान में विराजता है। आत्मा को जो आनन्द अनन्त चतुष्टय में केवली को प्रगट हुआ, वह आनन्द एक समय रहता है। अनुभव तो एक समय का है। दूसरे समय में दूसरा। सादि-अनन्त। भूतकाल से अनन्तगुना आनन्द का काल, वह सब आनन्द की पर्याय वर्तमान में अपने आनन्दगुण में पड़ी है। अपने आनन्दगुण में शक्तिरूप पड़ी है। ऐसा दर्शन, ऐसा वीर्य, ऐसी स्वच्छता, ऐसी प्रभुता इत्यादि। एक

आत्मा में अनन्त सिद्ध परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे स्वद्रव्य कहते हैं। उसमें भेद पाड़ना। आहाहा! सविकल्प भेदकल्पना। कल्पना है, वस्तु तो वस्तु है, अभेद है। यह भेदकल्पना व्यवहार हो गया, एक न्याय से झूठा हो गया। अरेरे! झूठा? इसमें 'झूठा' (शब्द) बहुत आता है न! झूठा है, सुन तो सही।

अपने अन्तर आत्मा को आश्रय करने में तो एक अभेद चीज़ काम आती है। वह (भेदकल्पना) तो काम आती नहीं, निरर्थक चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शोभालालजी! यह तो अलौकिक मार्ग है। आहाहा! सेठ कहते हैं, मार्ग तो ऐसा ही है। क्या? ओहोहो! गजब बात डाली है। पूरा जैनदर्शन का आत्मा का रहस्य रखा है।

नौ तत्त्व परद्रव्य कहा है। समझ में आया? इस नौ तत्त्व के अनुभव को मिथ्यात्व कहा है। भेद है न? भेद। नौ का भेद पहले आ गया है। जीव अधिकार में आ गया है, कलश में आ गया है। ओहोहो! नौ तत्त्व के अनुभव को मिथ्यादृष्टि कहते हैं। भेद का अनुभव? वस्तु अभेद है, अनुभूति का विषय तो वह है। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग की प्रणालिका तो देखो!

सर्वज्ञ परमेश्वर जिनकी एक समय की पर्याय में अनन्त परमात्मा देखने में आये। अपनी एक समय की पर्याय में अनन्त केवली, सिद्ध देखने में आये और अनन्त सर्वज्ञ स्वभावी जीव देखने में आये। सर्वज्ञ स्वभावी। आहाहा! और प्रत्येक परमाणु आदि पूर्ण वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाले स्वभाविक देखने में आये। वे जड़ के पूर्ण स्वभाववाले, यह चैतन्य के पूर्ण स्वभाववाले। ऐसे अनन्त भगवान ने केवलज्ञान में देखे हैं। ऐसा वाणी द्वारा आया, आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर उस वाणी के कर्ता नहीं। समझ में आया?

यह चर्चा पण्डितजी के साथ हुई थी। दिव्यध्वनि प्रमाणित स्व से है या पर से है? अरे! चल न! पर से प्रमाणित होती है! परमाणु में स्वपर वार्ता कहने की सामर्थ्य स्वत: रखता है। केवलज्ञान की अपेक्षा और जीव की अपेक्षा बिना। भाषा में अपने में स्व-पर वार्ता कहने की अपने में अपने से, अपने कारण से षट्कारक से सामर्थ्य रखता है। केवलज्ञान पास में है तो उसमें भाषा की पर्याय में केवलज्ञान की मदद मिले, ऐसा

है नहीं। आहाहा! समझ में आया? पदार्थ किसे कहते हैं? भाषा जो परिणमती है, उसकी आदि में केवलज्ञान है? पर्याय की आदि में परमाणु, मध्य में परमाणु और अन्त में परमाणु। आहाहा! ऐसी वस्तु की स्वतः चीज़ है। भगवान की वाणी में ऐसा कहा, वह व्यवहार का कथन आया। भगवान के तो ज्ञान और आनन्द थे, और वाणी भगवान की कहाँ से आयी?

यह एक जगह आया है न? पण्डितजी ने डाला है न? ज्ञान कारण और भाषा कार्य। ऐसा है न? सामनेवालों ने डाला है। देखो! उसमें ऐसा लिखा है, ज्ञान कारण और भाषा कार्य। उसमें क्या परन्तु वह व्यवहार है या निश्चय है? किस नय का कथन है? ज्ञान कर्ता और भाषा कार्य? कहाँ से आया? आहाहा! वह तो असद्भूत से कथन है, वस्तु ऐसी है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, परद्रव्य। ओहोहो! सविकल्प भेदकल्पना। व्यवहार हो गया, झूठा हो गया। त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा, हों! अपनी अपेक्षा से हो, भूतार्थ हो, 'है' की अपेक्षा से हो। परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा हो गया, सत् की अपेक्षा से झूठा हो गया, ध्रुव की अपेक्षा से क्षणिक हो गया, स्व की अपेक्षा से पर हो गया, स्वद्रव्य की अपेक्षा से भेद परद्रव्य हो गया। समझ में आया? समझ में आये ऐसी बात है, हों! न समझ में आये ऐसी कोई सूक्ष्म भाषा नहीं। भाषा तो बहुत सादी आती है।

अब परक्षेत्र। भगवान आत्मा का परक्षेत्र क्या? **जो वस्तु का आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था...** यह तो स्वक्षेत्र कहा था। स्वक्षेत्र की व्याख्या पहले की। **वही प्रदेश...** इतना भेद है। **वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना से...** सविकल्प भेदकल्पना से। देखो! यहाँ भेदकल्पना के साथ की लाईन निकाल दी। **वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना से परप्रदेश बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है।** यह तो कल्पना से भेद डालना कि यह प्रदेश है, यह असंख्य है, यह संख्य है, यह भेद है—ऐसे बुद्धिगम्य में विकल्प से (कल्पना करना) वह परक्षेत्र, वह परप्रदेश। स्व की एकता में भिन्न करके लक्ष्य करना, वह परप्रदेश है, परक्षेत्र है, अपने क्षेत्र में वह है नहीं।

वास्तव में तो असंख्य प्रदेश है, वह एक प्रदेश है, एक प्रदेश है। एक वस्तु। इस

अपेक्षा से, हों! असंख्य प्रदेश हैं। परन्तु पंचास्तिकाय में लिया है। एक प्रदेशरूप, एक वस्तु, एक अखण्ड। ऐसे शब्द हैं। एक अखण्ड प्रदेश, एकरूप है। उस अखण्ड प्रदेश में भेद करना कि यह क्षेत्र यह है, वह परक्षेत्र हो गया। समझ में आया? वह परक्षेत्र आश्रय करनेयोग्य नहीं है। स्वक्षेत्र में परक्षेत्र है नहीं। बुद्धिगोचर ऐसा करना कि यह... यह... (प्रदेश), यह असंख्य ऐसा भेद करना, ऐसा बुद्धिगोचर में लेना, वह स्वक्षेत्र में नहीं है। समझ में आया? छोटाभाई! भारी सूक्ष्म।

परक्षेत्र अर्थात् जो वस्तु का आधारभूत प्रदेश... थे, **वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना से परप्रदेश बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है।** बुद्धिगोचररूप से कहे जाते हैं, यह विकल्प से कहे जाते हैं, वस्तु ऐसी नहीं है।

अब परकाल। देखो! यह सर्व परद्रव्य, परक्षेत्र अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, व्यवहारनय का विषय है, आश्रय करनेयोग्य नहीं, स्व में है नहीं। स्वद्रव्य में परद्रव्य नहीं, स्वक्षेत्र में परक्षेत्र नहीं। ओहोहो! **परकाल अर्थात् द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था,...** अर्थात् द्रव्य का मूल स्वरूप। अवस्था शब्द से त्रिकाली। निर्विकल्प वस्तुमात्र एक वस्तु, वह उसका स्वकाल। **वही अवस्थान्तर...** अवस्थान्तर। इस अवस्था का अंश जो एक समय का है, त्रिकाल में से एक समय का भेद करना, वह परकाल है। वह परकाल है। परकाल एक समय की अवस्था त्रिकालरूप अवस्था में है नहीं। त्रिकालरूप अस्ति में, त्रिकाल अवस्था, अवस्था अव—निश्चय स्थ जो वस्तु है, उसमें एक समय की पर्याय परकाल गिनकर व्यवहार कहकर छोड़ दिया है। असत्यार्थ है। सत्यार्थ त्रिकाल वस्तु है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? यह तो अपने दो दिन चला था, आज तीसरे दिन चलता है।

परकाल (अर्थात्) यहाँ कालद्रव्य की बात है नहीं, हों! कालद्रव्य असंख्य है न? वह परकाल तो कहीं रह गया। दूसरी बात, उससे जितने परद्रव्य हैं, उतनी वर्तमान अवस्था है, वह भी परकाल है। समझ में आया?

परकाल के तीन भेद, परक्षेत्र में तीन भेद, परद्रव्य में तीन भेद। परद्रव्य में तीन भेद (१) परद्रव्य है, वह तो परद्रव्य है ही। (२) विकल्प भी परद्रव्य है और

(३) भेदकल्पना करना, वह भी परद्रव्य है। इसी तरह असंख्य प्रदेश स्वक्षेत्र में (१) परक्षेत्र जो पर परमाणु आदि के हैं, वह तो परक्षेत्र है ही। समझ में आया? (२) एक विकल्प का क्षेत्र है, वह भी परक्षेत्र है, उपाधि-मैल का क्षेत्र परक्षेत्र है। संवर में आता है न? परक्षेत्र है। अशुद्धि की उत्पत्ति (होती है, वह) परक्षेत्र है। परद्रव्य और परक्षेत्र है। उसे परक्षेत्र कहा है। 'संवर अधिकार' में जहाँ भेदज्ञान की शुरुआत की तो वस्तु के प्रदेश से उसे भिन्न कह दिया। अशुद्धता का उत्पन्न होना, वह क्षेत्र ही पर है, परप्रदेश है, परवस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, वह क्षेत्र तो भिन्न है। अब काल (१) पर का जो परकाल है, कालद्रव्य, वह तो परकाल है ही। (२) अनन्त द्रव्य की वर्तमान अवस्था है, वह अपनी अपेक्षा से परकाल है। (३) अब अपनी त्रिकाल चीज़ है, उसमें एक समय की अवस्था भेद करना, वह परकाल है। नवरंगभाई! गजब! समझ में आया?

स्वद्रव्य वस्तु। विकल्प भी परद्रव्य और गुण-गुणी की भेदकल्पना भी परद्रव्य। परद्रव्य के तीन भेद। वे तीनों स्वद्रव्य में नहीं। परक्षेत्र में तीन प्रकार।

मुमुक्षु : गुण-गुणी का भेद...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प हुआ न! गुण-गुणी का भेद है, वह परद्रव्य हो गया। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प। वे सीधे व्यवहार-रत्नत्रय के (विकल्प हुए) और यह तो गुण-गुणी के भेदरूप विकल्प। यह तो तीसरा (भेद) हुआ। व्यवहाररत्नत्रय, पंच महाव्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र वाँचना आदि वह विकल्प अत्यन्त पर में गये। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा त्रिकाल वस्तु है, वह स्वकाल। इस अपेक्षा से एक समय की अवस्था भी परकाल है, अभूतार्थ है। तो पर कालद्रव्य है, वह तो अभूतार्थ, पर है ही और अनन्त आत्मायें और परमाणुओं की वर्तमान अवस्था जो है, वह उनका स्वकाल, अपनी अपेक्षा से परकाल। वह तो दूर रह गये। परन्तु अपनी निर्मल वस्तु की अपेक्षा से एक समय की अवस्था परकाल है। आहाहा! समझ में आया? वह अभूतार्थ है। पर्याय व्यवहारनय का विषय है न! पर्याय व्यवहारनय का विषय है, द्रव्य जो

त्रिकाल है, वह निश्चयनय का विषय है। पर्याय कहो या व्यवहारनय कहो, एक ही बात है। समझ में आया? ओहोहो!

परकाल (अर्थात्) वस्तु में **अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना से परकाल कहलाता है।** कहो, समझ में आया? वह परकाल आदरणीय नहीं। देरी हो गयी सबको। पूरा हुआ अब यहाँ। समझ में आया? अब परभाव थोड़ा ले लेते हैं साथ में। परभाव (अर्थात्) **द्रव्य की सहज शक्ति के पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना,...** देखो! भगवान आत्मा का त्रिकाली सहज स्वभाव एकरूप भाव, वह स्वभाव है। उसमें गुणभेद की कल्पना करना कि यह ज्ञान अंश है और यह आनन्द अंश है—ऐसे भेद करना, वह परभाव है।

मुमुक्षु : परभाव क्यों?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि पर्याय में भेद हो गया। गुण में एकाकार में भेद हो गया, इसलिए परभाव। परभाव के तीन प्रकार। परभाव के तीन प्रकार (१) पद्रव्य आदि वस्तु का भाव वह परभाव। (२) पुण्य-पाप के भाव उत्पन्न होते हैं, वह परभाव। समझ में आया? और (३) अनन्त गुण का एकरूप है, उसमें गुणभेद, अंशभेद करना (वह परभाव है)। उसमें लिखा है न प्रश्न। प्रत्येक में अन्तर है। उसमें परकाल कहा जाता है और **अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना,...** अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण है, ऐसी कल्पना (होती है), वह परभाव है। आहाहा! चीज़ ऐसी है। समझ में आया? आहाहा!

देखो! भगवान आत्मा स्वभाव एकरूप स्वभाव, वही वस्तु है। वही अभेद। द्रव्य भी वही, क्षेत्र भी वही, काल भी वही और भाव भी वही। चार के फिर भेद नहीं करना। अभेद एकरूप वस्तु है, वही सम्यग्दर्शन का विषय और आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, परभाव (अर्थात्) **द्रव्य की सहज शक्ति के...** भगवान आत्मा की सहज शक्तियाँ जो एकरूप वस्तु है, उसमें **अनेक अंश द्वारा...** देखो! पर्याय के भेदरूप अनेक अंश। भेदरूप अनेक। भेदरूप अनेक अंश की कल्पना परभाव है। समझ में आया? वह परभाव आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ तो देख!

अभेद चिदानन्द परमात्मा विराजता है, बस! उसका आश्रय कर। उसे भेंट, उसको भेंट दूसरा कोई भेंट करनेयोग्य नहीं।

मुमुक्षु : मन से करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन नहीं, विकल्प से नहीं। वह तो परद्रव्य हो गया। मन भी परद्रव्य और विकल्प भी परद्रव्य। इससे अनुभूति नहीं होती। आहाहा! यह तो पहले से लिया है। जो त्रिकाल ज्ञायक (भाव) है, उसे अपनी पर्याय से अभेद कर डालना। विकल्प की बात नहीं, मन की बात नहीं, राग की बात नहीं। समझ में आया?

उसे परभाव कहा जाता है। आहा! स्पष्टीकरण किया। अभी तो शब्दार्थ करने से पहले भावार्थ कह दिया। इसका भावार्थ किया। देखो! पहले लिखा है—भावार्थ। अभी शब्दार्थ बाद में कहेंगे। परन्तु हम जो कहते हैं, उस अपेक्षा से सब वाँचन करना, ऐसा कहते हैं। यह भावार्थ पहले लिखा है। अभी तो पहले भावार्थ लिखा, फिर शब्दार्थ लिखेंगे।

'**पशुः नश्यति**', '**पशुः नश्यति**' पशु (अर्थात्) 'पश्यते बध्यते इति पशु' अपने अभेद द्रव्य का आश्रय छोड़कर जो कोई भेद के आश्रय में पड़े हैं, वे पशु हैं, 'बध्यते इति पशु'। मिथ्यात्व से बन्ध होता है। और पशु (अर्थात्) वह तिर्यंच योनि में जानेयोग्य है तो निगोद भी पशु है, वह निगोद में जानेयोग्य है। समझ में आया? बध्यते' संस्कृत में है। 'पश्यति बध्यते इति पशु' संस्कृत में है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जो अभेदरूप एकस्वरूप है, उसे अपनी अस्ति नहीं मानकर... द्रव्य से अस्ति है न? परद्रव्य से नास्ति और स्वद्रव्य से अस्ति का श्लोक है। उसे अपनी अस्ति नहीं मानकर... परद्रव्य से अस्ति अथवा पर्याय में परद्रव्य का ज्ञान हुआ, इससे अस्ति, अथवा गुण-गुणी के भेद किये, उससे अस्ति, जो अपना मानता है, वह पशु स्वभाव से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व का बन्धन करता है। आहाहा! समझ में आया?

एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूप को नहीं साध सकता है। देखो! ऐसी अभेद चीज़ है, वह स्व से अस्ति है, स्व से अस्ति है। उसे साध नहीं सकता। पर से

अस्ति है, ऐसा मानता है। भेद से मैं हूँ, भेद से मैं हूँ, विकल्प से मैं हूँ, पर्याय से मैं हूँ, ऐसा मैं हूँ। समझ में आया ? एक समय की पर्याय से मैं हूँ। एक समय में छह द्रव्य का ज्ञान होता है। छह द्रव्य का एक समय की पर्याय में ज्ञान (होता है वह) मैं हूँ। छह द्रव्य का ज्ञान हुआ उतना मैं हूँ, वह पशु है। अपने स्वद्रव्य का अस्तित्व अभेद को छोड़कर, पर्याय परद्रव्य है, विकल्प परद्रव्य है, उससे अपना अस्तित्व मानता है वह '**पशुः नश्यति**'। मिथ्यात्वभाव से स्वरूप के अस्तित्व का नाश करता है। समझ में आया ? लो, एक घण्टा हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक-१९-०८-१९६८, कलश-२५२, प्रवचन-२५०

यह स्याद्वाद अधिकार चलता है। २५२ कलश है। चार बोल हो गये न अस्ति-नास्ति के? पश्चात् '**पशुः नश्यति**' यहाँ से शुरु होता है। '**पशुः नश्यति**' अर्थात् क्या? 'पश्यते बध्यते इति पशु' अपना स्वभाव द्रव्य स्वभाव शुद्ध ध्रुव एकरूप है, उसे न मानकर एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान होने पर वह छह द्रव्य और परद्रव्य वह मैं हूँ अथवा एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान जो ज्ञेयाकार ज्ञान पर्याय परिणमती है, उतना पर्यायमात्र मैं हूँ, वह पशु द्रव्य की दृष्टि छोड़कर अपने स्वभाव से भ्रष्ट है।

फिर से '**पशुः नश्यति**' '**परितः शून्यः**' इसके साथ सम्बन्ध है। चार बोल कहे थे कि द्रव्य स्वरूप जो अखण्ड अभेद, क्षेत्र अभेद, काल से त्रिकाल अभेद, और भाव से त्रिकाल अस्तिरूप अभेद। ऐसी दृष्टि न करके वर्तमान दूसरी चीज़ें हैं, उनकी अस्ति स्थिरता देखकर मानो वे स्थिर हैं, वह मैं हूँ। वर्तमान ज्ञान की अवस्था परलक्ष्य में जाती है, इससे चीज़ों की स्थिरता नित्यता कायम टिकना देखकर वह मैं हूँ, ऐसा अज्ञानी मानता है अथवा अपनी पर्याय में वह ज्ञेयाकार ज्ञान पर्याय, छह द्रव्य जो वस्तु है, इस प्रकार से ज्ञान पर्यायरूप से परिणमता है तो उस पर्याय जितना मैं हूँ, वह भेदरूप पर्याय है, उतना मैं हूँ, वह '**पशुः नश्यति**' समझ में आया?

'**परितः शून्यः**' **सर्व प्रकार तत्त्वज्ञान से शून्य है**। अर्थात् भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द प्रभु ऐसा जो अपना द्रव्यस्वभाव उससे '**परितः शून्यः**' सर्वथा प्रकार से खाली है। एक समय की पर्याय को ही अपना स्वरूप पूरा पूर्ण मानता है। समझ में आया? वह दूसरी लाईन में आ गया है। **पर्यायमात्र को वस्तुरूप मानता है,...** इस श्लोक की दूसरी लाईन। परवस्तु को अपनी मानता है अथवा परवस्तु वह मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह तो स्थूल है। परन्तु परवस्तु का छह द्रव्य का ज्ञान एक समय की ज्ञान की पर्याय में आ जाता है। एक समय में छह द्रव्य का (ज्ञान) आ जाता है और उस ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य का (ज्ञान) आने पर उस पर्याय पूरा उतना मैं हूँ, वह मैं हूँ ऐसा

माननेवाला तत्त्वज्ञान से '**परितः शून्यः**' वस्तु की दृष्टि से खाली है। समझ में आया? गोदीकाजी! ऐसी बात है।

'**पशुः नश्यति**' '**परितः शून्यः**' भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द प्रीाु द्रव्य स्वरूप, ध्रुव स्वरूप, ज्ञायक स्वरूप, नित्य स्वरूप, परम स्वभावभाव स्वरूप वह द्रव्य है। उस द्रव्य की दृष्टि नहीं करके अपनी चलती एक समय की पर्याय में सब है, और उतना मैं, यह पर्यायबुद्धि द्रव्यदृष्टि से भ्रष्ट है। समझ में आया? पर्याय में एक समय में सब ज्ञात होता है न यह? और इसलिए मानो कि यह सब जाना और उस पर्याय जितना मैं, एक समय का अंश उतना मैं। '**पशुः नश्यति**' '**परितः शून्यः**' वस्तु त्रिकाल ज्ञायकभाव की दृष्टि नहीं करके अपना अस्तित्व जो पूर्ण है, उसके अस्तित्व की श्रद्धा और अनुभव नहीं करके उस पर्यायमात्र माननेवाला, उसे यहाँ पशु कहकर स्वरूप से भ्रष्ट है, मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी है। समझ में आया? क्या बात थोड़ी है?

सर्व प्रकार से '**परितः**' है न? '**परितः**' शब्द उपसर्ग है न? सर्व प्रकार से शून्य, तत्त्वज्ञान से शून्य। एक समय की पर्याय को अपना (मानता है)। पर को अपना माने, पररूप माने, वह तो बहुत स्थूल बात है। आहाहा! समझ में आया? कर्म मेरे, शरीर मेरा, पैसे मेरे, परिवार मेरा, यह मैं... यह मैं... यह मैं... यह तो बहुत स्थूल हो गया। और विकल्प मेरा, शुभराग जो उठता है, वह मेरा, वह इसने पर को ही अपना माना है, स्व को माना नहीं। तदुपरान्त यहाँ तो बात है अब।

परवस्तु और विकल्प, तदुपरान्त अपनी ज्ञान की वर्तमान पर्याय का उघाड़ क्षयोपशम भाव की दशा है, एक समय में, वह पर्याय वह मैं हूँ, ऐसा माननेवाला द्रव्य वस्तु के स्वरूप से, श्रद्धा से शून्य है। पण्डितजी! समझ में आया? अमरचन्दभाई! कहो, समझ में आया या नहीं? शोभालालजी! थोड़ा ध्यान रखना, गुजराती है। बीच में आये थे आठ दिन। गुजराती, वहाँ कहाँ हिन्दी होता था। 'वडिया'? वडिया, वांकानेर, मोरबी, आठ दिन दोनों भाई आये थे। वहाँ तो गुजराती चले। समझना, नहीं तो अपने यहाँ बीस दिन माँगना। हिन्दी जब चले तब, परन्तु तब क्या करना? इसे निवृत्ति नहीं मिलती। कहो, समझ में आया? आहाहा! बहुत संक्षिप्त में (कहा है)।

भगवान आत्मा, अब इसका न्याय देते हैं, देखो! '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' यह कारण देते हैं। कारण क्या? किस कारण से '**परितः शून्यः**'? '**पशुः नश्यति**' किस कारण से? यह कारण देते हैं कि पशु अर्थात् मिथ्यात्व से बन्धन में पड़नेवाले, वह '**परितः शून्यः**' तत्त्व से शून्य है। किस कारण से? किस कारण से? कि '**स्वद्रव्यान-वलोकनेन**' आहाहा! '**स्वद्रव्य**' अर्थात् **निर्विकल्प वस्तुमात्र के...** भगवान निर्विकल्प अभेद वस्तु को '**अनवलोकनेन**' '**अनवलोकनेन**' अर्थात् उसे नहीं जानता अथवा **प्रतीति करता नहीं,...** '**अनवलोकनेन**' का अर्थ किया। ऐसा तो यह पूर्ण ज्ञायक है, उसे अवलोकता नहीं, देखता नहीं, ज्ञेय बनाता नहीं। द्रव्य स्वभाव अभेद है, उसे ज्ञेय बनाता नहीं। '**अनवलोकनेन**' अर्थात् कि उस द्रव्य की प्रतीति करता नहीं, अर्थात् कि द्रव्य का आश्रय और सत्कार, स्वभाव का सत्कार करता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

स्वद्रव्य। वापस स्वद्रव्य। परद्रव्य सर्वज्ञ आदि परमेश्वर, सिद्ध आदि हो, वे तो उनके, परद्रव्य हैं। परद्रव्य तो नहीं, परद्रव्य तो नहीं परन्तु परद्रव्य सम्बन्धी अपने में ज्ञान की पर्याय में स्वद्रव्य ज्ञात होता है, इतना तो एक समय की क्षयोपशम ज्ञान की एक समय की पर्याय का इतना स्वभाव है कि छह पूरे लोकालोक और छह द्रव्य को जाने, इतना तो एक पर्याय का स्वभाव है। एक पर्याय का, हों! आहाहा! तो इतनी एक समय की पर्याय को भी अपनी माने इतनी, हों! छह द्रव्य, उसके गुण-पर्याय, लोकालोक क्षेत्र, तीन काल आदि ज्ञान की एक समय की पर्याय में इतनी जानने की भी क्षयोपशम ज्ञान की भी पर्याय में सामर्थ्य है। इतनी पर्याय में यह सब है, ऐसा जाना वह ज्ञेयाकार ज्ञान पर्याय हुई, उतना वह मैं, (ऐसा माननेवाले) '**परितः शून्यः**' तत्त्वज्ञान से शून्य है। आहाहा! समझ में आया? धन्नालालजी! आहाहा!

'**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' अर्थात् कि पर्याय को, परद्रव्यरूप जो पर्याय है, वह पर्याय परद्रव्य है वास्तव में, परद्रव्य को जानने की सामर्थ्यवाली एक समय की पर्याय वह वास्तव में परद्रव्य है। त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से एक समय का अंश भी परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? उसे अवलोकता हुआ, उसे मानता हुआ स्वद्रव्य को अनअवलोकता है। भगवान आत्मा एकरूप द्रव्य स्वरूप त्रिकाल परमभाव ऐसा जो

स्वद्रव्य अर्थात् स्व वस्तु '**अनवलोकनेन**' उसके ऊपर उसका ज्ञान जाता नहीं और वह स्वद्रव्य की प्रतीति करता नहीं। एक समय की पर्याय की प्रतीति की, अपने द्रव्य की प्रतीति, श्रद्धा, अनुभव करता नहीं। कहो, समझ में आया? मूलचन्दभाई! यह ऐसा सूक्ष्म है। भक्ति, पूजा, दया, दान, व्रत, नियम और अपवास कर-करके ठटड निकल जाये इसका। ठटड समझे? दूरव्यय, दूरव्यय है। मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व को सेवन करता है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का जो शुभभाव (आवे) वह मैं और उससे मुझे लाभ, उसने शुभभाव को ही स्वद्रव्य माना। समझ में आया? आहाहा! कहो, माणेकलालभाई! ऐसा मार्ग है। नवनीतभाई! यह तो निकल गया परन्तु यह विकल्प शुभराग और यह सब क्रियाओं की द्रव्य की आदि की परिणति का यहाँ ज्ञान की पर्याय में स्वयं से ज्ञान होता है। ऐसी एक समय की इतनी बड़ी पर्याय कि यह सब जाने, यह राग और व्यवहार आदि, वह पर्याय, उतना मैं (ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? मूलचन्दभाई! बात सुनी न हो बाहर से भड़क्या भड़के।

भगवान! तेरी चीज़ कितनी बड़ी है, कितनी बड़ी! एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड तो एक ज्ञानगुण; ऐसे-ऐसे अनन्त गुण और ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप वह द्रव्य। उस स्वद्रव्य का अवलोकन करता नहीं और पर्याय को, अंश को, राग को अपना स्वरूप मानता है, वह मिथ्यादृष्टि '**परितः शून्यः' सर्व प्रकार तत्त्वज्ञान से शून्य है**। खाली है, मिथ्यात्व से भरपूर है और तत्त्वज्ञान से शून्य है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : मान अर्थात् संसारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। मान नहीं। पर्याय एक समय की है उतना मैं, यह मिथ्यात्व है। समझ में आया? यहाँ तो राग शुभ हो और बाह्य की क्रिया पूजा, भक्ति द्रव्य की, यह गजरथ चढ़े, यह करोड़ों रुपये के मन्दिर हों, इत्यादि-इत्यादि यह सब परद्रव्य की पर्याय है। उसे ऐसा माने कि यह मुझसे होती है और यह मैं हूँ और राग हो वह मैं हूँ और उससे मुझे लाभ है और उस राग को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय, उस पर्याय जितना मैं हूँ—वह तत्त्वज्ञान से शून्य है। समझ में आया? आहाहा! बहुत संक्षिप्त

में सत् का अशरण और असत् का शरण अज्ञानी ने लिया है, उसे कहते हैं, बापू! एक समय की पर्याय तो असत् का शरण है, वह तो नास्तिरूप वस्तु है, वह पर्याय कहीं त्रिकाली नहीं है।

सत् भगवान चिदानन्द प्रभु ध्रुव सदृश अखण्डानन्द को अवलोकता नहीं, वहाँ दृष्टि करता नहीं, उसे जाने बिना उसकी प्रतीति करता नहीं। इसलिए वह सर्वथा स्वभाव से शून्य है और मिथ्यात्व से भरपूर है। वह संसार से भरपूर है और स्वभाव की दृष्टि से खाली है। संसार अर्थात् मिथ्यात्व, संसार अर्थात् संसरणं इति संसार:। भगवान आत्मा ज्ञायक स्वरूप जो संसार के भाव और पर्याय रहित अकेला द्रव्य, ऐसा जो भगवान आत्मा, उससे हटकर संसरणं। राग मैं, एक समय की पर्याय मैं—ऐसा जो मिथ्यात्व भाव वह संसार है। उस संसार से मिथ्यादृष्टि एकान्तदृष्टि से भरा हुआ है और स्वरूप की दृष्टि से खाली है। समझ में आया? अमूलचन्दजी!

धर्मी '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' स्वद्रव्य ज्ञायकभाव की अनुभव से प्रतीति करके स्वद्रव्य से भरपूर है। '**पूर्णो भवन्**' आयेगा, शब्द आयेगा। अब आयेगा। देखो! '**स्याद्वादी पूर्णो भवन्**' कहने का आशय यह है। समझ में आया? अज्ञानी जब अपने पूर्णानन्द प्रभु को अनुभव में-दृष्टि में नहीं लेता, विकल्प से नहीं, मन से नहीं। पण्डितजी ने कल प्रश्न किया था न? भगवान को मन से भेंटना? विकल्प से भगवान को भेंटना? विकल्प परद्रव्य पुद्गल है। उससे भगवान की भेंट नहीं होती। आहाहा! स्वद्रव्य, उसे वर्तमान ज्ञान की पर्याय को अन्तर्मुख झुकाने से वह पर्याय निर्मल है, निर्विकल्प है, उसे अन्तर में झुकाने से जो द्रव्य का अनुभव होता है, वह ज्ञानी वर्तमान में '**पूर्णो भवन्ति**' पर्याय में '**पूर्णो भवन्ति**' पूर्ण की दृष्टि हुई इसलिए पूर्ण की प्रतीति हुई, इसलिए '**पूर्णो भवन्ति**'। '**स्याद्वादी पूर्णो भवन्ति**' मिथ्यादृष्टि खाली है। समझ में आया? आहाहा!

ओहोहो! आचार्य के शब्द तो रामबाण! थोड़े शब्द परन्तु रामबाण हैं। राम का बाण फिरे नहीं। वाचक शब्द वाच्य को बतानेवाले अलौकिक हैं। अमृतचन्द्राचार्य सन्त दिगम्बर मुनियों की क्या बात! उन्होंने चारित्र की रमणता में आत्मा की भेंट की। आहाहा! वीतरागी पर्याय से आत्मा को भेंटा, विकल्प और राग तो पृथक् करके उसका

ज्ञान किया, उसका ज्ञान किया, ऐसा कहना वह व्यवहार है। उसका ज्ञान सम्बन्धी अपना अवलोकन किया, व्यवहार के ज्ञान सम्बन्धी का अपना अवलोकन किया। समझ में आया?

यह पहले आ गया है न? भाई! अवलोकन नहीं आया? यह कर्ता-कर्म का नहीं आया? ७५ में आया न? (समयसार) ७५ (गाथा में) आया था, कहा था, देखो! **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को कर्मरूप कर्ता हुआ अपने आत्मा को जानता है....** यह संस्कृत का अर्थ है। यह बात अपने हो गयी है। कहते हैं कि राग के साथ, विकार के साथ आत्मा को व्याप्यव्यापक (पना) नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा व्यवहाररत्नत्रय का जो राग होता है, उसका पुद्गल परिणाम अर्थात् पुद्गल परिणाम व्यवहार से, पुद्गल परिणाम के ज्ञान को अर्थात् आत्मा के कर्मरूप से कर्ता। वह राग आत्मा का कार्य नहीं परन्तु राग सम्बन्धी का जो ज्ञान, उस ज्ञान को कर्मरूप से करता हुआ अपने आत्मा को जानता है। ७५वीं गाथा संस्कृत टीका है। समझ में आया? संस्कृत, संस्कृत है न? अमृतचन्द्राचार्य का।

देखो! '**स्वतन्त्रव्यापकेन स्वयं व्याप्यमानत्वात्पुद्गलपरिणामज्ञानं**' पुद्गलपरिणाम का ज्ञान, वह रागादि विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय जो पुद्गल परिणाम का ज्ञान, उसे '**कर्मत्वेन कुर्वन्तमात्मानं**' उसे ज्ञान और कर्मरूप से करता ऐसे आत्मा को '**कुर्वन्तमात्मानं जानाति**'। आहाहा! समझ में आया? शब्दशः इसका ही अर्थ है। भगवान आत्मा अपने ज्ञायक स्वरूप का भान होने पर, वह व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प जो पुद्गलपरिणाम है, वह पृथक् है, उसे तादात्म्य हुए बिना, उसका ज्ञान ऐसा अपना कर्म, उस सम्बन्धी का ज्ञान, वह अपना कर्म, ऐसे अपने कर्मरूप से कर्ता ऐसे आत्मा को जानता है। पर को जानने की यहाँ बात नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो! इसकी स्वतन्त्रता! भगवान आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु की स्वतन्त्रता! समझ में आया? ओहोहो!

इस कारण से वह भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं। है न, आगे आया? **नहीं प्रतीति करने के कारण**। भ्रष्ट है। स्वद्रव्य को अवलोकन नहीं करता, ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु एक समय में पारिणामिक द्रव्य स्वभाव त्रिकाली, उसकी अन्तर प्रतीति, अन्तर्मुख

होकर प्रतीति, आलोकन करता नहीं, इस कारण से वह तत्त्वज्ञान से शून्य और भ्रष्ट है। समझ में आया? अब, पश्चात् बाह्य क्रिया में पंच महाव्रत पालता हो, महीने-महीने के अपवास हो, ग्यारह अंग का पठन हो, नौ पूर्व का पठन हो, कषाय की मन्दता में शुक्ल लेश्या हो, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, इतनी क्षमा का, कषाय का मन्द भाव हो, परन्तु वे सब पुद्गल के परिणाम हैं और उस सम्बन्धी का ज्ञान, वह अपना कर्म-कार्य, कर्ता अपने को जानता है, उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

यह यहाँ ऐसा कहते हैं, '**पशुः नश्यति परितः शून्यः स्वद्रव्यानवलोकनेन**' **किस कारण से?** कैसा है वह मिथ्यादृष्टि जीव? '**प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तिता-वञ्चितः**' क्या कहते हैं? देखो! अब यह स्पष्टीकरण आया कि प्रत्यक्ष, उसकी ज्ञान की पर्याय में यह सब प्रत्यक्ष दिखता है। यह सब शरीर, वाणी, राग, पुण्य का अस्तित्व, पर का टिकता अस्तित्व उसे—अज्ञानी को दिखता है। समझ में आया? यह सब प्रत्यक्ष दिखता है। आहाहा! आलेखित है, उसकी ज्ञान की पर्याय में यह सब आलेखित। आलेखित ज्ञेयाकार हो जाते हैं। यह है... यह है... यह है... यह है... समझ में आया? प्रत्यक्ष **लिखे हुए के समान...** मानो ज्ञान की पर्याय में सब लिख गया हो, चित्रित हो गया हो अर्थात् यही मैं हूँ, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान की पर्याय में यह छह द्रव्य, छह द्रव्य के गुण और उनकी पर्याय और उनका क्षेत्र और त्रिकाली काल तथा उसका भाव, यह सब मानो ज्ञान की पर्याय में चित्रित हो गये हों और आलेखित हो गये हों, ऐसा उसे प्रत्यक्ष भासित होता है। समझ में आया? **जैसे का तैसा अमिट...** ऐसा का ऐसा मानो, आहाहा! यह सब है मानो। उस पर्याय में सब ज्ञात हुआ न? वह सब है, यह सब है, यह सब मिटनेवाला नहीं है। अमिट, समझे? नाश होनेवाला नहीं है। ऐसा का ऐसा रहनेवाला है।

अमिट जो ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम... देखो! परद्रव्य की व्याख्या, परद्रव्य की व्याख्या। आहाहा! **ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम उससे माना जो अस्तित्व...** भाषा देखो! समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वरूप को अज्ञानी अनादि से भूलकर

ज्ञान की एक समय की पर्याय में सभी ज्ञेयाकार मानो यह ही है और यह सब स्थिर है, ऐसा ज्ञान की पर्याय में आलेखित ज्ञान की पर्याय को अर्थात् ज्ञान का जो परिणाम, उससे माना हुआ जो अस्तित्व, वह मैं हूँ, इतना मैं हूँ, वही मैं हूँ। यह पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि स्वरूप से शून्य है। आहाहा! समझ में आया?

यह पर्याय परद्रव्य है। एक न्याय से कहा न? उसमें स्वद्रव्य का ज्ञान तो आया नहीं। ज्ञान की पर्याय में जितने परद्रव्य है, उन्हें जानने की सामर्थ्य है। इसलिए वास्तव में एक समय का अंश जो सब जानता है, वह वास्तव में परद्रव्य है, स्वद्रव्य नहीं। त्रिकाल ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु अभेद वह स्वद्रव्य। तो परद्रव्य से ठगाया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीरचन्दभाई! परद्रव्य से ठगाया। वंचित.... वंचित है न? परद्रव्य से, (उसके) अस्तित्व से वंचित, ठगाया है। एक समय की पर्याय में... ओहोहो! जो राग शुभराग ज्ञात हो, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प ज्ञात हो, छह द्रव्य ज्ञात हों, भगवान ज्ञात हो, सिद्ध ज्ञात हो, अरिहन्त ज्ञात हो, परमेष्ठी ज्ञात हो और निगोद ज्ञात हो। एक समय की पर्याय की सामर्थ्य है न इतने ज्ञेय को जानने की तो वह ज्ञेयाकार हुई ज्ञान की पर्याय अथवा ज्ञान का परिणाम, उतना मैं मानकर स्वरूप से ठगा गया है। आहाहा! समझ में आया?

थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु यथार्थ है। उसे अन्तर में लक्ष्य में तो इसको लेना पड़ेगा। यह चीज़ इस वस्तु से भिन्न है। स्वद्रव्य को अनअवलोकन और परद्रव्य का अवलोकन अथवा परद्रव्य में अपना अस्तित्व मानकर ठगा गया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शोभालालजी! यह मेरे पुत्र हैं और पैसा है और यह और मकान है और धूल है, इसकी तो कुछ बात भी नहीं। वे तो बहुत दूर रह गये परन्तु उन सम्बन्धी की जो ज्ञान की पर्याय ज्ञान में ज्ञेयाकार हुई, अपनी पर्याय में अपने सामर्थ्य से, अपनी योग्यता से, अपनी योग्यता से, उतना क्षण, वह परिणाम मेरा पूरा स्वरूप है, यह परिणाम वह आत्मा, (वह) परिणाम स्वरूप से ठगा गया है। मुख्य बात यह है। समझ में आया? दरबार! इसका नाम दरबार रखा है.... कहो समझ में आया? यहाँ तो प्रमुख द्रव्यदृष्टि द्रव्य प्रमुख हो तब प्रमुख कहने में आता है। पर्याय भी प्रमुख रहे तब तक मिथ्यादृष्टि भ्रष्ट है। आहाहा! समझ में आया?

अहो! सर्वज्ञ वीतरागी मार्ग परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ, जाना हुआ, देखा हुआ, अनुभव किया हुआ आत्मा। भाई! भगवान तेरा स्वरूप तो देख प्रभु अखण्डानन्द है न! अरे! तूने तुझे देखा नहीं, तूने तुझे देखा नहीं। तुझे तूने माना नहीं, तुझे तूने अनुभव में लिया नहीं, एक समय की पर्याय, भगवान! वह तो परद्रव्य है। देखो न! परद्रव्य की व्याख्या ही यह की है। वह परद्रव्य की व्याख्या ही यह की। भेदकल्पना हो गयी न? स्वद्रव्य तो निर्विकल्प वस्तुमात्र है और परद्रव्य सविकल्प भेदकल्पना। यह पहले आ गया है। आहाहा! मिथ्यात्व, वह संसार; सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष। यह बात है। आहाहा! समझ में आया?

जो ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम उससे माना जो अस्तित्व उससे ठगा गया है ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। आहाहा! कितनी सरस बात है! समझ में आया? अहो! यह व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प मेरा माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय की १४वीं गाथा में अपने लिया। वहाँ भी बताया था। जयपुर, जयपुर, जयपुर में नहीं? १४वीं (गाथा)।

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्॥१४॥

क्या कहते हैं? देखो! यह बात की थी, वहाँ जयपुर। निराश्रित मन्दिर में। आदर्शनगर में। जयपुर, जयपुर गये थे न हम? जयपुर तुम भी (थे)। मुलतानी मन्दिर था। मुलतानी मन्दिर जहाँ अपने व्याख्यान रखे थे। तुम थे, कैलाशचन्दजी थे, सब थे। वहाँ यह बताया था। देखो! '**एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि**' भगवान आत्मा कर्म और कर्मकृत पुण्य के विकल्प व्यवहार से '**असमाहितो**' रहित है। '**युक्त इव प्रतिभाति**' जिसे सहित भासित होता है, वह '**बालिशानां प्रतिभासः**' अज्ञानियों का वह प्रतिभास '**स खलु**' मिथ्यात्व भवबीज है। आहाहा! समझ में आया?

रागादि और शरीर आदि वे सब भाव पर हैं। '**असमाहितो**' संयुक्त न होने पर भी, उनसे सहित आत्मा है ही नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, शरीर, वाणी, कर्म से रहित है—'**असमाहितो**' तथापि अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है।

'**युक्त इव प्रतिभाति**' और वह प्रतिभास ही निश्चय से संसार का बीज है, मिथ्यात्व बीज वह संसार है। आहाहा! मूलचन्दभाई! यहाँ कहे, बाहर का त्याग किया, नग्न हुए, संसार (छोड़ा)। संसार किसे कहना? भगवान! संसार तो पहला मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व छूटे बिना संसार छूटता नहीं। संसरणं इति, स्वभाव से हटकर रागसहित और एक की पर्याय अपनी मानी है, यह मिथ्यात्व, वह संसार है। संसार का त्याग तो स्वभाव का आश्रय करे तब होता है। समझ में आया?

यह स्त्री, पुत्र छूटे इसलिए संसार छूटा? संसार किसे कहना? संसार तो आत्मा की विकारी पर्याय मिथ्यात्व है। संसार आत्मा से, पर्याय से बाहर संसार रहता है? आत्मा की पर्याय से संसार बाहर रहता है? कर्म में संसार, शरीर में, स्त्री, पुत्र, परिवार में यदि संसार हो तो वह सब नाश होकर अकेला जाये तब इसका संसार पड़ा रहे और मुक्ति हो जाये। संसार वह नहीं है। समझ में आया? शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, इज्जत, कीर्ति संसार नहीं है। वह हो तो यहाँ छोड़कर जाये तब संसार पड़ा रहा और मुक्ति हो जाये।

यहाँ संसार उसे कहते हैं भगवान! '**असमाहितो युक्त इव प्रतिभाति**' यह संसार—मिथ्यात्व। भगवान आत्मा राग के विकल्प और शरीर आदि से रहित होने पर भी सहित का प्रतिभास ज्ञान में भासित हो, वह मिथ्यात्व वह संसार है। आहाहा! संसार छोड़कर बैठे हैं। अरे! भगवान! बापू! संसार किसे कहना? भाई! और संसार छूटा किसे कहना इसकी जरा अलग बात है। ऐ... मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : संसार का नाटक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाटक है, मिथ्यात्व का नाटक है। एक राग के कण को भी अपना माने और उस राग से मुझे लाभ माने। जिससे लाभ माने उससे भिन्न नहीं मान सकता, जिससे लाभ माने उसे भिन्न मान नहीं सकता। शुभराग से लाभ माने, उसे भिन्न मान नहीं सकता अपना अभिन्न मानता है, बस! यही मिथ्यात्व है। यह संसार है, यह निगोद की खान मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? सेठ! ओहोहो!

भगवान ठगा गया है, भाई! वंचित हो गया, हों! सत्य वस्तु से वंचित हो गया

और असत्य में अथवा एक पर्याय में अपना (अस्तित्व) माना। वस्तु से ठगा गया, भाई! पूरी चीज़ पड़ी रही। एक समय में भगवान पूरा दृष्टि में पड़ा रहा और पर्याय में माना कि प्रभु तू ठगा गया। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

आचार्य की करुणा के शब्द तो देखो! पण्डितजी! वीतरागी मुनि (कहते हैं), भाई! प्रभु! तू ठगाया, नाथ! आहाहा! तेरी चीज़ पूर्णानन्द ध्रुव अखण्डानन्द, जिसमें अनन्त सिद्ध परमात्मा विराजते हैं। तेरे द्रव्यस्वरूप में तो अनन्त सिद्ध विराजते हैं। ऐसी चीज़ का तूने शरण नहीं लिया, उसे देखा नहीं, माना नहीं, अनुभव नहीं किया और एक समय की पर्याय में यह सब मैं, वह परिणाम उतना मैं। भगवान! पूरी चीज़ से तू ठगा गया। आहाहा! समझ में आया? अमरचन्दभाई!

ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। ऊपर से लिया था न? चार बोल का करके। **'पशुः नश्यति' एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूप को नहीं साध सकता है।** यहाँ से लिया वह यहाँ पूरा किया। पहला भावार्थ तो ऊपर से लिया था। यह शब्दार्थ किया, अब स्याद्वादी की ज्ञानी की बात लेते हैं।

'तू स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति' 'पूर्णो भवन्' पर्याय में पूर्ण। पूर्णानन्द भगवान मैं हूँ। पर्याय में पूर्ण, सुन न! आहाहा! **एकान्तवादी कहता है उस प्रकार नहीं है 'स्याद्वादी' सम्यग्दृष्टि जीव...** व्याख्या ही यह की है। पर्याय द्रव्य में नहीं और द्रव्य द्रव्य में है, ऐसा माननेवाले स्याद्वादी अनेकान्त दृष्टि। पर्याय द्रव्य में नहीं और द्रव्य एक समय की पर्याय जितना द्रव्य नहीं। द्रव्य अखण्डानन्द पूर्ण है, उसमें पर्याय नहीं। पर्याय में द्रव्य नहीं, पर्याय द्रव्य में नहीं। एक समय की पर्याय में द्रव्य नहीं और एक समय की पर्याय द्रव्य में नहीं। इसका नाम अनेकान्त। समझ में आया?

अनेकान्त कहा था न? पण्डितजी! अनेकान्त (अर्थात्) अनेक धर्म है, इसलिए अनेकान्त (है ऐसा) नहीं। वह तो अन्यमति भी मानता है। पण्डितजी! पहले कहा था। अनेकान्त ऐसा है ही नहीं। अनेक अन्त इसलिए, अनेक धर्म इसलिए अनेकान्त, यह तो हम भी मानते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। स्व से अस्ति और पर से नास्ति, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? यह अनेक धर्म। आहाहा! यही कहते हैं कि पर्याय द्वारा

तेरी सत्ता है? भगवान! या स्वद्रव्य में तेरी सत्ता है? आहाहा! गोदीकाजी! दूसरी बात है, जरा नजर करने की बात है। निज निधान पर नजर करने की बात है। समझ में आया?

कहते हैं, '**तू स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति**' अब इसका एक-एक शब्द का अर्थ होता है। '**तु**' अर्थात् **एकान्तवादी कहता है उस प्रकार नहीं है।** ऐसा '**स्याद्वादी**' वह **सम्यग्दृष्टि जीव...** अनेकान्त दृष्टिवान। पहली एकान्त दृष्टि थी। पर्याय को ही पूरा माननेवाला, द्रव्य को भूल जानेवाला एकान्त। अब सम्यग्दृष्टि द्रव्य में पर्याय का एक अंश नहीं और एक समय की पर्याय में द्रव्य नहीं, इसका नाम अनेकान्त सम्यग्दृष्टि। समझ में आया?

ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव '**पूर्णो भवन्**' **पूर्ण होता हुआ...** ओहोहो! द्रव्य तो पूर्ण है, वह नहीं। सम्यक् में सम्यग्दर्शन में पूर्ण वस्तु प्रतीति की। '**पूर्णो भवन्**' वह खाली था, भाई! उसमें खाली कहा था न? '**परितः शून्यः**', '**परितः शून्यः**' यह '**पूर्णो**' के सामने डाला। शब्द के सामने शब्द है। अमृतचन्द्राचार्य की शैली ही यह है। '**पशुः नश्यति**' '**परितः शून्यः**' यह ज्ञानी '**पूर्णो भवन्**'। पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा अखण्ड अभेद चिदानन्द प्रभु (हूँ), ऐसी अनुभव दृष्टि करके पर्याय में '**पूर्णो भवन्**'। अज्ञानी नष्ट होता है, खाली है तो यह '**पूर्णो भवन्**'। आहाहा! जिसकी पर्याय में, दृष्टि में पूर्ण भगवान आत्मा (आया), एक-एक गुण पूर्ण ज्ञ... ज्ञ... ज्ञ... ज्ञ... अर्थात् पूर्ण। ज्ञ में फिर अपूर्ण नहीं होता। ऐसा पूर्ण स्वभाव। वैसे ही दर्शन अर्थात् पूर्ण एकरूप है न अखण्ड? उसी प्रकार चारित्र अर्थात् पूर्ण। त्रिकाली की बात है, हों! पूर्ण ऐसी सम्यग्दर्शन श्रद्धा, वह पूर्ण, ऐसा वीर्य पूर्ण, ऐसी स्वच्छता, प्रभुता एक वस्तु में एकरूप अखण्ड एक गुण, वह पूर्ण। ऐसा अनन्त पूर्णरूप एकरूप ऐसी दृष्टि होने से सम्यग्दृष्टि पर्याय में '**पूर्णो भवन्**'। समझ में आया? आहाहा! जिसकी पर्याय में द्रव्य आया वह '**पूर्णो भवन्**'। जिसकी पर्याय में दृष्टि में अकेली पर्याय आयी, वह खाली है। आहाहा! समझ में आया?

एकान्तवादी कहता है उस प्रकार नहीं है सम्यग्दृष्टि जीव... एकान्तवादी के सामने सम्यग्दृष्टि। वह खाली हो गया था, तब यह '**पूर्णो भवन्**'। '**परितः शून्यः**',

'**परितः शून्यः**' सर्वथा शून्य। सर्वथा शून्य। पूर्ण इदम्। वस्तु पूर्ण तो दृष्टि और ज्ञान पूर्ण का हुआ (तो) पूर्ण ही है। पूर्ण है। बस! आहाहा! सर्व समाधान, सर्व शान्ति, पूरे मोक्ष की प्रतीति का अनुभव यहाँ (हुआ)। यहाँ से मुझे अल्पकाल में मेरा मोक्ष होगा। मोक्ष तो मैं हूँ ही, परन्तु पर्याय में मोक्ष, ऐसा समाधान भी पर्याय में आ जाता है। वह पर्याय में आ जाता है। अल्प संसार है। अब एक-दो भव कदाचित् हों.... समाप्त हो गया, संसार है ही नहीं। '**पूर्णो भवन्**'।

क्या कहते हैं? कि यह जो आत्मा है, अब तो अपने दस मिनिट है, दस मिनिट है, पौन घण्टे चल गया। यह आत्मा जो अन्दर है, यह देह के रजकण हैं, वे तो मिट्टी हैं, यह वाणी आदि मिट्टी है। आत्मा जो अन्दर है, वह एक समय अर्थात् छोटे में छोटे काल में पूर्णानन्द अखण्डानन्द ध्रुव अभेद तत्त्व है, अभेद तत्त्व है। समझ में आया? उस आत्मा में शरीर, वाणी, कर्म और पुण्य तथा पाप के विकल्प जो विकार भाव होता है, वह आत्मा में नहीं है। वह आत्मा एक समय में अर्थात् छोटे में छोटे पल में, क्षण में पूर्णानन्द पूर्ण वस्तु अभेद अखण्डानन्द है। सच्चिदानन्द स्वरूप सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान पूर्णानन्द प्रभु है। कहते हैं, उसे जो नहीं मानता और इस एक समय की उसकी अवस्था आत्मा की, जानने की अवस्था में—पर्याय में—दशा में वह सब ज्ञात होता है यह, उस जानने जितनी ज्ञान की अवस्था जाने तो उस ज्ञान की अवस्था को पूरा आत्मा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। यह (बात) तो चल गयी है। यह तो नये हैं और वापस इसे पूछेंगे, क्या कहते हैं? यह कुछ दूसरी बात है। है तो लॉजिक से—न्याय से बात, हों! परन्तु कभी अभ्यास नहीं, कभी अभ्यास नहीं।

भगवान आत्मा, जैसे यह देहादि पदार्थ है, दृश्यमानरूपी, जड़ है, ऐसा यह चैतन्य ज्ञायक चिदानन्द स्वरूप पदार्थ है, और जैसे यह परिपूर्ण एक-एक वस्तु है, वैसे वह वस्तु परिपूर्ण वस्तु एक आत्मा है। उसका मूल स्वरूप ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि से भरपूर एक पूर्ण स्वरूप है। और वह उसके स्वरूप को भूलकर अनादि से उसकी वर्तमान दशा ज्ञान के विकास का अंश जो है, उघड़ा हुआ ज्ञान वर्तमान प्रकाश जो अंश है ज्ञान का, उसमें यह दूसरा सब ज्ञात होता है और वह ज्ञान का अंश जो है, अंश, पूरा

अंशी एक ओर बाजू में रह गया, इतने अंश को ऐसा मानना कि यह मैं हूँ, इसका नाम मिथ्यादृष्टि मूढ़ और आत्मा को खो बैठा हुआ, ठगाया हुआ जीव है। समझ में आया? गोदीकाजी!

'अलख नाम धूनि लगी गगन में' यह बात कुछ दूसरी है। जगत अनादि से चौरासी के अवतार में दुःखी होकर भटक मरता है। क्योंकि वस्तु तो सत् है, वह कहीं नाश नहीं होती। तो नाश न हो तो उसने यह सब परिभ्रमण अभी तक के भ्रमणा के भाव से चौरासी के अवतार करके भरा पड़ा संसार में, भटक मरा चौरासी में। उसमें से कहते हैं कि क्यों भटका? परिभ्रमण क्यों हुआ? उसका मूल हेतु क्या? मूल कारण क्या? मूल कारण यह कि, भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में वस्तु पूरी ज्ञान से परिपूर्ण, आनन्द से परिपूर्ण ऐसी शक्ति का सत्त्व पूरा ऐसा जो एकरूप अभेद ध्रुव स्वरूप, उसे भूलकर परवस्तु मेरी और वह मुझे लाभदायक, अन्दर पुण्य-पाप के परिणाम हों, वे मेरे और वे मुझे लाभदायक और उस पुण्य-पाप को, शरीर को जानने की ज्ञान की अवस्था, वर्तमान अंश जो प्रगअ है, उतना वह मैं—ऐसा मानकर मिथ्यादृष्टि परिभ्रमण कर रहा है।

सूक्ष्म बात है, जगत को मिली नहीं। समझ में आया? पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ रुपये धूल, वह तो अनन्त बार धूल मिली और गयी, उसके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। केशुभाई! यह धूल... धूल। पाँच, दस करोड़ यह धूल। उसमें आत्मा को क्या? यह तो मिट्टी—धूल है। आहाहा! मरने के समय तो रोग आवे तो भी पैसे वहाँ नहीं पीये जाते। पीये जाते होंगे पैसे? डाल इसमें। यहाँ तो कहते हैं कि पैसा, वह तेरी धूल, स्त्री, पुत्र, किसी का मकान तेरा किसी का, तेरी इज्जत, वह जड़ की और शरीर जड़ का, कर्म जड़ के, यह पुण्य-पाप के भाव होते हैं अन्दर में, वे भी विकारी तत्त्व है, वह आत्मा का नहीं।

भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु है, वह सच्चिदानन्द प्रभु है, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। उसमें पुण्य-पाप के, दया-दान, व्रत-भक्ति, काम-क्रोध के विकल्प उठते हैं, वे उसमें नहीं हैं। नहीं हैं उन्हें मेरा मानना कि ये मेरे हैं और

मैं यह हूँ, इसका नाम भगवान मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी (कहते हैं)। ऐ... हरगोविन्दभाई! यह दूसरे प्रकार के इंजैक्शन हैं। समझ में आया इसमें? बड़े इंजैक्शन लगाये न!

मुमुक्षु : यह सब नाश हो तब ज्ञान होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहते हैं कि परन्तु समझे तब हो न! समझे बिना अपने आप हो जाये? यह कहते हैं, समझो पहली बात। क्या चीज़ है, क्या मानता हूँ, किस प्रकार से सत्यता हो, विपरीतता कैसे हुई है, उसका इसे ज्ञान करना चाहिए। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अपने तो सूक्ष्म भाव आया था। भगवान आत्मा पूर्ण इदम्। यह पूर्ण स्वरूप है। इस पूर्ण स्वरूप पर इसने कभी दृष्टि दी नहीं। समझ में आया? जैसे पीपर का दाना है न? वह पीपर का दाना, यह छोटी पीपर। यह इतना छोटा है। कद में छोटा, रंग में काला, परन्तु उसका स्वभाव जो अन्दर है, वह काला नहीं है, हरा स्वभाव है, उसका और कार्य में उसकी चरपराहट.... तीखाश समझ में आती है हिन्दी में? चरपराई। तुम्हारी भाषा में चरपराई (कहते हैं)। उस चरपराहट का अंश अल्प है। अन्दर में चौसठ पहरी चरपराहट अंश भरा है।

यह पीर का कद और रंग में काली तथापि अन्दर में चौंसठ पहरी चरपरा रस पड़ा है। घोंटे तब प्रगट कहाँ से होता है? प्राप्त की प्राप्ति होती है, हो उसमें से आता है, पत्थर से घोंटने से आवे तो कंकड़ को घोंटने से आना चाहिए, परन्तु पीपर के दाने में चौंसठ पहरी अर्थात् अपने '**पूर्णो**' शब्द आया, उसके ऊपर बात आयी। एक दाने में चौठस... चौसठ पैसे का रुपया कल आता था न अभी तक। अब फिर यह तुम्हारे सौ पैसे का हो गया। वरना तो चौंसठ पैसे का रुपया कहलाता था। उसी प्रकार पीपर में से चौंसठ पहरी चरपराहट कहने से घोंटकर चरपराहट चौंसठ पहरी निकाली। कहाँ से आयी? पत्थर में से आयी? अन्दर शक्ति पूर्ण थी। चौंसठ अर्थात् पूर्ण, चौंसठ अर्थात् सोलह आने, चौंसठ अर्थात् चौंसठ पैसा, चौंसठ अर्थात् एक रुपया। ऐसा पूर्ण में पूर्ण पीपर में अन्दर चौंसठ पहरी थी तो प्रगट हुई।

इसी प्रकार आत्मा के अन्दर वर्तमान अवस्था में पुण्य-पाप की कालिमा दिखने

पर भी, वर्तमान में ज्ञान की अवस्था अल्पज्ञ दिखने पर भी अन्तर का स्वभाव पूर्ण है। ज्ञान, आनन्द आदि पूर्ण स्वभाव है। ऐसा भगवान आत्मा अपना पूर्ण स्वरूप है, उसे अवलोकता नहीं, उसे मानता नहीं और वर्तमान अवस्था के अंश को और राग को और यह संयोग, वह मैं हूँ, ऐसा माननेवाला परिभ्रमण के पंथ में पड़ा हुआ है। समझ में आया? नानालालभाई! जरा सूक्ष्म बात है यह, हों! यह सब तुम्हारे यह बाहर का हा...हो, इसका इसमें कुछ सूझ पड़ती नहीं। हा... हो और हरीफाई बाहर की इतनी सब। आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप '**पूर्णो भवन्**'। यहाँ तो पूर्ण भवन पर्याय में आया परन्तु तेरा पूर्ण स्वरूप है। आहाहा! यह चौंसठ पहरी अन्दर है तो प्रगट हुई है, पर्याय में प्रगट हुई है, अवस्था में पूर्ण हुई।

इसी प्रकार धर्मी वर्तमान पुण्य-पाप के राग को अपना न मानता हुआ, संयोगी चीज़ में अपनापन नहीं मानता, एक समय की प्रगट अवस्था ज्ञान के अंश को भी उतना न मानता हुआ पूरी पूर्ण चीज़ हूँ, ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि करके पर्याय में '**पूर्णो भवन्**'। जैसे चौंसठ पहरी शक्ति थी और बाहर पूर्ण आती है। आहाहा! समझ में आया? मधुभाई! सूक्ष्म बात है भाई यह तो। यह तो धर्म की बात है। यह कहीं शाकभाजी जैसी बात नहीं कि झट मिट जाये। यह शाकभाजी अब तो महँगी हुई है। पहले तो पैसे की दो सेर मिलती थी और अभी चार-चार आने, छह आने का अन्तर है। ऐसा सुना है, अपने कहाँ (लेने गये थे)? आहाहा! बारह आने होंगे। किसे लेने गये थे यहाँ? आहाहा! भगवान! यह चीज़ें बाहर की साधारण महंगी दिखाई दे तो यह तीन लोक का नाथ चिदानन्द प्रभु सच्चिदानन्द भगवान, वह दृष्टि में आना दुर्लभ महँगा है। आहाहा! समझ में आया? स्वरूपचन्दभाई! यह स्वरूपचन्द की बात चलती है।

भगवान आत्मा... यह (शरीर) मिट्टी-धूल है। धूल होकर राख होकर श्मशान में उड़ जायेगी। यह तो धूल मिट्टी है। भगवान कहीं ऐसा नहीं कि उसमें मिल जाये। क्यों? अन्दर की पर्याय अर्थात् अवस्था में चली गति दशा में पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव होते हैं, प्रभु वह तो मैल है। वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है और वर्तमान उस

मेल को जानने की दशा का जो अंश है वर्तमान विकास का अंश, जैसे पीपर में वर्तमान अंश जो चरपराई का अंश थोड़ा है वह पूरी पीपर नहीं है। उसी प्रकार ज्ञान का वर्तमान अंश जो है रागादि को जानने की योग्यता, उतना कहीं आत्मा नहीं है। उतने अंश को आत्मा मानना, वहाँ दृष्टि रखकर खड़े रहना, इसका नाम मिथ्यात्व और संसार में भटकने का रास्ता है। चार गति में डण्डे खाकर दुःखी होने का पंथ है।

भगवान आत्मा दृष्टि में गुलांट खाता है। '**पूर्णो भवन्**' स्याद्वादी। मैं पूर्ण स्वरूप अनन्तर ज्ञान जैसे चौंसठ पहरी पीपर और हरा रंग पूर्ण है अन्दर, उसी प्रकार मेरा स्वरूप ज्ञान और आनन्द से पूर्ण है। ऐसी पूर्ण शक्तिवाला तत्त्व भगवान अपना, उसमें दृष्टि देने से पूर्ण का स्वीकार दृष्टि में आया, अपूर्ण का स्वीकार निकल गया। यह इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम धर्म और इसका नाम मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। धर्म ऐसी वस्तु नहीं, यह पैसे देने से धर्म हो जाये और धूल करने से धर्म हो जाये, मन्दिर बनाया इसलिए धर्म (हो जाये)। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! समझ में आया? यह यहाँ कहना चाहते हैं। भगवान! तेरी वस्तु है न प्रभु! उसकी दृष्टि कर न! पूर्णानन्द का नाथ, उसकी श्रद्धा-ज्ञान कर न! तुझे शान्ति होगी, तुझे जन्म-मरण मिटेंगे और तुझे आनन्द का कन्द हाथ में आयेगा। यह इसका नाम धर्म कहा जाता है।

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक-२०-०८-१९६८, कलश-२५२, प्रवचन-२५१

यह स्याद्वाद अधिकार है। २५२ कलश है। देखो! यहाँ तक आया है कि '**तु स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति**' अज्ञानी अपने अस्तित्व के पूर्ण तत्त्व को नहीं प्रतीति करके एक समय की पर्यायमात्र को पूरा आत्मा मानकर, पूर्ण द्रव्यस्वभाव से भ्रष्ट है, इसलिए सर्व प्रकार से वस्तु के स्वभाव से उसकी दशा शून्य है। समझ में आया? भगवान एक समय में पूर्ण स्वरूप, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द आदि पूर्ण वस्तु है। वह पूर्ण वस्तु एकरूप त्रिकाल स्वभाव, इसका आश्रय न करके, दृष्टि न करके अथवा इतना, इतना हूँ—ऐसा न मानकर, एक समय की पर्याय में स्वद्रव्य का ज्ञान होने से, उस पर्याय का ज्ञान, वह मानो ज्ञेय ही हो और इतना ही मैं हूँ (ऐसा मानता है)। ज्ञान त्रिकाल हूँ, ऐसा वह अज्ञानी मानता नहीं। एकदम सूक्ष्म बात है। वह पर्याय में ही टिककर अपने त्रिकाल स्वरूप का श्रद्धा में '**परितः शून्यः**' नाश करता है।

स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि जीव... पर्याय हो परन्तु मैं पर्याय जितना नहीं। त्रिकाल चेतन द्रव्य स्वभाव, ध्रुव स्वभाव, परम स्वभाव ऐसा जो अस्तित्व, उस स्वद्रव्य के अस्तित्व का श्लोक है, स्वद्रव्य के अस्तित्व का श्लोक है। बाद का श्लोक परद्रव्य से नास्तित्व का है। समझ में आया? स्वद्रव्य का अस्तित्व पूरा परिपूर्ण जो है, ऐसा जानने से पूर्ण होता, धर्मी तो पूर्ण होता हुआ अर्थात् मैं पूर्ण हूँ—ऐसी प्रतीति में पूर्ण होता हुआ '**जीवति**' स्वरूप में स्थिर हो सकता है। '**जीवति**' है न? **ज्ञानमात्र जीववस्तु है, ऐसा साध सकता है....** अर्थात् कि त्रिकाल ज्ञायकभाव में स्थिर होने से उस वस्तु को साध सकता है। पर्याय के एक अंश में सिथर होने से वस्तु नहीं साधी जा सकती। समझ में आया?

कहते हैं कि '**जीवति**' भगवान आत्मा जीवन उसका जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उसमें टिकता है। क्योंकि ध्रुव है, उसका आश्रय लेकर उसमें टिकता है, स्थिर होता है, अपना वहाँ स्थापन करता है कि इतना मैं हूँ, ऐसा स्थापित करता है। अर्थात् '**जीवति**' टिकता है। पर्याय के अंश में टिकने जाये तो पर्याय तो बदलती है। समझ में आया?

इसलिए वहाँ तो टिक नहीं सकता। यह वस्तु ध्रुव एक समय में परिपूर्ण चैतन्य है, उसमें दृष्टि देने से, वह ध्रुव है, इसलिए '**जीवति**' स्थिर हो सकता है ऐसा। '**जीवति**' अर्थात् जीवन रख सकता है। उसका जो अस्तित्व पूर्ण है, उसमें दृष्टि देने से उस अस्तित्व को जिला सकता है और उसमें स्थिर हो सकता है। आहाहा!

अध्यात्म का विषय जरा ऐसा है कि इसने अनन्त काल में यह अभ्यास किया नहीं। एक समय में भगवान पूर्ण शुद्ध, कहते हैं कि वह सम्यग्दृष्टि (ऐसा अनुभव करता है कि) एक समय की पर्याय में मैं नहीं और मेरे पूर्ण स्वभाव में पर्याय नहीं है। पूरी दुनिया तो नहीं, छह द्रव्य तो नहीं, परन्तु उन छह द्रव्य सम्बन्धी का एक समय की पर्याय में होता ज्ञान, वह एक समय की पर्याय भी मेरे द्रव्य में नहीं। अर्थात् कि छह द्रव्य मुझमें नहीं, ऐसी दोनों बातें हुई। समझ में आया?

ऐसा जो अपना अस्तित्व पूर्णानन्द प्रभु, उसका आश्रय करता हुआ उसमें '**जीवति**' टिक सकता है, स्थापित हो सकता है, दृष्टि को वहाँ स्थापित कर सकता है। क्योंकि पूरी चीज़ ध्रुव है इसलिए। समझ में आया? अथवा अनुभव कर सकता है, ऐसा लाईन (-) लगाकर अर्थ किया है। क्या कहा, समझ में आया? ध्रुव जो अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका अनुभव कर सकता है। क्योंकि पूरी चीज़ है, ऐसा अस्तित्व का स्वीकार है। समझ में आया? एक समय की पर्याय और छह द्रव्य मैं नहीं। स्वद्रव्य के अस्तित्व का यह भंग है। तो एक समय में पूर्ण वह स्वद्रव्य का अस्तित्व है। समझ में आया या नहीं? शोभालालजी! आहा! छह द्रव्य तो निकाल दिये, उनके गुण, पर्याय निकाल दिया, सिद्ध भगवान निकाल दिये परन्तु उन सम्बन्धी का एक समय में ज्ञान है, उस ज्ञान का एक समय का परिणाम, उसे यहाँ परद्रव्य कहा है। पर्याय को, हों! ऊपर आ गया है, देखो!

'**परद्रव्य**' **ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम....** ज्ञेयाकार ाान का परिणमन, वह परद्रव्य। समझ में आया? आहाहा! भाषा देखो! परवस्तु तो परद्रव्य, कर्म-शरीर आदि परद्रव्य, परन्तु एक समय की ज्ञान की अवस्था में सब लोकालोक ज्ञात हो, ऐसी जो पर्याय, वह भी त्रिकाली अस्तित्व अर्थात् पूर्ण स्वभाव की अपेक्षा से, एक समय की पर्याय पलटती

है। समझ में आया? इसका अर्थ कि, पर्यायदृष्टि से आत्मा को लाभ नहीं होता। जैसे परद्रव्य से लाभ नहीं होता, वैसे एक समय की पर्यायदृष्टि से भी आत्मा को लाभ नहीं होता।

भगवान आत्मा '**पूर्णो भवन्**' पूर्ण स्वरूप है परन्तु दृष्टि में वह पूर्ण होकर पूर्ण का स्वीकार है, अर्थात् दृष्टि पूर्ण हो गयी। समझ में आया? स्वद्रव्य का अस्तित्व जो परिपूर्ण है, परिपूर्ण है, जिसमें एक समय की अवस्था का भी अभाव है। ऐसा जो परिपूर्ण पदार्थ—वस्तु उसकी दृष्टि करने से धर्मी, पहला अज्ञानी '**परितः शून्यः** था। यह परिपूर्ण हो गया, परिपूर्ण। वस्तु परिपूर्ण है, ऐसी परिपूर्णता प्रतीति में, अनुभव में आ गयी, इसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। कहो, समझ में आया? कठिन बात!

पश्चात् कहते हैं, किस द्वारा हुआ? किस द्वारा यह अनुभव हुआ? पहले में ऐसा था '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' पहले में अज्ञानी में '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**'। तब यहाँ कहते हैं '**स्वद्रव्यास्तितया**' ऐसे अस्ति-नास्ति दोनों ओर (की है)। अमृतचन्द्राचार्य की शैली (की) ही ऐसी पद्धति है। अज्ञानी स्वद्रव्य को अनवलोकता है अर्थात् त्रिकाल ज्ञायकमात्र को अनुभव नहीं करता, देखता नहीं, मानता नहीं। तब धर्मी सम्यग्दृष्टि '**स्वद्रव्यास्तितया**'। '**स्वद्रव्य**' अर्थात् **निर्विकल्प ज्ञान-शक्तिमात्र वस्तु,...** एक समय की पर्याय के अतिरिक्त। आहाहा! समझ में आया? निर्विकल्प अर्थात् अभेद। ज्ञान-शक्तिमात्र, ज्ञान-शक्तिमात्र अकेला सत्त्व निज ज्ञान-शक्तिमात्र ध्रुव, वह वस्तु उसे स्वद्रव्य कहते हैं। उस स्वद्रव्य का अस्तित्व कहते हैं, उसे स्वद्रव्य का अस्तित्व कहते हैं। ऐई! वह आया। यही ५६ गाथा का आया अपने, भाई!

'**द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः**' पर्याय निकाल दी। जो द्रव्य, '**द्रव्यात्मलाभहेतु**'। द्रव्य आत्मा अर्थात् स्वरूप, उसका लाभ अर्थात् अस्ति, वह द्रव्य अर्थात् पारिणामिक। ऐसा यहाँ कहते हैं स्वद्रव्य, अस्तित्वपना स्वद्रव्य कैसा है? शक्तिमात्र पूर्ण एकरूप, वह स्वद्रव्य। पर्याय नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु सत्य वस्तु यह है और इस प्रकार से समझे बिना, शरण बिना उसे अनुभव, सम्यग्दर्शन नहीं होता। सेठ! क्या करना? कहते हैं कि यह निकाल डालने के लिये करना क्या? यह कहते हैं, भाई!

प्रभु! परमात्मा पूर्ण स्वरूप है न तेरा। वह पूर्णानन्द ध्रुव चैतन्य पूरा भगवान है न! वह '**स्वद्रव्यास्तितया**' स्वद्रव्य का अस्तित्व एक समय की पर्याय बिना का है। समझ में आया? पुण्य-पाप बिना का तो सही, परद्रव्य बिना का तो सही, परन्तु एक समय की पर्याय बिना का वह स्वद्रव्य का अस्तित्व उसे यहाँ कहते हैं।

वह नास्ति हो गयी, पर्याय की द्रव्य में नास्ति हो गयी। सूक्ष्म नहीं, हों! समझ में आये ऐसा है, परन्तु इसे दृष्टि में जरा रखे तो खबर पड़े।

यह भगवान आत्मा पूरा कहते हैं कि '**स्वद्रव्यास्तितया**' धर्मी, सम्यग्दृष्टि अपने स्वद्रव्य का त्रिकाली अस्तित्व एक समय की पर्याय बिना का, दूसरे सब पदार्थ बिना का ऐसा '**स्वद्रव्यास्तितया**' स्वद्रव्य के अस्तित्व के कारण। आहाहा! यह स्वद्रव्य, बाकी सब परद्रव्य। आहाहा! समझ में आया?

यह समझाने का विकल्प उठता है, वह कहते हैं कि परद्रव्य है। उस परद्रव्य से आत्मा को जरा भी लाभ नहीं है, जरा भी नहीं है। यह सीधा लेते हैं। अर्थात् स्वयं सीधा पूछता है न यहाँ यह सब निकाल डालें फिर हमारे करना क्या? ऐसा कहते हैं न? कभी दरकार की नहीं ठिकाने बिना की, इसे फिर लगे ऐसा। ऐ... सेठ! यह तो सब निकाल डाला। परन्तु पूरा भगवान पड़ा है न! निकाल डालने पर बाकी है या नहीं बड़ा। सेठ! आहाहा! अरे! इसके अस्तित्व का माहात्म्य इसे आता नहीं, इसे माहात्म्य या (तो) विकल्प का, पुण्य का, पाप का, पर का, अथवा पर्याय का (आता है)। उस माहात्म्य के समक्ष भगवान पूरा माहात्म्य बिना का हो जाता है इसे। न्यालभाई! समझ में आया? पूरी चीज़ है... कहते हैं कि समझानेवाले को वाणी तो उसकी नहीं, उसका विकल्प उठा, वह उसका नहीं और उस विकल्प से जीव को बिल्कुल लाभ नहीं। पण्डितजी!

मुमुक्षु : भाव उसका है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव, वह उसकी पर्याय का है। वह पर्याय द्रव्य में नहीं। उस द्रव्य पर दृष्टि उसका लाभ है। क्या है? कहो, भीखाभाई! हिलाओ हिलना हो उतना तुम्हारे अन्दर से। कहाँ गये? हीराभाई!

यहाँ तो वस्तुस्थिति की बात है। स्व और पर व्यक्ति की यहाँ बात नहीं है। वस्तु

क्या है ? अपनी, अपने में, कितनी कितने में कैसे है ? समझ में आया ? भगवान आत्मा अपने असंख्य प्रदेश में है। उसका पूर्ण घन ज्ञानादि जो पूर्ण स्वरूप है, वह उसका द्रव्य का अस्तित्व है। ऐसे अस्तित्व की दृष्टि करने से (धर्म होता है) । क्योंकि परम सत्य यह है। ऐसे परम सत्य की दृष्टि करने से सम्यक्—सत्य होता है और वह सम्यक् सत्य होने से उसे अनुभव में आनन्द आता है। समझ में आया ?

पूर्ण सत्य, पूर्ण सत्य जो द्रव्य पूर्ण सत्य एकाकार वस्तु भगवान, ऐसा परम सत्य है, उसकी दृष्टि करने से वह सम्यक्—सत्य दृष्टि हुई। सम्यक् दृष्टि अर्थात् प्रशंसनीय दृष्टि, सत्य दृष्टि पूर्ण सत्य का स्वीकार दृष्टि में हो गया, वह दृष्टि सत्य हुई और सत्य हुई, वहाँ सत्य के लाभ में शान्ति और आनन्द साथ में होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? पर्यायदृष्टि में और अंश में अपने को मानने से पूरे द्रव्य का अनादर हो जाता है, मिथ्यात्व होता है और दुःख की आकुलता का उफान आता है, उभरो हमारी काठियावाड़ी भाषा है। उफान, उफान। दूध में उफान आता है न ? पण्डितजी की भाषा... दूध में उफान आता है न ? समझे ? शोभालालजी !

यह दूध में उफान आता है न ? उफान। वह तो खोटा उफान है, हों ! ऐसा कि कस नहीं, पोला उफान है, यह पक्का उफान है। पोला, पोला क्योंकि दूध है वह कहीं वस्तु नहीं। मात्र अग्नि का निमित्त और ऊँचे होने की योग्यता से ऐसा (होता है) । यह तो भगवान पूरा उछलता है, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? देखो न ! कितने संक्षिप्त शब्दों में... ओहोहो ! आचार्यों ने किस प्रकार से द्रव्य को समाहित कर दिया होगा ! शब्दों में, हों ! शब्द तो वाचक है, उसमें सामने वाच्य। एक समय का स्वद्रव्य पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... उसके अस्तित्व के कारण वही वस्तु है, ऐसा कहते हैं।

देखो ! **निर्विकल्प ज्ञान-शक्तिमात्र वस्तु,....** परद्रव्य नहीं, पर्याय नहीं। पूरी चीज़, वही वस्तु, वह स्वद्रव्य। समझ में आया ? यह उसकी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है, बाकी सब बातें। और धर्म की शुरुआत भी वहाँ से होती है। पहले दूसरा धर्म होता है फिर यह धर्म होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

अब कहते हैं। **उसके... 'अस्तितया'** स्वद्रव्य था न? उसके **'अस्तितया'** अर्थात् **अस्तित्वपने के द्वारा।** स्वद्रव्य कितना... कितना? कि निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु। यह स्वद्रव्य की व्याख्या की। स्वद्रव्य अर्थात् अभेद ज्ञानानन्दस्वरूप एकरूप, वह स्वद्रव्य। अब उसका अस्तित्व, अस्तित्वपने द्वारा वह अपने स्वरूप को अन्तर से साध सकता है, ऐसा कहते हैं। पूर्ण अपना द्रव्य, उसके अस्तित्व के कारण सम्यग्दृष्टि उसके स्वरूप पर दृष्टि देने से उस स्वरूप को साध सकता है। उस स्वरूप का साधन कर सकता है।

क्या करके? 'निपुणं निरूप्य' 'निपुणं निरूप्य' निपुण अर्थात् वस्तु, जो ज्ञानमात्र जीव वस्तु। वह निपुण अर्थात् अस्तित्वरूप से है पूरा, ऐसी जो ज्ञानमात्र वस्तु। उसका निरुप्य (अर्थात्) उसका अनुभव करके, निरुप्य (अर्थात्) उसे अवलोककर, निरुप्य—उस ओर देखकर, निरुप्य—उसे अनुभव करके। समझ में आया? आहाहा! निपुण और निरुप्य—दो भाषा है। निपुण भगवान आत्मा निपुण आत्मा, आत्मा अर्थात् कि निपुण, ऐसा। इसके पूरे अस्तित्व को निपुण कह दिया। ज्ञानमात्र ऐसा। ज्ञानमात्र, चैतन्यमात्र निपुण। ज्ञानमात्र, चैतन्यमात्र वस्तु वह निपुण। उसका निरुप्य (अर्थात्) उसका जो कथन किया, उसमें कहा कि यह आत्मा उसके वाच्य को अनुभव किया अथवा निरुप्य अर्थात् उसका अवलोकन किया। निपुण को अवलोकन किया, निपुण को अनुभव किया। समझ में आया? ओहोहो!

तेरी पद्धति तो देख! कहते हैं, तेरे स्वरूप को साधने का प्रकार तो देख! भगवान! बाकी लाख बात जानपना चाहे जितना हो या कषाय की मन्दता चाहे (जितनी हो), वह सब स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? परसत्तावलम्बी ज्ञान, परलक्ष्यी हुआ ज्ञान, वह वास्तविक ज्ञान नहीं है। निज सत्ता के अवलम्बन से, अस्तित्व के अवलम्बन से निपुण अन्दर है, उसके अवलम्बन से हुआ ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! सेठ! पर की अपेक्षा नहीं। यह राग मन्द करके ग्यारह अंग—नो पूर्व का विकास किया, वह ज्ञान नहीं। क्योंकि स्वद्रव्य के अस्तित्व में से ज्ञान आया नहीं। वह तो पर के अस्तित्व के लक्ष्य से उघड़ा हुआ ज्ञान, वह परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? माल... माल है। यह तो मक्खन है। दूसरे जीव को समझाने का विकल्प है, उसमें कहीं आत्मा को

थोड़ा लाभ है या नहीं? परन्तु वे धर्म प्राप्त करे, समझें, उसका कुछ भाग आता है या नहीं?

मुमुक्षु : छठवाँ भाग।

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवाँ भाग?

यह राज की जमीन होती है न? जमींदार की। उसमें से कुछ कोई धर्म करे तो उसका दसवाँ भाग जमींदार कहे, हमको आता है। एक बार ऐसा बोले थे। उसका जब खातमुहूर्त डाला न? सेठ थे न? हुकमचन्दजी (इन्दौरवाले)। तब जमींदार बोले थे। उस कौने में किया था। उस कौने में किया था। वह जमींदार बोले थे। अब तो गुजर गये। चकुभाई, वे बोले थे कि हमको दसवाँ भाग तो मिलेगा, यह सब धर्म करेंगे उसका। हमारी जमीन में होता है। मिलता होगा? अरे! भगवान!

यहाँ तो कहते हैं, पर की अवस्था के भाव से तेरा नास्तित्व है और पर की अवस्था में तेरा निमित्त हो, कोई विकल्प आदि, उस विकल्प का भी स्वरूप में नास्तिपना है। अब तुझे विकल्प से और पर की पर्याय से लाभ हो कहाँ से? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो प्रभु आत्मा का—परमात्मा का पेट गहरा है। आहाहा!

भगवान आत्मा जिसकी एक समय की पर्याय में कदाचित् ग्यारह अंग और नौ पूर्व का विकास किया हो तो भी वह पर्याय, वह पर्याय स्वयं परद्रव्य है। उस परद्रव्य से आत्मा को जरा भी लाभ हो, ऐसा नहीं है। भाई! वस्तु ऐसी है, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया?

आचार्य ने थोड़े शब्दों में बहुत गहन भर दिया है। '**निपुणं निरुप्य**' हों! भगवान पूरा निपुण चैतन्य पिण्ड भगवान अकेला ध्रुव निरुप्य, अवलोक्य, उसका अवलोकन, उसका अवलोकन। पर्याय का नहीं, विकल्प का नहीं, पर का नहीं। उसका अवलोक्य। यह अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन। समझ में आया?

ज्ञानमात्र जीववस्तु का.... यह निपुण की व्याख्या की। **अपने अस्तित्व से किया है....** निरुप्य की व्याख्या अब अनुभव हुआ, ऐसे। निरुप्य की व्याख्या में अनुभव हुआ। अवलोकन कहो, निरुप्य कहो, अनुभव कहो, एक शब्द है। **जिसने ऐसा होकर।**

ओहोहो! **किसके द्वारा ?** किस द्वारा यह हुआ ? कैसे हुआ यह ? **'विशुद्धबोधमहसा' निर्मल जो भेदज्ञान उसके प्रताप के द्वारा।** भाषा देखो! यहाँ पहले ऐसा अस्ति लिया। अब ऐसे यहाँ से नास्ति हुई। राग और पर्याय की उसमें नास्ति है, ऐसे भेदज्ञान द्वारा। वस्तु पहले अस्तित्व कही। उसका भान कैसे हुआ ? कि यहाँ से भेद पड़ गया। विकल्प नहीं, पर नहीं और एक समय की पर्याय से भी भिन्न पड़ गया। ऐसे भेदज्ञान द्वारा जिसकी महिमा और जिसका प्रताप है। समझ में आया ?

इसलिए ऐसा कहा कि कोई बाह्य की चीज़ से उसकी महिमा है, ऐसा नहीं है। बहुतों को समझाया, बहुत धर्म पाये और बहुत पुस्तकें आदि बनायीं और बहुत समय पर के लिये (आत्मा को) विकल्प में रोका, इसलिए कुछ भी उसे उससे लाभ है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? यह तो अपना निपुण जो वस्तु त्रिकाल है, उसे अवलोके और अनुभव करे, वह लाभ है। क्योंकि भेदज्ञान द्वारा कहा न ? यह नहीं, यह नहीं। भाई! नहीं तो यह एक समझाते हैं, हों! यह नहीं तो एक विकल्प है। यहाँ से ऐसे पृथक् पड़कर यहाँ आया, ऐसा। यहाँ स्थिर हुआ, यहाँ से पृथक् पड़कर। पृथक् पड़कर अर्थात् भेदज्ञान के प्रताप से ऐसा हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? वास्तव में तो अस्तित्व में जहाँ दृष्टि पड़ी अर्थात् पर्याय और विकल्प का अभाव है, ऐसा अन्दर ज्ञान आ जाता है। वह कहीं भेद करके उसमें जाता है, यह तो एक कथन की पद्धति है। समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसा कहना चाहते हैं कि धर्मी को पूर्ण अस्तित्व का अनुभव कैसे हुआ ? कैसे हुआ ? कि **'विशुद्धबोधमहसा' निर्मल जो भेदज्ञान उसके प्रताप के द्वारा।** ऐसी भाषा ली है न ? ऐसा कहने का आशय इतना है उसमें कि इस पूर्ण अस्तित्व में जहाँ दृष्टि पड़ी और अनुभव हुआ तो वह पर से पृथक् ही पड़ गया। पृथक् करके ऐसे जाता है, ऐसा नहीं। वह तो फिर पद्धति है और समझाने की शैली है। भाषा, भाषा का काम करती है। समझ में आया ?

भेदज्ञान द्वारा निपुण अस्तित्व का अनुभव किया, ऐसा कहते हैं। वास्तव में तो अपने अस्तित्व का अनुभव किया तो अन्दर भेदज्ञान हो गया। समझ में आया ? सूक्ष्म

बात है, भाई ! अरे ! यह तो अलौकिक बात है, जिसका फल अनन्त-अनन्त आनन्द। इस साधन का फल अनन्त आनन्द और वह आनन्द सादि-अनन्त। भूतकाल की पर्याय से भविष्यकाल की पर्याय अनन्तगुनी, भूतकाल की पर्याय से भविष्य की अनन्तगुनी। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्तगुणी... ऐसा जहाँ ऐसा अनुभव हुआ सम्यग्दर्शन (हुआ तो) कहते हैं कि उसके फलरूप से केवलज्ञान परिपूर्ण आनन्द आयेगा और वह पूर्ण आनन्द कितने काल ? (कि) भूतकाल से अनन्तगुना रहेगा।

द्रव्य शुद्धरूप से परिणमा, फिर द्रव्य जब तक है तब तक आनन्द और आनन्द ऐसा का ऐसा पर्याय में रहा करता है। समझ में आया ? दूसरे को, राग को, पर्याय को इकट्ठे रखकर द्रव्य का अनुभव होता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई ! क्या कहा ? यह अन्तिम शब्द में... यह तो आचार्य की अमृतचन्द्राचार्य की वाणी अर्थात् तो ओहोहो ! गजब बात ! कहते हैं कि **'विशुद्धबोधमहसा' निर्मल जो भेदज्ञान उसके प्रताप के द्वारा।** अर्थात् वह कोई भी साथ में रखा नहीं, निमित्त को, विकल्प को, पर्याय के अंश को साथ में रखे बिना पृथक् पड़कर अस्तित्व की प्रतीति की है। धन्नालालजी ! आहाहा ! इसका नाम भेदज्ञान कहकर अस्तित्व को चिपटा है, ऐसा कहना है। समझ में आया ? बात बहुत मीठी है, बात बहुत सत्य है। इस सत्य की शरण बिना बाकी शरण जगत में कोई है नहीं।

कहते हैं, **'विशुद्धबोधमहसा'**। अस्तित्व की तो बात की, तब कोई भी साथ में रखकर, साथ में रखकर उसका अभेदपने का अनुभव हुआ ? ऐसा कहते हैं। वह पूर्ण अस्तित्व जो है, द्रव्य का अस्तित्व पूर्ण है, उसका जो निपुणपना अर्थात् वस्तु, उसका जो अनुभव अर्थात् अवलोकन, उसमें कुछ पर की मदद, पर का अंश इकट्ठा लेकर हुआ ? कि, नहीं। यह राग को, अंश को पृथक् करके द्रव्य के ऊपर अस्तित्व में आ गया है। समझ में आया ?

कैसा है (भेदज्ञान का प्रताप) ? अब ऐसा कहते हैं। **'सद्यः समुन्मज्जता' उसी काल में.... 'समुन्मज्जता'** उसी काल में अन्दर से आत्मा उछलता है, ऐसा कहते हैं। ऐसे पर से भिन्न पर्याय अंश से भिन्न पड़कर अन्दर में गया, उसी काल में भेद पड़ने से

'**सद्यः**' तत्काल '**समुन्मज्जता**' पर्याय उछलती है। आनन्द की और शान्ति की पर्याय उछलती है। समझ में आया? स्वरूपचन्दभाई! देखो! यह धर्म का स्वरूप। आहाहा! यह तो भारी धमाल सब... मन्दिर, पूजा, भक्ति, व्रत और तप और... ओहोहो! मूलचन्दभाई! भारी धर्म। अरे! भाई! धर्म, वह चीज़ नहीं, भगवान!

कैसा है (भेदज्ञान का प्रताप)? 'सद्यः' उसी काल में.... 'समुन्मज्जता' अर्थात् **प्रगट होता है।** ऐसा '**समुन्मज्जता**'। ऐसे पर को साथ लिये बिना अंश को राग को छोड़कर ऐसे अन्दर गया है, इसलिए उसी काल में शान्ति की, आनन्द की पर्याय उछलती है, तत्काल उस समय में। समझ में आया? उसी काल में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, आनन्द का, अनन्त गुण के अंश उस काल में प्रगटरूप परिणमकर अनुभव में आते हैं। ओहो! वहाँ कहा था। नहीं? अपने पण्डितजी! वहाँ गये थे। (रहस्यपूर्ण) चिट्ठी में से वहाँ मुलतान में, ज्ञानादि एकदेश गुण का, चौथे गुणस्थान में ज्ञानादि एकदेश गुण का प्रगटपना है। केवलज्ञान में पूर्ण प्रदेश का प्रगटपना है। इसलिए 'सर्व गुणांश वह समकित'। जितने गुण अन्दर परिपूर्ण हैं, उनकी अन्तर्दृष्टि होने से सभी गुण अंशरूप से व्यक्तरूप से अनुभव में परिणति में सब प्रगट होते हैं। सभी गुणों का अंश व्यक्तरूप से प्रगट होता है। इसलिए श्रीमद् ने 'सर्व गुणांश, वह समकित' कहा है और उसमें अपने टोडरमलजी ने (कहा)। चौथे गुणस्थान में ज्ञानादि एकदेश गुण सर्व प्रगट होते हैं। ज्ञान आदि अर्थात् सभी गुण, एक-एक गुण, कोई गुण बाकी नहीं। है? (रहस्यपूर्ण) चिट्ठी में है न? बताया था।

चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को... यह महा सिद्धान्त है। **ज्ञानादि गुण...** ज्ञान आदि अर्थात् अनन्त गुण। क्योंकि द्रव्य पूरी चीज़—वस्तु का अस्तित्व जो है—ऐसे, उसे पर्याय को राग से भिन्न करके जो उसमें अस्तित्व में गया, अर्थात् पर से भिन्न हो गया। ऐसा भान होने पर पूरे द्रव्य में जितनी शक्तियाँ गुण है, उनका अंश व्यक्तरूप से सब गुणों का प्रगट हुआ। समझ में आया? वहाँ अपने व्याख्यान पढ़ा था। यह कहा था। आदर्शनगर (जयपुर)। यह कहा था। हिन्दी। चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को 'ज्ञानादि गुण' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। श्रीमद् ने 'सर्व गुणांश वह समकित', ऐसा प्रयोग किया

है। सर्व गुणांश—सर्व गुण का अंश व्यक्तरूप से प्रगट हो, उसे समकित कहा जाता है। आहाहा!

अपने सादी-सीधी भाषा से लें तो कि द्रव्य पूरा है, ऐसा जहाँ अस्तित्व की दृष्टि और अनुभव हुआ, इसलिए पूरे द्रव्य में जितने गुण हैं, उतने आंशिक प्रगट हुए बिना द्रव्यदृष्टि में रहते नहीं। समझ में आया? कहो, अमरचन्दजी!

भाई! धर्म की पहली रीति क्या है, उसका ख्याल भी न हो तो वह अन्दर प्रयोग कहाँ करेगा, इसकी उसे खबर नहीं पड़ती। चीज़ कैसे प्रगट होती है और कैसे दूसरी विपरीतता नाश होती है, उसकी पद्धति की जिसे खबर नहीं होती, वह स्वभाव की अजमाईश अर्थात् प्रयोग किस प्रकार करेगा? समझ में आया? खबर ही नहीं होती किस प्रकार धर्म होगा। प्रयोग करना तो अन्तर वस्तु अस्तित्व है, वहाँ प्रयोग करके एकाग्र होना है, करने का तो यह है। समझ में आया? परन्तु इस रीति की जिसे खबर नहीं, वह तो राग में एकाग्र होकर या पर्यायबुद्धि में यह छोड़ा और यह रखा (करेगा)। यह तो मिथ्यात्व को क्षण-क्षण में घोंटता है। आहाहा! बाह्य के त्याग में हम त्यागी हैं, ऐसा मानता है, उसे क्षण-क्षण में स्वद्रव्य का अनादर होकर बाहर के त्याग का उसे अधिकपना लगता है। इसलिए अधिकपना लगने से उसकी दृष्टि में मिथ्यात्व घूंटता है। समझ में आया? यहाँ तो एक समय की पर्याय का भी अधिकपना नहीं भासकर, त्रिकाल का अधिकपना है, उस दृष्टि को सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बलुभाई! यह ऐसी चीज़ है। बलुभाई ने वर्षीतप किया था न! उत्सव किया था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दूसरी बात है। देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची श्रद्धा अथवा नय, निक्षेप, प्रमाण का वास्तविक यथार्थ व्यवहाररूप अर्थात् निश्चय बिना का व्यवहाराभासवाला ज्ञान उसे राग की मन्दता का हो, इतनी बात। पहला ऐसा विकल्प हो। ऐसा न हो और जहाँ अशुभभाव हो और सीधे अन्दर आ जाये, ऐसा नहीं है। इतनी बात है। परन्तु 'अटके त्याग वैराग्य में तो भूले निज भान' वहाँ आया है। समझ में आया?

अपने समयसार में १३वीं गाथा में आया नहीं? कि पहले नय, निक्षेप, प्रमाण से

यह क्या वस्तु है, ऐसा जाने। परन्तु यह जानना, वह वास्तविक वस्तु नहीं है, वह अभूतार्थ है, ऐसा कहा है न १३वीं गाथा में? अभूतार्थ है। वस्तु जो त्रिकाल है, उसे अनुभव करे, तब वस्तु भूतार्थ में दूसरा सब अभूतार्थ है। परन्तु पहले उसे वस्तु सर्वज्ञ ने कहा हुआ वह आत्मा, अज्ञानियों ने कहा हुआ आत्मा नहीं, ऐसे आत्मा को समझने के लिये नय, निक्षेप, प्रमाण से जैसी चीज़ है अनन्त गुण कैसे हैं? द्रव्य कैसे है? कितने क्षेत्र में है? कितने भाव हैं? क्या अवस्था है? ध्रुवपना क्या है? उसमें विकार हो तो उसमें निमित्तपना क्या है? ऐसा उसे वास्तविक ज्ञान पदार्थ का ऐसा न हो तो अन्दर में नहीं जा सके। परन्तु वह ऐसा ज्ञान है, इसलिए अन्दर में जा सकता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बलुभाई! गजब बातें। यह बहुत प्रश्न करते हैं। 'त्याग वैराग्य न चित्त में होवे न उसको ज्ञान' तुम्हारे 'कानातलाव के पटेल है न? वे भी वहाँ एक बार गये थे न उसमें? गये भाई! देवजीभाई है?....

यह पद कहते हैं, परन्तु बाद में है, ऐसा क्यों कहा नहीं? 'अटके त्याग वैराग्य में तो भूले निज भान' तो कहा नहीं। समझ में आया? इसका अर्थ कि पहले उसका उसे सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र की श्रद्धा का भाव होता है। सच्चे देव अथवा नौ तत्त्व का वास्तविक स्वरूप क्या है, ऐसा विकल्पात्मक ज्ञान पहले उसे होता है। क्योंकि ऐसा वास्तविक तत्त्व क्या है, ऐसे ख्याल बिना वह अन्दर में किस प्रकार जा सकेगा? परन्तु इस वास्तविक तत्त्व के ज्ञान के लिये ऐसे जो विकल्प उठे, वह कहीं इसके कारण अन्दर जा सकेगा, ऐसा नहीं है। 'अटके त्याग वैराग्य में' उस विकल्प में अटका है। वस्तु जो निरपेक्ष है, जिसे भेद और विकल्प की अपेक्षा नहीं। स्वरूप के अनुभव के लिये व्यवहार की अपेक्षा नहीं, ऐसा निरपेक्ष सम्यग्दर्शन और उसका विषय निरपेक्ष है। समझ में आया? पोपटभाई! आहाहा!

कहते हैं, '**निपुणं निरुप्य**' यहाँ तो अपने यहाँ आया था। यह ज्ञानादि एकदेश गुण... तथा तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादि गुण सर्व देश प्रगट होते हैं। बस! इतना अन्तर है।

मुमुक्षु : यह सभी पूरे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ सब पूरे, केवलज्ञान में पूरे हो जाते हैं। समझ में आया? यह थोड़े और बाकी हैं, उसका प्रश्न नहीं। अघाति.... तेरहवें गुणस्थान में आत्मा को ज्ञानादि सर्व देशरूप प्रगट होते हैं। पहले की अपेक्षा से। नहीं तो पहला कहेंगे, वे चार अघाति हैं, उनकी यहाँ गिनती नहीं, उनकी गिनती नहीं। अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि सब प्रगट हो गये, इस अपेक्षा से सर्व देश प्रगट हुए, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा... ओहो! यदि उस व्यवहार विकल्प है, उसकी तो कहीं बात रह गयी परन्तु एक समय की पर्याय को साथ में लेकर अन्दर में दृष्टि करता है, ऐसा भी नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। भेद डालकर अन्दर में गया है, तब उसे आत्मा का अवलोकन और अनुभव होता है। यदि कुछ भी पर की महिमा, माहात्म्य अपेक्षा रह गयी (कि) यह है तो यह है, यह है तो यह है, तो यह पूर्ण है तो अनुभव है, ऐसा उसे नहीं हुआ। समझ में आया? गोदीकाजी! इसलिए पहले कह गये थे नहीं? '**स्वद्रव्यास्तितया**' यह करके अनुभव हुआ है। कहा था न, '**स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति**' '**पूर्णो भवन् जीवति**'। यह था, इसलिए यह हुआ—ऐसा है ही नहीं। समझ में आया?

ओहो! भगवान आत्मा की ऐसी लीला है, इतना सामर्थ्य जिसमें पड़ा है। ज्ञान का अनन्त सामर्थ्य, वीर्य का अनन्त सामर्थ्य, श्रद्धा का अनन्त सामर्थ्य, आनन्द का अनन्त सामर्थ्य ऐसे अनन्त गुणों का एक-एक का अनन्त सामर्थ्य। ऐसा जिसके स्वभाव में अन्त क्या? जिसके चारित्र का अनन्त सामर्थ्य, चारित्र ऐसा साधारण नहीं। अनन्त सामर्थ्य है, पर्याय में चारित्र का अनन्त सामर्थ्य है। समझ में आया? ऐसा उसका स्वभाव जो चारित्र है, वह तो अनन्त अनन्त सामर्थ्यवाला है। ऐसा भगवान आत्मा, कहते हैं कि पर से भेद करके अन्तर में अभेद में गया है, इसलिए उसे आत्मा का अनुभव उसी काल में प्रगट होता है। ऐसे से गया न अन्दर गया (तो) एकदम... अनुभव आनन्दमूर्ति चिदानन्द-स्वरूप शुद्ध तब उसे ख्याल में आया कि, ओहो! पूरा आत्मा शुद्ध है। समझ में आया? पर्याय में शुद्धता का आनन्द का अनुभव आया, तब दृष्टि में आया कि यह वस्तु यह हुई, प्रगट हुई, पूरा आत्मा ही अकेला ज्ञान और आनन्दमय है। ऐसे अनुभव बिना पूरा आत्मा

आनन्द और ज्ञानमय है, ऐसा प्रतीति में किस प्रकार आयेगा? समझ में आया? सूक्ष्म है। नवनीतभाई! कठिन है, भाई! परन्तु है तो ऐसा।

पर्याय तो एक अंश है और यह तो पूरा द्रव्य है। आहाहा! एक पर्याय को तो परद्रव्य कहा और अकेला पर्याय का पूरा, उसे स्वद्रव्य कहा। देखो तो सही! आहाहा! दूसरे परद्रव्य तो कहीं रह गये। समझ में आया? ऊपर कहा नहीं था? '**परद्रव्य**' अर्थात् ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम। उससे माना हुआ जो अस्तित्व। ठगा गया है। एक समय की पर्याय में पूरा द्रव्य माना (वह) ठगा गया है। आहाहा! स्वयं। दूसरा कौन? आहाहा!

भाई! इस चीज़ का माहात्म्य और सम्यग्दर्शन का माहात्म्य क्या है, इसका लोगों को ख्याल नहीं आता, इसलिए मानो क्या होगा? छूटा, सम्यग्दर्शन (हुआ), अर्थात् मुक्त हुआ। पूरा मुक्त द्रव्य है, उसका अनुभव हुआ (तो) मुक्त ही है। वह पर्याय में जरा अशुद्धता है, उससे मुक्त है, उससे मुक्त है। आहाहा! धर्मी (को) अकेले मुक्तस्वरूप का अनुभव है, इसलिए उसकी पर्याय में अशुद्धता से मुक्त है। अशुद्धता से मुक्त है अर्थात् मुक्त ही है। पर्याय में पूर्ण मुक्त होगा। समझ में आया? आहाहा!

उसी काल में... '**सद्यः**' अर्थात् उस काल में, ऐसा। '**समुन्मज्जता**' **प्रगट होता है**। उछलता है, उत्पन्न होता है, उसी काल में उत्पाद होता है। मिथ्यात्व का व्यय होता है, सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, पूर्ण अस्तित्व के द्रव्य के आश्रय से (होता है)। इसलिए पूर्ण द्रव्य वह ध्रुव रहा। इसका आश्रय करने से उत्पन्न हुआ आनन्द और पूर्व की पर्याय जो मिथ्यात्व आदि की थी, उसका व्यय (हुआ)। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। २५२ (कलश पूरा) हुआ।

कलश २५२ का प्रवचन पूर्ण होने के बाद इस प्रवचन का कुछ भाग बाकी है, जिसे यहाँ नहीं लिया गया है।

मागशर कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक-१४-१२-१९६५, कलश-२५२-२५३, प्रवचन-२६९

स्याद्वाद अधिकार, कलशटीका का छठवाँ कलश है। '**पशुः नश्यति**' यहाँ से आता है। **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूप को नहीं साध सकता है।** जीवस्वरूप एकरूप त्रिकाल द्रव्य है, उसकी एक समय की पर्याय में भले सब जानने का हो, परन्तु एक समय की पर्याय वह कहीं पूरा द्रव्य नहीं। समझ में आया? यहाँ अभेद द्रव्य लेना है। एकरूप द्रव्य। एकरूप द्रव्य को मानता नहीं। समझ में आया? पर्याय को ही वस्तु मानता है। एक अंश को ही पूरी वस्तु मानता है, ऐसे जीवस्वरूप को साध नहीं सकता।

कैसा है? 'परितः शून्यः' सर्व प्रकार तत्त्वज्ञान से शून्य है। '**परितः**' सर्व प्रकार, '**परितः**' अर्थातृ सर्व प्रकार से शून्य-खाली। अर्थात् क्या है? जैसे लोक का एक अंश अनन्त अलोक के समक्ष तो एक जरा सा है। समझ में आया? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अलोक वस्तु पूरी। ऐसे आत्मा की एक समय की पर्याय, उसे अन्तर में देखो तो वह वस्तु अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... एक-एक गुण का अमाप (पना है) परन्तु वह क्षेत्र से है, यह भाव से है। परन्तु वह सब भाव का अमापपना एकरूप द्रव्य है, ऐसी अभेद दृष्टि को सिद्ध किये बिना अज्ञानी पर्याय को-अंश को ही मानता है, ऐसी चीज़ को न माने तो वह वस्तु को साध नहीं सकता। समझ में आया? वस्तु है। उसमें यहाँ कहा न पहले?

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में भेद करना, वह परद्रव्य हो गया। वस्तु अखण्ड है निर्विकल्प वस्तुमात्र। देखो यहाँ कहेंगे कि **सर्व प्रकार तत्त्वज्ञान से शून्य है। किस कारण से? 'स्वद्रव्यानवलोकनेन'** इसमें आया, देखो! **'स्वद्रव्यानवलोकनेन' स्वद्रव्य की व्याख्या निर्विकल्प वस्तुमात्र...** जो पहले कही थी। स्वद्रव्य निर्विकल्पमात्र वस्तु। लक्षण कहा था न पहला? निर्विकल्प वस्तु अभेद एकाकार चीज़, ऐसी जो अभेद वस्तुमात्र (चीज़ है)। **'अनवलोकनेन' प्रतीति नहीं करने के कारण।** यह चार बोल कहने का कारण था कि अभेद की दृष्टि करनी चाहिए। पर्याय की स्वीकृति होने से अंश भले हो तथापि वस्तु अभेद है, उसके ऊपर दृष्टि चाहिए। समझ में आया?

कहते हैं, '**स्वद्रव्यानवलोकनेन**' अर्थात् स्वद्रव्य की व्याख्या—निर्विकल्प वस्तुमात्र। भेद करना द्रव्य, यह द्रव्य, उसमें यह भेद सविकल्प से विचार करके (भेद करना) वह वस्तु ही परद्रव्य है। आया था न उसमें? परद्रव्य सविकल्प भेद-कल्पना। अकेला अखण्ड ज्ञायकभाव द्रव्य ध्रुव स्वरूप अभेद एक निर्विकल्प वस्तुमात्र, उसके अनअवलोक को—उसके ऊपर अवलोकन नहीं होने से '**परितः शून्यः**' वह तत्त्वज्ञान से रहित है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म परन्तु।

वस्तु है न? वस्तु। उसका अन्तर... अन्तर... अन्तर... एक अंश। लक्ष्य भले पर्याय करे। समझ में आया? परन्तु पर्याय लक्ष्य करती है, वह वस्तु तत्त्व पूरा एक अभेद-अभेद महा सागर है। ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, आनन्द अनन्त, ऐसे भाव का एकरूप द्रव्य। समझ में आया? अलोक के समक्ष लोक तो इतना जरा सा है। इसी प्रकार द्रव्य के समक्ष एक समय की पर्याय इतनी एक जरा सी। ऐसी एकरूप अभेद निर्विकल्प चीज़। भाई! यह पदार्थ ऐसा है कि उसमें ज्ञान अन्दर ऐसे जाने से जिसका पार नहीं, ऐसा द्रव्य जो अभेद है, तब उसे विकल्प टूटे और निर्विकल्प दृष्टि हो। इसलिए यह चार (भंग) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अभेद बतलाये हैं। कल सब अधिकार आ गया न? समझ में आया?

एकरूप वस्तु, एकरूप क्षेत्र, एकरूप काल अर्थात् ऐसा का ऐसा पूरा, वस्तु वह उसका काल पूरा। एकरूप पूरा भाव। उसका—चार का भी एकरूप वापस। चारों ही भाग नहीं। समझ में आया? ऐसे स्वद्रव्य के अनअवलोक को। पर्यायमात्र को माने परन्तु इस चीज़ को न माने। इससे '**परितः शून्यः**' तत्त्व वस्तु पूरी दृष्टि में शून्यता उसे आती है, वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। समझ में आया? **निर्विकल्प वस्तुमात्र के नहीं प्रतीति करने के कारण।** अनअवलोकन का अर्थ प्रतीति नहीं करता, अवलोकता नहीं अर्थात् प्रतीति नहीं करता। समझ में आया?

और कैसा है? 'प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः' 'प्रत्यक्ष' असहायरूप से लिखे हुए के समान... प्रत्यक्ष अर्थात् ऐसे-ऐसे सब है न? ऐसे यह परद्रव्य। यह द्रव्य है न? ज्ञान की पर्याय में यह सब ज्ञात होता है। ऐसा जाने। असहाय

अर्थात् यह सब ऐसा सीधा ज्ञात होता है ऐसा। और **लिखे हुए के समान...** पर्याय में सब आ गया हो। **जैसे का तैसा अमिट (अटल)....** उसमें मानो नहीं मिटता हो, वह सब चीज़ पर्याय में से न मिटे। ऐसा **जो ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम उससे माना जो अस्तित्व...** क्या कहते हैं ? वर्तमान ज्ञानपर्याय के अंश में यह सब परद्रव्य ही अकेला भासित होता है। ऐसा सब भासित होता है। प्रत्यक्ष अर्थात् कि असहाय अर्थात् कि मानो सीधा यही प्रत्यक्ष हो और यही सहाय बिना की चीज़ हो, वह परद्रव्य ही भासित होता है, परद्रव्य का ही अस्तित्व उसे भासित होता है। समझ में आया ?

अंशमात्र के माननेवाले को अंश में वह चीज़ ही प्रत्यक्ष यही मानो (भासित होती है)। सहाय बिना की प्रत्यक्ष अमिट आलेखित ज्ञान में यही चीज़ है, ऐसा उसे भासित होता है। कठिन बातें, भाई! धर्म करने में ऐसा सब समझना पड़ता होगा ? हें ? आहाहा! यह सामायिक करके, प्रौषध करके बैठ जाये, हो गया जाओ। भाई! तेरी प्रभुता का पार नहीं, भगवान! तू इतने क्षेत्र में है, ऐसा न देख। तेरी एक समय की पर्याय में तो लोकालोक ज्ञात हो जाता है। इतना पर्याय को माने और द्रव्य को न माने, ऐसा यहाँ तो कहना है, भाई! आहाहा! पर्याय को अर्थात् कि, लोकालोक ज्ञात हो, ऐसी एक पर्याय। एक समय की पर्याय को माने अर्थात् पर को माने, (ऐसा) इसका अर्थ (हुआ)। स्वद्रव्य जो पूरा जिसमें एक समय की पर्याय लोकालोक को जाने, ऐसा जो परद्रव्य, उसे स्वीकार करने से भगवान पूरा अनअवलोकित रह जाता है। समझ में आया ? आहाहा!

जिसमें नजर न पहुँचे। आकाश-क्षेत्र का कहाँ अन्त है ? वह इस नजर के ध्येय में अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... एकरूप अमाप महा सागर, एकरूप वस्तु ऐसे तत्त्व को प्रतीति में या ज्ञान में लिये बिना अकेले अंश में यह सब मानो प्रत्यक्ष वह ही हो, पूरी चीज़ तो मानो गुम हो गयी हो, (ऐसा भासित होता है)। समझ में आया ? आहाहा! यह लिखे हुए अर्थात् कि ऐसे मानो उत्कीर्ण हो गये, सभी द्रव्य लोकालोक मानो पर्याय में उत्कीर्ण हो गये हों। इतना ही मानो मैं होऊँ। समझ में आया ? अमिट अर्थात् स्थिर हो गयी है, उस पर्याय में सब स्थिर हो गया है। यह पर का जानना मानो पर्याय में स्थिर हो गया हो और उस परद्रव्य को ज्ञेयाकार परिणाम जो अपने हुए, उससे माना। **उससे**

माना जो.... अस्तित्व, इतने से माना अपनापन, इतने से माना अपना अस्तित्व, इतने से माना अपनी अस्ति और पूरा तत्त्व—द्रव्य रह गया, इसलिए एकान्त मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें नजर डालने से विकल्प रहता नहीं। क्योंकि अमाप चीज़ है, अमाप चीज़ है, उसमें ऐसा होने से विकल्प रहता नहीं। क्योंकि विकल्प की ताकत नहीं कि उसमें एकाग्र हो सके। समझ में आया? ऐसी अमाप चीज़ भगवान आत्मा को जो दृष्टि में लेता नहीं, देखता नहीं, उसमें सन्मुख होता नहीं, उसे वह द्रव्य लक्ष्य में, प्रतीति में, अनुभव में आता नहीं, इसलिए उसकी एक समय की पर्याय ही उसे अनुभव में आती है। यह लोक और अलोक जो कुछ ख्याल में आये यह वस्तु... यह वस्तु... यह वस्तु... समझ में आया?

सूक्ष्म पड़े परन्तु जैसा है, वैसा होगा या दूसरे प्रकार से होगा, वह किस प्रकार से? कहो! जमुभाई! क्या करना? कहो! हलुवा महँगा पड़े, इसलिए कहीं फिर पानी का का और धूल का और मिट्टी का होता होगा? शीरा कहते हैं न? हलुवा। महँगा बहुत पड़े भाई! उसमें अभी का पाँच सेर... क्या कहलाता है? पाँच रुपये का सेर घी, ऐसा कुछ कहते हैं, कम-ज्यादा चाहे जो हो। पाँच रुपये का सेर घी और शक्कर महँगी और... हें? गेहूँ भी कितने महँगे! इसकी अपेक्षा धूल, पानी और गारा डालकर लड्डू तो हों, कुछ न होगा। भूख नहीं मिटेंगी और मुफ्त में जायेगी सब मेहनत। उसमें वह चीज़ है इतनी कीमत भरनी पड़ेगी। हें?

इसी प्रकार यह वस्तु—आत्मा का धर्म जिसे करना है, उसे ज्ञान में पूरी चीज़ कौन है, यह उसे ज्ञान में लेनी पड़ेगी। उतनी उसे कीमत भरनी पड़ेगी। जो श्रद्धा की पर्याय में पूरा आत्मा दृष्टि में—प्रतीति में आवे, उतनी इसे कीमत देनी पडेगी। आहाहा! समझ में आया? इसके बिना अकेली वर्तमान अवस्था को माने....

यहाँ तो कहते हैं, **ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणाम उससे माना....** ऐसा लिया है, हों! राग को माने, पुण्य को माने, यह बात यहाँ नहीं ली है। राग-पुण्य के भाव, दया-दान के भाव और उसका जो होता ज्ञान; दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प, उनका पर्याय में

होता ज्ञान, उस पर्याय में अनेकपना होकर उस पर्याय को माने। उनको माने वह तो आत्मा में है ही नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व में गया। यह तो आत्मा में जो है, उसके एक अंश में जो है, उस अंश में सब ज्ञात होता है, इतने को आत्मा माने तो उसने परद्रव्य में अपना माना। कहो, वजुभाई! बहुत कठिन बात है। हें? यह कल बहुत सब आ गया। कहो, समझ में आया इसमें? आहा!

यह तो एक न्याय ऐसा आया था न? द्रव्य और पर्याय भेद पाड़े, वह व्यवहार है। इतना एक न्याय आता है न? भाई! वह अलग वस्तु, वह अलग वस्तु। यहाँ अलग अपेक्षा कहनी है। यहाँ तो महान पूरा अस्तित्व। एक समय की पर्याय यह सब जाने, वह नहीं। समझ में आया? उत्पाद-व्यय बिना का अकेला तत्त्व अभेद पूरा अखण्ड, जिसे ज्ञायकभाव कहा न?

एकरूप वस्तु, जिसमें अपार-अपार सागर महासागर, सागर को—इस सागर को भी हद होती है। यह तो अपार सागर अद्‌भुत चैतन्य रत्नाकर निधि। ऐसी दृष्टि में न ले, इतने परमात्मा को अवलोकन न करे और अकेले पर्याय के अंश में ही रुक जाये, उसे स्वद्रव्य की प्रतीति की खबर नहीं। समझ में आया? जिसमें नजर डालने से नजर हो जाये विकल्परहित। महान है न, अभेद वस्तु? ऐसे अभेद पर जाने से जिसकी नजर ही विकल्परहित हो जाये। उस विकल्प बिना की नजर जितना भी आत्मा नहीं, यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पूरा अखण्डानन्द प्रभु, उसे जो अन्तर दृष्टि में ऐसा लेता नहीं। अवलोकती है पर्याय, प्रतीति करती है पर्याय परन्तु इसकी ऐसी प्रतीति की है, ऐसा नहीं, वह पर्याय इसकी प्रतीति करती है। क्या कहा? एक समय की पर्याय में ज्ञेयाकाररूप से परिणमन हुई पर्याय को प्रतीति करता है, वह तो परद्रव्य प्रतीति हुई। समझ में आया?

उसी पर्याय में प्रतीति करता है, 'यह पूरा'। तब इसने तत्त्व का अवलोकन किया और तत्त्व की प्रतीति इसने की। ऐसा अज्ञानी ऐसे महान पदार्थ की दृष्टि नहीं करता, अकेले पर्यायमात्र को पूर्ण मानकर सब जाने, यही यह है, वह मानकर **अस्तित्व उससे ठगा गया है...** वह अपने ज्ञान परिणाम में अकेले ज्ञेय का ही पूरा सब ज्ञात हो और ठगा

गया है। मानो यही मानो मेरा स्वद्रव्य है। वह परद्रव्य ही मैं हूँ, ऐसा ठगाया है, ठगा गया है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

'**वञ्चितः**' अपने इतने को मानने के अस्तित्व से ठगा गया है। **ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव।** अरे! इसने अपने को ठगा है, कहते हैं। पूरा ऐसा यहाँ रह जाता है और इसने माना। ठगा गया, ठगा गया। समझ में आया?

एक समय में अभेद वस्तु परमात्मा स्वयं, उसे न अवलोकता हुआ एक समय की पर्याय में यह सब ज्ञात हो, उसमें यह अस्तित्व मानकर ठगा गया है, कहते हैं। ले, पर को ठगा होगा इसमें? तू स्वयं तुझे ठगता है, हों! कहते हैं। समझ में आया? महान पदार्थ भगवान को अवलोकन का अवकाश नहीं लेता, प्रतीति नहीं करता। इतने एक समय की वर्तमान दशा में ज्ञात ज्ञेयोंरूप परिणमित ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान, उसमें ठगा गया कि यही मैं हूँ। समझ में आया? यहाँ तो अभी यह स्त्री-पुत्र और अमुक मेरे और अमुक मेरे, वह तो बहुत ठगा गया है, कहते हैं। उसे पूरी वस्तु साहूकारपद वस्तु रह गयी, ठगा गया। तूने (तुझे) इतने में पूरा मान लिया। पूरा खोटा रुपया दिया और ले यह गिन्नी। समझ में आया? कहते हैं, ठगा गया है, वंचित है। **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव।** ओहोहो! उसे मिथ्यात्व पाप कहते हैं। अब इसमें किसे ठगा?

वस्तु महान पदार्थ द्रव्य वस्तु, उसे ज्ञान में इसने दृष्टि में न लेकर इतना ही बाहर का पलटता-परिणमता एक ज्ञान का अंश, उसमें ज्ञात हो, उसे ही माना, (वह) मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं, पाप दृष्टि है। आहाहा! अब इसमें पाप क्या किया? कि जीव मरे, पैसा रखे, ऐसा होवे तो पाप (कहलाये)। पैसा कौन रख सकता है? दे कौन सकता है? इसकी पर्याय में उस वस्तु को जानने की पर्यायरूप परिणम सकता है। उस पर्याय के अंश को ही पूरा मानकर यह मैं स्वद्रव्य हूँ, उसने परद्रव्य में स्वद्रव्यपना मानकर और अपनी चीज को ढँक दिया है, श्रद्धा में ढँक दिया है। वह इसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है, वह इसकी श्रद्धा पापदृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा!

'**तु**' अब सुलटी (बात) लेते हैं। यह उल्टे की व्याख्या की। अब '**तु स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति**' वह मर जाता है और यह जीता है। ठगाया कहो या मर गया, ऐसा

(कहो)। समझ में आया? **एकान्तवादी कहता है उस प्रकार नहीं है।** '**तु**' शब्द का अर्थ किया। '**स्याद्वादी**' **सम्यग्दृष्टि जीव....** यह धर्मी जीव, धर्मी सत्यदृष्टि जीव, सम्यक् सत्यदृष्टि जीव '**पूर्णो भवन्**' **पूर्ण होता हुआ....** इतने समयमात्र का नहीं, मैं तो अखण्ड अभेद एकाकार हूँ। ऐसे पूर्ण भगवान आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में लेता हुआ अपने आत्मा को जिलाता है। जिलाता है, साहूकार बनाता है। समझ में आया? लो, साहूकार। वह कहे, सावध्य है। यह चोर है और निवृत्त है, वह साहूकार है। अरे! सुन न। समझ में आया? एक समय की पर्याय को मात्र माने, द्रव्य को न माने, वह चोर है, गुनहगार ठग है। व्याख्या भी कठिन। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में '**पूर्णो भवन्**' '**पूर्णो**' पूर्ण है। '**भवन्**' अर्थात् पूर्ण है, ऐसी श्रद्धा में लेता है, ऐसा। समझ में आया? **पूर्ण होता...** '**पूर्णो भवन्**' है न? **पूर्ण होता हुआ...** पूर्ण तो पूर्ण है परन्तु श्रद्धा में '**पूर्णो भवन्**'। श्रद्धा में पूर्ण **होता हुआ...** मैं पूर्ण द्रव्य हूँ, अखण्ड एकरूप अभेद हूँ। समझ में आया? आहाहा! '**पूर्णो भवन्**' एक वस्तु अभेद, ऐसा श्रद्धा में श्रद्धारूप से होता हुआ, पूर्ण हूँ—ऐसी श्रद्धारूप से होता हुआ **सम्यग्दृष्टि जीव...** यहाँ तो अब वे कहें, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो, तो सम्यग्दर्शन। ऐई! जुगराजजी! छह-छह द्रव्य को मानो, नौ तत्त्व को मानो, यह व्यवहार समकित और व्यवहार समकित वह चौथे गुणस्थान में सात प्रकृति के क्षयवाला समकित, लो! परन्तु गजब किया है न! अरे! भगवान! तेरे छुए-स्पर्शे बिना का समकित कैसा? समझ में आया?

भगवान आत्मा '**पूर्णो भवन्**'। देखो! यह सम्यग्दृष्टि की व्याख्या। समझ में आया? '**स्याद्वादी**' अर्थात् सम्यग्दृष्टि। पर्याय को जानता, मानता है परन्तु अन्दर पर्याय द्वारा द्रव्य को स्वीकारता है। '**पूर्णो भवन्**' अपूर्ण अकेला पर्याय नहीं। अकेला अभेद भगवान आत्मा, उसे श्रद्धा-दृष्टि में लेकर निर्विकल्प पर्यायरूप से परिणमता हुआ। **पूर्ण होता हुआ...** इसका अर्थ कि, पूर्ण जो अभेद वस्तु है, उसरूप पर्याय में **पूर्ण होता हुआ...** अर्थात् कि दृष्टि जहाँ निर्विकल्प होकर पूर्ण को स्वीकार करती है। समझ में आया? लो! यह विकल्पसहित, रागसहित में यह '**पूर्णो भवन्**' होगा होगा?

अरे! भगवान! यह पूर्ण स्वयं ही ऐसी चीज़ है, यह वस्तु ही ऐसी चीज़ है कि, उसमें नजर जाने से नजर रागरहित हो जाती है। समझ में आया? उसके जैसी हो जाती है। यह वीतरागस्वरूप है, इसलिए '**पूर्णो भवन्**' दृष्टि वीतराग हो जाती है। वीतराग दृष्टि से पूर्ण वीतरागता पूर्ण स्वभाव का स्वीकार होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो अकेले सर्वज्ञ के मन्त्र हैं। सर्वज्ञ, वे सर्वज्ञानी, सर्वदशी। आया था न? 'निज कर्म आच्छादने' आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ—सर्वदर्शी ही वस्तु है। सर्व-पूर्ण। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, वह वस्तु ही ऐसी है। उसकी दृष्टि पूर्ण को स्वीकार करे। सर्वदर्शी और सर्व ज्ञान आया न? अर्थात् पूर्ण हो गया। भगवान आत्मा सर्वज्ञ, सर्व ज्ञानी, सर्वदर्शी, पूर्ण ज्ञानी, पूर्ण दर्शी। वस्तु पूरी, हों! एकरूप। उसे दृष्टि से स्वीकार करने से, ऐसे पूर्ण को स्वीकारने से '**पूर्णो भवन्**' पर्याय भी निर्विकल्प हो जाती है। तब पूर्ण का स्वीकार होता है, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? 'निज कर्म आच्छादने' परन्तु अन्दर में राग और विकल्प की एकता में, राग और विकल्प की एकता में वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी को देख नहीं सकता। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

वस्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। ओहो! जिसके ज्ञान का सर्वपना पूरा जानना। पूरा, उसकी हद क्या? शक्तिरूप से, हों! शक्तिरूप से। उसमें से सर्वज्ञपद प्रगटे, वह तो पर्यायरूप से। यह तो पूरी शक्ति, ऐसे-ऐसे अनन्त सर्वज्ञपर्याय के पद का पद यह। समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञ—सर्वदर्शी निजपद पूर्ण वह '**पूर्णो भवन्**' उस पूर्ण की प्रतीति करनेवाला पूर्ण प्रतीतिरूप से परिणम जाता है। पहला अपूर्णरूप से परिणमता था यहाँ पर्याय में निमित्त, राग की एकताबुद्धि में यह... यह... ऐसा करके (परिणमता था)। समझ में आया? गजब बात, भाई! लोगों को महँगी लगे, हों! अरे! भाई! मोक्ष अर्थात्... आहाहा! और सादि-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द। सादि-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द और उसके कारणरूप मार्ग और उस मार्ग में स्वीकार भगवान आत्मा का। समझ में आया?

अतीन्द्रिय जैसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहो, वैसे अतीन्द्रिय आनन्द का अपार माप

बिना का वह पिण्ड प्रभु आत्मा, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण सर्वज्ञ को प्रगट हो, ऐसी तो अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय के सादि-अनन्त के थोक के थोक जिसकी अतीन्द्रिय शक्ति में, आनन्द शक्ति में पड़े हैं। आहाहा! ऐसा पूर्ण भगवान आत्मा पूर्णम् इदम्। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... वेदान्त में भी पूर्णम् इदम् कहते हैं, परन्तु यह नहीं। समझ में आया? '**पूर्णो भवन्**' यह लोगों में कहते हैं, हों! शब्दों का मेल खाये न तो मानो (यही कहते हैं)। यह वस्तु ही दूसरी यह तो। वह तो एक समय में पूर्ण एक द्रव्य पूर्णम् इदम्। दूसरे अनन्त आत्मायें रह गये, अनन्त परमाणु तो एक समय की पर्याय के ज्ञेय में रह गये। समझ में आया? आहाहा!

मुरली बजे तो सामने सर्प डोलता है। जहर चढ़ा हुआ, हों! जहरवाला। परन्तु उसे रस (आता है)। इसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि की मुरली बजी, अरे...! आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु तू है न! कहाँ रोना रोता है तू? कहाँ जाकर हाथ फैलाया तूने? एक समय की पर्याय को पूरा माना, मूढ़ है। यह क्या है? उसके बदले अभी तो राग और पुण्य और पापवाला और उससे मजा (मानता है)। अरे! (यह तो) महा दृष्टि पाप है। समझ में आया? चिल्लाहट मचा गये, अररर! पुण्य का जरा (कड़क) आया तो चिल्लाहट मचा गये। आकाश-पाताल एक करते हैं, किसी ने कल लिखा है न? भाई! पुण्य को जरा विष्टा कहा तो अब आकाश-पाताल एक करते हैं। अरे! भगवान! तुझे मिठास है, बापू! उसकी जरा सी रुचि छोड़ने का भाव, उसे ख्याल में आवे, इसलिए यह भाषा आ गयी, सुन न! आहाहा! यहाँ तो यह बात भी नहीं।

यहाँ तो एक समय के ज्ञान की दशा में वे ज्ञेय पुण्य-पाप के विकल्प और उनका फल इस ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, उतने को अपना माने, उसे मूढ़ कहते हैं। ऐ... हिम्मतभाई! शोर मचाते हैं, शोर मचाते हैं। बापू! यह तेरा काल है न, भाई! यह रुदन इसने अनन्त काल से रोये हैं। अवसर मिला तब रोया है। समझ में आया? ऐसा नहीं... ऐसा (नहीं)। अरे! भगवान! सुन प्रभु! अरे! निगोद के भव में से निकलने का अवसर आया। अनन्त-अनन्त निगोद की गतियाँ, भाई! तेरे वे निगोद के दुःख तूने भोगे (और) भगवान जाने। तुझे यह जरा बाहर में आ गया तो हो... हा... (करने लगा)। कुछ नहीं, धूल-धाणी है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि साता-असाता के फल और उसका विकल्प जो पुण्य आदि का उठे, उसरूप ज्ञेयाकारपने ज्ञान परिणमा, ऐसी जो पर्याय, उसे माने, वह परद्रव्य को ही मानता है, तेरी दृष्टि में स्वद्रव्य पूरा रह गया, भगवान! धर्मी को पूरा द्रव्य आत्मा दृष्टि में, ज्ञान में भासित होता है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान ऐसा देखता है और ऐसा देखे वहाँ तो अन्दर पूरा बड़ा मापरहित चीज़ ऐसे भासित हो वहाँ, उसका अन्त न भासित हो, इसलिए वहाँ इसे विकल्प टूट जाते हैं। समझ में आया?

ऐसा '**पूर्णो भवन्**' वस्तु पूर्ण है, प्रतीति भी पूर्ण यथार्थ श्रद्धा हो गयी, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन हो गया पूरा। फिर उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की कुछ बात नहीं। आहाहा! जिसका विषय एक अभेद ही रह गया। समझ में आया? '**पूर्णो भवन्**' '**जीवति**' **ज्ञानमात्र जीववस्तु है, ऐसा साध सकता है...** जिलाता है अर्थात? जिलाता है अर्थात्? अस्तित्वरूप से जैसा है, वैसा श्रद्धा में रखता है। जैसा पूर्णानन्द प्रभु आत्मा है, उसे श्रद्धा-ज्ञान में लेते हुए, वैसा उसे रखता है। अज्ञानी पर्याय को माननेवाला जैसा है वैसा, जैसी वस्तु है वैसी रखता नहीं, रखता नहीं अर्थात् वस्तु को मार डालता है। आहाहा! जीवन-मरण का सौदा। समझ में आया? देखो न! भाषा कैसी की है? देखा! '**जीवति**' उसमें वंचित कहा था (अर्थात्) इसने मार डाला। ठगा, भाई! तूने ठगा। बापू! भगवान को विसारकर एक समय की पर्याय ज्ञेयाकार को स्वीकार कर ठगाया है, बापू! आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञानमात्र जीववस्तु है, ऐसा साध सकता है—अनुभव कर सकता है।** '**जीवति**' अर्थात् यह पूरी चीज़ अभेद एकरूप है, उसकी श्रद्धा की न, इसलिए उसने जैसा है, वैसा श्रद्धा में जीवित रखा। वह जीव जीवित हुआ। समझ में आया? वह जीव जीवित हुआ। आहाहा! जीव और जीवित हुआ? आहा! ऐ न्यालभाई! यह किस प्रकार की बात होगी? जैन परमेश्वर के घर की होगी? तुम बड़े पुराने आदमी हो। उपाश्रय में चलता था ऐसा? नहीं था? भाई! हम गये तब उससे पहले उपाश्रय में व्याख्यान सुनकर फिर आयेंगे, (ऐसा) कहे। यह पहले वहाँ बैठै थे, फिर आये थे। खबर है? जल्दी गये थे। तब वहाँ सुनते थे, व्याख्यान सुनते थे। तब, यह पोरबन्दर जाना था तब। खबर है, सब खबर है, हों! सब लेखा तो लिखाया हो न! बापू! बाद में आयेगा, व्याख्यान पूरा

होगा फिर (आयेगा)। संवत् २०१० का वर्ष हुआ न? दस, दस। तुम थे? भोलाभाई के मकान में उतरे थे। वहाँ न्यालभाई भी सुने। फिर आयेंगे, व्याख्यान में आयेंगे। यहाँ कहते हैं, भगवान! परन्तु घर कौन सा तेरा? आहाहा!

यह निधान भगवान आत्मा को तूने श्रद्धा में लिया, तब तू जीवित हुआ। दूसरे को जीवित करना या मारना, वह तेरे अधिकार में नहीं है। दूसरे जीव को मारना या जिलाना (तेरे अधिकार में नहीं है)। अरे! भगवान! गजब किया तूने! दूसरे को मार सकते हैं, दूसरे को जिला सकते हैं, इसका अहंकार नहीं करना। अरे! प्रभु! परद्रव्य की पर्याय कर सके, बापू! यह तुझे क्या हुआ? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो तेरी पर्याय के अस्तित्व को इतने को माने तो भी मूढ़ है, कहते हैं, तो पर के करने-फरने की बातें (तो कहीं रह गयी)। आहाहा!

किसके द्वारा? अब **अनुभव कर सकता है। किसके द्वारा? 'स्वद्रव्यास्तितया'** है न? **'स्वद्रव्यास्तितया'** जो बात उठायी थी (कि) स्वद्रव्य किसे कहना? कि स्वद्रव्य निर्विकल्पमात्र वस्तु, ऐसा पहले कहा था न? वह का वह शब्द यहाँ उठाते हैं और रखते हैं। **'स्वद्रव्य' निर्विकल्प ज्ञानशक्तिमात्र वस्तु...** वहाँ निर्विकल्प वस्तुमात्र कहा था, यहाँ 'ज्ञान' शब्द डालकर अधिक कहा। स्वद्रव्य किसे कहते हैं? कि **निर्विकल्प ज्ञानशक्तिमात्र....** शक्तिमात्र, हों! पर्याय नहीं, शक्ति-सत्त्व मात्र अकेला। अकेला ज्ञान स्वरूप। ज्ञान से बात ली है परन्तु अनन्त गुण स्वरूप एक।

अभेद **ज्ञानशक्तिमात्र वस्तु उसके... 'अस्तितया' अस्तित्वपने के द्वारा।** उसके अस्तित्व द्वारा जीव को जिला रखा है। समझ में आया? भगवान! एक समयमात्र में ही पूरा तत्त्व, ज्ञानशक्तिमात्र मात्र अकेली वस्तु, ऐसा प्रतीति में लेता हुआ जीव को जीवित रखा। यह भाषा किस प्रकार की? भीखाभाई! **क्या करके?** अब कहते हैं कि क्या करके? **'निपुणं निरूप्य', 'निपुणं निरूप्य' ज्ञानमात्र जीववस्तु का....** निपुण की व्याख्या तो इतनी है कि अपने अस्तित्व से। निपुणपना, निपुणपना अर्थात् अपना अस्तित्व, वह निपुणपना। समझ में आया? जैसी पूर्ण अभेद एकाकार वस्तु है, वह निपुण है, वह निपुण है, वही अस्तित्व है। उस अस्तित्व को निपुण कहा और निपुण को यहाँ अस्तित्व कहा

है, बस। समझ में आया? पुस्तक रखी है या नहीं? रसिकभाई! है पुस्तक? देखो, यह देखो तो सही, पम्प को घुमाया घुमाया करते हो। आहाहा!

कहते हैं, '**निपुणं निरूप्य**' निपुण अर्थात् अपना अस्तित्व। कैसा? कि ज्ञानमात्र जीववस्तु। यह तो उसके बाद विशेषण से समझाया, समझ में आया? भगवान ज्ञान शक्ति सत्त्वमात्र वस्तु। **अपने अस्तित्व से किया है... 'निरूप्य'** अर्थात् अनुभव। निपुण का निरुप्य, निपुण का निरुप्य। अपने पूर्ण अस्तित्व का अनुभव। समझ में आया? **क्या करके?** ऐसा कहा न? क्या करके जीवित रखा जीव को? क्या करके जीवित रखा जीव को? सम्यग्दृष्टि ने अपना अस्तित्व परिपूर्ण वस्तु है, उसका अनुभव करके। अनुभव करके, अनुभव करके सम्यग्दृष्टि ने जीव को जीवित रखा। समझ में आया?

किसके द्वारा? अस्तित्व द्वारा। फिर कहा, क्या करके? कि, इस द्वारा। **किसके द्वारा? 'विशुद्धबोधमहसा' निर्मल जो भेदज्ञान उसके प्रताप के द्वारा।** देखो! और कोई विकल्प द्वारा, राग द्वारा, निमित्त द्वारा, संहनन द्वारा, मनुष्य द्वारा, देह द्वारा कुछ है? आहाहा! '**विशुद्धबोधमहसा**' निर्मल जो भेदज्ञान। ऐसे पर्याय से पूरी चीज भिन्न है। समझ में आया? **निर्मल जो भेदज्ञान उसके प्रताप के द्वारा।** यह पर्याय की बात ली। '**विशुद्धबोधमहसा**' द्वारा। भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु! भेदज्ञान की, निर्मल भेदज्ञान की महिमा प्रताप द्वारा, उसके प्रताप द्वारा जीव को जीवित रखा। समझ में आया इसमें?

'**विशुद्धबोधमहसा**' भगवान निर्मल ज्ञान। जिसने पर्याय के अंश से हटकर पूरे पूर्ण की ओर ढला, ऐसा जो भेदज्ञान, (उसके) द्वारा। प्रताप इसका है। भेदज्ञान के प्रताप द्वारा जीव को अनुभव किया और जीव को जीवित किया। समझ में आया? कोई विकल्प था और कषाय की मन्दता थी, और इसलिए यह हुआ, (ऐसा नहीं कहा)। आहा! महान पदार्थ के पक्ष में चढ़ने से विकल्प क्या काम करे वहाँ? कहते हैं। समझ में आया? प्रभु! महान आनन्द का कन्द वस्तु अभेद, उसे सम्यग्ज्ञान, भेदज्ञान, वह पर्याय का अंश है, इतना नहीं ऐसा भेदज्ञान। राग से तो भेद-पृथक् पड़ी थी ज्ञानपर्याय, परन्तु एक पर्याय वह इतना नहीं, ऐसा भेदज्ञान करने से अभेद एकाकार जीव अनुभव में लिया, वह भेदज्ञान के प्रताप द्वारा (लिया है)। समझ में आया?

यह कलश भले उसमें लिखे वे सब चौदह बार वाँचन हो गये हैं। यह अलग प्रकार के कलश हैं। यह अमृत भरपूर कलश अमृतचन्द्राचार्य के हैं न? टीका भी की है न! 'पांडे राजमल जैनधर्मी, पांडे राजमल जैनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी', ऐसा बनारसीदासजी ने, उन्होंने भी.... आहाहा! अरे! भगवान! अरे! बनारसीदास कहते हैं।

अभी एक बार कहा नहीं था? भगवान! मुनि कहते हैं, प्रभु! तेरी दीक्षा के काल में जो अनन्त आनन्द था न, ऐसा ही अनन्त आनन्द चारित्रवन्त को है, हों! उसमें कुछ अन्तर नहीं, हों! आया था न? परमात्मप्रकाश में। भगवान! आपको तो इन्द्र सेवक थे न? ऐसा परम औदारिक शरीर लेकर आये हो न! छियानवें हजार, चक्रवर्ती तीर्थंकर हों उन्हें छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ थी न! छह खण्ड का राज था न! आपने छोड़ा (तब) चारित्र के समय का आनन्द कोई दूसरा होगा और हम त्याग-चारित्र में आये (तो) कोई दूसरा प्रकार कम होगा, ऐसा है? नहीं प्रभु! नहीं, हों! ऐसा सम्यग्दृष्टि कहता है, भगवान! निःसन्देह में जैसे तुम, वैसे हम हैं, हों! अन्तर रखना नहीं। ऐसा कहते हैं। ऐई! आहा! देखो! तो सही यह।

प्रभु! हमने चारित्र लिया। बाहर के गरीब व्यक्ति थे। वह हमारी चीज़ कहाँ थी। और तुम बड़े इन्द्र तुम्हारे सेवक थे, वह चीज़ तुम्हारी कहाँ थी? तुमने जो आत्मा की दृष्टि करके चारित्र के समय जो स्थिर हुए, उस आनन्द की जाति और उतनी ही हमारे पास है, हों! हाँ। बड़ा वैभव अधिक छोड़ा, इसलिए आनन्द तुमको अधिक और हमको कर्म। नहीं... नहीं। आहाहा! एक लकड़हारा हो, कल लकड़ी बेचने निकला हो। आज का होकर एकदम... मुनि हो। प्रभु! परन्तु हम मुनि हैं, हों! हमारे स्वरूप की चारित्र दशा और तीन कषाय के नाश की जो दशा है, वह दशा तुम्हारी है। इतने सब छोड़े और इतने थोड़े छोड़े, यह माप वह चारित्र का माप नहीं है। ऐसा सम्यग्दृष्टि कहता है। तिर्यंच का सम्यग्दर्शन, वैसा सिद्ध का समकित है, दोनों में कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए कहा है न? सिद्ध श्रद्धा के बल से संसार को चाहते नहीं। देखो न, देखो न! नियत वहाँ डाला। टोडरमलजी ने। सिद्ध राग को क्यों नहीं चाहते? कर्म नहीं

इसलिए—ऐसा नहीं कहा। है ? विमलचन्दजी ! टोडरमल (जी कृत) मोक्षमार्गप्रकाशक में है। सिद्ध संसार को क्यों नहीं इच्छते ? आस्रव को क्यों नहीं इच्छते ? श्रद्धा का बल है। नि:शंक सम्यग्दर्शन पूरे अभेद का परिणमनद हुआ है न। वहाँ सम्यक्त्व का बल, अब निर्मल पर्याय हुई, उसका बल ले न ! सम्यग्दर्शन में अभेद की दृष्टि का जो परिणमन है, उस श्रद्धा के बल से उसे राग की इच्छा नहीं, ऐसा कहा। आहा ! समझ में आया ? इसी प्रकार नीचे भी सम्यग्दृष्टि को इच्छा की भावना ही नहीं। हो जाये भले, भावना नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, '**विशुद्धबोधमहसा**' आहाहा ! भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, उसे हम विशुद्ध बोध महिमा प्रताप द्वारा उसे पर से भिन्न किया है और इस प्रकार आत्मा को अनुभव किया है, उसकी महिमा है, कहते हैं। समझ में आया ? **प्रताप के द्वारा। कैसा है (भेदज्ञान का प्रताप) ? 'सद्यः समुन्मज्जता' उसी काल में...** जैसा है, वैसा पर्याय में उछल आया है, कहते हैं। उछला है, समझ में आया ? '**समुन्मज्जता**' क्या कहा ? भगवान आत्मा श्रद्धा और भेदज्ञान द्वारा जो आत्मा की प्रतीति और अनुभव हुआ (तो) कहते हैं, उस काल में जैसा द्रव्य है, वैसी ही पर्याय में पर्याय उछल आयी है। '**समुन्मज्जता**' है न ? प्रगट हुआ। प्रगट हुआ क्या, द्रव्य तो है परन्तु पर्याय में प्रगट हुआ, भगवान प्रगट हुआ कि ऐसा यह आत्मा है। समझ में आया ? पर्याय में केवलज्ञान प्रगट हो गया। केवलज्ञान की ज्योति ही यह तो आत्मा है। 'श्रद्धा से केवलज्ञान प्रगट हुआ' आता है न श्रीमद् में ? वह सब यह कहते हैं। आता है न ? समझ में आया ?

कहते हैं कि समुद्र उछला ! भेदज्ञान द्वारा वह '**समुन्मज्जता**' उछला। ऐसा जो डूब गया था, मिथ्याश्रद्धा में वंचित करके डूब गया था न ? राग की एकता में और मिथ्याश्रद्धा में और एक अंश की प्रतीति में भगवान पूरा डूब गया था। दृष्टि में डूबा था न ? वस्तु तो है वह है। परन्तु जहाँ पर्याय ने भेदज्ञान से आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में लिया (तो) '**समुन्मज्जता**'। पूरा था, ऐसा पर्याय में प्रगट दिखायी दिया, ऐसा। इस अपेक्षा से प्रगट हुआ, (ऐसा कहा जाता है)।

ज्ञायकभाव नहीं आता ? ग्यारहवीं गाथा। क्या आता है ? ज्ञायकभाव आविर्भाव

पाता है। ज्ञायकभाव आविर्भाव पाता है। ग्यारहवीं गाथा। ज्ञायकभाव आविर्भाव पाता होगा? वह तो पर्याय में है, ऐसा ज्ञात हुआ वह आविर्भाव पाया। समझ में आया या नहीं? है या नहीं वह? ग्यारहवीं गाथा में है। सब शैली ही अलौकिक रचना है यह सब। ग्यारह है न? ग्यारह, हों! एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है, ऐसा अनुभव किया। लो! देखा? 'आविर्भाव किया गया...' है न? 'पुरुषार्थ द्वारा आविर्भाव किया गया...' क्या? सहज एक ज्ञायकस्वभावपना, ज्ञायकभावपना। आविर्भाव पाया। ज्ञायकभावपना आविर्भाव पाता होगा? इसका अर्थ कि जो ज्ञायकभाव था, वह प्रतीति में आया, इसलिए वह ज्ञायकभाव ही आविर्भूत में आया। अल्पज्ञपना आविर में—प्रतीति में था, यह ज्ञायकभाव आविर्भूत में आया। नहीं तो और ऐसा कहे, ज्ञायकभाव आविर्भाव में आता होगा? देखो! ऐसा पाठ है, हों! अपने पुरुषाकार द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक ज्ञायकस्वभावपने के कारण जिसमें एक ज्ञान प्रकाश में ऐसा अनुभव होता है। यह सब वह शैली है। इसकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य हैं न! यह कलश उनके हैं। समझ में आया?

'**सद्यः**' '**सद्यः**' **उसी काल में...** '**समुन्मज्जता**' **प्रगट होता है**। ऐसी दो बात है न? '**सद्यः**' ऐसा है न? '**सद्यः**' अर्थात् तत्काल। '**समुन्मज्जता**' अर्थात् तत्काल प्रगट हुआ है, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द प्रभु! जहाँ सम्यग्दर्शन द्वारा प्रतीति में लिया, भेदज्ञान द्वारा अनुभव में लिया (तो) कहते हैं कि '**सद्यः समुन्मज्जता**' तत्काल—उस काल में वह प्रगट हुआ, उस काल में प्रगट हुआ। समझ में आया? लो! यह श्लोक पूरा हुआ। यह स्वद्रव्य के अस्तित्व का श्लोक पूरा किया। समझ में आया?

अब परद्रव्य का नास्तित्व यह छठवाँ श्लोक है। आत्मा में परवस्तु का नास्तिपना है। परवस्तु का अस्तिपना आत्मा में नहीं, इसका यह छठवाँ श्लोक कहते हैं।

कलश - २५३

(शार्दूलविक्रीडित)

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः
स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ।।७-२५३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है, जो वस्तु को द्रव्यरूप मानता है; पर्यायरूप नहीं मानता है; इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु, ज्ञान में गर्भित मानता है। ऐसा कहता है— उष्ण को जानता हुआ ज्ञान, उष्ण है; शीतल को जानता हुआ ज्ञान, शीतल है। उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान, ज्ञेय का ज्ञायकमात्र तो है परन्तु ज्ञेय का गुण, ज्ञेय में है; ज्ञान में, ज्ञेय का गुण नहीं है। वही कहते हैं— 'किल पशुः विश्राम्यति' [किल] अवश्य कर [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, [विश्राम्यति] वस्तुस्वरूप को साधने के लिए असमर्थ होता हुआ, अत्यन्त खेदखिन्न होता है। किस कारण से? 'परद्रव्येषु स्वद्रव्यभ्रमतः' [परद्रव्येषु] ज्ञेय को जानते हुए, ज्ञेय की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उसमें [स्वद्रव्य] निर्विकल्प सत्तामात्र ज्ञानवस्तु होने की [भ्रमतः] होती है भ्रान्ति। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार उष्ण को जानते हुए, उष्ण की आकृतिरूप ज्ञान परिणमता है—ऐसा देखकर, ज्ञान का उष्णस्वभाव मानता है मिथ्यादृष्टि जीव। कैसा होता हुआ? 'दुर्वासनावासितः' [दुर्वासना] अनादि का मिथ्यात्व संस्कार, उससे [वासितः] हुआ है स्वभाव से भ्रष्ट-ऐसा। ऐसा क्यों है? 'सर्वद्रव्यमयं पुरुषं प्रपद्य' [सर्वद्रव्य] जितने समस्त द्रव्य हैं, उनका जो द्रव्यपना, [मयं] उसमय जीव है अर्थात् उतने समस्त स्वभाव, जीव में हैं—ऐसा [पुरुषं] जीववस्तु को [प्रपद्य] प्रतीतिरूप मानकर। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव मानता है। 'तु स्याद्वादी स्वद्रव्यं आश्रयेत् एव' [तु] एकान्तवादी मानता है, वैसा नहीं है; स्याद्वादी मानता है, वैसा है। यथा-[स्याद्वादी] अनेकान्तवादी, [स्वद्रव्यं आश्रयेत्] ज्ञानमात्र जीववस्तु, ऐसा साध सकता है-अनुभव कर सकता है। सम्यग्दृष्टि जीव [एव] ऐसा ही है। कैसा है स्याद्वादी? 'समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्' [समस्तवस्तुषु] ज्ञान में प्रतिबिम्बित हुआ है समस्त ज्ञेय का स्वरूप, उसमें [परद्रव्यात्मना] अनुभवता है

ज्ञानवस्तु से भिन्नपना, उसके कारण, [नास्तितां जानन्] नास्तिपना अनुभवता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि समस्त ज्ञेय, ज्ञान में उद्दीपित होता है परन्तु ज्ञेयरूप है; ज्ञानरूप नहीं हुआ है। कैसा है स्याद्वादी? 'निर्मलशुद्धबोधमहिमा' [निर्मल] मिथ्यादोष से रहित तथा [शुद्ध] रागादि अशुद्धपरिणति से रहित—ऐसा जो [बोध] अनुभवज्ञान, उससे है [महिमा] प्रताप जिसका, ऐसा है।।७-२५३।।

कलश - २५३ पर प्रवचन

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासित:
स्वद्रव्यभ्रमत: पशु: किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ।।७-२५३।।

ओहोहो! कहना है वह ऐसा **भावार्थ इस प्रकार है कि....** अभी लेंगे तो आगे। **कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है, जो वस्तु को द्रव्यरूप मानता है;....** देखो! अब। वस्तु है, ऐसा माने, **पर्यायरूप नहीं मानता है;....** एक समय में पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो, ऐसे छह द्रव्य और पर्याय को मानता नहीं। वह परद्रव्य ही 'वह मैं' सब मानता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तु को द्रव्यरूप माने, पदार्थ-पदार्थ, पर्यायरूप मानता नहीं। अर्थात् कि पर्याय में जो पर जानता है, वह पर है, ऐसा वह मानता नहीं। पर है, वही मैं हूँ, ऐसा (मानता है)। पर है, वह ही मैं हूँ। पर को स्वद्रव्यरूप से स्वीकार करता है। **इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु, ज्ञान में गर्भित मानता है।** पूरा लोकालोक, वह मैं हूँ, ऐसा मानता है न यह वेदान्त आदि? समझ में आया? अद्वैत, सब अद्वैत एक ही है। पूरा लोकालोक सब अद्वैत अर्थात् क्या आता है? 'अहं ब्रह्मास्मि'। यह सब ज्ञान ज्ञात होता है, ज्ञान ज्ञात होता है, ज्ञान ज्ञात होता है। समझ में आया? ...क्या कहते हैं? आता है... है? ...अपने कह गये दर्शन-ज्ञान और चारित्र... उसे मानता है, स्वद्रव्यरूप से। परद्रव्य मुझमें नहीं—ऐसा मानता नहीं। समझ में आया? इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु ज्ञान में गर्भित मानता है। ऐसा कहते हैं। अब इसका विशेष स्पष्ट आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण ८, बुधवार, दिनांक-१५-१२-१९६५, कलश-२५३, प्रवचन-२७०

स्याद्वाद अधिकार कलश टीका, सातवाँ कलश है फिर से **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव....** यह परद्रव्य से नास्तिरूप का श्लोक है। आत्मा परद्रव्य से नहीं है, इसका यह श्लोक है। अज्ञानी परद्रव्य से हूँ, ऐसा मानता है। ऐसा पहला बोल लेकर वह सुलटा लेंगे। **वस्तु को द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है,...** अर्थात् कि वस्तु है परन्तु पर्याय में यह सब भेद और सब ज्ञात होता है, वह दूसरी चीज़ है—ऐसा वह नहीं मानता। यह सब मैं ही हूँ। पर्याय में जो सब ज्ञात होता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न कोई चीज़ नहीं। ऐसा अज्ञानी पर को एकरूप मानकर अपना पर से भिन्नपना छूट जाता है। **इसलिए समस्त ज्ञेयवस्तु, ज्ञान में गर्भित मानता है।** जितनी चीज़ जानने में आती है, वह सब आत्मा में घुस गयी है सब, ऐसा। जानने में जो चीज़ आवे, वह आत्मा में अन्दर प्रविष्ट (हो गयी), भिन्न नहीं रहती, अद्वैत सब एक ही है। **ऐसा कहता है...** उसका स्पष्टीकरण। यहाँ तक कल आया था।

उष्ण को जानता हुआ ज्ञान उष्ण है,.... खट्टा मुँह नहीं होता? खट्टा। उस समय ज्ञान भी खट्टा होगा न? खट्टा जीव हो गया नहीं कहते? कहते हैं ऐसा? खट्टा जीव होता होगा? खट्टा तो ज्ञान की पर्याय में खट्टा है, ऐसा ज्ञात होता है, ज्ञान खट्टा नहीं होता। समझ में आया? आत्मा की ज्ञानपर्याय, उसमें खट्टा ज्ञात हो, कहीं ज्ञान खट्टा नहीं होता। खट्टा तो जड़ है। ज्ञान तो चेतन है। चेतन की पर्याय खट्टी होवे तो जड़ हो जाए। समझ में आया?

यहाँ पहले उष्ण की व्याख्या की है कि **उष्ण को जानता हुआ....** गर्म-गर्म हुआ, ऐसा। पानी गर्म पड़े, अग्नि पड़े न तो मानो ज्ञान गर्म हो गया, ज्ञान गर्म हो गया, आत्मा गर्म हो गया। ऐसा होगा या नहीं? इस ज्ञान में रोग दिखता है, वहाँ यह ज्ञान रोगमय हो गया, लो! ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि पर से अपनी भिन्नता को नहीं मानता। समझ में आया?

उष्ण को जानता हुआ ज्ञान उष्ण है,.... गर्म... गर्म हुआ तो ज्ञान में गर्म तो ज्ञात

हुआ है, कहीं गर्मपना ज्ञान में आया नहीं है और ज्ञान उष्णरूप में गया नहीं है। जाता है ? गये बिना जाना किस प्रकार ? ऐसा कहते हैं। गर्म को जाना तो ज्ञान ने उसमें प्रवेश किया न ? समझ में आया ? यह प्रश्न (संवत्) १९८४ में एक खत्री ने राणपुर में किया था। नारणभाई के पास वह खत्री रहता था, खत्री। दुकान के सामने। दुकान अर्थात् उसका घर, उसकी इस ओर दुकान (थी)। वह वृद्ध एक वृद्ध आया था। यह तुम कहते हो कि इस परमाणु को आत्मा जानता है तो परमाणु में प्रवेश किये बिना ज्ञान कैसे जाने ? ऐसा प्रश्न (किया) प्रवेश करना पड़े, ऐसी जरूरत होवे तो ज्ञान का सामर्थ्य क्या ? यह प्रवेश करना पड़े, प्रवेश करके जाने तो ज्ञान का सामर्थ्य क्या ? वह प्रवेश करके जाने, इसका अर्थ कि ज्ञान में पर से भिन्न रहकर जानने का सामर्थ्य नहीं है। मुझमें पर से भिन्न रहकर जानने की (ताकत) नहीं है। इसलिए मैं जानता हूँ, वह पर में एक होकर जानता हूँ। उसे स्वयं को पर से भिन्न जानने की शक्तिवाला जाना नहीं। समझ में आया ?

उष्ण है, उस उष्णता में प्रवेश किये बिना, अन्दर प्रवेश किये बिना ज्ञान किस प्रकार जाने ? इसका अर्थ कि ज्ञान में परवस्तु को पृथक् रहकर-भिन्न रहकर जानने की ताकत है, ऐसा अपना अस्तित्व पर से भिन्न है, ऐसा वह मानने को तैयार नहीं है। अपन सब एक हैं। लकड़ी ज्ञात हो, घड़ी ज्ञात हो, सब ज्ञात हो। बराबर ज्ञात होता है, अढाई और सात (बजे)। कहाँ से ज्ञात हुआ ? उस प्रकार ज्ञान में प्रवेश हुआ, तब ज्ञात हुआ या नहीं ? परन्तु ज्ञान उसमें प्रविष्ट हुआ तो ज्ञान का सामर्थ्य पर से पृथक् रहकर जानने का है, वैसा सामर्थ्य कहाँ गया ? वह ज्ञान का सामर्थ्य ही है कि पर से पृथक् रहकर उसे जाने। पर में प्रवेश होकर जाने, वह ज्ञान सामर्थ्य कहलाता ही नहीं, वह तो जड़ हो गया। समझ में आया ? इस रोग को जानते हुए ज्ञान रोगमय हो गया, ऐसा माननेवाला रोग से पृथक् ज्ञान रोग को पृथक् रखकर रोग का ज्ञान करता है, वह ज्ञान स्व का और पर का करे, ऐसा ज्ञान का सामर्थ्य है। समझ में आया ?

शीतल को जानता हुआ ज्ञान शीतल है। ठण्डा... ठण्डा (आवे वहाँ) मैं ठण्डा हो गया। ज्ञान में वह ठण्डा ज्ञात होता है न ? तो ज्ञान मानो ठण्डे में गया, (ऐसा मानता है)। ठण्डे में गये बिना ठण्डा कैसे जाने ? परन्तु ज्ञान ज्ञान में रहकर ठण्डे को जाने।

ऐसे ठण्डे से ज्ञान भिन्न है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया? यहाँ विशेष क्या है कि जैसी उष्णता है, वैसा ही यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए उसे ऐसा हो गया है कि यह ज्ञान उष्णरूप हो गया। समझ में आया? परन्तु ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि जैसा सामने हो, वैसा अपने को पृथक् रखकर उसी काल में अपने सामर्थ्य से जानता है। समझ में आया?

उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेय का ज्ञायकमात्र तो है,... यह तो दो दृष्टान्त दिये, हों! ऐसा सब ले लेना। समझ में आया? लड़के और स्त्रियाँ ऐसे रोते हों और रोते हुए कलबलाहट करें, हों! कलबलाहट, घर में (चलती हो) उसे ज्ञान देखे, इसलिए ज्ञान में उस कलबलाहट का प्रविष्ट हो, तब ज्ञान उसे जाने न? ऐसा होता होगा? कहते हैं कि उस कलबलाहट की भिन्नता रखकर ज्ञान जानता है, उसका नाम ज्ञान कहलाता है। वह मात्र जानता है। समझ में आया? इसी प्रकार राग को ज्ञान जाने, इससे ज्ञान राग में प्रवेश करे तो राग को जाने, ऐसा (मानता होवे) तो उसे ज्ञान के सामर्थ्य की खबर नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो यह बात है, हों! वह राग है, वह वास्तव में परवस्तु है। विकल्प है न, विकल्प? उस राग को ज्ञान जाने तो ज्ञान रागमय हो गया, ऐसा माननेवाला राग से भिन्न ज्ञान राग को जाननेवाली सत्ता है, उसे वह स्वीकार नहीं करता। समझ में आया? मेल ऐसा खाये परन्तु मेल ऐसा नहीं खाता, तब ज्ञान किसका करे? ज्ञान तो जैसी चीज़ हो, वैसा ज्ञान करे तो वह ज्ञान बराबर कहलाये न? उसे ऐसा कि जैसी चीज़ है, वैसा ज्ञान करे, इसलिए ज्ञान उसमें प्रविष्ट हो गया। ज्ञान भिन्न रहकर जैसा है, वैसा ही, उसी प्रकार जाने—ऐसे सामर्थ्य के अस्तित्व का अज्ञानी स्वीकार नहीं करता। समझ में आया? आहाहा!

उसके प्रति उत्तर इस प्रकार है कि ज्ञान ज्ञेय का ज्ञायकमात्र तो है,... भगवान आत्मा का ज्ञान, ज्ञेय का जाननेमात्र तो है, ज्ञेय को जाननेमात्र तो है। **परन्तु ज्ञेय का गुण ज्ञेय में है,....** इस राग को, उष्ण को, शीतल को, खट्टे को, मीठे को जाननेमात्र—उस ज्ञेय को जाननेमात्र ज्ञानमात्र है परन्तु ज्ञानमात्र में उस ज्ञेय का जो गुण—खट्टा, मीठा, मधुर, वह यहाँ आ नहीं जाता। इस ज्ञान का गुण स्व-पर को जानना, वह गुण पर में नहीं जाता। ज्ञान का गुण जानना। वह जानना गुण खट्टा, मीठा, मधुर ज्ञेय में कहीं

प्रवेश नहीं करता। तथा खट्टा, मीठा, कड़वा वह जो ज्ञेय, इस ज्ञान में उस ज्ञेय का गुण नहीं आता। ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान अपना सामर्थ्य है, इसलिए यहाँ ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञेय का गुण ज्ञेय में है,... अर्थात् कि खट्टा, मीठा, कड़वा, राग, द्वेष, शरीर, वाणी, मन, इन सबमें जो गुण हैं, वे गुण उस ज्ञेय में रहे हुए हैं, उसमें रहे हैं। जानने के गुण में उनका गुण (नहीं है)। उनका गुण यहाँ होता भी नहीं। इसका गुण तो जानना है। यह जानने का गुण, वह गुण पर के गुण में गया नहीं और खट्टे आदि का गुण ज्ञान में आया नहीं। समझ में आया?

पुण्य-पाप के विकल्प, उनका गुण कलुषितता, आकुलता... समझ में आया? यह ज्ञान उसे जानते हुए ज्ञान में कलुषितता नहीं आती और कलुषितता में ज्ञान का गुण जानना, वह कलुषितता में नहीं जाता। समझ में आया? जो दु:खरूप भाव हुआ, उस दु:खरूप भाव का गुण आकुलता है। वह गुण ज्ञान की अवस्था में वह गुण नहीं आता परन्तु वह आकुलता है, उसी प्रकार का ज्ञान यहाँ होता है, वह तो ज्ञान का स्वभाव है। परन्तु उस आकुलता का गुण, वह आकुलता है, ऐसा ज्ञान जाने, परन्तु आकुलता का गुण, आकुलता का दु:ख, वह ज्ञान में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया इसमें?

इसी प्रकार ज्ञान का गुण जानना है, वह जानने का गुण राग-द्वेष, खट्टे-मीठे में वह गुण नहीं जाता। कहो, धर्मचन्दजी! यह इंजेक्शन लगावे तो रक्त बदल नहीं जाता एकदम? ज्ञान में भी एकदम आवे कि, हाँ अब मुझे ठीक है, अब मुझे ठीक है। ऐसा आता है या नहीं? परन्तु यह तो वहाँ (अवस्था) बदली, वैसा ही ज्ञान में ज्ञात हुआ, ज्ञान के स्वभाव के अस्तित्व के सामर्थ्य के कारण, उसके (ज्ञेय के) अस्तित्व के कारण नहीं। उसके अस्तित्व के कारण से होवे तो वह गुण यहाँ आ जाना चाहिए, अत: वह गुण तो जड़ है, तो यहाँ आवे तो ज्ञान जड़ हो जाए। आहाहा! समझ में आया?

परन्तु ज्ञेय का गुण ज्ञेय में है,... ज्ञेय अर्थात् ज्ञान होनेयोग्य वस्तु का गुण ज्ञात होवे योग्य में रहा है। समझ में आया? और **ज्ञान में ज्ञेय का गुण नहीं है**। है न? **वही कहते हैं... 'किल पशुः विश्राम्यति' 'किल'** अर्थात् **अवश्य कर...** करके। **'पशुः'**

अर्थात् **एकान्तवादी... 'पशुः पश्यते बध्यते कर्म इति पशुः'** जिसमें अपनी ज्ञान पर्याय को एकाकार राग में कर डालता है। समझ में आया? एकाकार मानता है, वह राग में एकाकार मानता है। उसे जानते हुए जाननेवाला भिन्न है और ज्ञेय का गुण भिन्न, ऐसा न मानकर ज्ञान में राग, शरीर को एकत्व मानता है, ऐसा '**पशुः**'। '**पशुः**' अर्थात् **मिथ्यादृष्टि जीव...** समझ में आया? आहाहा!

'**विश्राम्यति**' यह जो दिखता है न, वहाँ इसका ज्ञान स्थिर हो जाता है, वहाँ एकाकार हो जाता है। '**विश्राम्यति**' विश्राम लेता है अर्थात् कि खेदखिन्न होता है, ऐसा इसका अर्थ है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप, खट्टा-मीठा ज्ञान जानते हुए ज्ञान खट्टे-मीठे के कारण हुआ, इसलिए मेरा गुण उसमें गया, उसमें विश्राम पाता है। उसमें विश्राम पाते हुए खेद होता है और दुःख होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

शरीर की क्रिया माँस की, हड्डियों की, चमड़ी की हो, वह ज्ञेय है, वह ज्ञान में इस प्रकार से ही ज्ञात होती है। वहाँ-वहाँ काल में उस-उस प्रकार की वासना और वासना के समय होती जड़ की क्रिया, वह ज्ञानपर्याय उसे जानती है, तथापि उसका गुण, उसका स्वरूप, उसकी शक्ति उस ज्ञान में आयी नहीं और ज्ञान का स्व-पर को जानने का स्वभाव—गुण वह पर में गया नहीं, तथापि वह ज्ञान उस राग को और शरीर की क्रिया को जानते हुए, वहाँ ज्ञान स्थिर हो जाता है, रुक जाता है। रुक जाता है अर्थात् यहाँ भिन्न है, ऐसा न मानकर वहाँ रुक जाता है; इसलिए वह पर में विश्राम को प्राप्त हुआ अर्थात् ज्ञान दुःखरूप परिणमा। समझ में आया?

पाँच-पचास लाख रुपये आवे, ऐसा कोई कहे। पचास लाख की आमदनी है। ज्ञान ने जाना कि ऐसी कुछ वाणी कहती है। उसे ज्ञान जानता है परन्तु ज्ञान जानते हुए उन शब्दों से पृथक् रहकर ज्ञान जानता है। उन शब्दों की पर्याय में ज्ञान प्रविष्ट होकर नहीं जानता, प्रविष्ट होकर जाने तो ज्ञान जड़ हो जाए। तथा उन शब्दों की पर्याय इस ज्ञान में आयी नहीं। शब्दों की पर्याय का धर्म जड़ है, चेतन की पर्याय का धर्म चेतना है। इस चेतना की पर्याय में जड़ का गुण आया नहीं परन्तु यह ज्ञान वहाँ ऐसा आया, जहाँ सुना और उसके कारण ज्ञान इस प्रकार ऐसा हुआ (कि) ज्ञान वहाँ रुक गया। समझ में

आया? इन शब्द की वर्गणा में वह ज्ञान रुक गया, विश्राम को प्राप्त हुआ, ज्ञान को खेदखिन्न किया, दु:खी किया, कहते हैं। कहो, जुगराजजी!

मुमुक्षु : अपने को जाना और पर को नहीं जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने को जाना और पर को नहीं जाना। पर को जानना तो स्वभाव है। उसके बदले पर को जानने पर उसमें विश्राम पा गया कि अरे! यह जानना मुझे पर के कारण हुआ है, यह जानना मुझे पर के कारण हुआ है। मेरे कारण से मेरा ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! देखो! यह भेदज्ञान की व्याख्या है यह सब। समझ में आया?

अत्यन्त खेदखिन्न होता है। वस्तुस्वरूप को साधने के लिये असमर्थ होता हुआ... इसका अर्थ करें तो देखो! ऐसा शब्द है न पहला? '**विश्राम्यति**' का अर्थ **वस्तुस्वरूप को साधने के लिये असमर्थ होता हुआ...** अर्थात् कि खट्टा, मीठा आदि, राग आदि जो ज्ञात हुआ, उससे मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसे वस्तु के स्वरूप को साधने में असमर्थ हुआ, ऐसा (कहना है)। समझ में आया?

अपने ज्ञान में जो चीज़ का ज्ञान हुआ, उस चीज़ में मैं गया, तब मुझे ज्ञान हुआ; इसलिए ज्ञान वहाँ विश्राम पाया। इसलिए ज्ञान, वस्तु का स्वरूप भिन्न है, ऐसे स्वरूप के साधने में असमर्थ हो गया। ज्ञान राग, द्वेष, कलुषितता या यह सब शरीर, उसकी पर्याय को जानता ज्ञान, ज्ञान स्वरूप का मेरा स्वरूप है, मेरा स्वरूप, ऐसे साधने को असमर्थ हुआ, ऐसे साधने को असमर्थ हुआ अर्थात् उस सुख को साधने को असमर्थ हुआ। समझ में आया? परसम्बन्धी का ज्ञान मेरा ज्ञान है, ऐसा साधे तो ज्ञान में ज्ञातापने की पर्याय सुखरूप परिणमे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें? परसम्बन्धी का ज्ञान... यह तो स्याद्वाद की शैली है। वे कहे, अनेकान्त... अनेकान्त... अनेकान्त करके इतना करे कि मानो समन्तभद्र का अनेकान्त है, इसलिए मानो दोनों नय का और सब मानो सब (एक है), लोगों को ऐसा लगता है और यह अध्यात्म की बात मानो एकान्त की हो, इसमें दूसरा (नहीं है, ऐसा लगता है परन्तु) ऐसा नहीं है।

समन्तभद्राचार्य भी अनेकान्त इसी प्रकार से कहते हैं। समझ में आया? आता है

न? आया है न? दो पक्ष की, दो पक्ष की बात है उसकी। एक व्यक्ति और ऐसा कहता था। कुन्दकुन्दाचार्य की एक पक्ष की (बात है)। (ऐसा) एक बार आया था। ऐसा भी नहीं है, दोनों का एक प्रकार से है। यहाँ स्वसन्मुख ढलकर पर का ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। वहाँ भक्ति को मार्ग, ऐसा कहते हैं कि हे प्रभु! आपकी भक्ति में मेरे परिणाम निर्मल होते हैं। यह मेरे परिणाम निर्मल होते हैं, उसमें आप निमित्त कहलाते हो, ऐसा। समझ में आया? उसके कारण निर्मल हों, ऐसा नहीं है और निर्मल परिणाम शुभ हुए, तथापि ज्ञान की पर्याय उसे जाननेवाली है। शुभपरिणाममय ज्ञान हो नहीं गया। आहाहा! और शुभमय ज्ञान होवे, वह ज्ञानस्वरूप शुभ से भिन्न साध सका नहीं, इसलिए उसे शान्ति हुई नहीं। उस शुभ में ज्ञान रुक गया, इसलिए खेदखिन्न हो गया। कहो, वजुभाई! अरे.. अरे..! गजब बात भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पण्डितजी को पूछकर पहले किया था। कितने ही शब्द पूछ लेते हैं, और किस प्रकार होता है वहाँ? कहो, समझ में आया इसमें? अपने तो उसमें देख लिया। परन्तु इस विश्रान्त का अर्थ यह है। बस! उसमें रहा अर्थात् उसमें कुछ रहा नहीं परन्तु मानता है कि यह ज्ञान इसका हुआ न, इसलिए यह मैं हूँ, ऐसा। यह मैं हूँ। ऐसा हुआ, इसलिए यह मैं हूँ। परन्तु ऐसे यह मैं हूँ, ऐसे ज्ञान के स्वरूप को अज्ञानी अनेकान्तरूप से जीव को न मानकर एकान्त रागमय मानकर दुःखमय हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया इसमें?

हर्ष आ जाए हर्ष। हर्ष आया। यद्यपि हर्ष आया, वह कहीं चीज़ के कारण नहीं आता। हर्ष आया, वह कहीं ज्ञान में हर्ष प्रविष्ट नहीं हो जाता। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय हर्ष को जानती है। हर्ष का गुण ज्ञान की पर्याय में आया नहीं। हर्ष का गुण तो आकुलता है। हर्ष का गुण क्या है? हर्ष अर्थात् क्या? आकुलता। और उसका ज्ञान होना, अर्थात् क्या? हर्ष से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान अनाकुलता को साधता है। यह कहा न? देखो न!

ज्ञान स्वयं पर से भिन्न है, ऐसे स्व के लक्ष्य से वस्तु पर को जानना, ऐसे वस्तु को

साधना, उसमें इसका पुरुषार्थ असमर्थ रहता है। समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? जमुभाई! हें? क्या कहा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक करते हैं। बीच में थोड़ा-थोड़ा विश्राम आता है, कहीं एकदम नहीं आता।

भगवान आत्मा! यहाँ ज्ञानप्रधान से वस्तु की बात लेनी है न! ज्ञान पर को जानते हुए, उसी प्रकार का ज्ञान उस काल में अपने स्वभाव के सामर्थ्य से होता है, ऐसे स्वरूप को साधकर स्व के लक्ष्य से ज्ञान की पर्याय मुझसे हुई है, उसके कारण नहीं। ऐसे स्वरूप को साधना चाहिए तो वहाँ आगे शान्ति और अनाकुलता की पर्याय वेदन में आये। समझ में आया? परन्तु राग-द्वेष और पर को जानते हुए ज्ञान वहाँ लक्ष्य में चढ़ गया। इस ओर लक्ष्य में आया नहीं कि ज्ञान इसकी ओर से आता है और उसे जाननेवाला मैं पर से भिन्न हूँ। अर्थात् ज्ञान में वह वर्तमान में ज्ञात होते हुए उसी प्रकार से मेरा ज्ञान वैसा हुआ, ऐसा पर में स्थिर होता, विश्राम लेता, टिकता हुआ स्वयं दुःखपने का वेदन करता है। '**विश्राम्यति**' ऐसा लिखा है न? देखो! **अत्यन्त खेदखिन्न...** ऐसा। अत्यन्त अर्थात् '**वि**', '**श्राम्यति**' अर्थात् खेदखिन्न। ऐई! '**विश्राम्यति**' अर्थात् '**वि**' अर्थात् अत्यन्त, '**वि**' अर्थात् अत्यन्त और खेदखिन्न '**श्राम्यति**' अर्थात् श्रम होता है, उसे दुःख होता है, ऐसा। ऐसा लिया। समझ में आया इसमें? कहो, राजमलजी! इसमें है या नहीं? देखो! कितने शब्द करते हैं!

'**वि**' अत्यन्त। विशेष है न? विशेष। विरुद्ध नहीं, विशेष। '**वि**' अर्थात् विशेष; विशेष अर्थात् अत्यन्त; अत्यन्त अर्थात् बहुत। '**श्राम्यति**' अर्थात् खेद पाता है। बहुत दुःखी होता है, ऐसा कहते हैं। शब्दों के भी सटकर अर्थ किये हैं न! यहाँ देखता अर्थ किया। भाव अर्थ खेंचकर इन्होंने अर्थ किये हैं। वह कहे, वहाँ स्थिर हो-स्थिर हो। परन्तु स्थिर होता है (तो) उसे होता क्या है? राग-द्वेष, पुण्य-पाप और शरीरादि की पर्याय में ज्ञान स्थिर, होता है क्या?—कि अत्यन्त दुःख। एकान्तरूप से उस पर को ही अपना मानकर पर से भिन्न नहीं मानता, इसलिए एकान्त का माननेवाला दुःखी होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

किस कारण से? क्या करने से दुःखी होता है? **'परद्रव्येषु स्वद्रव्यभ्रमतः'** देखो! **'परद्रव्येषु स्वद्रव्यभ्रमतः' ज्ञेय को जानते हुए ज्ञेय की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान,...** जानने के पदार्थरूप से जानता ज्ञान। **ज्ञेय को जानते हुए ज्ञेय की आकृतिरूप...** जैसा ज्ञेय का स्वभाव है, उसरूप परिणमा है ज्ञान। **ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उसमें... 'स्वद्रव्य'** ऐसी जो ज्ञान की (पर्याय) **उसमें... 'स्वद्रव्य' निर्विकल्प सत्तामात्र ज्ञानवस्तु होने की (भ्रमणा) होती है,...** भ्रमणा होती है। लो! ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयवस्तु को जाननेरूप परिणमता ज्ञान, उसे यह आत्मा हूँ, निर्विकल्प वस्तु यह आत्मा हूँ—ऐसा उसे भ्रम हो जाता है। समझ में आया?

बात तो किस प्रकार ली है? कि कहीं द्रव्य का अनुभव नहीं है। भाई! वेदन है, वह कहीं द्रव्य का नहीं होता। पर्याय का वेदन है। वेदन-अनुभव पर्याय का होता है, द्रव्य का अनुभव नहीं होता। समझ में आया? तो कहते हैं कि एकान्ती पर्याय में दुःख को वेदता है, अनुभव करता है। समझ में आया? और अनेकान्ती आनन्द को अनुभव करता है। अनुभव करना तो पर्याय का है। परन्तु ऐसे लक्ष्य है, मेरा अस्तित्व यहाँ है, इससे आनन्द को अनुभवता है। सभी जीव को पर्याय का अनुभव है, द्रव्य का अनुभव किसी को नहीं होता। समझ में आया? द्रव्य का ज्ञान होता है, उसका वेदन नहीं होता। वेदन तो एक समय की वर्तमान वेदन की दशा, इस अपेक्षा से इन्होंने बात ली है। समझ में आया?

'स्वद्रव्य' निर्विकल्प सत्तामात्र ज्ञानवस्तु होने की होती है भ्रान्ति, उस कारण से... पर्याय में—अवस्था में भ्रम पड़ता है कि यह... यह ही मैं हूँ, यह ही मैं हूँ। ज्ञेयाकार ज्ञान की आकृति का परिणमन अपने में हुआ, यही मैं हूँ, पूरी वस्तु ही यह हूँ, ऐसा मानकर दुःख का अनुभव अज्ञानी एकान्तरूप से, एक पक्ष माननेवाला दुःखी होता है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो उसे अधर्म होता है, ऐसा। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार उष्ण को जानते हुए उष्ण की आकृतिरूप ज्ञान परिणमता है, ऐसा देखकर ज्ञान का उष्णस्वभाव मानता है... ज्ञान का गर्म स्वभाव मानता है मिथ्यादृष्टि एकान्ती जीव। ज्ञान का गर्म, ज्ञान का शीतल, ज्ञान का

मीठा, इस जड़ के स्वाद का ज्ञान हो तो जड़ के स्वादरूप मैं हो गया। समझ में आया? मक्खन जैसे (कोमल हो), उसका वैसा ही ज्ञान होता है तो वह ज्ञान मानो मक्खनरूप हो गया। कहो, समझ में आया? मणिभाई! घी का भाखरी होती है न बढ़िया तली हुई। ऐसे भर्र... भर्र चूरा हो। ऐसे फट... फट.. फट.. और घी तथा वह क्या कहलाता है यह? भाखरी। इतनी... इतनी... घी में तलकर बनाते है। साटा जैसी, साटा मीठा होता है न? वह ऐसे चूरा होता है और उसमें जहाँ स्वाद आवे, वह स्वाद है जड़ का। ज्ञान जानता है कि वह स्वाद ज्ञात हुआ और उस स्वादमय मैं हो गया। आहाहा! समझ में आया?

स्वाद की पर्याय को ज्ञानपर्याय से भिन्न मानना चाहिए। उसके सम्बन्धी का ज्ञान, वह मेरा है, ऐसा यदि ज्ञान को साधे तो उसे वहाँ शान्ति हो, परन्तु वह स्वादमय ज्ञान हुआ, ऐसा माननेवाले को ज्ञान में अशान्ति का वेदन होता है, यह ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! और मानता है कि यह बहुत मिठास! बिना दाँत ऐसे चूरा हो जाए, लो! यह मावा होता है न? मावे का जामुन, गुलाबजामुन मावे का। ऐसे पोचा... पोचा... पोचा... फट.. फट.. उतर जाए। ज्ञान जानता है। बहुत मीठा था, बहुत मीठा! साटा ऐसा मीठा था। साटा मीठा था, वह ज्ञान में आ गया न तुझे? मिठास भी मीठी लगी न? मीठा लगा न? मीठा लगा न? लगा अर्थात् जाना। लगा अर्थात् घुस गया। मीठा, उसे जाना? लगा अर्थात् क्या? मीठा लगा; लगा अर्थात् जाना। उसके बदले मीठा लगा? अन्दर घुस गया? जिसकी ज्ञानपर्याय ज्ञाता की है, स्वद्रव्य की है, ऐसी नहीं अस्ति में प्रतीति, उसे ज्ञान की पर्याय पर से है, ऐसे पर में स्थित होते, दुःखी... दुःखी... दुःखी... हो रहा है। क्यों?

देखो! कहते हैं **'दुर्वासनावासितः'** वापस एक-एक कारण देते हैं। **'दुर्वासनावासितः' अनादि का मिथ्यात्व संस्कार... 'दुर्वासनावासितः'** अनादि के संस्कार। भगवान स्व अस्तित्व से अत्यन्त भिन्न राग से, स्वाद से, काल से, शरीर की इन्द्रिय के भोग से, सबसे भिन्न है, ऐसा न मानकर अनादि के मिथ्यात्व संस्कार के कारण। **'दुर्वासनावासितः' अनादि का मिथ्यात्व संस्कार उससे...** भाषा क्या कही है? यह कर्म के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! क्या कहा? **'दुर्वासनावासितः'** कर्म के कारण

से, दर्शनमोह के कारण से नहीं। देखो! ऐसा लिया, देखो! उसकी वासना—ऐसी गन्ध अनादि की घुस गयी है। आहाहा! है? '**दुर्वासना**' बुरी वासना। कर्म के कारण नहीं। उसकी पर्यायबुद्धि में परवस्तु में ही रुक गया है वह। ऐसी वासना—दुर्वासना उसने अज्ञान से खड़ी की है। कर्म के कारण नहीं। आहाहा!

अनादि का मिथ्यात्व संस्कार.... देखा? वासना अर्थात् संस्कार, 'दु' अर्थात् मिथ्यात्व। मिथ्या संस्कार, ऐसा। दु अर्थात् मिथ्या, वासना संस्कार—बुरा संस्कार। **उससे... 'वासित' हुआ है...** गन्ध में चढ़ गया, बुरी गन्ध में चढ़ गया। **स्वभाव से भ्रष्ट ऐसा।** भगवान ज्ञाता अपनी ज्ञानपर्याय में, अपने अस्तित्व में रहकर उसे जानता है, ऐसे ज्ञान से वह अज्ञानी भ्रष्ट हो गया है। समझ में आया? यह स्याद्वाद अधिकार जरा है ऐसा कि बहुत सूक्ष्म है। समझ में आया? अब तो इसमें तो दृष्टान्त भी देते हैं। उष्ण का आया न? दृष्टान्त देते हैं या नहीं? दृष्टान्त देते हैं। दृष्टान्त नहीं देते?

अनादि की मिथ्यात्व संस्कार की वासना से, इस वासना से स्वभाव से भ्रष्ट। अस्ति-नास्ति की है। ऐसे चढ़ गया, इसलिए स्वभाव से भ्रष्ट हुआ है। मैं ज्ञानस्वरूप भगवान हूँ, मेरा अस्तित्व तो जानने-देखनेरूप मेरा अस्तित्व है, पर के कारण मेरा अस्तित्व नहीं है। समझ में आया?

ऐसा क्यों है? 'सर्वद्रव्यमयं पुरुषं प्रपद्य' ठीक! **'सर्वद्रव्य' जितने समस्त द्रव्य हैं, उनका जो द्रव्यपना... 'मयं' उस मय जीव है....** यह सब मैं ही हूँ। समझ में आया? स्त्री-अर्धांगिनी है। नहीं कहते? आधा अंग मेरा और आधा अंग तेरा, ऐसे होकर दो होंगे? पूरे घर को सम्हाले, घर को सम्हाले सब आधा अंग हो या नहीं उसका? मूढ़ है। कहते हैं कि किसी द्रव्य को अपनेरूप से माने बिना छोड़ा नहीं, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य, परगुण और पर की पर्याय अपनेरूप माने बिना एक भी छोड़ी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जितने समस्त द्रव्य हैं, उनका जो द्रव्यपना उस मय जीव है अर्थात् उतने समस्त स्वभाव जीव में हैं.... यह सब भाव मेरे जीव में हैं। कर्म के, राग-द्वेष के, विकार के, यह सब संयोग के-ऐसे जीव के स्वभाव में यह सब है, ऐसा मानकर... **ऐसा जीव वस्तु**

को प्रतीतिरूप मानकर। सब मैं हूँ ऐसा, सब मुझमें है ऐसा। वह आत्मा ऐसा मानकर अपने भिन्न आत्मा को खो बैठता है। कहो, समझ में आया इसमें? अच्छे घर में रहा होवे न, पच्चीस वर्ष तो भी अच्छा घर याद आवे। लो! मूढ़ होकर, ऐसा कहते हैं यहाँ तो? अरे! जिस घर में सुखी हुए—ऐसे बहुत लोग कहते हैं, हों! जिस घर में सुखी हुए, उस घर में ऐसा हुआ, ऐसे ग्वाल हुए, अविवाहित थे, उसमें स्त्री हुई, पुत्र हुए, उस घर में सब हो गया। अब वह घर छोड़ना... परन्तु कहा था? घुस कहाँ गया था, उसे छोड़ना? जहाँ-जहाँ गया, वहाँ एकाकार हो गया। यह क्षेत्र में लेंगे। यहाँ तो द्रव्यरूप से उसके ज्ञान में यह सब है, वह मैं हूँ—ऐसा मानकर अपने अस्तित्व की मौजूदगी ज्ञान की भिन्न साधनी चाहिए, उस शान्ति को चूक जाता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा '**पुरुष प्रपद्य**' उस प्रतीतिरूप आदर करे, मानता है। उसे आदर करता है कि अपने सब हैं। पूरी दुनिया ज्ञान में ज्ञात होती है, अपनी दुनिया पूरी हम हैं। समझ में आया? नौकर को अच्छा सेठ मिले, सेठ को अच्छा नौकर मिले, अपन सब एक ही हैं। ऐ... शशीभाई! आहाहा! अरे! परन्तु कहाँ तू भिन्न तीनों काल में और तीनों काल की चीज़ को मुझमें माने! ऐसा कहते हैं। यहाँ तो सब बात ली है न? एक को माना, तद्नुसार पूरी दुनिया को ही स्वयं अपनी पर्याय में माना, पूरी दुनिया वही मैं हूँ। पूरी दुनिया वह मैं ही स्वयं हूँ, मेरा ही सब सिक्का चलता है सर्वत्र। समझ में आया? **उनका जो द्रव्यपना उस मय जीव उतने समस्त स्वभाव जीव में हैं, ऐसी प्रतीतिरूप मानकर—ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव मानता है।** ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव अपने चैतन्य की भिन्नता को खो बैठकर मृत्यु करता है। अब सुलटा लेते हैं। जो कहना है बोल, वह अब लेते हैं।

'**तु स्याद्वादी स्वद्रव्यं आश्रयेत् एव**' देखो! धर्मी जीव अनेकान्तवादी। स्याद्वादी का अर्थ ही अनेकान्तवादी, अनेकान्तवादी का अर्थ है सम्यग्दृष्टि। समझ में आया? '**स्वद्रव्यं आश्रयेत्' ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसा साध सकता है....** देखो! क्या कहते हैं? यह रागादि, पर आदि का ज्ञान होने पर मैं तो ज्ञानमात्र वस्तु हूँ। मैं रागमात्र, पुण्यमात्र, शरीर—ऐसा भी मैं नहीं, उनरूप हूँ ही नहीं। देखो! यह अनेकान्त! ऐसा नहीं कि इसरूप

हूँ और इसरूप हूँ, इसका नाम अनेकान्त। आहाहा! यह तो अनेकान्त की व्याख्या अलग कर डाले। अपने शरीररूप भी हैं और आत्मारूप भी हैं, तो अनेकान्त है। ऐसा नहीं है। आत्मा अपने स्वरूपरूप है और पररूप नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! अनेकान्त की व्याख्या (ऐसी करे)। समझ में आया?

'तु स्याद्वादी स्वद्रव्यं आश्रयेत् एव' एकान्तवादी मानता है, वैसा नहीं है,... 'तु' का इतना अर्थ किया। **'स्वद्रव्यं आश्रयेत्'** समझ में आया? **ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसा साध सकता है—अनुभव कर सकता है। सम्यग्दृष्टि जीव... 'एव'** अर्थात् **ऐसा ही है।** लो! मैं किसी भी चीज़ को जानने के काल में जानने की पर्याय मेरे ही अस्तित्व में है, मेरा अस्तित्व है, ऐसे ज्ञायकपने को ज्ञान की पर्याय से स्वयं को साधता हुआ वहाँ शान्ति को साधता और वेदता है। समझ में आया? **अनुभव कर सकता है।** ऐसा कहा है न? अनुभव करता है, वह तो पर्याय है। आहाहा! समझ में आया इसमें? स्याद्वादी अपने जीववस्तु, ज्ञानमात्र जीववस्तु। ज्ञानमात्र अर्थात् राग-द्वेष आदि भले ज्ञात हुए परन्तु मैं तो ज्ञानमात्र हूँ; रागमय नहीं, पुण्यमय नहीं, शरीरमय नहीं, कर्ममय नहीं, परमय नहीं। मैं तो सब पदार्थों को एक क्षण में मेरे ज्ञान में अस्तित्व में, मुझमें, सत्ता में रहकर, भिन्न रहकर जाननेवाला मेरा ज्ञान मुझसे है-ऐसे स्वरूप के लक्ष्य से ज्ञान को साधता हुआ शान्ति को, सम्यक् को वेदता है। ओहो! भारी साधक और बाधक, भाई! ऐसा कहे तो बाधक और ऐसा कहे तो साधक। दोनों को अपना माने तो क्या दिक्कत? अनेकान्त किसे कहे? कि यह भी मेरा और यह भी मेरा। (अज्ञानी लोग) नियत का भारी करते हैं।

कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव **'एव' ऐसा ही है।** अर्थात्? भगवान आत्मा पर के ज्ञेय को जानने के भाव के काल में अर्थात् मेरा स्वरूप तो उससे अत्यन्त भिन्न है। उस चीज़मय हुआ नहीं, वह चीज़ मेरे ज्ञानगुण में आयी नहीं, मेरा ज्ञानगुण वहाँ गया नहीं। मेरा भगवान ज्ञानस्वभाव, वह वर्तमान ज्ञानरूप पर को जानने में पर से पृथक् रहकर जानने का काम करता है। वह जानने का काम स्वयं से होता है, ऐसे साधते हुए वहाँ अनेकान्तपने के अमृत का स्वाद और शान्ति अनुभव करे, उसे अनेकान्त का अनुभव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अब इसमें बाहर का क्या करना? कि यह करने से (ऐसा होता है ऐसी) तो इसमें कुछ बात ही नहीं आती। यहाँ तो होवे, उसका ज्ञान वह भी मुझसे ज्ञान हुआ। पर का हो, उसका ज्ञान वह भी हुआ, इसलिए ज्ञान, नहीं ऐसा नहीं। वे कहते हैं कि नहीं, परद्रव्य का कर्ता न माने वह जैन नहीं है। अरे! भगवान! गजब करता है न तू।

यहाँ तो कहते हैं जो ज्ञात होता है ज्ञेय, वह कर्ता और ज्ञान की पर्याय कार्य—ऐसा नहीं है। समझ में आया? मात्र वह चीज़ निमित्तरूप से है, उसका ज्ञान अपने में अपने से होता है, ऐसा स्वज्ञान और पर से पृथक् साधता ज्ञान अनेकान्तरूप अर्थात् पर से नास्तिरूप मैं हूँ, स्व से अस्ति हूँ—ऐसा जानते हुए ज्ञान में शान्ति का वेदन होता है, उसे धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? कहो, सोगनचन्दजी! क्या है? ऐसी बातें! छोड़ो न समझे बिना, करो न कुछ। धर्म करना है न! परन्तु धर्म किस प्रकार से होगा? अनेकान्त वस्तु है, उसे अनेकान्तरूप से रखने से धर्म होगा। समझ में आया? ओहो! यह राग, द्वेष, पुण्य, पाप, विकल्पों को उन्हें वैसे ज्ञेयरूप से रखना और ज्ञान में उसके स्व-परप्रकाशक के ज्ञान में ज्ञानपने के कारण से रखना। उसके कारण से ज्ञान हुआ नहीं और उसमय ज्ञान हुआ नहीं। ऐसे ज्ञान की पर्याय स्व के लक्ष्य से स्वरूप के साधन से अस्तित्व रखती हुई, पर से नास्तित्वरूप परिणमता ज्ञान, स्वरूप को अनेकान्तरूप साधे, उसे सम्यग्दर्शन और अनुभव होता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा भारी सूक्ष्म!

पुनश्च भगवान की प्रतिमा और यात्रा, और यहाँ उसमें कहाँ आया उसमें? ऐई! वह तो जब शुभराग होता है, तब उस राग में उसके सन्मुख लक्ष्य जाता है। वह शुभराग और उसका ज्ञान, उस लक्ष्य का ज्ञान, ज्ञान की पर्याय में अपने अस्तित्व से होता है; वह राग के कारण नहीं, सामने चीज़ के कारण नहीं। समझ में आया? उस काल में ज्ञान की पर्याय उस प्रकार के राग को और उस प्रकार की प्रतिमा आदि भगवान को जाननेयोग्य जो ज्ञान की पर्याय, उसे वह ज्ञान जाने अवश्य, परन्तु उसे अपना मानकर अथवा वह ज्ञान वहाँ गया अथवा उससे यहाँ ज्ञान हुआ, —ऐसा धर्मी नहीं मानता। आहाहा! गजब! जुगराजजी! भारी काम भाई! यह तो वे कहें, उड़ाओ, उड़ाओ। भाई! इस शुभभाव के समय वैसा ही ज्ञान उसे आता है। समझ में आया?

भक्ति के काल में भगवान सामने हों और राग हो ऐसा। तो ज्ञान की पर्याय राग को स्पर्श किये बिना, निमित्त को स्पर्श किये बिना, राग और निमित्त बिना, उसके आश्रय बिना ज्ञान की पर्याय स्वयं से होती है, पर से नहीं होती—ऐसे ज्ञान को साधे, उसे सम्यग्दृष्टि का अनेकान्त ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? गजब बात, भाई! एक ओर वह वस्तु रखना तथा फिर उससे भिन्न ज्ञान रखना। तब तो यहाँ अस्ति-नास्ति होगी। वजुभाई! वापस वे उड़ा दे शुभभाव और शुभ के समय का निमित्त तो उस सम्बन्धी का ज्ञान उस काल में उड़ जाता है। समझ में आया? उस समय भक्ति और उसका शुभराग, उस सम्बन्धी का ज्ञान स्व को जानते हुए उस सम्बन्धी का ज्ञान उस काल में होता है। यदि ऐसी ज्ञान की पर्याय न माने और अज्ञान शुभ ही न हो और सामने न हो तो उस ज्ञान की पर्याय का जो उस समय का सामर्थ्य है, उसे वह नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? गजब बात, भाई!

ज्ञान की पर्याय में उसी प्रकार से उस प्रकार से शुभराग का काल है, वहाँ सामने निमित्त है और ऐसा ही ज्ञान का स्वकाल है। यहाँ स्वकाल बाद में आयेगा परन्तु ऐसा ही ज्ञान का अस्तित्व है, तो सामने ऐसा ही होता है। ऐसी स्थिति के काल के ज्ञान को ऐसी स्थिति न माने और यह न हो और ज्ञान उस प्रकार का परिणमता अकेला माने तो उसे ज्ञान की खबर नहीं है। समझ में आया? और उस ज्ञान की पर्याय, वह है तो यहाँ हुई है तो ज्ञान में उसकी नास्ति है, ऐसा वह नहीं मानता।

श्रोता : ज्ञेय की विद्यमानता के कारण से ऐसा भ्रम होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; उसकी भ्रमणा के कारण से भ्रम होता है। ज्ञेय की विद्यमानता के कारण से होता होवे तो सबको होना चाहिए। दुर्वासना, नहीं लिखा था कारण? कारण दिया था। उसे मिथ्या संस्कार के कारण से। देखो! लिखा, देखो! दूसरी लाईन है। क्या? ज्ञेय के कारण से नहीं; उसकी भ्रमणा के कारण से होता है। उसका ज्ञान का अस्तित्व उस काल में स्वयं से ऐसा ही होता है, ऐसा न मानकर ऐसा ही उस प्रकार से वहाँ ज्ञात हो, उसे ज्ञान उसके कारण से हुआ, ऐसी वासना—दुर्वासना के कारण से भ्रम पड़ता है। ऐसा कहा था न? 'भ्रमयन्ति' नहीं कहा था? समझ में आया?

'भ्रमन्ति' कहीं आया था? कहीं आया था न? '**भ्रमतः**' देखो न! **ज्ञानवस्तु होने की होती है भ्रान्ति**। देखो! नीचे से दूसरी लाईन, इस ओर २२६, नीचे से दूसरी लाईन '**भ्रमतः**' भ्रमणा होती है। समझ में आया? यह मानो यह होवे तो होता है और यह होवे तो नहीं। परन्तु यह होवे तो होता है, वह काल तेरे अपने अस्तित्व का है। पर के अस्तित्व के कारण तेरा अस्तित्व नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कि यह ज्ञेय ज्ञात होता है, ऐसा ही बराबर ज्ञात होता है, इसलिए ज्ञेय भ्रान्ति का कारण होगा? तब तो सबको ज्ञेय जहाँ रहे, तब तक भ्रान्ति चालू ही रहे। कभी भ्रान्ति मिटे नहीं।

श्रोता : ज्ञान होवे, तब सामने अवश्य होवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरूर-फरूर की बात नहीं है। होता है, वहाँ होता है उसमें क्या? यहाँ क्या काम है उसे? होता है, फिर और जरूर की क्या यहाँ बात है? वहाँ होता है, उसके कारण से वहाँ? यहाँ ज्ञान अपने कारण से अपने से होता है। और उसमें होता है, इसलिए यह होना चाहिए, यह प्रश्न कहाँ रहता है? निमित्त होना चाहिए, निमित्त होना चाहिए (-ऐसा लोग कहते हैं)। परन्तु होना चाहिए का अर्थ क्या? ज्ञान की पर्याय उसी प्रकार से और संयोग को जो जानता हुआ ज्ञान परिणमता है, उस काल में ऐसा ही निमित्त और संयोग होता है। यह उसकी ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व होना है, इसलिए वह वहाँ अस्तित्व है, ऐसा नहीं है और उसके अस्तित्व के कारण से इस ज्ञान का स्व-पर परिणमन हो, उस अस्तित्व के कारण से, ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान की वासना के कारण से होता है, पर के कारण से नहीं। स्वभाव के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। बीच की वासना घुस गयी है, उसके कारण से—ऐसा कहते हैं, लो! यह तो अजर प्याला मार्ग है, भाई! समझ में आया? परम सत्य का साधन यह है। आहाहा! अनादि की है न? अनादि की करता आया है, इसलिए। वापस करता है... पूर्व की है, इसलिए अभी है, ऐसा भी नहीं। पूर्व का है, इसलिए ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं कि अनादि का है। वह नया-नया करता ही

आता है, भ्रमणा खड़ी करता ही आता है। यह है तो यह हूँ, यह है तो यह हूँ, यह है तो यह हूँ—ऐसा ही इसे ज्ञान होता है, इसलिए यह है, वह मैं हूँ। देखो! यह निमित्तवाले के निमित्त उड़ जाते हैं इसमें। आहाहा! अर्थात् कि उससे होता है, यह बात उड़ जाती है। होता है, तब उसे निमित्त कहा जाता है। होता है, तब उसे निमित्त कहा जाता है। ज्ञान ज्ञानरूप से, उपादानरूप से स्वयं से परिणमता है, उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना अपनेरूप परिणमे, वह उपादान है। सामने चीज़ है, परन्तु वह है तो यहाँ ज्ञान ऐसा परिणमता है—ऐसा नहीं है। वह है तो यहाँ परिणमता है तो उसके कारण से यहाँ अस्तित्व है, अपने कारण से अस्तित्व है, ऐसा इसने माना नहीं। समझ में आया? ऐसी ज्ञान की कोर्ट होगी ऐसी कुछ? भगवान ने अनेकान्त का फैसला कोर्ट में ऐसा किया है। समझ में आया? आहाहा!

उसमें कुन्दकुन्दाचार्य। उनकी कथन की पद्धति अकेली सत्य के डोर की है। आहाहा! इससे शासन के स्तम्भरूप से रखे हैं न? 'मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमोगणी, मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो' कुन्दकुन्दादि आचार्यों को मुख्य रखा, देखो! गणधर के पश्चात् रखा कुन्दकुन्दाचार्य! आहाहा! धर्मधुरन्धर आचार्य पद का (आज) यह दिन है, देखो न! सब ऐसे पके हैं। अमृतचन्द्राचार्य महाधर्म के स्तम्भ दिगम्बर सन्त मुनि! वे अन्तर के आत्मध्यान के अमृत में अनुभव के वेदन में स्थित, वे कहते हैं कि हम तो पर को जानने के काल में पर से तो नहीं, हों! ऐसा ही ज्ञान होता है न? वह ऐसा ही ज्ञान होता है, तब कैसा ज्ञान होता है? ज्ञान कहीं दूसरे प्रकार का होगा? ज्ञान का यथार्थपना किसे कहते हैं? जैसा वहाँ है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है; इसलिए ज्ञान उसके कारण से हुआ है? ज्ञान का यथार्थपना कैसे कहलाये? जैसा है, वैसा जाने उसका नाम यथार्थपना है। परन्तु वह है तो जानता है? वह यथार्थपना है? समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसा साध सकता है-अनुभव कर सकता है। सम्यग्दृष्टि जीव... 'एव' ऐसा ही है। ऐसा ही है। **कैसा है स्याद्वादी? 'समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां जानन्'** यह सिद्ध करना है, देखो! यहाँ नास्ति का भंग है न? **'समस्तवस्तुषु'** मेरी वस्तु के अतिरिक्त **'परद्रव्यात्मना'** परद्रव्यस्वरूप जितनी **ज्ञान में प्रतिबिम्बित हुआ**

है समस्त ज्ञेय का स्वरूप,... ज्ञान में जानने में आया सब वस्तु का स्वरूप। **उसमें... 'परद्रव्यात्मना'** वह परवस्तु का स्वरूप है। ऐसा अनुभव करता है। **ज्ञानवस्तु से भिन्नपना,...** ऐसा, ऐसा लिया। नहीं तो ज्ञानवस्तु से भिन्नता अनुभव करता है। ऐसा परद्रव्य है न? ज्ञानवस्तु से भिन्नपना अनुभव करता है। समझ में आया?

'**परद्रव्यात्मना**' ज्ञान में सब ज्ञात होने पर भी वह परद्रव्यस्वरूप है, उसरूप मैं नहीं हूँ। समझ में आया? ओहो! ज्ञान में जानने में सब वस्तु आयी, वह **समस्त ज्ञेय का स्वरूप, उसमें अनुभवता है ज्ञानवस्तु से भिन्नपना,....** ऐसा, नास्तिपना। परवस्तु का ज्ञान में जानना आया परन्तु उस परवस्तु का मुझमें नास्तित्व है। ऐसा ज्ञान में ज्ञानी—स्याद्वादी अनेकान्त अनुभव करता है। आहाहा! यह अनेकान्त है, लो! समझ में आया? नास्तिपना अनुभव करता है अर्थात् **भिन्नपना, उसके कारण नास्तिपना अनुभवता हुआ।** भगवान की वाणी भी ज्ञान में आयी, परन्तु कहते हैं कि नहीं। वाणी से ज्ञान का नास्तिपना अनुभव करता है। समझ में आया? वहाँ यह ज्ञानी गणधर आदि भी बैठे हैं और ज्ञान में जो ज्ञात होता है तो वह अस्तित्व वाणी के कारण यहाँ ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं है और जैसा वाणी में आशय आवे, वैसा यहाँ ज्ञान होता है, वह तो ज्ञान का पर से पृथक् रहकर अपने में अपने को जानने में सामर्थ्यवाला ज्ञान ऐसा है। समझ में आया? इतने भंग! कितने उड़ा देते हैं और कितने सिद्ध करते हैं! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि समस्त ज्ञेय ज्ञान में उद्दीपित होता है... सब ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात होते हैं। उद्दीपित होते हैं अर्थात् ज्ञात होते हैं, हों! ज्ञान आ नहीं जाता। **परन्तु ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नहीं हुआ है।** परवस्तु पररूप ज्ञान (रूप) में हुई नहीं। **कैसा है स्याद्वादी ?** यह एक बोल रह गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक-१६-१२-१९६५, कलश-२५३-२५४, प्रवचन-२७१

स्याद्वाद अधिकार, सातवें श्लोक का अन्तिम थोड़ा बोल है। **कैसा है स्याद्वादी ?** इतना अन्तिम शब्द बाकी है। अर्थात् क्या चलता है यह? आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप स्वद्रव्य है, उसमें परद्रव्य का ज्ञान होने से अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं परद्रव्य से ही हूँ। ज्ञान की पर्याय का स्वभाव परज्ञेय को जानने का है, ऐसा जानते हुए उसे ऐसा है कि इन सब पररूप ही मैं हूँ। **स्याद्वादी... 'निर्मलशुद्धबोधमहिमा' मिथ्यादोष से रहित...** अर्थात् पर के कारण मैं हूँ, ऐसा नहीं है। मेरे ज्ञान में परद्रव्य ज्ञात होते हैं, तथापि परद्रव्य के कारण मैं हूँ—ऐसा नहीं है। अपने अस्तित्व पर लक्ष्य और मान्यता होने से धर्मी जीव उसके ज्ञान में पर ज्ञात होता अवश्य है। ज्ञात होने पर भी उससे मैं हूँ—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मिथ्यादोष से रहित... शब्द है तो ज्ञान है, यह पुस्तक है तो ज्ञान होता है, ऐसे परद्रव्य हैं तो ज्ञान होता है—ऐसा धर्मी नहीं मानता। **तथा रागादि अशुद्ध परिणति से रहित...** जिससे परद्रव्य के कारण मेरा ज्ञान नहीं है, ऐसा माननेवाला स्वद्रव्य के कारण मेरी अवस्था ज्ञान आदि वस्तु है, उसे परद्रव्य के ओर की एकताबुद्धि (के नाश) में राग का नाश हो जाता है। समझ में आया? और **'बोध' अनुभवज्ञान उससे है... 'महिमा'** मैं तो ज्ञानस्वरूप मुझसे हूँ, चैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसे अपने बोध का अनुभव ज्ञान के अनुभवज्ञान से मैं हूँ, ऐसे अपने प्रताप को प्रसिद्ध करता है। कहो, समझ में आया इसमें? इतना शब्द था।

सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा को पर का जानना होने पर भी, पर से मैं नहीं हूँ। मैं तो मेरे स्वरूप के ज्ञानबोध से हूँ, ऐसी अपनी सत्ता की दृष्टि रखकर अपने अस्तित्व में मुझसे मैं हूँ, पर से नहीं—ऐसा अपने ज्ञानस्वरूप को रागरहित करता हुआ, पर के सम्बन्ध बिना करता हुआ, अपने ज्ञान के साथ एकत्व करता हुआ ज्ञान का अनुभव करता है। यह उसकी **'महिमा'** अर्थात् प्रताप है। समझ में आया? यह तो अकेले अनेकान्त के नियम हैं न! जरा सूक्ष्म है। यह छह बोल हुए। अब स्वक्षेत्र से अस्ति का सातवाँ बोल है। आत्मा अपने क्षेत्र में है, परक्षेत्र से नहीं।

कलश - २५४

(शार्दूलविक्रीडित)

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा
सीदत्येव बहिः पतंतमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुन–
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ।।८–२५४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है कि जो वस्तु को पर्यायरूप मानता है; द्रव्यरूप नहीं मानता है; इसलिए जितना समस्त वस्तु का है आधारभूत प्रदेशपुंज, उसको जानता है ज्ञान। जानता हुआ, उसकी आकृतिरूप परिणमता है, ज्ञान। इसका नाम परक्षेत्र है। उस क्षेत्र को, ज्ञान का क्षेत्र मानता है। एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, उस क्षेत्र से सर्वथा भिन्न है चैतन्यप्रदेशमात्र ज्ञान का क्षेत्र, उसे नहीं मानता है। उसके प्रति समाधान ऐसा कि ज्ञानवस्तु, परक्षेत्र को जानती है परन्तु अपने क्षेत्ररूप है। पर का क्षेत्र, ज्ञान का क्षेत्र नहीं है। वही कहते हैं— 'पशुः सीदति एव' [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, [सीदति] ओलों के समान गलता है। ज्ञानमात्र जीववस्तु है, ऐसा नहीं साध सकता है। [एव] निश्चय से ऐसा ही है। कैसा है एकान्तवादी? 'भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः' [भिन्नक्षेत्र] अपने चैतन्यप्रदेश से अन्य है जो समस्त द्रव्यों का प्रदेशपुंज, उससे [निषण्ण] उसकी आकृतिरूप परिणमा है, ऐसा जो [बोध्यनियतव्यापार] ज्ञेय–ज्ञायक का अवश्य सम्बन्ध, उसमें [निष्ठः] निष्ठ है अर्थात् एतावन्मात्र को जानता है ज्ञान का क्षेत्र, ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। 'सदा' अनादि काल से ऐसा ही है। और कैसा है मिथ्यादृष्टि जीव? 'अभितः बहिः पतन्तं पुमांसं पश्यन्' [अभितः] मूल से लेकर, [बहिः पतन्तं] परक्षेत्ररूप परिणमा है, ऐसे [पुमांसं] जीववस्तु को [पश्यन्] मानता है–अनुभवता है, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव। 'पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति' [पुनः] एकान्तवादी जैसा कहता है, वैसा नहीं है किन्तु [स्याद्वादवेदी] अनेकान्तवादी [तिष्ठति] जैसा मानता है, वैसी वस्तु है। भावार्थ इस प्रकार है कि वह वस्तु को साध सकता है। कैसा है स्याद्वादी? 'स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः' [स्वक्षेत्र] समस्त परद्रव्य से भिन्न, अपने स्वरूप चैतन्यप्रदेश, उसकी

[अस्तितया] सत्तारूप से [निरुद्धरभस:] परिणमा है ज्ञान का सर्वस्व जिसका, ऐसा है स्याद्वादी। और कैसा है? 'आत्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिः भवन्' [आत्म] ज्ञानवस्तु में [निखात] ज्ञेय, प्रतिबिम्बरूप है, जो ऐसा [बोध्यनियतव्यापार] ज्ञेय-ज्ञायकरूप अवश्य सम्बन्ध, ऐसा [शक्तिः] जाना है ज्ञानवस्तु का सहज जिसने—ऐसा [भवन्] होता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु, परक्षेत्र को जानता है—ऐसा सहज है परन्तु अपने प्रदेशों में है; पराये प्रदेशों में नहीं है; ऐसा मानता है स्याद्वादी जीव; इसलिए वस्तु को साध सकता है—अनुभव कर सकता है।।८-२५४।।

कलश - २५४ पर प्रवचन

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा
सीदत्येव बहिः पतंतमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन्।।८-२५४।।

इसमें ऐसा कहना है कि ऐसा प्रत्येक में भावार्थ से उठाया है। **भावार्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि (अर्थात् असत्यबुद्धि) जीव ऐसा है कि जो वस्तु को पर्यायरूप मानता है,...** यहाँ भाषा ऐसी है। अर्थात ? बस, दो ही बात। इस ज्ञानपर्याय में परक्षेत्र के आकार ज्ञान होता है। कहते हैं न अभी, अभी कहाँ छोड़ देते हैं? ज्ञान पर का क्षेत्र जानता है, पर का क्षेत्र यह घर, मकान, घट-पट, इनकी चौड़ाई को, इनके क्षेत्र को, इनके अवगाहन को ज्ञान जानता है। जानते हुए अज्ञानी को ऐसा लगता है कि यह ज्ञान का अस्तित्व इस पर जितना बड़ा-छोटा क्षेत्र है, उतना मैं हूँ।

मुमुक्षु : अपने मकान का क्षेत्र किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्र किसका होगा? मगनभाई? मुझे तो आज एक विचार दूसरा आया था, वे नैयायिक इन्द्रिय को सन्निकर्ष कहते हैं न? नहीं? इन्द्रिय को प्रमाण कहते हैं। इसलिए उस सन्निकर्ष को, मेरा तो ऐसा कहना है कि प्रमाण कहते हैं। यह मस्तिष्क में आया। उसके अर्थ में उन्होंने नहीं लिखा, वह तो समुच्चय लिखा है—

नैयायिक शब्द। परन्तु उस इन्द्रिय को सन्निकर्ष (कहते हैं)। इन इन्द्रियों को प्रमाण कहते हैं। यह अर्थ में नैयायिक रखा है। संस्कृत में 'अध्यात्म तरंगिणी' अध्यात्म क्या कहलाता है? 'परम अध्यात्म तरंगिणी' अर्थात् कि यह इन्द्रियाँ हैं, वे प्रमाण हैं, ऐसा वे मानते हैं। वह है तो ज्ञान है। अर्थात् इन इन्द्रियों का क्षेत्र पर है। आत्मा का स्वक्षेत्र असंख्य प्रदेश में स्वयं स्वतन्त्र अपनेरूप असंख्य प्रदेश में आत्मा का अस्तित्व है और यह इन्द्रियाँ जो जड़ हैं, उनका क्षेत्र ही पर है, तथापि वे इन्द्रियाँ हैं तो मुझे ज्ञान होता है, ऐसी इन्द्रियाँ हैं तो मुझे ज्ञान होता है, उस परक्षेत्र से मैं हूँ—ऐसा वह मानता है। समझ में आया?

यह इन्द्रियाँ है तो ज्ञान होता है या नहीं अन्दर? इन्द्रिय बिना होगा? कहते हैं कि इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, भाई! वे तो परक्षेत्र में हैं, वे कहीं तेरे क्षेत्र में नहीं हैं। तेरे क्षेत्र में तो असंख्य प्रदेश में ज्ञानघन है, वह तेरा क्षेत्र है। तेरे क्षेत्र में अर्थात् तेरे अवगाहन में—तेरी चौड़ाई में, तेरे अवगाहन में—तेरी चौड़ाई में, तेरी चौड़ाई और तेरा अवगाहन तो असंख्य प्रदेश में है। यह चौड़ाई और यह अवगाहन तो पर है। कब होगा यह? त्रिकाल ऐसा है।

वस्तु अपने अवगाहन अर्थात् चौड़ाई में उसे स्वक्षेत्र असंख्य प्रदेश में उसका ज्ञान आदि गुण, आनन्द आदि गुण, वह सब असंख्य प्रदेश में स्व-अवगाहन में है। ऐसा न मानकर उसके ज्ञान में परक्षेत्र की अस्ति है, इसलिए यहाँ ज्ञान दिखता है न? यह इन्द्रियाँ घट-पट आदि की जो चौड़ाई या मकान की चौड़ाई या सब क्षेत्र आदि घट-पट (आदि), उसी प्रकार का ज्ञान में वैसा ही क्षेत्र ज्ञान जानता है। ऐसे चौड़े छोटे-बड़े क्षेत्र को ज्ञान जानता है, तो उसे ऐसा हो जाता है कि छोटे-बड़े क्षेत्र को बराबर ज्ञान जानता है तो वह मेरा क्षेत्र पर में ही जाता है, पर के कारण मेरा क्षेत्र है। मैं यहाँ रहकर इतना बड़ा कैसे जानूँ? मैं यहाँ रहकर यह नीम ज्ञात होती है, लो! देखो! यह अलमारी ज्ञात होती है। कहते हैं कि मेरे ज्ञान की पर्याय ऐसे क्षेत्राकार होती है, इसका अर्थ कि मैं इतना चौड़ा हो जाता हूँ। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है। वस्तु को पर्याय मानता है। पर्याय अर्थात् एक क्षण की अवस्था पर आकार चौड़ी आदि इतनी चौड़ी होती नहीं, चौड़ी तो अपने क्षेत्रप्रमाण ज्ञान की पर्याय होती है। समझे न? पहोली कहते

हैं ? क्या कहते हैं ? चौड़ी। उस चौड़ाई में बड़ा ऐसे दिखे। नीम दिखाई दे, पीपल दिखाई दे, मकान इतना बड़ा दिखाई दे। इसलिए उस ज्ञान की पर्याय में इतना ही क्षेत्र दिखता है। उसका अर्थ कि उस क्षेत्राकार मैं हो जाता हूँ। समझ में आया ?

मकान में क्षेत्राकारवर्ती हो जाए, तब क्षेत्र छोड़ना इसे सुहाता नहीं है न ? उस क्षेत्र से कैसे निकलना ? इस क्षेत्र से निकलूँगा तो मानों मैं ही निकल जाता हूँ ! परन्तु तू तो तेरे असंख्य प्रदेश के क्षेत्र में है। भीखाभाई ! इस मकान में फर्नीचर होवे न, ठीक से होवे। उसका क्षेत्र इतना। कितना ? असंख्य प्रदेश में। दिखता है इतना (बड़ा)। मानो इस ज्ञान का क्षेत्र पर के कारण हो। पर का क्षेत्र ज्ञान में जानने की सामर्थ्य की शक्ति है, ऐसा न मानकर पर के क्षेत्र में ही मेरी ज्ञान की दशा चली गयी और पर के कारण मैं हूँ—ऐसा माननेवाला अपने ज्ञान के क्षेत्र को अपने क्षेत्र में रहा हुआ, व्याप्त नहीं मानता। समझ में आया ?....

यह घट-पट घड़े की चौड़ाई, वस्त्र की चौड़ाई, मकान की चौड़ाई, दरवाजे की चौड़ाई, खिड़की की चौड़ाई, यह सरिया की चौड़ाई, यह घड़ी की चौड़ाई है या नहीं ? देखो ! इस चौड़ाई में मेरा क्षेत्र वहाँ घुस गया, ऐसा (मानता है)। उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ होता है। इतने ही क्षेत्र में इतने बड़े क्षेत्र का या छोटे क्षेत्र का ज्ञान यहाँ होता है परन्तु उस छोटे-बड़े क्षेत्ररूप आत्मा हो गया है, ऐसा नहीं है। अज्ञानी को ऐसा हो जाता है कि आहाहा ! इतना बड़ा ज्ञात होवे तो मैं तो उस क्षेत्रमय हो गया, मेरा ज्ञान ही वहाँ चला गया, वहाँ ही विश्राम पा गया। समझ में आया ?

इतनी आँख में ज्ञान है, ज्ञान तो पूरे में है। बड़ा पर्वत ज्ञात होता है। पर्वत पर जाता हो तो कितना ज्ञात होता है, देखा है ? आहाहा ! यात्रा-बात्रा जाते हैं न ? उसमें चलकर जाना होवे तो जरा मेहनत पड़ती हो परन्तु कोई डोली में बैठा हो तो उसे देखने का बहुत रहता है। नीचे ऐसे कहाँ का कहाँ पच्चीस, पच्चीस-तीस कोस का ऐसा कहीं का कहीं लगे ठेठ। गिरनार में तो जैतपुर-बैतपुर कहीं नजदीक लगता है, वह दिखता है। ओहो ! यह ज्ञान मानो वहाँ चला गया। इतना ज्ञान इतने को जाने, इतना ज्ञान इतने को जाने तो ज्ञान इतना हो गया। एकाकार हो गया, ऐसा मानता है परन्तु मेरा ज्ञान मेरे क्षेत्र

में रहकर उसे जानते हुए उसरूप नहीं होता, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, मलूकचन्दभाई! यह फिर यह याद आया। बाईस मंजिल हमारा किया हुआ था। बाईस मंजिल और दो मंजिल और पाँच मंजिल और यह मंजिल, परन्तु यह तो क्षेत्र की उसकी चौड़ाई है। उसकी चौड़ाई का ज्ञान यहाँ की चौड़ाई में रहे हुए ज्ञात होता है। यहाँ की चौड़ाई वहाँ चली जाती है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया?

यह इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों को ही प्रमाण माना। क्योंकि इन्द्रियाँ न हो तो ज्ञान कैसे होगा? परन्तु मैं न होऊँ तो कैसे होगा?—ऐसा नहीं। यह इन्द्रियाँ होवे तो ज्ञान होगा, ऐसा मानते हैं बहुत? विशेष ज्ञान। देखो न! जयधवला में लिखा है न? यह इन्द्रिय से ज्ञान होगा। इन्द्रिय से ज्ञान होगा, इन इन्द्रियों से तेरी विशेष दशा हुई तो फिर सामान्य जो गुण त्रिकाल है, उसने विशेष क्या किया? क्या किया? वह सामान्य अर्थात् कायम रहनेवाला ज्ञानगुण, कायम रहनेवाला ज्ञानगुण। उसकी वर्तमान अवस्था की दशा होना, वह उसकी विशेष अवस्था कहलाती है। उसकी विशेषता। सामान्य त्रिकाल एकरूप, उसकी वर्तमान दशा, वह विशेष अवस्था। वह ज्ञान की विशेष अवस्था यदि इन्द्रियों से होवे तो, उन इन्द्रियों से विशेष हुआ, इन्द्रियों से विशेष हुआ तो सामान्य का विशेष नहीं रहा। कहा या नहीं? ...भाई! सामान्य अर्थात् कायम रहनेवाला। सोना है सोना... सोना... सोना... वह कायम रहनेवाला है और उसकी वर्तमान अवस्था कुण्डल, कड़ारूप हुई, वह विशेष। अब वह विशेष अवस्था कोई कहे कि स्वर्णकार ने की, हथौड़े ने की वह विशेष अवस्था। यदि उनसे विशेष हुई तो सामान्य, विशेष बिना का रहा? सामान्य, विशेषरूप परिणमा है, वह सामान्य स्वयं विशेषरूप हुआ है। समझ में आया?

निमित्तकर्ता का आया था। भगवान वाणी के निमित्तकर्ता हैं, नहीं तो प्रमाण नहीं ठहरे। उपादान एकान्त कर्ता माननेवाले (को) निमित्तकर्ता को उड़ाना है, प्रमाण नहीं सिद्ध होगा। इसलिए भगवान ने कहा है, ऐसा नहीं माने, भगवान ने जाना ऐसा मानकर नियत को मानते हैं। भगवान ने जाना, ऐसा नियत को मानते हैं, भगवान ने कहा—ऐसा कहने जाए तो कहा तो भगवान ने कहा तो कर्ता हो जाते हैं। ऐई! विचित्रता है। अकेले उपादान कर्ता माननेवाले, निमित्तकर्ता नहीं माननेवाले केवली का कहा हुआ है, ऐसा

नहीं मानते। परन्तु आचार्यों ने तो ऐसा कहा है कि केवली ने कहा हुआ कहता हूँ, केवली ने देखा हुआ कहता हूँ—ऐसा कहीं नहीं कहा।

हाँ, यह लिखते हैं। यह किसी ने प्रश्न पूछा था। 'णिदिट्ठं' 'णिदिट्ठं' का अर्थ देखना होता है ? या कहना होता है ? इसमें से बड़ी चर्चा उठायी। रयणसार का कोई प्रश्न है। यह तो देखा, वह कहा जाता है और कहना वह कहा भी कहा जाता है। सुन न अब। कहा हुआ कहा जाता है, यह तो निमित्त से बात है। निमित्त कर्ता है, उसका कहाँ अर्थ हो गया ? वह वाणी को रचता है। उपादानरूप से नहीं परन्तु निमित्तरूप से वाणी को रचता है। वाणी को आत्मा रचे ? यह तो कुछ गजब करते हैं न! समझ में आया ?

यह इन्द्रियों के रचे, यह इन्द्रियाँ होवे तो ज्ञान हो, इन्द्रिया उसमें निमित्तकर्ता ज्ञान की है, उसके क्षेत्रप्रमाण यहाँ ज्ञान होता है, उसके ज्ञान में भी चौड़ाई परन्तु इतने क्षेत्र प्रमाण हुई। देखो! ऐसा। परन्तु वह क्षेत्र पर है और तेरा क्षेत्र अत्यन्त पृथक् है। अपनी चौड़ाई के क्षेत्र की अस्ति में पर की चौड़ाई की छोटे-बड़े के ज्ञान की आकृति अपने क्षेत्र प्रमाण जानते हुए उसका क्षेत्र मानो पररूप हो गया, ऐसा अज्ञानी को भ्रम पड़ जाता है। बहिर्बुद्धि है न ? ऐसा यहाँ कहते हैं। बहिररूप से परक्षेत्र को जानते हुए परक्षेत्ररूप हो गया, ऐसा लगता है। समझ में आया ?

द्रव्यरूप नहीं मानता है,... अर्थात् अपना भिन्न क्षेत्र है, ऐसा नहीं मानता; **इसलिए जितना समस्त वस्तु का है आधारभूत प्रदेशपुंज,...** देखो! इसके लिए जितनी दूसरी वस्तुएँ हैं, उनका आधारभूत क्षेत्र—प्रदेश। घड़े का घड़े प्रमाण क्षेत्र चौड़ा है या नहीं ? वस्त्र का वस्त्र प्रमाण चौड़ा है या नहीं ? नदी का नदी प्रमाण, पर्वत का पर्वत प्रमाण चौड़ा क्षेत्र है या नहीं ? लड्डुओं का लड्डुओं प्रमाण, दाल का दाल प्रमाण। उसके आधारभूत उसके प्रदेश—उनका क्षेत्र है। **उसको जानता है ज्ञान।** उन्हें जानती है ज्ञान की दशा। जैसा उनका क्षेत्र प्रदेश का, पर का है, तत्प्रमाण ज्ञान की दशा जानती है।

जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान। आकृति को यहाँ वजन है न ? यहाँ क्षेत्र का वजन है। समझ में आया ? जैसी परवस्तु है, उसके क्षेत्र प्रमाण ही ज्ञान की पर्याय उतने प्रमाण परिणमती है, परन्तु परिणमती है, वह अपने क्षेत्र में

परिणमती है। उसके क्षेत्र में जाकर और उसके क्षेत्र के कारण, उसके क्षेत्र में जाकर और उसके क्षेत्र के कारण (परिणमती नहीं)। समझ में आया? बड़ा पत्थर का स्तम्भ हो, छह हाथ का स्तम्भ पुरुषाकार (हो)। ज्ञान उसे जाने। इसलिए उसे (ऐसा लगता है) कि इतना बड़ा क्षेत्र इसमें ज्ञात हुआ तो यह मेरा ज्ञान इतने आकाररूप हो गया। पुरुष के छह हाथ के पत्थर जितना मेरा ज्ञान हो गया। समझ में आया? क्योंकि वहाँ उसकी बहिर्बुद्धि में जितना चौड़ा दिखायी दे, इतना मेरा ज्ञान चौड़ा होकर वहाँ परिणम गया, (ऐसा मानता है)। समझ में आया इसमें?

मकान-बकान में क्या? उस मकान (में) जहाँ रहा हो, वहाँ से निकलना सुहाता नहीं, एकाकार हो गया, क्षेत्राकारवर्ती। जो मकान पचास-पचास वर्ष से प्रयोग किया हो, वह ज्ञान की पर्याय में ऐसी क्षेत्राकारवृत्ति हो गयी हो, लो! हुआ है तो क्षेत्राकार अपनी ज्ञान की पर्याय। वह क्षेत्राकार पर के क्षेत्ररूप नहीं, परन्तु उसमें से निकलना इसे सुहाता नहीं है। आहाहा! वह कहाँ तेरा क्षेत्र तो अत्यन्त निराला है। कोई क्षेत्र घर में भी नहीं और घट में भी नहीं, वस्त्र में भी नहीं, इस शरीर के इन्द्रिय के आकार के क्षेत्र में भी तू नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परिणमता है ज्ञान। इसका नाम परक्षेत्र है। यहाँ अभी इसका नाम ही परक्षेत्र गिना है, भाई! ज्ञान में पर का ज्ञात होना, इसका नाम ही परक्षेत्र। आहाहा! उसे ही यहाँ पर्याय को माने, ऐसा कहा है, देखो! समझ में आया? इतना ही मैं हूँ, पर को जानने के क्षेत्र जितना ज्ञान, उतना मैं हूँ। **उस क्षेत्र को ज्ञान का क्षेत्र मानता है।** वह क्षेत्र कोई ज्ञान की पर्याय में जितना क्षेत्र ज्ञात होता है, उतना ज्ञान का क्षेत्र मानता है।

एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव उस क्षेत्र से सर्वथा भिन्न है चैतन्य प्रदेशमात्र ज्ञान का क्षेत्र.... पर के क्षेत्र के आकार परिणमित ज्ञान उतना ही नहीं है। भिन्न असंख्य प्रदेशी भगवान चैतन्य प्रदेशमात्र असंख्य चैतन्य के प्रदेश के क्षेत्र की चौड़ाई मात्र है। **उसे नहीं मानता।** देखो न! यह वेदान्त आदि ऐसा ही मानते हैं न? ज्ञान पूरे लोकालोक व्यापक हो जाता है। समझ में आया? अद्वैत एकाकार क्षेत्र में हो जाए तो आत्मा कहलाये न? अखण्ड आत्मा इतने क्षेत्र में रहे, वह नित्य कैसे रह सकेगा? इतने क्षेत्र में वस्तु नित्य

कैसे रहे ? ऐसा कहते हैं। पूरे क्षेत्र में व्याप्त हो जाए तो नित्य रह सके—ऐसा नहीं है। उसका क्षेत्र भले इतना ही हो, परन्तु उसका नित्यपना अनन्त गुणों से स्वतन्त्र पर से भिन्न है, ऐसा भिन्न वह मानता नहीं है। समझ में आया ?

अनन्त में अनन्त मिल जाए, ऐसा कहते हैं, लो ! एक बार 'संतबाण' का दृष्टान्त आया था। एक मनुष्य रखा था। यहाँ से बड़ा प्रकाश रखा था। उसमें से प्रकाश सर्वत्र फैल गया। आया था ? देखा था ? एक बार चित्र निकाला था। मानो ज्ञान पर में अनन्त में व्याप गया, इसका नाम आत्मा कहलाता है। लोग कितने ही नहीं कहते कि भाई ! यहाँ से देह छूटा, अनन्त में अनन्त व्याप्त हो गया। हो गया, जाओ ! परन्तु कहाँ व्यापे ? परक्षेत्र में व्याप्ता होगा ? समझ में आया ?

उसे नहीं मानता है। अपना चैतन्य पदार्थ क्षेत्र असंख्य प्रदेश यहाँ ही है, इतने में ही है। क्यों ?—कि ऐसे एकाग्र करने जाता है तो इतने क्षेत्र में एकाग्र करता है। उसका क्षेत्र यदि लम्बा होवे तो ऐसा होवे तो उसे एकाग्र हो। क्या कहा ? जितने में इस जितने क्षेत्र में चौड़ाई में है, ऐसे अन्दर एकाग्र होता है उसमें, तो जितने में एकाग्र हो, उतने में ही उसका क्षेत्र है। ऐसा यदि यह सब क्षेत्र लम्बा हो तो ऐसा उसे बहुत ऐसा लम्बा हो तो एकाग्र हो।

मुमुक्षु : संसार में एकाग्र होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार ? परन्तु संसार में नहीं ? राग में एकाग्र होता है या नहीं ? कितने में होता है ? कितने में ? कितने में होता है ? इस इतने क्षेत्र में होता है या सब क्षेत्र में होता है ? राग में एकाग्र नहीं होता ? राग में एकाग्र कितने क्षेत्र में होता है कहो ?... समझ में आया इसमें ?

इष्टोपदेश में कहा है, एक दृष्टान्त दिया है कि यदि तू ऐसा कहता हो कि आत्मा सर्वत्र व्यापक है, तो फिर उसकी एकाग्रता तो इतने में ही दिखती है। रागादि की एकाग्रता इतने में और ज्ञान की एकाग्रता इतनी चौड़ाई में ही ज्ञान की एकाग्रता ऐसे दिखती है। अत: उसका क्षेत्र तो इतना ही है। उसके बदले इस परक्षेत्र में मैं हूँ (—ऐसा जो मानता है) वह तेरी भ्रमणा है। तुझे स्वक्षेत्र की अस्ति में अनन्त गुण का पिण्ड है,

उसकी तुझे खबर नहीं है। समझ में आया ? अनेकान्त है न ? निमित्त कर्ता न माने तो उसे वापस भगवान ने देखा है, ऐसा कहना है, भगवान ने कहा है, ऐसा उसे नहीं मानना। देखा और कहा में अलग होगा ? परन्तु कहा हुआ कहा जाता है, यह तो निमित्त....

मुमुक्षु : कहा उन्होंने और देखा उन्होंने।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा, कहा कहे तो भगवान कर्ता हो जाए और इन्हें निमित्तकर्ता मानना नहीं। कहे, उसमें निमित्तकर्ता भले बोलो परन्तु कर्ता कब थे ? निमित्त है। निमित्त नहीं ? वस्तु नहीं ? लोकालोक नहीं ? कि लोकालोक है, इसलिए ज्ञान हुआ केवलज्ञान का ? इसलिए लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान हुआ ? लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान हुआ ? तथापि केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त है। इसका अर्थ क्या ? यह कर्ता है, इसलिए यहाँ केवलज्ञान हुआ ? केवलज्ञान अपने में प्रगट हुआ, पूर्ण सर्वज्ञदशा (प्रगट हुई, वहाँ) लोकालोक निमित्त कहलाता है। ज्ञान उसे निमित्त कहलाता है, ज्ञान उसे निमित्त कहलाता है। किसे ? लोकालोक को; और लोकालोक इसे निमित्त कहलाता है। बस ! निमित्त का अर्थ ही पृथक् एक चीज़ है। इतनी बात है। परन्तु केवलज्ञान ने लोकालोक को उत्पन्न किया है ? और लोकालोक ने इसका केवलज्ञान उत्पन्न किया है ? कर्ता भिन्न और निमित्त भिन्न। पश्चात् उसे निमित्तपने का आरोप करके कर्ता कहा, वह तो आरोप है, वास्तविक (स्थिति) नहीं है। वह तो असत् है। परन्तु करे किसे ? परिणमे, वह कर्ता। सिद्धान्त क्या है ? यह है न ? जयसेनाचार्य ने ऐसा शब्द रखा है। परिणमे, वह कर्ता।

मुमुक्षु : कलश में भी ऐसा ही आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही आवे न सर्वत्र। अपने चार बोल नहीं आये थे ? चार बोल का व्याख्यान आया है न आज ? व्याख्यान के चार बोल। आज आया है। कहो, समझ में आया इसमें ? परिणमे, वह कर्ता। वह क्षेत्र यहाँ परिणमता है ? आत्मा अपने क्षेत्र में परिणमता है, पर के जाननेरूप (परिणमता है) परन्तु पर को जाननेरूप परिणमते हुए पर के क्षेत्र के आकार होकर परिणमता है, वह तो ज्ञान हुआ। परन्तु पर के क्षेत्र की चौड़ाईरूप होकर परिणमता है ? पर के क्षेत्र की चौड़ाईरूप होकर परिणमता है। पर के

क्षेत्र का ज्ञान स्वक्षेत्र की चौड़ाई में रहकर परिणमता है। समझ में आया? भारी बातें, भाई!

लोकालोक केवलज्ञान में ज्ञात होता है, लो! यह हो सात हाथ की देह। एक समय की पर्याय लोकालोक को ऐसे एक समय में जानती है। लोकालोक के आकार यहाँ ज्ञान हुआ? लोकालोक का जैसा आकार है, वैसी ज्ञान की पर्याय परिणमती अवश्य है, परन्तु उसके आकार प्रमाण बड़ी हो गयी है? इतनी बड़ी हो गयी है? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा...! देखो! एक समय का केवलज्ञान, एक समय में आवे पूरा ज्ञान। उसमें लोकालोक भी ज्ञात हो जाता है। वह तो ज्ञान ज्ञात होने से ज्ञात हो जाता है। समझ में आया? और वह पर्याय ज्ञात होने पर तीन काल, तीन लोक उसमें इकट्ठे ज्ञात हो जाते हैं, तथापि एक समय में अनुभव का वेदन है, वह कहीं तीन काल के द्रव्य का अनुभव—वेदन उसमें नहीं आ जाता। भोक्तापना वेदन नहीं आ जाता एक समय में। पर का भोक्ता तो नहीं, पर के द्रव्य का भोक्ता नहीं, पर के क्षेत्र का भोक्ता नहीं, पर के काल का भोक्ता नहीं, पर के भाव का भोक्ता नहीं, परन्तु अपने पूरे द्रव्य का एकपने में भोक्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यह भोक्ता, ऐसा इसे ज्ञात हो कि आहा! लड्डू आया और यह आया तो ज्ञान तत्प्रमाण जानने को परिणमा और (तो ऐसा लगता है कि) मैंने इसे भोगा, इस क्षेत्र को भोगा, इसे भोगा। वह क्षेत्र तो पर है, लड्डू का क्षेत्र पर है। इतना लड्डू और इतना लड्डू और इतना। समझ में आया? परन्तु जहाँ ज्ञान की पर से भिन्नता भासित नहीं होती और वहाँ पर से एकत्वता भासित होने से पर के आकार ज्ञान होने पर पररूप मैं (हो गया), पर के क्षेत्र में गया, मेरा ज्ञान प्रवेश कर गया। मेरी ज्ञान अवस्था पर के क्षेत्र में प्रवेश कर गयी उड़कर! ऐसा अज्ञानी को अपना सिमटना अपनी पर्याय अपने क्षेत्र में है, ऐसा नहीं मानता। सूक्ष्म बात है। अनेकान्त वस्तु का अनेकान्त। यह सूक्ष्म बात है, समझे न?

अनेकान्त में ऐसा नहीं है कि परक्षेत्र को जाने, इसलिए परक्षेत्र में गया और स्वक्षेत्र को जाने, इसलिए स्वक्षेत्र में रहा, ऐसे दो होंगे? परक्षेत्र को जाने, इसलिए

परक्षेत्र में गया; स्वक्षेत्र को जाने, इसलिए स्वक्षेत्र में रहा तो अनेकान्त कहलाये, ऐसा होगा? स्व और पर के क्षेत्र को जानता ज्ञान स्वक्षेत्र में रहा है, परक्षेत्र में गया नहीं। भारी! जाने दोनों को और रहा एक में। है? परन्तु दूसरा होवे किस प्रकार? समझ में आया? यह कहता है कि नहीं; मेरे क्षेत्र में नहीं, मैं तो परक्षेत्र में गया, पूरा चला गया, बह गया। क्षेत्राकार ज्ञान हुआ न (तो) परक्षेत्र में बह गया। जुगराजजी! बड़ी दुकान चलती हो और धूमधाम (होती हो), पचास हजार, लाख की आमदनी होवे न... आहाहा! पेढ़ी पर बैठा हो तो सब आकार ही भासित हो। मानो यह हो गया, यहाँ घुस गया। तुम्हें तो कहाँ माल-बाल होगा? इन्हें तो, इन्हें माल हो न, लाख, दो लाख का माल हो, पाँच लाख का। ऐ... धमाल! मुम्बई में तो दिन भी वह करना पड़े, लाईट करना पड़े। आगे गहरा-गहरा होवे तो। वहाँ उजाला कहाँ से पहुँचे? ऐसे से ऐसे और ऐसे से ऐसे... ऐसे... ऐसे... कितने ही जाएँ ऐसे। गहरा-गहरा पच्चीस हाथ ऐसे जाए और वापस पच्चीस हाथ ऐसे जाए। अब वहाँ कहाँ (प्रकाश जाए)? ऐसा अन्दर से ऐसे एकाकार हो जाए मानो कि आहाहा! मेरी दुकान बड़ी चौड़ी! ऐ... जैचन्दभाई! परन्तु तेरी दुकान तो असंख्य प्रदेश में है। चौड़ी-बौड़ी कहीं नहीं, सुन न! आहाहा! समझ में आया?

उसके प्रति समाधान ऐसा कि ज्ञान वस्तु परक्षेत्र को जानती है... देखो! **परन्तु अपने क्षेत्ररूप है,...** चाहे जितना छोटा-बड़ा क्षेत्र जाने, तो छोटे-बड़े क्षेत्रप्रमाण यह ज्ञान हो गया है, ऐसा नहीं है। क्षेत्र तो अपने असंख्य प्रदेश हैं, उनमें ही रहा हुआ है। नीम को जाने तो भी नीम के क्षेत्र आकार ज्ञान हुआ नहीं। क्षेत्र आकार अर्थात् चौड़ा। उसके जाननेरूप यहाँ हुआ है, वह अलग है और इतनी छोटी को इतना जाने, इतनी एक छोटी चीज़ ज्ञात हो चपटी। तो चपटी के प्रकार क्षेत्र से उसका ज्ञान परिणमा है, परन्तु चपटी के क्षेत्र जितना ज्ञान हो गया है? समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कहते हैं, छोटे-बड़े क्षेत्र हैं, उनके सामने (पदार्थ के) क्षेत्र, उनके क्षेत्र को जानता ज्ञान, ज्ञान की आकृतिरूप स्वत: अपना स्वभाव है, इसलिए परिणमे अवश्य परन्तु वह कहीं छोटे-बड़े क्षेत्र के आकार ज्ञान हो नहीं जाता। उनके आकार हो नहीं

जाता, वह तो अपनी आकृति में रहकर परिणमता है। **पर का क्षेत्र ज्ञान का क्षेत्र नहीं है।** लो, है न? **अपने क्षेत्ररूप है। पर का क्षेत्र ज्ञान का क्षेत्र नहीं है। वही कहते हैं...** लो! यह तो भावार्थ अर्थात् कहना है यह, उपोद्घात कहा।

'पशुः सीदति एव' 'पशुः' अर्थात् **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव...** पशु अर्थात् **'बध्यते कर्म इति पशु'** समझ में आया? **'बध्यते कर्म इति पशु'** पहले में आया है। पहले यहाँ 'पशु' शब्द उठाया है। **एकान्तवादी...** अर्थात् पर के ऊपर लक्ष्य करनेवाला, स्व के लक्ष्य के क्षेत्र को छोड़नेवाला, स्व का क्षेत्र अस्तित्व में न रखनेवाला। महान अस्तित्व अपना असंख्य प्रदेशी जिसका आधार है, उसे नहीं माननेवाला परक्षेत्र के जो परद्रव्य के, उनके प्रदेश का जो आधार है, उसे जानता हुआ **'सीदति' ओलों के समान गलता है।** ओला... ओला क्या कहलाता है? ओला। यह पानी के ओले नहीं (होता)? बर्फ... बर्फ। यह ओले पड़े। यह ओले गिरते हैं न?

अभी ही गिरे थे। गिरे, साथ ही पिघल जाए। ओला एकदम पिघल जाता है। ओला अर्थात् बर्फ, लो, ओला लो। एकदम-एकदम पिघलने लगे। एक बार ओला नहीं हुए थे? भाई! कालावाड़ में नहीं? बेचरभाई साथ में थे। तुम ले गये थे। नहीं? थैली में अधमण (संवत) २००० का वर्ष। रास्ते में वर्षा आयी। कालावाड में २००० के वर्ष की बात है। कालासर, कालावाड नहीं। वहाँ दरबार के उसमें उतरे थे इतने ओले। बेचरभाई और रामजीभाई सब थे। फिर मोटर गयी, उसमें ले गये थे। अधमण थैली में ले गये थे। बड़े पड़े थे, बड़े। परन्तु वे तो एकदम पिघलने लगे अन्दर से। इसी प्रकार मानो आत्मा परक्षेत्र को जानते हुए ज्ञान का स्वक्षेत्र पिघलने लगा हो। समझ में आया? और अपने क्षेत्र से मानो खाली हो जाता हो। परक्षेत्र में व्याप्त ज्ञान मानो परक्षेत्ररूप हो जाता हो, ऐसा करके अपने क्षेत्र का ज्ञान पिघल जाता है। **'सीदति'** दृष्टान्त कैसा दिया? समझ में आया?

ज्ञानमात्र जीववस्तु है ऐसा नहीं साध सकता है। मैं तो पर को, क्षेत्र को जानता हुआ मेरे स्वक्षेत्र में ही मेरा ज्ञान बसा हुआ है। ऐसे अपने स्वरूप को पर से भिन्न साध नहीं सकता। **'एव' निश्चय से ऐसा ही है।** लो! ऐसा ही है, कहते हैं। अपने स्वरूप को

पर से (भिन्न) साध नहीं सकता और पर के क्षेत्राकार एकाकार हो गया हुआ मानता है। **कैसा है एकान्तवादी ? 'भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः' अपने चैतन्य प्रदेश से अन्य है जो समस्त द्रव्यों का प्रदेशपुंज....** लो! पूरे लोक के सब। अपने चैतन्य प्रदेश के असंख्य प्रदेशी यहाँ भिन्न है न? ऐसे उससे अन्य **समस्त द्रव्यों का प्रदेशपुंज....** सब द्रव्यों के प्रदेशपुंज। यहाँ क्षेत्र लेना है न? परमाणु का क्षेत्र, स्कन्ध का क्षेत्र, समझे? **उसकी आकृतिरूप परिणमा है....** ऐसा जो पर का क्षेत्र, उसके आकाररूप (परिणमे), ऐसा यहाँ ज्ञान। **'बोध्यनियतव्यापार'** क्यों ?—कि **ज्ञेय-ज्ञायक का अवश्य सम्बन्ध...** देखो! नियत का अर्थ किया। बोध्य (अर्थात्) ज्ञात होनेयोग्य और जाननेवाला, इसका नियत-निश्चय व्यापार, निश्चय सम्बन्ध है ऐसा। जैसा क्षेत्र हो वह ज्ञात होनेयोग्य है, जाननेवाला ज्ञान है, ऐसा दोनों को नियत सम्बन्ध है। समझ में आया?

बोध—ज्ञात होनेयोग्य। **ज्ञेय-ज्ञायक का अवश्य सम्बन्ध है।** इसकी इतनी ही व्याख्या (की)। ज्ञात होनेयोग्य वस्तु, जाननेवाला स्वयं। परक्षेत्र में ज्ञात होनेयोग्य वस्तु रही। यह स्वयं जाननेवाला स्वक्षेत्र में उसे बराबर जाने। ऐसा ही उनका दोनों का सम्बन्ध है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है। यह तो ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध कहीं टूट जाए?

उसमें निष्ठ है अर्थात् एतावन्मात्र को (इतनामात्र को) जानता है.... लो! यह सम्बन्ध हुआ इतना ही आत्मा है, ऐसा मानता है। परन्तु उसे जाननेवाला मेरा स्वरूप अत्यन्त मेरे क्षेत्र में भिन्न है, ऐसा अज्ञानी जानता नहीं। समझ में आया? **ज्ञान का क्षेत्र, ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। 'सदा' अनादि काल से ऐसा ही है।** अनादि काल से अज्ञानी ऐसा ही मानता है, ऐसा कहते हैं। अनादि काल से, निगोद से लेकर परक्षेत्र में अपना क्षेत्र (मानता है)। (अपना स्वक्षेत्र) मानता नहीं। असंख्य प्रदेशी अपने क्षेत्र की नजर होवे तो उसे परक्षेत्र में मैं हूँ, यह आवे नहीं। वह तो (ऐसा ही मानता है कि) स्वक्षेत्र में अनन्त गुण का पिण्ड मेरे इस क्षेत्र में है। समझ में आया? परक्षेत्र में नहीं। समझ में आया? गिरनार, शत्रुंजय, सम्मेदशिखर सब क्षेत्र हैं या नहीं? उन क्षेत्र में ऐसे एकाकार हो जाए कि मानो यह पूरा ज्ञान वहाँ गया।

मुमुक्षु : ये तो जैन के क्षेत्र हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन के क्षेत्र हैं या पर के क्षेत्र हैं ? कहो, किसके क्षेत्र होंगे ? यह क्षेत्र, क्षेत्र के हैं। जैन के क्षेत्र हैं ? उसमें विवाद उठावें।

कहते हैं, ज्ञान में ये ज्ञात होने पर इनरूप मैं हो गया, ऐसा माननेवाला परक्षेत्र से अपना क्षेत्र भिन्न नहीं समझ सकता, अनुभव नहीं कर सकता। समझ में आया ? **अनादि काल से ऐसा ही है।** अनादि काल से ऐसा है। **और कैसा है मिथ्यादृष्टि जीव ? 'अभितः बहिः पतन्तं पुमांसं पश्यन्' 'अभितः' मूल से लेकर...** सर्वथा, ऐसा। **'अभितः'** अर्थात् सर्वथा है न ? सर्वथा। **'बहिः पतन्तं'** सर्वथा। **'बहिः पतन्तं' परक्षेत्ररूप परिणमी है, ऐसे जीववस्तु को मानता है....** मैं तो परक्षेत्ररूप परिणम गया हूँ। उसमें दृष्टान्त आया है न ? भैंस का—पाड़ा का, पाड़ा का। पाड़ा का ध्यान होने पर मैं पाड़ा ही हो गया। दरवाजे में से निकलते हुए ऐसे-ऐसे करने लगा। क्या है परन्तु तुझे ? किसी को पाड़े का ध्यान करना है। तुझे प्रिय क्या है ? कि पाड़ा, भैंस, भैंस। बड़ी भैंस आधे मण दूध दे। उसका ध्यान करता है। ऐसा करते... करते... करते... मैं भैंस हो गया। ऐ, बाहर आओ न! दरवाजा छोटा है, इसलिए जरा सा ऐसा भैंस का सींग होता है न ? ऐसा निकालकर बाहर आया। परन्तु तू भैंस कहाँ हो गया है ? इसी प्रकार जो क्षेत्र का ज्ञान करे, उस क्षेत्र में से उसे निकलना सुहाता नहीं। समझ में आया ? यह भैंस का दृष्टान्त समयसार में आता है।

परक्षेत्ररूप परिणमा है, ऐसे जीववस्तु को मानता है-अनुभवता है, ऐसा है मिथ्यादृष्टि जीव। लो! यहाँ तक तो परक्षेत्र में अपनापना मानता है, यह बात की। सिद्धान्त तो सिद्ध करना है, आत्मा स्वक्षेत्र में है, वह यह बोल है। श्लोक तो स्वक्षेत्र असंख्य प्रदेश में ही भगवान यहाँ है, ऐसा सिद्ध करना है। परन्तु उसके सामने पहले परक्षेत्र में जीव मानता है कि मैं हूँ, ऐसी यह बात की। **'पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति' एकान्तवादी जैसा कहता है, वैसा नहीं है....** उसमें **'सु'** आता था, इसमें **'पुनः'** आता है।

'स्याद्वादवेदी' अनेकान्तवादी जैसा मानता है, वैसी वस्तु है। लो ! अनेकान्तवादी अर्थात् पर को जानने पर भी मैं तो मेरे क्षेत्र में हूँ, परक्षेत्र में नहीं—इसका नाम अनेकान्तवाद। परन्तु परक्षेत्र में भी हूँ और मेरे क्षेत्र में (भी हूँ), इसका नाम अनेकान्त

नहीं है। नियत ने तो गजब किया है, भाई! नियत, तुम्हारा क्रमबद्ध तो ऐसा कर डाला। क्रमबद्ध रखते समय खबर नहीं होगी। रखा है, उसमें यह आया है, हों! क्रमबद्ध करके नियत स्थापित करना है और भगवान ने देखा है, ऐसा स्थापित करना है। परन्तु भगवान ने कहा है, ऐसा नहीं मानते। आहाहा! अरे! भगवान! थोड़े-बहुत लोग जाओ और वहाँ जाकर समझाओ, नहीं तो यह सब गाँव-गाँव में विवाद होगा। उसमें आया है, भाई! थोड़ा समाज-नेता वहाँ जाओ और वहाँ जाकर (समझाओ)। अरे! भगवान! आहाहा! अरे! प्रभु! क्या हो?

भाई! तेरी स्वतन्त्रता तुझे जैसे भासित नहीं हो और पुण्य में मिठास लगती है न लोगों को! ऐसी मिठास, ऐसी मिठास। आहाहा! भगवान भी पुण्य को भोगते हैं। पहले लिखा, आज लिखा। वह तो खूब लिखता है। भगवान भी पुण्य को भोगते हैं, पुण्य फला अरिहन्ता। अरे! पुण्य के परमाणु का क्षेत्र अलग, इस समवसरण का फल अलग। उसे भगवान भोगते होंगे? आहाहा! अज्ञानी पर को भोग सकता है? पुण्य के फलरूप से मकान, पैसा, मोटरें, यह सब भोग सकता है या नहीं? आहाहा!

कहते हैं, धर्मी जीव **अर्थात् अनेकान्तवादी जैसा मानता है, वैसी वस्तु है। भावार्थ इस प्रकार है कि वह वस्तु को साध सकता है**। धर्मी जीव अपने ज्ञान में परक्षेत्र (का) जानने का पर का ज्ञान होने पर भी मैं तो मेरे स्वक्षेत्र में ही व्याप्त हूँ, मेरे असंख्य प्रदेश के क्षेत्र में रहा हुआ हूँ, (ऐसा मानता है)। महान क्षेत्र दिखायी दे तो कहीं महान क्षेत्र जितना हो गया, छोटा क्षेत्र दिखायी दे तो छोटे क्षेत्र जितना हो गया और मेरे जितना दूसरा क्षेत्र दिखायी दे तो उसरूप क्षेत्र हो गया, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

वस्तु को साध सकता है। कैसा है स्याद्वादी? 'स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः' समस्त परद्रव्य से भिन्न.... स्वक्षेत्र अर्थात् यहाँ पहले सिद्ध तो चैतन्यप्रदेश है, उसे सिद्ध करना है। परन्तु सब परद्रव्य, उनके क्षेत्र, उनके जो आधार प्रदेश, उनसे भगवान आत्मा का क्षेत्र अत्यन्त भिन्न है। कहो, समझ में आया? यह भगवान का समवसरण और भगवान का यह और भगवान की वाणी और... वह तो निमित्तपने का ज्ञान करने के लिये बात है। वाणी तो जड़ की है। जड़ की वाणी चैतन्य की होती होगी? चैतन्य की

वाणी को ऐसा कि निमित्तकर्तारूप से न मानो तो फिर वाणी का प्रमाण रहेगा नहीं। जड़ में प्रमाण क्या आवे? जड़ में प्रमाण कहाँ था? प्रमाण तो ज्ञान में है। आहाहा! भारी कठिन बात हो गयी। बड़ा धक्का लग गया है कि अरे रे! यह सब... यह धक्का लग गया। यह शासन निभता है, उसके ऊपर बड़ा धक्का लगता है, ऐसा कहते हैं।

व्यवहारचारित्र ही वस्तु है। अभी शुद्ध उपयोग तो है नहीं और इस व्यवहारचारित्र को त्याज्य माने, व्यवहारचारित्र बेचारे मुश्किल से पालन करते हैं। और समकित दृष्टि का प्रकाशपना तो उसके संयम और तप के ऊपर है। जितने प्रमाण में संयम, तप (होवे उतने प्रमाण में) समकित की किरणें उसके कारण बाहर दिखती है। अब उसे उड़ते हैं, कहते हैं। कहो! उसकी किरणें बाहर आती होंगी! राग की मन्दता और और बाहर के त्याग के कारण समकित बाहर आ जाता होगा? समझ में आया? ऐसा कि बाह्यत्याग के ऊपर समकित का प्रमाण है, ऐसा! बाह्यत्याग को उड़ावे तो समकित भी रहा नहीं और त्याग भी रहा नहीं, इसलिए उन लोगों को—नियतवाद माननेवालों को त्यागी को बहुमान करने का रहता नहीं। आहाहा! भारी बात। खलबलाहट हो गया है।

कहते हैं, धर्मी तो (ऐसा मानता है कि) परद्रव्य से मेरी चीज़ त्रिकाल भिन्न है। समझ में आया? वाणी हो, क्षेत्र हो, मकान हो या समवसरण हो या सम्मेदशिखर हो। **परद्रव्य से भिन्न अपने स्वरूप चैतन्यप्रदेश....** अपने असंख्य चैतन्य प्रदेश स्वरूप। क्षेत्र है न? **उसकी सत्तारूप से... 'निरुद्धरभसः' परिणमा है ज्ञान का सर्वस्व....** लो! **'निरुद्धरभसः'** इसमें, पर से हटकर अपने में परिणमता है। **ज्ञान का सर्वस्व....** सब ज्ञान का सर्वस्व यहाँ ही है, पर में कुछ नहीं। पर के क्षेत्र के कारण कुछ है ही नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा पूरे लोकालोक (में) व्याप जाए, ऐसा कहते हैं। शास्त्र में नहीं कहा? सर्वगत। लो! सर्वगत कहा है या नहीं प्रवचनसार में? परन्तु सर्वगत किस अपेक्षा से कहा है, सुन तो सही! वह परगत तो यहाँ है और पर में यहाँ है और यह वहाँ है। वह तो ज्ञेय-ज्ञायक के निमित्तपने की व्याख्या की है। इस ज्ञान में वह सब चीज़ें ज्ञात हो जाती हैं, इस अपेक्षा से पर इसमें आया और यह वहाँ ज्ञान सबको जानता है, इसलिए व्यवहार की अपेक्षा से मानो व्यापक हो गया, ऐसा कहने में आता है। व्यापक

तो यहाँ है, यहाँ इतने में व्यापक है। समझ में आया? यह बड़ा विवाद क्षेत्र का, व्यवहार-निश्चय का यह डाला है।

इतनी सब (बातें आवें), इसलिए एक व्यक्ति (कहता है), विकल्परहित हो जाओ, बापू! विकल्परहित हो जाओ; परन्तु किस प्रकार विकल्परहित होता है। जिस वस्तु का अस्तित्व कितने क्षेत्र में है, वह द्रव्य है, कितना काल है, कितना भाव है—ऐसा जाने बिना विकल्परहित होगा किस प्रकार? जैसा सत् है, उस प्रकार से ज्ञान करेगा तो विकल्परहित होगा। परन्तु जिस प्रकार से सत् है, उस प्रकार से ज्ञान जानता नहीं (और कहे), विकल्परहित हो जाओ। किस प्रकार विकल्परहित होगा? समझ में आया? जिस प्रकार असंख्य प्रदेश में ही अपना स्वभाव और क्षेत्र इतने में ही है, ऐसा ज्ञान उसके ख्याल में न आवे और ऐसा का ऐसा व्यापक है और ऐसा है और वैसा है माने तो वह ज्ञान तो सत्य हुआ नहीं। सत्य ज्ञान बिना विकल्प किस प्रकार टूटेगा इसे? समझ में आया? आहाहा!

परक्षेत्र में व्यापक माने। सबमें अपने एक ही हैं, विकल्प घटाओ। परन्तु किस प्रकार घटेगा? तेरी मान्यता ही खोटी हुई, असत्य हुई। असत्य मान्यता है, वही विकल्परूप एकाकार हो गया है। चला है न सब अभी? मुम्बई में भाषण चलते हैं। विकल्परहित हो जाओ, विकल्प घटा डालो। विचार भी नहीं। परन्तु विचार नहीं, विचार नहीं तो मतिज्ञान रहित हो जाए आत्मा? उसमें विकल्प नहीं। परन्तु विकल्प नहीं, (ऐसा कहते हो) परन्तु पहले विचार में यह चीज़ इतने में है, इतना क्षेत्र है, ऐसा नक्की हुए बिना, अस्तित्व का क्षेत्र ही इतना है, यह इतना ज्ञान नक्की हुए बिना उस ज्ञान में सत्यता कैसे आयेगी? और सत्यता आये बिना विकल्प टूटेगा किस प्रकार? और ऐसा, वह तो मिथ्यात्व का विकल्प पड़ा है एकाकार। क्या कहा? समझ में आया इसमें? जमुभाई!

आत्मा ऐसे सर्व व्यापक है, सर्व क्षेत्र में है—ऐसा जो ज्ञान किया, वह तो ज्ञान मिथ्यात्व के विकल्प से एकाकार परिणम गया है। अब उसे विकल्परहित करो। परन्तु किस प्रकार विकल्परहित होगा? आहाहा! समझ में आया? इस जैन में भी बराबर खबर नहीं, इसलिए कितने ही ऐसा मान लेते हैं? हाँ, भाई! यह तो निश्चय कहते हैं

न! निश्चय में फिर और ऐसा क्या? अमुक क्या? भेद क्या? सिद्ध में और अलग क्या? सब सिद्ध एक हो गये। सिद्ध अनन्त हैं, उनके क्षेत्र प्रत्येक के अलग? सब सिद्ध में एक-एक जीव का सिद्ध का क्षेत्र अलग? इतने सबके (क्षेत्र) अलग? पूर्ण हो गये, वहाँ भी अलग? एक-एक सिद्ध का स्वतन्त्र असंख्य प्रदेशी क्षेत्र अलग है। दूसरे सिद्ध के साथ कोई मिलते नहीं। इसका विवाद तो कितना! सिद्ध में एक हो जाए न! यहाँ मलिन है, तब तक भले अलग हो। पूर्ण हो जाने के बाद पानी में पानी मिल गया, जाओ! अनन्त में अनन्त मिल गया; इसलिए अपना क्षेत्र अलग माना नहीं। सिद्ध को भी अपने असंख्य प्रदेश में उसने नहीं माना। वह तो निर्मल हो गये, इसलिए सब क्षेत्र में 'एक में अनेकम् और अनेक में एकम्'। आता है या नहीं। कान्तिभाई! ज्योति में ज्योति मिल गयी है। इस स्वक्षेत्र के अस्तित्व में ही मैं हूँ, इसका उसे सच्चा ज्ञान नहीं और सच्चा ज्ञान नहीं; इसलिए स्वसन्मुख ढलकर मिथ्याज्ञान का विकल्प है, वह ऐसे ज्ञान बिना टलता नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ आचार्य सभी बात को ऐसा कहते हैं। वैसे तो सब ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा है, बड़ा ऐसा है, यह परमात्मा ऐसा, अनन्त गुण का निर्मलानन्द महापरमात्मा (है, ऐसी) सब बातें करे परन्तु कितने क्षेत्र में? यह क्षेत्र-बेत्र की बात रहने दो, यह भाग पड़ जाए। इतने ही क्षेत्र में यह भाग पड़ गया। इतना तत्त्व होता नहीं। (ऐसा अज्ञानी मानते हैं।)

यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव **समस्त परद्रव्य से भिन्न अपने स्वरूप चैतन्यप्रदेश उसकी सत्तारूप से परिणमा है, ज्ञान का सर्वस्व जिसका, ऐसा है स्याद्वादी**। समझ में आया? '**निरुद्धरभसः**' '**रभसः**' अर्थात् शीघ्र।

मुमुक्षु : वेग।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेग। बाहर से रोका है वेग जिसने? अन्दर में परिणमा है, अन्दर में, ऐसा। असंख्य प्रदेश में रुक गया है। वेग बाहर में क्षेत्र-परक्षेत्र में मानो मैं हूँ, यह वेग रुककर स्वक्षेत्र मैं हूँ, ऐसा परिणमा है। समझ में आया? वेदान्त और दूसरे बहुत थे, अब जैन में भी ऐसे निकले हैं कितने ही बातें करनेवाले, निश्चय का ऐसा।

कितने क्षेत्र-बेत्र का पूछना नहीं। उसकी श्रद्धा ? और श्रद्धा कैसी ? आत्मा और आत्मा की श्रद्धा दो भेद पड़ गया।

यहाँ तो कहते हैं, कहते हैं कि इस आत्मा का असंख्य प्रदेश क्षेत्र में रहा हुआ दूसरे सबको जानने पर भी स्वयं अपने असंख्य प्रदेश में ही है, बाहर में जाता नहीं। निर्मल होवे तो भी स्वक्षेत्र में है और मलिन होवे तो भी स्वक्षेत्र में है। स्वक्षेत्र को छोड़कर दूसरे क्षेत्र को कभी स्पर्श नहीं करता। व्यापे तो क्या, परन्तु स्पर्श भी नहीं करता। समझ में आया ? इस इन्द्रिय को, इन्द्रिय के क्षेत्र को आत्मा ने स्पर्श भी नहीं किया है, कर्म के क्षेत्र को स्पर्श नहीं किया है। ऐसे अपने क्षेत्र में रहा हुआ परसन्मुख के वेग की गति को रोकता हुआ स्व की गति में परिणमन करता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक-१७-१२-१९६५, कलश-२५५-२५६, प्रवचन-२७२

२५५ सलंग। परक्षेत्र से नास्ति का आठवाँ श्लोक है। यह आत्मा है, वह परक्षेत्र से नहीं। स्वक्षेत्र से है परन्तु परक्षेत्र से नहीं। स्वक्षेत्र से है, यह पहले में आ गया। २५४ में यह आ गया।

कलश - २५५

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्
तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन्।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ।।९-२५५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी जीव ऐसा है कि वस्तु को द्रव्यरूप मानता है; पर्यायरूप नहीं मानता है; इसलिए ज्ञेयवस्तु के प्रदेशों को जानता हुआ, ज्ञान को अशुद्धपना मानता है। ज्ञान का ऐसा ही स्वभाव है-वह ज्ञान की पर्याय है, ऐसा नहीं मानता है। उसके प्रति उत्तर ऐसा कि ज्ञानवस्तु अपने प्रदेशों में है, ज्ञेय के प्रदेशों को (आकार को) जानती है—ऐसा स्वभाव है; अशुद्धपना नहीं है, ऐसा मानता है स्याद्वादी। यही कहते हैं— 'पशुः प्रणश्यति' [पशुः] एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, [प्रणश्यति] वस्तुमात्र साधने से भ्रष्ट है-अनुभव करने से भ्रष्ट है। कैसा होकर भ्रष्ट है? 'तुच्छीभूय' तत्त्वज्ञान से शून्य होकर। और कैसा है? 'अर्थैः सह चिदाकारान् वमन' [अर्थैः सह] ज्ञानगोचर हैं जो ज्ञेय के प्रदेश, उनके साथ [चिदाकारान्] ज्ञान की शक्ति को अथवा ज्ञान के प्रदेशों को, [वमन] मूल से वमन किया है अर्थात् उनका नास्तिपना जाना है जिसने, ऐसा है। और कैसा है? 'पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्' [पृथग्विध] पर्यायरूप जो [परक्षेत्र] ज्ञेयवस्तु के प्रदेशों को जानते हुए होती है उनकी आकृतिरूप ज्ञान की परिणति, उसरूप [स्थित] परिणमती

जो [अर्थ] ज्ञानवस्तु, उसको, [उज्झनात्]—ऐसा ज्ञान, अशुद्ध है—ऐसी बुद्धि कर, त्याग करता हुआ, ऐसा है एकान्तवादी। किसके निमित्त ज्ञेयपरिणति, ज्ञान को हेय करती है? 'स्वक्षेत्रस्थितये' [स्वक्षेत्र] ज्ञान के चैतन्यप्रदेश की [स्थितये] स्थिरता के निमित्त (लिए)। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु, ज्ञेय के प्रदेशों के (आकार के) जानपना से रहित होवे तो शुद्ध होवे (स्थिर होवे)—ऐसा मानता है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। उसके प्रति स्याद्वादी कहता है— 'तु स्याद्वादी तुच्छतां न अनुभवति' [तु] एकान्तवादी मानता है, वैसा नहीं है; स्याद्वादी मानता है, वैसा है। [स्याद्वादी] अनेकान्तदृष्टि जीव, [तुच्छतां] ज्ञानवस्तु, ज्ञेय के क्षेत्र को जानती है; अपने प्रदेशों से सर्वथा शून्य है—ऐसा [न अनुभवति] नहीं मानता है। ज्ञानवस्तु, ज्ञेय के क्षेत्र को जानती है; ज्ञेयक्षेत्ररूप नहीं है—ऐसा मानता है। कैसा है स्याद्वादी? 'त्यक्तार्थ अपि' ज्ञेयक्षेत्र की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान—ऐसा मानता है, तो भी ज्ञान अपने क्षेत्ररूप है—ऐसा मानता है। और कैसा है स्याद्वादी? 'स्वधामनि वसन्' ज्ञानवस्तु अपने प्रदेशों में है, ऐसा अनुभवता है। और कैसा है? 'परक्षेत्रे नास्तितां विदन्' [परक्षेत्रे] ज्ञेयवस्तु की आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान, उसमें [नास्तितां विदन्] नास्तिपना मानता है अर्थात् जानता है तो जानो, तथापि एतावन्मात्र ज्ञान का क्षेत्र नहीं है, ऐसा मानता है स्याद्वादी। और कैसा है? 'परात् आकारकर्षी' परक्षेत्र की आकृतिरूप परिणमी है ज्ञान की पर्याय, उससे भिन्नरूप से ज्ञानवस्तु के प्रदेशों का अनुभव करने में समर्थ है; इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूप का साधक; एकान्तपना वस्तुस्वरूप का घातक। इस कारण, स्याद्वाद उपादेय है।।९-२५५।।

कलश - २५५ पर प्रवचन

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्
तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन्।
स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ।।९-२५५।।

जरा सूक्ष्म बात है, धीरे से समझनेयोग्य बात है। **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई**

एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव... अज्ञानी एक पक्ष तत्त्व को माननेवाला पूर्ण तत्त्व का स्वरूप क्या है, उसे नहीं माननेवाला **ऐसा है कि वस्तु को द्रव्यरूप मानता है;....** वस्तु को वस्तु—द्रव्यरूप से पदार्थरूप से मानता है। **पर्यायरूप नहीं मानता है;...** इसकी व्याख्या यहाँ अलग प्रकार की है। पर्यायरूप से नहीं मानता। **इसलिए....** अब इसकी व्याख्या (करते हैं)। **इसलिए ज्ञेयवस्तु के प्रदेशों को जानता हुआ, ज्ञान को अशुद्धपना मानता है।** ऐसी बात है, देखो! क्या कहते हैं? आत्मा—असंख्य प्रदेशी आत्मा में ज्ञान स्वभाव बसा हुआ है। उसकी ज्ञान पर्याय में परक्षेत्र के आकाररूप परिणमने का पर्यायधर्म है। पर्याय में छोटे-बड़े परक्षेत्र हों, वह छोटा-बड़ा चाहे जो हो परन्तु उसके प्रमाण में अपनी ज्ञानपर्याय में वह क्षेत्र आकार है, इस प्रकार से पर्याय में परिणमने का धर्म है। समझ में आया?

ज्ञान को अशुद्धपना मानता है। परन्तु वह परप्रदेशों का क्षेत्र अपनी पर्याय में ज्ञात होने से वह परक्षेत्र यहाँ आ गया, ऐसा मानकर उसे अशुद्ध मानता है। वह पर्याय को नहीं मानता, इसका अर्थ यह (है)। समझ में आया? वस्तु असंख्य प्रदेश, अनन्त गुण का भाव—धाम आधार, यहाँ आधार की बात चलती है। असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का आधार ऐसा असंख्य प्रदेशी आत्मा, उसकी वर्तमान ज्ञान अवस्था में पर के छोटे-बड़े क्षेत्र के आकार अपनी ज्ञानपर्याय परिणमती है। उस छोटे-बड़े का ज्ञान का परिणमन देखकर यह ज्ञान पर्याय अशुद्ध हो गयी, ऐसा करके वह अनेक ज्ञेयाकार, क्षेत्राकार की पर्याय है, उसे निकाल डालना चाहता है। समझ में आया? देखो!

अशुद्धपना मानता है। ज्ञान का ऐसा ही स्वभाव है—वह ज्ञान की पर्याय है, ऐसा नहीं मानता है। वह अपने क्षेत्र में अपनी ज्ञानपर्याय परक्षेत्र के आकार ज्ञेयाकाररूप से—क्षेत्र के ज्ञेयाकाररूप से पर्यायरूप से परिणमती है, तथापि कहीं वह ज्ञान परक्षेत्र का नहीं हो गया। समझ में आया? अपने क्षेत्र को छोड़कर एक प्रदेश भी उसकी ज्ञान पर्याय बाहर नहीं जाती। परन्तु उस ज्ञान की पर्याय में परक्षेत्र के छोटे-बड़े (आकार दिखते हैं), यह नीम, यह लकड़ी, सब देखकर मानो वह आकार मुझमें आया, इतना सब अशुद्ध हो गया। उस सम्बन्धी का ज्ञान क्षेत्राकार का हुआ है। वह कहीं वह क्षेत्र यहाँ आया नहीं। परन्तु उस क्षेत्र के छोटे-बड़े आकार अपने क्षेत्र के आकार प्रमाण

पर्याय में देखकर, यह क्या? ऐसे उसकी अशुद्धता मानकर उस पर्याय को उसका ज्ञान का स्वभाव है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। कहो, समझ में आया इसमें? **वह ज्ञान की पर्याय है, ऐसा नहीं मानता है।**

उसके प्रति उत्तर ऐसा कि ज्ञानवस्तु अपने प्रदेशों में है,.... वे छोटे-बड़े क्षेत्र... कहो, जैसा मकान हो उसके आकार ज्ञान होता है या नहीं? ज्ञान उस आकार होने पर भी ज्ञानाकार हुआ है। वह कहीं पर के क्षेत्राकार हुआ नहीं। ज्ञान में वह तो पर्याय का स्वभाव है, जैसा वह क्षेत्र हो, वैसा ज्ञात हो। अज्ञानी ऐसा नहीं मानता। उसे कहते हैं कि भाई! **ज्ञानवस्तु अपने प्रदेशों में है,....** असंख्य प्रदेश में ही ज्ञान है। वह कहीं प्रदेश बड़े-बड़े, छोटे को जानने से परप्रदेशरूप हो गया, ऐसा नहीं। समझ में आया?

ज्ञेय के प्रदेशों को जानती है, ऐसा स्वभाव है... ज्ञेय के प्रदेशों को जानती है। कौन? ज्ञानवस्तु। ज्ञानवस्तु, ज्ञानवस्तु ज्ञेय **ज्ञेय के प्रदेशों को जानती है,...** ज्ञेय के आकार को, क्षेत्र को जानती है, ऐसा ज्ञानवस्तु का स्वभाव है। **अशुद्धपना नहीं;....** वह परक्षेत्र का ज्ञान यहाँ आना, वह मलिनता नहीं है। समझ में आया? **ऐसा मानता है स्याद्वादी।** ऐसा मानता है अनेकान्तवादी। पर का ज्ञान क्षेत्राकार ज्ञानाकार परिणमा, तथापि वह ज्ञान का पर्याय धर्म है। अपना क्षेत्र छोड़कर परक्षेत्र में गया नहीं। ऐसा अज्ञानी नहीं मानता, ज्ञानी ऐसा मानता है। **यही कहते हैं—'पशुः प्रणश्यति'** यह तो मात्र पहले उपोद्घात करते हैं। शब्दार्थ अब शुरु करते हैं।

'पशुः प्रणश्यति' 'पशुः' अर्थात् कर्म से बँधा हुआ। **'पशु बध्यते कर्म इति पशु'** अज्ञान के आवरण से बँधता है, और नये आवरण से बँधता है, ऐसा एकान्तवादी अज्ञानी उसे यहाँ पशु कहने में आया है। **एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव, वस्तुमात्र साधने से भ्रष्ट है-अनुभव करने से भ्रष्ट है।** वह ज्ञान की पर्याय में, स्वक्षेत्र में परक्षेत्र ज्ञात होने पर भी मेरे क्षेत्र में ही हूँ। मेरा ज्ञान का अनुभव मेरे ज्ञान के लक्ष्य से मेरे क्षेत्र में करूँ। मेरे ज्ञान का अनुभव मेरे असंख्य प्रदेश के क्षेत्र में करता हूँ, ऐसा अज्ञानी अनुभव नहीं कर सकता। समझ में आया? **अनुभव करने से भ्रष्ट है।** परक्षेत्राकार मेरा ज्ञान हो गया, परक्षेत्राकार है, इसलिए स्वद्रव्य के लक्ष्य से, स्वक्षेत्र के ज्ञान में रहकर परक्षेत्र की

पर्याय है, उसका अनुभव करना चाहिए, वह अज्ञानी अनुभव नहीं कर सकता। समझ में आया? यह और अनेकान्त और... यह अनेकान्त और दूसरे प्रकार का कहते हैं।

वस्तुमात्र साधने से भ्रष्ट है.... मेरे असंख्य प्रदेश में ही मेरा ज्ञान स्वभाव है। बहुत से ऐसा कहते हैं न? भाई! यह सब ज्ञात होता है न? यह सब ज्ञात होता है न, वह सब यहाँ ज्ञात होता है, वह मैं हूँ—ऐसा अभी नहीं। यह सब क्षेत्र ज्ञात होते हैं, वह मुझे अशुद्धता हो गयी है, ऐसा कहते हैं। यह सब ज्ञात होता है, इतना यदि माने... समझ में आया? तो उसने पर्याय को माना और द्रव्य को माना नहीं। यहाँ तो पर्याय को नहीं मानता, उसका प्रश्न उठाया है। समझ में आया? पर्याय को न माने, उसकी व्याख्या— क्षेत्राकार ज्ञान की पर्याय मेरे ही क्षेत्र में रहकर होती है, ऐसी पर्याय को जो मानता नहीं। इससे स्वक्षेत्र में अनुभव करने की सामर्थ्य अज्ञानी को रहती नहीं। उसे परक्षेत्राकार से लक्ष्य पर के ऊपर जाता है। समझ में आया?

कैसा होकर भ्रष्ट है? 'तुच्छीभूय' तत्त्वज्ञान से शून्य होकर। अर्थात्? परक्षेत्र की पर्याय का ज्ञान, वह मेरा नहीं। समझ में आया? वह तो पर का ज्ञान हो गया, ऐसा मानकर (भ्रष्ट होता है)। परक्षेत्राकार हुआ, ज्ञान वह मेरा ज्ञान नहीं। मेरा ज्ञान उस परक्षेत्र में चला गया, ऐसा मानकर अपना ज्ञान असंख्य प्रदेश के क्षेत्र से पर के ज्ञान से खाली मानकर ज्ञान शून्य हो जाता है। समझ में आया?

अकेला आत्मा आत्मा की बात की थी न? कि आत्मा अनुभवो, आत्मा अनुभवो। तो ऐसी बातें तो बहुत करनेवाले हैं। इसलिए कोई उसमें अनेकान्त उसका स्वरूप है, ऐसा न माने तो उसे यह आत्मा वस्तु समझ में नहीं आ सकती और आत्मा का अनुभव भी नहीं हो सकता। ऐसे तो अभी आत्मा की बातें करनेवाले बहुत निकले हैं। बहुत काल से निकले हैं, लो न! समझ में आया? आत्मा निर्विकल्प है, वह वस्तु अनुभव करो, विकल्प तोड़ डालो। यह क्या परन्तु विकल्प तोड़े?

मुमुक्षु : स्वीकार मत करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार मत करो। परन्तु किसका स्वीकार न करे? समझ में आया? पर से शून्य है (ऐसा कहे)। पर से शून्य है, परन्तु अपने से भरपूर है या नहीं?

समझ में आया? अपने क्षेत्र में रहा हुआ ज्ञान परक्षेत्र को जानने से वह ज्ञान पर का हो गया, ऐसा मानकर वह अपने ज्ञान के भाव से अज्ञानी शून्य हो जाता है। कहो, समझ में आया? तत्त्वज्ञान से **'तुच्छीभूय'** तुच्छ हो गया, खाली हो गया। मैं तो ज्ञानमय हूँ ही नहीं। उस क्षेत्राकार हुआ, वह अशुद्धता है, इसलिए उसे निकालो। **कैसा होकर भ्रष्ट है? 'तुच्छीभूय'**।

और कैसा है? 'अर्थैः सह चिदाकारान् वमन' लो! **ज्ञानगोचर हैं जो ज्ञेय के प्रदेश, उनके साथ...** जो ज्ञेय के प्रदेश अपने ख्याल में आये न ज्ञान में, उन्हें निकालने पर **ज्ञान की शक्ति को अथवा ज्ञान के प्रदेशों को मूल से वमन किया है...** अपनी पर्याय ही वह नहीं, ऐसा करके पर्याय छोड़ देता है। अनुभव तो पर्याय में है। स्वक्षेत्राकार में मैं हूँ, परक्षेत्र का ज्ञान होने पर भी परक्षेत्र में हुआ नहीं। (ऐसा माने) तब तो उसे ज्ञान की पर्याय का अनुभव होता है। यह तो ज्ञान शक्ति को—पर के आकारों को छोड़ देने से अपनी ज्ञान स्वभाव की शक्ति को छोड़ देता है। यह सब सूक्ष्मता की बातें हैं, हों!

पर्याय में ऐसे परक्षेत्र ज्ञात हो, इतनी पर्याय है, परन्तु वह पर्याय कहीं इतनी ही नहीं। पूरा ज्ञायकभाव है, उसे अन्दर का उसका परिणमन हुआ, उसमें क्षेत्राकार ज्ञात हो, वह कहीं उसकी अशुद्धता नहीं है, परन्तु (एकान्तवादी अज्ञानी) वह अशुद्धता निकाल डालना (चाहता है)। जैसे दर्पण में दर्पण का बड़ा क्षेत्र है, उसमें सब क्षेत्र ज्ञात होते हैं। विष्टा की चौड़ाई, कोयले की चौड़ाई (दिखती है)। (तो कहे), यह निकाल दो। दर्पण में से यह निकाल दो तो दर्पण चुस्त होगा। दर्पण रहेगा ही नहीं, चुस्त क्या होगा? दर्पण में बड़ी-बड़ी चीज़ें ज्ञात होती हैं या नहीं? उससे दूर हो तो उससे चौड़ी चीज़ें दूर हो तो उसमें सब ज्ञात होती हैं। बड़ी हो तो भी ज्ञात होती है, लो! ज्ञात होती है या नहीं? दर्पण हो दो हाथ में और ऐसे (वस्तु) पच्चीस हाथ की हो, दूर हो तो भी सब ज्ञात होता है। दर्पण पच्चीस हाथ का चौड़ा हो गया? दर्पण पच्चीस हाथ चौड़ा हो गया? अरे! यह इतना बड़ा उसमें काला ज्ञात हो गया, उसमें नीला ज्ञात हो गया, यह विष्टा का बड़ा ढ़ेर पड़ा है और वह इसमें ज्ञात हो गया। उसे निकाल डालो। निकाल डालने से इसका स्वक्षेत्र ही नहीं रहेगा।

मुमुक्षु : दर्पण चला जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्पण चला जायेगा। इसी प्रकार चैतन्य दर्पण में परक्षेत्र का ज्ञान (होने से) अज्ञानी को तुच्छ लगता है, कि यह क्या? यह क्या? निकाल डाल। निकाल डाले तो तू ही पूरा वम जायेगा। समझ में आया?

'**चिदाकारान् वमन**' ज्ञान की पर्याय को छोड़ देता है। जानने का स्वभाव है, ज्ञान में पर को जानने का (स्वभाव) है, उसमें छोड़ना क्या? वह तो ज्ञान का सामर्थ्य है। स्व और पर को जानने की पर्याय का स्वक्षेत्र में सामर्थ्य है। **मूल से वमन किया है अर्थात् उनका नास्तिपना जाना है जिसने,...** लो! अर्थात्? अपनी पर्याय का नास्तिपना माना। मेरी ज्ञानपर्याय परक्षेत्र को जाने, इसलिए निकाल डालो, तो पर्याय की नास्ति मानी।

और कैसा है? 'पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्' 'पृथग्विध' पर्यायरूप जो ज्ञेयवस्तु के प्रदेशों को जानते हुए.... पर्यायरूप जो ज्ञेयवस्तु के प्रदेश को जानते हुए **होती है, उनकी आकृतिरूप ज्ञान की परिणति, उसरूप परिणमती जो ज्ञानवस्तु, उसको—ऐसा ज्ञान, अशुद्ध है—ऐसी बुद्धि कर, त्याग करता हुआ,....** वह अशुद्ध है, अशुद्ध है, छोड़ दो! ऐसा क्षेत्र मेरे ज्ञान में कैसे आता है? क्षेत्र कहाँ आता है? क्षेत्र सम्बन्धी तेरी ज्ञान की पर्याय तुझमें आती है। तो क्षेत्र को भूलकर, उसकी अपनी पर्याय को भूल जाता है। **ज्ञानवस्तु, उसको—ऐसा ज्ञान, अशुद्ध है... 'उज्झनात्'** है न? **ऐसी बुद्धि कर, त्याग करता हुआ,... 'उज्झनात्'** का अर्थ छोड़ देता है। **ऐसा है एकान्तवादी।**

किसके निमित्त ज्ञेयपरिणति, ज्ञान को हेय करती है? जिसके कारण से ज्ञेय परिणत ज्ञान को हेय करता है। वह ज्ञान की परिणति है, उसे छोड़ देता है। ज्ञेय को जानने की अपनी पर्याय है, उसे छोड़ देता है, इसलिए ज्ञान को ही हेय करता है। किसलिए? '**स्वक्षेत्रस्थितये' ज्ञान के चैतन्यप्रदेश की स्थिरता के निमित्त।** यह छोड़ दूँ तो मुझमें स्थिर (हुआ जाये)। परन्तु उसमें ही तू है। समझ में आया? **ज्ञान के चैतन्यप्रदेश की स्थिरता के निमित्त।** वह पर को छोड़ देना चाहता है। स्थिरता किस प्रकार होगी? वह तो तेरी अपनी पर्याय है।

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु, ज्ञेय के प्रदेशों के (आकार के) जानपना

से रहित होवे तो शुद्ध होवे (स्थिर होवे)—ऐसा मानता है.... ज्ञान में परक्षेत्र ज्ञात होता है तो उस क्षेत्र का जानना छूट जाये तो मेरा ज्ञानभाव शुद्ध हो, ऐसा एकान्त अज्ञानी मानता है। यह क्या ? यह क्या ? यह क्या ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में कोई ऐसी खराब वस्तु ज्ञात हो तो (वह) क्षेत्र निकाल डालना चाहता है या नहीं वह ? शरीर के इन्द्रिय के आकार अभी ज्ञान में ज्ञात हो। लो! वह परक्षेत्र है या नहीं ? क्या कहा ? शरीर के इन्द्रिय आदि के आकार, स्त्री, पुरुष आदि के आकार परक्षेत्र के हैं। वे ज्ञान के स्वक्षेत्र में, परक्षेत्र के आकार ज्ञात हों। उसमें अज्ञानी को ऐसा हो जाता (है कि) अरे! यह आकार ज्ञात होने से, अरे! मेरा ज्ञान अशुद्ध हो गया। समझ में आया इसमें कुछ ? जितना स्त्री, पुरुष के शरीर के अवयवों के आकार हैं, वे परक्षेत्र के आकार हैं। परन्तु वे ज्ञान में ज्ञात हों, वहाँ ऐसा हो जाये न, अर र र! ऐसा दिखता है ? ऐसा दिखता है ? समझ में आया या नहीं ?

मुमुक्षु : दृष्टान्त से समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! यह सरल दृष्टान्त देकर तुमको कहते हैं। स्त्री के स्तन आदि शरीर के आकार हैं, वे परक्षेत्र के आकार हैं। ध्यान रखो जरा! वे इस ज्ञान की स्वक्षेत्र की पर्याय में वे परज्ञेय के आकार यहाँ ज्ञात होते हैं। ज्ञात होने पर इसे ऐसा हो जाता है, अरे! ऐसे आकार दिखते हैं, वह मलिनता है। समझ में आया ? इसलिए वह ज्ञान की पर्याय को आच्छादित करना चाहता है, ऐसे संकुचित करना चाहता है। ऐसे आकार क्यों ज्ञात हों ? (ऐसा करके) संकुचित करना चाहता है, यह बात है, लो! समझ में आया या नहीं ? आहाहा! यहाँ तो सामान्य बात है न ? उसे समझने के लिये तो इसे स्वयं ही ख्याल रखना चाहिए न ? समझ में आया ?

यह अवयव ऐसे देखकर, स्त्री के आत्मा और पुरुष के आकार के अवयव देखकर, उस आकार को देखकर, इसकी आदत में ऐसा आ गया हो कि, यह आकार ऐसे होते हैं और जब ज्ञान में ज्ञात होते हैं, तब ज्ञान अशुद्ध हो जाता है, मलिन हो जाता है, विकार उपजता है। समझ में आया ? वह मूढ़ है, ऐसा कहते हैं, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया या नहीं ?

लड्डू, दाल और ऐसी चीज़ को ज्ञान में ऐसे आकार दिखाई दे न तो अमुक प्रकार का खाया हो न? वह आकार देखकर अन्दर गलगलिया हो जाये। यह मानो परक्षेत्र का ज्ञान यहाँ अपने सम्बन्धी का हुआ, उसके बदले परक्षेत्र में ज्ञान चला गया, (ऐसा मानता है)। समझ में आया? भूल जाओ उस मिठास को, मिठास के आकार को भूल जाओ, उस दुर्गन्धी के आकार को भूल जाओ, अमुक के आकार को भूल जाओ। परन्तु किसे भूलना है तुझे? समझ में आया?

शरीर के अवयव हैं, वह तो जड़ का आकार है। शरीर के अवयवों का आकार जितना है, वह तो मिट्टी का, धूल का परद्रव्य का आकार है। इस ज्ञान की पर्याय में वह परद्रव्य के जैसे आकार का क्षेत्र है, वैसा ज्ञान में ज्ञात होता है। अब ज्ञात होने पर इसे ऐसा हो जाता है कि अरे! यह जानने से तो राग हो जाता है, यह जानने से तो द्वेष हो जाता है। इसलिए मेरा ज्ञान अशुद्ध हो जाता है। समझ में आया? बात ऐसी है यहाँ। यह तो सामान्य सिद्धान्त सिद्ध करना है न? बाद में इसके दृष्टान्त दे तो इसे इस बात का जरा ख्याल आवे।

भगवान आत्मा अपने असंख्य प्रदेश के धाम में ज्ञान की पर्याय परिणमती है। उसमें जो आकार ज्ञान में ज्ञात होते हैं, तथापि वह तो ज्ञान की, पर्याय की परिणति है। वह पर आका है, इसलिए यहाँ मलिनता हुई कि अरे! यह ज्ञान में ऐसा हो गया, इसलिए यह मैला है। निकालो! क्या निकाल डालेगा? वह परक्षेत्र सम्बन्धी के ज्ञान की पर्याय-परिणमित हुआ उसे यदि यह क्षेत्र, यह निकाल डालना चाहेगा तो ज्ञान ही खाली हो जायेगा। किसे निकालना है तुझे? समझ में आया?

यह सूक्ष्म बात है। अनेकान्त सिद्ध किया है। पूरी दुनिया के सिद्धान्तों में आत्मतत्त्व जो वस्तु है, उसे ऐसा जो क्षण-क्षण में जो पर के आकार ऐसे ज्ञात हों और जहाँ आकार ज्ञात होने से उसे ऐसा हो जाये कि अरे! आहा! यह ज्ञान की आकृति का स्वभाव, असंख्य प्रदेश में रहकर वह आकार जानने का पर्याय धर्म है। उसमें पर्याय में ज्ञात हुआ उसमें मलिन क्या हो गया? समझ में आया? यह आँख को मूँदना चाहता है। आँख अर्थात्? ज्ञान की पर्याय जो आकृति को देखती है, उस ज्ञान की पर्याय को मूँदना

चाहता है, ऐसे संकुचित करना चाहता है। संकोचना चाहता है, (परन्तु पश्चात्) रहेगा क्या? यह पर छूटेगा परन्तु यह ज्ञान की पर्याय किस प्रकार छूटेगी? समझ में आया? इसे आदत पड़ गयी हो न?

स्व के, पर के जो-जो इन्द्रियों के आकार (ज्ञात हो), उस आकार में, ज्ञान में जहाँ गया तो उसे ऐसा ही हो जाता है कि आहा! यह आकार? यह वह आकाररूप ज्ञान परिणमा तो उसे यह आकाररूप हो गया, ऐसा मानकर या मिठास वेदन करे और या द्वेष वेदन करता है। समझ में आया?

ज्ञान का अन्तर स्वभाव असंख्य प्रदेश में विराजमान है। उसकी पर्याय परक्षेत्र जो है, उसे बराबर जाने। परन्तु उसे जानने से अशुद्ध हो गयी? नहीं, आँखें मूँद दो, भाई! नहीं कहते? कितने ही होते हैं न? स्त्री देखे तो आँखे फोड़ दो। क्या फोड़ना है तुझे? आँखें फोड़ना है अर्थात् क्या? आँखें तो जड़ हैं। तुझे क्या फोड़ना है? कि स्त्री के आकार न ज्ञात हों। परन्तु आकार न ज्ञात हों, इसका अर्थ क्या? ज्ञान की पर्याय उसे न जाने, ऐसा पर्याय धर्म है? समझ में आया? कितने ही हैं न उसमें? अप्पा लगे, स्त्री का मुँह दिख जाये तो अप्पा लगे। है या नहीं? तुमने नाम पाड़ा है। हमारे तो यहाँ साथ में पड़ोसी थे न? वे ऐसे देखे। परन्तु क्या है? कहा, यह क्या होगा यह? मुख दिखता है। परन्तु मुख तो जड़ का आकार है। ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात होने का स्वभाव है। मुख ज्ञात होता है? तुझे इसमें क्या निकाल डालना है? समझ में आया? जमुभाई! ऐसा कहते हैं यह। यह बातें नहीं करते। दृष्टान्त देकर तो उसमें स्पष्ट इस प्रकार से कहना चाहते हैं।

असंख्य प्रदेश में भगवान है। यह इन्द्रिय, अपनी इन्द्रियाँ हैं, उनका आकार भी जड़ है। समझ में आया? यह जैसा उसका चिह्न का आकार है, लिंग कठिन हो, चौड़ा हो, पतला पड़े, वह शरीर के अवयव ऐसे हों, ऐसे (हों), वह सब जड़ के आकार हैं। वह ज्ञान की पर्याय का धर्म है कि उस क्षेत्र के आकार हैं, तत्प्रमाण ज्ञेयाकार हो। अब उस आकार को ऐसे देखने से वह ज्ञान में ज्ञात होते (उसे ऐसा हो जाता है कि) अरे! यह क्या? वह तो ज्ञान की पर्याय है। अशुद्धता क्या है? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान की पर्याय निकाल डालना चाहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान की पर्याय निकाल डालना चाहता है। ऐसे ज्ञात नहीं होना चाहिए, ज्ञात नहीं होना चाहिए, ज्ञात नहीं होना चाहिए। परन्तु जानना नहीं चाहिए (परन्तु) तेरा स्वभाव है। जानना नहीं चाहिए, कहाँ से लायेगा? समझ में आया या नहीं? आहाहा! शरीर तो मिट्टी है। स्त्री का शरीर मिट्टी, माँस, हड्डियाँ हैं, उसके आकार परक्षेत्र के, परक्षेत्र के पुद्गल के आकार हैं। कोई भी अवयव पुद्गल का आकार है। अब वह ज्ञान की पर्याय परक्षेत्र को जानने से अशुद्धता क्या हो गयी? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं। यह सब इसमें एक हो गया। ऐसा क्षेत्र देखने से (ऐसा होता है कि) अरे! उं...हूं... हूं... परन्तु तेरे स्वक्षेत्र में इन परक्षेत्र के आकारों का ज्ञान की पर्याय में जानने का स्वभाव है। उसे तू निकाल डालेगा? समझ में आया? निकाल डालेगा तो तुच्छ हो जायेगा।

ऐसी बुद्धि कर, त्याग करता हुआ, ऐसा है एकान्तवादी। किसके निमित्त ज्ञेयपरिणति, ज्ञान को हेय करती है? ज्ञान परिणति को हेय करता है। पर के निमित्त के लक्ष्य से (ज्ञान हुआ), निमित्त से ज्ञान हुआ (नहीं), हुआ है अपना (ज्ञान) परन्तु उसके कारण हुआ, इसलिए मुझमें आ गया, (ऐसा मानकर कहता है), परिणति छोड़ दे। ऐसा मुझे नहीं चाहिए। नहीं चाहिए परन्तु तू रहेगा किस प्रकार तब? आहाहा!

यह अपने अस्तित्व में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में स्वयं है, पर के अस्तित्व से नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। यहाँ तो और इसी प्रकार से लिया है कि अपनी ज्ञानपर्याय में वह क्षेत्र ज्ञात हो, वह तो उसका पर्याय धर्म है, पर्याय है। ऐसी पर्याय को नहीं मानता, ऐसा कहते हैं। ऐसी पर्याय को नहीं मानता, अर्थात् उसने पर्याय को माना नहीं। क्योंकि जानने का पर्याय धर्म उसने नहीं माना। ऐसा जानना क्या? ऐसा जानना क्या? ऐसा जानना, ऐसा ही पर्याय में जानना होता है। द्रव्य में नहीं होता, द्रव्य तो त्रिकाल है। एक समय की पर्याय में सब क्षेत्र के आकार हों, जाने, जानने से उसमें अशुद्धता क्या हुआ?

मलिन क्या हुआ? उसमें राग क्या आया? द्वेष क्या आया? ग्लानि क्या आयी? और प्रीति क्या आयी? समझ में आया?

यह तो सूक्ष्म में सूक्ष्म अनेकान्त की व्याख्या है। पर के आकार इसमें नहीं (होने) पर भी उस सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय मेरी है। वह जानने की पर्याय में तू क्या निकाल डालेगा? कहे। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा हो। उसकी ज्ञानपर्याय में वे सब आकार ज्ञात होते हैं। आहाहा! समझ में आया? अवयव, शरीर के सब आकार जैसे हैं, वे ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं, तथापि वह ज्ञान-पर्याय का धर्म जानकर, उसे उनके प्रति यह आकार उनमें आ गये, इसलिए मुझे द्वेष-राग होगा, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? एकान्त, अनेकान्त की, बापू! वस्तु अलौकिक है। वह ऐसे साधारण नहीं। जैनदर्शन का नहीं परन्तु वस्तु का स्वरूप ही यह है। क्षण-क्षण में एकान्त और अनेकान्त है। क्यों अज्ञानी को एकान्त होता है और ज्ञानी को क्षण-क्षण में अनेकान्त कैसे होता है? यह बात यहाँ सिद्ध की है। समझ में आया?

'स्वक्षेत्रस्थितये' ज्ञान के चैतन्यप्रदेश की स्थिरता के निमित्त (लिए)। क्या मानता है वह? यह आकार जो ज्ञान में ज्ञात होते हैं, उन्हें छोड़ दूँ तो मेरी ज्ञानपर्याय स्थिर हो। उन आकारों का ज्ञान जो होता है, शरीर के आकार, यह ग्लानि जैसे भरे हुए आकार ज्ञान में ज्ञात होते हैं और उन्हें छोड़ दूँ न, तो मेरा ज्ञान स्थिर होगा। परन्तु ज्ञान स्थिर ही है। उसे जानने से कुछ ज्ञान अस्थिर हो गया है, ऐसा नहीं है।

इमली... इमली होती है न? इमली को देखे तो (मुँह में) पानी आवे। तब ज्ञान की पर्याय में ऐसा लगे कि मानो इस आकारमय मैं हो गया। इमली के टुकड़े देखे न बड़े? कातरा कहते हैं? क्या कहते हैं? कातरा क्या कहलाता है? मूँगफली थूनी। सौ, दो सौ, पाँच सौ, हजार हों। अन्दर हों न? क्या कहलाता है वह? इमली। इमली होती है न वह बड़ी दिखे न ऊपर ऐसे वह होता है। ऐसा देखकर पानी आवे। परन्तु है क्या परन्तु?

मुमुक्षु : उसके कारण पानी आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी उसके कारण नहीं आया, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। मूढ़ है कहते हैं। ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात हुआ उसमें पानी कहाँ से आया और यह (ऐसा हुआ तो) खट्टा हुआ होगा? समझ में आया? एक राजा के मुख में पानी नहीं आता था। मुख में बिल्कुल पानी नहीं आता था। हजारों, लाखों की दवायें की। राजा सही न? एक देशी डॉक्टर ने जाना कि यह दवा। देवशीभाई! ऐसे होंगे, देवशीभाई जैसे कोई देशी (होंगे)। एक कमरे में बैठाया पश्चात् इमली पाँच मण, दो-पाँच-दस मण लाये। हार बाँधा ऐसे हार। थोड़ी देर बैठाया, वहाँ मुँह में पानी (आया)। दूसरी दवा कुछ नहीं। लाखों की दवायें की परन्तु मुख में पानी आये नहीं। उसको ऐसा हो गया कि इसमें खटाश है, इसमें खटाश है। इसलिए ऐसे से ऐसे चारों ओर देखे तो खटाश खटाश... मुँह में पानी एकदम (आया)। उसने माना हुआ है कि इसमें खटाश है, ऐसे ज्ञान के कारण उसे खटाश को माना गया कि यह मानो यहाँ आया। वह तो ज्ञान की पर्याय में उस प्रकार की इमली के और ऐसे लम्बे और हार सब है, ऐसा ज्ञान आकार में पर्याय में आकार ज्ञात हुए। परन्तु उसे ऐसा हो गया कि ओहोहो! वह सब यहाँ आ गया। आहाहा! यही कहते हैं, मूढ़ है। क्या प्रसन्न होता है? समझ में आया?

यह तुम्हारे लड़कियाँ और लडके, यह सब फर्नीचर-बर्नीचर नहीं लिखते? बड़े मकान नहीं होते? ऐई! हिरण के सींग नहीं करते? मकान में रचते हैं। आकार रचते हैं। क्या कहलाता है वह? बड़ा हिरण का क्या कहलाता है? साबर, उसके रचते हैं। ऐसा कुछ का कुछ रचते हैं। पुतले सफेद इतने रचते हैं और ऐसे रचते हैं और ऐसे रचते हैं। वन में, बड़ा वन होता है न? यह महिलायें ऐसे एकदम नग्न रचते हैं। देखा है? अत्यन्त (नग्न) रचते हैं। ऐसे लड़का लिया हो और अमुक किया हो। देखनेवाले को तो ऐसा ही हो जाये कि मानो यह आकार यहाँ आ जाये तो उसे प्रेम हो जाये। समझ में आया? अपने वे आकार नहीं देखे थे? हैदराबाद। उसके घर में आकार थे। हैदराबाद में वह कोई था न? टोकरशीभाई। टोकरशी बड़ा गृहस्थ था। बड़ा बँगला था। सब दिखाव (किया था)। वह मानो आकार यहाँ प्रविष्ट हो गया! ऐसा अज्ञानी को हो जाता है कि अरे! ऐसे आकार क्या यह? परन्तु यह आकार का ज्ञान इस समय तेरा ज्ञान परिणमा है। वह आकार तो परद्रव्य है। वह परद्रव्य तुझे यहाँ नुकसान करता है?

परद्रव्य तो तेरे ज्ञान के उपादान की पर्याय में निमित्त हुआ है। वह यहाँ आया नहीं, तथापि ऐसा देखकर (ऐसा होता है कि) यह ? समझ में आया ?

बाबा और जोगी, त्यागी, ब्रह्मचारी हों तो (कहे), नहीं। क्या है ? परक्षेत्र के आकार ज्ञान में ज्ञात हों उसमें ऐसा उंहकारा किसलिए करता है ? यह कैसे ज्ञात होता है ? यह कैसे ज्ञात होता है ? पूरी दुनिया है। दुनिया है तो क्या है ? परक्षेत्र में है। तेरे ज्ञान में तो उसका क्षेत्र ज्ञात होता है। समझ में आया ? यह क्षेत्र का (बोल) है न जरा ? यह सब वहाँ है न! नहीं ? राजमहल में। इन्द्र भुवन में। वहाँ उतरे थे न दो दिन ? वह सब दिखाव देखो तो वैसे लगें। उसको राग के लिये किया हो। ऐसा दिखे तो मिठास वेदन हो। परन्तु वह आकार कहाँ घुस जाते हैं यहाँ ? तो मिठास वेदन हो। परन्तु वह ऐसा ही मानता है कि ज्ञान की पर्याय ऐसे देखने से... आहा! क्या कहते हैं परन्तु यह ? ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई उसमें आहा! क्या हुआ ? यह आ...हा.... का अधिकपना जो किया ज्ञान के क्षेत्र में, पर के क्षेत्र का ज्ञान हुआ, इतनी हद न रखी और आ..हा...— अधिकपना किया, यह इसकी मूढ़ता हुई। समझ में आया ? वे स्वक्षेत्र में जानने का ऐसा स्वभाव है, ऐसा इसने नहीं माना।

यह ज्ञात होने पर कहे, आहा! (हो जाता है), खराब ज्ञात होने पर, खराब आकार (देखे तो) उं..हूँ... (हो जाता है)। दोनों वस्तु के परक्षेत्र के आकार को ज्ञान की पर्याय में जानने का अपना स्वभाव है, ऐसे अस्तित्व से वह मानता नहीं। उस आकार को निकाल डालने से अपनी पर्याय को छोड़ देना चाहता है। यह तो चौदह बोल तो ऐसे (हैं कि उसमें) पूरा जैनशासन का रहस्य है। समझ में आया ? परज्ञेय से भिन्न तथापि परज्ञेय का अपनेक्षेत्र में, काल में भाव का जानना होता है, वह इसका स्वभाव है, ऐसा सिद्ध करते हैं। क्षण-क्षण में पर को जाने, तथापि पर से भिन्न है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु, ज्ञेय के प्रदेशों के (आकार के) जानपना से रहित होवे तो शुद्ध होवे (स्थिर होवे)—ऐसा मानता है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। एकान्त माननेवाला इस प्रकार मानता है। **उसके प्रति स्याद्वादी कहता है—**

देखो! '**तु स्याद्वादी तुच्छतां न अनुभवति' एकान्तवादी मानता है, वैसा नहीं है; स्याद्वादी मानता है, वैसा है।** अर्थात् **स्याद्वादी अर्थात् अनेकान्तदृष्टि जीव ज्ञानवस्तु ज्ञेय के क्षेत्र को जानती है;....** भगवान ज्ञान की पर्याय, वह क्षेत्र जितना पर है, सबको जानती है। **अपने प्रदेशों से सर्वथा शून्य है—ऐसा नहीं मानता है।** समझ में आया? सर्वथा क्या लिया है? कि, उस आकार से शून्य है परन्तु ज्ञेयाकार का परिणमन जो ज्ञान का है, उससे शून्य नहीं। **सर्वथा शून्य है—ऐसा नहीं मानता है।** अर्थात् क्या कहा? जो परक्षेत्र के आकार हैं, उन आकारों से यह खाली है, परन्तु परक्षेत्र सम्बन्धी के ज्ञान का आकार है, उससे खाली नहीं है। समझ में आया?

यह **सर्वथा शून्य है—ऐसा नहीं मानता है।** इसका अर्थ क्या? तो कथंचित् शून्य है? कथंचित् शून्य है, इसका अर्थ कि जो ज्ञान की पर्याय में परक्षेत्र के आकार जाने, उस आकार से शून्य है परन्तु उस आकार सम्बन्धी के ज्ञान से शून्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह सब समझने के लिये कौन निवृत्त हो? ऐ... न्यालभाई! उसकी अपेक्षा दया पाली और सामायिक करे (उसमें) कुछ है मेहनत? या भक्ति करे और दान दे देवे और या दो, पाँच, दस मन्दिर बनावे। यह कहा था न? एक मन्दिर बनाया था, अपने नानालालभाई ने। वे पण्डितजी कहें कि आठ भव में मोक्ष जाओगे। (तो यह कहे), हमारे महाराज निषेध करते हैं। यहाँ बना न? राजकोट में (संवत्) २००६ के वर्ष में ढाई लाख का मन्दिर (बना)। इन्दौर के मुन्नालालजी पण्डित थे, गुजर गये। तब आये थे। वरना हमारे नाथूलालजी आते थे। ओहोहो! छह-छह हजार लोग। सेठ! आठ भव में मोक्ष जाओगे। यह कहे, भाई! हम मानते नहीं, हों! हमारे महाराज इनकार करते हैं। यह तो कषाय की मन्दता का शुभभाव होता है, उतना पुण्य होता है। उसके मन्दिर बनाने के भाव से भव का अभाव हो, ऐसा हम मानते नहीं। न्यालभाई! यह (२००६) के वर्ष की बात है। उसको (ऐसा हो गया कि), आहाहा! परनतु क्या है, आहा? आहाहा! यह तो बाहर की क्रिया तो जड़ का आकार जो हुआ वह तो ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ। वह आकार कहीं तूने किया है? वह आकार इस जीव ने किया है? और उस आकार के कारण यहाँ ज्ञान हुआ, वह आकार के कारण हुआ है? ज्ञान की पर्याय स्वयं से हुई है। उसमें विकल्प आया है, उसका भी यहाँ ज्ञान हुआ है। विकल्प आया,

उसका यहाँ ज्ञान हुआ है। ज्ञान के विकल्प सम्बन्धी का ज्ञान, वह मेरा है। विकल्प, वह मेरा नहीं और उसके आकार का ज्ञान—वह आकार भी मेरा नहीं, परन्तु उस सम्बन्ध का ज्ञान है, वह मेरा है। वह सर्वथा शून्य है, ऐसा मानता नहीं। समझ में आया?

पार्श्वनाथ की विशाल टोंक देखे, लो! चौबीस टोंक और उनके विशाल चरण तैरते हैं न इतने विशाल। यहाँ शत्रुंजय में हैं न? थांभली नीचे है? क्या है? नीम के नीचे? भगवान के विशाल चरण नहीं? ऋषभदेव भगवान के। राड का वृक्ष। राड का वृक्ष नहीं?

मुमुक्षु : वह तो भगवान के समय से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के समय का कहाँ से होगा? ऐसी गप्प मारते हैं। उस क्षेत्र से लाभ हो, ऐसा कहते हैं, उस क्षेत्र को देखे तो लाभ होता है। धूल में भी नहीं, सुन न! सिद्धक्षेत्र भी वह तो वहाँ रहा। सिद्धक्षेत्र तो यहाँ है।

पर्याय में निर्मलता प्रगट हो; उस क्षेत्र को जानने से एक शुभविकल्प आया, वह भी कहीं निर्मल नहीं है, उसके आकार ज्ञान हुआ, उसे अपनी पर्याय ज्ञान के लक्ष्य से उसे जाने तो उसे निर्मलता और सम्यग्ज्ञान हुआ। समझ में आया? परलक्ष्य से जो ज्ञान पराकार हुआ, वह भी वास्तविक उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! परक्षेत्र के सम्बन्ध में अपने से राग हुआ, वह भी उसका—वस्तु का स्वरूप नहीं है, वह पर का हुआ नहीं। परक्षेत्र के सम्बन्ध के काल में परक्षेत्र के आकार ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई, वह भी इतना ही आत्मा नहीं। वह ज्ञान की पर्याय स्वज्ञाता के लक्ष्य से जो ज्ञानपर्याय परिणमती है, उसमें जो पराकार ज्ञात हो, उतनी पर्याय मेरा धर्म है, द्रव्य धर्म, उससे भिन्न है। ऐसी दृष्टि हो उसे पर्याय में धर्म होता है, वरना उसे धर्म नहीं होता। ओहोहो! ओहोहो! इसमें जवाबदारी कितनी? वे कहे, भाई! पूरे दिन भगवान की भक्ति करो। शुभभाव है, वह कहीं धर्म है नहीं। सम्मेदशिखर देखकर जन्म-मरण का नाश हो (—ऐसा नहीं)।

मुमुक्षु : धर्म कहो तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहे परन्तु? ऐसे सम्मेदशिखर देखे, वहाँ आ...हा...! (हो जाये)। एक व्यक्ति ने कहा न? सम्मेदशिखर के दर्शन करे, उसे ४९ भव हों, ऐसा

सम्मेदशिखर के माहात्म्य में लिखा है। कहा, परद्रव्य के लक्ष्य से भव घटते हैं, यह भगवान की वाणी नहीं। जिसमें भव नहीं, ऐसा आत्मभाव दिखाई दे, उसे भव का अभाव होता है। समझ में आया? लाख सम्मेदशिखर और लाख-करोड़ समवसरण देखे, साक्षात् भगवान के समवसरण अनन्त बार देखे, इससे भव का अभाव नहीं होता। वह तो उस क्षेत्र का ज्ञान किया। वह तो ज्ञान की पर्याय है। उसमें फिर राग किया, वह तो शुभभाव है। समझ में आया?

कितने ही ऐसा कहते हैं, समवसरण में प्रविष्ठ हों उसे सम्यग्दर्शन होता ही है, यह क्षेत्र की महिमा है। ऐसा होगा? समवसरण में आहाहा! भगवान का समवसरण! कितने इन्द्र! उसमें जाये उसे सम्यग्दर्शन होता है। भगवान के क्षेत्र में तो बैठे हो। साधु मश्करी (की)। वह पारसनाथ (की परम्परा) का साधु था या नहीं? उसे गणधरपद चाहिए था। आता है न? जहाँ ध्वनि निकली। गौतम गणधर हुए। अरे! यह वे कैसे? यह तो बोलते नहीं, वहाँ तो बोलते नहीं, हों! परन्तु वहाँ इस जाति का विकल्प नहीं होता। बाहर निकला और ऐसा कहे कि यह भगवान केवली नहीं हैं। सर्वज्ञ हो तो मैं पहले से बड़ा हूँ, उसे पद देना चाहिए। उसके बदले इन्हें (गौतम को) पद दिया, लो! वह मिथ्यादृष्टि। वेद का जाननेवाला एक क्षण में हो गया गणधर के योग्य? गृहीत मिथ्यादृष्टि। और हम तो यहाँ पहले से नग्न दिगम्बर साधु (हैं)। उसे बड़ी पदवी (दी)। परन्तु अब पदवी उस पर्याय की योग्यता से आती होगी, कहीं पर के कारण आती होगी? उड़ाया कि भगवान सर्वज्ञ नहीं लगते। सर्वज्ञ हों तो उन्हें मेरी कद्र होनी चाहिए। कहो! यह कद्र के जाननेवाले! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि वे सब समवसरण के क्षेत्र भी अनन्त बार देखे। उस क्षेत्र के आकार ज्ञान की पर्याय परिणमे। इतनी पर्याय मेरी। वह राग भी नहीं, क्षेत्र भी नहीं। क्षेत्र के आकार पर्याय (हुई)। क्षेत्र का आकार भी मेरा नहीं। वह ज्ञान की पर्याय मुझसे स्व लक्ष्य से ज्ञान में से हुई है, ऐसी दृष्टि करे तो अनेकान्त दृष्टिवाला स्याद्वादी कहने में आता है। आहाहा! कितनी शर्तें इसमें! समझ में आया? भीखाभाई!

सर्वथा शून्य है—ऐसा.... अनुभवता नहीं। भगवान आत्मा पर के क्षेत्र सम्बन्धी

के आकार जानते हुए उन आकारों को लक्ष्य में से छोड़ देता है परन्तु उस सम्बन्धी के ज्ञान को छोड़ता नहीं। इसलिए वह ज्ञान पर्याय सहित के द्रव्य को अनुभवता है, द्रव्य के लक्ष्य से ज्ञान को अनुभवता है।

ज्ञानवस्तु ज्ञेय के क्षेत्र को जानती है;... ज्ञानवस्तु ज्ञेय के क्षेत्र को जानती है; ज्ञेयक्षेत्ररूप नहीं है, ज्ञेयक्षेत्ररूप नहीं है—ऐसा मानता है। समझ में आया? ज्ञेय के क्षेत्ररूप नहीं, ऐसा स्याद्वादी मानता है। वह ज्ञेय का क्षेत्र नहीं, वह मेरा क्षेत्र है। **कैसा है स्याद्वादी? 'त्यक्तार्थः अपि' ज्ञेयक्षेत्र की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान—ऐसा मानता है, तो भी....** क्या कहते हैं? **'त्यक्तार्थः अपि'** वह पर के अर्थ का आकार छोड़ता है, तथापि **ज्ञेयक्षेत्र की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान—ऐसा मानता है, तो भी ज्ञान अपने क्षेत्ररूप है—ऐसा मानता है।** परक्षेत्र के आकारों को लक्ष्य में से छोड़ता है, तो भी अपने स्वक्षेत्र में परक्षेत्र सम्बन्धी के ज्ञान की पर्याय को छोड़ता नहीं।

और कैसा है स्याद्वादी? 'स्वधामनि वसन्' 'स्वधामनि वसन्' ज्ञानवस्तु अपने प्रदेशों में है,... स्वधाम में है। देखो! असंख्य प्रदेश में ही मेरा ज्ञान है। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा भी कहते हैं कि ज्ञान ऐसे बड़ा, लम्बा हो जाये तो ज्ञान बड़ा कहलाये, ऐसा बड़ा लम्बा ऐसे-ऐसे हो जाये तो बड़ा कहलाये, ऐसा भी नहीं है और परक्षेत्र बड़े ज्ञात हों, इसलिए ज्ञान का क्षेत्र असंख्य प्रदेश छोड़कर बड़ा लम्बा हो जाता है, ऐसा भी नहीं है। **'स्वधामनि वसन्' ज्ञानवस्तु अपने प्रदेशों में है,...** असंख्य प्रदेश में ही बसता है **ऐसा अनुभवता है।** सम्यग्दृष्टि अपने क्षेत्र में ज्ञान की पर्याय पराकार को छोड़ने पर भी उस सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय मेरे स्वक्षेत्र में है। स्वक्षेत्र में पर की नास्ति है और स्वक्षेत्र में अपने ज्ञान की अस्ति है।

'परक्षेत्रे नास्तितां विदन्' ज्ञेयवस्तु की आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान, उसमें नास्तिपना मानता है... लो! **अर्थात् जानता है तो जानो, तथापि एतावन्मात्र (एकमात्र) ज्ञान का क्षेत्र नहीं है,....** पर को जानना हो तो जानने की पर्याय धर्म है। परक्षेत्र के अनेक आकार जाने, जानो परन्तु **ज्ञान का क्षेत्र (वह) नहीं है, ऐसा मानता है स्याद्वादी। और कैसा है? 'परात् आकारकर्षी' परक्षेत्र की आकृतिरूप परिणमी है ज्ञान की पर्याय,....** परक्षेत्र की आकृतिरूप परिणमी है पर्याय, **उससे भिन्नरूप से ज्ञानवस्तु के**

प्रदेशों का अनुभव करने में समर्थ है;.... 'परात् आकारकर्षी' अर्थात् पर का जो आकार है, वहाँ से खींचा है परन्तु अपनी पर्याय अपने में रखी है।

परक्षेत्र की आकृतिरूप परिणमी है ज्ञान की पर्याय, उससे भिन्नरूप से ज्ञानवस्तु के प्रदेशों का अनुभव करने में समर्थ है;.... पर के क्षेत्र से अपना क्षेत्र भिन्न है, ऐसा अपने स्वक्षेत्र में दृष्टि करके ज्ञान की पर्याय को स्वक्षेत्र में अनुभव करता है। **इसलिए स्याद्वाद वस्तुस्वरूप का साधक;....** है। लो! रागादि और निमित्त आदि साधकपना नहीं, ऐसा कहते हैं। ज्ञान की पर्याय अपनी है। पर के आकार को छोड़ती है और अपने में आती है, ऐसा जो अपने से अस्ति है, ऐसे पर से नास्ति है, ऐसा जो ज्ञान, वह वस्तु को साधता है। उसे साधकपना होकर सिद्धपद होता है। कहो, समझ में आया इसमें? **स्याद्वाद वस्तुस्वरूप का साधक; एकान्तपना वस्तुस्वरूप का घातक।** लो! परक्षेत्र को देखने से मुझे मेरी अशुद्धता हो गयी, ऐसा जो मानता है, वह घातक है। उसकी दृष्टि विपरीत है। अपने क्षेत्र में रहकर परक्षेत्र को जानता है। ऐसा स्वक्षेत्र के आश्रय से दृष्टि करके जो अनुभवता है, वह उसी वस्तु को साध सकता है। **इस कारण, स्याद्वाद उपादेय है।** लो! इस कारण से स्याद्वाद आदरणीय है।

आठ बोल हुए। अब नौवाँ बोल स्वकाल से अस्ति, नौवाँ—स्वकाल से अस्ति।

कलश - २५६

(शार्दूलविक्रीडित)

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किञ्चिनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ।।१०-२५६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तु को पर्यायमात्र मानता है; द्रव्यरूप नहीं मानता है। तिस कारण, ज्ञेयवस्तु के अतीत अनागत वर्तमान कालसम्बन्धी अनेक अवस्थाभेद हैं, उनको जानते हुए, ज्ञान के पर्यायरूप अनेक अवस्थाभेद होते हैं। उनमें ज्ञेयसम्बन्धी पहला अवस्थाभेद विनशता है। उस अवस्थाभेद के विनाश होने पर, उसकी आकृतिरूप परिणमा ज्ञानपर्याय का अवस्थाभेद भी विनशता है। उसके— अवस्थाभेद के विनाश होने पर, एकान्तवादी मूल से ज्ञानवस्तु का विनाश मानता है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु, अवस्थाभेद द्वारा विनशती है; द्रव्यरूप से विचारने पर, अपना जानपनारूप अवस्था द्वारा शाश्वत है; न उपजती है, न विनशती है—ऐसा समाधान, स्याद्वादी करता है। यही कहते हैं— 'पशुः सीदति एव' [पशुः] एकान्तवादी, [सीदति] वस्तु के स्वरूप को साधने के लिए, भ्रष्ट है। [एव] अवश्य ऐसा है। कैसा है एकान्तवादी? 'अत्यन्ततुच्छः' वस्तु के अस्तित्व के ज्ञान से, अति ही शून्य है। और कैसा है? 'न किञ्चन अपि कलयन्' [न किञ्चन] ज्ञेय-अवस्था का जानपनामात्र, ज्ञान है; उससे भिन्न, कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है; [अपि] अंशमात्र भी नहीं है—[कलयन्]—ऐसी अनुभवरूप प्रतीति करता है। और कैसा है? 'पूर्वालम्बित-बोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्' [पूर्व] किसी पहले अवसर में [आलम्बित] जानकर, उसकी आकृतिरूप हुई जो [बोध्य] ज्ञेयाकार ज्ञानपर्याय, उसके [नाशसमये] विनाशसम्बन्धी किसी अन्य अवसर में, [ज्ञानस्य] ज्ञानमात्र जीववस्तु का [नाशं विदन्] नाश मानता है—ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव। उसको स्याद्वादी सम्बोधन करता है— 'पुनः स्याद्वादवेदी पूर्णः तिष्ठति' [पुनः] एकान्तदृष्टि जिस प्रकार

कहता है, उस प्रकार नहीं है; स्याद्वादी जिस प्रकार मानता है, उस प्रकार है। [स्याद्वादवेदी] अनेकान्त अनुभवशील जीव, [पूर्णः तिष्ठति] त्रिकालगोचर ज्ञानमात्र जीववस्तु—ऐसा अनुभव करता हुआ, उस पर दृढ़ है। कैसा है दृढ़ है? 'बाह्यवस्तुषु मुहुः भूत्वा विनश्यत्सु अपि' [बाह्यवस्तुषु] समस्त ज्ञेय अथवा ज्ञेयाकार परिणमे ज्ञानपर्याय के अनेक भेद, सो वे [मुहुः भूत्वा] अनेक पर्यायरूप होते हैं, [विनश्यत्सु अपि] अनेक बार विनाश को प्राप्त होते हैं, तो भी दृढ़ रहता है। और कैसा है? 'अस्य निजकालतः अस्तित्वं कलयन्' [अस्य] ज्ञानमात्र जीववस्तु का [निजकालतः] त्रिकाल शाश्वत ज्ञानमात्र अवस्था से, [अस्तित्वं कलयन्] वस्तुपना अथवा अस्तिपना, अनुभवता है स्याद्वादी जीव।।१०-२५६।।

कलश - २५६ पर प्रवचन

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किञ्चिनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ।।१०-२५६।।

पर्याय भले भिन्न हो, परन्तु त्रिकाल..... **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तु को पर्यायमात्र मानता है; द्रव्यरूप नहीं मानता है।** पहले से अलग प्रकार से है। सबमें दो बोल ऐसे ही लिये हैं, भाई! पर्यायरूप मानता है। इसमें कहेंगे कि समय-समय की पर्याय को मानता है, त्रिकाली द्रव्य को मानता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समय-समय की पर्याय को मानता है, इसका अर्थ कि जो पर्याय है, उसके ऊपर जब लक्ष्य है तो उस समय की पर्यायसहित द्रव्य को मानता है परन्तु एक समय की अवस्था में पूर्वलम्बित जो है, वह अवस्था बदली, साथ में मैं पूरा बदल गया और वस्तु यहाँ रही नहीं, (ऐसा मानता है), तो वह परावलम्बी अपनी पर्याय को पर के कारण पर्याय हुई मानता है। मेरी ज्ञान वस्तु त्रिकाल है, उसके कारण वर्तमान पर्याय होती है, ऐसा नहीं मानता। नयी-नयी पर्याय होने में मेरा ज्ञान त्रिकाल है, उसके कारण होती है। परन्तु जिस ज्ञान अवस्था में पर ज्ञात हो, वह अवस्था पलटी, वह

अवस्था पलटी, वह पलटने पर यह पूरा पलट जाता है, ऐसा मानकर पर से अपना अस्तित्व मानता है। परकाल से अपनी अस्ति मानता है। समझ में आया ? वह पर्यायरूप मानता है, परकाल से अपना अस्तित्व मानता है, द्रव्यरूप से मानता नहीं।

तिस कारण, ज्ञेयवस्तु के.... अब ज्ञेय—जानने की वस्तु है न सामने ? **अतीत अनागत वर्तमान कालसम्बन्धी अनेक अवस्थाभेद हैं,....** सामने... सामने। **उनको जानते हुए,....** परवस्तु के भूत, भविष्य, वर्तमान पर्याय को जानते हुए **ज्ञान के पर्यायरूप अनेक अवस्थाभेद होते हैं।** ज्ञान में अवस्थारूप से अनेक दशा भेद होते हैं। **उनमें ज्ञेयसम्बन्धी पहला अवस्थाभेद विनशता है।** ज्ञान की दशा में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय की अवस्था का जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञेय अवस्था बदलने से यहाँ भी बदल जाता है।

ज्ञेय सम्बन्धी पहला अवस्थाभेद विनशता है। उस अवस्थाभेद के विनाश होने पर उसकी आकृतिरूप परिणमा ज्ञान पर्याय का अवस्थाभेद भी विनशता है... यहाँ भी पर्याय बदल जाती है। ज्ञान की वर्तमान पर्याय में जैसे सामने पर्याय है, तत्प्रमाण ज्ञान हो। वह जहाँ बदला तो यहाँ भी यह पर्याय बदल जाती है। उसके (अपने) कारण से बदलने पर मानो यह पर्याय उसके (ज्ञेय के) कारण से बदल गयी, (ऐसा मानता है)। समझ में आया ? पानी का ऐसे लोढ आया, पानी का लोढ ऐसा ज्ञान में (आया), वह लोढ ज्ञानपर्याय में आया। पश्चात् वह लोढ समा गया। तो उस प्रकार का ज्ञान भी समा गया। उसे समाने से मेरी ज्ञानपर्याय भी समा गयी, नाश हो गयी, (ऐसा मानता है)। समझ में आया ?

उस अवस्थाभेद के विनाश होने पर उसकी आकृतिरूप परिणमा ज्ञानपर्याय का अवस्थाभेद भी विनशता है... जिस ज्ञान की वर्तमान दशा में सामने जड़ पदार्थ की भूत, भविष्य और वर्तमान की अवस्था वर्तमान ज्ञान में ख्याल में आयी। अब वही अवस्था वर्तमान थी, वहाँ भूत हो गयी, भविष्य में थी, वह यहाँ वर्तमान आयी। ऐसे ज्ञान में ज्ञात हुआ। वह अवस्था जहाँ बदली, वहाँ ज्ञान भी साथ में बदला। इसलिए मानो मैं उसके साथ मैं बह गया। वह अवस्था बहने से, जाने से मैं भी साथ में बह गया। ऐसे ज्ञान की अवस्था ज्ञाता-दृष्टा के लक्ष्य से हुई अवस्था है, उसके (ज्ञेय के) लक्ष्य से

हुई नहीं—ऐसा वह मानता नहीं। समझ में आया? **ज्ञानपर्याय का अवस्थाभेद भी विनशता है। उसके—अवस्थाभेद के विनाश होने पर, एकान्तवादी मूल से ज्ञानवस्तु का विनाश मानता है।** मेरी पर्याय जाने से ज्ञान रहा नहीं, ज्ञान ही नहीं रहा। समझ में आया?

उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु, अवस्थाभेद द्वारा विनशती है;.... देखो! भाई! जरा सा (ध्यान) देना! **ज्ञानवस्तु, अवस्थाभेद द्वारा विनशती है; द्रव्यरूप से विचारने पर, अपना जानपनारूप अवस्था द्वारा शाश्वत् है;....** अवस्था अर्थात् त्रिकाल। द्रव्यरूप से विचारने पर वस्तु ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... **अपना जानपनारूप अवस्था द्वारा...** त्रिकाल द्वारा **शाश्वत् है;....** उस समय की पर्याय पर के लक्ष्य से उपजती-विनशती है, तथापि वस्तु तो कायम है। वस्तु के कायम की यह पर्याय परिणमती है, उसका लक्ष्य उसे नहीं है। **न उपजती है, न विनशती है—ऐसा समाधान, स्याद्वादी करता है।** अनेकान्त दृष्टिवाला मानता है कि भाई! जो पर के प्रवाहवाली पर्याय तेरे ज्ञान में ज्ञात हुई, उस काल में, हों! उस काल में, ओहो! देखो न! स्वकाल में अपनी पर्याय की अस्ति, परकाल की पर्याय की नास्ति। उसमें कुछ होता नहीं, ऐसा आया।

मुमुक्षु : स्वतन्त्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र ही है। अपनी एक समय की पर्याय जो है, किसी भी द्रव्य की, उसका स्वकाल का जो अंश है, उस काल में वह ही अंश उस पारिणामिकभाव का स्वत: स्व से है, पर से नहीं। समझ में आया? किसी भी द्रव्य की स्वकाल की पर्याय, यहाँ ज्ञान की पर्याय कहनी है। ऐसी ही ज्ञानगुण की पर्याय उस समय में सामने अवस्था के प्रकार से स्वयं परिणमती पर्याय (होती है)। वह उसके कारण से नहीं, उसके पलटने से यह पलटा, वह उसके कारण से नहीं। उसका अंश जो अपना अंश स्वकाल का था, वह दूसरे काल में दूसरा अंश हुआ। वह भी अपना अंश स्वतन्त्र पर के निमित्त बिना और स्वयं के कारण से होता है। आहाहा! अरे! समझ में आया?

भगवान आत्मा जितने गुण हैं, उनका एक समय का जितनी स्वकाल की पर्याय

है, उस पर्याय का वह स्वकाल ही उतना है उसका। वास्तव में तो निमित्त से तो नहीं, पूर्व के कारण से भी नहीं, द्रव्य कारण भी नहीं। वह अपना उस प्रकार का स्वकाल का सत् है। उस उस द्रव्य-गुण का, उस पर्याय का एक समय का उसका स्व, स्वसत् है, स्वत: सत् है। वही उसका स्वकाल है। समझ में आया? उस परकाल के कारण माननेवाले (हों उन्हें) कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी है। यह स्वकाल के अंश की अपने में अस्ति है, उसे नहीं मानते।

मुमुक्षु : स्वकाल और परकाल दोनों से माने तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दो हों किस प्रकार? यह और विशेष अब कल आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक-१८-१२-१९६५, कलश-२५६, प्रवचन-२७३

स्याद्वाद अधिकार। समयसार कलश चलता है। देखो! दसवाँ, दसवाँ है न? फिर से देखो! क्या कहते हैं? भावार्थ। इसमें यह कहना है, वह थोड़ा पहले कहते हैं—उपोद्घात करते हैं। **कोई मिथ्यादृष्टि जीव....** जिसकी दृष्टि विपरीत है, ऐसा जीव। विपरीत है, ऐसा जीव। **ऐसा है जो वस्तु को पर्यायमात्र मानता है,....** आत्मा भगवान त्रिकाल द्रव्यस्वरूप है और वर्तमान पर्याय द्रव्य के लक्ष्य से, द्रव्य से होती है—ऐसा नहीं मानकर, वह द्रव्य अर्थात् आत्मा, उसकी पर्याय (उसे) निमित्त जो अवलम्बन है, उससे मेरी पर्याय उत्पन्न होती है, (ऐसा मानता है)। समझ में आया? कहो, इसमें क्या मिथ्यात्व आया?

वस्तु को पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता है। इसका अर्थ करेंगे। पर्याय के दो अर्थ करेंगे। बाह्य वस्तु है न अन्त में? भाई! बाह्य वस्तु। **समस्त ज्ञेय अथवा ज्ञेयाकार परिणमे ज्ञानपर्याय के....** उसे बाह्य वस्तु कही है। बाह्य वस्तु की व्याख्या दो की है। क्या कहते हैं? समझ में आया? यह तो जरा सूक्ष्म बात है और उसमें हिन्दी। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण अनन्त गुण सम्पन्न पदार्थ है। उसमें ज्ञानगुण भी त्रिकाल गुण है। उस ज्ञानगुण की वर्तमान पर्याय जो अवस्था होती है, यह अज्ञानी मानता है कि उस अवस्था जितना आत्मा है। एक बात। समझ में आया? अथवा वह अवस्था वर्तमान जो ज्ञान की अवस्था होती है, उसका निमित्त अवलम्बन पर है। क्या (कहा)? वर्तमान जो ज्ञान की पर्याय होती है, उसमें परपदार्थ अवलम्बन, निमित्त है। तो निमित्त की पर्याय पलटती है तो मेरी पर्याय भी उसके कारण से पलट गयी, मेरी अवस्था मुझमें रही नहीं। यह सूक्ष्म बात है। प्रभुदासभाई! समझ में आया?

वस्तु अर्थात् भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द पूर्ण वस्तु है और एक समय में उसकी ज्ञान की अवस्था है, परन्तु उस अवस्था को मानता है... अर्थात् वह अवस्था जो सामने ज्ञेय की अवस्था है, जाननेयोग्य पदार्थ की जो वर्तमान अवस्था है, वह अवस्था वर्तमान ज्ञान अवस्था में अवलम्बन है। अवलम्बन अर्थात् निमित्त है। भाई! 'अवलम्बन'

शब्द है न? ऐ! अवलम्बन का अर्थ निमित्त किया है न तुमने? कहाँ? नहीं किया? अवलम्ब कर अर्थात् निमित्त होता है। यह तो ऐसा ही है न। यह अवलम्बन यहाँ और अभी अन्त में याद आया। मैंने कहा, वह अवलम्बन कहा है, ऐसा करके याद आया, अभी वहाँ पाट पर याद आया। क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है।

यह वस्तु आत्मा एक समय में पूर्ण द्रव्य है और उसकी एक समय की पर्याय है। वह अनन्त गुण की जो एक समय की पर्याय है, उसमें यहाँ ज्ञान—प्रधानता से बात ली है। ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, वह स्वयं के द्रव्य के लक्ष्य से और द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। उसका लक्ष्य द्रव्य पर नहीं है। वर्तमान ज्ञान की अवस्था निमित्त जैसी अवस्था है, वैसा अवलम्बन ज्ञान में हुआ तो उस निमित्त-अवस्था से मेरी पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया?

देखो! सामने यह अक्षर है या नहीं? ज्ञान की पर्याय में ये अवलम्बन / निमित्त है। अक्षर जैसे पलटते हैं, अक्षर पर नजर जाती है, फेरफार (दिखता है), वह ज्ञेय लक्ष्य में पलटता है, ऐसे पर्याय भी पलटती है। अज्ञानी का लक्ष्य, ज्ञान की पर्याय में अवलम्बनरूप परपदार्थ निमित्त-पर की वर्तमान अवस्था पर उसका लक्ष्य है। वह परपदार्थ जो अवलम्बन (भूत) है, उससे मेरी पर्याय उत्पन्न हुई—ऐसा अज्ञानी (कि जिसे) परद्रव्य का लक्ष्य नहीं, त्रिकाल द्रव्य ही वर्तमान पर्यायरूप परिणमता है, ऐसा नहीं मानकर निमित्त के अवलम्बन से परिणमता है तो निमित्त जब पलटता है तो उस समय में भी उसके कारण से पलट गया। मैं द्रव्य के कारण से पलटा, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया? देखो, यह आयेगा, हों! यहाँ तो उसका उपोद्घात करते हैं।

वस्तु को पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता.... मैं वस्तु ज्ञायक त्रिकाल हूँ, ऐसा नहीं मानता। यदि ऐसा माने तो उसकी वर्तमान पर्याय द्रव्य से वर्तमान होती है और दूसरे समय में पलटती है, तो भी द्रव्य से पलटकर दूसरे समय में पलटकर दूसरी होती है। ऐसा अज्ञानी नहीं मानता, वह वर्तमान पर्याय में वर्तमान सामने निमित्त देखकर उससे मेरी (पर्याय) उत्पन्न हुई है, (ऐसा मानता है)। यहाँ से उत्पन्न नहीं हुई, वहाँ से उत्पन्न हुई है। निमित्त से उत्पन्न हुई है, उसका अभी बड़ा विवाद है। और निमित्त की

अवस्था पलटने से मैं भी उसके कारण से (पलट गया), लक्ष्य वहाँ था न? तो उसके पलटने से मेरी पर्याय उसके कारण से पलट गयी, मेरा अभाव हो गया, मेरा अभाव हो गया। मैं द्रव्यरूप त्रिकाल हूँ तो मेरी अवस्था मेरे कारण से पलटी है। दूसरे समय में भी निमित्त के कारण से नहीं परन्तु मेरा परिणमन स्वभाव है तो द्रव्य के लक्ष्य से मेरी पर्याय वर्तमान परिणमती है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। जुगराजजी! आहाहा! इसमें धर्म-अधर्म कहीं बाहर से नहीं होता है।

अपनी चीज़ जो अनन्त गुण की चीज़-पिण्ड है, उसकी वर्तमान पर्याय / अवस्था, वस्तु के सामने जो निमित्त, जैसा जितना है, वैसा अवलम्बन-निमित्त ज्ञान की पर्याय में आया। वह निमित्त है तो ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। परन्तु जिसका निमित्त पर ही लक्ष्य है, स्वद्रव्य पर लक्ष्य नहीं है, तो निमित्त के ऊपर लक्ष्य है तो निमित्त जहाँ पलटता है, तो अपनी अवस्था भी पलटती है, तो निमित्त जहाँ पलटा तो उसके कारण मेरी अवस्था भी पलट गयी, उसके कारण से पलट गयी। ज्ञानस्वभाव से मैं पलटनेवाला हूँ, ऐसी दृष्टि अज्ञानी की नहीं है। समझ में आया? भाई! बात तो जो है, वह आती है। स्थूल कितना करना इसमें?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु ध्रुव, उसकी वर्तमान ज्ञान की अवस्था—हालत में जो सामने चीज़ है, उसकी अवस्था—वर्तमान अवस्था का निमित्त, सामने चीज़ की वर्तमान अवस्था निमित्त है। अब वह अवस्था जहाँ पलटी, ऐसे (पदार्थ पर) लक्ष्य है, वह ऐसे पलटा वहाँ ज्ञान भी पलटा, ज्ञान पलटा न? तो अज्ञानी का लक्ष्य वहाँ ही है कि यह अवस्था पलटी, इसीलिए इसके कारण मेरी दशा पलट गयी। मेरी ज्ञान अवस्था मेरी है, ऐसा रहा नहीं। उसके कारण से हुई थी और उसके पलटने से मेरी अवस्था चली गयी। समझ में आया? इसका नाम अधर्मदृष्टि है। समझ में आया? स्वकाल में अस्ति से पर काल में अस्ति माननेवाले की बात पहले करते हैं। भंग तो स्वकाल से अस्ति (का है)। आत्मा अपने निज काल में अपनी अवस्था से है, ऐसा सिद्ध करना है। उससे पहले अज्ञानी पर की अवस्था से अपनी अवस्था मानता है, उसका दूषण दिखलाते हैं। कहो, क्या चलता है यह? कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा अपनी वस्तु को पर्यायमात्र मानता है। एक समयमात्र मानता है अथवा उस पर्याय में जो ज्ञेय का निमित्त है, उस ज्ञेयाकाररूप मेरा परिणमन उसके कारण से हुआ है, ऐसा मानता है। समझ में आया? भाई! यह तो वीतराग का अनेकान्त मार्ग है। बहुत सूक्ष्म मार्ग है। पर्याय का परिणमन द्रव्य के लक्ष्य से अथवा द्रव्य से होता है। द्रव्य से वर्तमान पर्याय होती है। निमित्तरूप अवलम्बन से नहीं होती। निमित्त से पर्याय होती है, ऐसा माननेवाला अपनी पर्याय का अस्तित्व द्रव्य के कारण से है, ऐसा नहीं मानता। निमित्त के अवलम्बन से वह पर्याय हुई। अवलम्बन पलटने से मेरी पर्याय गयी, उसके कारण गयी (ऐसा मानता है)। मेरा अंशी तत्त्व है, उसके परिणमन से पलटा हुआ है, नयी अवस्था हुई है—ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बातें, भाई!

किस कारण से? **ज्ञेय वस्तु के....** ज्ञात होनेयोग्य वस्तु के। ज्ञात होनेयोग्य वस्तु जो है न? जाननेयोग्य। **अतीत अनागत वर्तमान काल सम्बन्धी....** जो पदार्थ जाननेयोग्य है, ज्ञान में जाननेयोग्य है, उनकी गतकाल की पर्याय, वर्तमान अवस्था (और) भविष्य (की अवस्था होती है), वह **अवस्थाभेद है...** वस्तु के ज्ञेय के अवस्था भेद हैं। भूत-वर्तमान और भविष्य। उस ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ के तीन काल के अवस्था भेद हैं। भूतकाल—गत काल की अवस्था, वर्तमान अवस्था और भविष्य। ऐसे **ज्ञेय वस्तु के अतीत अनागत वर्तमान काल सम्बन्धी अनेक अवस्थाभेद हैं, उनको जानते हुए....** देखो! ज्ञात होनेयोग्य जो पदार्थ, (उसकी) भूतकाल की अवस्था अर्थात् गत काल की अवस्था, वर्तमान और भविष्य। **उनको जानते हुए ज्ञान के पर्यायरूप अनेक अवस्थाभेद होते हैं।** अपनी ज्ञानदशा में जितनी वर्तमान सामने निमित्त-अवलम्बन भूत-वर्तमान-भविष्य की पर्याय है, उसे जानते समय अपने उतने जानने की पर्याय के भेद अपने से होते हैं।

उनमें ज्ञेय सम्बन्धी पहला अवस्था भेद विनशता है। अपनी ज्ञान अवस्था में ज्ञेय सम्बन्धी जानने में आया कि यह भगवान सीमन्धर प्रभु हैं। ऐसा लक्ष्य में आया। अपने ठेठ लेवें न! समझ में आया? भगवान के मस्तक पर नजर—ज्ञान की पर्याय है। सुनो!

ज्ञान की पर्याय में उनके मस्तक पर लक्ष्य है, तो वह मस्तक ज्ञान की पर्याय में अवलम्बन हुआ। समझ में आया? वह लक्ष्य जहाँ छूटा और जहाँ नीचे नजर गयी तो नीचे का दूसरा ज्ञान हुआ। समझ में आया? वहाँ भी दूसरा निमित्त हुआ। (पहले) मस्तक था। वह निमित्त दूसरा हुआ तो अवलम्बन में दूसरा निमित्त हुआ तो ज्ञान की पर्याय भी दूसरी हुई। अज्ञानी को ऐसा भासित होता है कि उसके कारण हुई थी, वह पलट गया तो मेरी पर्याय चली गयी। समझ में आया? ओहो! गजब! भगवान को देखने से ज्ञान की पर्याय नहीं होती, ऐसा कहते हैं। यह किसकी बात चलती है?

जैनशासन सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर सर्वज्ञदेव सौ इन्द्र के मध्य में सभा में भगवान दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहते थे। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य महाराज २००० वर्ष पहले यहाँ भरतक्षेत्र में हुए। दिगम्बर सन्त महामुनि, भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। दिगम्बर सन्त। वहाँ जाकर आये और आकर यह समयसार बनाया। भगवान ऐसा कहते हैं, ऐसा हम जानते हैं, ऐसा हम मानते हैं और ऐसा हम कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञेय सम्बन्धी पहला अवस्थाभेद विनशता है। पहले सीमन्धर भगवान का लक्ष्य आया, दूसरा लक्ष्य पद्मप्रभु का आया। ऐसा लो। तीसरा लक्ष्य शान्तिनाथ भगवान का आया। तीन भगवान हैं न? **ज्ञेय सम्बन्धी पहला अवस्थाभेद विनशता है। उस अवस्थाभेद के विनाश होने पर उसकी आकृतिरूप परिणमा ज्ञान पर्याय....** ज्ञान पर्याय में जो आकृति (हुई)। जिस प्रकार का निमित्त, उस प्रकार का ज्ञान अपना अपने से हुआ है। निमित्त की अवस्था पलटी, लक्ष्य वहाँ गया तो इस ज्ञान की पर्याय का अवस्था भेद भी विनशता है। **उसके—अवस्थाभेद के विनाश होने पर एकान्तवादी मूल से ज्ञान वस्तु का विनाश मानता है।** अरे! मेरी पर्याय उसके आश्रय से थी, वह आश्रय गया तो मेरी पर्याय भी चली गयी। मेरा आश्रय ज्ञान था—त्रिकाल ज्ञान था, उसके आश्रय से पर्याय थी तो उसके आश्रय से पलटी और उसके आश्रय से (नयी पर्याय) आयी, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया? ओहो! देखो! यह मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि के इतने लक्षणभेद हैं।

मूल से ज्ञान वस्तु का विनाश मानता है। भगवान आत्मा अपनी ज्ञान अवस्था में ज्ञेय जिस प्रकार का अवलम्बन भूतकाल की अवस्था लक्ष्य में आयी, वह चली गयी। वर्तमान अवस्था लक्ष्य में आयी, वह चली गयी। और तीसरी आवे, तो जैसी अवस्था लक्ष्य में आती है, वैसे ज्ञान भी पलटता है। अवस्था पलटने पर—पर की अवस्था पलटने पर मेरी ज्ञान की अवस्था भी उसके पलटने पर पलट गयी, क्योंकि वह निमित्त से हुई है, ऐसा माना था। तो निमित्त पलटने पर मेरी पर्याय भी पलट गयी परन्तु मेरा शुद्ध स्वभाव ज्ञायकमूर्ति है, उसके कारण मेरी पर्याय मेरे कारण से उत्पन्न हुई थी, भले उसका ज्ञेयाकार परिणमन हुआ और दूसरे समय भी मेरा ज्ञायकस्वभाव है, उसके कारण से मेरी दूसरी नयी पर्याय उत्पन्न हुई, पुरानी का व्यय हुआ। ऐसा जिसका स्वद्रव्य के ऊपर लक्ष्य, रुचि नहीं है, निमित्त के ऊपर लक्ष्य रुचि ध्येय है, वह निमित्त पलटने पर अपनी ज्ञान की पर्याय का सर्वस्व इतना ही माननेवाला ज्ञान की अवस्था का नाश हुआ, ऐसा मानता है। जमुभाई! एक तो हिन्दी, वह भी और ऐसा। इसमें क्या समझना? आहाहा!

लोगों को तत्त्व का अभ्यास (नहीं है)। वस्तु क्या है और कैसे है— उसकी खबर नहीं है। धर्म कहाँ से होता है? धर्म बाहर से होता है? अपना शुद्धस्वरूप अन्तर ज्ञायकमूर्ति है, उसके लक्ष्य से जो पर्याय होती है, उस पर्याय का नाम धर्मपर्याय कहने में आता है। इसका लक्ष्य छोड़कर पर—निमित्त की पर्याय के लक्ष्य से मेरी पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसी मान्यता, वह अधर्म पर्याय—मिथ्यात्व पर्याय है। समझ में आया?

उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञानवस्तु अवस्थाभेद द्वारा विनशती है,... ज्ञानवस्तु तो त्रिकाल है। वह अवस्था भेद द्वारा विनशती है परन्तु **द्रव्यरूप से विचारने पर अपना जानपनारूप अवस्था द्वारा शाश्वत् है,...** भले अवस्था द्वारा पलटती है परन्तु अपनी त्रिकाल नित्य वस्तु रखकर पलटती है। परवस्तु अनित्य पलटी, इसलिए (पर्याय) पलट गयी, ऐसा नहीं है। ओहो! द्रव्यरूप से विचारने पर **न उपजती है, न विनशती है, ऐसा समाधान स्याद्वादी करता है।** यहाँ तो अभी इतना उपोद्घात किया है। उपोद्घात अर्थात् समझे? इस श्लोक में क्या कहना है, उसका संक्षिप्त में थोड़ा सार कहा। अब उसका शब्दार्थ करके उसका भावार्थ कहते हैं। समझ में आया?

'**पशुः सीदति एव**' पहला शब्द है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि सन्त मुनि ९०० वर्ष पहले हुए। दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य मुनि महासन्त वर्तमान पंचम काल में तीर्थंकर जैसे हुए। तत्पश्चात् ग्यारह सौ वर्ष बाद और आज से लगभग ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य महा(सन्त), कुन्दकुन्दाचार्य के गणधरतुल्य, जैसे तीर्थंकर का कार्य करे, वैसे अमृतचन्द्राचार्य ने कुन्दकुन्दाचार्य की टीका गणधर जैसी की है। उनके श्लोक हैं? अमृतचन्द्राचार्य मुनि दिगम्बर सन्त के कलश हैं। उनके अर्थ राजमलजी करते हैं। बनारसीदासजी कहते हैं 'पाण्डे राजमल जिनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' बनारसीदास हुए हैं न? बनारसीदास, समयसार नाटक के कर्ता, महा अध्यात्मी थे। पहले महा शृंगारी थे। आत्मशृंगार में उतर गये थे। वे कहते हैं 'पाण्डे राजमल जिनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' भगवान शास्त्रकार जो समयसार कहना चाहते हैं, उसके वे मर्मी थे। उन्होंने इस शब्द के अर्थ भरे हैं। समझ में आया?

'**पशुः सीदति एव**' आहा! अरे! आचार्य करुणा से कहते हैं, हों! दिगम्बर सन्त हैं, पंच महाव्रतधारी हैं, आनन्दकन्द में झूलनेवाले हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाले हैं। मुनि तो उन्हें कहते हैं। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो। अन्तरमग्न विज्ञानघन—ऐसा कहा न? आया न? ओहो! सर्वज्ञ परमात्मा से लेकर कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पर और अपर। भले पाठ में इतना ही शब्द है न? पर-अपर। परगुरु और अपरगुरु। प्रधान—गुरु। पर अर्थात् प्रधान। वर्तमान के अतिरिक्त सब। सर्वोत्कृष्ट सर्वज्ञ परमात्मा से लेकर, गणधर गुरु से लेकर हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह-कृपा करके हमें शुद्धात्मा का उपदेश दिया। वे गुरु, सर्वज्ञ जिस प्रकार विज्ञानघन में अन्तरमग्न थे, उसी प्रकार हमारे गुरुपर्यन्त सब सन्त अन्तर विज्ञानघन आत्मा में अन्तरमग्न थे। विकल्प और वाणी उनकी नहीं है, ऐसा कहा। समझ में आया? यह सन्तों ने हमारे ऊपर कृपा करके हमें यह शुद्धात्मा कि जहाँ वे रमते हैं, वही उपदेश हमें दिया। शुद्ध भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, ऐसी दृष्टि करके लीनता में रमते थे, उसी विकल्प में, वाणी में ऐसा आया कि शुद्धात्मा ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? उस शुद्धात्मा का उपदेश इस श्लोक में आया है। देखो! क्या (कहते हैं)?

जो अज्ञानी अपनी पर्याय निर्मल शुद्ध द्रव्य से उत्पन्न हुई—ऐसा नहीं मानता है,

वह शुद्धात्मा को नहीं मानता। भाई! भगवान आत्मा ज्ञान शुद्ध चैतन्य का पिण्ड है, उसके लक्ष्य से ज्ञान की, श्रद्धा की, शान्ति की पर्याय अपने द्रव्य से स्वयं से परिणति होती है, ऐसा शुद्धात्मा का उपदेश, जिसमें शुद्धात्मा की पर्याय का धर्म प्रगट हुआ है, ऐसा अज्ञानी मानता नहीं। ज्ञानी ने ऐसा कहा परन्तु अज्ञानी मानता नहीं। नहीं; हमारी पर्याय तो शुद्धात्मा कहते हैं, उसके आश्रय से (पर्याय) हुई, ऐसा नहीं। हमारी पर्याय तो सामने लक्ष्य जो निमित्त है, वैसा ही ज्ञान बराबर होता है। जैसा निमित्त है, वैसा ही ज्ञान पर्याय में होता है, तो हमारी पर्याय तो उससे हुई है। नवनीतभाई! बहुत सूक्ष्म। आहाहा!

भगवान की दिव्यध्वनि, वह भी आत्मा की ज्ञानपर्याय में निमित्तरूप अवलम्बन है। अवलम्बन कहो, या निमित्त कहो, परन्तु यह भाषा जैसी निकली, वैसी ज्ञान की पर्याय में स्वयं के कारण से परिणमन हुआ तो अज्ञानी ऐसा जानता है कि यह भाषा जैसी पलटती है, वैसी हमारी ज्ञान की अवस्था उसके पलटने से पलट जाती है, उसके कारण से पलट जाती है। हमारा ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा है, उसके पलटने के स्वभाव के कारण से पलटती है, ऐसा नहीं मानकर, जैसा निमित्त लक्ष्य में आया, उसके पलटने पर मेरी पर्याय पलट गयी।—ऐसा अधर्मी मिथ्यादृष्टि अपनी पर्याय में मानता है। उसे मिथ्यात्व का, अज्ञान का, अधर्म का लाभ होता है। गजब बात, भाई! ऐसा सूक्ष्म होगा? जुगराजजी! आहाहा!

एक बार कहा था न? आहाहा! 'ज्ञेयशक्ति दुविधा प्रकाशे, निजरूपा पररूपा भासे।' ज्ञेयशक्ति दो प्रकार की है एक निजरूप ज्ञेय, पररूप ज्ञेय। 'स्वपरप्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचनभेद भ्रमभारि, ज्ञेयशक्ति दुविधा प्रकाशे, निजरूपा पररूपा भासे।' यह ज्ञेय अर्थात् ज्ञान में जाननेयोग्य ज्ञेय। अपना द्रव्य भी जाननेयोग्य, गुण भी जाननेयोग्य, पर्याय जाननेयोग्य और पर जाननेयोग्य। उसमें पर जाननेयोग्य की जैसी अवस्था हुई, होती है और हो गयी, ऐसा वर्तमान ज्ञानपर्याय में (ज्ञेय पदार्थ की) पर्याय पलटकर भूतकाल की हो गयी तो मेरा ज्ञान भी चला गया, (ऐसा मानता है)। वर्तमान में जहाँ दूसरी पर्याय लक्ष्य में आयी तो ऐसा ज्ञान हुआ तो उसके कारण से मेरी ज्ञान की अवस्था हुई, श्रद्धा की पर्याय भी ऐसी हुई—ऐसा माननेवाला अपने द्रव्य को मानता नहीं और

अपने द्रव्य का परिणमन अपने से होता है, स्वकाल में अपने से होता है, ऐसा नहीं मानता। पर की नास्ति है, तथापि पर की अवस्था के काल से मेरी अवस्था का काल है, ऐसा माननेवाले को यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है। ओहोहो! समझ में आया?

निमित्त—परद्रव्य कर्ता और ज्ञान की पर्याय उसका कार्य। अरे! भगवान! बहुत बदल डाला, बहुत बदला। भगवान आत्मा अपनी ज्ञान की पर्याय का, पर्याय के अंश का स्वयं कर्ता और अपनी उस पर्याय का कार्य अपनी पर्याय के कारण से—आधार से प्रगट हुआ है। द्रव्य का आधार एक ओर रखो। समझ में आया? ऐसी अपनी स्वकाल की पर्याय में अपना कर्ता, अपना कार्य, अपने से, अपने आधार से उत्पन्न होकर अपने में रही है। ऐसा अज्ञानी नहीं मानकर, पर के कर्ता से, पर के साधन से, पर के कारण से मेरी पर्याय मुझमें उत्पन्न हुई है, ऐसा माननेवाला अपनी ज्ञानपर्याय का अस्तित्व द्रव्य के लक्ष्य बिना, पर के लक्ष्य से नाश हुआ—ऐसा नाश मानता है। समझ में आया? ऐसा भी क्या? जैनधर्म का ऐसा रूप होगा? यह यात्रा और यह सब क्या होगा? सुन न भाई! यह तो उस समय शुभभाव होता है, पर के ऊपर लक्ष्य जाता है परन्तु उस समय भी जो शुभभाव और पर के ज्ञान का जो लक्ष्य हुआ, या शुभ और पर का जैसा निमित्त है, वैसा ज्ञान परिणमा। वह शुभभाव और निमित्त के कारण से ज्ञान की आकृति नहीं परिणमी। समझ में आया? सबकी जाति अलग। चैतन्य की जाति अलग, जड़ की जाति अलग।

'पशुः सीदति एव' एकान्तवादी वस्तु के स्वरूप को साधने के लिए भ्रष्ट है। पशु की व्याख्या—एक पक्षी दृष्टिवाला। एकपक्षी दृष्टिवाला अर्थात् निमित्त की जैसी अवस्था है, वैसी मेरी अवस्था होती है। ऐसी एकपक्षी दृष्टिवाला। कहो, समझ में आया? यह पशु एकान्तवादी की व्याख्या। पशु अर्थात् अविवेकी। एकपक्षी दृष्टिवाला। अनेकान्त वस्तुस्वरूप के भान बिना मेरी चीज़ ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें मेरी पर्याय मेरे लक्ष्य से द्रवती है, ऐसे अनेकान्त के लक्ष्य बिना, निमित्त के लक्ष्यवाला मेरी पर्याय निमित्त के अवलम्बन से हुई, उसे पशु कहने में आता है, उसे एकान्तवादी कहते हैं। ऐ! छोटाभाई! है, इसमें है या नहीं? आहाहा! इतनी एकान्तवादी की व्याख्या (हुई)।

एकान्तवादी अर्थात् जैसा निमित्त है, वैसी वर्तमान अवस्था हुई—ऐसा एकपक्षी

(माननेवाला) मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी है। '**सीदति**' अब इसकी दूसरी व्याख्या। **वस्तु के स्वरूप को साधने के लिए भ्रष्ट है।** अर्थात् जो वर्तमान ज्ञान अवस्था है, ऐसा अवलम्बन देखकर उससे हुई है, ऐसा माननेवाला अपनी ज्ञान की अवस्था द्रव्य से हुई है, ऐसा साधने को भ्रष्ट है। क्या कहा ? यह ज्ञान की अवस्था मेरे द्रव्य से होती है, ऐसा साधन को भ्रष्ट है। जैसा निमित्त का अवलम्बन है, उससे हुई है—ऐसा मानकर अपने द्रव्य से हुई है—ऐसा साधन करने को भ्रष्ट है। समझ में आया ? कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें ? ऐ.. चिमनभाई ! समझ में आता है इसमें ? सब सूक्ष्म-सूक्ष्म लगता है सब ? या रसिकभाई को सौंपा होगा ? यह सबको समझना (पड़ेगा), स्वयं को समझना पड़ेगा। किसी के कारण किसी को यहाँ मिले, ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्यों ? भीखाभाई ! आहाहा !

यही कहते हैं, प्रभु ! तू कौन है ? भाई ! बापू ! बड़ा पर्वत—अनन्त गुण का पर्वत तेरा स्वभाव है। उस पर्वत में से जैसे पानी झरता है, वैसे उसमें से पर्याय झरती है, निकलती है। ऐसी पर्याय को द्रव्य के लक्ष्य बिना पर के लक्ष्य से साधन करनेवाला अपनी पर्याय को द्रव्य से हुई है, ऐसा साबित / सिद्ध कर नहीं सकता। आहाहा ! समझ में आया ? लक्ष्य फेर है। अज्ञानी की वर्तमान अवस्था का लक्ष्य पर है, तो पर पलटने से पर्याय पलट गयी तो अपनी पर्याय अपने द्रव्य से हुई है, वह उसका स्वतन्त्र काल है, वह स्व काल ही ऐसा है कि अपने द्रव्य से ऐसी ही पर्याय उत्पन्न होने की थी। ऐसी पर्याय जैसा अवलम्बन है, वैसा ही जाननेयोग्य अपनी पर्याय अपने से होनेवाली थी। ऐसा अज्ञानी परलक्ष्यी (जीव) स्वरूप का साधन कर नहीं सकता। कहो, नेमिदासभाई ! यह जरा सूक्ष्म बात है, हों ! रुक गये हैं। आज ८१वाँ वर्ष लगता है। रुके होंगे कुछ। समझ में आया ? यह समझ में आया ? यह अवस्था बड़ी हो गयी।

'सीदति' वस्तु के स्वरूप को साधने के लिए भ्रष्ट है। क्या अर्थ किया है ? पशु अर्थात् एकपक्षी दृष्टिवाला मिथ्यादृष्टि। एकपक्षी अर्थात् जो अपनी वर्तमान पर्याय है, उसका अवलम्बन देखकर और अवलम्बन देखकर उससे हुई है, अवलम्बन पलटा तो मेरी पर्याय भी चली गयी, (ऐसा मानता है)। ऐसा एकपक्षी देखनेवाला अपनी पर्याय

अपने से उत्पन्न होती है, ऐसा साधने को भ्रष्ट है। बराबर है? आहाहा! अरे! भगवान! कहो, समझ में आया या नहीं?

कहते हैं **अवश्य ऐसा है**। वापस ऐसा कहा। क्या कहा? '**एव**' **अवश्य ऐसा है**। भगवान आत्मा अनन्त ज्ञानादि का पिण्ड प्रभु, अपनी पर्याय, अपना स्वत्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है, उससे अपनी पर्याय—अपना अंश सिद्ध होता है। ऐसा साधन नहीं करके, परलक्ष्य से मेरी पर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा भ्रष्ट होकर अवश्य भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं। निश्चय भ्रष्ट है। आहाहा! '**एव**' अवश्य—जरूर। '**एव**' अर्थात् जरूर। भगवान आत्मा की निर्मल ज्ञानपर्याय अपने द्रव्य के आश्रय प्रवाह उसमें से आती है, ऐसा जिसका लक्ष्य नहीं है, वह अपनी पर्याय को सिद्ध करने में अवश्य भ्रष्ट है। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा तो होता है नवनीतभाई! थोड़ा-थोड़ा (स्पष्टीकरण) होता है, भाई! शक्तिप्रमाण होता है। सब कहीं ऐसा अपने को आता है? समझ में आया? आहाहा! देखो तो प्रभु कहते हैं।

भाई! तू दो अंशवाला है। एक त्रिकाली वस्तु और उसकी एक समय की अवस्था अंश—अवस्था। अब उस अवस्था का स्वकाल तो उस स्वद्रव्य के अवलम्बन से (होता है)। द्रव्य है, वह त्रिकाल वस्तु है। द्रव्य जो वस्तु है, वह त्रिकाल काल का पिण्ड है। वस्तु जो है, वह तो त्रिकाल वस्तु का पिण्ड है। एक ही त्रिकाल काल। उसकी वर्तमान अवस्था उसका भेद है, उसकी पर्याय है, उसका भेद है। समझ में आया? वह भेद भी जो पर के लक्ष्य से हुआ मानता है, वह स्व के लक्ष्य से भेद हुआ नहीं मानता, वह पर्याय को भी नहीं मानता। आहाहा! भेद को नहीं मानता, नहीं जानता। लो, ठीक! समझ में आया?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में एक वस्तु ऐसी त्रिकाल पिण्ड, पिण्ड ज्ञानानन्द आदि अनन्त गुण का पिण्ड एक काल है। वह उसका एक काल है। उसका वर्तमान एक समय का वह भेद काल। भेद काल, व्यवहार काल, एक समय का भेद काल। वह काल भी स्वयं से हुआ है। ऐसा न मानकर पर से भेद हुआ है और पर की अवस्था पलटने से मेरा भेदपना पर के कारण से पलट जाता है, मेरा अभेद

भगवान आत्मा है, उससे भेद का अंश होता है, ऐसा अज्ञानी को श्रद्धा में नहीं बैठता। कहो! यह तुम्हारी वकालत जैसा है या नहीं? दूसरा इसमें कुछ न्याय से है या नहीं? आहाहा!

भगवान सर्वज्ञदेव, सन्तों ने तो बहुत सरलता से बात की है। बहुत सरल, ऐसा इसके ख्याल में आवे (ऐसा) परन्तु यह अन्दर ख्याल में नहीं ले और फिर दोष निकाले कि हमको यह समझ में नहीं आता, हमें धर्म नहीं होता। आहाहा! भाई! तेरी सत्ता की समाप्ता कितने में है? तेरी सत्ता की समाप्ति-पूर्णता कितने में है? पूर्ण वस्तु है और एक समय की अवस्था है। बस! इतना। अब एक समय की अवस्था जो स्वकाल स्वयं से, त्रिकाल में से, एक में से, त्रिकाल में उसी पर्याय का वही स्वकाल, ऐसा भेद स्वकाल में, वही आनेवाला था और वही हुआ, ऐसा नहीं मानकर जैसा निमित्त का काल, अवलम्बन दिखता है, वैसी ज्ञान की पर्याय देखकर पर के अवलम्बन से यह काल आया, ऐसा माननेवाला वस्तु के स्वरूप को नहीं साध सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : सरल आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल आया, लो, भाई! थोड़ा आया। मोहनभाई! यह तो मक्खन है। आहाहा! अरे! न समझ में आये, ऐसा नहीं लेना। यह स्वयं प्रभु है। जिसे एक समय में पहिचान सके इतना नहीं, एक समय में केवलज्ञान प्रगट करे, ऐसी ताकत है न! उसका एक समय का स्वकाल केवलज्ञान ला सके, ऐसी उसकी ताकत है। आहाहा! उसका त्रिकाली ज्ञान का पूरा मूर्त स्वरूप त्रिकालरूप एक है और एक समय में केवलज्ञान में ला सके, ऐसी उसकी ताकत है। त्रिकाल में से वर्तमान एक समय में ला सके, ऐसी ताकत है। आहाहा! किसी के वर्तमान समय को किसी के त्रिकाल द्रव्य में से ला सके, ऐसा उसमें है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, ओहो! अज्ञानी को अपने निजस्वरूप का लक्ष्य ही नहीं तो अपनी पर्याय का दाता द्रव्य नहीं मानकर, अपने स्वकाल का दाता निमित्त का अवलम्बन मानकर, वह दाता है तो उत्पन्न हुई है, दाता पलटने पर मैं भी पलट जाता हूँ (—ऐसा मानता है)। आहाहा! समझ में आया? ऐ... भीखाभाई! भाई! यह गुरु की पर्याय होती है, उसके कारण (अपनी) पर्याय होती है, दाता वह है। कहते हैं कि दाता ऐसा मानता

है, वह अपनी पर्याय को सिद्ध नहीं कर सकता। भाई! यहाँ तो सत्य है, वह सत्य है। उसमें कहीं किसी का (चलता नहीं)।

तीन लोक के नाथ परमात्मा हो या उनकी वाणी हो। सुननेवाले की ज्ञान की वर्तमान पर्याय त्रिकाल गुण का पिण्ड प्रभु त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... गुण अर्थात् त्रिकाल, उसका एक वर्तमान काल का अंश, उसके स्वयं से अन्तर से आता है। ऐसा नहीं मानकर, जैसी वाणी लक्ष्य में आयी, वैसा मेरा ज्ञानाकार परिणमित हुआ तो मेरा ज्ञान भी उससे हुआ, वह पलट गया तो दूसरा (ज्ञान) हुआ तो अपनी पर्याय का पर के लक्ष्य से अभाव मानता है। आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात, भाई!

वीतराग का अनेकान्त तत्त्व जैसा है, वैसा सिद्ध करनेवाली चीज़ है, (उसका) अज्ञानी को पता नहीं है (कि) क्या चीज़ है। ऐसा तो माने, भगवान ऐसा निर्मल है, शुद्ध है, ऐसा है, वैसा है। ऐसा नहीं चलता। निर्विकल्प है और विकल्परहित है, उसका अनुभव करो, परन्तु किस प्रकार करे? अनुभव तो पर्याय है, वस्तु त्रिकाल है तो वह अनुभव किसमें से आता है? समझ में आया? अनुभव कहो या धर्म—सम्यग्दर्शन ज्ञान की पर्याय कहो, वह सम्यग्दर्शन ज्ञान की पर्याय किसमें से आती है? क्या पर पर्याय निमित्त की श्रद्धा करने से आती है? ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! समझ में आया?

जैसा सामने निमित्त है, सर्वज्ञ त्रिकाल त्रिलोकनाथ तीर्थंकर गुरु आदि परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु... समझ में आया? जैसी उनकी पर्याय है, वैसी यहाँ मानी उस प्रमाण तो उससे सम्यग्दर्शन होता है? समझ में आया? ऐसी पर्याय की श्रद्धा से पर्याय सम्यक् हुई है? यह श्रद्धा की, ज्ञान की पर्याय तो अपने त्रिकाल ज्ञायक के लक्ष्य से उत्पन्न हुई है। ऐसी नहीं मानी, ज्ञेय की श्रद्धा से मेरी ज्ञानपर्याय उत्पन्न हुई है, (ऐसा माननेवाला) वस्तु का एक अंश भी स्वतन्त्र साबित नहीं कर सकता। विमलचन्दजी! यह लड़के भी तैयार हो गये हैं। देखो न! छोटी उम्र के। छोटी उम्र के कहलाते हैं न? यह पच्चीस-पच्चीस, अट्ठाईस वर्ष के इतने-इतने लड़के कहलाते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? अरे! आठ वर्ष में केवल(ज्ञान) हो, उसमें दिक्कत क्या है?

भगवान तू कैसा है? ऐसा इसे स्वयं से श्रद्धा में बैठ जाए, किसी के कारण से

नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की पर्याय ज्ञान में आयी। जैसा है, वैसा ज्ञान उस आकार परिणमा। ज्ञान उस आकार परिणमा तो वह चला जाने पर दूसरा होवे तो वैसा हुआ, ऐसी अपनी पर्याय पर के अवलम्बन से माननेवाले की व्यवहारश्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है। आहाहा! व्यवहारश्रद्धा भी कब कहलाती है ?—कि जो विकल्प में आया, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प। वह विकल्प (आने पर) अपने में अपने ज्ञान के लक्ष्य से ज्ञानाकार परिणमा, ऐसे ज्ञान के लक्ष्य से जो अपनी ज्ञान की पर्याय हुई, उसमें जो विकल्प आया, उस प्रकार का ज्ञान हुआ तो उस विकल्प को व्यवहार कहते हैं और यथार्थ ज्ञान के परिणमन को निश्चय कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! क्या हो परन्तु ? फिर इसमें झगड़ा ही उठे न! क्या हो ? अज्ञान के कारण से, बापू! यह तो सर्वज्ञ पन्थ है, कोई साधारण मनुष्य मान ले, इसलिए वस्तु ऐसी हो जाएगी ? वस्तु तो जैसी है, वैसी रहेगी। दूसरा माने, इसलिए दूसरी चीज़ हो नहीं जाएगी।

भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव तो पुकार करते हैं, पशु एकान्त हो गया, ऐसा निश्चय है। तेरी वर्तमान अनन्त गुण की एक समय की स्वकाल की पर्याय के सामने अनन्त ज्ञेयों की जिस पर्याय का लक्ष्य (हो) अथवा वह द्रव्य-गुण भले हो, उसके लक्ष्य से तेरी पर्याय हुई और वह पलट गया तो अवस्था पलटने पर द्रव्य पलट गया, तो तेरी पर्याय उसके कारण से पलट गयी, (ऐसा यदि मानता है तो) अवश्य तू एकान्त मिथ्यादृष्टि है। अवश्य स्वरूप की श्रद्धा से भ्रष्ट है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

कैसा है एकान्तवादी ? देखो! राजमलजी ने भी टीका कैसी की है! **कैसा है एकान्तवादी ? 'अत्यन्ततुच्छः' वस्तु के अस्तित्व के ज्ञान से अति ही शून्य है।** वस्तु के अस्तित्व के ज्ञान से अत्यन्त शून्य है। क्योंकि अपने ज्ञान, श्रद्धा की पर्याय पर निमित्त जैसा है, वैसी हुई, (ऐसा माना)। तो अपना अस्तित्व ज्ञान से अत्यन्त शून्य हो गया। मुझमें ज्ञान है और मुझसे मैं हूँ, ऐसा नहीं माना, शून्य हो गया। जो अपनी पर्याय से अशून्य है, अशून्य है, ऐसा नहीं मानकर पर के कारण से हुई, (ऐसा मानता है तो) अपने ज्ञान की तुच्छता में शून्य हो गया। अशून्य है, उसमें शून्य हो गया। मेरी पर्याय पर

से हुई है। समझ में आया? ओहोहो! **वस्तु के अस्तित्व के ज्ञान से अति ही शून्य है।** अति शून्य हो गया, खाली हो गया, खाली। समझ में आया? मेरा ज्ञानस्वभाव भगवान, उसकी पर्याय में स्वयं से जानने में पर के जानने का भाव अपने अस्तित्व में अपने कारण से आता है, ऐसा साध नहीं सकता, (उसे) जैसा निमित्त है, वैसी मेरी पर्याय हुई (—ऐसा मानता है तो) अपनी पर्याय में शून्य हो गया। खाली हो गया, खाली बारदान माल बिना का। कोथला समझते हो? बारदान। थैला। खाली थैला हो गया। तेरे पास कुछ माल रहा नहीं। तेरे ज्ञान के वर्तमान अस्तित्व की शुद्ध अवस्था त्रिकाल से उत्पन्न हुई, ऐसा माल तेरे पास रहा नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

और कैसा है? 'न किञ्चन अपि कलयन्' ज्ञेय अवस्था का जानपनामात्र ज्ञान.... देखो! जो ज्ञेय है, उतनी ही मेरी ज्ञान की अवस्था है। ज्ञायकमात्र मेरा स्वभाव है, उसकी अवस्था से यहाँ अवस्था हुई है, ऐसा नहीं मानकर... **ज्ञेय अवस्था का जानपनामात्र ज्ञान है; उससे भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है;....** ओहो! कैसी बात की है! इतने ज्ञेय के अवलम्बन से उत्पन्न हुई, यह तो ठीक, यह तो महामिथ्यात्व है। परन्तु कहते हैं कि ज्ञेय अवस्था के जानपने मात्र ज्ञान अवस्था है, उतना मानना भी मूढ़ मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि अपनी पर्याय में अपने द्रव्य का भी ज्ञान होता है, पर का ज्ञान भी होता है, ऐसी एक समय की पर्याय की ताकत है। क्या कहा, समझ में आया?

अपनी पर्याय में—अवस्था में अपने द्रव्य का ज्ञान और परज्ञेय का ज्ञान (होता है)। ऐसे एक समय की पर्याय में दोनों का ज्ञान करने का सामर्थ्य अपने में है। अज्ञानी ने ज्ञेय अवस्था के जानपनेमात्र ज्ञान, परज्ञेय को जाननेमात्र ज्ञान (है, इतना ही माना)। **उससे भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है;....** मेरी चीज़ ज्ञानवस्तु त्रिकाल है, उसे जानने से जो पर्याय होती है, उसमें मुझसे पर जानने में आ जाता है, ऐसी वस्तु सिद्ध नहीं कर सकता। **'अपि' अंशमात्र भी नहीं है....** आहाहा! गजब भाई टीका! समझ में आया?

ज्ञेय अवस्था का जानपनामात्र ज्ञान.... मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञानस्वरूप भगवान, उसकी ज्ञानपर्याय और परसम्बन्धी का ज्ञान तथा अपना (ज्ञान), ऐसे दो प्रकार से (जानने का)

सामर्थ्य पर्याय में है, ऐसा नहीं मानकर, अकेली ज्ञेय-अवस्थामात्र मेरा जानपना है, ऐसा मानकर अपनी ज्ञान अवस्था और ज्ञानगुण से शून्य हो गया। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया या नहीं? कहो, समझ में आया?

ऐसी अनुभवरूप प्रतीति करता है। भगवान आत्मा... ध्यान रखो, न समझ में आये ऐसा है ही नहीं। वस्तु जो ज्ञान का पिण्ड प्रभु है, उसकी वर्तमान पर्याय—अवस्था जो है, उस अवस्था में स्वज्ञेय का ज्ञान और परज्ञेय का ज्ञान हो, ऐसी उसकी ताकत है। ऐसी ताकत नहीं मानकर, मात्र परज्ञेय के अवलम्बन में जैसा ज्ञेयाकार परिणमा, उतनी ही मेरी ज्ञान की पर्याय की ताकत है, (ऐसा माना) तो अपनी पर्याय और द्रव्य को सिद्ध नहीं कर सकता। अपनी ज्ञान की पर्याय का जितना सामर्थ्य है, उतना भी सिद्ध नहीं कर सकता, खाली हो गया। आहाहा! समझ में आया? इसीलिए इसमें सब विवाद उठे न? पर की दया और... सब है, सुन तो सही, भगवान! आहाहा! भारी बात, भाई! कठिन लगे, भाई!

बापू! प्रभु! यह तेरा मुक्ति का मार्ग कोई अलौकिक है, प्रभु! और उससे विरुद्ध भी कहाँ मिथ्यात्व होता है, उसकी तुझे खबर नहीं पड़ती। सूक्ष्म मिथ्यात्व का शल्य हो जाता है। वस्तु की स्थिति से विरुद्ध मानता है तो महामिथ्यात्व का शल्य मिथ्यात्व उत्पन्न करता है, इसकी खबर नहीं है। यह मिथ्यात्व रखकर कषाय की मन्दता की क्रिया होती है तो मिथ्यात्व का बड़ा पाप तो पड़ा है। समझ में आया? राग की मन्दता आदि का पुण्य बँधा तो उसमें क्या? शरीर बदलेगा, कोई अच्छा मनुष्य होकर, देवादि होगा। उसमें आत्मा में कुछ बदलाव नहीं आया। वेश बदला परन्तु अन्दर आत्मा का वेश नहीं पलटा। देह का वेश पलटा, आत्मा का वेश नहीं पलटा, एक भव कम हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? कितनों को (ऐसा लगता है), ऐसा सूक्ष्म। तुझे धर्म करना है या नहीं? तो इनकार कर कि मुझे धर्म नहीं करना। यदि धर्म करना हो तो इस प्रकार से आत्मा का अस्तित्व दो प्रकार से है, उसे बराबर समझना पड़ेगा।

त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति भगवान और उसका एक समय का ज्ञान। स्व को जाननेयोग्य और पर को जाननेयोग्य। ऐसा एक समय की ज्ञान की पर्याय का पूर्ण सामर्थ्य है। ऐसा

सामर्थ्य नहीं मानकर उस ज्ञान की पर्याय में जैसा अवलम्बन है, वैसा ज्ञान, जैसा अवलम्बन है, वैसा ज्ञान (होता है)। वह तो मूढ़ है परन्तु जैसा अवलम्बन है, वैसा मेरे कारण से ज्ञान की पर्याय हुई, इतना मानना वह भी ज्ञान की पर्याय से शून्य है। समझ में आया? जमुभाई! रात्रि में पूछे तो इसमें से थोड़ा याद आयेगा या नहीं? नहीं आयेगा? इतनी तो हिम्मत की है कि नहीं? परन्तु यह घुटता तो बहुत है। आहाहा!

इसमें तो आचार्य कितना सिद्ध करते हैं! भगवान! तेरा स्वभाव तो त्रिकाल एकरूप है, उसमें जो काल का अंश जो तेरी श्रद्धा-ज्ञान का आता है, वह तो तेरे ज्ञान के प्रवाह में से आता है और उस ज्ञान की पर्याय में तो तेरा ज्ञायकस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव दोनों को जानने की एक समय की ताकतवाली पर्याय आती है। यह तो एक समय की पर्याय (माने) परन्तु कितनी (माने)? जितना ज्ञेय है, वैसा अवलम्बन में ज्ञान हुआ, वह उससे हुआ, ऐसा जो मानता है, वह तो अपनी पर्याय को भी, मात्र परप्रकाश की पर्याय पर से हुई, ऐसा माननेवाला, परप्रकाश की पर्याय मुझसे हुई है, इतना मानने की ताकत भी उसकी नहीं है, तो भी उस पर्याय की ताकत तो इतनी है कि स्व-परप्रकाश की ताकत है, भाई! आहाहा! तथापि जिस ज्ञान की वर्तमान दशा में जितना अवलम्बन है, उससे मेरा ज्ञान हुआ, उससे मेरा ज्ञान हुआ तो परप्रकाश का ज्ञान अपनी ताकत से है, ऐसा नहीं माना और पर से हुआ माना। यह तो परप्रकाश की ज्ञान की पर्याय को भी अज्ञान में जो सिद्ध करना है, वह सिद्ध कर सकता नहीं है। और पर के अवलम्बन से (मेरी ज्ञानपर्याय हुई) नहीं, परन्तु उस अवलम्बन को (जाननेरूप) जैसा भाव है, वैसी मेरी पर्याय मेरे कारण से ज्ञेयाकाररूप परिणमी है, ऐसा माननेवाला ज्ञान की पर्याय में स्वज्ञेय और परज्ञेय को जानने की ताकतवाली पर्याय को नहीं मानता। समझ में आया?

यह दो लेंगे। भाई! देखो! आगे है न? **'बाह्यवस्तुषु' समस्त ज्ञेय अथवा ज्ञेयाकार परिणमे ज्ञानपर्याय के अनेक भेद,....** आहाहा! समझ में आया, भाई! आहाहा! प्रभु! तेरा सामर्थ्य। 'जहाँ चैतन्य वहाँ अनन्त गुण केवली एम।' 'जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण, भगवान कहते हैं एम, प्रगट अनुभव आपका, निर्मल करो सो प्रेम।' चैतन्य प्रभु, तेरी चैतन्य सम्पदा सम्पदा में है, पर के कारण से नहीं।

अपनी ज्ञान की वर्तमान दशा में जैसा निमित्त है, वैसा ज्ञान होता है—ऐसा

माननेवाला निमित्त की रुचि और प्रेम नहीं छोड़ सकता। समझ में आया? और वह निमित्त से मेरी ज्ञानपर्याय हुई, ऐसा नहीं। परन्तु (जैसा ज्ञेय है), वैसी ही मेरी ज्ञान की पर्याय हुई, (ऐसा माननेवाला भी) ऐसे पर्याय का प्रेम छोड़ कर द्रव्य का प्रेम नहीं कर सकता। समझ में आया? पर्याय को इतनी माननेवाला, मेरी पर्याय जैसा अवलम्बन है, वैसी मेरी पर्याय मुझसे पर्याय परिणमी है, ऐसा माननेवाला उसमें प्रेम रखता है तो ज्ञायक के प्रति प्रेम नहीं कर सकता। समझ में आया? यह दो बातें कीं।

एक तो निमित्त के अवलम्बन से होती है, ऐसा माननेवाला निमित्त का प्रेम नहीं छोड़ सकता और निमित्त के अवलम्बन के काल में मेरी पर्याय ज्ञेयाकार स्वयं से हुई है, परन्तु इतना ही मैं हूँ, ऐसा माननेवाला भी ज्ञेय की पर्याय का प्रेम नहीं छोड़ सकता, द्रव्य को प्रेम नहीं कर सकता। छोटाभाई! आहाहा! समझ में आया? **भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है;.... ऐसी अनुभवरूप प्रतीति करता है।** अज्ञानी। परन्तु अपना अनुभव नहीं कर सकता। बस! वह ज्ञान की पर्याय अर्थात् ज्ञेयाकार है या पर से हुई है, ऐसा अनुभव अज्ञानी करता है। अपने ज्ञायकभाव से अपनी पर्याय है, अपना ज्ञान और पर का ज्ञान भी अपने कारण से उत्पन्न होता है, ऐसा अनुभव अज्ञानी एकपक्षी दृष्टिवाला नहीं कर सकता। उसे आत्मा का लाभ नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण १२, रविवार, दिनांक-१९-१२-१९६५, कलश-२५६, प्रवचन-२७४

समयसार कलश। दसवाँ कलश चलता है। '**पशुः सीदति एव**'। ऊपर से पहली लाईन। थोड़ा वाँचन हो गया है परन्तु इसके साथ पूरी सन्धि है न वापस। कल और हिन्दी में बहुत पढ़ा गया था न!

'**पशुः सीदति एव**' क्या कहते हैं ? एक पक्ष दृष्टिवाला। इस देह की अवस्था के लक्ष्यवाला जीव। देह है न, देह! उसकी जो अवस्था होती है, उसके लक्ष्यवाला जीव। जिस क्षण देह की अवस्था को जानने के ज्ञान की उत्पत्ति हुई, उस क्षण में उसके ज्ञान में देह की अवस्था का अवलम्बन—निमित्त है। समझ में आया ? वह देह की अवस्था जहाँ ऐसे बदल जाती है, वहाँ ज्ञान की अवस्था बदलने पर मैं कुछ चीज़ द्रव्यरूप रहता हूँ, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। क्या कहा ? समझ में आया ?

'पशुः' एकान्तवादी वस्तु के स्वरूप को साधने के लिए भ्रष्ट है। अवश्य ऐसा है। कैसा है एकान्तवादी ? 'अत्यन्ततुच्छः' वस्तु के अस्तित्व के ज्ञान से अति ही शून्य है। क्यों ? यह स्वकाल के अस्तित्व का श्लोक है। अर्थात् क्या ?—कि आत्मा स्वयं परद्रव्य की अवस्था के जानने के काल में, उस क्षण में ज्ञान की अवस्था की उत्पत्ति होने पर भी दूसरी अवस्था ज्ञेय की पलटे, तब यह अवस्था भी पलटती है, तथापि यह पलटती है, वह पर के कारण नहीं। स्व ज्ञायक के ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, ऐसे स्व पूर्ण के अस्तित्व के कारण वह ज्ञान अवस्था बदलती है। वह स्वकाल से अस्तित्व माननेवाला सम्यग्दृष्टि जीव है। सूक्ष्म बात है। यह अनेकान्त है न ? समझ में आया ?

यहाँ अभी बतलाना है स्वकाल के अस्तित्वरूप आत्मा, परन्तु उसके पहले परकाल के अस्तित्वरूप आत्मा, ऐसा बताते हैं। अज्ञानी ऐसा मानता है। क्योंकि ज्ञानस्वरूप की अवस्था, इस शरीर की जीर्णता... देखो! एक दृष्टान्त मरण का देते हैं। मृत्युकाल में इस देह की अवस्थाएँ सब जीर्ण होंगी। जीर्ण होने पर अज्ञानी का लक्ष्य उस देह पर है और देह की ऐसी बहुत जीर्णता होने पर मानो ज्ञान भी गहरे-गहरे चले जाने पर... समझ में आया ? द्रव्यस्वरूप चैतन्यमूर्ति अखण्ड आनन्दकन्द की तो अस्ति

की प्रतीति है नहीं। इसलिए इस देह के अवयवों के शिथिलपन के काल में जिस ज्ञान अवस्था से उस क्षण उसकी उत्पत्ति जो सामने की पर्याय है, उसी क्षण अपनी ज्ञान की अवस्था की उत्पत्ति (होती है)। उसमें जो ऐसा शिथिल होने लगा तो मेरी ज्ञान पर्याय भी (शिथिल हो गयी)। वह बदला तो मैं पूरा बदल गया। वह बदलने पर मैं पूरा उसमें गया, ऐसा अज्ञानी मानता है। उसके लिये तो यह दृष्टान्त है। समझ में आया? भाई ने ऐसा उतारा है। काया के ऊपर ही उतारा है। बनारसीदास ने। काया के नाश से पर्याय का—आत्मा का नाश मानता है। इस प्रकार उतारा है। स्थूल रीति से लोगों को पकड़ में आये। समझ में आया?

यह वस्तु है न भगवान आत्मा, तो एक समय में पूर्ण अनन्त ज्ञान का कन्द, ज्ञानस्वरूप ध्रुव वस्तु है। उस वस्तु की वर्तमान अवस्था में ज्ञान की अवस्था के उत्पत्ति काल में, अवस्था उत्पन्न होती है न! उस उत्पत्ति काल में देह की अवस्था की उत्पत्ति देखकर मेरी उत्पत्ति उसके कारण हुई है और उसे जाने पर मेरी पर्याय भी चली जाती है। मैं कहीं चैतन्यमूर्ति आत्मा हूँ, यह अज्ञानी को प्रतीति में नहीं रहता। समझ में आया?

एकान्तपक्षी अत्यन्त तुच्छ हो गया। यह सब ढीला पड़ने लगा अथवा शरीर की अवस्था जहाँ ज्ञान के लक्ष्य में, ज्ञान की वर्तमान उत्पत्ति के क्षण में यह जो देह की अवस्था लक्ष्य में थी, उस अवस्था का जहाँ बदलाव हुआ तो उस प्रकार की अपने में जो ज्ञान की उत्पत्ति अपने कारण से थी, ऐसा न मानकर, यह नाश हुआ तो मेरी पर्याय भी नाश हो गयी, परन्तु उसका परिणमनेवाला त्रिकाल ज्ञायक हूँ, ऐसी दृष्टि अज्ञानी को अन्तर में नहीं रहती। समझ में आया? यह तो अनेकान्त है न? इसमें कोई दृष्टान्त-वृष्टान्त, न्याय दे... यह दृष्टान्त दिया। कल तो बहुत दृष्टान्त दिये थे। समझ में आया?

भगवान आत्मा... प्रतिमा का दिया था। कल तो हिन्दी था न। वह प्रतिमा परद्रव्य है, यह भी परद्रव्य है। इस परद्रव्य की वर्तमान अवस्था जो वर्तती है, उसे जानता हुआ ज्ञान वर्तमान में उस क्षण में ज्ञान की उत्पत्ति उस प्रकार की अवस्था के लक्ष्य से अपनी उत्पत्ति भी ऐसी होती है। वह ज्ञेयाकार—जैसी सामने अवस्था है, वैसे ज्ञेयाकार ज्ञान का परिणमना—ज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति होती है। अज्ञानी को ऐसा लगता है कि वह

अवस्था जहाँ पलटी, पलटी अर्थात् अवस्था यहाँ भी पलटती है, परन्तु वह पलटी, इसलिए यहाँ पलट गया। मैं एक पलटनेवाला द्रव्य ज्ञायकमूर्ति हूँ, इसलिए पलटता हूँ—ऐसा अज्ञानी को प्रतीति में नहीं बैठता। आहाहा! समझ में आया?

अपने मरते हुए भी कहा जाता है। यह बात याद थी। यह सब शिथिल पड़ता जाए न, चर्बी और शिथिल... शिथिल... (हो जाए)। इसलिए उसको ऐसा लगे कि मेरा आत्मा गहरा उतर जाता है। गहरा उतर जाता है अर्थात् यह सब ढीला हुआ न, उसे ढीले की ओर की अवस्था का लक्ष्य है और उसमें एकत्वबुद्धि है, इसलिए वह ढीला पड़ने पर ज्ञान की अवस्था भी ढीली... ढीली... ढीली अभावरूप होती जाती है, ऐसा अज्ञानी को अन्तर श्रद्धा में भासित होता है। बीच में क्यों खाली है? नजदीक आओ, नजदीक। खाली क्यों रखा? पीछे वे लड़के खड़े हैं।

पशु अर्थात् कि आत्मा की वर्तमान पर्याय की दशा को परपर्याय से उत्पन्न हुई माननेवाला। अर्थात् यहाँ द्रव्यस्वरूप एक अखण्ड ज्ञायकमूर्ति हूँ, उसके लक्ष्य से उत्पन्न होता है अथवा उसकी हुई है, यह द्रव्य ज्ञायकमूर्ति आत्मा है, इसकी हुई यह अवस्था है, ऐसा पशु अर्थात् अज्ञानी एकान्त पक्ष को देखनेवाला, त्रिकाल द्रव्य पलटता है, उसकी यह पर्याय है—ऐसा न मानकर, अवस्था को अवलम्ब कर, निमित्त के अवलम्बन से जो ज्ञान की उपादान पर्याय में जैसा निमित्त है, उस ज्ञेयाकार परिणमता ज्ञान, ज्ञेयाकार का परिवर्तन होने पर मैं भी बदल जाता हूँ, नाश हो जाता हूँ, उसे अज्ञान का लाभ—मिथ्यात्व का (लाभ) होता है। समझ में आया? उसे एकान्तदृष्टि—मिथ्यात्व कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

'**अत्यन्ततुच्छः**' अर्थात्? कि वस्तु अखण्ड ज्ञानज्योति चिदानन्द द्रव्यस्वरूप है, उसके अन्तर में दृष्टि में उसके अस्तित्व की मौजूदगी का ख्याल नहीं। त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति, त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति का ख्याल नहीं, इसलिए वर्तमान काल की ज्ञान की त्रिकाल वस्तु एकरूप है, उसका वर्तमान काल ज्ञान की पर्याय त्रिकाल वस्तु के अवलम्बन से हुई है अथवा उसका यह अंश है, ऐसा अज्ञानी न मानकर, उस त्रिकाली वस्तु का यह अंश नहीं परन्तु जिसके अवलम्बन से है, जिसका निमित्त है, उसके कारण

से उत्पन्न हुई पर्याय के पलटने से मैं भी पलटकर नाश हो जाता हूँ, इसका नाम मिथ्यादृष्टि और एकान्त अज्ञानी कहा जाता है। नवनीतभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु भाई यह। कहो, समझ में आया इसमें?

'अत्यन्ततुच्छः' अर्थात्? शरीर की अवस्था के व्यय से—नाश से—अभाव से, उसके अवलम्बन से अर्थात् उसके निमित्तरूप से किया हुआ ज्ञान, किया स्वयं से, अवलम्बन वह निमित्त था, उसका ऐसे अभाव होने लगा, वहाँ ज्ञान की अवस्था, उसके कारण से थी और उसके कारण से बदली, वहाँ मेरा अभाव हो गया—ऐसा अज्ञानी मानता है। उसे स्वद्रव्य त्रिकाली चैतन्य भगवान है, उसकी अस्ति की प्रतीति की खबर नहीं है। समझ में आया?

वस्तु के अस्तित्व के ज्ञान से अति ही शून्य है। और कैसा है? 'न किञ्चन अपि कलयन्' ज्ञेय अवस्था का जानपनामात्र ज्ञान है;.... देखो! इस देह की अवस्था का बदलना होने पर उसे अवलम्ब कर निमित्तरूप हुआ ज्ञान, जहाँ देह की अवस्था बदली, ज्ञेय अवस्था के जानपने मात्र ज्ञान था। त्रिकाली ज्ञानमात्र की यह एक अवस्था थी, ऐसा न माननेवाला, ज्ञेय को जाननेमात्र अवस्था थी, **उससे भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है;....** इतनी ही पर्यायमात्र निमित्त के अवलम्बन से अपने में हुई, निमित्त वह और उपादान यह, परन्तु उस निमित्त का अवलम्बन लक्ष्य में था इसलिए, यह बदली इसलिए मैं गया। किंचित् मात्र ज्ञानमात्र वस्तु रही, ऐसा अज्ञानी की श्रद्धा में नहीं आता। समझ में आया?

ज्ञेय अवस्था का जानपनामात्र ज्ञान है; उससे भिन्न कुछ वस्तु.... ज्ञानवस्तु मानो पदार्थ ही नहीं, द्रव्य ही नहीं। समझ में आया? यहाँ यह बात ली है। एक तो बाह्य वस्तु पलटने पर ज्ञानपर्याय उस आकार से पहले परिणमी थी, बाद में उसे पलटने पर ऐसे परिणम जाती है, अर्थात् कि उस वस्तु के कारण से यह थी और यह एक ज्ञान की उत्पत्ति का काल गया, इसलिए दूसरा हुआ, इसलिए मानो मैं ही दूसरा हो गया। मेरी वस्तु ही स्वयं त्रिकाल ज्ञायक है, ऐसा वह नहीं मानता। समझ में आया? यह सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर और अन्तर में मिथ्यात्व तथा अन्तर और अन्तर में सम्यक्त्व।

उससे भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है;.... जानपनेमात्र वस्तु। बाह्यवस्तु के कारण एक मानना, वह मिथ्यात्व है और बाह्य वस्तु निमित्त के अवलम्बन से अपने में उत्पन्न हुआ ज्ञान उतना ही मानना, वह भी मिथ्यादृष्टि है। दो बातें हुईं। यह आयेगा आगे। '**बाह्यवस्तुषु**' के अर्थ में आयेगा। अन्दर '**बाह्यवस्तुषु**' के अर्थ में आयेगा। समझ में आया? समझ में आता है इसमें? ऐसा धर्म कैसा होगा यह?

भाई! धर्म के विरुद्ध का अधर्म अभी कहा जाता है, बाद में कहा जाएगा धर्म। अधर्म अज्ञानी कैसे उत्पन्न करता है?—कि परवस्तु की वर्तमान अवस्था का जो भाव है, उसके लक्ष्य से उत्पन्न हुआ अपने में ज्ञान की ज्ञेयाकाररूप पर्याय, वह पर्याय—अवस्था पर की पलटने से यह पलट जाती है, यह ज्ञेयाकार जितनी पर्याय, उतना ही मैं हूँ, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि अपनी अवस्था पलटने पर मानों मैं नाश हो जाता हूँ, (ऐसा मानता है)। उसे द्रव्यस्वरूप त्रिकाल ज्ञायक है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान तो नहीं। समझ में आया? कहाँ गये? 'दास' आये थे न? गये? गये। सवेरे कहीं नहीं थे? नहीं था? ठीक!

ऐसी अनुभवरूप प्रतीति करता है। देखो! अंशमात्र भी मैं रहा नहीं, हों! ऐसे पानी का लोढ चलता हो न, पानी का लोढ। इस प्रकार ज्ञानपर्याय उसे जानती है न, पर्याय। वह लोढ जैसे ऊँचे (जाए), वैसे ज्ञान उस प्रकार से ज्ञेयाकार परिणमा। ऐसा जहाँ लोढ हुआ, वह भी मन में ऐसे हो जाता है। तू कहाँ ऊँचा-नीचा होता है? उस ज्ञान की पर्याय में ऐसा जो ऊँचा लोढ ज्ञात होता है और ऊँचा लोढ़ जहाँ नीचे आता है, वहाँ ऐसे कर डालता है, परन्तु तुझे ऐसे करने का क्या कारण है? और वह लोढ जहाँ वापस ऐसे आवे तो ऐसे करे, परन्तु ऐसा तुझे क्या है? तेरी पर्याय तो तुझमें तेरे कारण से परिणम रही है। ऐसा होता है या नहीं? रमणीकभाई! हमारे उमराला में बहुत पानी आवे। दो-दो कोस गहरा पानी। ऐसे रहंट चले न, छोटी उम्र में यह सब बहुत देखा हुआ। बहुत लोढ। माथोडा-माथोड़ा पानी। सिर भले ऐसा हो, वह ऊँचा हो वहाँ,... उसे पर ज्ञेयाकार पर्याय पर के कारण होती है, इसलिए ऊँचा होवे तो स्वयं ऊँचा होता है। वह जहाँ नीची हो तो (स्वयं नीचा हो जाता है), परन्तु उसका कारण क्या? समझ में आया?

इसी प्रकार इस शरीर के शिथिलपने के काल में जब ज्ञान उसे जानता हुआ उत्पन्न होता है, तब उसे ज्ञान की अवस्था उसके कारण से हुई, ऐसा जानता है। वह जहाँ शिथिल पड़ने लगी, ऐसे कड़क थी, कड़क, कठिन (थी), वह कठिन की जहाँ शिथिल पड़ी, तब ज्ञान भी मानो शिथिल पड़ने लगा। ऐसा परालम्बी ज्ञेयाकार से परिणमता ज्ञान, उतना ही मैं हूँ और उसके कारण मैं हूँ, ऐसा माननेवाला ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द आत्मा को श्रद्धा में नहीं साध सकता। समझ में आया?

ऐसी अनुभवरूप प्रतीति करता है। 'कलयन्' है न? **'कलयन्'। 'कलयन्'** अर्थात् अभ्यास से है। ऐसा उसे अभ्यास हो गया, अनुभव हुआ। बस! है? यहाँ तक तो कल अपने आया था। कल यहाँ तक आया था न? इसमें तो इतना सिद्ध किया है कि भगवान आत्मा एक समय का ध्रुव चिदानन्दमूर्ति सत्... सत् अखण्ड, उसकी एक समय की पर्याय—अवस्था ऐसी अवस्था में उसका ऐसा स्वभाव है कि जो निमित्त है, वैसा ही यहाँ ज्ञान (होता है)। ज्ञान का स्वभाव जैसी अवस्था है, वैसा ज्ञान यहाँ स्वयं के कारण से होता है, हों! उसके बदले यह मानता है कि उसके कारण से हुआ। एक तो यह भूल। दूसरा, उसके पलटने पर मानो मैं भी उसे पलटने से पलट गया। दो भूलें। तीसरा, ज्ञान की अवस्था में जितनी यह ज्ञानपर्याय पर को जानती है, उतना पर्याय का धर्म नहीं है। उस पर्याय का धर्म स्वद्रव्य को जानने की पर्याय है, तो पर को जानने की पर्याय का धर्म है। समझ में आया? इन तीनों में अज्ञानी की भूल होती है। न्याय समझ में आता है इसमें?

भगवान आत्मा स्वरूपज्ञान की मूर्ति! वह तो चिदानन्द आनन्दकन्द अखण्डानन्द ध्रुव वस्तु है, पदार्थ है न! उसकी एक समय की ज्ञान की पर्याय से ही यहाँ बात लेनी है। अत: वह ज्ञान की एक समय की दशा, उसे जैसा निमित्त है, वैसा ही यहाँ ज्ञेयाकार ज्ञान परिणमने का अपना उपादान पर्याय का धर्म है। अब वह धर्म निमित्त के लक्ष्य से हुआ, निमित्त के कारण हुआ माननेवाला एक तो मिथ्यादृष्टि है। उसे स्व का लक्ष्य होता नहीं। एक बात। और जैसा निमित्त अवलम्बन है, अवलम्बन कहो, या निमित्त कहो, दोनों एक ही है। पाठ में अवलम्बन पड़ा है न? अवलम्बित निमित्त। उसके पलटने से मेरी अवस्था, उसके पलटने से मेरी पलट गयी, उसके कारण से पलट गयी। परन्तु मैं

एक द्रव्य हूँ और मेरी पर्याय का परिणमने का—पलटने का स्वभाव है, ऐसा नहीं जाना। समझ में आया? वह भी मिथ्यात्व और अज्ञान और अधर्म का दु:खरूप वेदन है। तीसरा, भगवान आत्मा की एक समय की ज्ञान पर्याय, उस पर्याय का इतना पर्यायपना है, पर्याय का इतना पर्यायपना होना चाहिए कि स्वज्ञेय को पर्याय जाने, स्वज्ञेय को जाने और परज्ञेय को जाने, इतना पर्याय का धर्म है। इतना उस पर्याय को उसने नहीं माना तो द्रव्य को भी नहीं माना और पर्याय भी नहीं मानी। आया था न? पर्याय साधती नहीं। आया था न? पहले में आया था। नीचे से है।

(कलश २४८)। **सर्वथा वस्तुरूप मानता है अथवा सर्वथा पर्यायमात्र मानता है, वे जीव एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं क्योंकि वस्तुमात्र माने बिना पर्यायमात्र मानने से पर्यायमात्र भी नहीं सधती, वहाँ अनेक प्रकार से साधन-बाधन है, अवसर प्राप्त होने से कहेंगे; अथवा पर्यायरूप माने बिना वस्तुमात्र मानने से वस्तुमात्र भी नहीं सधती....** है न? समझ में आया? एक समयमात्र का मानने से वस्तु भी नहीं सधती। किसकी है यह पर्याय? किसकी यह पर्याय? अकेली वस्तु मानने से भी मानने की जो पर्याय है, वह क्या है? समझ में आया? वस्तु को अकेली माने और पर्याय नहीं है। यह वस्तु, यह वस्तु। तो अकेली वस्तु को मानने जाए तो मानना, यह क्या है? वह तो पर्याय है। दोनों का नाश हो जाता है। क्यों, देवानुप्रिया! लॉजिक है या नहीं यह भगवान का? कुछ न्याय से बात करते हैं या नहीं? आहाहा!

कहते हैं, भाई! अकेली चीज़ को मानने से, वस्तु अकेली है पर्याय नहीं, तो वह वस्तु सिद्ध नहीं होगी। क्यों?—कि मानना, वह पर्याय है। मानना वह पर्याय है। जानना कि यह है, वह पर्याय है। इसलिए यह वस्तु है, ऐसा अकेले मानने से पर्याय सिद्ध नहीं होती तो द्रव्य भी सिद्ध नहीं होता। अकेली पर्याय को मानने से, वह पर्याय किसकी है? कहाँ से आयी और किसकी है? अकेली पर्याय मानने पर किसकी पर्याय? वस्तु सिद्ध नहीं होती और पर्याय भी सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? यह तो अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान है, उसकी यहाँ बात है। उसका साधन और बाधन और उसका ध्येय सब अन्तर में और अन्तर में है। समझ में आया?

उससे भिन्न कुछ वस्तुरूप ज्ञानवस्तु नहीं है। 'कलयन्' ऐसी प्रतीति अज्ञानी

करता है। मेरी ज्ञानदशा... क्योंकि वस्तु त्रिकाल है, वह तो श्रद्धा में है नहीं और वर्तमान अवस्था को लक्ष्य में—ध्येय में परद्रव्य है और परद्रव्य के पलटने से यह भी पलटी। ऐसा हूँ, वह पलटनेवाला है, इसलिए पलटता हूँ, ऐसा तो है नहीं। वस्तु के लक्ष्य से—ध्येय से यह अवस्था पलटती है तो वस्तु को नहीं मानता, अकेली पर्याय को मानता है। यह अधिकार है न? पर्यायमात्र मानता है, द्रव्यरूप नहीं मानता। दूसरी लाईन हुई हुई है। समझ में आया?

एक समय की ज्ञान की, श्रद्धा की अवस्था आदि की मानने से वस्तु को नहीं मानता तो वह पर्याय पर के अवलम्बन से लक्ष्य हुआ, इसलिए ध्येय उसका निमित्त में गया है। यहाँ तो ध्येय है नहीं। वहाँ ही गया है। वहाँ गया और वहाँ पलटने लगा तो मैं भी पलट गया, मैं कुछ रहा नहीं। पलटने पर कोई चीज़ पूरी रही? कि मैं रहा ही नहीं। समझ में आया? अब यहाँ से शुरुआत होती है। यहाँ तक तो कल आया था।

'पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्' 'पूर्व' किसी पहले अवसर में... कोई पहले समय में। जो देह की अवस्था लक्ष्य में थी और ज्ञान की उत्पत्ति अपने में उपादान से हुई, निमित्त वह देह की अवस्था थी। **पहले अवसर में जानकर, उसकी आकृतिरूप हुई....** आलम्बित अर्थात् निमित्त। आलम्बन अर्थात् निमित्त। उसे जानकर उसकी आकृति हुई। **जो ज्ञेयाकार ज्ञानपर्याय। 'बोध्य'** अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयाकार। यहाँ ज्ञान की पर्याय अपने में अपने से (हुई)। उसके नाश के समय पहले की पर्याय जहाँ वहाँ गयी, वहाँ **विनाशसम्बन्धी किसी अन्य अवसर में....** अर्थात् वहाँ गयी तो यहाँ भी मेरी गयी। दूसरे समय में पर्याय ही गयी, मैं कुछ रहा नहीं। ऐसा **ज्ञानमात्र जीववस्तु का नाश मानता है....** भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, त्रिकाल वस्तु ऐसी की ऐसी है। उसकी वर्तमान अवस्था ज्ञेय के लक्ष्यवाली पलटने पर भी वस्तु का नाश कभी नहीं होता। यह अंश पलटा है, पूरा अंशी गया नहीं; परन्तु अंश जाने से निमित्त के ध्येय से—अवलम्बन से प्रगट हुआ ज्ञान, निमित्त पलटने पर मैं पूरा पलट गया, किंचित्मात्र मेरी चीज़ पूरी ध्रुव रही, ऐसा वह नहीं मानता। जरा यह तो सब लॉजिक-न्याय से बात है, भाई! अभी तो अनेकान्त है या नहीं?

पर के अवलम्बन से हुआ ज्ञान, उसके पलटने से पूरा द्रव्य नाश हो जाता है, यह

एकान्त माननेवाले हैं। समझ में आया? यह तो अभी बड़ा अन्तर अभी तो। वर्तमान ज्ञानदशा... यह शरीर की कमजोरी, कड़काई, निरोगता है, वह अवस्था लक्ष्य में आयी, तो कहते हैं कि निरोगता, वह कर्ता और यह पर्याय, वह कार्य—यह तो बड़ी आठ पंशेरी की भूल। मण में आठ पंशेरी की (भूल है)। क्या कहते हैं तुम्हारे? सम्पूर्ण। अज्ञानदशा, जैसा वह निमित्त है, वह कर्ता है। क्योंकि उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान (हुआ), इसलिए यह निमित्त, वह कर्ता (है) ऐसा अज्ञानी मानता है और वह स्वयं उसके कारणरूप है, इसलिए यहाँ ज्ञेयाकार परिणमा, इसलिए उसे ही कारण मानता है। उस निमित्त को ही आधार मानता है। समझ में आया?

वर्तमान ज्ञानदशा ऐसी ही ज्ञेयाकार और जैसा लक्ष्य है, उसी प्रकार से परिणमने का, उस काल में अपने काल में परिणमने का स्वभाव है, उसके काल की अवस्था के कारण से नहीं, तथापि यह अवस्था उसके आधार से यह अवस्था हुई, ऐसा माननेवाला पर से नास्ति है, ऐसा नहीं मानता; परन्तु मैं पर से अस्ति हूँ, ऐसा मानता है। समझ में आया? गजब बात, भाई! **ऐसा है एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव।** इसलिए उसे दु:खरूप दृष्टि अन्तर उत्पन्न होती है। वह पूरा आकुलता में वेदा जाता है। क्योंकि पूरा आत्मा ज्ञायकमूर्ति है, वह दृष्टि में नहीं है और क्षणिक अवस्था उसके कारण से उत्पन्न हुई पराधीन दृष्टि और क्षणिक अवस्था जितना मैं, वह भी अंश में पूरा माननेवाला मिथ्यादृष्टि दु:ख को ही वेदता है। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह पर के कारण से नहीं, हों! इस निरोगता के कारण से सुख और रोग के कारण से दु:ख, यह बात भी यहाँ नहीं है। तब तो निरोगता ने यहाँ कल्पना का सुख उपजाया। ऐसा नहीं है। इसने स्वयं उत्पन्न किया है। समझ में आया? इसी प्रकार सरोगता ज्ञान में आयी, इसलिए दु:खरूप इसकी कल्पना हुई, ऐसा नहीं है। इसने कल्पना खड़ी की है। मैं सरोग हूँ। सरोग का ज्ञान मैं हूँ, ऐसा न मानकर, मैं सरोग हूँ—ऐसा माना, उसने अंश में ही पूरा आत्मा मान लिया। अथवा पर के कारण आत्मा की वर्तमान पर्याय है, ऐसा मान लिया। ऐसी असत्य की मान्यता को तो दु:ख ही होगा, दूसरा क्या होगा?

मुमुक्षु : इस शरीर के कारण से दु:ख आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस शरीर के कारण नहीं आया। जेचन्दभाई! कहो, समझ में आया इसमें? यह चिल्लाहट मचाते हैं, शरीर के कारण ऐसा हो गया, ऐसा हो गया। अब धूल भी नहीं कुछ। आहाहा! ऐसे तो बराबर ख्याल है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

कहते हैं, पहले अवसर में जो आलम्बित आकृतिरूप ज्ञान की पर्याय ज्ञेयाकार हुई, उसके विनाश सम्बन्धी। पहले समय में थी, दूसरे समय में गयी। गयी, इसलिए मानो मैं पूरा गया, पूरा खिंच गया। मानो पानी में ऐसे लक्ष्य था न? पानी ऐसे बहने लगा, इसलिए मेरी पर्याय ही बहने लगी। ऐसे... ऐसे...। हालत—कल्लोल पानी में उठती है न? मैं भी चला साथ में परन्तु तू कहाँ? ते तो यहाँ है। इसी प्रकार शरीर की हालत रोग अवस्था होने पर जहाँ फेरफार होकर जहाँ गहरी उतरने लगी (तो) मैं गहरा उतर गया। अर्थात् कि मेरा अभाव हो गया। गहरे का अर्थ यह है। मेरे जानने के स्वभाव का ही अभाव हो गया। आहाहा! समझ में आया या नहीं? ऐसा माननेवाला भगवान ज्ञाता-दृष्टा त्रिकाली है और उसकी पर्याय उसके द्रव्य में से द्रव्य के परिणमन से परिणमन होता है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया?

मुमुक्षु : भाई हिले....

पूज्य गुरुदेवश्री : हिले? कहाँ हिले और कहाँ जाए? आहाहा!

उसको स्याद्वादी सम्बोधन करता है— लो। उसे स्याद्वादी—अनेकान्तवादी—सम्यग्दृष्टि समझाता है अथवा कहता है अथवा स्याद्वादी कैसे होते हैं, यह समझाते हैं। '**पुनः स्याद्वादवेदी**' स्यात् अर्थात् अपेक्षा से माननेवाला। पर के अवलम्बन से अपनी पर्याय ज्ञेयाकार होने पर भी उस ज्ञेयाकार का मुझसे परिणमन हुआ है और उतने ज्ञेयाकारमात्र भी मेरी पर्याय इतनी ही नहीं। मेरी पर्याय ज्ञान के आकार स्वज्ञेय को जाने, ऐसे ज्ञेयाकार का परिणमन (मेरा है)। स्वज्ञेय और परज्ञेय। उसके आकार परिणमने की मेरी पर्याय है, ऐसा ज्ञानी मानता (है)। **एकान्तदृष्टि जिस प्रकार कहता है, उस प्रकार नहीं है;....** तब क्या है? समझ में आया? **अनेकान्त अनुभवशील...** देखो! एक समय की पर्याय इतना पर को जानने पर भी और पर पलटने पर भी, वह मेरी पर्याय पर के

कारण पलटी नहीं है। क्योंकि ज्ञानी की दृष्टि ध्रुव के ऊपर है, ध्रुव ज्ञायक के ऊपर है। ज्ञायक के ऊपर होने से उसकी पर्याय ज्ञायक के लक्ष्य से पलटी है। इसलिए वह अनेकान्तदृष्टि अनुभवशील पुरुष कहा जाता है। समझ में आया? वह (अज्ञानी) अनुभव से शून्य था, आत्मा के अनुभव से शून्य था। यह अनुभवशील है। भाषा देखो, प्रयोग की है! है न?

अनेकान्त अनुभवशील जीव,.... भगवान आत्मा त्रिकाली ज्ञायक वस्तु हूँ, ऐसा जहाँ प्रतीति (हुई है) और ज्ञान की पर्याय में पूर्ण वस्तु को लक्ष्य में लिया है, इससे पूर्ण के लक्ष्य से वर्तमान पर्याय स्वज्ञेय के आकार से परिणमन (होता है) और पर है, उसका भी ज्ञेयाकार परिणमन (होता है), ऐसा मानकर वह पर्याय पलटने पर भी मैं तो पूरा द्रव्य हूँ, इसी तरह दूसरे समय भी मेरे द्रव्य का ही परिणमन है, ऐसे अनुभवशील अपने आत्मा को अनेकान्तदृष्टि अनुभवता हुआ आनन्द आता है। समझ में आया? उसको (अज्ञानी को) दु:ख आता है, इसे आनन्द आता है। यह भारी बात! सत्य न मानने से दु:ख और मानने से सुख। वास्तव में ऐसा है। आहाहा!

अनेकान्त अनुभवशील जीव,... 'पूर्ण: तिष्ठति' अर्थात्? **त्रिकालगोचर ज्ञानमात्र जीववस्तु—ऐसा अनुभव करता हुआ उस पर दृढ़ है।** होता है, उसकी वर्तमान पर्याय पलटने पर भी उस पर्याय का आरूढ़पना त्रिकाली द्रव्य के ऊपर है। यहाँ काल के दो प्रकार लिये हैं। त्रिकाल वस्तु है, वह एक काल, वर्तमान अवस्था, वह वर्तमान काल, वह भेदरूप काल। भेदरूप काल अकेले को माननेवाला, त्रिकाली वस्तु को नहीं माननेवाला, वह मिथ्यात्व है और त्रिकाल ज्ञायक वस्तु को माननेवाला वर्तमान उसका काल पर्यायभेद—त्रिकाल का एक अंश भेदपर्याय, त्रिकाल पर आरूढ़ होने से उसकी पर्याय अनेकान्तरूप से परिणमती हुई आनन्द और सम्यग्दर्शनरूप परिणमती है। समझ में आया? यह धर्म कैसा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या होता है? आनन्द होता है। मरे कौन? कौन मरे? कहा न यह। गहरा-गहरा कोई उतरता नहीं। गहरे जाता है अन्दर। क्या कहा? देखो!

अनेकान्त अनुभवशील जीव, त्रिकालगोचर ज्ञानमात्र जीववस्तु—ऐसा अनुभव करता हुआ उस पर दृढ़ है। कहाँ जाता है? ज्ञायकभाव त्रिकाल हूँ, वहाँ दृष्टि लगी है। निमित्त और वर्तमान पर्याय पर दृष्टि है, वह पर्यायमूढ़ स्वकाल में अस्ति अपनी है, ऐसा नहीं मानता और स्वकाल से त्रिकाल मैं हूँ, ऐसे अपने ज्ञायकभाव पर दृष्टि का आरूढ़ होने से, वर्तमान पर्याय पलटती (होने) पर भी मैं कहीं पूरा नाश नहीं हो जाता, ऐसी ज्ञायक त्रिकाल पर (दृष्टि) आरूढ़ होने से उसे अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन और सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! गजब बात भाई यह! ऐसा मुम्बई में रखें तो कहेंगे, यह क्या? यह क्या लगायी है? समझे नहीं।

भाई! यह तो अकेले तत्त्व के मर्म हैं। मर्म में मर्म। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय की अवस्था से परिणमता होने पर भी और वह अवस्था बदलती होने पर भी वस्तु त्रिकाल ज्ञायक और आनन्द है, ऐसे ज्ञानमूर्ति भगवान पर जिसका अस्तित्व-दृष्टि पड़ी है, उसकी पर्याय परिणमती है, एकरूप रहनेवाला परिणमता है, ऐसा अनेकान्त होने पर भी उसकी दृष्टि में द्रव्य पड़ा है; इसलिए उसे सम्यग्दर्शन और आनन्द का अनुभव होता है। अनेकान्त का फल अमृत है, एकान्त का फल दु:ख है। आहाहा! शशीभाई! गजब बातें, भाई यह! वेदान्त को कुछ है? एक आत्मा, जाओ! हो गया। एक आत्मा सर्व व्यापक।

मुमुक्षु : विचार तो करना चाहिए न...

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ हो जाए। क्या विचार करना चाहिए। यहाँ वस्तु जितने क्षेत्र में है, उतने में उसका त्रिकाल और वर्तमान काल है। इतने क्षेत्र में है। यह क्षेत्र में आ गया है। इतने क्षेत्र में है। क्योंकि उसका एकाग्रपना इतने में होता है, ऐसे नहीं होता, समझ में आया? असंख्य प्रदेशी भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, वर्तमान समय की अवस्थारूप परिणमे, यहाँ काल की बात चलती है इसलिए। वह काल भी वर्तमान असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में अनन्त गुण, ऐसा जो पिण्ड, उसका वर्तमान काल का समय, वह समय भी इतने असंख्य प्रदेशी के ऊपर ही एक समय की पर्याय वर्तती है। बाह्य ऐसे वर्तती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो इस जीव की दया और मृत्यु तथा सामने जो दिखता है न ज्ञान की पर्याय में, वह पर्याय का धर्म है कि वहाँ जीव और शरीर भिन्न पड़े उनके रूप से ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान परिणमे। वह ज्ञानपर्याय उन्हें भिन्न नहीं कर सकती, इकट्ठे नहीं रख सकती। तथा उस प्रकार का यहाँ ज्ञान परिणमा, उतना ज्ञानमय भी आत्मा नहीं है। यह तो जिसने ज्ञान की पर्याय को इतनी मानी कि दूसरे का अस्तित्व रखे और टाले, ऐसा ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व उसने पर के कारण माना या पर के अंशों का अस्तित्व इस ज्ञान की पर्याय के कारण माना यह तो बड़ी विपरीत मिथ्यात्व एकान्तदृष्टि है। आहाहा!

यहाँ तो अन्दर के दो प्रकार के अंशों में ही एकान्त और अनेकान्त उतारा है। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु... अनन्त-अनन्त अचिन्त्य अमाप स्वभाव का सागर प्रभु है। उसके ऊपर जिसकी ज्ञान की पर्याय आरूढ़ है, वह पर्याय पलटने पर भी मैं कहीं पूरा पलटकर अभाव हो जाता हूँ, ऐसा नहीं है। मेरापना रखकर—ध्रुवरूप रहकर मैं पलटता हूँ, इसका नाम अनेकान्तदृष्टि—सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। उस पर के कारण नहीं।

दूसरे प्रकार से कहें तो पर की दया के काल में जो शुभभाव हुआ... समझ में आया? वह शुभभाव भी पर की दया पली, इसलिए हुआ—ऐसा नहीं है और वह शुभभाव है, इसलिए ज्ञान ज्ञेयाकार परिणमा—ऐसा नहीं है और ज्ञेयाकार इतना परिणमा, इतना भी आत्मा नहीं है। समझ में आया? नेमिदासभाई! बहुत सूक्ष्म। उकताहट आती होगी, ऐसा होगा यह? कभी पक्ष में चढ़ा नहीं। वीतरागमार्ग क्या है, उसके पहलू को सुनने में आया नहीं। ऐसे का ऐसा काल बिताया। हम जैन हैं, जैन हैं, जैन (हैं)। अजैन को जैन मानकर थोथा किये। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसमें एक समय की अवस्था में पर के कारण यह अवस्था हुई, ऐसा माननेवाला वह अजैन मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। और जैन उसे कहते हैं... जैन अर्थात् वस्तु की स्थिति। एक समय की अवस्था पर के लक्ष्य में उसके ज्ञेयाकार परिणमी होने पर भी वह पर्याय इतनी और इतना मैं नहीं। वह पर्याय उसके कारण नहीं,

उतनी पर्याय जितना नहीं। मैं तो एक अखण्डानन्द ज्ञायक हूँ, ऐसी जिसकी पर्याय द्रव्य के ऊपर ढली है, उसे राग की एकता टली है और जैनदशा की वीतरागपर्याय उत्पन्न हुई है, उसे जैन कहा जाता है। ठीक परन्तु यहाँ आ गये, यह ठीक किया। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा !

यह तो भगवान का अमृत है। बापू ! आहाहा ! कहते हैं, समझ में आया ? '**पूर्णः तिष्ठति**' **त्रिकालगोचर ज्ञानमात्र जीववस्तु—ऐसा अनुभव करता हुआ,....** '**पूर्णः तिष्ठति**' की व्याख्या की। '**पूर्णः**' अर्थात् त्रिकालगम्य वस्तु '**तिष्ठति**' अर्थात् उसमें इसका लक्ष्य लग गया है। समझ में आया ? भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा अनन्त गुणस्वरूप आत्मा स्वयं अनन्त गुणस्वरूप, जैसे परमात्मा की—अरिहन्त की पर्याय प्रगटी है, ऐसा ही यह आत्मा द्रव्य से अखण्डानन्द प्रभु है। ऐसा पूर्ण भगवान, उस पर जिसकी दृष्टि है, उसका पर्याय का परिणमन बदलने पर भी, शरीर के आकार ज्ञान होता और बदलने पर भी मैं पूरा बदल जाता हूँ, ऐसा नहीं है। क्योंकि पूर्ण के ऊपर जिसकी दृष्टि है। क्योंकि त्रिकाल ज्ञायकमात्र भगवान के ऊपर दृष्टि है इसलिए '**पूर्णः तिष्ठति**' वह अपूर्ण पर्याय में अपना (अस्तित्व) मानकर नाश हो जाता है। यह '**पूर्णः तिष्ठति**' यह जीता है। क्या कहा ?

एक समय की अवस्था में ज्ञेयाकार समबन्धी ज्ञान होने पर, ज्ञेयाकार पलटने से मैं पलट जाता हूँ, (ऐसा जो अनुभव करता है), वह जीव मर जाता है। अपनी दृष्टि में तत्त्व को मार डालता है। यह '**सीदति**' दुःखी होता है; और यह '**पूर्णः तिष्ठति**'। ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा की पर्याय का पलटन होने पर भी और पर के आकार ज्ञान का अपना स्वभाव होने पर भी उसका अपना ज्ञान पूरा है, उस प्रमाण भी यहाँ पर्याय में ज्ञान होने पर भी, इतनी पर्याय जितना मैं नहीं। उस पर्याय को स्थापित किया है द्रव्य में। समझ में आया ? आहाहा ! इसका नाम अनेकान्त और इसका नाम जैन। यह जैन कोई वाडा नहीं। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा जिसे अनुभव में आवे, उसे जैन कहा जाता है। समझ में आया इसमें ? थैली में डाला चिरायता, ऊपर लिखा मिश्री, वह कहीं चिरायता मीठा नहीं हो जाता। (इसी प्रकार)

जैन नाम से थैली में नाम रखे, अन्दर भान कुछ नहीं हो। पर्याय कौन और द्रव्य कौन? अभी तो नाम भी सुने न हों। पर्याय क्या होगी?

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... होवे तो उसे खबर नहीं। क्योंकि वह पर्याय त्रिकाल द्रव्य की है, ऐसा नहीं मानता और पर के कारण मानता है, उसे भी द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं। और जिसे एक समय की पर्याय पर के कारण नहीं, परन्तु मेरे कारण से है, इतना ही माने तो भी त्रिकाल द्रव्य के कारण माना नहीं, तो पर्याय भी यथार्थ मानी नहीं। किसकी पर्याय? उसने द्रव्य और पर्याय दोनों माने नहीं। नवनीतभाई! गजब यह... वस्तु तो यह है। आहाहा!

त्रिकाल गोचर अर्थात् पूर्ण। **तिष्ठति**' अर्थात् उसमें दृष्टि को दृढ़ किया है। समझ में आया? धर्मी जीव ने जैन जीव ने अर्थात् जैन होनेवाले आत्मा ने अपना ज्ञायक त्रिकाल स्वभाव, उसमें वर्तमान पर्याय को वहाँ स्थापित किया है, इसलिए पर्याय पलटने पर भी द्रव्य ऐसा का ऐसा रहता है, मेरा नाश नहीं होता। अविनाशी भगवान आत्मा हूँ, ऐसा जिसकी दृष्टि में वर्तता है, उसकी पर्याय में राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान शान्ति को वेदता है, उसे जैन और समकिती कहा जाता है। समझ में आया? ऐ... जयन्तीभाई! कभी सुना नहीं होगा वहाँ तुम्हारे। क्यों, भगवानजीभाई! तुम्हारे रिश्तेदार तो कहते हैं, हों! यह कभी सुना नहीं। आहाहा!

अरे! भगवान का मार्ग... भगवान अर्थात् आत्मा, हों! वह तीन लोक का नाथ है। एक समय में तीन काल-तीन लोक को पर के लक्ष्य बिना परिणमकर जाने, ऐसी उसकी ताकत है। आहाहा! समझ में आया? तीन काल और तीन लोक तो है, तो भी ज्ञान की पर्याय क्यों नहीं होती! यदि उसके कारण होती हो तो। वह पर्याय ही स्वयं, पर्यायवान भगवान आत्मा त्रिलोकनाथ है, उसके लक्ष्य से वह केवलज्ञान की पर्याय परिणम जाती है, तब लोकालोक को निमित्त कहा जाता है। अवलम्बन है न? अवलम्बन शब्द। तब निमित्त को अवलम्बन कहा जाता है। यह तो केवलज्ञान तक ले गये अवलम्बन में। समझ में आया? अवलम्बन कहो... आता है न? प्रवचनसार में आता

है। जो निमित्त अवलम्बन है, उस ज्ञेय का ज्ञान—पूर्ण ज्ञान न करे तो ज्ञान किसका? और वह ज्ञान पूर्ण रीति से ज्ञायक में अर्पणता न करे तो वह ज्ञेय किसका? लालचन्दभाई! प्रवचनसार, नोट (फुटनोट) किया है। है या नहीं? ३६... ३६। देखो! यह निकला, देखो! **ज्ञान को ज्ञेयभूत द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त है। ज्ञान ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व क्या? ज्ञेय को ज्ञान का आलम्बन अर्थात् निमित्त है। ज्ञेय ज्ञान में न ज्ञात हो तो ज्ञेय का ज्ञेयत्व क्या?** सर्वज्ञ कहना और उसे सर्वज्ञता सिद्ध न होना, वह सर्वज्ञ कैसा? तीन काल, तीन लोक का एक समय में सर्वज्ञ और सर्वज्ञतापना प्रगट होता है। सबपने का ज्ञान उसे एक समय में प्रगट होता है। आहाहा! विवाद उठा। यदि भगवान ऐसा सब जाने तो नियत हो गया। भगवान के ज्ञान में सब ज्ञात हो जाए तो भगवान ने जो देखा, वह नियत हो गया। अरे! सुन, यह क्या कहते हैं। यह नियत का इनकार किया ही नहीं। वह तो एकान्त नियत का निषेध किया है। साथ में पुरुषार्थ, स्वभाव, नियत, भवितव्य और उस काल में उस प्रकार के कर्म का अभाव—सब पाँचों (समवाय) भगवान ने देखा है और सम्यग्दृष्टि को पाँचों ज्ञान में आते हैं। आहाहा! भारी बात परन्तु भाई! समझ में आया?

एक समय में सर्वज्ञपना परिणम गया। कहते हैं कि वह पर्याय लोकालोक के कारण हुई, उस पर्याय में लोकालोक का ज्ञान है, हों! परन्तु उस पर्याय का इतना ज्ञान नहीं, पूरे द्रव्य-गुण अपनी (ज्ञान) पर्याय में है और सबका है। उस पर्याय को जानने से लोकालोक ज्ञात हो जाता है। जल को देखने से जल में तारा के आकार इकट्ठे दिखाई दे जाते हैं। समझ में आया? जल के (तालाब नदी) पानी को देखने पर ऊपर के तारे, ६६९७५ क्रोड़क्रोड़ी तारे एक चन्द्र के साथ होते हैं। एक चन्द्र और एक सूर्य के साथ ६६९७५ क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। मानो ऐसा बड़ा समुद्र स्वच्छ हो। ऐसे देखने पर- इसे देखने पर वे दिख जाते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा का सर्वज्ञपद, उस पर्याय को देखने पर लोकालोक उसमें ज्ञात हो जाता है। समझ में आया? इतनी पर्यायवाला द्रव्य न माने और आगे-पीछे जाने—ऐसा माने, वह असर्वज्ञ माना, उसने सर्वज्ञ माना नहीं। उसे द्रव्य की पूर्ण सामर्थ्य की शक्ति की प्रतीति नहीं है। वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान में लोकालोक ज्ञात हुआ। लोकालोक का पलटन होता है तो यहाँ पर्याय पलटती है। अपनी पलटती है। वहाँ उसकी वर्तमान पर्याय है, वह भूत में जाती है और भविष्य की है, वह वर्तमान होती है। ऐसा यहाँ ज्ञान भी पलटता है। उसके कारण से पलटता है ?

मुमुक्षु : निमित्त नहीं रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह निमित्त तब कहलाता है। उसके कारण से पलटे तो निमित्त नहीं कहलाता, तब तो कर्ता हो गया। समझ में आया ? भगवान केवलज्ञान की पर्याय स्वकाली है। वह परकाल की अवस्था के कारण से नहीं है, परकाल से नास्ति है। इसमें आया या नहीं ? समझ में आया ? इस परकाल के कारण स्व की अवस्था में पर की अवस्था के कारण माने, वह मूढ़ है, उसकी अवस्था की खबर नहीं और पर अवस्था पलटी, इसलिए यहाँ ज्ञान की पर्याय पलटती है, वह मूढ़ है। अवस्था का पलटना, द्रव्य का परिणमन स्वभाव वह नहीं मानता। समझ में आया ?

भाई ! जैन परमेश्वर ने वस्तु देखी है, वैसी है, वह कहीं भगवान ने की नहीं है। भगवान ने कोई वस्तु को किया नहीं। वह तो जैसी है, वैसी जानी है और जानी है, वैसी कही है। वे कहीं किसी के कर्ता-बर्ता नहीं हैं। ऐसी जो वस्तु जिसके ज्ञान में न बैठे और उससे उल्टा बैठे, वह मिथ्यादृष्टि-एकान्तदृष्टि दुःखी होकर भटकता है। धर्मी जीव अनेकान्त अनुभवशील, अपनी वर्तमान पर्याय में भले अवलम्बन अर्थात् निमित्त दूसरी चीज़ हो, तथापि मेरी ज्ञान की पर्याय पलटने पर भी मैं ध्रुवरूप से पलटता हूँ। क्योंकि पर्याय का आधार द्रव्य है। इसलिए द्रव्य में ही उसने पर्याय को स्थापित की है। इसलिए पर्याय का आधार द्रव्य है, उस पर्याय का आधार निमित्त नहीं है। समझ में आया ?

कैसा दृढ़ है ? 'बाह्यवस्तुषु मुहुः भूत्वा विनश्यत्सु अपि' बाह्य वस्तु शब्द प्रयोग किया है। उसके दो अर्थ करेंगे। **समस्त ज्ञेय....** परन्तु बाह्य वस्तु **अथवा ज्ञेयाकार परिणमित ज्ञानपर्याय....** अनेक, वह भी बाह्य वस्तु। समझ में आया ? अभ्यन्त पूरी चीज़ एकाकार भगवान वस्तु ज्ञायकमूर्ति, उसकी अपेक्षा से एक समय की ज्ञान की पर्याय भी बाह्य है। त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति अभ्यन्तर तो यह एक समय की पर्याय बाह्य है

अथवा उस समय की पर्याय से बाह्य दूसरी चीज़ है, वह भी बाह्य है। '**बाह्यवस्तुषु**' इनके कथन का ढंग ही दूसरे प्रकार का है।

समस्त ज्ञेय... लोकालोक ज्ञेय अथवा ज्ञेयाकार परिणमित ज्ञान पर्याय। उसके **अनेक भेद, सो वे अनेक पर्यायरूप होते हैं,** बाहर की वस्तुएँ भी ऐसे भिन्न-भिन्न रूप परिणमती है और अपनी ज्ञान की पर्याय भी भिन्न-भिन्न रूप परिणमती—अवस्था भिन्न-भिन्न रूप होती है। '**मुहुः भूत्वा**' '**मुहुः**' है न? (अर्थात्) बारम्बार। '**मुहुः**' अर्थात् बारम्बार। '**भूत्वा**' अर्थात् होता है। '**विनश्यत्सु' अनेक बार विनाश को प्राप्त होते हैं,....** पर्याय उत्पन्न होती है, बाह्य चीज़—पर्याय उत्पन्न होती है और विनश जाती है। पर्याय भी उत्पन्न होती है अपने में और ऐसे बदल जाती है। **तो भी दृढ़ रहता है**। तो भी दृढ़ ज्ञायक भाव पर दृष्टि है, इसलिए अपना ध्रुवपना कायम रखता है। समझ में आया? इसमें क्या करना? दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, ऐसा होवे तो समझ में भी आये। अज्ञान। उसमें क्या समझना था? अनादि का मिथ्यात्वभाव कर रहा है। उसमें आत्मा कहाँ आया और उसमें सम्यक् कहाँ आया? समझ में आया?

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान ने आत्मा कैसा पर्याय से और द्रव्य से देखा, ऐसी इसकी प्रतीति में आवे, तब इसे जैन और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। कैसे आवे, कहते हैं?—कि बाह्य वस्तु पलटने पर भी और अपनी पर्याय पलटने पर भी इतना मैं नहीं, मैं त्रिकाल हूँ—ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है, उसकी पर्याय में भी अनेकान्तरूप शान्ति का वेदन भले पलटता जाए, पलटता जाए, परन्तु पलटता है ध्रुव के अवलम्बन से पलटता है, निमित्त के अवलम्बन से पलटता है—(ऐसा नहीं)। त्रिकाल ज्ञायक भाव त्रिकाल एक वस्तु के अवलम्बन से पलटता है। वर्तमान सामने पर्याय है, उसके कारण पर्याय पलटती है, ऐसा धर्मी-ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि नहीं मानता।

मुमुक्षु : क्यों नहीं मानता?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि ऐसा है नहीं। क्योंकि ऐसा है नहीं। जो अपनी पर्याय का पलटना अपने त्रिकाल ज्ञायकभाव के अवलम्बन से पलटता है, ऐसा मानता हुआ अपने

ध्रुव में दृष्टि स्थापित की है, निमित्त और पर से दृष्टि उत्थापित की है। समझ में आया?

'मुहुः' बारम्बार भले पलटे, कहते हैं। पर्याय भले पलटे। समझ में आया? **अनेक बार विनाश को प्राप्त होते हैं,....** पर्याय उत्पन्न भी हो और विनाश भी हो। तो भी वस्तु तो वस्तु, जिसकी द्रव्य पर दृष्टि है, इसलिए उसका परिणमन भी द्रव्य के कारण से प्रगट हुआ है। **और कैसा है? 'अस्य निजकालतः अस्तित्वं कलयन्'** लो। **ज्ञानमात्र जीववस्तु....** देखो! निजकाल ऐसा लिया, पूरा त्रिकाल। **ज्ञानमात्र जीववस्तु का.... 'निजकालतः' त्रिकाल शाश्वत् ज्ञानमात्र अवस्था से,...** त्रिकाल ज्ञानमात्र अवस्था अर्थात् वस्तु। एक त्रिकाल ज्ञायकमात्र भगवान पूर्णानन्द है, ऐसी जिसकी वर्तमान पर्याय में दृष्टि हुई है, उसे अनेकान्ती समकिती—अनेकान्त का अनुभव करनेवाला जैन और धर्मी कहा जाता है। बाकी दूसरे को जैन और धर्मी नहीं कहते। आहाहा! गजब बात, भाई! धरमचन्दजी!

वस्तुपना अथवा अस्तिपना, अनुभवता है, स्याद्वादी जीव। अर्थात्? वस्तु सामने पूरी सब पलटे और एक समय की अवस्था भी पलटे, परन्तु पलटती अवस्था, वह पलटनेवाला पूरा ध्रुव है, उसके ऊपर दृष्टि रहकर पलटती है, इसलिए त्रिकाली अस्तित्व की दृष्टि में जो वर्तमान पर्याय का परिणमना होता है, द्रव्य के लक्ष्य से होता है; इसीलिए शान्ति का, सम्यग्दर्शन का परिणमन होता है। इसलिए उसे अनेकान्ती जीव—धर्मी कहा जाता है, बाकी दूसरे को अधर्मी और अज्ञानी कहा जाता है। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २५७

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन् ।।११-२५७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसा है जो वस्तु को द्रव्यमात्र मानता है; पर्यायरूप नहीं मानता है, इसलिए ज्ञेय की अनेक अवस्थाओं को जानता है ज्ञान। उनको जानता हुआ, उन आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान। ये समस्त हैं ज्ञान की पर्याय, उन पर्यायों को ज्ञान का अस्तित्व मानता है, मिथ्यादृष्टि जीव। उनके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञेय की आकृतिरूप परिणमती हुई जितनी ज्ञान की पर्याय हैं, उनसे ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। ऐसा कहते हैं— 'पशुः नश्यति' [पशुः] एकान्तवादी [नश्यति] वस्तुस्वरूप को साधने से भ्रष्ट है। कैसा है एकान्तवादी? 'ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा बहिः भ्राम्यन्' [ज्ञेय] समस्त द्रव्यरूप [आलम्बन] ज्ञेय के अवसर, ज्ञान की सतता, ऐसा निश्चयरूप [लालसेन] है अभिप्राय जिसका—ऐसे [मनसा] मन से, [बहिः भ्राम्यन्] स्वरूप से बाहर उत्पन्न हुआ है भ्रम जिसको ऐसा है। और कैसा है? 'अर्थालम्बनकाले ज्ञानस्य सत्त्वं कलयन् एव' [अर्थ] जीवादि समस्त ज्ञेयवस्तु को [आलम्बन] जानते [काले] समय ही, [ज्ञानस्य] ज्ञानमात्र वस्तु की [सत्त्वं] सत्ता है [कलयन्]—ऐसा अनुभव करता है, [एव] ऐसा ही है। उसके प्रति स्याद्वादी वस्तु की सिद्धि करता है— 'पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति' [पुनः] एकान्तवादी जैसा मानता है, वैसा नहीं है; जैसा स्याद्वादी मानता है, वैसा है। [स्याद्वादवेदी] अनेकान्तवादी, [तिष्ठति] वस्तुस्वरूप साधने के लिए समर्थ है। कैसा है स्याद्वादी? 'अस्य परकालतः नास्तित्वं कलयन्' [अस्य] ज्ञानमात्र जीववस्तु का, [परकालतः] ज्ञेयावस्था के जानपने से, [नास्तित्वं] नास्तिपना है—ऐसी [कलयन्] प्रतीति करता है स्याद्वादी। और कैसा है? 'आत्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन्' [आत्म] ज्ञानमात्र जीववस्तु में [निखात] अनादि से एक वस्तुरूप [नित्य] अविनश्वर; [सहज] उपाय

बिना द्रव्य के स्वभावरूप—ऐसी जो [ज्ञान] जानपनारूप शक्ति तद्रूप [एकपुञ्जीभवन्] मैं जीववस्तु हूँ, अविनश्वर ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा अनुभव करता हुआ। ऐसा है स्याद्वादी।।११-१२५७।।

मागशर कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक-२०-१२-१९६५, कलश-२५७, प्रवचन-२७५

स्याद्वाद अधिकार, कलश टीका का ११ वाँ कलश

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन् ।।११-२५७।।

भावार्थ अर्थात् इसमें क्या कहना है, वह थोड़ा उपोद्घात मैं कहूँगा। भावार्थ (कहते हैं) परन्तु हो जाने के बाद भावार्थ होता है, किन्तु यहाँ तो पहले से भावार्थ करते हैं, क्योंकि इसमें जरा सूक्ष्म बात कहनी है न, इसलिए इसका उपोद्घात करते हैं **भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि....** एक पक्ष से देखनेवाला **एकान्तवादी ऐसा है जो वस्तु को द्रव्यमात्र मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है,....** वस्तु को वस्तुरूप से मानता है, परन्तु पर्याय जो पर के काल में होती है, अर्थात् वह पर्याय पर से होती है, ऐसा मानता है। समझ में आया?

इसलिए ज्ञेय की अनेक अवस्थाओं को जानता है ज्ञान। देखो! यह ज्ञान वस्तु, ज्ञेय शरीर आदि अवस्था को, अनेक अवस्थाओं को जानता है ज्ञान। **उनको जानता हुआ उन आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान।** उन्हें जानते हुए उनकी आकृति प्रमाण परिणमता है ज्ञान, **ये समस्त हैं ज्ञान की पर्याय,...** वह तो सब ज्ञान की पर्याय है। जैसे देह की उत्पत्ति के काल में ज्ञान की उत्पत्ति भी अपने में है, परन्तु देह की उत्पत्ति के काल में हुई; इसलिए देह की उत्पत्ति से मेरी पर्याय हुई - ऐसा मानता है। **उन पर्यायों को ज्ञान का अस्तित्व मानता है....** वह मात्र ज्ञान में परद्रव्य का अवलम्बन देखता है, उतनी पर्याय को ही आत्मा का अस्तित्व मानता है। समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि जीव। इसमें ऐसा दृष्टान्त दिया है कि देह की उत्पत्ति से आत्मा की उत्पत्ति – ऐसा मानता है। उसमें ऐसा था (कि) देह के नाश से मेरा नाश होता है, ऐसा। पर्याय पर को अवलम्बती है न? इस देह की उत्पत्ति से जीव की उत्पत्ति (मानता है)। अस्ति-नास्ति दोनों बात आ गयी। समझ में आया? ज्ञान की उत्पत्ति की पर्याय, देह से उत्पन्न हुई पर्याय, इसलिए यहाँ उत्पन्न हुआ है – ऐसा नहीं है। समझ में आया? देह की अवस्था उत्पन्न होती है, इसलिए अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं ही देह में उत्पन्न हुआ, देह के कारण हुआ। मेरी अवस्था उस क्षण में देह की अवस्था को जाननेवाली है, उससे मैं उत्पन्न हुआ, ऐसा न मानकर, देह की उत्पत्ति से मेरा उत्पन्न होना (हुआ), ऐसा मानता है। समझ में आया? **उन पर्यायों को ज्ञान का अस्तित्व मानता है मिथ्यादृष्टि जीव।** अथवा वह एक समय की जो ज्ञानपर्याय में अनेक अवस्थायें देह की ज्ञात हो, उतनी ही पर्याय को स्वयं मानता है। समझ में आया? **पर्यायों को ज्ञान का अस्तित्व मानता है....** उस पर्याय को ही पूरा ज्ञान का अस्तित्व मानता है।

उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि ज्ञेय की आकृतिरूप परिणमती हुई जितनी ज्ञान की पर्याय हैं, उनसे ज्ञान का अस्तित्व नहीं है.... उतना ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। ज्ञान की अवस्था में, पर्याय में जो ज्ञेयों की अवस्था उत्पन्न होती है, उस प्रकार से अपने ज्ञान की अवस्था उत्पन्न होती है, उतना कहीं आत्मा नहीं है। समझ में आया? **जितनी ज्ञान की पर्याय हैं, उनसे ज्ञान का अस्तित्व नहीं है ऐसा कहते हैं।**

'पशुः नश्यति' एकान्तवादी वस्तुस्वरूप को साधने से भ्रष्ट है। मैं ज्ञानस्वरूप त्रिकाल हूँ – ऐसा वह नहीं मानता। द्रव्य की पर्याय से उत्पन्न हुआ, उतना ही आत्मा, उतना आत्मा। **कैसा है एकान्तवादी?** देखो! **समस्त द्रव्यरूप ज्ञेय के अवसर ज्ञान की सत्ता ऐसा निश्चयरूप है अभिप्राय जिसका....** उस ज्ञेय के अवसर में जो पर्याय उत्पन्न हुई, उतना ही मैं हूँ। जाननेयोग्य के काल में ज्ञान की जो पर्याय हुई **ऐसा निश्चयरूप है अभिप्राय जिसका....** पर के कारण ही मेरे ज्ञान की पर्याय हुई। समझ में आया? यह पर नास्तित्व का अधिकार है। अज्ञानी पर से अस्तित्व मानता है – ऐसा पहले लेना है न?

यहाँ तो योग है परकाल से नास्ति का, परन्तु अज्ञानी पर की अवस्थारूपी काल

से ही अपना अस्तित्व मानता है। समझ में आया? यह देहादि की अवस्था ज्ञान में ज्ञात हो तो इस देह की अवस्था के काल से मैं हूँ, इसलिए उनके जानने की पर्याय, उससे मैं हूँ, (ऐसा मानता है।) मेरे स्वकाल की मेरी ज्ञान की पर्याय मुझसे हुई है, उसे बाह्य लक्ष्य है, इसलिए वह ऐसा वह नहीं मानता। समझ में आया? कल उसमें विनाश का था। देह जैसे ढीला (शिथिल) पड़ता जाये, वैसे मानों मेरी अवस्था स्वयं नाश होती है। उसमें देह की उत्पत्ति जैसे हो, वैसे मेरे ज्ञान की पर्याय उसके कारण उत्पन्न हुई, इस प्रकार अज्ञानी अपनी पर्याय की स्वतन्त्रता को नहीं मानता। समझ में आया?

'ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा बहिः भ्राम्यन्' 'पशुः' एकान्तवादी वस्तुस्वरूप को साधने से भ्रष्ट है। अर्थात् कि मैं मेरी ज्ञानपर्याय से (जानता हूँ), यह मेरा आत्मगुण है, उस गुण के परिणमन से मेरी ज्ञानपर्याय हुई है - ऐसा नहीं मानता। ज्ञानगुण त्रिकाल है, उसकी यह वर्तमान पर्याय स्वकाल है। उस स्वकाल से मैं हूँ - ऐसा न मानकर, परकाल से मैं हूँ - ऐसा अज्ञानी मानता है। परपदार्थ की अवस्था के कारण ही मेरी अवस्था है। समझ में आया? क्या (कहा)?

इस शब्द के अवलम्बन से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, शब्द है, शब्द की पर्याय स्वकाल है तो ज्ञान की पर्याय होती हे, समझ में आया? नहीं तो ना करे। यह आत्मा वस्तु है। यहाँ ज्ञानप्रधान से बात लेनी है। ज्ञानस्वभाव त्रिकाल, उसकी वर्तमान अवस्था में परज्ञेय की अवस्था का जो उत्पन्न होना, उसके अवलम्बन में ज्ञान की पर्याय भी वैसी ही उत्पन्न होती है। परकाल का जैसा स्वभाव है, वैसा ज्ञानाकार यहाँ ज्ञेयाकार जाने। उस उत्पत्ति के कारण से मेरा उत्पन्न हुआ, ऐसा माननेवाला; मेरा गुण त्रिकाल है; इसलिए गुण-अवस्था उत्पन्न हुई - ऐसा नहीं मानता। उसका लक्ष्य परद्रव्य पर है; ज्ञानी का लक्ष्य स्वद्रव्य पर है। स्वद्रव्य के लक्ष्य से ज्ञान की वर्तमान अवस्था उस प्रकार की उत्पन्न होती है। अज्ञानी को द्रव्य पर लक्ष्य नहीं है; इसलिए पर के लक्ष्य से अवस्था उत्पन्न हो, ऐसा ही ज्ञान उत्पन्न हुआ। शरीर उत्पन्न हुआ तो मैं उत्पन्न हुआ, शरीर उत्पन्न हुआ तो मैं नया आत्मा हुआ। समझ में आया? परन्तु तेरा ज्ञान तो त्रिकाल है और ज्ञान की अवस्था शरीर के कारण उत्पन्न हुई है - ऐसा है नहीं। समझ में आया?

'पशुः नश्यति' एकान्तवादी वस्तुस्वरूप को साधने से भ्रष्ट है। क्यों ?-कि **ज्ञेय आलम्बन समस्त द्रव्यरूप ज्ञेय के अवसर....** (अर्थात्) सामने (चीज़ की अवस्था) **ज्ञान की सत्ता ऐसा निश्चयरूप है अभिप्राय जिसका....** उसकी अवस्था टिकती है तो मैं टिक रहा हूँ। समझ में आया इसमें ? देह-मन-वाणी-शरीर यह सब अवस्था जो सामने द्रव्य की अवस्था ऐसे टिक रही है, उसके कारण मैं टिक रहा हूँ। उसके अवलम्बन में वह निमित्त है तो यह उत्पन्न का टिकना (होता है) तो उसके कारण मैं टिक रहा हूँ, वह यदि हट जाये तो मैं भी नाश हो जाऊँ। परन्तु मैं एक ज्ञायक त्रिकाल हूँ, उसके कारण से मेरी अवस्था हुई है, ऐसा अज्ञानी अन्तर में स्वद्रव्य के लक्ष्य में नहीं आता। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं, देखो!

'ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा बहिः भ्राम्यन्' समस्त द्रव्यरूप ज्ञेय के अवसर ज्ञान की सत्ता... उस जानने की अवस्था के काल में इसकी सत्ता। उस परद्रव्य की अवस्था के काल में इसकी सत्ता, ऐसा मानता हुआ.. समझ में आया ? **स्वरूप से बाहर उत्पन्न हुआ है भ्रम जिसको....** यह ज्ञानपर्याय, श्रद्धापर्याय इत्यादि सब इस पर के अवलम्बन से, पर के उत्पन्न काल में यह मेरा (ज्ञान) उत्पन्न होता है, (ऐसा मानता है) इसलिए उसका लक्ष्य पर के ऊपर चिपकता है, बाह्य (में) भ्रमता है। उस अस्तित्व से मेरा अस्तित्व है। बाहर के पर का स्वकाल उसका जो है, उसके अवसर के काल में ही मेरा स्वकाल है। वह अवसर काल जाये तो मेरा स्वकाल उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया इसमें ?

ज्ञेय के अवसर ज्ञान की सत्ता ऐसा निश्चयरूप है अभिप्राय जिसका, ऐसे मन से स्वरूप से बाहर उत्पन्न हुआ है भ्रम जिसको ऐसा है। अपना स्वरूप अखण्ड ज्ञानस्वरूप है, उसके अन्तर्लक्ष्य से यह पर्याय (होती है, ऐसा) अन्तर्लक्ष्य तो है नहीं (तो) बाहर लक्ष्य से पर्याय उत्पन्न होने पर, उस पर्याय का अवलम्बन पर देखता है; इसलिए बाहर भ्रमता है। यह होगा तो मैं रहूँगा, यह होगा तो मैं रहूँगा, यह होगा तो मैं रहूँगा। इसलिए उसकी बहिर्बुद्धि बाहर में एकाकार हो गयी है। समझ में आया ? मैं त्रिकाल हूँ तो रहूँगा, मैं त्रिकाल ज्ञायक हूँ तो अवस्था में रहेगा, ऐसा नहीं रहा। समझ में आया ? अच्छा समय होता है न ? अच्छा। 'समय बदलता है, वहाँ सब बदल जाता

है' नहीं कहते लोग? ऐसा एक बार पढ़ा था। पालियाद में (संवत्) १९७५ के चातुर्मास में। दरवाजे पर लिखा था। १९७५ की बात है, ४७ वर्ष हुए। समय बदलता है। मैंने कहा, यह क्या लिखते हैं यह? ऐसा आता है न, कुछ गायन भी आता है। होगा कुछ, परन्तु एक व्यक्ति ने लिखा था। दरवाजे में घुसने पर यहाँ सामने लिखा था। 'समय बदलता है, तब सब बदल जाता है' वह मूढ़ है ऐसा (यहाँ) कहते हैं।

मुमुक्षु : बदलता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बदलता है? अपनी अवस्था अपने कारण से बदले, उसमें पर के कारण क्या है? मलूकचन्दभाई! समय बदलता है, तब सब बदल जाता है। यह सेठ हो गया, पैसावाला हो गया, सब हुआ, ऐसा कहते हैं, लो!

मुमुक्षु : दिखता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है? धूल भी नहीं दिखता, वह तो उसमें वह है। उसकी अवस्था के कारण इसकी अवस्था कहाँ उत्पन्न हुई है? और समय बदलता है, तब ऐसा कहे, भाई! ऐसी मूर्खता। पैसा जाये, स्त्री जाये, पुत्र जाये। उनकी उपस्थिति में बुद्धि ठीक रहे। वे जाये तो मूढ़ हो जाये, मूढ़। कहते हैं कि तेरी अवस्था वह उनके कारण थी या तेरे कारण थी। समझ में आया?

इसे बेचारे को है तो बुद्धिवाला व्यक्ति परन्तु अब भ्रमणा में पड़ गया... भाई है। उसे बेचारे को ठीक था, अभी स्त्री मर गयी, पुत्र मर गया। अरे रे! हाय.. हाय..! अब पैसा है, दुकान चलती है, सब चलता है परन्तु कौन जाने अच्छी भ्रमणा आ गयी लगती है न कि उसमें से इतना गया और वह सब अवस्था बदली तो मैं बदल गया। मुझे पाँच पूछते, ऐसा कहते थे। गाँव में पूछे ऐसा व्यक्ति, चतुर व्यक्ति मस्तिष्कवाला। जरा-जरा ऐसे जहाँ बात हो वहाँ रोवे। परन्तु क्या है यह? अरे! मेरा सब बदल गया। क्या बदल गया इसमें? कि यह सब ऐसी जाहोजलाली थी, लड़के-स्त्रियाँ पकाती, लड़के माने नहीं और लड़कियाँ माने नहीं और था वह सब चला गया। हाय.. हाय..! क्या गया परन्तु तेरा? यहाँ आत्मा... जैचन्दभाई! ऐसा ही है, ऐसा है। देखा? अन्दर खटक लगी। यही कहते हैं कि मूढ़ जैसा मानता है, वैसा यह।

बाहर की पर्याय के स्वकाल के उसके काल में वह बदला, उसमें तेरी पर्याय में उसके कारण क्या फेरफार हुआ? समझ में आया? और वह रहे तो तेरी पर्याय रहे, वह न रहे तो पर्याय न रहे। उसकी उत्पत्ति की अनुकूलता वह, उसके स्वकाल की अनुकूलता, वह मेरे पर्याय की अनुकूलता। मूढ़ है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? अच्छा था, तब पाँच में पूछते थे। बोले। यही कहा, देखो न!

ज्ञेय के अवसर ज्ञान की सत्ता ऐसा निश्चयरूप है अभिप्राय जिसका.... यह मन से, स्वरूप से बाहर भ्रम रहा है। इसे भ्रमणा बाहर में (हुई)। यह अनुकूल रखूँ, यह अनुकूल रखूँ, अनुकूल रखूँ, यह अनुकूल रहे तो मेरी पर्याय अनुकूल रहे। फूलचन्दभाई! सब सामग्री-बामग्री की अवस्था ठीक हो तो मेरी बुद्धि भी ठीक रहे। ज्ञेय के अवसर... यहाँ उत्पत्ति की बात की है, हों! उसमें नास्ति की बात थी कि शरीर और सब सामग्री जाये तो मैं जाता हूँ। यह सब अनुकूल रहे तो मैं रहता हूँ, ऐसा। यह अस्ति से (बात ली है)। समझ में आया?

कल में ऐसा था कि यह सब अनुकूलता जाये तो मैं जाता हूँ, आज में ऐसा है कि सब अनुकूलता टिके, ऐसे टिके तो मैं टिकता हूँ, इसलिए वह टिके तो मैं टिकता हूँ, ऐसा। कल में ऐसा था कि वह सब जाये तो मैं जाऊँ। समझ में आया? कैसे होगा इसमें? चिमनभाई! सब ठीक से हो तो बुद्धि ठीक रहे या नहीं? लो! धूल में पर के कारण क्या है परन्तु? ज्ञान का वर्तमान लक्ष्य काल पर की-समय की अवस्था पर लक्ष्य गया है, इसलिए उसके अस्तित्व से यह टिकना (होता है, ऐसा माना है) इसलिए इसे बराबर टिका रखूँ तो मैं टिका रहूँ; परन्तु मैं मेरे त्रिकाल ज्ञायक से टिक रहा हूँ, मेरी अवस्था का टिकने का कारण तो द्रव्य है, वह कहीं टिकने का कारण नहीं है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता।

'शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें' क्यों, जैचन्दभाई! यहाँ यही बात कहते हैं कि मूढ़ है। परन्तू तू कहाँ गया खोकर? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। बाहर भ्रमता है? देखो न! क्या कहा? **'बहिः भ्राम्यन्'** बाह्य की अवस्था की अनुकूलता से तेरा टिकना है? क्या हो गया है तुझे भ्रम यह? तेरा तत्त्व निराला ज्ञायक चैतन्य है, उसके टिकते तत्त्व

से अवस्था खड़ी होती है, उसके कारण खड़ी नहीं हुई कि जिससे तू नया उत्पन्न हुआ। समझ में आया? लक्ष्य पर के ऊपर है न, पर के काल में ही मेरी अवस्था की उत्पत्ति है, ऐसा माननेवाला **भ्रम जिसको ऐसा है। और कैसा है?**

'अर्थालम्बनकाले ज्ञानस्य सत्त्वं कलयन् एव' जीवादि समस्त ज्ञेय वस्तु को जानते समय ही.... लो! दूसरी चीज़ के जानने के काल में ही मेरी अस्ति है। **ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता है, ऐसा अनुभव करता है। ऐसा ही है।** अज्ञानी ऐसा कहता है। क्या कहा, समझ में आया? बड़ा अन्तर है, ऐसा पूर्व-पश्चिम का। जो ज्ञेयमात्र वस्तु के आलम्बन काल में उसके जानने के काल में; आलम्बन की व्याख्या की जानने के समय, उस वस्तु के जानने के काल में ही मेरी सत्ता है। उसे जानने के काल में उसके कारण मेरी सत्ता है। मेरे कारण में ज्ञायक त्रिकाल भिन्न हूँ, मेरी सत्ता है, ऐसा अज्ञानी को प्रतीति में, श्रद्धा में नहीं आता। वह मिथ्याश्रद्धा से दु:खी होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जीवादि समस्त ज्ञेय वस्तु को जानते समय ही ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता है, ऐसा अनुभव करता है। ऐसा ही है। नहीं कहते? एक व्यक्ति को पैसा बहुत था। यह लकड़ी रखी थी न हाथ में कि पैसा-वैसा हुआ हो, फिर लकड़ी छोड़ देना, छूट गयी और जहाँ वापस पैसा गया, वहाँ हाथ में फिर से लकड़ी लेनी पड़ी। समझ में आया? यह सब नजरों से देखे हुए दृष्टान्त, हों! यह क्या हुआ? अरे! कस चला गया, कस। यह सब अनुकूलता थी न, तब तक उसके जीवन का आधार था, जीवन का आधार था। इस जीवन का आधार वे सब बाह्य साधन होंगे? माने थे। थे कब धूल में? ये पैसा और सब साधन हों न, ऐसे हूँफ में डोले, हूँफ में..। उसके अवलम्बन के काल में हूँफ में डोले। जहाँ वह फेरफार होता है तो यह.. यह.. (हो जाता है)।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसमें आ गया। यह तो कहते हैं कि उसके कारण से मैं हूँफ आ गयी ऐसा। उसके कारण मेरी सत्ता है, मेरा अस्तित्व ही पर की अवस्था के कारण है। स्त्री, पुत्र, परिवार सेवा करनेवाले, चाकरी करनेवाले अनुकूल हों तो भाई!

मैं टिकता हूँ, नहीं तो मैं कभी का मर जाता। यह सब अनुकूल हैं, लड़के, स्त्रियाँ... यह मुश्किल से टिका रहा, लो! नहीं तो मर जाता। सही बात थी ? नेमिदासभाई! क्या होगा यह ? मानता है, बापू! तेरा तत्त्व अनादि सनातन सत्य है। उसके अवलम्बन से आयी हुई पर्याय को तू पर के कारण आयी हुई पर्याय (मानता है, उसमें) तू पूरे द्रव्य को भूल गया। समझ में आया ?

जिसमें से पर्याय का प्रवाह आता है, ऐसी चीज़ को भूल गया, भाई! यह प्रवाह मानो उसके अस्तित्व के कारण आता है। शब्द की पर्याय हुई और ज्ञानपर्याय, उसकी पर्याय और इसकी पर्याय, मान, सम्मान, कीर्ति, इज्जत की अवस्था से मैं टिक रहा हूँ, यह सब मान जाये तो भाई! मरण हो। मान चला जाये तो मरण हो जाये। मुँह दिखा नहीं सके, लो! यह एक व्यक्ति (कहे), क्या दिखाऊँ ? थोड़ा नुकसान हुआ (तो कहे), बाहर क्या दिखाऊँ ? मुँह क्या दिखाऊँ ? घर में ही घर में छह महीने पड़ा रहा। यह सब जीवन बापू! अभिमान का था, वह गया, अब क्या करें ? परन्तु कौन गया ? कहाँ तू नहीं था ? किस काल में नहीं था ? उस काल में भी तेरी पर्याय से तू था, अभी भी तू तेरी पर्याय से है; पर के कारण तेरा अस्तित्व नहीं है। (बात) जँचती नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अभी बात करना नहीं। ऐसी धर्म की बातें अभी नहीं होती। कब होती है तब फिर ? मरने के समय होती है ? अभी बातें नहीं होती, धर्म की बात अभी नहीं होती।

कहते हैं, **ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता है, ऐसा अनुभव....** अज्ञानी पर के लक्ष्य से अपनी अवस्था उत्पन्न हुई, उसकी उत्पत्ति से–पर का स्वकाल है, उसकी उत्पत्ति से मेरा उत्पन्न हुआ– ऐसा अज्ञानी मिथ्यात्व का अनुभव करता है। मिथ्यात्वभाव को, असत्‌भाव को, दु:खभाव को अनुभव करता है।

उसके प्रति स्याद्वादी वस्तु की सिद्धि करता है.... अब सुलटा आया। '**पुनः स्याद्वादवेदी तिष्ठति**' समझ में आया ? उसमें आया था या नहीं ? '**ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा बहिः भ्राम्यन्**' और '**अर्थालम्बनकाले ज्ञानस्य सत्त्वं कलयन् एव**'.... '**कलयन्**'

अनुभव करे। उसकी पर्याय से मैं जीता हूँ, मेरा जीवन ही पर की पर्याय से है। तब ज्ञानी '**तिष्ठति**' वह मर गया। पर के कारण मैं टिकता हूँ, ऐसा माननेवाले ने आत्मा को मार डाला। अब ज्ञानी जीता है। **एकान्तवादी जैसा मानता है वैसा नहीं है, जैसा स्याद्वादी मानता है वैसा है।**

स्याद्वादवेदी अर्थात् अनेकान्तवादी.... '**तिष्ठति**' समझ में आया? **वस्तुस्वरूप साधने के लिए समर्थ है।** अर्थात् परवस्तु के काल में मेरी पर्याय उत्पन्न हुई परन्तु वह पर के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। परवस्तु के समय के काल में मेरी पर्याय उत्पन्न हुई, इसलिए उसकी निमित्त की मित्रता छूटती नहीं थी। ज्ञानी को स्वभाव की मित्रता है, इसलिए पर के अवसर में जो पर्याय उत्पन्न हुई, (वह) पर के कारण से नहीं, मेरे ज्ञायक के कारण से उत्पन्न हुई है, ऐसा करके वस्तु के स्वरूप को साध सकता है। समझ में आया?

वस्तुस्वरूप साधने के लिए समर्थ है। कैसा है स्याद्वादी? 'अस्य परकालतः नास्तित्वं कलयन्' ज्ञानमात्र जीव वस्तु का ज्ञेयावस्था के जानपने से.... 'परकालतः' ज्ञेय अवस्था जो सामने जानने की अवस्था है, वह ज्ञेय अवस्था, उसका यहाँ जानपना (हुआ), उसका **नास्तिपना है....** उस ज्ञेय अवस्था का मुझमें नास्तित्व है और ज्ञेयों को जानने जितनी एक समय की पर्याय जितना भी मेरे द्रव्य में नास्तित्व है। आहा! यह तो जरा आगे बात ली। इतने से में नहीं। समझ में आया? **ज्ञानमात्र जीव वस्तु का ज्ञेयावस्था के जानपने से नास्तिपना है....** ज्ञेयावस्था के जानपने जितना ही मैं नहीं हूँ, उससे नास्ति है। अकेला ज्ञायक का पिण्ड चैतन्य हूँ। आहा! समझ में आया?

यहाँ यह अस्तित्व का सिद्धान्त है। परकाल से नास्ति, परकाल से नास्ति और स्वकाल से अस्ति, परन्तु परकाल से नास्ति, ऐसा कहा। पर के जितने ज्ञेय जानने में आते हैं, उतनी पर्याय से मैं नहीं। उससे तो मैं नहीं परन्तु उतनी पर्यायमात्र भी मैं नहीं। उस ज्ञेय की सभी अवस्था से भी मैं नास्ति हूँ और उसे जानने की पर्याय के उतने अंश से भी मेरा नास्तिपना है, इतने में मैं नहीं आ गया। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञायकभाव का ध्रुवपना लक्ष्य में होने से धर्मी जीव को, सत्य के शरणवन्त को

ज्ञायकभाव का शरण लक्ष्य में होने से एक समय की पर्याय और ज्ञेय की अवस्था की मुझमें नास्ति है, उतना मैं नहीं। समझ में आया? ओहोहो! जो जीव, शरीर और लक्ष्मी के कारण हूँ, (ऐसा मानता है), वह मान्यता मिथ्यात्व है। राग-द्वेष के कारण मैं हूँ, यह भी मिथ्या मान्यता है परन्तु राग-द्वेष और पर के जानने की पर्याय जितना मैं, (ऐसा मानता है), वह भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

पर के ज्ञेयों के अस्तित्व के कारण मेरा अस्तित्व है, ऐसा माननेवाला मूढ़ है, उसे सत्य की खबर नहीं है। राग-द्वेष के अस्तित्व के कारण मेरी पर्याय का अस्तित्व है, वह भी मूढ़ है, समझता नहीं; परन्तु उस राग-द्वेष के आकार ज्ञान परिणमित हुआ, उतना मैं हूँ, वह भी मूढ़ है। ज्ञानी, उतना मैं हूँ - ऐसा नहीं मानता। आहाहा! गजब बात, भाई! मगनभाई! अब इसमें कितना स्त्री, पुत्र, पैसे का अन्दर अभिमान आता होगा?

मुमुक्षु : कब आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : थे कब? आहाहा! **ज्ञानमात्र जीव वस्तु का ज्ञेयावस्था के जानपने से....** जानपने से, अवस्था के जानपने से **नास्तिपना है....** ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मैं तो मेरे ज्ञायकभाव के जानपने की अवस्था से निभा हुआ, टिका हुआ हूँ। द्रव्य वस्तु है, उसके लक्ष्य से, ज्ञान से-उसके लक्ष्य से ध्रुव से परिणमती पर्याय से मैं निभ रहा हूँ। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है। रमणीकभाई! आहाहा!

मैं एक चैतन्यज्योत ध्रुव सत् महापदार्थ हूँ। ऐसा, उसके अस्तित्व के कारण मेरा अस्तित्व है। एक समय की ज्ञेय अवस्था के जानपने जितना भी मैं नहीं हूँ। आहाहा! समझ में आया? ये सब जाननेयोग्य पदार्थ हैं। उनके ऐसे लक्ष्य से जो खड़ा है, उस मूढ़ (जीव की) वहाँ दृष्टि पड़ी है। वह अपनी त्रिकाल की अस्ति के जीवत्व का नकार करता है। समझ में आया?

यहाँ तो स्वसत्ता में परसत्ता का अंश भी नहीं है। भगवान आत्मा के द्रव्य और पर्याय के अंश में परसत्ता का अंश भी नहीं है, परन्तु परसत्ता का अंश मुझमें है। अथवा उसके कारण मेरी यह पर्याय है, वह मूढ़ जीव है। उसे पर्याय के अस्तित्व की उत्पत्ति के सामर्थ्य की खबर नहीं है। यहाँ तो पर के जानपनेरूप पर्याय, इतना मैं हूँ, (ऐसा

मानता है, वह भी) बाह्य बुद्धि है। परसत्ता अवलम्बन का ज्ञान वह आत्मा का ज्ञान नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह परमार्थ ज्ञान नहीं है। जानपना **ज्ञेयावस्था के जानपने से....** आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानस्वभाव के लक्ष्य से हुई अवस्था का नाम ध्रुवपना और द्रव्य को मानकर उसने पर्याय को अनुभवा। समझ में आया? परन्तु जिस ज्ञान की पर्याय में मात्र पर की ओर का ज्ञान है, उस जानपने से मैं नास्ति हूँ। आहाहा! चिमनभाई! ज्ञान की पर्याय में शास्त्र का ज्ञान (हो), यह देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान (हो), वे सब परज्ञेय है न? वे सब परज्ञेय हैं। पूरा स्वज्ञेय तो रह गया और उसके अवलम्बन से होनेवाली ज्ञान की पर्याय, वह तो रह गयी। अस्तित्व के स्वीकार से ज्ञान की पर्याय (हुई, वह) उसका आत्मज्ञान हुआ। समझ में आया?

यहाँ तो ज्ञेयावस्था के जानपने से मेरी नास्ति है। ऐसा ज्ञानी अपने आत्मा को द्रव्य के लक्ष्य से हुआ ज्ञान, उसमें मैं हूँ। पर के लक्ष्य से हुआ ज्ञान, वह मुझमें नहीं है। ओहो! परवस्तु तो मुझमें नहीं। समझ में आया? यह दया, दान के विकल्प, राग, वह मुझमें नहीं परन्तु उनके सम्बन्धी होनेवाला परावलम्बी ज्ञान का जानपना, उससे भी मैं यहाँ नहीं हूँ। आहाहा! मगनभाई! गजब बात, भाई!

अज्ञानी को उसकी ज्ञानपर्याय में ज्ञान का ज्ञान नहीं है। मात्र पर के ज्ञान की अवस्था में अपनापन मानकर बाहर भ्रम रहा है। बाहर भ्रमकर वहाँ ही उसका अवलम्बन वहाँ ही टिका है। समझ में आया? मेरा ज्ञान, ज्ञानस्वरूप में से द्रवित होगा, ऐसा नहीं जानता। मेरे ज्ञान की पर्याय यह सब शास्त्र और पुस्तक और पृष्ठ में से द्रवित होगी। समझ में आया? द्रव्य हो, वहाँ से द्रवे। यह वहाँ तू कहाँ द्रव्य था? इसलिए उसमें से झरेगा, उसे ऐसे लक्ष्य ही बाहर में (रहता है)। समझ में आया? गजब भाई! टीका कैसी की है, देखो न! ओहो! समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तुस्वरूप से ज्ञान की मूर्ति है, उसके अवलम्बन से हुई अवस्था, उसरूप से अभेद आत्मा है, उसे ज्ञानी अपना अस्तित्व स्वीकार करता है।

ज्ञान में क्षयोपशम से पर के ज्ञान की बहुत दशा हुई, उससे मैं बड़ा हुआ, मैं

अधिक हुआ, ऐसा माननेवाला पर के लक्ष्य से हुई ज्ञान अवस्था को ही अपनी मानता है। आहाहा! (अज्ञानी वस्तु को) नहीं मानता। दिखता नहीं कि यह ज्ञानमूर्ति वस्तु भिन्न है, इसकी पर्याय वह मेरी, वह नहीं। स्वालम्बी हुआ ज्ञान वह मैं। समझ में आया? उस क्षयोपशम के ज्ञान में पर की ओर के लक्ष्य के ज्ञान में भी जो अभिमान वर्तता है वह, मुझमें वह ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं मानता। इतना मैं हूँ, ऐसा मानता है। ऐई! मगनभाई देखो! क्या कहा?

ज्ञानमात्र जीव वस्तु का ज्ञेयावस्था के जानपने से... ज्ञानमात्र जीव वस्तु का ज्ञेयावस्था के जानपने से नास्तिपना है, ऐसी प्रतीति करता है स्याद्वादी। अज्ञानी यह प्रतीति नहीं कर सकता। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान का पर्वत प्रभु, उसके लक्ष्य से जो ज्ञान द्रवित हुआ, वह आत्मा। वह आत्मज्ञान, वह अपना अस्तित्व-ऐसा ज्ञानी स्वीकार करता है। पर के अवलम्बन से (हुआ) ज्ञान, वह परमार्थ ज्ञान नहीं है, वह मोक्षमार्ग नहीं है, वह मुक्ति के कारण का उपाय भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ज्ञानमात्र वस्तु है। वस्तु स्वयं ज्ञानमात्र, अकेला ज्ञान ध्रुववस्तु। उसका ज्ञेयावस्था के जानपने से मुझमें नास्ति है, ऐसा ज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि धर्मी की भूमिका में धर्मी ऐसा मानता है कि मेरी दशा में और मैं हूँ वहाँ उस परवस्तु की तो नास्ति है, पुण्य-पाप की नास्ति है, परन्तु उस सम्बन्धी का परावलम्बी जितना ज्ञान है, वह भी मेरे स्वरूप में नास्ति है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो अभी शुभयोग के कारण मैं हूँ, उसके कारण मुझे सम्यग्दर्शन होगा। शुभयोग से क्षायिक समकित होता है, (ऐसा लोग मानते हैं)। भगवान! तू बाहर बहुत भ्रमा है, हों! कहते हैं। अन्दर पूँजी में माल पड़ा है, उसके सन्मुख तेरी नजर नहीं गयी। राग की मन्दता / शुभयोग करे, उससे क्षायिक समकित होता है। अर्थात्? पूर्णानन्द प्रभु का उसे शुभयोग के कारण विश्वास आ जाये। समझ में आया? अभी कितने ही ऐसे चलाते हैं। भगवान! तुझमें कहाँ अपूर्णता है? कहाँ दीनतापन है? तू तो पूरा है न, भाई! कि जिससे तेरे परावलम्बी ज्ञान से तेरा अस्तित्व स्वीकार तो पूरा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके अवलम्बन से जो (ज्ञान) हो, वह तेरा अस्तित्व है, उसे तू चूक जाता है, कहते हैं। समझ में आया?

ऐसी प्रतीति.... 'कलयन्' 'कलयन्' अर्थात् अनुभव करता है, ऐसा। उसका अर्थ किया - **प्रतीति करता है। स्याद्वादी। 'कलयन्'** का अर्थ अनुभव करना होता है। समझ में आया? यहाँ प्रतीति का विषय लिया, इसलिए (ऐसा कहा) प्रतीति करता है धर्मी। मैं एक ज्ञायकमूर्ति त्रिकाल चिदानन्द हूँ और उसकी उसके अवलम्बन से हुई ज्ञान-स्वज्ञान की दशा में यह नास्ति है, ऐसा ज्ञानी अपने आत्मा की प्रतीति करता है। समझ में आया? ओहो! परनिमित्त तो मोक्ष में सहायता (करे) नहीं... यहाँ तो कहते हैं, सजीव.. क्या कहा? सचेत क्रिया, सचेत शरीर, सचेत शरीर से धर्म होता है। अरे! भगवान! कहाँ तू गया? भाई! आहाहा! सचेत शरीर, जीववाला शरीर होवे न, तो उससे धर्म हो, यहाँ तक पहला प्रश्न उठा है। आहा! गजब काल! राजमलजी कहते हैं, अरे! यह तो भारी गजब किया है! पहला प्रश्न यह उत्पन्न किया, पण्डित होकर (जयपुर खानियाचर्चा में)। भगवान! तूने क्या किया? भाई! बेचारे लोगों को कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

उस सजीव शरीर की पर्याय को यह ज्ञान जाने और यह ज्ञान आत्मा का नहीं। पर्याय तो कहाँ उसकी होगी? आहाहा! समझ में आया? यह सजीव, वह जड़-मिट्टी धूल है, उसकी प्रत्येक समय की अवस्था होती है, इस आत्मा की पर्याय में उसका एक भी अंश नहीं है कि जिससे उसके कारण उसमें आत्मा की पर्याय धर्म की प्रगटे, वह तो नहीं परन्तु यह शरीर ऐसा है, ऐसा जिस ज्ञान में-पर्याय में ज्ञात हुआ, वह पर्याय भी आत्मा की नहीं और वह पर्याय मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! मगनभाई! ओहोहो! ग्यारह अंग का ज्ञान। ज्ञान की पर्याय परलक्ष्य से उत्पन्न हुई, उसकी मेरे स्वरूप में नास्ति है। वह मेरे स्वरूप में नहीं है। मेरे स्वरूप का होवे वह तो मुक्ति का कारण होगा। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई!

'अस्य परकालतः नास्तित्वं कलयन्' यह भी परकाल कहा, भाई! क्या परकाल? आहाहा! स्वकाल तो ज्ञायकमूर्ति भगवान आत्मा के आश्रय से हुआ ज्ञान, वह स्वकाल है। मगनभाई! यह तो पुरानी बात जरा याद की थी कल, नहीं? बात याद तो आवे या नहीं? यह वस्तु कहाँ बापू! यह वस्तु कहीं सर्वज्ञ के अतिरिक्त नहीं हो सकती। जिसे

एक समय में तीन काल, पर्याय को जानते हुए ज्ञात हुए। एक समय की पर्याय को जानते हुए त्रिकाल ज्ञात हो गये। अपनी पर्याय, हों! पर का नहीं। ऐसा आत्मा का एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। समझ में आया? उस पर्याय के सामर्थ्य में अकेले पर के जानने की पर्याय के अवलम्बन करे, उसे भी यहाँ ज्ञान नहीं कहते। समझ में आया? ओहोहो! कितनो को निकाल डालना?

कहते हैं, भगवान! तू तो चैतन्यमूर्ति प्रभु है न! यह ज्ञान का महासूर्य, ज्ञान का सूर्य! इस ज्ञान के सूर्य के लक्ष्य से, आश्रय से जो ज्ञान की दशा हुई, उतना तू। समझ में आया? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, अरे! आत्मा! भगवान! तेरा तत्त्व तो पूर्ण है न, प्रभु! ऐसे ज्ञान पूर्ण भगवान के अवलम्बन से हुई ज्ञान की अवस्था, वह तेरा अस्तित्व है। ऐसे अस्तित्व को प्रतीति में लिये बिना, यह विकल्प था; इसलिए मुझे ठीक हुआ; यह शरीर की अवस्था थी तो मुझे धर्म में ठीक पड़ता है, यह तो मिथ्यात्व है–असत्य है, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। परन्तु यह शास्त्र का ज्ञान और वीतरागदेव की श्रद्धा का विकल्प का जो ज्ञान... समझ में आया? यह पंच महाव्रत के परिणाम और उन सम्बन्धी का ज्ञान... परिणाम तो नहीं परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान, अकेला पराकार परिणमित ज्ञान, वह मैं नहीं, वह मैं नहीं। मैं हूँ वहाँ पर का अवलम्बन नहीं होता। आहा! कहो, धर्मचन्दजी! अब यह क्या करना? यह ऐसा सूक्ष्म तत्त्व। अब इसमें यात्रा और पूजा कहीं आयी नहीं। यात्रा और पूजा की क्रिया तथा उसमें होनेवाला शुभभाव, उसे अवलम्बन कर अकेले ज्ञान का परिणमन ज्ञान परज्ञेयाकार हुआ, उतना मैं–ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! मक्खन है, बापू! अलग प्रकार है। आहाहा!

कहते हैं, स्वयं भगवान जितना है, वैसा न माने तो मिथ्यात्व, ऐसा नहीं? जीव को अजीव मानना; अजीव को जीव मानना, ऐसा मिथ्यात्व में नहीं बोलते? जीव को अजीव मानना। जीव भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसमें हुआ, उसके अवलम्बन से हुआ ज्ञान, वह जीव है और यह परालम्बी हुआ ज्ञान, वह जीव का स्वरूप ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य महासत्ता प्रभु! सर्वज्ञ परमात्मा ने तो

तेरी महासत्ता चैतन्य की देखी है। उन्होंने देखी, वैसा तू देखे, तब तुझे सच्चा ज्ञान होगा। समझ में आया?

यहाँ तो स्याद्वादी ऐसा जानता है। **कैसा है स्याद्वादी। 'अस्य परकालतः नास्तित्वं कलयन्'** यह परकाल, जो पर के अवलम्बन से हुई अवस्था, उससे मैं नास्ति हूँ, उससे मैं नास्ति हूँ। अज्ञानी ऐसा मानता है कि उतना ही मैं और उससे मैं हूँ। आहाहा! बापू! मार्ग तो प्रभु का वीतरागमार्ग तो ऐसा है। स्वयं आत्मा वीतरागस्वरूप है। उसका ज्ञान निर्दोष वीतरागी ज्ञान है। आत्मा का वीतरागी ज्ञान है। उस वीतरागी ज्ञान की पर्याय वीतराग ज्ञान के अवलम्बन से होती है, उसका नाम धर्म है। उस वीतरागी ज्ञान की पर्याय में जितना पर का अवलम्बन रहे और वीतरागी ज्ञान न करे और राग तथा पुण्य के भाव का ज्ञान करे, वह भी वीतरागी पर्याय नहीं, महाप्रभु का वह अंश नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परकाल की अवस्था, फिर अकेली ज्ञान की अवस्था नहीं ली। वस्तु ऐसी जो पहले से लेते हैं, हों! पहले तो दो ली, यहाँ तो अकेली ली। कल तो बाह्य वस्तु की दो ली न? कल बाह्य वस्तु के दो बोल आये थे न? समस्त ज्ञेय और ज्ञेयाकार से परिणमित ज्ञानपर्याय। यहाँ और सुलटा कर दिया, पर का निकाल दिया। ऐसे शरीर, वाणी, मन (ज्ञात हो), उस समय जो ऐसे पर की सत्ता के लक्ष्य से-अवलम्बन से ज्ञान की पर्याय हो, उसका नास्तित्व भगवान आत्मा में है, तो ज्ञेय की अवस्था का तो नास्तित्व होगा ही। आहाहा!

ऐसी प्रतीति करता है स्याद्वादी.... सम्यग्दृष्टि ऐसी प्रतीति करता है। वह प्रतीति करे, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **और कैसा है? 'आत्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन्'....** देखो! **ज्ञानमात्र जीववस्तु में... 'आत्म'** शब्द से ज्ञानमात्र जीव वस्तु, ज्ञानमात्र प्रभु, चैतन्यमात्र, स्वभावमात्र भगवान। **'निखात' अनादि से एक वस्तुरूप.... अनादि से एक वस्तुरूप....** स्वयं। कैसा है? **अविनश्वर....** नाशरहित चीज़ है। **उपाय बिना द्रव्य के स्वभावरूप....** कोई उपाय बिना द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है। कोई उपाय करके निमित्त से इतना है, ऐसा नहीं है। **ऐसी**

जो जानपनारूप शक्ति.... मेरी त्रिकाल ज्ञानरूप शक्ति का **तद्रूप.... 'एकपुञ्जीभवन्' मैं जीववस्तु...** हूँ **'एकपुञ्जीभवन्'** एकरूप ज्ञान का पुंज प्रभु हूँ वह मेरा स्व त्रिकाल है। समझ में आया?

पहले चार बोल लिये थे न? स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्प पदार्थमात्र वस्तु। वह अस्ति। परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद पाड़ना, वह परद्रव्य। उसकी नास्ति। परद्रव्य की नास्ति लेनी है न? आहाहा! समझ में आया? स्वक्षेत्र अर्थात् एक अखण्ड, असंख्य प्रदेश का एक प्रदेश, ऐसा। एक प्रदेश। अखण्ड प्रदेश, वह स्वक्षेत्र। उस स्वक्षेत्र में भेद पाड़ना कि यह प्रदेश, यह प्रदेश, वह परक्षेत्र है। उस परक्षेत्र की इस स्वक्षेत्र में नास्ति है। भगवान आत्मा त्रिकाली एकरूप, वह त्रिकाली एक वस्तु एक, त्रिकाल वह स्वकाल। त्रिकाल में एक समय की अवस्था का भेद पाड़ना, वह परकाल। समझ में आया? उस परकाल की नास्ति है। गजब बात, भाई! भगवान एक वस्तु, त्रिकाल एकरूप वस्तु वह त्रिकाल। त्रिकाल एक समय, त्रिकाल एक वस्तु, वह स्वकाल और समय का अवस्थान्तर भेद लक्ष्य में लेना, वह परकाल। परकाल की नास्ति है। ओहोहो! भगवान अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप, वह स्वभाव। अनन्त गुण का एकरूप, वह स्वभाव। यह गुण है, ऐसा भेद लक्ष्य में लेना, वह परभाव। समझ में आया? भगवान अनन्त गुण का पुंज एकरूप, वह स्वभाव। यह ज्ञान है, ऐसा भेद पाड़ना, वह परभाव। व्यवहार का विकल्प – गुणी है, वह गुणवाला है, ऐसा विचार करना, वह परभाव है। उस परभाव में स्वभाव की नास्ति है। आहाहा! समझ में आया? यह बात यहाँ ली है।

भगवान आत्मा एक समय का प्रभु पूर्ण। **'एकपुञ्जीभवन्'** कहा न? **ऐसी जो जानपनारूप शक्ति तद्रूप.... 'एकपुञ्जीभवन्' मैं जीववस्तु हूँ,....** एकरूप हूँ। **अविनश्वर ज्ञानस्वरूप हूँ....** अविनाशी ध्रुव ऐसा का ऐसा मैं एकरूप हूँ। जाने भले पर्याय से, परन्तु जानता है एकरूप पुंज मेरा त्रिकाल एक वस्तु हूँ। **ऐसा अनुभव करता हुआ।** यह अनुभव करता हुआ – यह पर्याय है। समझ में आया? वह ज्ञानवस्तु मैं हूँ, अविनश्वर ज्ञान हूँ, ऐसा पर्याय में उसका अनुभव होना, वह उसका स्वकाल कहा जाता है, अभेद गिनकर। समझ में आया? परकाल से वह नास्ति है। आहाहा! ऐसी अस्ति–नास्ति। यह

आस्तिक है और वह नास्तिक है, दूसरी भाषा से ऐसा कहा। समझ में आया? शरीर, वाणी, कर्म से मैं मानना, वह नास्तिक है।

कोई कल कहता था, वह कोई मर गया न? मैं नास्तिक मिट गया नहीं था, ऐसा कोई कल कहता था। आहार करके घूमते हैं, (तब) बहुत आते हैं। बातें करते हैं। मैं नास्तिक मिट नहीं गया, मैं नास्तिक हूँ, मैं किसी को नहीं मानता। नास्तिक किसी को नहीं मानता, यह कौन मानता है? किसके अस्तित्व में यह माना कि मैं किसी को नहीं मानता? बड़ा कवि था, ९२ वर्ष की उम्र का। कोई कल कहता था। बहुत पैसा-बैसा बहुत इकट्ठा किया था। मेरे पीछे कुछ करना नहीं, पादरी-पादरी लाना नहीं, मैं कुछ नहीं मानता। तुम जानो कि सब अभी तक किया, इसलिए मैं नास्तिक मिट गया हूँ, ऐसा नहीं है। मैं तो पूरा नास्तिक हूँ। ठीक! गजब बात, भाई! समझ में आया? पूरा नास्तिक हूँ, ऐसा निर्णय किस भूमि में किया? किसने किया यह? जहाँ नास्ति का निर्णय करता है, वहाँ ही अस्ति सूचित होती है। उसका अर्थ ही मैं पूरा अस्तित्व, पूरा अस्तित्ववाला हूँ। बिल्कुल पूरा अस्तित्ववाला हूँ। पूरा नास्ति हूँ अर्थात् मेरे स्वरूप में पूरा अस्तित्व है। इसका नास्ति हूँ, ऐसा। दृष्टि फेर है। आहाहा! कोरा अस्तित्व को माननेवाला पूरा नास्तित्व हूँ, ऐसा गुलांट खा जाता है। समझ में आया? आहा!

ऐसा अनुभव करता हुआ। ऐसा स्याद्वादी। इसका नाम स्याद्वादी अर्थात् सम्यग्दृष्टि। इसका नाम सम्यग्दृष्टि, इसका नाम धर्मी, इसका नाम सम्यग्ज्ञानी, इसका नाम मोक्ष के मार्ग में स्थित पंथी। आहाहा!

मुमुक्षु : न होनेपने का (नास्ति का) जोर कहाँ से आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिथ्यात्व में से आता है न! बुद्धि असत्य है न, उसमें से। मैं नहीं। वहाँ है कि मैं हूँ। मैं नहीं, मैं मुझे नहीं मानता अर्थात् क्या परन्तु? मैं मुझे मानता नहीं, इसका अर्थ क्या? मैं मुझे मानता नहीं। अर्थात् 'मैं' (कहा) वहाँ तो अस्ति आ गयी। समझ में आया? मानता नहीं, यह भी एक दशा आ गयी, यह भी अस्ति हो गयी परन्तु बाहर की भ्रमणा है न, इसलिए अन्दर अस्तित्व इसे जँचता नहीं? ज्ञानी पर से अस्तित्व न मानकर अपने पूर्ण अस्तित्व को श्रद्धा में ले और अनुभव करे, उसे धर्म होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २५८

(शार्दूलविक्रीडित)

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाश मेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः।।१२-२५८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है कि वस्तु को पर्यायमात्र मानता है; द्रव्यरूप नहीं मानता है; इसलिए जितनी समस्त ज्ञेयवस्तुओं के जितने हैं शक्तिरूप स्वभाव, उनको जानता है ज्ञान। जानता हुआ उनकी आकृतिरूप परिणमता है। इसलिए ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप हैं ज्ञान की पर्याय, उनसे ज्ञानवस्तु की सत्ता को मानता है। उनसे भिन्न है अपनी शक्ति की सत्तामात्र, उसे नहीं मानता है। ऐसा है एकान्तवादी। उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु, समस्त ज्ञेयशक्ति को जानती है—ऐसा सहज है परन्तु अपनी ज्ञानशक्ति से अस्तिरूप है—ऐसा कहते हैं— 'पशुः नश्यति एव' [पशुः] एकान्तवादी, [नश्यति] वस्तु की सत्ता को साधने से भ्रष्ट है, [एव] निश्चय से। कैसा है एकान्तवादी? 'बहिः वस्तुषु नित्यं विश्रान्तः' [बहिः वस्तुषु] समस्त ज्ञेयवस्तु की अनेक शक्ति की आकृतिरूप परिणमी है ज्ञान की पर्याय, उसमें [नित्यं विश्रान्तः] सदा विश्रान्त है अर्थात् पर्यायमात्र को जानती है ज्ञानवस्तु—ऐसा है निश्चय जिसका ऐसा है। किस कारण से ऐसा है? 'परभावभावकलनात्' [परभाव] ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप है ज्ञान की पर्याय (परभाव), उसमें [भावकलनात्] अवधार किया है ज्ञानवस्तु का अस्तिपना—ऐसे झूठे अभिप्राय के कारण। और कैसा है एकान्तवादी? 'स्वभावमहिमनि एकान्तनिश्चेतनः' [स्वभाव] जीव की ज्ञानमात्र निजशक्ति के [महिमनि] अनादिनिधन शाश्वत प्रताप में, [एकान्तनिश्चेतनः] एकान्त निश्चेतन है अर्थात् उससे सर्वथा शून्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि स्वरूपसत्ता को नहीं मानता है—ऐसा है एकान्तवादी। उसे प्रति स्याद्वादी समाधान करता है— 'तु स्याद्वादी नाशं न एति' [तु] एकान्तवादी मानता है, उस प्रकार नहीं है; स्याद्वादी मानता है, उस प्रकार है। [स्याद्वादी] अनेकान्तवादी,

[नाशं] विनाश को [न एति] नहीं प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता को साध सकता है। कैसा है अनेकान्तवादी जीव? 'सहजस्पष्टीकृतप्रत्यय:' [सहज] स्वभाव शक्तिमात्र—ऐसा जो अस्तित्व, उस सम्बन्धी [स्पष्टीकृत] दृढ़ किया है [प्रत्यय:] अनुभव जिसने ऐसा है। और कैसा है? 'सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्त: भवन्' [सर्वस्मात्] जितने हैं [नियतस्वभाव] अपनी-अपनी शक्ति से विराजमान—ऐसे जो ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ, उनकी [भवन] सत्ता की आकृतिरूप परिणमी है, ऐसी [ज्ञानात्] जीव के ज्ञानगुण की पर्याय, उनसे [विभक्त: भवन्] भिन्न है ज्ञानमात्र सत्ता—ऐसा अनुभव करता हुआ।।१२-२५८।।

मागशर कृष्ण १४, मंगलवार, दिनांक-२१-१२-१९६५, कलश-२५८, प्रवचन-२७६

बारहवाँ कलश है।

विश्रान्त: परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशु: स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतन:।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाश मेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्यय:।।१२-२५८।।

क्या कहते हैं? यह स्वभाव की अस्ति बतानी है। उसमें पहले परभाव की अस्ति माननेवाला एकान्ती कैसा होता है, उसकी बात करे। सूक्ष्म तो है, परन्तु अनेकान्त सूक्ष्म वस्तु है। ध्यान रखकर बराबर लक्ष्य में रखना। इसमें अधिक ध्यान रखना, ऐसा इसका अर्थ है। सूक्ष्म है, इसलिए बराबर इसे ध्यान रखना चाहिए तो समझ में आये। कठिन (कहते हैं परन्तु) यह दुनिया की बात कितनी संघरे है। ममता का भंडोल। ममता का भंडोल कितना है इसके पास। ओहोहो! अन्दर से चल निकला है। यहाँ कहते हैं कि तेरी शक्ति में तू है या नहीं? तेरे कोई स्वभाव में शक्ति है या नहीं? या तू पर शक्ति से निभ रहा है? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है... कहना है वह यह है कि ऐसा। **एकान्तवादी....** एक पक्ष से देखनेवाला **मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है कि वस्तु को पर्यायमात्र मानता है;....** अर्थात् कि

आत्मा को परशक्ति से ही मैं हूँ ऐसा मानता है। समझ में आया? **द्रव्यरूप नहीं मानता है;....** मैं स्वशक्तिवान स्वभाव सामर्थ्यवाला हूँ, ऐसा अज्ञानी मानता नहीं। उसकी पर्यायमात्र की व्याख्या यह है। **इसलिए जितनी समस्त ज्ञेयवस्तुओं के जितने हैं शक्तिरूप स्वभाव,....** क्या कहते हैं? जितनी समस्त जाननेयोग्य जो वस्तु है, उसकी जितनी शक्ति है। दो बोल, जितनी जाननेयोग्य वस्तु—एक और उसकी जितनी शक्ति—दो। आत्मा में शरीर, देह आदि सब परपदार्थ, जितने परपदार्थ हैं और उसमें जितनी शक्ति का सामर्थ्य है। शरीर में जिसमें हलन-चलन ऐसी शक्ति, परमाणु में लाल-पीले आदि की शक्ति। अनेक प्रकार के संहनन अर्थात् मजबुताई की शक्ति। समझ में आाय? ऐसी अनेक प्रकार की वसतु के—परपदार्थ के जितने भाव हैं, (शक्ति अर्थात् भाव अन्दर) **उनको जानता है ज्ञान।** यह ज्ञान की अवस्था उस दूसरे पदार्थ के शक्तिरूप सामर्थ्य को ज्ञान की पर्याय जानती है।

जानता हुआ उनकी आकृतिरूप परिणमता है। ज्ञान की अवस्था परपदार्थ के सामर्थ्य की शक्तियों को जानते हुए स्वयं ज्ञान पर्याय से परिणमती है। **इसलिए ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप हैं ज्ञान की पर्याय,...** वह जानने की जो पर्याय वह **ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप हैं ज्ञान की पर्याय, उनसे ज्ञानवस्तु की सत्ता को मानता है।** इतनी ही ज्ञान की सत्ता, वह मानती है। क्या कहा? जरा सूक्ष्म है। आत्मा की ज्ञानपर्याय दूसरे अनन्त पदार्थ और उसकी सामर्थ्य—शक्ति उस रूप से ज्ञान की पर्याय—ज्ञान दशा जाननेरूप परिणमती है, उतना ही आत्मा है, और उतना ही आत्मा हूँ, अज्ञानी ऐसे जीव को मानता है। समझ में आया?

शरीर की संहनन की मजबूताई उसके ज्ञान की पर्याय में ख्याल में आवे, कि यह शरीर का संहनन मजबूत है। ऐसा ज्ञान पर्याय उसे जाने। ज्ञान पर्याय उसकी शक्ति को जानने पर उतना परिणमन है, शक्ति के अवलम्बन से परिणमन अपना है, उतना ही आत्मा है, उतना ही शक्तिवान आत्मा है, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया?

शुभाशुभभाव, देह आदि की शक्ति या सामने गुणों के गुण की शक्ति है न? परमाणु में एकदम रंग पलटे, हरे का सफेद हो। ऐसे एकदम अन्दर सर्दी हो जाये, कभी गर्मी हो जाये, ऐसी शक्तियाँ हैं न उनमें—पुद्गलों में? उन शक्तियों को जानती हुई ज्ञान

पर्याय (ऐसा जानती है कि) ओहोहो! उस शक्ति प्रमाण ज्ञान की पर्याय उसके आकाररूप परिणमे ऐसा पर्याय का धर्म है परन्तु इतनी पर्याय जितना आत्मा है, ऐसा मानता है, वह आत्मा उससे भिन्न अनन्त गुण की शक्ति चैतन्य आनन्दकन्द है, ज्ञान का सागर है, ऐसी शक्ति को अज्ञानी मानता नहीं। समझ में आया?

देखो न! बहुत से ऐसे होते हैं न? परपदार्थ की शक्ति (देखे तो) ओहोहो! ओहोहो! (हो जाता है)। रोकेट जाता है। मैं विमान कहनेवाला था। ऐसे जाये, एक मिनिट में ऐसे जाये, एक घण्टे में ऐसे जाये, एक घण्टे में पाँच सौ मील जाये, धुँआ निकले वह। एक घण्टे में इतना जाये। वह सब पुद्गलों की शक्तियाँ और कोई जीव की बाहर की पर्याय में रागादि, विकार आदि की शक्ति, ऐसी शक्ति को जानती हुई ज्ञान की पर्याय वर्तमान में उस शक्ति के आकार परिणमे, ऐसा पर्याय धर्म है परन्तु उतना परशक्ति के आकार से परिणमा उतना ही आत्मा माननेवाला अपनी महान चैतन्य आनन्द शक्ति है, उस दृष्टि को भूल जाता है। समझ में आया? देखो न! अभी तो यह सब लोगों को पर की शक्ति का माहात्म्य बहुत आता है।

मुमुक्षु : ऐसा आता है, साईन्स का खां।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... वह तो धूल की शक्ति, उसमें होने की थी, वैसे हुई है। इसने ऐसा किया, ऐसा किया। देखो! कितनी शक्ति स्फुरित की! इस ज्ञान की पर्याय में वर्तमान जाननेरूप से परद्रव्य की शक्ति का ज्ञान परिणमे इतना ही ज्ञान आत्मा है? इतना ही आत्मा है? उस शक्ति के परिणमन उपरान्त स्वयं त्रिकाल अनन्त ज्ञान की मूर्ति चिदानन्द है। उस रूप से ज्ञानको परिणमकर अपना ज्ञान स्वरूप जानना चाहिए, उसके बदले इतना परिणमित मैं हूँ, वही आत्मा है, वह परशक्ति से अपने को मानता है, अपनी शक्ति से अपने को नहीं मानता। कहो, समझ में आया? जमुभाई! वहाँ कैसे बैठे? यहाँ बीच में बहुत जगह है। यह तो यहाँ सर्वत्र चौड़ा बहुत पड़ा है। क्या हुआ? बाद में आये होंगे। क्या कहा यह? देखो! यह सब हड्डियों की शक्ति, दवा की शक्ति, अमुक की शक्ति है, उसे मानता है या नहीं? अमुक पुद्गल की शक्ति, इसकी यह शक्ति....

मुमुक्षु : इंजेक्शन की शक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इंजेक्शन की शक्ति। कहाँ गये? ऐसी शक्ति कि ऐसे एकदम... ऐसी परपदार्थ की शक्ति है पर में, परन्तु उस शक्ति का वर्तमान ज्ञान की अवस्था में वह ज्ञेयाकार से परिणमन होता है। इतना ही आत्मा है, ऐसा माननेवाला मूढ़ अपनी अनन्त ज्ञान शक्ति का भण्डार भंडोल में अनन्त ज्ञान और आनन्द की शक्ति पड़ी है, उस शक्ति की वह श्रद्धा नहीं करता। समझ में आया? कहो, रमणीकभाई! तुम्हारे मुम्बई में तो बहुत ऐसा चलता है अन्दर आहा! हो...हा! बाईस मंजिल का मंजिल और आहाहा... वहाँ होता है या नहीं? वहाँ क्या कहते हैं यह? (नरीमन) पॉईंट... पॉईंट... अपने को याद नहीं रहता।

मुमुक्षु : बड़े मकान होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े मकान होते हैं। वहाँ पत्थर बहुत पड़े थे। हम दिशा को जाते थे न! बहुत पत्थर पड़े थे कि अब यहाँ (मकान) होनेवाले हैं। (अज्ञानी को ऐसा लगता है कि) ओहोहो ! मनुष्य की क्या शक्ति! मनुष्य की क्या शक्ति, शक्ति तो सब उसके कारण से वहाँ परमाणु जम गये हैं। क्या शक्ति! ओहोहो! मशीन उठावे, ऐसे बड़ी मशीन उठावे। कहो, बड़े-बड़े मकान मशीन से उठे। लकड़ी के होते हैं न बड़े-बड़े तीस-तीस मंजिल के! मशीन से उठे और मशीन से एक जगह से दूसरी जगह ले जाये। उसकी शक्ति का ज्ञान में परिणमन होने से ऐसा मानता है कि ओहोहो! इतना मैं। उसमें पूरा बहिरवस्तु में अर्पित हो जाता है। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : शक्ति नहीं उसमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी शक्ति उसमें रही परन्तु उसकी शक्ति का यहाँ ज्ञान हुआ, उतना आत्मा है? इतनी शक्तिवाला आत्मा है? इतना शक्तिवाला आत्मा है? इससे तो अनन्त... अनन्त... गुणी शक्ति का गुण और उसकी शक्ति को जाननेरूप (परिणमती) पर्याय, इतनी पर्याय को भी वह जानता नहीं। क्या कहा? समझ में आया?

एक समय में भगवान अनन्त ज्ञान की मूर्ति, अनन्त आनन्द का स्वरूप ऐसी अनन्त शक्तियों का सत्त्व, उस शक्ति के आश्रय से जो ज्ञान होता है, उस शक्ति के अवलम्बन से हुई ज्ञान की पर्याय आत्मा की सही। वह तो अभेद होकर अपने को माना

कि मैं ऐसा पूरा आत्मा हूँ। समझ में आया? परन्तु उस पर्याय में पर की शक्ति का ज्ञान होने पर उसे शक्ति का ज्ञेयाकार परिणमा, उसका माहात्म्य लग गया कि ओहोहो! समझ में में आया? उस पर शक्ति के कारण मैं हूँ, ऐसा इसने जाना।

दूसरी भाषा ऐसी की है कि उस शक्ति का यह ज्ञान परिणमा उतना (आत्मा) माना, इसका अर्थ कि उसने पर्याय को माना, द्रव्य को माना नहीं। एक समय में जानने की शक्ति है, उसे जाना, माना, वह भी इतनी परशक्ति को जानने की पर्याय, स्वशक्ति को जानने की पर्याय रह गयी पूरी। समझ में आया? आहाहा!

एक समय में भगवान अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द का कन्द महा अनन्त गुण का महा स्वरूप है। अनन्त शक्ति! एक ज्ञान गुण में, एक आत्मा के एक ज्ञान गुण में अनन्त शक्ति और अनन्त पर्याय। क्या कहा? ज्ञान गुण एक, एक, हों! एक गुण। उसमें अनन्त शक्ति और एक-एक गुण की अनन्त पर्याय। इतने गुण के आश्रय से जो पर्याय होनी चाहिए, वह तो आत्मा की पर्याय सही और वह पर्याय द्रव्य के साथ अभेद हुई, इसलिए उसने पर्याय और द्रव्य दोनों को माना। यह तो एक समय की पर्याय जहाँ निमित्त के अवलम्बन से प्रगट हुई, ऐसा इसे लगा। देखो! यह शास्त्र पढ़ा, यह पढ़ा, यह पढ़ा, इसका लक्ष्य बहुत रखा और इससे यह ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई ऐसा माना और तदुपरान्त उसके आकार ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई, उतना मैं हूँ, ऐसा माना, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी है, उसे स्वशक्ति के माहात्म्य की खबर नहीं। कहो, समझ में आया या नहीं?

एकदम रंग पीला हो जाये, एकदम हरा हो जाये। आहाहा! क्या शक्ति! (ऐसा) कहे। पानी में नहीं होता? 'मैसूर' या क्या कहीं? पानी के अन्दर... हें? इतने बड़े-बड़े रखे हुए अन्दर। प्रकाश (होता है)! ओहोहो! (हो जाये)। परन्तु क्या है ओहो? इसके साथ गये थे न! वहाँ ओहो कहाँ घुस गया उसमें? कहो, समझ में आया इसमें? यह तो ज्ञान की एक समय की पर्याय,य एक समय की वीर्य की पर्याय स्वयं के आश्रय से प्रगट हुई है, उसमें वह पर की शक्ति का ज्ञान स्वयं स्वत: हो जाता है। उसके बदले परशक्ति के ज्ञान की ओर दौड़ा हुआ (अज्ञानी) उसने उस पर्याय को वहाँ खोल दी। उसी

ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ इसलिए उससे हुआ और उस आकार ज्ञान हुआ, उतना ही मैं हूँ, (ऐसा अज्ञानी मानता है)। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म है, भाई!

दो अस्तित्व तत्त्व पूरे। अन्दर पूर्ण शक्ति का भण्डार भंडोल है। अनन्त... अनन्त... शक्ति एक-एक गुण में, हों! ऐसी अनन्त शक्तियाँ। आत्मद्रव्य में अनन्त गुण अर्थात् शक्ति है। उसकी एक शक्ति का अनन्त सामर्थ्य। उसकी अनन्त सामर्थ्य की अनन्त पर्याय। उसमें एक ही पर्याय जहाँ परालम्बी की आकृति की शक्तिरूप से जानी, उतना माना (वह) पर्याय मूढ़ है (उसे) द्रव्य की खबर नहीं। कहो, समझ में आया? इतनी अवस्थामात्र आत्मा को मानता है। परभाव के परिणमन के ज्ञानमात्र भावरूपवाला हूँ, ऐसा मानता है। परन्तु मैं एक अनन्त गुण की शक्ति महान (पदार्थ हूँ), उसका लक्ष्य, वहाँ दृष्टि ऊपर द्रव्य की अनन्त शक्तियों के अनन्त अमाप गुण की प्रतीति का वहाँ अभाव है। मात्र इतनी पर्याय की प्रतीति का भाव वर्तता है। उसे एकान्तपक्षी मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई!

समस्त ज्ञेयवस्तुओं के जितने हैं शक्तिरूप स्वभाव, उनको जानता है ज्ञान। उनको **जानता हुआ उनकी आकृतिरूप परिणमता है। इसलिए ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप हैं ज्ञान की पर्याय,....** ज्ञेय की शक्तिरूप से परिणमी है ज्ञान की पर्याय। बस! **उनसे ज्ञानवस्तु की सत्ता को मानता है।** उससे ज्ञान का अस्तित्व मानता है। समझ में आया? ज्ञान तो त्रिकाल ज्ञान अनन्त केवलज्ञान का कन्द है वह तो। समझ में आया? अथवा जैसा-जैसा उसे निमित्त में लक्ष्य जाता है न? वैसी-वैसी ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है न? इसलिए वह पर्याय मानो निमित्त के लक्ष्य में से आयी है, उसमें से आयी है, ऐसा माननेवाला मूढ़ है। उसे ज्ञान शक्ति का अनन्तपना है, उसकी उसे प्रतीति नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मेरी ज्ञान पर्याय जितनी पर के लक्ष्यवाली होती है। अधिक बहुत पर का लक्ष्य करे तो ज्ञान पर्याय बहुत प्रगट हो। यह मुसाफिरी (करते हैं)। आया था अन्दर में। यह मुसाफिरी नहीं करते लड़के? देशाटन। बुद्धि बढ़े। बहुत घूमे, चारों ओर जाये तो बुद्धि खिले। देश देश के रंग, देश देश के लोग, देश देश के कपड़े, देश देश की बोली जाने वाली बोली (मानो तो) विचक्षण होगा। मूढ़ है, कहते हैं। आहाहा! धूल भी नहीं

होता। वह तो ज्ञान की उस समय में उस प्रकार की शक्तिरूप से परिणमने की सामर्थ्य है। वह उसके कारण से परिणमी नहीं। वह तो यह है इसलिए पर्याय मुझे हुई, वह तो महामूढ़ है, उसकी तो बात यहाँ ली ही नहीं। क्या कहा? यह घूमा इसलिए यह ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा तो यहाँ लिया नहीं। परन्तु यहाँ तो वह आकृति प्रमाण ज्ञान में ख्याल आया, पर आकृति की शक्ति प्रमाण (ख्याल आया)। इतने को ही आत्मा माना, वह वस्तु को मानता नहीं। समझ में आया? आहा!

देखो न! यह कितने रंग और रंग और यह सब नहीं होते? क्या कहलाता है? महिलाओं की साड़ियाँ, अन्दर छाप लगाते हैं—डिजाईन। कितनी डिजाईन और कितनी वह ऐसी मानो... आहाहा! इतनी शक्ति! डिजाईन (देखे तो) आहा! यह वह किसने ऐसा रंग लिया होगा! ऐसा माहात्म्य परशक्ति में जाता है। समझ में आया? आहाहा! उत्कीर्ण की न एक-एक में ऐसे फुदड़ा... फुदड़ा (किया हो), हरे पत्ते हों, ऊपर हो नीला और नीचे हो पीला। पत्ते, फूलझाड़। आहाहा! भारी शक्ति! परन्तु क्या है? होता है न? भाई! फूलझाड़ में।

मुमुक्षु : बांधणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बाँधणी। यह तो फूल की बात करता हूँ। बाँधणी तो ऐसी करे। यह तो फूल, हरे फूल। वनस्पति के फूल ऐसे हों कि ऊपर हो पीला रंग और नीचे हो हरा पत्तों में, एक ही पत्ते में दो (रंग)। समझ में आया? उसकी शक्ति को ऐसे देखा करे कि आहा! इसे विस्मय हो जाता है उसका और उस आकार से परिणमा इतना ही आत्मा वहाँ समाहित हो जाता है। उसे द्रव्यशक्ति का लक्ष्य और दृष्टि नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! तुम्हारे होगा या नहीं? यह सब मोटर में क्या कहलाता है? मोटर के पार्ट—भाग, पार्ट होंगे, भाग कहते होंगे कोई, उसके भाग। टुकड़े-टुकड़े... आहाहा! ऐसे और ऐसे और ऐसे... बहुत होशियार व्यक्ति! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसकी कीमत याद रखे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसकी कीमत याद रखे और यह रखे। ऐसे पार्ट यहाँ (लगते हैं) और यहाँ (लगते हैं).... भोपाल में था या नहीं? प्राणभाई का पुत्र है न?

अपने प्राणभाई। राजकोट। मोटर की .... तुरन्त कहे, मेरे पास है, मेरे पास है, ले जाओ। यह तो तैयार। ऐसे मानो कम्पलीट मानो यह सब साधन रखकर शक्तियाँ तैयार थी।

मुमुक्षु : काम में आया न!

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या काम आवे? वह तो वहाँ पर्याय होने की थी, वह हुई, वहाँ उसके कारण हुई है, ऐसा भी नहीं। परन्तु उसकी शक्ति के कारण यह सब शक्तियाँ होती हैं, एक द्रव्य की शक्ति दूसरे द्रव्य की शक्ति को देता है, यह माननेवाला द्रव्य की पूर्ण शक्ति स्वतन्त्र है, उसे वह नहीं मानता, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया?

ज्ञानवस्तु की सत्ता को मानता है। उनसे भिन्न है, अपनी शक्ति की सत्तामात्र, उसे नहीं मानता है। देखो! है? पाँचवीं लाईन है। भगवान आत्मा! यहाँ तो ज्ञान प्रधान से बात ली है परन्तु उसे ऐसा पर में जो कुछ शक्ति भासित होती है न? वह शक्ति ज्ञान में भासे कि, आहाहा! क्या मजा इसमें! चैन पड़े, मजा कहते हैं, क्या कहते हैं? समझ में आया? इसमें भारी मजा आता है, हों! भारी मजा! उस शक्ति को देखकर, उस शक्ति के कारण मुझमें मुझे मजा आया। वह पर की मजा की शक्ति (देखकर) मुझे मजा आया, ऐसा माननेवाला मजा मेरे आत्मा के आनन्द में है, उसे मानता नहीं। वह अपना आनन्द अन्दर में पड़ा है, उस आनन्द को मानता नहीं, उस शक्ति को स्वशक्ति अपने से है, ऐसा मानता नहीं। यह सब आनन्द आया पर से। कहो, यह तो बराबर होगा या नहीं? लो! इनकार करते हैं भाई! ए... यह शरीर सुखी तो सुखी, सवेरे नहीं कहते थे? कहते हैं कि शरीर की शक्ति के कारण मुझे सुख हुआ मेरा ज्ञान में यह माननेवाला महा मूढ़ है। उसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति है, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं। लो! ऐसा मानता है।

मुमुक्षु : मूढ़ में भी मोटा ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ में मोटे हैं सब, मूढ में है न सब! मूढ में भी छोटे-बड़े तो होते हैं न उसकी पर्याय प्रमाण। कोई बहुत मूढ हो, कोई थोड़ा हो। क्या समझ में आया इसमें?

पर की शक्ति का सत्त्व देखने से उस शक्ति से मेरे ज्ञान में शक्ति आयी, ऐसा

माननेवाला एक तो पर को ही अपना मानता है। और दूसरा उसके आकार हुआ ज्ञान इतना ही ज्ञान की पर्याय, ऐसा माननेवाला भी एक अंश को पूरा तत्त्व मानता है। पूरा शक्ति का पिण्ड भगवान है, उसे वह श्रद्धा में, ज्ञान में नहीं लेता। लो! इसका नाम मिथ्यादृष्टि हो जाता है, इसमें असत्यबुद्धि हो जाती है, इसका नाम महान पाप-पाखण्ड है। समझ में आया? दूसरे के सहारे से, मदद से मेरी पर्याय में शक्ति आयी, ऐसा माननेवाला भी अपनी आत्मशक्ति को मानता नहीं। कैसे होगा? भाई!

यह लड्डू खाये, अमुक खाये तो शक्ति नहीं आती शरीर में? और वह शक्ति आवे तो आत्मा में इतना बल बढ़े या नहीं? भलीभाँति शक्ति खाये, केसरिया दूध पीवे, बादाम का दूध पीवे। कहो, समझ में आय? मौसम्बी क्या कहलाता है वह? मूसलीपाक, सालमपाक, कहो, उसके कारण कुछ ताकत आती होगी या नहीं आत्मा में? खाये कौन? यह तो कहते हैं कि, ज्ञान की पर्याय में इन शक्तियों का रूप ज्ञात होता है, तथापि अज्ञानी ऐसा मानता है कि इस शक्ति के कारण मुझे शक्ति आयी, मुझे बोलने की शक्ति इसके कारण आयी, नहीं तो मुझमें सामर्थ्य नहीं थी।

यह मरते नहीं करते? यहाँ चुपड़े। क्या करते हैं कुछ? पहले (करते थे), अभी तो कहाँ था? एक सोटी, ऐसे सोने की होती न? किरणगल। गोलियाँ आती हैं न! हमने देखी थी, वहाँ पालेज में थी। एक बेचने आया था, साधु था, वह लेता था। मैंने कहा, ऐ... तुम क्या लेते हो? 'बरवाला' का साधु था। तब पहली देखी। बहुत समय की बात है, (संवत्) १९६७ के वर्ष की बात है। इतनी गोटी जैसा हो, समझे न? उसमें सब धातु और (सब हो)। थोड़ा सा काम हो (तो) पूछ लेना हो तो पूछ ले। फिर भले मर जाये, परन्तु थोड़ा पूछ ले। दो मिनिट बातचीत कर ले। तब सुना हुआ। अपने तो गोठी भी देखी हुई और सब देखा हुआ। कहा, क्या है यह? कि, ऐसा होता है। कहा, इस वेश में भी अभी भ्रम में पड़े हैं।

उस पर की शक्ति के कारण मुझमें शक्ति आती है, ऐसा माननेवाला शक्ति की दृष्टि की खबर नहीं। समझ में आया? एक समय की पर्याय की शक्ति भी अपनी है। उसके बदले उससे यह मुझे आयी (ऐसा माननेवाला अज्ञानी है)। बोलने की कुछ शक्ति न हो, ऐसा होगा या नहीं? ज्ञान में तीव्रता होती है या नहीं जरा ऐसी? यह ब्राह्मी, ब्राह्मी

दवा क्या कहलाती है ? ब्राह्मी... ब्राह्मी कहलाती है या नहीं ? यह ब्राह्मी नहीं आती ? सिर में तेल डाले तो मस्तिष्क तर हो जाये। एक व्यक्ति (संवत्) १९८१ में मेरे साथ था। ऐसे पढ़ता था। फिर ब्राह्मी तेल एकान्त में मँगाया हुआ। मैंने कहा, यह क्या ? बुद्धि कहाँ थी, वह (उससे) होती होगी ? ब्राह्मी तेल के कारण बुद्धि प्रगट होती होगी ? समझे न ?

मुमुक्षु : होती है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ, धूल भी नहीं होती। यह तो उसके पर्याय का उस प्रकार ज्ञान के क्षयोपशम की अवस्था हो तो वह स्वयं से होती है। यह माननेवाला पर से होती है, ब्राह्मी तेल से बुद्धि उघड़ती है (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। उसे तो यहाँ तो निकाल ही दिया है।

यहाँ तो ज्ञान की पर्याय में उस शक्ति का ज्ञान हुआ, परपदार्थ की शक्ति का ज्ञान हुआ और स्वशक्ति का ज्ञान पर्याय में रह गया, शक्ति तो पूरी रह गयी, परन्तु उसका ज्ञान रह गया और इतनी शक्ति के आकार परिणमित हुआ वह ज्ञान उतना आत्मा को माने (तो वह भी) मिथ्यादृष्टि असत्यबुद्धि, पापबुद्धि है। कहो, समझ में आया ? जितना सत्त्व का उसका तत्त्व है, उतना न मानकर, वह पर के कारण माना, वह अपने भाव की शक्ति को नहीं मानता। समझ में आया ? आहा! **ऐसा है एकान्तवादी।**

उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु, समस्त ज्ञेयशक्ति को जानती है... ज्ञानमात्र भगवान आत्मा सभी शक्तियों के गुणों को, उन पदार्थ के गुणों को, दूसरे पदार्थ के गुणों को ज्ञान पर्याय जाने सही। पर्याय में गुण—भान न आवे ? कि इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका कड़वा है, इसका हरा है, इसका पीला है, यह खट्टा है, यह मीठा है। समझ में आया ? ऐसा ज्ञान की पर्याय **जीववस्तु, समस्त ज्ञेयशक्ति को जानती है—ऐसा सहज है परन्तु अपनी ज्ञानशक्ति से अस्तिरूप है....** परन्तु अपने ज्ञान गुण की सत्ता से उसका अस्तित्व है, पर के कारण अस्तित्व नहीं। समझ में आया ?

ध्रुव स्वरूप है, उसमें से ज्ञान का परिणमन आता है और वह शक्ति का प्रवाह है,

ऐसा न मानकर ज्ञान का प्रवाह पर शक्ति को जानने जितना है, उतना प्रवाह माने, वह पर्याय को मानता (है और) वस्तु को नहीं मानता। समझ में आया?

'पशुः नश्यति एव' यहाँ तक तो उसका उपोद्घात किया, हों! भावार्थ। ऐसा कहना है ऐसा इसमें कहेंगे, ऐसा कहा। **'पशुः' एकान्तवादी.... 'नश्यति' वस्तु की सत्ता को साधने से भ्रष्ट है,....** भगवान आत्मा अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान की शक्ति का रस है। वह एक समय की आकृति में अपना (अस्तित्व) मानकर (उसे) शक्ति की ओर की दृष्टि उसकी रहती नहीं। इसलिए शक्ति की श्रद्धा में नाश मानता है। समझ में आया? मुझमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का स्वभाव है, ऐसी शक्ति पर प्रतीति चाहिए, वह प्रतीति उसे-अज्ञानी को रहती नहीं, पर के ऊपर की प्रतीति रहती है। समझ में आया?

उसमें आता है न? इन्द्रिय को बहुत पुष्ट करूँ तो ज्ञान पुष्ट हो। नहीं आता। क्या आता है? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है न? ऐसा कि मेरा ज्ञान कैसे बढ़े? इन्द्रिय की बहुत पुष्टि करूँ, यह करूँ तो मेरा ज्ञान बढ़े, तो मुझे विशेष जानने का अधिक मिले, अधिक मिले। उसके कारण ज्ञान खिले ऐसा। परन्तु ज्ञान अन्दर रागरहित होकर आत्मा की शक्ति की प्रतीति करने से जो ज्ञान का अंश लिखे (उसमें) सर्व लोकालोक को जानने की श्रुतज्ञान की पर्याय में भी सामर्थ्य है। समझ में आया?

यह शक्तिवान भगवान आत्मा को जानने से, उसे जानने से उसकी शक्ति को स्पर्शने से जिस पर्याय में ज्ञान का अंश आया (उस अंश में) केवली जाने उतनी लोकलोक को जानने की शक्ति की सामर्थ्य है। परोक्ष (रीति से जाने) परन्तु पर को पृथक् इस प्रकार से जाने ऐसी सामर्थ्य है। ऐसी सामर्थ्य को अज्ञानी मानता नहीं। समझ में आया? जितने निमित्तों का सम्बन्ध हुआ, अधिक का हुआ तो ज्ञानशक्ति अधिक खिली। परन्तु एक ही द्रव्य की महाशक्ति को एक बार ऐसे स्पर्श करूँ तो महाशक्ति खिले, ऐसी इसे श्रद्धा और ज्ञान की प्रतीति है नहीं। समझ में आया? एकान्तवादी पशु ढ़ोर जैसा है, कहते हैं।

वस्तु की सत्ता को साधने से भ्रष्ट है,.... भगवान आत्मा जिसकी शक्ति के सत्त्व की प्रतीति करने से पर्याय में सत् का बड़ा महा प्रवाह बहे, ऐसी शक्ति की सत्ता का नाश

कर डालता है। पर की ही पर्यायबुद्धि में अटक गया है। समझ में आया? भाषा गजब! **निश्चय से....** ऐसा अज्ञानी मानता है। ऐसा हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

कैसा है एकान्तवादी? 'बहिः वस्तुषु नित्यं विश्रान्तः' समस्त ज्ञेयवस्तु की अनेक शक्ति की आकृतिरूप परिणमी है ज्ञान की पर्याय... देखा? पाठ तो '**बहिः वस्तुषु**' है, भाई! परन्तु वह बहिर वस्तु हो गयी। ज्ञान की पर्याय परद्रव्य के गुणों को जाननेरूप परिणमित हुई, उस दशा को बहिर वस्तु कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा ही ऐसी की, देखो! '**बहिः वस्तुषु**' अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त सभी ज्ञेयवस्तु की अनेक शक्ति अर्थात् गुण, उनकी आकृतिरूप परिणमी, उनके ज्ञेयरूप स्वयं जैसा ज्ञेय है, उस रूप जानने की पर्याय परिणमित हुई, ऐसी पर्याय। **उसमें.... 'नित्यं विश्रान्तः' सदा विश्रान्त है अर्थात् पर्यायमात्र को जानती है ज्ञानवस्तु—ऐसा है निश्चय जिसका ऐसा है।**

भाषा तो कैसी है कि परवस्तु को अपनी मानता है, यह बात तो यहाँ की ही नहीं। परन्तु परवस्तु के गुणों के जैसा शक्ति और स्वभाव है तत्प्रमाण परिणमित ज्ञान की पर्याय, वही '**बहिः**' है। वह '**बहिः**' ज्ञान की पर्याय में भी '**बहिः**' है। समझ में आया? उसे पूरा तत्त्व मानता है, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। ओहोहो! हरिभाई! ऐसा सब कहाँ मुम्बई में है वहाँ? आत्मा है, परन्तु वहाँ मुम्बई में हलवाई गये हैं। समझ में आया इसमें? आहाहा! भाषा कैसी की है! '**बहिः वस्तुषु**' कोई कहता है कि भाई! बहिर वस्तु की शक्ति में अपनी शक्ति मानी है, वह तो ठीक, परन्तु यहाँ तो बहिर वस्तु की शक्ति के गुण, गुण की शक्तियाँ, उसका परिणमा जो ज्ञान, अकेला बहिर आकार शक्तिरूप परिणमित ज्ञान, उस वस्तु को ही बाह्य वस्तु कहते हैं। समझ में आया?

अन्तर चिदानन्द भगवान ज्ञान और आनन्द का कन्द है, उसके आकार, उसके लक्ष्य से, ध्येय से जो परिणमा ज्ञान, उसे स्ववस्तु कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी बाहर के निमित्तों के जितने साधन अच्छे हों उतनी मुझे शक्ति प्रगट हो, (ऐसा अज्ञानी मानता है)। व्रजवृषभनाराच संहनन हो तो केवलज्ञान प्रगट हो, लो! और यह आया। समझ में आया? व्रजवृषभनाराच संहनन हो, यह शक्ति मजबूत हो (तो

केवलज्ञान प्रगट हो)। पक्षी को उड़ना हो तो भी कहीं मूँग के ढ़ेर पर बैठा पक्षी उड़ सकता है? परन्तु नीचे कठोर जमीन हो तो उड़ सकता है। यह उड़ने की शक्ति कठिन के कारण आयी, ऐसा अज्ञानी मानता है। ऐसा आत्मा के ज्ञान की पर्याय ऐसे उड़े— प्रगट हो, वह संहनन की मजबुताई के कारण प्रगट होती है। बाहुबली जैसे बारह-बारह महीने तक ध्यान में रहे, लो! शरीर की मजबूती हो तो वह ध्यान की पर्याय प्रगट हो सकती है। यह तो अपने पर्याय की सामर्थ्य नहीं। शरीर के कारण क्या है? वह भाषा बोले सब, वह तो व्यवहार की बातें हैं। समझ में आया? यह शरीर मजबूत है, इसलिए केवलज्ञान होता है, यह तो खोटी (बात) है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु शरीर की मजबूती की ताकत के ज्ञानरूप ज्ञान परिणमित हुआ, इतने को आत्मा माने तो वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। ऐ... हरीभाई! आहाहा!

यह सब दुनिया के चतुर कहलाते हैं। मशीन और फशीन को (चलावे)। अभी मशीनें बहुत निकलती है अभी नहीं? मशीन और क्या कुछ? कोई कहे, चूड़ी की मशीन, कोई कहे, अमुक मशीन। कौन कहता था अभी? छत्री की मशीन। ऐई! झोबालिया! इनको छत्री का कारखाना था, क्या था? कोई कहता था, अपने को कहाँ (खबर थी)। अमुक मशीन, अमुक मशीन... अभी मशीन और मशीन हो गयी हैं सब, और उसमें से पैसा अधिक पैदा होते हैं। यह भी एक कारीगरी की शक्ति देखी है न आत्मा में? नहीं?

कहते हैं कि उसके कारण शक्ति तो नहीं परन्तु उस शक्तिरूप जो गुण उसमें है, उसमें गुण जो हैं, परमाणुओं में, खांड में, शक्कर में, गुड़ में यह सब शक्तियाँ हैं न अलग-अलग प्रकार की? समझ में आया या नहीं? आटे में, दवा में, अमुक-अमुक दवा की कैसी शक्ति कहते हैं, देखो! इस शक्ति से ऐसा हो गया। यह इंजेक्शन एकदम शक्ति दे। एकदम रक्त घूमने लगे। ऐसे रक्त में सीधे डाले, ऐसे नस को पकड़कर डाले। ग्लूकोज है, वह यों ही मुँह से पिलावे और उसमें से (नस में से) डाले तो एकदम झट रक्त हो जाये। ऐसी शक्तियाँ उसमें उसके कारण से है। उसे ग्लूकोज के कारण से यहाँ (शक्ति) आयी है, ऐसा तो नहीं परन्तु यहाँ आयी हुई शक्ति का (माप) जो ज्ञान में आवे कि यह शक्ति। तत्प्रमाण जो ज्ञान परिणमा, इतने पर जिसका लक्ष्य और ध्येय पड़ा है,

वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। यही कहते हैं, मूढ़ है। तेरी पर्याय की मूढ़ता तेरे कारण से आ गयी है, पर के कारण से नहीं।

कहते हैं न, आया है न, अभी आया था न? देखो! यह मदिरा पीवे तो ऐसा होता है। लिखा करे। मदिरा पीवे तो ऐसा होता है। अरे! भगवान! ऐसी बात तो कहीं रह गयी, बापू! जिसे परद्रव्य स्पर्शता ही नहीं, ज्ञान की पर्याय को। समझ में आया? उस समय अपने ही ज्ञान पर्याय में मूढ़ होने की योग्यता के कारण हुआ है, मदिरा के कारण नहीं, नशे के कारण नहीं। कहो, देखो न कितने ही नशा देते हैं न, बहुत दुःख हो तो नशा दे तो ऐसे पड़ा रहे। उसकी पर्याय में ही मूढ़ता होने की योग्यता है, परद्रव्य के कारण नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

कैसी शक्ति देखो न! उस गुब्बारे में जाते हैं न? क्या कहलाता है? फिर छत्री लेकर नीचे उतरे। कुछ कहते हैं न? लोग कुछ बातें करते हैं। छत्री में लेकर ऐसे उतरे, लो! वह शक्तियाँ तो परमाणु की पर्याय है। वह शक्ति इसके कारण मुझे शक्ति आयी, मेरे ज्ञान में विचिक्षणता आयी, वह मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : सभी डिग्रियाँ मिलती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही बात कहते हैं न यह। क्या कहते हैं? सोनोग्राफी की थी न? परन्तु वह तो उसकी शक्ति उसकी थी, उसके कारण तुझे ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं है। और तेरा ज्ञान का आकार पर्याय उस शक्ति को ख्याल में लिया उतना तू नहीं। पूरा तीन काल, तीन लोक जाने ऐसी तो एक समय की पर्याय की सामर्थ्य है, और पूरे द्रव्य की तो उससे अनन्तगुणी सामर्थ्य है। एक समय की पर्याय तीन काल, तीन लोक को पर का लक्ष्य किये बिना, स्वलक्ष्य से जानती है, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। ऐसे आत्मा के द्रव्य को, उसकी शक्ति को और उस शक्ति की ओर उन्मुख पर्याय की इतनी सामर्थ्य है, वह अज्ञानी मानता नहीं। समझ में आया?

बादाम-पिस्ते को नोकर्म कहा है न? नोकर्म कहा है। बादाम-पिस्ता। ब्रह्मचर्य हो तो बादाम-पिस्ता खाये, इसलिए नोकर्म कहा है। अरे! क्या है परन्तु? देखो! मतिज्ञान में नोकर्म कहा है। धूल भी नहीं लिखा। यह तो कहते हैं, यहाँ हुआ हो तब

कौन निमित्त था, उसका ज्ञान कराया है। समझ में आया? यह विद्यार्थी पढ़े तब करते हैं न? केसरिया दूध पिलाते हैं, व्यवस्थित बादाम-बादम अन्दर मावा डालकर करे व्यवस्थित। मस्तिष्क ठण्डा है, विद्या बहुत बढ़े। अक्कलकरा। अकल कहीं से बिकती हुई मिलती होगी? उसकी तो बात नहीं की, वह तो महा मूढ़ जीव है। परद्रव्य की पर्याय की शक्ति से मेरी पर्याय प्रगट हुई, वह तो महा मूढ़ है, वे तो दोनों साथ में एकत्व है। वह तो दो द्रव्य के साथ एकत्वबुद्धि है, उसकी यहाँ बात नहीं की। यहाँ तो उसके गुणों के रूप से ज्ञान परिणमा कि ऐसा गुण इसमें गुण, ऐसा गुण, इसमें गुण है, उस रूप (ज्ञान) परिणमित हुआ है, उतनी पर्याय को भी आत्मा माने, वह मूढ़ जीव और अज्ञानी है, ऐसा कहा जाता है।

कहो! अब इस वकीलात-बकीलात का और याद आया। कहो, यह वकीलात-बकीलात होशियार हो तो पढ़े। कहो, यह ज्ञानकला सब वकालत के पढ़ने की पुस्तक में से प्रगट होगी या नहीं? पढ़े बिना होगी? आहाहा! कहते हैं, वे सब शक्तियाँ यहाँ से आयी, उसकी तो बात नहीं, परन्तु उस ज्ञेय की शक्ति के आकार यहाँ ख्याल में आया कि पुस्तक में ऐसा है, उसका यह कायदा है, इसका ऐसा है। ऐसा यहाँ ख्याल आया, उस ख्यालपने का परिणमन परज्ञेयाकार की शक्तिरूप ज्ञान परिणमा है, स्वज्ञान की शक्तिरूप से परिणमा नहीं। उसे आत्मा मानना, उसे आत्मा मानना, उसे जीव मानना, उसे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : भिन्न करने के लिये इतनी अधिक सूक्ष्मता से विचारना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना सब कहाँ आया? एक शक्ति का पिण्ड पूरा द्रव्य है, और उसके अवलम्बन से होती पर्याय की सामर्थ्य उसके स्वयं के कारण से है। बस! इतनी बात है। यह तो भिन्न-भिन्न दृष्टान्त दें तो इसके ख्याल में आवे कि यह क्या कहना चाहते हैं। समझ में आया? भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न पदार्थ की शक्ति का ज्ञान हो, वे शक्तियाँ जिसके कारण है, इस शक्ति के कारण खिली (ऐसा माने), वह तो दो द्रव्य की एकता। वह तो दो पदार्थ की एकताबुद्धि (हुई), वह तो मूढ़ जीव है। परन्तु यहाँ तो उसे आकार परिणमित ज्ञान इतने को मानना, वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात, भाई!

मस्तिष्क तर हो गया, मेरा ज्ञान उघड़ गया। बादाम (दूध) पीया न! यह तो कहते हैं, मूढ़ है, इसकी बात तो यहाँ करते नहीं।

मुमुक्षु : आपका उपदेश सुनकर ज्ञान उघड़ जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुनकर उघड़ जाये, यह बात भी खोटी है। उस शब्द के आकार ज्ञान परिणमित हुआ है अपनी योग्यता से। उस शब्द के आकार से परिणमित है ज्ञान की पर्याय स्वयं से। यह तो उसके कारण हुई, यह तो बात अज्ञान है। ज्ञानशक्ति का तत्त्व पूरा है उससे, उसकी दृष्टि और उसकी प्रतीति में से ज्ञान आना चाहिए। उसे ज्ञान और आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई!

और वापस प्रतिमा और मन्दिर बनाते हैं। ऐसी बात करना और फिर ऐसे प्रतिमा और मन्दिर बनावे। कुछ मिलान नहीं खाता, एक व्यक्ति ऐसा कहता था। भाई! यह तो उसके काल में शुभराग होता है, लक्ष्य हो तो ज्ञान की पर्याय भी मानो उतनी ही पर्याय आत्मा की है, ऐसा है नहीं। उसका लक्ष्य उसके ऊपर अकेला नहीं। चैतन्यमूर्ति ज्ञाता के लक्ष्य से परिणमित ज्ञान, उसके शुभराग को मानो और पर जो वस्तु है, उसे जाननेरूप परिणमे ऐसी पर्याय का धर्म है। हरिभाई! गजब बात! और वह ज्ञान की पर्याय स्वलक्ष्य से अपने कारण से परिणमित हुई, उसमें शुभराग का ज्ञान हुआ और जो निमित्त का ज्ञान (हुआ), उस प्रकार से उस समय की पर्याय का धर्म है, ऐसा न जाने तो उसकी पर्याय की सामर्थ्य में भी खबर नहीं। उड़ा दे कि, नहीं यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... परन्तु उस समय वही निमित्त और वही राग का ज्ञान वहाँ परिणमना चाहिए। पर आकार हो परन्तु स्व आकार के लक्ष्य में पर का यह (ज्ञान) होता है, ऐसे पर्याय सहित त्रिकाली आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारु ज्ञान हुआ कहलाये। और निश्चय स्व के आश्रय से हुआ, वह निश्चय। यह निश्चय और व्यवहार दोनों इकट्ठे हुए। आहाहा! सूक्ष्म गजब बात, भाई!

'बहिः वस्तुषु' समस्त ज्ञेयवस्तु की अनेक शक्ति.... गुण अर्थात् पर में भी अनन्त गुण है न? उनकी आकृति अर्थात् उनके भावरूप (अर्थात्) जैसा उनका स्वभाव है, वैसा यहाँ ज्ञान स्वयं के कारण से ज्ञान की पर्याय परिणमे। **उसमें सदा विश्रान्त है....**

उसमें स्थिर हो गया। अर्थात् कि ओहो! बस... बस! ऐसी ज्ञान की पर्याय में जिसका विश्रान्त अर्थात् दृष्टि पड़ी है, वहाँ ही जिसका विश्राम है, वहाँ ही जिसका समाप्त होता है, वहाँ ही जिसकी पूर्ति मानी है, वह मिथ्यादृष्टि है। **ज्ञानवस्तु—ऐसा है निश्चय जिसका ऐसा है।** वह पूरा आत्मा है ऐसा माननेवाला वह मूढ़ और अज्ञानी है। आहाहा!

अपना अनन्त शक्ति-स्वभाव, बेहद एक-एक गुण का स्वभाव, उसे वह मानता नहीं। मात्र इतनी शक्तियों में से हुई पर्याय और या उसके आकार से परिणमित ज्ञान, ऐसी चीज़ को माने वह ज्ञान पदार्थ को, ज्ञान त्रिकाल पदार्थ को मानता नहीं। समझ में आया? अन्तर कितना पड़ता है? बहिर्लक्ष्य और स्वलक्ष्य इतना अन्तर पड़ता है। अरे! विवाद तो कहाँ लोग करके बैठे हैं! अभी तो बाहर में ऐसा हो और धर्म हो ऐसा और धर्म ऐसा हो।

शुभभाव से तो धर्म नहीं परन्तु शुभभाव का यह शुभ है ऐसा ज्ञान (उस) आकार परिणमित हुआ इतना, वह धर्म नहीं। जिसमें शक्ति—सत्त्व पड़ा है, खान—महा अनन्त गुण की शक्ति की खान भगवान, उसमें नजर देने से जो पर्याय परिणमे, उस पर्याय को धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अब यह वाद-विवाद से कहाँ पार पड़े ऐसा है? कथन कितने और कितनी बात अभी भाई रुक गये, परीक्षा चलती है।

किस कारण से ऐसा है? अब कहते हैं, किस कारण से ऐसा अज्ञानी मान रहा है? कारण देते हैं। **'परभावभावकलनात्', 'परभावभावकलनात्' ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप है ज्ञान की पर्याय... 'परभावभावकलनात्'** की व्याख्या भी यह। व्याख्या भी देखो! कठिन, भाई! टीकाकार टीका तो गजब करते हैं! कहते हैं, **'परभावभाव-कलनात्'** यह ज्ञेय शक्ति के गुण, उनका जो भाव उसकी आकृतिरूप। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय। उसका नाम **'परभावभावकलनात्' अवधार किया है...** यह निश्चय उसने धारा है।

ज्ञानवस्तु का अस्तिपना—ऐसे झूठे अभिप्राय के कारण। आहा! कहो, समझ में आता है इसमें कुछ? **'परभावभावकलनात्'** इसकी व्याख्या, कि जगत में जितने अनन्त पदार्थ के गुण-भाव हैं, ऐसे **'परभावभावकलनात्'** उसकी वर्तमान ज्ञान पर्याय में उसके आकाररूप परिणमा ज्ञान, वह पर्याय परभाव, वह **'भावकलनात्'**। **'परभाव'**

इतनी बात। अब इसमें '**भावकलनात्' अवधार किया है ज्ञानवस्तु....** मेरा आत्मा इतना है, ऐसा जिसने माना है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

फिर से, '**परभाव**' इतना '**परभाव**' इतनी व्याख्या। '**परभाव**' की व्याख्या क्या? कि जो अनन्त पदार्थ हैं, उनके जो गुण-शक्ति है, उसका जो ज्ञान का परिणमन उसका नाम '**परभाव**' भाई! ओहोहो! '**परभाव**' किसे कहना? कि जो अनन्त... अनन्त... गुणोरूप ज्ञेय है, उसकी शक्ति को जाननेरूप ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई, उस ज्ञान की पर्याय को परभाव कहा जाता है। आहाहा! इसने जो मूल रखा है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया?

भाव तो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। ऐसा जो स्वभाव, वह जो स्वभाव, उसकी तो इसने नास्ति की है। एक समय की दशा में जो अनन्त ज्ञेय के गुणोंरूप जाननेरूप परिणमा, उसके गुण के कारण परिणमा ऐसा तो नहीं। समझ में आया? परभाव की शक्ति के कारण से, उन गुणों के कारण से यह पर्याय हुई, ऐसा तो नहीं, परन्तु यह परभाव की शक्ति का ज्ञेयपना, उसे यहाँ ज्ञान की पर्याय में उतना आकृतिरूप ज्ञान परिणमा, उसे '**परभाव**' कहा जाता है। हरिभाई! यह सुना नहीं होगा कभी वहाँ। पुस्तक आयी है या नहीं हाथ में? ऐसे सूक्ष्म अर्थ हैं इसमें। आहा! कनुभाई!

'**परभाव**' की व्याख्या यह। भगवान आत्मा अनन्त... अनन्त... स्वभाव का पिण्ड, वह स्वभाव और एक समय में एक ही पर्याय में अनन्त शक्तिपने के कारण परिणमा नहीं, परन्तु यह ज्ञान की पर्याय परज्ञेय को जाननेरूप परिणमी, इतना जो पराकाररूप से परिणमी, ऐसी ज्ञान पर्याय को परभाव कहा जाता है। ऐसे परभाव में मेरा स्वभाव है, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह तो अभी यह मेरे.... यह मेरे.... यह मेरे...., स्त्री मेरी, पुत्र मेरे, धूल मेरी, धमाका मेरे... ऐई! धर्मचन्दजी! आहाहा! कहते हैं।

प्रभु! तेरा भाव तो अनन्त है न! अनन्त... अनन्त... भाव का पिण्ड प्रभु ऐसा स्वभाव है, उसे न मानकर एक समय की पर्याय में ऐसे अनन्त शक्तियों के जाननेरूप (ज्ञान) परिणमित हुआ वह तो '**परभाव**' है। '**परभाव**' है, वह स्वभाव नहीं। नेमीदासभाई! यह शास्त्र का आधार देते हैं कि राजमलजी खोटे हैं, ऐसा वे कहते हैं। तुझे अक्ल नहीं, अब सुन न!

बापू! यह वस्तु ऐसी है कि ऐसे एक समय का भगवान... आहाहा! अनन्त-अनन्त एक-एक गुण के स्वभाव—शक्तियाँ, ऐसा पूरा तत्त्व है। ऐसे स्वभाव को स्वभावरूप से—अस्तिरूप से न मानकर एक समय की पर्याय में पर के गुणरूप से आकृति की शक्ति को ख्याल में लिया, पर की अनन्त शक्तियाँ ख्याल में लीं, ख्याल परिणमित हुआ स्वयं, उतने ख्याल को ही परभाव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य-पाप के भाव तो परभाव, आहाहा! अरे! भगवान! ऐ... भगवानभाई! कभी ७५ वर्ष में इसने सुना नहीं हो। कहो, वजुभाई! समझ में आया इसमें? कहो, समझ में आया इसमें? नेमिदासभाई! क्या (कहा)?

यह शरीर और कंचनबेन तुम्हारी नहीं, ऐसा कहते हैं। अब उसकी बुद्धि की शक्ति का ख्याल तुम्हे आवे तो उसकी बुद्धि के कारण तुम्हारी पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। कि भाई! घर का काम बहुत सम्हाल लिया और बहुत किया, मुझे ऐसे है और वैसे है। अब यह शक्ति उसमें थी, उसका जो ख्याल आया, उतना ख्याल वह आत्मा का है, उस परभाव को अपना आत्मा माना है, ऐसा कहते हैं। यह तो दृष्टान्त (दिया हो तो) ठीक पड़े न! यह तो कहते हैं कि कंचनबेन आये तो रुपये हुए पैसे हुए, ऐसी लोग बात करते हैं, ऐसा कहते हैं। लोग बातें करते हैं। कंचन का नाम और पैसा वापस लाखों आये। पहले साधारण हो गये थे, फिर रुपये आये। डाले वहाँ भी इसमें आये ऐसा लोग बातें करते हैं। कहो, समझ में आया? ऐई! अरे... अरे! कठिन बात, भाई! कहते हैं, अरे! भगवान! तेरी तो बलिहारी है न, कहते हैं।

अरे! तेरे एक समय के शक्ति के सामर्थ्य की क्या बात करना! एक समय के एक गुण का सामर्थ्यय, दूसरा गुण का अनन्त गुण के सामर्थ्य की क्या बात करना!! ऐसा भगवान ध्रुव चिदानन्द महाशक्ति का अकेला सागर! ऐसे शक्ति को स्वभावरूप से न मानकर एक समय की पर्याय में परशक्ति के आकार से परिणमित ज्ञान को अपना मानना, वह परभाव को अपना आत्मा मानता है। आहाहा! ऐ... हरिभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। आहाहा! गजब परन्तु टीकाकार! कहना है आचार्य को वही हृदय खोलकर बात की है, हों!

यहाँ तो अभी शुभराग मेरा, यह तो कहीं गया मिथ्यात्व में। क्योंकि वह तो तत्त्व ही दूसरा, वह तो तत्त्व ही दूसरा। यहाँ तो अपनी ज्ञानपर्याय में परशक्ति के गुणों के ख्यालरूप से अपने से ज्ञान परिणमा, वह परभाव है। समझ में आया? पूरा तत्त्व महान और वह भी उसकी एक समय की पर्याय स्व के अनन्त गुण के आकार परिणमना चाहिए, यह भी नहीं आया। समझ में आया? भगवान अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु, जिसके लक्ष्य से, आश्रय से, श्रद्धा से, प्रतीति से जो पर्याय परिणमे, वह तो आयी नहीं। पर्याय नहीं आयी, वस्तु तो नहीं आयी, वह पर्याय भी नहीं आयी। छोटाभाई! आहाहा!

कहते हैं, वह परभाव अर्थात् ज्ञान की पर्याय परआकार से परिणमी वह। ऐसा '**भावकलनात्**' अर्थात् अपना भाव उसमें है, ऐसा माना है। '**भावकलनात्**' अर्थात् भाव का अनुभव। '**कलनात्**' अर्थात् अभ्यास। '**परभावभावकलनात्**' ज्ञान की पर्याय में अनन्त गुणों का, परद्रव्य की शक्ति का ख्याल अपनेरूप से परिणमा, ज्ञान की पर्याय, उसे '**परभाव**'। उसमें '**भावकलनात्**' मेरा आत्मा उसमें है, यह मैं स्वभाव हूँ, वह मेरा स्वरूप है ऐसा। भाव का अभ्यास जिसे हुआ है, उसे एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कहते हैं। कहो, समझ में आया नहीं इसमें? ऐ... प्रेमचन्दभाई! कभी सुना नहीं होगाा वहाँ। भगवान जाने क्या होगा? विवाद (में) पड़े, बाहर में अभी तो सिरपच्ची (करते हैं)। आहाहा! अकाल मरण और काल मरण को भगवान ने नियत देखा न... कहाँ के कहाँ फँस गये। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि केवलज्ञान की पर्याय और केवलवीर्य की पर्याय पूर्ण भगवान का लो न, भाई! कहो, सुनो! भगवान का ऐसा अनन्त वीर्य और अनन्त ज्ञान, वह परज्ञेय है। उससे मुझे ज्ञान हुआ, यह तो नहीं, परन्तु ज्ञान की पर्याय उस पर के ज्ञेय की शक्तिरूप से अपने पर्याय में परिणमी कि ऐसा उसका ज्ञान है इतना। उस पर्याय को परभाव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? रिकार्ड में उतरने के लिये तो यह निकलता है। **अवधार किया है... '****भावकलनात्**' इसलिए इतना जिसने आत्मा का निर्णय किया है। ऐसे झूठे अभिप्राय के कारण एकान्तवादी वहाँ विश्राम (करके) पड़ा है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। अब आगे सुलटा क्या है, वह लेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागशर कृष्ण अमावस्या, बुधवार, दिनांक-२२-१२-१९६५, कलश-२५८, प्रवचन-२७७

स्याद्वाद अधिकार, समयसार कलश, बारहवाँ कलश बीच में आता है, देखो! मिथ्यादृष्टि क्या मानता है? अज्ञानी का स्वभाव और परभाव के अन्तर में अन्तर क्या है? इसकी व्याख्या चलती है। जिसकी दृष्टि में असत्यपना है, वह '**परभावभावकलनात्**' इस आत्मा की ज्ञान अवस्था में परभाव सम्बन्धी जो ज्ञेयाकृति ज्ञान की पर्याय, ज्ञेयों की शक्तियों की पर्याय, दूसरे द्रव्य की शक्ति जो सामर्थ्य है, उस सामर्थ्य को लक्ष्य में लेकर जो ज्ञान की पर्याय परिणमी है, वह परभाव है, उसमें स्वभाव को मान रहा है। समझ में आया?

स्व-भाव से अस्ति। ग्यारहवाँ भंग, उससे विरुद्ध परभाव में अपने भाव की अस्ति। ऐसी पहले व्याख्या चलती है। क्या कहा समझ में आया? यह क्या पूछा इसने? क्या चलता है? व्याख्या तो यह चलती है कि यह आत्मा जो है, उसमें अनन्त-अनन्त शक्तिरूप स्वभावभाव है। वस्तु-वस्तु आत्मपदार्थ है, उसमें शक्ति अर्थात् गुण अर्थात् स्वभाव, अनन्त-अनन्त शक्तिरूप अनन्त गुण का स्वभावरूप आत्मा है। उस स्वभाव से अस्ति। ज्ञानी अपने त्रिकाल अनन्त गुण के स्वभाव से अपनी अस्ति मानता है। अज्ञानी ऐसा नहीं मानता, यह बात चलती है। कहो, समझ में आया इसमें?

यह आत्मद्रव्य, वस्तु है, पदार्थ है और पदार्थ में... पदार्थ है, उसका भाव होता है या नहीं? उसकी शक्ति, उसका गुण-सामर्थ्य होता है या नहीं? इस आत्मा का अनन्त-अनन्त स्वभावरूप यह शक्तिरूप सामर्थ्य है, ऐसा जो आत्मद्रव्य का भाव, उसे अपने स्वभावभाव रूप से अज्ञानी की दृष्टि, स्वभावभाव के सामर्थ्य की नहीं है। उसकी दृष्टि वर्तमान ज्ञान की दशा में परपदार्थ के सामर्थ्य के ज्ञान की जो पर्याय (हो), उसके आकार परिणमे, ऐसे ज्ञेयाकार ज्ञान की पर्याय, वह मेरा भाव है (ऐसा मानता है)। वह है परभाव। समझ में आया? भाई! भारी सूक्ष्म, भाई! लो, हमारे दरबार कहते हैं, बहुत अच्छा आता है। कहो, समझ में आया इसमें?

आत्मा वस्तु है या नहीं? वस्तु पदार्थ है या नहीं? वस्तु तत्त्व है या नहीं? तो

वस्तु है उसमें बसे हुए अनादि स्वभावरूप गुण हैं या नहीं? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त उसकी शक्तिरूप सामर्थ्य स्वभाव है। दूसरे प्रकार से कहें तो सर्वज्ञस्वभाव, सर्वदर्शीस्वभाव, पूर्ण प्रभुतास्वभाव, पूर्ण स्वच्छतास्वभाव, ऐसी अनन्त शक्ति का स्वभावरूप आत्मा का भाव है। समझ में आया? ऐसे आत्मा के महान स्वभाव को नहीं मानकर वह **'परभावभावकलनात्' ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप है ज्ञान की पर्याय....** मात्र जगत के दूसरे पदार्थ अर्थात् भाव, शक्तियाँ, गुण उनके सामर्थ्य के भाव की ओर उसकी वर्तमान ज्ञान की दशा में उन सबके सामर्थ्यरूप उसका सामर्थ्य है, ऐसे जानने के लक्ष्य से ज्ञान की अवस्था हुई है, वह अवस्था वास्तव में परभावरूप है। समझ में आया?

यह परभाव, उसे **'परभावभावकलनात्'** उसे अपना एक समय का अनन्त भाव जो गुण अनन्त शक्तिस्वरूप है, सर्वज्ञस्वभाव, सर्वदर्शीस्वभाव, अनन्त पुरुषार्थस्वभाव, अनन्त प्रभुतास्वभाव – अनन्त स्वच्छतास्वभाव, अनन्त जीवत्वशक्ति आदि आनन्दस्वभाव ऐसा पूरा भाव – स्वभाव जो पूर्ण है, उसे एक समय की दशा में दूसरे के सामर्थ्यरूप जानने की पर्याय हुई, उसमें अपना भाव मानता है। इसका नाम असत्यबुद्धि, मिथ्याबुद्धि और इसका नाम पापदृष्टि कहने में आता है। गजब बात, भाई! इसमें किसका पाप किया इसने? क्या किया अपना? बनिया बोले तो सही... कहो समझ में आया इसमें? एक समय की ज्ञान की दशा में जड़ के सामर्थ्य का भाव, दूसरे चैतन्य के सामर्थ्य का भाव, अरे! केवलज्ञानी के अनन्त वीर्य और ज्ञान के सामर्थ्य का भाव, ऐसी एक समय की पर्याय में उसका जानना होता है कि ये ऐसे हैं, ये सर्वज्ञ हैं, यह सर्वदर्शी है, यह पूर्ण है, इस परमाणु में एक समय में नीचे से ऊपर जाने की शक्ति है, यह तुम्हारे क्या कहते हैं उड़ते हैं वे सब? रॉकेट और फॉकेट उन सब रजकणों में शक्ति का सामर्थ्य है, उस शक्ति का सामर्थ्य पर शक्तिरूप है। उसे अपनी माने, वह तो स्थूल मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : वह तो बहुत दूर।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बहुत दूर रह गया। परन्तु उन शक्तियों के सामर्थ्य को यह ज्ञान की अवस्था जाननेरूप उनके ज्ञेयाकाररूप जाननेरूप परिणमे, वह ज्ञेयशक्ति

का ज्ञान, शक्ति का ज्ञान इस प्रकार परिणमे, इतने में पूरी त्रिकाली सर्वज्ञ शक्ति आदि को माने, उसने परभाव में स्वभाव माना, इसलिए उसे असत्य बुद्धि का मिथ्यात्व का पाप लगता है। उसने अपने जीव महास्वभाव को घात डाला है। यह जीविया बहोरुविया किया उसने। जुगराजजी! यह जीविया बहोरुविया आता है या नहीं? ....जीविया बहोरुविया। वह कहे... यह नहीं, यह जीविया बहोरुविया।

अपना जीवत्वशक्तिरूप महान सत्व, आनन्दशक्तिरूप महान सामर्थ्य और वीर्य का अनन्त-अनन्त वीर्य का महासामर्थ्य एक समय में ऐसे अनन्त भावरूप सामर्थ्य, महान सामर्थ्य, इसकी प्रतीति में इसे भाव आना, ऐसी प्रतीति और श्रद्धा में न लेकर, मात्र अपनी वर्तमान एक दशा में दूसरे सामर्थ्य का ज्ञान हो तो स्व-स्वभाव का ज्ञान उसमें नहीं रहा, अकेला परपदार्थ की ताकतरूप ज्ञान ने जाना, उतनी पर्याय को यहाँ त्रिकाल सामर्थ्य के स्वभाव की अपेक्षा से उसे उस पर्याय को परभाव कहा जाता है। आहाहा!

इसलिए वह '**परभावभावकलनात्**' जिसने भावरूप से निर्णय किया है। ऐसा लेना। ज्ञानवस्तु का अस्तित्व ऐसा जिसने माना है, **ऐसे झूठे अभिप्राय के कारण**। वह मिथ्या अभिप्राय, असत्य अभिप्राय, पाखण्ड अभिप्राय, मिथ्या अभिप्राय है। अरे.. अरे..! यह गजब बात भाई! कहो, समझ में आया? अच्छा लड़का हो, अच्छे पैसे हों, अच्छे घोड़े-बैल-हाथी घर में हों, उन सब शक्तियों को देखकर स्वयं प्रसन्न होता है या नहीं? क्या मणिभाई! तुम्हारे कहाँ लड़के हैं, वह तुम प्रसन्न होओ। किसी के लड़के देखकर प्रसन्न हो। फूलचन्दभाई! क्या होगा? होशियार लड़का होवे तो उसका उत्साह आ जाए, लो। उसकी शक्ति का ज्ञान होने पर। ओहो!

मुमुक्षु : रत्न पका।

पूज्य गुरुदेवश्री : रत्न पका। कुल को प्रकाशित किया, बापू! कहते हैं कि यह उसके सामर्थ्य का ज्ञान किया, वह सामर्थ्य तो पर में है। यह सामर्थ्य मेरा है और मुझे मदद और मुझे लाभ है, ऐसा माने तो महान असत्य मिथ्या प्रतीति इसने की है। परन्तु उसके सामर्थ्य के ख्याल में परिणमित ज्ञान, इतने को स्वयं पूरा आत्मा माने, ऐसे पूरे स्वभाववाला तत्त्व, उस भाव में माने तो उसकी झूठी दृष्टि और झूठा अभिप्राय है। उसने

भगवान आत्मा अनन्त भाव के सामर्थ्यरूपी जीव का अनादर किया है। ऐसे स्वभाव का उसने अनादर किया है और एक समय की पराकृति शक्ति की पर्याय का आदर किया। कहो, जमुभाई! आहाहा!

द्रव्य के स्वभाव की अभी बात चलती है। द्रव्य में पहले गया। द्रव्य-क्षेत्र-काल दूसरे में गया। यहाँ अभी द्रव्य का स्वभाव शाश्वत् है, शक्ति महान। वह शब्द बदले तो पूरा बदल जाए ऐसा है। यह ऐसा चले, ऐसा नहीं। स्वभाव।

परन्तु कहाँ कब ऐसा देखे तब न? मानने में भी नहीं आता। ऐसा मैं अनन्त गुण का धनी! एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा मेरा गुण, इससे अनन्त गुण को जाने, ऐसी मेरी शक्ति। आहाहा! अनन्त क्षेत्र और अनन्त काल और अनन्त भाव को जानने की मेरी शक्ति। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण। जिसने एक शक्ति को टिकावे, ऐसा वीर्य, उसे टिकावे ऐसी मान्यता, ऐसे सब अनन्त गुण उसमें पड़े हुए हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : खबर नहीं कि...

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं करता। खबर नहीं क्या? पश्चात् ऐसा मूढ़ होकर चला जाता है ऐसा का ऐसा। यह पैसे कुछ मिले, यह मकान हुए, हम कुछ बड़े हुए, ऐसा मानकर चला जाता है। घर में उतारना अच्छा है या नहीं? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! घर में से कुछ ऐसा नया निकले न? पैसे को क्या कहा जाता है? हीरा, माणिक की कुछ खान निकली हो, कलश निकल जाए। वह तो कहाँ तेरे थे? परन्तु तेरा ज्ञान और उसकी शक्ति... फर्क पड़ा, सब अन्तर पड़ा है। घड़ा है जो घर का, क्या कहलाता है यह? पाया। पायावाले को कहना नहीं, कल बन्द रखना। गहरा-गहरा लगता है दबाया हुआ। कहते हैं। इसमें यह आया था न उस राजा ने कुछ दबाया था। कोई बड़ा राजा था, उसने दबाया है यह सब। पचास अरब रुपये का सोना। किसी ने कहीं से लेकर उसके लड़के के लिये दबाया। वह मर गया और रानी उसके लड़के को लेकर बाहर चली गयी। वह सब पड़ा रहा। ऐसा पड़ा हो, उसमें राजा को... ओहोहो! पागल हो जाए।

यहाँ तो कहते हैं, वे चीज़ें तो पृथक् और उनकी सामर्थ्य भी पृथक्। उनकी सामर्थ्य को तुझे कुछ छूने जैसा नहीं है। उसे और तेरे कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु उसके सामर्थ्य के ख्याल में परिणमित तेरी दशा, इतने भाव को परभाव कहने में आता है। उसे आत्मा का त्रिकाल '**परभावभावकलनात्**' परवस्तु के भाव में अपने पूरे भाव का अभ्यास करता है। '**कलना**' अर्थात् अनुभव करता है। इसका नाम मिथ्या अभिप्राय और मिथ्या श्रद्धा है। समझ में आया इसमें? भारी सूक्ष्म बात भाई यह! फूलचन्दभाई! लड़का होशियार हो और वह मर जाए तो अन्दर मन में कुछ होता है या नहीं? क्या करना इसमें? परन्तु किसके? कहते हैं। किसका द्रव्य और किसकी शक्ति और किसका सामर्थ्य? आहाहा! हीरा जैसा लड़का था, कहे भाई! मिलनसार था, प्रेमी था, बुद्धिवाला था, अमुक था। अब तो उसमें रहा। यहाँ आया है कुछ? नहीं आया? अब उसकी ज्ञान की पर्याय जानी, ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ कि वह ऐसा था... ऐसा था। वह ज्ञान की पर्याय पराकृति रूप से शक्ति के भावपने का परिणमन उसका स्वभाव है। परन्तु इतना परप्रकाशक परशक्तिरूप परिणमा, वह भाव ही वास्तव में परभाव है। वह वस्तु का स्वभावभाव नहीं है और वास्तव में वह वस्तु की वास्तविक पर्याय भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब यहाँ तो कहाँ का कहाँ मानकर बैठे। अस्ति-नास्ति की खबर नहीं होती और धर्म हो जाए, लो। यह अनेकान्त इसका नाम है। वह अनेकान्त उड़ा देता है। सर्वज्ञ ऐसा जाने, अमुक ऐसा जाने, अमुक ऐसा जाने। अरे भगवान! समझ में आया? नियत और काल और अकाल, नियत, अनियत ये चार नय अवरोधक है। परन्तु इसका अर्थ तुझे खबर नहीं है, उसमें क्या है यह?

मुमुक्षु : अर्थ देकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ लिखकर दिये, तब कहे तुम इसमें तुम्हारा उसमें भाव रखकर बचाव किया है। ऐसे के ऐसे।

एक समय की ज्ञान की पर्याय तीन काल-तीन लोक को जैसे व्यवस्थित है, वैसे जाने, ऐसी तो एक पर्याय की ताकत। ऐसी अनन्त पर्याय की ताकत ज्ञानगुण में पड़ी है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण की एक समय में अनन्त गुण की ताकत पड़ी है। आहाहा! श्रद्धा

की भी ऐसी ताकत है या नहीं? एक समय में तीन काल तीन (लोक) को जिस प्रकार से जाने, वैसी ही श्रद्धा हो, ऐसा गुण अन्दर पड़ा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा वीर्य इतना पड़ा है कि एक समय में जाने तीन काल-लोक को, इस प्रकार ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति का सामर्थ्य जिस ज्ञानगुण में है, ऐसे अनन्त उसका वीर्य उसे स्वीकार करे, ऐसा वीर्य अन्दर पड़ा है। ऐसे अनन्त-अनन्त शक्ति के सामर्थ्य का भगवान भाव आत्मा का, उसे अपना न मानकर एक समय की अवस्था के पर के सामर्थ्यरूप परिणमित ज्ञान, उसे ही अपना त्रिकाली भाव मानता है, वह अभिप्राय झूठा है। गजब बात, भाई! ऐसा तो कुछ... यह जैन की बातें होंगी? जैन के अतिरिक्त यह भाव और एक समय की पर्याय और पररूप परिणमे और पर की आकृतिरूप परिणमना, यह अन्यत्र हो कहाँ से? समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्वज्ञ के अतिरिक्त नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सर्वज्ञ और तीन काल और तीन लोक में जो एक-एक द्रव्य के स्वभाव भरे हैं, तेरे स्वभाव के सामर्थ्य का क्या कहना! ऐसे सामर्थ्य की प्रतीति अन्तर्मुख न करके एक समय की पर्यायबुद्धि में तेरी बुद्धि अटक गयी है, उसने परभाव को अपना माना है, ऐसा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। दूसरे जीव को घात न करे। घात तो कहाँ कर सकता है? मार नहीं सकता, बोल नहीं सकता, कुछ नहीं। मात्र उसकी एक समय की पर्याय में पर की शक्ति का जानने का परिणमन हुआ, उसमें पूरे आत्मा को माना, इसका नाम आत्मा की महाहिंसा है। समझ में आया? यह एकान्त माना। लो, इसका नाम एकान्त। यह एकान्त और अनेकान्त की व्याख्या गजब, भाई!

और कैसा है एकान्तवादी ? अब आता है, देखो! उसमें माना... '**स्वभावमहिमनि एकान्तनिश्चेतनः**' देखा? **जीव की ज्ञानमात्र निजशक्ति के....** यहाँ तो पूरा ज्ञानमात्र लेना है न? परन्तु यह अनन्त शक्ति। जीव की त्रिकाल ज्ञानमात्र शक्ति, जीव की त्रिकाल स्वभावरूप अनन्त शक्तियों की '**महिमनि**'। अनादि अनन्त शाश्वत् प्रताप। अनन्त गुण का, अन्तर शक्ति का शाश्वत् प्रताप। ज्ञानगुण... ज्ञानगुण... ज्ञानगुण... जानना... जानना... जानना... इसकी प्रधानता से पूरी बात है। इस ज्ञानगुण का अनन्त, अनादि-अनन्त

शाश्वत् प्रताप, ऐसे **शाश्वत प्रताप में, एकान्त निश्चेतन...** एकान्त निश्चेतन—जड़ हो गया है, कहते हैं। यह महा अनन्त ज्ञान का पिण्ड प्रभु, अनन्त सामर्थ्य, उसका निश्चेतन, यह मेरा नहीं, यह मेरा नहीं, ऐसे निश्चेतन हो गया है। ओहोहो! समझ में आया? **एकान्त निश्चेतन...** लो। एक समय की इतनी पर्याय को माना तो एकान्त निश्चेतन, भाई! अचेतन कहा। आहाहा! समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

चेतन जो महान सामर्थ्य का पिण्ड एकरूप है, उसकी महिमा का स्वीकार नहीं, वह अचेतन हुआ है। आहाहा! एक समय की पर्याय में दूसरी शक्ति का परिणमनरूप ज्ञान (हो), उतने को माननेवाला, महासामर्थ्य के भावस्वरूप का अनादर करनेवाला, वह चैतन्यस्वभाव जो वस्तु है, (उसे) नहीं माना; इसलिए कहते हैं कि निश्चेतन है। ओहोहो! यह जड़ हो गया? यह निश्चेतन क्या हुआ? भाई! वह एक समय की पर्याय वह कहीं चेतना का पूरा स्वरूप है? वह तो वास्तव में पूरे अनन्त गुण का सामर्थ्य ऐसा भगवान है। उसका स्वीकार नहीं, वह निश्चेतन-अचेतन है, ऐसा कहते हैं। उस चेतन की महान स्वभाव की महिमा नहीं होती, उसे पर्याय में अचेतन कहते हैं। छोटाभाई! गजब बातें ऐसी! ऐई! कहाँ गये वे तुम्हार न्यालभाई। गये मौके से थे।

अर्थात् उससे सर्वथा शून्य है। अर्थात् क्या? एकान्त निश्चेतन शब्द प्रयोग किया न? अपने अनन्त स्वभाव की शक्ति की महिमा के बिना एकपक्षी अत्यन्त अचेतन हो गया है। समझ में आया? सर्वथा शून्य हो गया। भगवान महान सामर्थ्यस्वरूप से शून्य हो गया। मानो खाली। अकेली एक समय की पर्याय पर की आकृति से भरपूर और मेरा पूरा स्वभाव मानो शून्य है। ऐसा दृष्टि में इसने माना है। ओहोहो!

भावार्थ इस प्रकार है कि स्वरूपसत्ता को नहीं मानता है.... देखो! **स्वरूपसत्ता को नहीं मानता है—ऐसा है एकान्तवादी।** क्या कहते हैं? अपने स्वरूप की शक्ति, सामर्थ्य, वस्तु का त्रिकाल सामर्थ्य। वस्तु जैसे त्रिकाल है, वैसे उसके ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि त्रिकाल सामर्थ्य है। त्रिकाल सामर्थ्य है। ऐसी **स्वरूपसत्ता को नहीं मानता है....** ऐसे स्वरूप के स्वभावभाव की शक्ति को नहीं मानता। **ऐसा है एकान्तवादी।** एकपक्षी माननेवाला।

उसे प्रति स्याद्वादी समाधान करता है.... उसके पक्ष में ज्ञानी-धर्मात्मा उसे कहते हैं। **'तु स्याद्वादी नाशं न एति' एकान्तवादी मानता है, उस प्रकार नहीं है; स्याद्वादी मानता है, उस प्रकार है।** समझ में आया ? **अनेकान्तवादी, विनाश को नहीं प्राप्त होता है।** अनेकान्तवादी पूर्ण-पूर्ण भाव को माननेवाला, एक समय की अवस्था, अवस्थारूप से, परभावरूप से जाननेवाला, पूर्ण भावरूप से स्वभाव अस्ति माननेवाला और उसमें एक समय की अवस्थारूप से नास्ति माननेवाला। समझ में आया ? यह अनेकान्तवादी। पहला एक समय की आकृति में पूरा भाव माननेवाला, यह एक समय के पूर्ण भाव में पूर्ण माननेवाला, एक समय की अवस्था को उतनी आकाररूप व्यवहार जाननेवाला। समझ में आया ?

अनेकान्तवादी, विनाश को नहीं प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता को साध सकता है। भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानमात्र सत्ता को साधता है। समझ में आया ? आज और यह शब्द आया था, परन्तु अर्थ नहीं। प्रवचनसार की जयसेनाचार्य की शीतलप्रसाद की पहली पुस्तक कोई ले गया है ? यहाँ नहीं। प्रवचनसार की पहली जयसेनाचार्य का पहला भाग। उसमें एक गाथा है न ? जयसेनाचार्य में 'सो अरिट्ठं इट्ठं' एक गाथा है। सर्वज्ञ की। ऐसे सर्वज्ञ को माने, वह समकिती है, ऐसी गाथा है। समझ में आया ? है या नहीं ? देखो न क्या है ? कहाँ गया ? लो। यह सर्वज्ञ को ओलि करते हैं। क्या है यह ?

पर्याय सर्व पदार्थ में श्रेष्ठ। उसे श्रद्धा करता है, वह दु:ख का क्षय करता है। क्या कहते हैं ? यह तो एक सर्वज्ञ की पर्याय की श्रद्धा करता है, ऐसी बात की। एक समय की प्रगट पर्याय। परन्तु उस प्रगट पर्याय की श्रद्धा कब हो ? कि पूरे द्रव्य की... यह साधक-साध्य अपने चलता है न, उसमें थोड़ा यह रखना है, हों! सर्वज्ञ के साथ सन्धि करके। सर्वज्ञ एक समय के इस जगत में हैं, एक समय की ताकत। उस ताकत की प्रतीति अपने द्रव्य में, वह शक्ति उसकी, परन्तु वह द्रव्य में से आयी थी। इस प्रकार अपने द्रव्य में पूरा गुण इतना अनन्त शक्तिवाला पड़ा है। उसमें उसकी प्रतीति करे, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, तब उसे सर्वज्ञ की प्रतीति हुई कहलाती है। तब यह शक्ति जो

मेरे द्रव्य में पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. है। वह अनेकान्तवादी मान सकता है। एक समय में अल्पज्ञता होने पर भी और एक समय में अल्पज्ञता में पूरा वर्तमान में पर के आकार परिणमा ऐसा होने पर भी, इतना मैं नहीं। समझ में आया? अर्थात् पूर्ण वस्तु जो पूरा तत्त्व है, उसे प्रतीति करके पर्याय परिणमी, उतना भी मैं नहीं। यहाँ भाव का वर्णन है न? पूरा भाव पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण वस्तु। वस्तु ऐसी है, भाई जरा। समझ में आया? जमुभाई! यह गुजराती चलता है।

अनेकान्तवादी, विनाश को नहीं प्राप्त होता है। क्योंकि **ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता को साध सकता है। कैसा है अनेकान्तवादी जीव? 'सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः'** यह छपाने में भूल हो गयी है। **'सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः' स्वभाव शक्तिमात्र—ऐसा जो अस्तित्व,...** अपना जो स्वभाव। समझ में आया? त्रिकाल शक्ति पूर्ण भाव, द्रव्य में पूर्ण शक्ति स्वभावभाव, ध्रुवभाव, ध्रुवभाव। अनादि-अनन्त जैसे आत्मा है, वैसे उसकी ज्ञान-दर्शन आदि शक्तियाँ ध्रुव अनादि भाव अन्दर पड़ा है। ऐसे भाव को... समझ में आया? ऐसा जो होनापना। अस्ति अर्थात् होनापना। अपने अनन्त-अनन्त शक्ति आदि का ज्ञान, दर्शन आदि की अनन्त शक्ति का अस्तित्व **उस सम्बन्धी दृढ़ किया है। 'स्पष्टीकृत'** स्पष्टीकृत यह आशय जिसने स्पष्ट किया है अर्थात् अनुभव किया है आशय जिसने। समझ में आया?

दृढ़ किया है। 'प्रत्ययः' अर्थात् **अनुभव जिसने...** देखो! भाषा। कितने शब्द पड़े हैं। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शक्ति का सम्पन्न भाव... भाव.. भाव.. पूर्ण...पूर्ण..। ऐसा **'स्पष्टीकृत'** प्रत्यय अर्थात् कि स्वभाव इतना है, इतना है—ऐसा स्पष्ट किया है अनुभव जिसने। समझ में आया? जैसा स्वभाव पूर्ण है, ऐसा ही स्पष्टीकृत, ऐसा अस्तिरूप दृढ़ किया है। स्पष्ट का अर्थ दृढ़ किया है। **'प्रत्ययः'** अर्थात् अनुभव। ऐसा अनेकान्तवादी। पूर्णानन्द प्रभु पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण। एक समय में पूर्ण परमात्मा, जिसकी शक्ति और स्वभाव, उसके सामर्थ्य का क्या कहना? जिसका स्वभाव, उसके सामर्थ्य का क्या कहना? ऐसा आत्मा महान अनन्त स्वभाव सम्पन्न है। ऐसा अन्तर में जिसने दृढ़रूप से प्रतीति में अनुभव किया है, उसे अनेकान्तवादी कहा जाता

है। समझ में आया? उसे अमृत का अनुभव है। अन्य को मिथ्यात्व का अनुभव था, मिथ्यात्व का। यह महान पदार्थ... समझ में आया?

बहुत बार कहा गया है न? आकाश.. आकाश.. आकाश.. आकाश.. खाली... खाली... खाली... कहीं अन्त है? इस प्रकार दसों दिशाओं में जाए, पश्चात् क्या? पश्चात् क्या? पश्चात् क्या? पश्चात् क्या? पश्चात् क्या? कहीं नास्ति ही नहीं। अस्ति.. अस्ति.. अस्ति.. चला ही जाए। है.. है.. है.. है.. ऐसे चला जाए।

वह है – है के क्षेत्र की अस्ति की नास्ति नहीं है। इसी प्रकार इस आत्मा के एक-एक शक्ति के अस्तित्व के सामर्थ्य की कोई नहीं, ऐसा नहीं है। पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. अरे! यह बात। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? जिसका इतना अमाप क्षेत्र। पश्चात् क्या होगा? पश्चात् क्या होगा? दीवार होगी? बंडी होगी? पश्चात् क्या होगा? जहाँ निषेध करने जाए, वहाँ अस्ति की हाँ पड़ेगी। ऐसे क्षेत्र के अमाप, क्षेत्र का चौड़ा भाव अमाप। तो आत्मा के स्वभावभाव के सामर्थ्य का क्या कहना? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसे क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। भाव के सामर्थ्य को क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। भाव के सामर्थ्य में उसके सत्त्व में सामर्थ्य की उसे आवश्यकता है, बस! एक-एक गुण का इतना सत्त्व, दर्शन का, ज्ञान का, चारित्र का, आनन्द का, अस्तित्व का, वस्तुत्व का, प्रमेयत्व का, प्रभुत्व का, महा अनन्त शक्तिरूप आत्मा, उसका '**स्पष्टीकृत प्रत्ययः' दृढ़ किया है अनुभव जिसने....** ऐसे महान स्वभाव की श्रद्धा को ज्ञान में लिया, उसे सत्य का परिणमन होने पर शान्ति का परिणमन होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निकाल डाला, राग निकाल डाला, निमित्त निकाल डाला, एक समय में पर के आकार परिणमित इतनी पर्याय निकाल डाली। ऐसा महा आत्मा अनन्त गुण का भावरूप, प्रभु! उसे जहाँ दृष्टि में, ज्ञान में लिया, कहते हैं कि सतरूप अनेकान्त का परिणमन, वह सम्यग्ज्ञान हो गया। उसे अन्तर में अमृत का स्वाद आवे, सत्य का। अज्ञानी को एकान्त के – मिथ्यात्व के जहर का स्वाद आता है, ऐसा कहते हैं। इसमें धर्म-अधर्म की पूरी बात है। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा छूटे। कभी कहाँ इसे खबर है कि मैं कौन हूँ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त दिया जाता है। यह दृष्टान्त इसीलिए तो दिया कि नास्तिक मनुष्य भी ऐसा विचार करेगा न कि ऐसे का ऐसा, ऐसे का ऐसा यह खाली ऐसा क्षेत्र तो अमुक स्थान में है परन्तु पश्चात् कुछ है या नहीं? क्षेत्र खाली... खाली... खाली... उस खाली का अन्त कहाँ? नास्तिक मनुष्य भी विचार करेगा या नहीं?

इसका अर्थ यह कि खाली का अन्त नहीं है। इतनी तो क्षेत्र की अचिन्त्यता है, तो उसके जाननेवाले के भाव की अचिन्तता क्या! ऐसी यहाँ तो बात ली जाती है। समझ में आया? आहाहा! एक समय की पर्याय की बात नहीं, हों! सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय, उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो एक समय का पूरा भाव सब। वस्तु है, उसका स्वभावभाव, स्वभावभाव त्रिकाल शक्ति स्वभाव। उसका जिसने एकान्तपना टालकर, अनेकान्त ऐसे भाव में एक समय की पर्याय नहीं, एक समय की पर्याय में ऐसा पूरा भाव आता नहीं। समझ में आया? इसका नाम अनेकान्त है, लो! ओहो!

ऐसा है सम्यग्दृष्टि जीव। अनेकान्तस्वरूप को जैसा है, वैसा माननेवाला, अनुभव करनेवाला, जाननेवाला जीव। कहो, सुगनचन्दजी! क्या करना अब? अभी तो बाहर के समझ को और किसी ने प्रश्न किया था कि यह धर्मशाला बनावे तो धर्म होगा या नहीं? अरे! धर्मशाला बनावे तो मोक्ष होगा। अरे! भारी कर डाला अब तो। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि धर्मशाला, वह त्याग में-दया, धर्म में है, त्यागधर्म में वह है। दस प्रकार का धर्म है, उसमें त्यागधर्म में वह है। दस प्रकार के धर्म में त्यागधर्म में वह है। ऐई! देवानुप्रिया! अरे! धर्मशाला बनाने को प्रश्न किया तूने? कितने श्लोक वापस। पद्मनन्दि के। अरे! भगवान! क्या करता है तू यह? आहाहा! यह ठगने का और दूसरे बेचारे ठगा जाएँ। दस हजार की, बीस हजार की एक धर्मशाला बनावे तो उसका मोक्ष हो गया। गजब भाई! हमारे तो यहाँ दो लाख खर्च किये, ढाई लाख खर्च किये, (तब) नानालालभाई को पूछा, तुम्हारे आठवें भव में मोक्ष होगा। तो वह कहे, नहीं, नहीं। हम ऐसा नहीं मानते। महाराज इनकार करते हैं। आहाहा! जैन गजट में ऐसा लिखा है। ओहोहो! परन्तु बहुत स्थूल में उतर गये, बहुत उतर गये।

मुमुक्षु : जो कोई बाहर का शुभभाव करे, वे सब...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब भाव शुभभाव। आहाहा! त्याग है न उसमें? त्याग है न! तीव्र कषाय का त्याग हुआ, उतना धर्म हुआ, ऐसा। वह धर्म हुआ और उससे उसे मुक्ति होगी, जाओ। ऐई! धर्मचन्दजी! कुछ मेहनत नहीं होती। यह कितना यह समझने की मेहनत, श्रद्धा करना... वह तो कुछ नहीं। एक मन्दिर बनावे तो मोक्ष हुए बिना रहे? धर्मशाला बनावे तो मोक्ष होवे तो मन्दिर बनाना (ही चाहिए), यह तो भगवान का मन्दिर है। और वापस ऐसा दिया है कि धर्मशाला बनावे उसमें कितने भूखों को वह होता है, भय मिट जाता है, दुःख का भय मिटे, क्षुधा का भय मिटे, अमुक का भय मिटे। इसलिए इसने बहुत ऐसा किया, इसलिए (इसे मोक्ष हो जाएगा)। यह शास्त्र में लिखा। ओहोहो! उसकी क्या बात करना! उसने धर्मशाला बनायी, उसने त्यागधर्म किया, उसकी प्रशंसा की क्या बात करना! ओहोहो! बहुत स्थूल कर डाला।

मुमुक्षु : बारोठ आया था, वह ऐसा कहे...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्यों तुम्हारा पिता न सहे? पैसा लेना है तुम्हारे पास से। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! यहाँ तो कहते हैं एक समय की ज्ञान की पर्याय में वह धर्मशाला और मन्दिरों की शक्तियों के ज्ञानरूप तेरा पर्याय में परिणमन होता है, इतने को तू माने तो अनन्त संसारी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : करावे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : कराने-बराने का कहाँ रह गया? करावे तो कौन? यह लिखा न! यह तो यह... धर्मशाला बनायी। आहाहा! अरे! भगवान! क्या करता है कहा यह। गजब परन्तु यह उल्टा गिरे तो... भगवान... आहाहा! शास्त्र की बात को कहीं उड़ा दिया। वीतरागभाव से संसार का अभाव। दृष्टि के बिना तीन काल में नहीं होता। उसके बदले यह... एक कर सकता है, और वापस कर सकता है, यह भाव है, इससे त्याग है, इससे धर्म है, लो। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, लाख मन्दिर बने तो भी इससे मोक्ष नहीं है, ले! कहो, क्या है? गुलाबचन्दभाई! कहाँ गये? आकर चले गये? मलूकचन्द नहीं

आये? वापस गये? उस दिन गये। यह तो उसके कारण बनने का हो, उसे बने। बनानेवाले का भाव शुभ होता है। भगवान के दर्शन के लिये शुभभाव। परन्तु उस शुभभाव से मुक्ति हो जाए और जन्म-मरण मिट जाए, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो पैसेवाले को मजा पड़े...!

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाले को मुक्ति हो, गरीब तो बेचारे को रोना पड़े। अरे रे! परन्तु गजब कर डाला। आहाहा!

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि हे आत्मा! तुझमें एक समय में अनन्त-अनन्त शक्ति के भावरूप सामर्थ्य है, उसे माने बिना तू एक समय की अवस्था में, इस जगत की ताकत के सामर्थ्य के जाननेरूप एक समय में परिणम कर उसे तू अपना माने, तो भी मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी है। आहाहा! अब बाहर की कहाँ बात? मन्दिर और धर्म... ऐई! हिम्मतभाई! क्या करना? यह सब पण्डित ऐसे हुए हैं, लो! आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह? पूरा आत्मा केवलज्ञान मिल जाए इतने पैसे से! यह तो गजब बात भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा उसे बना सके, ऐसी मान्यता माने, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? धर्मशाला या मन्दिर मैं बना सकता हूँ। वह तो पर की पर्याय है। उसे कौन बनावे? उसमें और पैसा मेरा, हमने यह बनाया। आहाहा! कितना अभिमान? हमने यह छोड़ा। भाई! तेरा शुभराग हो, राग की मन्दता का भाव शुभ, वह शुभ पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु तू माने कि बन्ध-अभाव परिणाम इससे होंगे और मुक्ति का कारण होगा, उसमें एक भी प्रतिशत सत्य नहीं है।

मुमुक्षु : शुभभाव से ऊँचा आकर शुद्ध में आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सच्चा नहीं। अशुभ में से शुभ में आया। ऊँचा शुभ किसे कहना? यह तो अशुभ में - मिथ्यात्व में पड़ा है, वह अशुभ है। यह मैंने किया, यह मुझसे हुआ, इससे मुझे कल्याण होगा, ऐसे मिथ्यात्वभाव के अशुभभाव में तो पड़ा है। कठिन बात है भाई इसमें? ऐई! सत्य बात है? यहाँ चिट्ठी ऐसी नहीं है, ऐसा भगवान कहते हैं। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ का कहा हुआ तत्त्व है,

यह कहीं कल्पित और लोग मान लें उनके घर से, ऐसी बात नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहना चाहते हैं कि भाई! यह पर की दया मैं पाल सकता हूँ, पर की पर्याय कर सकता हूँ, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। वह तो है परन्तु उसकी शक्ति... देखो तो सही, किस प्रकार यह बचता है? किस प्रकार टिके हैं? उसके सामर्थ्य का ज्ञान तेरी पर्याय में होता है, उस पर्याय में तेरे कारण ज्ञान होता है, उसके कारण नहीं। तेरे कारण तेरी पर्याय में उसका ज्ञान होता है, इतना भी मैं आत्मा हूँ, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि एक अंश में पूरे स्वभाव को अर्पित कर दिया है। पूरे अनन्त स्वभाव गुण को एक समय में अर्पित कर दिया है। परभाव में त्रिकाल भाव को माननेवाला मूढ़ अज्ञानी है। आहाहा! गजब बात, भाई! फिर ऐसा होगा तो कोई नहीं करेगा। हमारे वापस यह कहते थे। मलूकचन्दभाई को वहाँ अहमदाबाद में मन्दिर बनाना है। कौन बनावे? वह तो निकलने का होगा वह निकले बिना रहेगा नहीं। निकाले कौन और दे कौन? भाई! सब बात समझने जैसी है। बोला जाए जब अमुक कहना हो तो, बाकी तो सब समझने जैसा है। आहाहा! कथन को बोलने के अमुक प्रकार होते हैं। क्या जानना है, इस अपेक्षा से। आहाहा!

कहते हैं, हम धर्मी उसे कहते हैं, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर कहते हैं कि जिसने एक समय की अवस्था में अपना पूरा रूप नहीं माना, परन्तु एक समय में पूरा अनन्त गुण का पिण्ड भगवान दृष्टि में लेकर, फिर एक समय की अवस्था है, उसका वह ज्ञान करता है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को हम धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है? 'सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्तः भवन्' देखो, आया। ऐसे से कहा। अब उससे विभक्त कहते हैं **जितने हैं अपनी-अपनी शक्ति से विराजमान—ऐसे जो ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ,...** देखो! परपदार्थ। जितने अनन्त आत्माएँ हैं, अनन्त परमाणु हैं, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल आदि अनन्त पदार्थ हैं। एक आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त पदार्थ हैं। वे **अपनी-अपनी शक्ति से विराजमान....** हैं। वह सब अपनी शक्ति से विराजमान हैं। सर्वज्ञ परमात्मा सिद्ध भगवान भी अपनी शक्ति से विराजमान हैं। आहाहा! समझ में आया? अनन्त सिद्ध और लाखों केवली महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वे उनकी अपनी शक्ति से विराजमान सभी पदार्थ हैं।

ऐसे जो ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ,... उस ज्ञान की पर्याय में जाननेयोग्य पदार्थ जो हैं, **उनकी सत्ता की आकृतिरूप परिणमी है, ऐसी** उसके सामर्थ्यरूप ज्ञान की पर्याय, अपनी अपने से परिणमी है, वह आकृति है, इसलिए नहीं परिणमी। आहाहा! अनन्त सर्वज्ञ उनकी शक्ति से विराजमान, अरिहन्त, केवली लाखों विराजमान, सच्चे साधु करोड़ों विराजमान (होवे) परन्तु वे सब इस आत्मा की पर्याय से भिन्न पदार्थ हैं। समझ में आया? उन भिन्न पदार्थ के कारण मेरी ज्ञानपर्याय परिणमती है, इस बात को तो महा मिथ्यादृष्टि कहा है। आहाहा!

परन्तु कहते हैं '**नियतस्वभाव**' नियत अर्थात् उनका निश्चय स्वभाव। **अपनी-अपनी शक्ति से विराजमान—ऐसे जो ज्ञेयरूप....** देखो, नियत आया या नहीं? इसका नियत स्वभाव है वह। प्रत्येक आत्मा का, प्रत्येक परमाणु का जो निश्चय स्वभाव है। **ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ,...** जीवादि पदार्थ छहों आ गये। अपने अतिरिक्त दूसरे अनन्त **उनकी सत्ता की आकृतिरूप....** यह अब भवन की व्याख्या करते हैं। भवन की व्याख्या करते हैं। भवन की व्याख्या कहाँ जाएगी? यह '**भवन ज्ञानात्**' उस पर की सत्ता की आकृतिरूप परिणमी है ऐसी जीव की ज्ञानरूप पर्याय, ज्ञान की एक समय की पर्याय। आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय, अवस्था। अनन्त ज्ञेयों की शक्ति को जाननेरूप परिणमी है एक समय की पर्याय, उससे विभक्त। उससे मेरा तत्त्व भिन्न है। आहाहा! उससे मेरा पूरा भाव भिन्न है। समझ में आया? परवस्तु से तो भिन्न है, पर की, शुभभाव की शक्ति से भी भिन्न है, परन्तु शुभभाव और परवस्तु की शक्ति से परिणमित एक समय का ज्ञान, इतने एक समय के ज्ञान की पर्याय से मेरा स्वरूप त्रिकाल भिन्न है। ऐसे पर से विभक्त जिसने माना है, स्व में पूर्ण है, ऐसा जाना है, ऐसे पर्याय विभक्त ज्ञान में होता ऐसा अनुभव करनेवाला सम्यग्दृष्टि अनेकान्ती कहलाता है। गजब बात भाई! और वापस ऐसा कहे, और वापस मन्दिर तथा तीर्थ और यात्रा (करे)। सुन तो सही। ऐई! यह तो जब उस शुभभाव का समय हो और तब यह क्रियादि होने की हो, तब उसका लक्ष्य शुभ का पर में जाता है, बस इतनी उसकी मर्यादा है। वह मर्यादा निकाल डालो तो भी मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय में उस काल में वह शुभराग और उस निमित्त को जानने का पर्याय का धर्म है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इस मिथ्यात्व का अन्त आवे, ऐसा एक बोल है... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक बोल कहा न यह। ऐसा कहते हैं, मिथ्यात्व कितने प्रकार के। एक ही प्रकार का कहा न। एक वस्तु महास्वभाव से भरपूर सागर पूर्णानन्द प्रभु, वह मेरा पूर्ण भाव है, इस एक समय की अवस्था से विभक्त है। एक समय की अवस्था, पर से तो भिन्न है परन्तु इसके जाने हुए की पर्याय से भी भिन्न यह त्रिकाली भाव है। उसको मानना, इसका नाम मिथ्यात्व का नाश और समकित की उत्पत्ति है, लो! आहा.! समझ में आया इसमें? लाभुभाई! कभी यह सुना नहीं होगा, ऐसा है लो यह। अपने आप पढ़ने जाए तो समझ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो महँगी वस्तु है, ऐसा बताने के लिये बात चलती है। समझता है तो वह स्वयं से समझता है। आहाहा! कितनी बात।

'**सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्तः भवन्**' देखो! ऐसी तो (बात) की है।'**ज्ञानात् विभक्तः**' ऐसा कहा न? पाठ ही ऐसा है, लो न। ऐई! हिम्मतभाई! पाठ ही ऐसा है, देखो! '**सर्वस्मान्नियतस्वभाव**' अर्थात् पर। उसका भवन, उसका जो ज्ञान, उससे विभक्त भवन। पाठ ही ऐसा है। आहाहा! गजब परन्तु यह। जयचन्दजी ने उसमें ऐसा अर्थ नहीं किया, हों!

मुमुक्षु : परपदार्थ की बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : परपदार्थ की बात की है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहा न '**सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्तः भवन्**' ऐसा कहा है न? अर्थ बराबर किया है। ओहोहो! राजमल पाण्डे परन्तु... 'पाण्डे राजमल जिनधर्मी समयसार नाटक के मर्मी।' आहाहा! देखो न! यह शब्द अन्दर पड़ा है, इसका अर्थ किया है, हों! उसमें भी ऐसा था। समझ में आया? वह ऐसा था, '**विश्रान्त परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु**' समझ में आया? अर्थात् उसमें से फिर अन्तिम शब्द में से सब निकाला है। समझ में आया? तीसरे में। आहाहा! तब उसमें से पहले निकाला न? इसमें यह शब्द पड़ा है, इसलिए उसमें से वह ज्ञान की पर्याय निकाली है, उसमें-एकान्त में।

मुमुक्षु : विभक्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें एकत्व कहा, किसके साथ? अर्थात् उस विभक्त में से वह एकत्व निकाल डाला। ऐसा मेरा कहने का (आशय) है।

जब ज्ञान की एक समय की पर्याय पर को जाननेरूप है, इतना माने, वह परभाव को अपना मानता है और ज्ञानी एक समय की ज्ञान की पर्याय, वह विभक्त पूर्ण को मानता है, इसलिए समकिती अनेकान्त है। इस पाठ से यह शैली खड़ी होती है। समझ में आया? ओहोहो! अंशबुद्धि नहीं, द्रव्यबुद्धि नहीं, उसमें फिर पर्याय का परिणमन भले हो। समझ में आया? कहो, जुगराजजी! ऐसा मार्ग है। यह तो मन्दिर बनाओ, उपाश्रय बनाओ, सामायिक-प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, अपवास करना, धर्म हो गया, लो। हो गया।

दिगम्बर लोग अरे! भगवान! तेरे घर में वस्तु पड़ी है, भाई! उसको तो वस्तु ही नहीं है। वहाँ तो शास्त्र में भी ऐसी बात नहीं है। यह तो शास्त्र में ये बातें परम्परा सर्वज्ञ भगवान ने कही हुई बात पड़ी है। ऐई! रतिभाई! समझ में आया या नहीं? धीरे-धीरे। यह हवाफेर आया। परन्तु यह समझ में आती है या नहीं, ऐसा कहना है यहाँ तो। आहाहा!

कहते हैं, देखो! पूरे श्लोक का सार कि वस्तु का - पदार्थ का अनन्त-अनन्त शक्तिरूप स्वभाव है। आत्मा है न, वस्तु है न? और वस्तु है, उसकी गुण शक्ति के माप का क्या कहना? जिसका स्वभाव है, स्वभाव है, स्वभाव है, उसका क्या कहना? वह तो अनन्त-अनन्त शक्ति का सामर्थ्य है। स्वभाव को हद क्या होगी? ऐसा एक-एक गुण अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसे एक समय की दशा में पर की आकृति की शक्तिरूप परिणमित ज्ञान, वह तो तुच्छ साधारण बात है। इसलिए उस साधारण दशा में पूरा ऐसा आत्मा मानना, वह मिथ्यात्व है, असद्बुद्धि है। सत्स्वरूप भगवान पूरा स्वभाव तो पड़ा रहा और अनन्त ऐसा स्वभाव पूर्ण प्रतीति में दृढ़ता में लेकर और पर्याय एक समय की हुई, उसे जाने, यह तो अनेकान्त है। आहाहा! समझ में आया?

कितने ही कहते हैं न, वहाँ सामायिक नहीं, प्रतिक्रमण नहीं, प्रौषध नहीं। ऐई!

...भाई! कहते हैं या नहीं? क्यों प्रेमचन्दभाई! अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! सम्यक्-समभावरूपी सम्यक् दृष्टि। वह समभावरूपी सम्यक् दृष्टि किसे कहा जाता है, वह इसे खबर नहीं है। एक समकितरूपी सामायिक कही जाती है। वह सम्यक् सामायिक-सम्यग्दर्शन सामायिक; एक सम्यक् ज्ञान सामायिक; पश्चात् चारित्र का-आंशिक सामायिक... और उसमें पहली सम्यग्दर्शन सामायिक किसे कहना, इसकी बात चलती है। समझ में आया? जुगराजजी! ऐसा आता है। अनुयोगद्वार में आने पर। भाई! हम कहते थे, तब बात करते थे। यहाँ तो चार बोल हैं। यह चार प्रकार की सामायिक आती है। सम्यग्दर्शन सामायिक अनुयोगद्वार में आती है। अनुयोगद्वार तो पूरा बहुत पढ़ा है न। एक सम्यग्दर्शन सामायिक आती है, सम्यग्ज्ञान सामायिक पश्चात् आंशिक स्थिरता, वह सामायिक; पश्चात् सर्वविशुद्ध स्थिरता वह सामायिक। इस सामायिक के चार (प्रकार)। अभी पहली सामायिक का ठिकाना नहीं और यह सामायिक कहाँ से लाये? तब भड़कते अवश्य थे। समझ में आया? अनुयोगद्वार में आता है। (संवत्) १९८५-८६ वर्ष में। अनुयोगद्वार का बहुत घोलन चलता था। सवेरे उठकर दो-दो घण्टे। दो घण्टे पहले उठते। दो घण्टे में पूरा अनुयोगद्वार अन्दर पर्यटन हो जाए। अमरेली में प्रेमचन्दभाई का मकान था। प्रेमचन्द खारा की धर्मशाला, वहाँ उतरे थे। समझ में आया? आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन सामायिक किसे कहना, इसकी यह बात चलती है और मिथ्यादर्शन विभ्रम, विषम मिथ्यात्वभाव किसे कहना, उसकी बात चलती है। भगवान आत्मा परम सत् साहेब, पूर्णानन्द की शक्ति का सत्व, एक समय में अनन्त ऐसे गुण के महान स्वभाव ऊपर सन्मुख दृष्टि नहीं और एक समय की पर्याय के अंश पर जिसकी दृष्टि है, उसे मिथ्यात्व के भाव का पाप का लाभ होता है। वह ऐसे बैठा हो - णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (करता हो) तो भी वह मिथ्यादृष्टि पाप का लाभ करता है। जुगराजजी! आहाहा!

धर्मी लड़ाई की क्रिया में खड़ा होता है, लड़ाई की क्रिया में खड़ा दिखता है तो भी उसकी पूर्णानन्दस्वभाव के ऊपर ही उसकी प्रतीति और दृढ़ श्रद्धा है। एक समय के अंश जितना मैं नहीं। - ऐसे पूर्णानन्द गुण के भाव पर जिसकी प्रतीति का जोर वर्तता

है, उसे उस समय सम्यग्दर्शन सामायिक वर्तती है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? लो, यहाँ दो बातें की, लो! गजब बात, भाई! लोग तो परन्तु... अकेले अमृत को घोंटा है। ओहोहो! लोग ऐसा नहीं कहते कि धर्म को अधर्म माने, वह मिथ्यात्व। अधर्म को धर्म माने, वह मिथ्यात्व। वह बात करते हैं यह।

मुमुक्षु : यह अर्थ अलग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अर्थ अलग। उसे भान कब था। वहाँ बोल जाए पच्चीस मिथ्यात्व के बोल। भगवानभाई! यह ७५ वर्ष पुराने व्यक्ति है न, वहाँ सब सीख जाए, फिर शाम-सबेरे बोले णमो अरिहंताणं.. णमो अरिहंताणं... मिच्छामि दुक्कडं... मिच्छामि दुक्कडं जाओ। परन्तु किसका मिथ्या? सत्य क्या है कि तुझे मिथ्यात्व लगा? सत्य क्या है कि जो मिथ्या अर्थात् खोटा लगा? समझ में आया?

एक समय का भगवान पूर्ण आनन्दादि पूर्ण शक्ति का पिण्ड प्रभु सत् है। उसकी प्रतीति अनुभव करके पर्याय में समता प्रगट करना, इसका नाम धर्म और सत्य का आदर किया कहलाता है। एक समय की दशा का भी आदर करे, मैं पूर्ण हूँ, तो भी कहता है यह मिथ्यादृष्टि का भाव, वह भले त्यागी, मुनि होकर बैठा हो, बाहर में हिंसा-विंसा के परिणाम कदाचित न दिखते हों, परन्तु अन्दर में एक समय की आकृति पर की शक्तिरूप परिणमित ज्ञान की दशा का ही जहाँ लक्ष्य है, पूरी चीज़ ही अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी दृष्टि नहीं तो कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ असंयमी, अचारित्री और मिथ्यादृष्टि है। कहो, बराबर होगा? लो, सलंग में १५८ हुआ। ऐसे सलंग में बारह हुई। अस्ति की व्याख्या की। अब, परभाव की नास्ति का श्लोक आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २५९

(शार्दूलविक्रीडित)

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युत:
सर्वत्राप्यनिवारितो गतभय: स्वैरं पशु: क्रीडति।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा-
दारूढ: परभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपित: ।।१३-२५९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है जो वस्तु को द्रव्यमात्र मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता है। इसलिए जितनी हैं ज्ञेयवस्तु उनकी अनन्त हैं शक्ति (सामर्थ्य भाव) उनको जानता है ज्ञान, जानता हुआ ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप परिणमता है—ऐसा देखकर जितनी ज्ञेय की शक्ति उतनी ज्ञानवस्तु ऐसा मानता है मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी। उसके प्रति ऐसा समाधान करता है स्याद्वादी कि ज्ञानमात्र जीववस्तु का ऐसा स्वभाव है कि समसत ज्ञेय की शक्ति को जाने, जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है परन्तु ज्ञेय की शक्ति ज्ञेय में है, ज्ञानवस्तु में नहीं है। ज्ञान की जाननेरूप पर्याय है, इसलिए ज्ञानवस्तु की सत्ता भिन्न है—ऐसा कहते हैं— 'पशु: स्वैरं क्रीडति' [पशु:] मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी [स्वैरं क्रीडति] हेय-उपादेय ज्ञान से (विवेक से) रहित होकर स्वेच्छाचाररूप प्रवर्तता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय की शक्ति को ज्ञान से भिन्न नहीं मानता है। जितनी ज्ञेय की शक्ति है, उसे ज्ञान में मानकर नाना शक्तिरूप ज्ञान है ज्ञेय है ही नहीं—ऐसा बुद्धिरूप प्रवर्तता है। कैसा है एकान्तवादी? 'शुद्धस्वभावच्युत:' [शुद्धस्वभाव] ज्ञानमात्र जीववस्तु से [च्युत:] च्युत है अर्थात् उसको विपरीतरूप अनुभवता है। विपरीतपना क्यों है? 'सर्वभावभवनं आत्मनि अध्यास्य' [सर्व] जितनी जीवादि पदार्थरूप ज्ञेयवस्तु उनके [भाव] शक्तिरूप गुण-पर्याय अंशभेद उनकी [भवनं] सत्ता को [आत्मनि] ज्ञानमात्र जीववस्तु में [अध्यास्य] प्रतीति कर। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगोचर है समस्त द्रव्य की शक्ति। उनकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान, इसलिए सर्व शक्ति ज्ञान की है—ऐसा मानता है। ज्ञेय की तथा ज्ञान की भिन्न सत्ता नहीं मानता है। और कैसा है? 'सर्वत्र अपि अनिवारित: गतभय:' [सर्वत्र] स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द ऐसा इन्द्रियविषय तथा मन-वचन-काय तथा नाना प्रकार ज्ञेय की शक्ति इनमें [अपि] अवश्य कर [अनिवारित:] मैं शरीर, मैं

मन, मैं वचन, मैं काय, मैं स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द इत्यादि परभाव को अपना जानकर प्रवर्तता है; [गतभयः] मिथ्यादृष्टि के कोई भाव परभाव नहीं है जिससे जड़ होवे ऐसा है एकान्तवादी। उसके प्रति समाधान करता है स्याद्वादी— 'तु स्याद्वादी विशुद्ध एव लसति' [तु] जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी मानता है उस प्रकार नहीं है, जिस प्रकार स्याद्वादी मानता है उस प्रकार है। [स्याद्वादी] अनेकान्तवादी जीव [विशुद्ध एव लसति] मिथ्यात्व से रहित होकर प्रवर्तता है। कैसा है स्याद्वादी? 'स्वस्य स्वभावं भरात् आरूढः' [स्वस्य स्वभावं] ज्ञानवस्तु की जानपनामात्र शक्ति उसकी [भरात् आरूढः] अति ही प्रगाढ़रूप से प्रतीति करता है। और कैसा है? 'परभावभावविरहव्यालोकनिः–कम्पितः' [परभाव] समस्त ज्ञेय की अनेक शक्ति की आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान इसरूप [भाव] मानता है जो ज्ञानवस्तु का अस्तित्व तद्रूप [विरह] विपरीत बुद्धि के त्याग से हुई है [व्यालोक] सांची दृष्टि, उससे हुआ है [निःकम्पितः] साक्षात् अमिट अनुभव जिसको ऐसा है स्याद्वादी।।१३–२५९।।

पौष कृष्ण १, गुरुवार, दिनांक–२३–१२–१९६५, कलश–२५९, प्रवचन–२७८

(अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा–
दारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ।।१३–२५९।।)

स्याद्वाद अधिकार समयसार कलश, १३वाँ कलश है। धारावाही में २५९ होगा। कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है। ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसी है। यह कहीं... क्या यह कुछ? लौकिक बात नहीं या लौकिक का कुछ जानपना नहीं कि जिससे एकदम इसे पकड़ में आये। पकड़ में तो एकदम परन्तु इसकी सूक्ष्मता इतनी है कि कुछ सूक्ष्म बुद्धि करे तो पकड़ में आये ऐसा है।

भावार्थ (अर्थात्) इसमें क्या कहना है पहले उसका उपोद्घात करते हैं। **जो कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि....** एक वादी अर्थात् एक ही पक्ष को माननेवाला, वस्तु के

दो पक्ष हैं, उन्हें नहीं माननेवाला। पूरी वस्तु है भगवान आत्मा, एक समय में पूरी चीज़ अनन्त गुण सम्पन्न तत्त्व पूरा आत्मपदार्थ है और एक समय में एक ज्ञान की पर्याय परवस्तु की जैसी अनन्त पर की शक्तियाँ हैं, उन्हें जाननेरूप ज्ञान परिणमता है। समझ में आया ?

वस्तु पदार्थ जो आत्मा है, अनादि-अनन्त शाश्वत् अनन्त गुण का धाम, ऐसा अनन्त... अनन्त... गुण स्वभावरूप भाव, उसे यहाँ स्वभाव कहा जाता है। और एक समय की पर्याय में जो अनन्त ज्ञेय—यह जाननेयोग्य परपदार्थ हैं, उनके सामर्थ्य का यहाँ ज्ञान की पर्याय में जानने का परिणमन हो, उसे और पर को दोनों को परभाव कहा जाता है। समझ में आया ? समझ में आया इसमें ? वह वस्तु को मानता है, पूरी चीज़ वस्तु है, ऐसा अज्ञानी मानता है परन्तु **पर्यायरूप नहीं मानता है।** परन्तु एक समय का अंश, वे अनन्त चीज़ जो जगत की हैं—अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, यह मिट्टी आदि वस्तु, इनकी शक्तियाँ, इनका भाव, इनका सामर्थ्य जो है, उसे ज्ञान की एक समय की पर्याय, उसे जानने के आकृतिरूप ज्ञान पर्याय परिणमे—एक बोल। और दूसरी चीज़ें सब शक्तियाँ अनन्त—दो। उसे यह नहीं मानता।

मैं सब। ज्ञानवस्तु, मैं द्रव्य सब एक ही चीज़ हूँ। सब एक ही हूँ—ऐसा मानता है। एक वस्तु मेरी त्रिकाल अनन्त गुण का पिण्ड भाव—स्वभाव, एक समय की अवस्था और दूसरी सभी चीज़ें शक्तिवान, यह है। यह है, इतना मैं नहीं। ऐसा मैं हूँ, वह सब इतने में आ जाता हूँ, एक समय की दशा में, उस समय की अवस्था और वस्तु भिन्न है। उस भिन्न वस्तु को मानता नहीं। सब मैं ही हूँ, सब मैं ही हूँ।

इसलिए जितनी हैं ज्ञेयवस्तु... जितनी जाननेयोग्य जगत में चीज़ें हैं, **उनकी अनन्त हैं शक्ति...** प्रत्येक चीज़ की है अनन्त भावरूप शक्ति, गुणरूप शक्ति **उनको जानता है ज्ञान...** उसे जानती है ज्ञान की वर्तमान अवस्था। समझ में आया ? **जानता हुआ ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप परिणमता है...** जानती हुई ज्ञान की एक समय की पर्याय अनन्त शक्ति पर में है, उसे जानने का पर्याय का धर्म है, इसलिए जानती है और जानने की शक्ति की आकृति अर्थात् जैसी वहाँ शक्ति है, वैसा ही यहाँ ज्ञान में जाननेरूप ज्ञान परिणमता है।

ऐसा देखकर जितनी ज्ञेय की शक्ति उतनी ज्ञानवस्तु ऐसा मानता है मिथ्यादृष्टि... जितने परद्रव्य के सामर्थ्य—स्वभाव—शक्तियाँ और उन्हें जाननेरूपी एक समय की पर्याय, वह सब मैं पूरा द्रव्य, वह मैं हूँ। यह पर्याय एक समय की और यह शक्ति भिन्न है, ऐसा अज्ञानी मानता नहीं। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं इसमें?

जितनी ज्ञेय की शक्ति... शरीर का सामर्थ्य, वाणी का सामर्थ्य। इस जगत के पदार्थों की अन्दर गुणशक्ति, केवलज्ञानी की गुण शक्ति, अनन्त सिद्धों की गुण शक्ति, दूसरे आत्माओं की वीर्यवाली उल्टी या सुल्टी अन्दर की शक्तियाँ—गुण और उसकी पर्याय में, परन्तु वह शक्ति जो है, उतनी ज्ञानवस्तु, ऐसा मानता है। वे सब शक्तियाँ, वह मैं पूरी चीज़ हूँ। परन्तु उस चीज़ की और चीज़ को जानने की पर्याय से मेरी चीज़ पूरी भिन्न अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा द्रव्य को माने परन्तु इस पर्याय को मुझसे भिन्न है, ऐसा नहीं मानता। समझ में आया? (ऐसा) **मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी**। (मानता है)।

उसके प्रति ऐसा समाधान करता है... यह तो जो कहना चाहेंगे, उसका पहले से थोड़ा उपोद्घात—भावार्थ किया है। **स्याद्वादी कि ज्ञानमात्र जीववस्तु का ऐसा स्वभाव है कि समस्त ज्ञेय की शक्ति को जाने...** ज्ञानमात्र जीववस्तु जो त्रिकाल है, उसका वर्तमान पर्याय का ऐसा स्वभाव है, कि **समस्त ज्ञेय की शक्ति को जाने...** समझ में आया? भगवान ज्ञान वस्तु, त्रिकाल चिदानन्द वस्तु, उसकी ज्ञान की एक समय की अवस्था का ऐसा स्वभाव है कि जो **समस्त ज्ञेय की शक्ति को जाने...** जानने की पर्याय में सब जाने।

दर्पण की स्वच्छता में सब ज्ञात हो। समझ में आया? परन्तु वह स्वच्छता की पर्याय और दूसरी चीज़रूप इतना पूरा दर्पण उसमें घुस नहीं गया। और उस एक पूरे दर्पणरूप सभी चीज़ें नहीं है। इसी प्रकार ज्ञान वस्तु त्रिकाल ज्ञानमूर्ति प्रभु गुणरूप से अनन्त... अनन्त... गुण स्वयं सामर्थ्यरूप है। उसकी एक समय की ज्ञान की दशा में दूसरे पदार्थों की जो स्वभाव शक्ति है और एक समय की पर्याय में जानने का स्वभाव है। समझ में आया?

समस्त ज्ञेय की शक्ति को जाने जानता हुआ, उसकी आकृतिरूप परिणमता

है,.... जानते हुए ज्ञान की पर्याय, उसका जैसा भाव है, वैसा ही यहाँ परिणमे। **परन्तु ज्ञेय की शक्ति ज्ञेय में है, ज्ञानवस्तु में नहीं है।** यहाँ जरा इतना अन्तर किया। समझ में आया? दो बातें लेते हैं। एक समय की पर्याय वह ज्ञेय, पूरी वस्तु ज्ञान—यह तो एक अपेक्षा से बराबर है। परन्तु यहाँ दूसरी अपेक्षा जरा ली है कि ज्ञेय की शक्ति ज्ञेय में है। जो ज्ञात होनेयोग्य वस्तु है न? वह शक्ति उसमें है। वह त्रिकाल ज्ञान वस्तु में नहीं। समझ में आया? समझ में आया कहना पड़े। तब क्या कहना? नहीं समझ में आया ऐसा कहना? आहाहा! क्यों देवानुप्रिया? यह वकील है। बड़े बुद्धिवाले को तो इसमें समझ में आये या नहीं? यह सबको समझ में आये ऐसा है।

वस्तु... वस्तु... वस्तु... चैतन्य ज्ञान का गोला आत्मा। अकेला अनन्त शक्ति का पिण्ड, अकेला आत्मा ज्ञान, वह वस्तु। और एक समय की ज्ञान की दशा में अनन्त ज्ञेयों की शक्ति को जानने का पर्याय का धर्म है। वह पर्याय जाने। अज्ञानी उन शक्तियों में मैं पूरी शक्ति नहीं, मेरी शक्ति भी अकेला द्रव्य है, वह द्रव्य अकेली पर्याय में और उसमें एकमेक हो नहीं गया। एक समय की पर्याय में पूरा द्रव्य नहीं आया, तथा शक्तियों में द्रव्य नहीं आया। ज्ञेय की शक्ति ज्ञेय में और ज्ञान की शक्ति ज्ञान में। समझ में आया? अरे! यह तो अकेला अनेकान्तवाद। अनजाने व्यक्ति को तो (ऐसा हो) क्या होगा यह? कमाने में से निवृत्त होकर आवे, उसमें ऐसा सूक्ष्म आवे। कहो, भरतभाई! समझ में आया या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। आत्मा अपने स्वभाव के सामर्थ्य की शक्ति से है परन्तु परभाव की शक्ति से नहीं, यह भंग चलता है। यह आठवाँ। अब यह अन्तिम बोल नित्य-अनित्य का आयेगा। समझ में आया? चार पहले गये और आठ यह, (कुल) बारह और दो रहेंगे। तत्-अतत्, एक-अनेक, चार चल गये, यह आठवाँ यह है। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, स्व से अस्ति, पर से नास्ति में परभाव से नास्ति का बोल चलता है।

वस्तु—आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में वस्तु है अनन्त गुण का पिण्ड

पूरा शक्ति का इतना सामर्थ्य है। अकेली केवलज्ञान और अनन्त वीर्य की पर्याय की शक्ति जितना वह तत्त्व नहीं। समझ में आया? वह तत्त्व जो है, वह तो अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अकेली शक्ति का अकेला पदार्थ, अकेला सत्त्व, अकेला भाव, उसे यहाँ स्वभाव कहा जाता है। उस स्वभाव में एक समय की पर्याय में जो अनन्त ज्ञेयों का सामर्थ्य जानने की पर्याय वास्तव में उसे यहाँ '**परभाव**' कहा जाता है। उसके साथ परशक्तियों को भी '**परभाव**' यह दो लिया है। समझ में आया? वास्तव में तो पर एक ही अन्त में '**परभाव**' उसे ही आयेगा। अपनी पर्याय को। अन्तिम '**परभाव**' है। **समस्त ज्ञेय की अनेक शक्ति की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान,...** अन्तिम में चौथी लाईन। उसमें अन्तिम आयेगा, अन्तिम—एकदम अन्तिम, चौथी लाईन। '**परभाव**' **समस्त ज्ञेय की अनेक शक्ति की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान,...**

यहाँ आत्मा में जो शक्ति स्वभाव है, ऐसा उतना तत्त्व है, उसे अज्ञानी द्रव्य को मानता है, परन्तु एक समय की अवस्था में अनन्त शक्तियों को जानने का एक पर्याय धर्म है, उसे नहीं मानता और या अनन्त शक्तियाँ भिन्न हैं, उसे नहीं माने तो भी वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, उसे सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, उसे सत्य स्वरूप की खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं, कि **ज्ञेय की शक्ति ज्ञेय में है, ज्ञानवस्तु में नहीं है**। अर्थात् कि जितनी जाननेयोग्य शक्तियाँ हैं—परवस्तु शरीर, वाणी, मन, कर्म आदि सब। समझ में आया? स्पर्श, वर्ण, रंग, गन्ध, रस आदि। इन सब चीज़ों की शक्तियाँ उसमें है, आत्मा में नहीं, वे शक्तियाँ आत्मा में नहीं। वे शक्तियाँ ज्ञेय में है, ज्ञानवस्तु में नहीं; ज्ञानवस्तु में यह शक्तियाँ नहीं। ज्ञानवस्तु में तो अपनी अनन्त जानने की महान शक्तिरूप पिण्ड आत्मा है। समझ में आया? इसमें धर्म क्या? इसमें धर्म क्या करना? ऐसी वस्तु में धर्म कैसे होता होगा? यही कहते हैं, भाई!

एक समय का तेरा पूरा पूर्ण शक्तिरूप स्वभाव। वस्तु है न? पदार्थ है न? अनादि-अनन्त। ऐसी शक्ति को तू मान तो भी एक समय की अवस्था में अनन्त द्रव्यों को जानने की सामर्थ्य है, ऐसी पर्याय को न माने अथवा तुझसे अनन्त भिन्न तत्त्व हैं, उसे जानने की पर्याय को न माने तो अनन्त द्रव्य को भी इसने माना नहीं। इसने अनन्त द्रव्य

की शक्ति को माना नहीं है। भिन्न शक्तिवाले तत्त्व हैं, वे मेरी पर्याय में ज्ञाता हो, ऐसा मेरा धर्म है। परन्तु इतना पर्यायरूप को न माने, वह इसने अनन्त द्रव्य की शक्ति को भी नहीं माना। पर्याय को मानता नहीं, ऐसा यहाँ लेना है। समझ में आया?

जानने की बात है, हों! वहाँ उसकी पर की शक्तियों को कर दूँ या पर शक्तियाँ हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान की पर्याय होती है, इसकी बात यहाँ है ही नहीं। मात्र आत्मा एक अनन्त गुण का पिण्ड ज्ञान शक्ति आदि का सत्त्व पूरा भाव है। पहले में यह था (कि) उसे न माने और अकेली पर्याय को माने, ऐसा कहा था पहले में। यहाँ कहते हैं कि यह द्रव्य को माने परन्तु वह पर्याय को न माने। इसकी एक समय की पर्याय अनन्त... अनन्त... परपदार्थ की शक्ति के स्वभाव को, गुण को जानने की सामर्थ्यवाली पर्याय है। उस पर्याय को न माना तो उसका द्रव्य भी सच्चा मानना रहता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : माना, वह पर्याय को कहाँ माना? माना, उस पर्याय को नहीं माना और द्रव्य अकेला है, इतना वह मानता है। बोलने में पूरा द्रव्य है, ऐसा मानता है। परन्तु मानने की पर्याय जो है, वह पूरे द्रव्य की शक्ति को जानने की पर्याय और अनन्त को जानने की पर्याय, ऐसी पर्याय को नहीं मानता। सूक्ष्म बात है, भीखाभाई! परन्तु यह द्रव्य पकड़ा नहीं, पकड़ा तो पर्याय हो गयी। वह तो पर्याय पकड़ती है। एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य है कि पूरे अनन्त गुण की शक्ति को जाने और सब अनन्त गुण की शक्ति को ही ऐसे स्वपरप्रकाश की पर्याय परिणमे, ऐसा पर्याय का धर्म है। ऐसा न मानकर एक समय की पर्याय में अनन्त द्रव्य की शक्ति को जानने की पर्याय है, उसरूप मैं पूरा हूँ, ऐसा माननेवाला पर्याय को मानता नहीं, ऐसा माननेवाला अनन्त द्रव्य की शक्ति भिन्न है, उसे मानता नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर कहाँ पड़े? थोड़ा अन्तर पड़े परन्तु वहाँ अन्तर अनन्त गुणा है। आहाहा!

यह तो अनेकान्त तत्त्व है। महा चौदह श्लोक जैनदर्शन का दोहन है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी ने यह तत्त्व देखा, उसका यह वास्तविक स्वरूप है कि स्वरूप से है और पररूप से नहीं। ऐसा पररूप से भी है और स्वरूप से भी है, ऐसा नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा द्रव्यरूप से भी है और एक समय की पर्याय

में पूरा आ जाता है, ऐसा नहीं। और एक समय की पर्याय जितना है, उसमें पूरा द्रव्य आ जाता है, ऐसा भी नहीं। तथा एक समय की पर्याय पूरे द्रव्य में प्रविष्ट हो जाती है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! गजब बातें, भाई! समझ में आया इसमें?

ज्ञेय की शक्ति ज्ञेय में है, ज्ञानवस्तु में नहीं है। ज्ञान की जाननेरूप पर्याय है, इसलिए ज्ञानवस्तु की सत्ता भिन्न है... क्या कहा? यह आत्मा की पर्याय में अनन्त शक्ति को जानने का पर्याय धर्म है। वह यह ज्ञानवस्तु की सत्ता त्रिकाल वस्तु तो भिन्न है। शक्ति से भी भिन्न है और एक समय की पर्याय में अनन्त शक्ति को जानने की पर्याय से भी वस्तु अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? यह तो तत्त्व का तेल निकाला हुआ है, मक्खन है अकेला। भाई! तूने कभी तत्त्व को समझा नहीं। जैसा सत् स्वरूप है, वैसा तूने ज्ञान में लिया नहीं। उसे लिये बिना दुःखी होकर चार गति में दुःखी (होता हुआ) हैरान होकर मर गया है, कहीं सुख है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि, दुःखी क्यों हो रहा है? यह पहली व्याख्या है। परभाव को परभावरूप से मानता नहीं और परभाव को स्वभाव में एकत्व सब मान लेता है। इसलिए उसे स्वेच्छाचार से कैसे प्रवर्तना, उसे कुछ रहा नहीं, सब हम हैं, सब हम हैं, शरीर हम हैं, स्त्री हम, पुत्र सब हम हैं। इसलिए उनसे पृथक् पड़ना और पूरे द्रव्य में दृष्टि देना, ऐसा उसे अवसर रहता नहीं। समझ में आया? समझ में आया इसमें?

इसलिए ज्ञानवस्तु की सत्ता भिन्न है—ऐसा कहते हैं.... इतना तो बाँधा। यह तो उपोद्घात बाँधा। भावार्थ अर्थात् इसमें कहने का आशय शब्दार्थ में जरा सूक्ष्म पड़े (तो) पहले थोड़ा कह गये। समझना चाहे तो समझ में आये। कभी सिर काम किया नहीं। कमाना, भोग और खाने-पीने की मेहनत मजदूरी अनादि काल से की। ऐसा होगा? देवशीभाई! क्या होगा? यह खाना-पीना। खाने-पीने की तो जड़ की क्रिया है। परन्तु वह मैं करूँ और वह मैं करूँ, अकेली दृष्टि पर के ऊपर और एकाकार हो गयी है। वह मूढ़ जीव चौरासी के अवतार में भटकनेवाला पशु है, ऐसा यहाँ कहते हैं। पशु है, वह ढोर है। जैसे ढ़ोर को घास और अनाज की भेद की कीमत नहीं है, वैसे स्व-पर के भेद की कीमत इसे नहीं है। समझ में आया?

पशु ही कहते हैं न? यहाँ देखो न! क्या आयेगा? आया या नहीं? यह पहला शब्द

आया, देखो न! यही आया, देखो! '**पशुः स्वैरं क्रीडति**' पशु ही कहा है यहाँ तो। जिसका स्वरूप भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड स्वशक्ति भी है और एक समय में मुझसे भिन्न अनन्त पदार्थों की शक्तिवाले तत्त्व हैं और उन्हें जानने की एक समय की ज्ञान की पर्याय भी है। ऐसा नहीं मानते, उसे यहाँ पशु कहते हैं। आहाहा! बड़े बेरिस्टर और वकील भी पशु होंगे? समझ में आया?

कहते हैं, '**पशुः स्वैरं क्रीडति**' '**पशुः**' अर्थात् **मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी...** अर्थात् कि द्रव्यस्वरूप एक है... है... है... है... ऐसा मानता है, परन्तु मुझसे भिन्न पर चीज़ें हैं, वे भिन्न हैं और एक समय की पर्याय भी, पर को जानने की शक्तिवाली पर्याय पूरे अंश से एक अंश भिन्न है, उसे नहीं मानते। समझ में आया? **मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी...**

'**स्वैरं क्रीडति**' इसलिए **हेय-उपादेय ज्ञान से रहित होकर....** अर्थात् क्या कहा? सब शक्तियों के तत्त्व हैं, वह मैं ही हूँ इसलिए हेय उपादेय कुछ रहा नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शक्ति का तत्त्व, वह स्व और एक समय की ज्ञान की पर्याय में पर—अनन्त गुण, अनन्त पदार्थों को जानने की पर्याय, वह वास्तव में तो पर है। वह हेय है और स्वद्रव्य उपादेय है। गजब बात, भाई! समझ में आया? और आत्मा से अनन्त द्रव्य भिन्न शरीर, वाणी, मन, यह जड़ पदार्थ भिन्न हैं। यह भिन्न हैं, वे मेरे, मैं ही हूँ—ऐसा माननेवाला भिन्न तत्त्व में स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति करता है। अरे! यह चीज़ मैं नहीं, मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा वह जानता नहीं।

हेय-उपादेय ज्ञान से रहित होकर स्वेच्छाचाररूप प्रवर्तता है। दो बातें हैं। देखो! भावार्थ कहेंगे। **भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय की शक्ति को ज्ञान से भिन्न नहीं मानता है। ज्ञेय की शक्ति को ज्ञान से भिन्न नहीं...** मेरा ज्ञानस्वरूप है, उससे यह जाननेयोग्य शक्तिवाले तत्त्व भिन्न हैं। **जितनी ज्ञेय की शक्ति है, उसे ज्ञान में मानकर....** जितने ज्ञात होनेयोग्य सब पदार्थ हैं, उन्हें आत्मा में मानकर **नाना शक्तिरूप ज्ञान है...** अनेक शक्तिरूप आत्मा ही हो गया है। **ज्ञेय है ही नहीं...** ज्ञात होनेयोग्य वस्तु कोई जगत में है ही नहीं। सब हम एक हैं। चाहे जो खायें, पीयें, भोग लें, सब चीज़ ही एक है। हमारे यह छोड़नेयोग्य लोक है और आत्मद्रव्य आदरणीय है, ऐसा अज्ञानी को रहता नहीं। समझ में आया?

छोड़नेयोग्य अर्थात् जानने में यह शरीर, वाणी, मन, राग आदि हेय है। वास्तव में (तो) एक समय की पर्याय है, वह भी अभूतार्थ है, यह ऐसी शैली से बात ली है। समझ में आया? यह हेय। एक वस्तु भूतार्थ त्रिकाल वस्तु जो है, वही उपादेय है, आदरणीय है। उसमें आश्रय करनेयोग्य है। और यह एक समय की पर्याय और (पर) अनन्त शक्ति (रूप) द्रव्य, वे वास्तव में हेय हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा अज्ञानी को हेय और उपादेय का विवेक रहता नहीं, होता नहीं, रहता नहीं, होता नहीं। क्यों नहीं होता? कि परशक्तियों को सबको अपनी मानता है। और एक समय के ज्ञान की पर्याय पर शक्ति को जानने की पर्याय, वह भी मैं पूरा हूँ, सब एक ही हूँ—ऐसा मानता है। एक समय की अवस्था है, वह कहीं मैं पूरा द्रव्य नहीं। ऐसा उसे हेय करके द्रव्य को उपादेय करना चाहिए, परवस्तु को हेय करके स्वद्रव्य में लक्ष्य करना चाहिए, यह अज्ञानी को रहता नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं?

ज्ञेय की शक्ति को ज्ञान से भिन्न नहीं मानता है। अर्थात् दो अर्थ लिये न? जानने के योग्य पदार्थ है, जाननेयोग्य पदार्थ है। क्या? शरीर, वाणी, भोग, वासना, राग सब शक्तियाँ, वह जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया? वह आत्मा की पर्याय में पुण्य-पाप, राग-द्वेष हों कि यह सब चीज़ें। इसके भाव का ज्ञानरूप से परिणमन हो, परन्तु वे सब चीज़ें ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। और उस सम्बन्धी की एक समय की ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति हो, वह भी वास्तव में जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहाँ का कहाँ मस्तिष्क गया! भाई! 'भूदत्थ'। ऐसी शैली ली है। समझ में आया?

भगवान आत्मा महावस्तु है, उसका आश्रय करनेवाली पर्याय है। पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं। यह तो पर्याय और सब एक ही माने वहाँ फिर यह हेय और यह उपादेय कुछ रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि राग हुआ अन्दर, राग। वह भी एक ज्ञान की पर्याय में जाननेयोग्य रह गया, बस इतना। यह दूसरी चीज़ों की शक्ति, राग की शक्ति मलिनता है, दु:खरूप है, उसका यहाँ ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई परन्तु जिसे वह पर्याय ही नहीं, पर की शक्ति है ही नहीं—ऐसा

माननेवाला, यह छोड़नेयोग्य है और यह वस्तु त्रिकाल ज्ञायक है, वह आदरनेयोग्य है, ऐसा अज्ञानी को रहता नहीं। समझ में आया? ओहोहो! किस प्रकार समाहित किया है!

अकेला भगवान पूरा। कहते हैं कि वह वस्तु तो वस्तु महान सामर्थ्य का तत्त्व—सत्त्व है। जो वस्तु आत्मा है, एक समय का महातत्त्व, महातत्त्व। शक्ति से यहाँ लेना है न? भावरूप महातत्त्व। जिसके महासत्त्व का क्या कहना! जिसके महासत्त्व में तो अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द के पासड़ा के पासड़ा उसमें अन्दर पड़े हैं। 'प्रतर्क' और मस्तिष्क में आया, पर्याय का प्रतर्क अन्दर से निकले न! ज्ञान, केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द इन सबका ऐसे अन्दर शक्ति का पूरा सत्त्व पड़ा है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे आत्मा द्रव्यरूप से कहने में आता है। उसे जो न माने और अकेली पर्याय को माने, उसे छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य कुछ रहता नहीं। और ऐसे अकेले द्रव्य को स्वीकार करे, पर्याय भिन्न चीज़ है, एक समय का अंश भी भिनन चीज़ है, त्रिकाल से भिन्न और एक समय की अवस्था से भी दूसरी चीज़ें—अनन्त शक्तिवाली चीज़ हैं, कर्म है, शरीर है, राग है, यह सब आत्मायें हैं, दूसरे पुद्गल हैं, उन सब शक्तियों का तत्त्व ज्ञान में जानकर हेय करनेयोग्य है। समझ में आया? उपादेय तो अकेला भगवान भूतार्थ वस्तु, वह उपादेय है। पर्याय ऐसे आश्रय न करके यहाँ आश्रय करने जाती है। परन्तु जो पर को भिन्न ही न माने, उसे आश्रय करनेयोग्य कौन और छोड़नेयोग्य कौन, यह बात रहती नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह लोग कहे न, महाराज! ज्ञान की बातें (करते हैं)। अरे! भगवान! ज्ञान की बातें नहीं, बापू! इसमें तो माल है, ज्ञान का माल है परन्तु अब... आहाहा!

मुमुक्षु : बड़ा गुनाहगार कौन, द्रव्य को न माने वह या...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों गुनाहगार है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? मिथ्यात्व दोनों एकान्तबुद्धि है न? यहाँ तो एकान्तबुद्धि लेनी है न? अनेकान्त, वह सम्यग्दर्शन और अमृत है; एकान्तबुद्धि, वह मिथ्यात्व और दुःख है।

मुमुक्षु : पहले एक अंश को मानते थे और अब पूरे को माने तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों, दोनों मिथ्यात्व है। समझ में आया?

स्वेच्छाचाररूप प्रवर्तता है। ज्ञेय की शक्ति को ज्ञान से भिन्न नहीं मानता है। जितनी ज्ञेय की शक्ति है, उसे ज्ञान में मानकर.... देखो! जितने ज्ञेय की शक्तियाँ, जगत में पदार्थ हैं, उनके गुण, गुण—पर के स्वभाव, वे सब आत्मा में मानकर **नाना शक्तिरूप ज्ञान है...** यह आत्मा ही सब शक्तिरूप एक ही हो गया है। **ज्ञेय है ही नहीं...** जाननेयोग्य पदार्थ भिन्न कोई है ही नहीं। **ऐसा बुद्धिरूप प्रवर्तता है।** ऐसी बुद्धिरूप अज्ञानी प्रवर्तता है। उसे मिथ्यादृष्टि दुःखी कहने में आता है। आहाहा!

दुःख आया, कहते हैं। दुःख तो कहीं लगता नहीं। ऐसे शरीर हो, रुपये हों, सब ऐसे हाथी के होदे बैठे तो कितना सुख होगा? कितने लोग देखते हों! उसमें दुःख कहाँ आया? भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! वह आत्मा तो आनन्द शक्ति का तत्त्व है। अपने अभी शक्ति की बात है या नहीं? आत्मा तो अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का अकेला पोटला है। अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द आत्मा है। उसे जो माने, उसकी दृष्टि पर में से हेयरूप से हट जाती है। पुण्य-पाप के विकल्प, देहादि की क्रिया वह हेय है। मेरा त्रिकाली तत्त्व उपादेय है। (ऐसे हेय-उपादेय) करे पर्याय द्वारा परन्तु वह उपादेय हो द्रव्य। तब उसे सम्यग्दर्शन होने पर अनेकान्त का आनन्द आता है।

दूसरे प्रकार से (कहें तो) द्रव्य को लक्ष्य में ले, द्रव्य माने, ऐसा कहा। परन्तु मानता है पर्याय को, पर्याय मानती है उस पर्याय को तो मानता नहीं। इसलिए द्रव्य को माना कहाँ रहा? समझ में आया? यदि एक समय की पर्याय को माने तो पर्याय से भिन्न पूरा तत्त्व है, ऐसी दृष्टि हो। परन्तु उसे भिन्न मानता नहीं। इसलिए एक समय की पर्याय को ही पूरा द्रव्य मानकर वहाँ स्थिर हुआ है। इसलिए मिथ्यादृष्टि दुःखी है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! भगवान! तेरी बात तो देख! तू कितना बड़ा और कहाँ किस प्रकार से क्रीड़ा है उसकी अनेकान्त की, इसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म हो जाये! लो! क्या हो? चिल्लाहट मचाये लड़के बेचारे। अरे! भाई! यह वस्तु तो पहली सम्यग्दर्शन की चीज़ है, उसे तो समझ। फिर और वस्तु में स्थिर होने का भाव होता है, वह किसने इनकार किया? समझ में आया? परन्तु यह तो कहे, बस! एकदम... यह समझे बिना,

पहिचाने बिना चारित्र और व्रत लिये, उसे तुम मानो, नहीं तो तुम चारित्र और व्रत को मानते नहीं। ठीक! बहुत अच्छी बात, भाई! तू भी स्वतन्त्र है। कहते हैं.... यह कहीं किसी के करने से होते होंगे किसी में? मुफ्त का मानकर उलटे रास्ते चढ़ गया है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही, भाई! जिसने अन्दर में आत्मद्रव्य माना परन्तु जिसने पुण्य-पाप के विकल्प भी भिन्न हैं, एक नहीं, भिन्न हैं, (ऐसा नहीं माना)... ओहोहो! यहाँ तो अभी आज तो ऐसा लेख आया है। केवलज्ञान और रत्नत्रय सब पुण्य है। ऐसा आया है, ऐसा लेख आया है। केवलज्ञान, रत्नत्रय, शुभभाव सब पुण्य है। यह लेख शास्त्र में है, अमुक... केवलज्ञान और रत्नत्रय सब पुण्य है। अरे! ऐसी बात बहुत लिखी है। वह कौन जाने कहाँ का कहाँ सब डाल दिया। ऐसा डाला है। अरे! भगवान! कहाँ गया? प्रभु! केवलाान की एक समय की पर्याय, उसमें भी पूरा शक्तिरूप तत्त्व आता नहीं तो पुण्य में तो कहाँ से आवे? पुण्य का हेयभाव है। और केवलज्ञान की पर्याय जिसे नहीं, उसे भी सद्भूतव्यवहार रूप से हेय है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो!

यह कहते हैं कि अकेला द्रव्य माने और ऐसी पूर्याय एक समय की सामर्थ्यवाली है, हों! सबको जानने की सामर्थ्यवाली ऐसी पर्याय को न माने तो एकान्त मिथ्या होने से छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य का विवेक अन्दर रहता नहीं। सब एकपना होने से विवेक नहीं रहता, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? अरे! पुण्य के विकल्प की शक्ति भिन्न है, भगवान! शुभराग की शक्ति भिन्न, वह तो ठीक, परन्तु उस राग को जाननेरूप परिणमित ज्ञान, इतनी पर्याय भी आत्मद्रव्य नहीं। आहाहा! अब यहाँ तो अभी पुण्सय को ही केवलज्ञान और पुण्य को ही मोक्ष का मार्ग (अज्ञानियों को) सिद्ध करना है। सब किसने डाला है? परन्तु किस प्रकार डाला है? बढ़ गया, बहुत बढ़ गया। जुगराजजी! लॉटरी लगी है, कल कहे। बात सच्ची, कहा। आहा! यह वस्तु तो बापू! यह सुनकर रुचि में आवे तो इसका रास्ता 'श्रद्धा तारणहार है' ऐसी बात है। आता है न? एक जगह आता है। किस जगह आता है, यह निकालना पड़ेगा। आता है, भजन में आता है।

एक वस्तु ऐसी अखण्डानन्द प्रभु और रागादि, वह हेय है, सब एक नहीं, सब एक नहीं। पुण्य का भाव, उस पुण्य के भाव में जानती हुई परिणमित पर्याय, वह पूरे

द्रव्य में एक नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह अन्तर्दृष्टि इसकी जमना चाहिए। यह ज्ञान भगवान आत्मा, ज्ञान शक्ति का पूरा सत्त्व और एक समय की पर्याय जो अनन्त शक्तियों को जाननेरूप परिणमे, वह सब यदि एक माने तो पर्याय से लक्ष्य छोड़ना, परवस्तु से लक्ष्य छोड़ना और अन्तर में लक्ष्य करना, यह आता नहीं, रहता नहीं, हेय-उपादेय रहता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

ऐसा बुद्धिरूप प्रवर्तता है। कैसा है एकान्तवादी? अर्थात् क्या कहा? कि जो कोई यह पर्याय और अनन्त शक्ति को, रागादि की पुण्य-पाप की शक्ति को, कर्म की शक्ति को भिन्न न माने... समझ में आया? उसे ज्ञेय शक्ति भिन्न और आत्मा का सत्त्व—शक्ति भिन्न, (ऐसे) दो मानता नहीं, ऐसी उसकी बुद्धि प्रवर्तती है। आया न? **ऐसा बुद्धिरूप प्रवर्तता है।** उसके ज्ञान में ऐसी बुद्धि प्रवर्तती है कि पुण्य-पाप की शक्ति, कर्म की शक्ति, परवस्तु की शक्ति और मैं मेरी शक्ति—सब एक ही हैं। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा अन्तर है, परन्तु पूरब-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा! अरे! भाई! आहाहा!

कैसा है एकान्तवादी? 'शुद्धस्वभावच्युतः' ज्ञानमात्र जीववस्तु... देखो! शुद्धस्वभाव की व्याख्या। यह स्वभाव। आगे परभाव कहेंगे। **'शुद्धस्वभाव' जीववस्तु...** भगवान आत्मा शुद्ध स्वभाव है, वस्तु, वस्तु। उसे पर की शक्तिवाला पूरा माना, इससे शुद्धस्वभाव से च्युत है। वह तो पर में एकाकार हुआ है। जो वस्तु उसमें नहीं, एक समय की पर्याय वह यह अनन्त शक्तियाँ, उसमें गया। शुद्ध स्वभाव से भ्रष्ट हुआ। अपने एक स्वभाव में से सब स्वभाव को एकरूप माना, इसलिए शुद्धस्वभाव में आया नहीं; भ्रष्ट हुआ। समझ में आया?

च्युत है अर्थात् उसको विपरीतरूप अनुभवता है। लो! क्या कहते हैं? जो ज्ञानमात्र त्रिकाल वस्तु है, उसे परवस्तु और शक्तियाँ और पर्याय सब एक है, ऐसा मानकर पूरी चीज़ को पररूप मानकर अनुभव करता है। सब एक हूँ, ऐसा करके विपरीत बुद्धि से अनुभव करता है। राग और पुण्य भी मैं हूँ, ऐसा करके अनुभव करता है, विपरीत मिथ्यादृष्टि। लो! समझ में आया?

आस्रवतत्त्व और अजीवतत्त्व। पुण्य-पाप के भाव, वह आस्रवतत्त्व और अजीव कर्म आदि, शरीर आदि सब अजीवतत्त्व। यह सब शक्तियाँ हैं न? इनका गुण है या

नहीं ? इनका स्वभाव है या नहीं ? उस स्वभाव की शक्ति मेरे अनन्त गुण की शक्ति से अत्यन्त भिन्न है, ऐसा न माननेवाला वह सब रूप है, ऐसा माननेवाले को स्वभाव की शक्ति को भिन्न करके उसमें रहना, ऐसा न रहने से, स्वभाव से च्युत हुआ, रागादि की शक्तिरूप से मैं हूँ, ऐसा मानकर उसमें एकाकार हुआ है। समझ में आया ?

विपरीतपना क्यों है ? अब कहते हैं, विपरीतपना कैसे है ? गजब परन्तु न्याय! '**सर्वभावभवनं आत्मनि अध्यास्य**' देखो! '**सर्वभावभवनं आत्मनि अध्यास्य**' बस! **जितनी जीवादि पदार्थरूप ज्ञेयवस्तु...** अनन्त पर आत्मायें, अनन्त पर परमाणु **उनके शक्तिरूप गुण-पर्याय अंशभेद, उनकी सत्ता को ज्ञानमात्र जीववस्तु में प्रतीति कर।** देखो! क्या कहते हैं ? जितने जीवादि पदार्थ अन्य। अरे! पुण्य-पाप की शक्तियाँ अन्य। **उनके शक्तिरूप गुण-पर्याय अंशभेद,....** समझ में आया ? उसके जो अंश भेद। **जीवादि पदार्थरूप ज्ञेयवस्तु उनके शक्तिरूप गुण-पर्याय अंशभेद उनकी सत्ता को ज्ञानमात्र....** वे सब अंश वे मेरी सत्ता स्वरूप हूँ, ऐसी प्रतीति करता है। परन्तु रागादि, कर्म आदि परपदार्थों की शक्ति मेरे स्वभाव की पूर्ण शक्ति से भिन्न है, ऐसा पर से भिन्न करके स्व-शक्ति का आश्रय नहीं करता, पर-शक्ति के आश्रय में पड़ा है।

दूसरे प्रकार से कहें तो पुण्य-पाप भाव आदि सभी शक्तियाँ मुझे, उनके कारण मजा आता है, ऐसा माननेवाला पर में एकाकार हो गया है। स्व-शक्ति से पर शक्तियाँ भिन्न हैं। स्व-आनन्द की शक्ति, स्व-आनन्द की शक्ति—ऐसा जो स्वतत्त्व, पुण्य-पाप की शक्ति जो दुःखरूप है, परपदार्थ की शक्तियाँ वे भिन्नरूप हैं, उन्हें मैं पूरा हूँ—ऐसा माननेवाला, वह पर से भिन्न आत्मा को करता नहीं। स्वभाव से च्युत हुआ पर में एकाकार हो गया है। समझ में आया ? आहा! प्रतीति करता है, (ऐसा कहा है)। **सत्ता को ज्ञानमात्र जीववस्तु में प्रतीति कर।** मेरी पूरी चीज़ आनन्दमय जो है वस्तु, वह इस रूप ही मैं हूँ, ऐसा। यह पुण्य-पाप की शक्ति, शरीर की, कर्म की शक्ति, इन सबकी शक्तिरूप मैं हूँ, ऐसा अज्ञानी प्रतीति करता है। परन्तु जिस वस्तु का आनन्दस्वभाव मेरा भिन्न है, एक समय की पर्याय और यह शक्ति भिन्न है—ऐसा भेदज्ञान के विवेक की प्रतीति नहीं करता। बराबर सुनायी देता है ?

अंशभेद उनकी सत्ता को ज्ञानमात्र जीववस्तु में प्रतीति कर। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानगोचर है समस्त द्रव्य की शक्ति। देखो! ज्ञान की (एक) समय की पर्याय में सब समस्त द्रव्य की शक्ति पर्याय में ज्ञानगम्य है। **उनकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान...** देखो! वापस लिया। समझ में आया? यह ज्ञान की एक समय की अवस्था में अनन्त द्रव्यों की शक्ति को जाननेरूप परिणमित पर्याय। **उनकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान, इसलिए सर्व शक्ति ज्ञान की है—ऐसा मानता है।** लो! यह ज्ञान की पर्याय अनन्त गुण की शक्ति को जाननेरूप परिणमित हुई तो ऐसा मानता है कि पूरा द्रव्य उसरूप हो गया है। **सर्व शक्ति ज्ञान की है...** वह सभी सर्व शक्ति आत्मद्रव्य की ही है, वह सभी शक्ति आत्मपदार्थ की ही है। समझ में आया?

गजब श्लोक भाई! केवलज्ञान को बुलावे ऐसे यह श्लोक हैं! केवलज्ञान को बुलावे ऐसे श्लोक हैं। लाओ, केवलज्ञान! अखण्डानन्द पूरी शक्ति है। यह एक समय की पर्याय और यह (पर) द्रव्य की शक्ति, राग की शक्ति, कर्म की शक्ति वह भी मुझमें नहीं। मुझमें यह नहीं और पूरा इतना हूँ न! यह तो सही, इसे ज्ञान करनेयोग्य है, हेय करनेयोग्य है। हेय करने (योग्य) तो ज्ञान तो करनेयोग्य है या नहीं? समझ में आया? (एकान्ती) निगोद को बुलाता है और यह (अनेकान्तवादी) केवलज्ञान को बुलाता है। एकान्त माननेवाला निगोद को बुलाता है। जाना है निगोद में खिंचकर। आहाहा! कहते हैं... क्या कहा?

इसमें से भावार्थ किया है कि ज्ञानगम्य जो **समस्त द्रव्य की शक्ति।** सभी द्रव्यों की शक्तियों का सामर्थ्य जो ज्ञान की अवस्था में है, **उनकी आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान इसलिए सर्व शक्ति ज्ञान की है—ऐसा मानता है। ज्ञेय की तथा ज्ञान की भिन्न सत्ता नहीं मानता है।** वह जाननेयोग्य की शक्ति अथवा एक समय में परिणमित ज्ञान, उससे मेरी सत्ता द्रव्य भिन्न है, उससे भिन्न है, एक नहीं। उसी समय परिणमित ज्ञान और अनन्त शक्तियाँ, उनसे मेरी सत्ता भिन्न है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। सब एक है—ऐसा मानता है। समझ में आया? बड़े शहर में तो पहला-वहला तो यह रूखा लगे। यह क्या कहते हैं? धर्म की ऐसी बातें होंगी? व्रत करो, तपस्या करो, मन्दिर बनाओ, पूजा करो, हाथी लाओ। दरबार! दरबार बैठे थे न? तब हाथी पर बैठै थे न?

मुमुक्षु : (आप तो) इनकार करते हो, कोई किसी के ऊपर बैठ नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! कहते हैं, भगवान! तू तो महा शक्ति का तत्त्व पूरा है न! वह किससे भिन्न है? एक समय की ज्ञान की अवस्था से भी भिन्न है। समझ में आया? और अनन्त शक्तियाँ जो उनके कारण से काम कर रही है, उनसे भी भिन्न है। समझ में आया?

इसलिए (सर्व शक्ति ज्ञान की है) **ऐसा मानता है। ज्ञेय की तथा ज्ञान की भिन्न सत्ता नहीं मानता है।** वास्तव में ज्ञेय जो अनन्त शक्तियोंवाले द्रव्य हैं, वे भी ज्ञेय हैं और एक समय की पर्याय उसरूप जानना, वह भी वास्तव में तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? परन्तु यहाँ ज्ञेय को बाहर में लिया है। क्योंकि उसे जानने का पर्याय का धर्म है न, इसलिए अनन्त ज्ञेय की शक्ति भिन्न ली है, ऐसा। **ज्ञेय की तथा ज्ञान की भिन्न सत्ता नहीं मानता है। और कैसा है?**

'सर्वत्र अपि अनिवारितः गतभयः' **'सर्वत्र अपि अनिवारितः'** क्योंकि सब एक हूँ, सब आत्मा, यह सब आत्मायें, सब रजकण, सब शक्तियाँ, सबके गुण, वह मैं हूँ। इसलिए दूसरे सबके गुण मुझसे भिन्न करना और मेरी शक्ति को उनसे भिन्न करना उसे रहता नहीं। समझ में आया? तो **स्पर्श...** समझ में आया? यह ज्ञेय की शक्ति है परन्तु ज्ञेय की शक्ति मुझसे भिन्न तो मानता नहीं। इसलिए ज्ञेय की स्पर्श शक्ति से पृथक्ता ऐसी मानता नहीं। ज्ञेय स्पर्श को भी अनुभव करूँ, क्योंकि मैं तो एक हैं। स्पर्श को अनुभव करूँ क्योंकि हम सब एक हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक है, शक्तियाँ सब एक ही मानता है न? समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होता है न? यदि मेरा वह न हो तो मेरी पर्याय में कैसे ज्ञात हो? मानता है न? ऐसा मानता है वह। मेरी ज्ञान की पर्याय में वह सब ज्ञात होता है, इसलिए हम सब एक हैं। फिर यह भोगना और यह न भोगना, यह खानेयोग्य है और नहीं खानेयोग्य है, ऐसा विवेक वहाँ करने की आवश्यकता नहीं रहती। जाओ! इन्द्रियाँ इन्द्रियों के धर्म भोगे। क्योंकि सब एक हैं। इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय सब शक्तियोंवाले

तत्त्व भिन्न नहीं हम ही वे सब हैं। इसलिए उसे उसकी शक्ति के भोग से या राग से पृथक् पड़ना रहता नहीं। समझ में आया?

'सर्वत्र' स्पर्श,... कहो समझ में आया? यह ज्ञेय की शक्ति है। परन्तु वह अपने जानकर (परिणमता है)। वे सब परभाव हैं। क्या कहा? यह स्पर्श, स्पर्श यह ठण्डा, गर्म, यह सब परभाव हैं। इसलिए मैं एक जाननेवाली शक्ति भिन्न है और यह शक्ति भिन्न, यह तो मानता नहीं। इसलिए उस शक्ति को अपनी मानकर उसे अनुभवता है। यह अनिवारित अर्थात् उसे छोड़ना, यह अब निवारण रहा नहीं, रहा नहीं, छोड़ना तो रहा नहीं। हम सब एक हैं, बापू! सब एक हैं। समझ में आया?

रस.... रस। यह रस की शक्ति भी हम ही हैं, ऐसा मानता है। समझ में आया? खट्टे, मीठे, मीठा रस मीठा, माँस का रस। माँस का रस और शक्ति फिर भिन्न कहाँ है? हम ही सब हैं, ऐसा माननेवाला माँस आदि खाने की शक्ति में भी पीछे नहीं हटता। सर्वत्र एक माने, वह कैसे हटे? हम एक हैं, सब एक हैं। समझ में आया? आहाहा!

गन्ध... सुगन्ध और दुर्गन्ध। यह सब हम एक हैं। गन्ध की शक्तिवाला तत्त्व और भिन्न है, यह कहाँ है? सब गुणरूप हम ही हैं, सब गुणरूप हम ही हैं। इसलिए गन्ध शक्ति को भिन्न करना और मेरी शक्ति ज्ञानस्वरूप त्रिकाल भिन्न है, ऐसा अज्ञानी को रहता नहीं। समझ में आया? कितने ही कहते हैं न? ईश्वर ने सब बनाया तो अपने को सब भोगने योग्य है। इसी प्रकार यह कहता है कि हम सब एक हैं, इसलिए मुझे भोगना और छोड़ना, ऐसा कुछ रहता नहीं। समझ में आया इसमें?

वर्ण.... रंग, रंग। रंग की यह शक्ति तो भिन्न है। तथापि इस रंग की शक्तिरूप हम हैं, पूरा शक्तिवाला ज्ञान तत्त्व भिन्न है, ऐसा न मानकर, इस शक्तिरूप सब हम हैं, उसने रंग का अपनापन मानना, इससे रंग को देखने से देखनेवाला भिन्न है, ऐसा उसे जानने का रहता नहीं। बस! अपने एक होकर भोगो तो उसमें कुछ दिक्कत नहीं।

शब्द ऐसा इन्द्रियविषय... शब्द, शब्द। हम हैं, यह शब्द की शक्ति यह है, हम हैं। यह सब शब्द की शक्ति को देखो न! स्वयं उत्पन्न करता है न? कहते हैं, स्वयं उत्पन्न करता है, इसलिए आत्मा की शक्ति से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए वह सब आत्मा की शक्ति ही है। यह शब्द और यह सब बनाते हैं, वह आत्मा की शक्ति से बनता है या

नहीं ? यह सब तुम्हारे क्या कहा ? रोकेट और यह सब... यह आत्मा की शक्ति से बने हैं या नहीं ? यह उतरता है, देखो ! यह आत्मा की शक्ति से वहाँ हुआ है या नहीं ?

मुमुक्षु : तो मनसुखभाई किसलिए बैठे हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ बैठे नहीं, सबमें सब बैठे हैं। सबकी शक्ति में सब है। आत्मा की शक्ति में यह नहीं। आत्मा की शक्ति से उसकी शक्ति भिन्न है। उस भिन्न कार्य की शक्ति को आत्मा करता है, ऐसा माननेवाले सब शक्तियों को एक मानते हैं। आहाहा ! होशियार मनुष्य हो, सब शक्ति करता है या नहीं ?

कहते हैं, अज्ञानी ऐसे इन्द्रियों के विषयों, उनकी शक्तियाँ भिन्न है, उन्हें अपनी मानकर, उनसे भिन्न नहीं पड़ता। एकपना मानकर भोगने में तत्पर है।

तथा मन-वचन-काय... देखो ! यह मन, मन। इसकी शक्ति भिन्न है, ऐसा न मानकर यह ज्ञेय शक्ति मेरी है, मन भी मेरा है (ऐसा मानता है) इसलिए मन से भिन्न पड़ने का उसे रहता नहीं। कहो, समझ में आया ? वचनरूप शक्ति। वचनशक्ति बनावे कौन ? आत्मा बनाता है, ऐसा मानता है। जैसा वचन बोलना हो, वैसा बोला जाये, जोर से बोलना हो तो जोर से बोला जाये, धीरे से बोलना हो तो धीरे से बोला जाये।

मुमुक्षु : कान में जाकर बात करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कान में धीरे से बात करे। कहते हैं कि वे शक्तियाँ जड़ की, वचन की भिन्न हैं। उनके गुण का लेना है यहाँ ? उसका वचन का गुण शक्ति भिन्न है। आत्मा की शक्ति से हुए नहीं। वह शक्ति ज्ञेय की भिन्न है। उसे अज्ञानी माने कि यह शक्ति मुझसे होती है, उसे उससे भिन्न पड़ने का भाव रहता नहीं। समझ में आया ?

काया—यह देह। मिट्टी है, यह जड़, देखो ! यह इसकी सब शक्ति है। मुट्ठी मारे पापड़ तोड़े, ईंट तोड़े। वह कहे, मेरा बाप ऐसा था कि पापड़ तोड़ डाला था। एक कहे कि मेरा बाप ऐसा था कि मक्खी को मारा था। एक और ऐसा मेरा बाप था कि वहाँ मच्छर उड़ता था उसे हाथ में मसल डाला था। उड़ते मच्छर को, चलते को। ऐसे हमारे बाप समर्थवाले थे। ठीक, भाई ! क्या बोलता है तू यह ? समझ में आया ? ऐसी बात आती है, हों !

एक खाट दी थी। दस मनुष्य गये थे उन्हें खाट दी थी। क्या कहलाती है ? सोने की। अब सोवे कौन इसमें दस व्यक्तियों में ? एक व्यक्ति कहे, मेरे बाप ने ऐसा किया था, दूसरा कहे, मेरे ऐसा किया था। इसलिए उसमें हम सोयें। दस व्यक्ति ऐसी बात करने लगे। अब भाई ! रहने दे, खाट रखो ऐसी की ऐसी और पैर रखकर सोओ नीचे। मेहमान गये होंगे सब अभिमानी दस और जहाँ गये तो एक दिया पलंग। अब सोना किसको ? सबने ऐसा कहा। वह कहे, मेरे बाप ने मुट्ठी मारकर पापड़ तोड़ा था, (दूसरा कहे) ऐसे मच्छर उड़ता था। मच्छर को ऐसे तोड़ डाला। बहुत शक्ति ! इसलिए मैं सोऊँगा। दसों व्यक्तियों ने ऐसे तर्क निकाले। फिर विचार किया कि भाई ! इसमें कोई अकेला अलग पड़े ऐसा नहीं है। इसलिए पलंग बिछाओ समान और नीचे पैर रखकर सोओ। ऐसे अभिमानी इकट्ठे हों, उसमें क्या करना ? कहो, समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, परन्तु परवस्तु से तू भिन्न है, यह तो तुझे खबर नहीं। सभी शक्तियाँ मैंने की और मैंने की, इतनी मेरी है। ऐसा माननेवाला (अज्ञानी है)। यह शरीर की शक्ति की शक्ति भी मैंने की। खा-पीकर मैंने लड्डू खाये और मैंने अमुक खाया (इसलिए) यह शक्ति मेरी है, मैंने की है, हों ! यह मेरी शक्ति है, ऐसा मूढ़ माननेवाला जड़ की शक्ति अपने से भिन्न है, ऐसा नहीं मानता। यह शरीर की शक्ति को अपनी मानकर शक्ति का वेदन करना या उसे भोगना, वह अपना अभिप्राय मिथ्या रखता है।

तथा नाना प्रकार ज्ञेय की शक्ति इनमें अवश्य कर 'अनिवारित:' देखो ! **मैं शरीर, मैं मन, मैं वचन, मैं काय, मैं स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्द इत्यादि परभाव को अपना जानकर प्रवर्तता है;...** पर को अपना मानकर प्रवर्तता है। **मिथ्यादृष्टि के कोई भाव परभाव नहीं है जिससे जड़ होवे....** परभाव कोई है ही नहीं न, सब एक ही हैं, हमारी शक्ति से सब हुए हैं, हमारी शक्ति से सब हुए हैं। परन्तु उसकी शक्ति से रहे हुए हैं, ऐसा नहीं मानता। इसलिए इसे पर को भोगने का डर नहीं रहता। ऐसा मिथ्यादृष्टि एकान्ती पर को अपना माने, उसे मूढ़ और अज्ञानी कहा है। उसके सामने स्याद्वादी की व्याख्या आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष शुक्ल ०२, शुक्रवार, दिनांक-२४-१२-१९६५, कलश-२५९-२६०, प्रवचन-२७९

स्याद्वाद अधिकार, समयसार कलश, १३वाँ कलश चलता है। इस ओर आया, देखो! **उसके प्रति समाधान करता है स्याद्वादी...** एकान्तवादी के सामने स्याद्वादी समाधान करता है। यह चलते अधिकार में एकान्तवादी अर्थात्? यह आत्मा है, वह अनन्त गुण के भाव स्वभावरूप, शक्तिरूप तत्त्व है। समझ में आया? आत्मा जो है, वह अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त शक्ति स्वभावरूप उसका भाव है। उसे अज्ञानी ऐसा न मानकर उसके ज्ञान की एक समय की वर्तमान पर्याय में अनन्त ज्ञेय पदार्थ की शक्ति का ज्ञानरूप से परिणमना जानने में हो, इतना ही मेरा आत्मा और भाव है, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? क्या कहा?....

यह पर्यायें होती हैं पर की नहीं, पर को जानने सम्बन्धी, अनन्त परपदार्थों की शक्ति है, भाव है, उस सम्बन्धी अपनी ज्ञान की अवस्था में उसपने का परिणमन होता है, जैसे वे भाव हैं, उन्हें जाननेरूप ज्ञान की दशा होती है। उस ज्ञान की दशा को ही पूरा आत्मा का भाव मानता है। कहो, समझ में आया? दूसरे की बात तो यहाँ है ही नहीं। शरीर-वाणी मेरा माने, पुण्य-पाप मेरे माने, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, उसे तत्त्व की खबर नहीं।

मुमुक्षु : मेरा परन्तु व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से, क्या परन्तु व्यवहार से? वस्तु नहीं, उसमें व्यवहार कहाँ आया? वस्तु में ही नहीं है। उसका व्यवहार तो यहाँ एक समय की पर्याय का वास्तव में है। वह पर्याय, एक समय की पर्याय में ज्ञान की पर्याय पर को जाननेरूप अपना अंश परिणमता है, उतने में पूरे स्वभाव को माने तो मिथ्यादृष्टि है, यहाँ तो ऐसा लेना है। वास्तव में द्रव्य के एक अंश की पर्याय में पूरे द्रव्य को माने, पूरे भाव को माने, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। रतिभाई! समझ में आया?

परवस्तु की तो यहाँ बात ही नहीं। परवस्तु तो पर है। उसे और आत्मा को क्या सम्बन्ध है? शरीर, वाणी, मन, वह तो परपदार्थ है। उसके गुण जो परवस्तु के हैं,

परवस्तु की जो शक्ति का सत्त्व—स्वभावभाव है, उसे यह ज्ञान की एक समय की पर्याय उसे जानने में स्वभाववाली शक्ति का तत्त्व है। एक समय की पर्याय। उस एक समय की पर्याय को—उस अंश का पूरा भाव अनन्त गुण का पिण्ड स्वयं द्रव्य स्वभाव, उसे ही आत्मा मानता है। अर्थात् कि वास्तव में सभी चीज़ें ही मेरी है—ऐसा वह मानता है। यहाँ पर्याय को मानता है, अर्थात् उसमें ज्ञात होनेयोग्य वस्तु भी मेरी है, ऐसी उसकी बुद्धि पर्यायबुद्धि में लम्बित होकर वहाँ जाती है, ऐसा कहना है। समझ में आया?

परवस्तु के जानने के योग्य ज्ञान की जो पर्याय है, उतने को आत्मद्रव्य माननेवाला वह पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धिवाला, उसका लम्बा लक्ष्य जाये तो उसमें ज्ञात हो, वह चीज़ मेरी, ऐसा उसमें मानता है। परन्तु यह एक समय का भगवान आत्मा पूर्ण भाव ध्रुव चिदानन्द अखण्ड ध्रुव हूँ, ऐसे भाव को मिथ्याश्रद्धा में, मिथ्याबुद्धि में मानता नहीं। लो! इसका नाम मिथ्यादृष्टि और इसका नाम आत्मस्वरूप की हिंसा है। कहो, समझ में आया? अब इसे क्या कहना? दु:खी कहो, पापी कहो, मिथ्यादृष्टि कहो, असत्यवन्त कहो, झूठी मान्यतावाला कहो, आकुलता में अपना पूरा स्वरूप माननेवाला, आकुलता को वेदन करनेवाला कहो—सब एक है। एकान्ती एक पक्ष को माननेवाला कहो, मिथ्यादृष्टि कहो, मूढ़ कहो, पूरे वस्तु के स्वरूप को लोप करनेवाला कहो। ओहोहो! समझ में आया?

उस **मिथ्यादृष्टि के कोई भाव परभाव नहीं है जिससे डर होवे...** परवस्तु कोई पृथक् नहीं। एक समय की पर्याय में सब ज्ञात हो उतना मैं और वे सब चीज़ें भी मैं। उसका विस्तार गया वहाँ, वही मेरा। ऐसे त्रिकाली ज्ञायकभाव अनन्त गुण का पिण्ड शक्तिरूप स्वभाव है। उसे उसने पृथक् माना नहीं। इसलिए सब क्रियाकाण्ड में सब भोगना, करना वह तो हमारी चीज़ ही है। उसमें उसे कुछ भोगना, पर में कुछ डर रहा नहीं। मैं पृथक् नहीं, वे मेरे से पृथक् नहीं। पृथक् नहीं, इसलिए एक को भोगने में उसे कहीं पाप का डर नहीं रहता। समझ में आया?

उसे स्याद्वादी कहता है, देखो! **उसके प्रति समाधान करता है स्याद्वादी—'तु स्याद्वादी विशुद्ध एव लसति'** '**तु**' अर्थात् **जिस प्रकार...** अज्ञानी मानता है, एकान्त पक्षी

मानता है, मिथ्यादृष्टि मानता है, स्वरूप के शुद्धभाव की शक्ति को भूला हुआ मानता है। कहो, समझ में आया? **उस प्रकार नहीं है...** तू मानता है, ऐसा नहीं है, ऐसा वस्तु स्वरूप ही नहीं। **जिस प्रकार स्याद्वादी मानता है उस प्रकार है।** क्या कहते हैं?

स्याद्वादी अर्थात् अनेकान्तवादी जीव... अर्थात् कि एक समय की अवस्था में सब चीज़ों को जाननेयोग्य परिणमने की पर्याय होने पर भी मैं उतना नहीं, मैं तो पूरा त्रिकाल द्रव्यस्वभाव हूँ। एक समय की पर्याय मेरे जाननेयोग्य है। है—ऐसा जाननेयोग्य है। ऐसी सभी चीज़ें हैं—ऐसा जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया इसमें?

अनेकान्तवादी जीव... 'विशुद्ध एव लसति' मिथ्यात्व से रहित होकर प्रवर्तता है। अर्थात् क्या? एक स्वरूप की पर्याय, पूरे द्रव्य की एक समय की पर्याय में अनन्त पदार्थों का जानने का परिणमन हो, उतना मैं नहीं। भले वह पर्याय है, उसे मैं मानता हूँ परन्तु उतना मैं नहीं। मैं अनेकान्त अर्थात् उतनी समय की पर्याय को जाननेवाला भी हूँ और त्रिकाल वस्तु द्रव्यस्वभाव है, वह भी मैं हूँ। समझ में आया?

एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड अकेला पिण्ड प्रभु! अनन्त... अनन्त... शक्ति का रस, वह मैं हूँ, वह मुझे उपादेय है। एक समय की पर्याय में अनन्त... अनन्त... पदार्थों को जाननेरूप परिणमित पर्याय, वह मुझे जाननेयोग्य है, जाननेयोग्य है। ऐसा उसमें ज्ञात हो वे पदार्थ ज्ञान में जाननेयोग्य है परन्तु आदरनेयोग्य नहीं। बहुत सूक्ष्म परन्तु भाई! यह जैन के सम्प्रदाय में जन्मे, उसे भी यह समझना कठिन पड़े तो अन्य में तो यह वस्तु ही नहीं। भगवान सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्व तो अन्यत्र कहीं है ही नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ, जिनके एक समय के ज्ञान में अनन्त द्रव्य और पूरा अपना द्रव्य, वह सब जिन्हें ज्ञान में—केवलज्ञान में उन्हें ज्ञात हुआ, तब वाणी में आया कि प्रत्येक पदार्थ एक समय की अवस्था में अनन्त पदार्थों की शक्ति को जानने का पर्याय स्वभाव है, पर्यायरूप से इतना भी है और त्रिकाल पर्याय बिना का, पर्याय जिसमें नहीं, ऐसा अखण्डानन्द पूर्ण स्वभाव है। मात्र पर्याय को माने और द्रव्य

को न माने तो भी मूढ़ है। मात्र द्रव्य त्रिकाली भाव को ही माने परन्तु मानने की, जानने की पर्याय है, उसे जाने-माने नहीं, वह भी मिथ्यादृष्टि और एकान्ती है। समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो एक समय की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो गये। उन छह द्रव्य को न माने और मात्र जीवद्रव्य को माने, समझ में आया? उन छह द्रव्य को न माने और एक जीवद्रव्य को माने तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी है। और छह द्रव्य को जाननेवाली पर्याय और छह द्रव्य को माने परन्तु पूरा एक आत्मा एक समय में अखण्ड पूर्णानन्द भगवान आत्मा है, उसे न माने तो वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसे धर्म किंचित् नहीं होता, अधर्म पूरा होता है। गजब भाई! धर्म और अधर्म की यह जीविया बहुरविया की व्याख्या कहाँ गयी? क्या पूछते थे? अमुक क्या कहा? कहते थे न, कलकत्ता में कितनी बार रखते हो न? समझ में आया? अमुक कब आयेगा, फलाना कब आयेगा, ऐसा होता था न! आहाहा! समझ में आया इसमें?

वस्तु के दो अंश—यह भगवान आत्मा के दो अंश। एक अंश वर्तमान अवस्थारूपी अंश कि जिसमें छहों द्रव्य ज्ञात हों, ऐसा एक अंश और एक पूरा द्रव्यस्वभाव पूर्ण एकरूप अखण्ड अभेद ऐसा भाव। अब उस भाव को न माने और एक समय की अवस्था को अथवा छह द्रव्य में मैं, ऐसा माने और अपना त्रिकाली द्रव्यस्वभाव भिन्न न जाने, विवेक करना न आवे, वह मूढ़ और अज्ञानी धर्म की दशा नहीं कर सकता। वह अधर्म को खड़ा करता है। दूसरे जीव को माने, न मारे, बचावे, न बचाने के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। कहो, समझ में आया?

दूसरे जीव हैं, भाई! इतनी बात। अनन्त जीव हैं, इतना। उन जीवों को मार सकता हूँ, बचा (सकता हूँ), यह प्रश्न है ही नहीं। अब वे अनन्त जीव हैं, वह मैं, मेरे हैं, वे सब मैं हूँ अर्थात् कि उनके सब भावों को मैं कर सकता हूँ, अर्थात् वे सब मेरे भावस्वरूप हैं, ऐसा माननेवाले को यहाँ अज्ञानी मिथ्यादृष्टि कहा है। और वे अनन्त जीव हैं, उनके सम्बन्धी यहाँ ज्ञान की पर्याय अनन्त जीव हैं, उन्हें जाननेरूप पर्याय परिणमी। इतने को स्वयं माने, इतना ही हूँ, ऐसा माने। अनन्त जीव के साथ अब

सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? उन्हें जिलाना, बचावे (वह कुछ नहीं)। वे अस्तित्वरूप से हैं, अनन्त जीव अस्तित्वरूप से हैं। लोग कहते हैं न? भगवान ने अनन्त जीव की दया पालन का कहा, भगवान ने अनन्त जीव की रक्षा (करने का कहा)। अरे! भगवान! सुन तो सही, भाई! इसमें बड़ा विरोध आता है।

अनन्त आत्मायें हैं, ऐसा भगवान ने कहा। ऐसी ज्ञान की पर्याय अनन्त जीव है, ऐसा जाने, जाने परन्तु, उस जानने जितनी पर्याय में उतना ही आत्मा है। जाने, हों! उतना। पर को ऐसा करूँ, यह प्रश्न रहता ही नहीं। समझ में आया? पर्याय है, ऐसा सब है, ऐसा इतना। अनन्त आत्मायें हैं, निगोद के अनन्त जीव हैं, सिद्ध के अनन्त जीव हैं। दोनों उसमें आ गये। तो सिद्ध से कुछ लेना है, ऐसा भी नहीं और अनन्त निगोद को मारना है, ऐसा भी नहीं, तथा उन्हें बचाना है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! यह जीवदया इसमें सिद्ध होती है। नहीं तो अपने जीव को मार डाला, ऐसा कहते हैं। ऐ... धर्मचन्दजी! और यह याद आ गया। यह हमारे चिल्लाहट मचाते हैं न! अरे! सुन न, भगवान! आहाहा!

भाई! तेरे एक ज्ञान की एक समय की दशा में अनन्त जीव, अनन्त परमाणु, वे अनन्त सिद्ध और अनन्त आलू आदि शकरकन्द (आदि के) जीव, 'है' इतना माननेवाला अपनी एक समय की पर्याय को मानी है, ऐसा कहा है। उन्हें कुछ कर सकूँ, बदल सकूँ, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं, यह है ही नहीं परन्तु हो सकती नहीं। यहाँ तो अस्तित्व के दो अंशों में एक अंश को माने और पूर्ण को मानता नहीं। एक अंश के अस्तित्व में छहों जो अनन्त जीव हैं, छह द्रव्य है, यह सब है, ऐसी ज्ञानरूप पर्याय परिणमित हुई, इतने अंश में हैरूप से। उतने अंश को हैरूप से माने और पूर्ण द्रव्य को न माने, (वह) एकान्त मिथ्यादृष्टि, अधर्मदृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

यह अनन्त आत्मायें हैं, उनकी दशाओं का अस्तित्व वस्तु है परन्तु उस अस्तित्व में उसे बदलने का मेरा अधिकार है। (ऐसा माने) तो इसका अर्थ कि इन सबमें मैं हूँ। मेरा अस्तित्व उन सबमें है। उनके अस्तित्व से मेरा अस्तित्व भिन्न है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। आहाहा! ऐ... जुगराजजी! कठिन बात, भाई!

भाई! भगवान! बापू! यहाँ तो तेरी वस्तु की स्वीकृति में इतना सब आ जाता है।

मात्र अनन्त जीव है इतना, अनन्त पुद्गल हैं इतना, अनन्त सिद्ध हैं इतना, अनन्त निगोद के जीव हैं, हों! निगोद के एक शरीर में अनन्त (जीव हैं)। आलू, शकरकन्द आदि में हैं। है, इतना ज्ञान की पर्याय जानती है, वह ज्ञान की पर्याय जिसने स्वीकार की, उसमें वह है, उतना स्वीकार आ जाता है, बस! समझ में आया? परन्तु उसके अन्दर में मैं जाकर उसका काम कर दूँ... समझ में आया? उसकी रक्षा कर दूँ, उसे बचा दूँ, सिद्ध के पास से ले लूँ... समझ में आया? ऐसी भी उसकी जो वृत्ति और दृष्टि है, वह उसके अस्तित्व की भिन्नता के भाव को वह नहीं मान सकता। समझ में आया? इससे आत्मा को सबमें मान रहा है। समझ में आया इसमें? और क्या निकला यह? ऐ... रतिभाई! आहाहा!

अपना अस्तित्व एक समय में पूर्ण शक्ति का सत्त्व भगवान आत्मा अनादि-अनन्त पदार्थ है या नहीं? और उसकी एक समय की पर्याय का अंश अस्ति है या नहीं? उसकी अस्ति में सब है, इतने का ज्ञान का अस्तित्व आ गया, उसमें यह भी आ गया। बस! इतना। इसके अतिरिक्त विशेष करने जाये कि यह सब मैं, उसका मैं कर दूँ, उसका यह कर दूँ तो वह अपनी सत्ता को परसत्ता में मिला दिया। इसने उसे—महान ज्ञाता-दृष्टा की सत्ता भिन्न नहीं रखी। समझ में आया? कठिन बात, भाई! यह एकान्त और अनेकान्त। अरे भगवान! यह चिल्लाहट मचाते हैं, हों! प्रभु! यह चिल्लाहट मचाने जैसा है, भाई!

यह तत्त्व जो है अनन्त, अनन्त सत्ता है, उस अनन्त सत्ता की स्वीकृति में मात्र एक समय की पर्याय ही आ जाती है, बस! समझ में आया? इस शैली से यहाँ तो उठाया है न? भाई! इस शैली से बात बराबर उठायी है। आहाहा! परन्तु इतना दूसरा नहीं। है इतना। उसे मैं ऐसा कर दूँ और ऐसा कर दूँ तो उसकी समय की पर्याय के अस्तित्व को जानने जैसा भाव है, उतना भी वह मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा एक समय में जिसका पूर्ण भाव शुद्ध प्रभु, उसे एक समय की अवस्था और अनन्त सत्ता के अस्तिवाला, भाववाला यहाँ पर्याय। उसमें पूरा आत्मा द्रव्य आ जाये, ऐसा माननेवाला अर्थात् पूरा द्रव्य उसके लिये ही मेरा काम करता है, वह तो

पर्याय को माननेवाला, छह द्रव्य को माननेवाला, छह द्रव्य को मानता, मेरा भिन्न ज्ञाता-दृष्टा द्रव्य है, उसे मानता और जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इतना अस्तित्व, द्रव्य का अस्तित्व माने, परन्तु एक समय की पर्याय में छहों द्रव्य का जाननेवाला है और छहों द्रव्य है, उतने अस्तित्व को न माने; अस्तित्व को न माने इतना, करने-फरने का प्रश्न यहाँ नहीं। अस्तिवाला है, उसे न माने तो एक द्रव्य को मानने की जो सामर्थ्य, एक समय की इतनी सब है, वह भी उसने मानी नहीं। समझ में आया? जमुभाई!

देखो! यह शरीर आदि की क्रिया होती है न? वाणी आदि का अस्तित्व है? यह सब अस्तित्व है न? अस्तित्व। वह सब मन-वचन और काया का अस्तित्व है न? वह आ गया न अन्दर? देखो न! यह पहले आ गया। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, ऐसा लिया फिर इन्द्रिय, विषय, मन-वचन और काया यह सब लिया, यह सब लिया। पश्चात् मन-वचन-काया-शरीर आदि। वह उसकी ऐसी जो अवस्था होती है न? अवस्था... पर अस्तित्व। वह सब जो पर्याय होती है न? यह जड़ की। उसका अस्तित्व—वह है, ऐसा ज्ञान की एक समय की पर्याय जानती है, बस! इतनी बात है। वह ज्ञान की एक समय की पर्याय है, ऐसा जानती है। वह मैं हूँ, ऐसा पूरा माने, तब तो वह पूरे द्रव्य को भूल गया। परन्तु वह है, इतना। और उसे जानने की पर्याय है, वह सब होकर है। इतना न माने, है न माने तो पूरा अस्तित्व जो त्रिकाल सब है, उसे नहीं माना। और उस अस्तित्व में मेरा अधिकार है, वह सब अस्तित्व है, उसमें मेरा अधिकार है। उसे बदलने का, ऐसा करने का, ऐसा करने का। अकेले जानने की पर्याय जितना न माने और सब ऐसा और ऐसा है। उसने तो जानने की पर्याय की सत्ता, एक समय की यह सब अस्तित्व को भिन्न रहकर जानने की सत्ता है। इतनी एक समय की पर्याय को भी उसने माना नहीं। समझ में आया? भीखाभाई! बहुत सूक्ष्म! बहुत अच्छी बात है।

यह सब यह लड़के आये, नयों को तो कैसा लगता होगा यह? यह क्या? यह वह कैसा धर्म लगाया? यह वह क्या होगा? समझ में आया? आहाहा! वहाँ एल.एल.बी. और बी.ए. के पूंछड़े लगाये हों तो वहाँ जाये, सिर फोड़े। यह क्या है तत्त्व? भगवान यह मार्ग कहते हैं, (इसकी) दरकार नहीं, दरकार नहीं। समझ करना नहीं।

यह ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा है और एक समय की पर्याय में सब जानने की शक्तिवाला तत्त्व है। बस! इतना है। समझ में आया? स्याद्वादी कहता है, स्याद्वादी। **'विशुद्ध एव लसति', 'विशुद्ध एव लसति'**। पर्याय में इतना मानता नहीं परन्तु मैं त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध द्रव्य हूँ। **कैसा है स्याद्वादी? 'स्वस्य स्वभावं भरात् आरूढः' 'स्वस्य स्वभावं' ज्ञानवस्तु की जानपनामात्र शक्ति....** त्रिकाल शक्ति, वह स्वस्य स्वभाव, अपना कायम स्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, स्वभावभाव शुद्ध। वह **'भरात् आरूढः' अति ही प्रगाढ़रूप से प्रतीति करता है**। मैं तो एक समय में पूर्ण ज्ञायक स्वभाव हूँ। पूर्ण... पूर्ण भरपूर। एक समय की अवस्था में वह सब ज्ञात हो और एक समय की अवस्था से भिन्न मेरी चीज़ है। समझ में आया? वह अनन्त सत्तावाले तत्त्व और उन्हें जाननेवाली एक समय की पर्याय से भिन्न मेरा तत्त्व है। आहाहा!

अरे! परमेश्वर के मार्ग को तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने क्या कहा है, इसकी उसे खबर नहीं होती और यह कहे हमारे धर्म होता है, हमारे धर्म होता है। करो दया पालो और व्रत पालो और भक्ति करो, पूजा करो। आहाहा! अरे! भगवान! अभी एक समय की अस्तिवाले की कितनी सामर्थ्य है और पूर्ण की अस्तिवाले की कितनी सामर्थ्य है, ऐसे अस्तिवाले को भी माने नहीं और कहे कि उसे धर्म हो जाये। किस प्रकार उसे धर्म होगा? समझ में आया?

कहते हैं, **'स्वस्य स्वभावं भरात् आरूढः' 'आरूढः' 'भरात् आरूढः' अति ही प्रगाढ़रूप से प्रतीति करता है**। आरूढ़ हुआ अर्थात् प्रतीति की है, ऐसा। एक समय की पर्याय के ज्ञान में सब ज्ञात होता है, उसमें आरूढ़ नहीं। धर्मी की दृष्टि, धर्मी की धर्म दृष्टि अखण्ड ज्ञायकभाव ध्रुवस्वभाव में आरूढ़ अर्थात् दृष्टि वहाँ पड़ी है। एकरूप स्वभाव है, उसे वह स्वीकारता है। समझ में आया? एक समय की पर्याय और सब छह द्रव्य, जो ज्ञात होनेयोग्य पर्याय में जाने परन्तु दृष्टि में आरूढ़ एक स्वभाव पर है दृष्टि। आहाहा! कलश तो भी किये हैं न! समझ में आया?

मुमुक्षु : कलश तो किये हैं परन्तु इनकी व्याख्या करनेवाले वर्तमान में (आय) मिलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो इसमें है, वह आता है न! कहो, समझ में आया इसमें ?

कहते हैं **उसकी 'भरात्' अति ही प्रगाढ़रूप से प्रतीति करता है। और कैसा है ? 'परभावभावविरहव्यालोकनिःकम्पितः'** देखो! अब इसकी खास व्याख्या। परभाव से भिन्न हूँ, परभाव से भिन्न हूँ—ऐसा सम्यगदृष्टि मानता है। अब परभाव अर्थात् क्या और भिन्न अर्थात् क्या ?

समस्त ज्ञेय की अनेक शक्ति की आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान... यह परभाव। एक समय की ज्ञान अवस्था अनन्त भाव जो जगत के हैं, उन्हें जाननेरूप परिणमी है, वर्तमान एक समय की दशा। यह उसे परभाव कहा जाता है। त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से एक समय के अंश को परभाव कहा जाता है। भेद के अंश को परभाव, अभेद के अंश को स्वभाव (कहा जाता है)। जो बात पहले ली है, वह ठेठ (तक) निभायी है। समझ में आया ? छोटाभाई! आहाहा! पहले लिया है न ? स्वभाव का भेद करना, वह परभाव।

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध स्वभाव ध्रुव-ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड एक भाव, एक स्वभाव, हों! भाव अनन्त हैं परन्तु ऐसा एक भाव। उसके ऊपर आरूढ़ है अर्थात् दृष्टि वहाँ अपने पूर्ण भाव में प्रतीति में पड़ी है। इससे '**परभाव**' ऐसे **समस्त ज्ञेय की अनेक शक्ति की आकृतिरूप परिणमा है ज्ञान इसरूप मानता है जो ज्ञानवस्तु का अस्तित्व....** अज्ञानी उस रूप मानता है, वह ज्ञान। ऐसा वस्तु का तद्रूप। एक समय की पर्याय में वस्तु का तद्रूप पूरा मानता है। **तद्रूप विपरीत बुद्धि के त्याग से हुई है....** ऐसी विपरीत बुद्धि के त्याग से। क्या कहा ?

समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये ऐसा नहीं कहना। यह तो महँगा है, ऐसा कहने में इसकी जागृति के लिये कहा जाता है। न समझ में आये, यह बात नहीं है। भगवान आत्मा न जाने ? तीन काल, तीन लोक को हथेली में पर्याय में रखे ऐसा भगवान आत्मा, उसे न जाने ऐसा कैसे कहा जाये ? आहाहा! समझ में आया ? आत्मा मानो तेजहीन कर डाला। कहाँ गया इतना आत्मा ? जेचन्दभाई! बहुत कीमत बढ़ा दी,

ऐसा कहते हैं। कीमत बढ़ायी नहीं। है, ऐसी होती है। समझ में आया? कहते हैं... कनुभाई! यह समझ में आता है यह? यह कानून अलग प्रकार के हैं। ऐसा कभी सुना न हो, लो! कानून में आवे नहीं और उसमें भी सुनने में आवे नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है।

समस्त ज्ञेय की अनेक शक्ति... सब अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, उनका जो अनन्त भाव, केवली का अनन्त भाव, वीर्य का अनन्त भाव, सब अनन्त आत्माओं की शक्तिरूप सत्त्व का भाव, उसके जाननेरूप परिणमी है, ज्ञान की अवस्था। उसे जाननेरूप परिणमा है ज्ञान की वर्तमान दशारूप अंश। समझ में आया? **इसरूप मानता है जो ज्ञानवस्तु का अस्तित्व...** तद्‌रूप। ऐसा एक समय की पर्याय में पूरा तद्‌रूप, पूरा द्रव्य मानता है अज्ञानी। उससे '**विरह' तद्रूप विपरीत बुद्धि के त्याग से हुई है....** ऐसी विपरीत बुद्धि का त्याग। समय की अवस्था में छह द्रव्य ज्ञात हुए। ऐसे एक समय की अवस्था में सारा अस्तित्व तद्‌रूप मानता है, ऐसी बुद्धि का हुआ है त्याग। समझ में आया? क्या कहा? देखो न! उसमें है या नहीं? लिखा है इसमें। रुपये में कैसे ध्यान रखते हैं, वहाँ चारों ओर से?

समस्त ज्ञेय की शक्ति, अनेक शक्ति। रुपये भी शक्ति है, कहते हैं। लो! यह ज्ञान की पर्याय उसे जाने। उसे ऐसे-वैसे फेराफेर करे, यह कहते हैं वह ज्ञान की पर्याय का धर्म नहीं है, द्रव्य का तो धर्म नहीं (परन्तु) पर्याय का धर्म (भी) नहीं। अस्तित्व है उतनी शक्ति को जाननेरूप ज्ञान परिणमता है, बस! समझ में आया?

इसरूप मानता है जो ज्ञानवस्तु का अस्तित्व... अर्थात् तद्‌रूप, तद्‌रूप अर्थात् समझ में आया? अज्ञानी वस्तु के एक स्वभावरूप भाव को भिन्न न मानकर एक समय की पर्याय के परिणमन में पूरा तद्‌रूप मानता है। पूरे द्रव्य का रूप उसमें ही मानता है। समझ में आया? आहाहा! कैसी व्याया! परन्तु गजब, भाई! बहुत सरस बात है। आहाहा!

ज्ञानवस्तु का अस्तित्व अर्थात् पूरी चीज़ का अस्तित्व, ऐसा। **मानता है जो ज्ञानवस्तु का अस्तित्व...** तद्‌रूप। ज्ञान अर्थात् त्रिकाली। ज्ञान वस्तु अखण्ड पूर्ण वस्तु। उसे एक समय की ज्ञान की अवस्था में अनन्त ज्ञेयों की शक्ति को जानने की पर्याय,

उसके अन्दर में उस ज्ञान वस्तु को अस्तित्व तद्रूप आत्मा है, ऐसा मानता है, वह विपरीत बुद्धि और मिथ्यात्वबुद्धि है। उसका '**विरह**' है। आहाहा!

तद्रूप विपरीत बुद्धि के त्याग से हुई है.... '**व्यालोक**' यह अन्तर द्रव्य को देखने की दृष्टि। समझ में आया? एक समय के ज्ञान की पर्याय से पूरे द्रव्य को उसमें माननेवाला, ऐसी जो विपरीत बुद्धि, उसका हुआ है अभाव। इससे पूरे द्रव्यस्वभाव को देखने की प्रगटी है दृष्टि। समझ में आया? **सांची दृष्टि...** वापस, हों! '**व्यालोक**' है न? विशेष। **उससे हुआ है, 'निष्कम्पितः' 'निष्कम्पितः' साक्षात् अमिट (अटल) अनुभव जिसको ऐसा है...** बदले नहीं, ऐसी स्वभाव की—द्रव्य की दृढ़ता उसे हुई है। वस्तु अखण्डानन्द एकरूप सवभाव मेरा है, ऐसी सम्यग्दर्शन में पूरे स्वरूप की निष्कम्प प्रतीति हुई है। एक समय की पर्याय है, वह जाननेयोग्य रह गयी। वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं रही। आदरनेयोग्य तो एक समय का त्रिकाल ज्ञायक ध्रुव भाव, एकरूप। उत्पाद-व्यय की पर्याय बिना का जो एक भाव। आहाहा!

ज्ञान के उत्पाद की पर्याय में पूरा द्रव्य का तद्रूप जिसने माना है। समझ में आया? भगवान पूरा, ध्रुव वस्तु, उसका एक समय का ज्ञान का उत्पाद अर्थात् पर्याय जो छह द्रव्य को जानने की जो उत्पाद पर्याय, उतने में पूरा अस्तित्व तद्रूप—उसरूप हूँ, ऐसा माना है, पर्यायरूप से माना है या पूरे द्रव्यरूप से (माना), उसकी छूटी है बुद्धि। विरह पड़ा है उस बुद्धि का। आहाहा! समझ में आया? वह बुद्धि छूटकर द्रव्यस्वभाव पर आरूढ़ हुई है। कैसी? '**निष्कम्पितः**' हटे नहीं ऐसी। समझ में आया? ज्ञायकभाव वस्तु स्वभाव, एकरूप भाव। साक्षात् अमिट अनुभव। स्वसंवेदन में साक्षात् अमिट भाव—वस्तु यह है, ऐसा अमिट श्रद्धा-ज्ञान हुए हैं। **ऐसा है स्याद्वादी**। ऐसा सम्यग्दृष्टि है, ऐसा धर्मी है, ऐसा अनेकान्त अमृत का अनुभव करनेवाला धर्मी है। आहाहा! गजब बात ली, भाई! समझ में आया? लो, यह कितने बोल? १४, उनमें बारह हुए। दो रहे। अब वह तो नित्य और अनित्य के दो रहे। पहले जो थे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव की अस्ति। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव की नास्ति। समझ में आया?

अब आठ (बोल का) जरा सा वापस संक्षिप्त लेते हैं। वस्तु द्रव्य जो है त्रिकाल

एकरूप भाव, वह स्वद्रव्य। और एक समय की पर्याय में दूसरे सभी द्रव्य ज्ञात होते हैं, वह एक समय की पर्याय, वह परद्रव्य है। उस परद्रव्य में स्वद्रव्य की अस्ति मानता है, वह मिथ्यात्व। स्वद्रव्य में स्वद्रव्य है, और एक समय का अस्तित्व परद्रव्य का, वह जो पर्याय (वह) इसमें नहीं। समझ में आया? यह स्वद्रव्य की अस्ति और परद्रव्य की नास्ति (हुई)।

अब स्वक्षेत्र की अस्ति और परक्षेत्र की नास्ति। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी एकरूप क्षेत्र जिसका। असंख्य, ऐसा भेद भी नहीं। उसका पूरा क्षेत्र एकरूप क्षेत्र, एकरूप अभेद वह स्वक्षेत्र। और एक समय की ज्ञान की पर्याय में अनन्त जगत के क्षेत्रों के प्रदेशों के पुंज का ज्ञान परिणमे, जाननेरूप ज्ञान की पर्याय परिणमे, वह परक्षेत्र। उस परक्षेत्र में इस स्वक्षेत्र की नास्ति और स्वक्षेत्र में उस परक्षेत्र की नास्ति। गजब बात!

त्रिकाल ज्ञायक पिण्ड प्रभु! त्रिकाल का पिण्ड एक आत्मा, वह स्वकाल। एक समय की अवस्था, वह परकाल। जिस पर्याय में पर का—पर के काल का अवलम्बन वर्ते, उसमें जानने की पर्याय वर्ते, उतना परकाल। पूरा भगवान त्रिकाल एकरूप है, वह स्वकाल। उस स्वकाल में परकाल की नास्ति और परकाल की स्वकाल में नास्ति। समझ में आया?

अब आया भाव। एकरूप त्रिकाल भाव, वह स्वभाव भाव। अनन्त भाव को जानने को परिणमित एक समय की पर्याय, वह परभाव। ऐई! रतिभाई! समझ में आया? एक समय की पर्याय परभाव, उसमें त्रिकाल भाव की नास्ति। एक स्वभाव त्रिकालभाव में एक समय के परभाव की यहाँ नास्ति। ऐसे अस्ति-नास्ति के चार से आठ बोल इसमें उतारे हैं। समझ में आया? अब यह दो बोल रहे—नित्य और अनित्य। यह तो विस्तार आ गया है, हों! यह तो थोड़ा ऊपर से कहा। आहाहा! अब यह १३वाँ बोल नित्य का है, नित्य का। अज्ञानी अकेले अनित्य को मानता है और नित्य को मानता नहीं। ज्ञानी नित्य को मानकर अनित्य की पर्याय की जानता है। समझ में आया?

कलश - २६०

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ।।१४-२६०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि ऐसा है जो वस्तु को पर्यायमात्र मानता है; इसलिए, अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमता है ज्ञान, उसका होता है प्रति समय उत्पाद-व्यय; इसलिए पर्याय का विनाश होने पर, जीवद्रव्य का विनाश मानता है। उसके प्रति स्याद्वादी ऐसा समाधान करता है कि, पर्यायरूप से देखने पर, जीववस्तु उपजती है, विनष्ट होती है; द्रव्यरूप से देखने पर, जीव सदा शाश्वत है। ऐसा कहते हैं— 'पशुः नश्यति' [पशुः] एकान्तवादी जीव, [नश्यति] शुद्धजीववस्तु को साधने से भ्रष्ट है। कैसा है एकान्तवादी? 'प्रायः क्षणभंगसंग-पतितः' [प्रायः] एकान्तरूप से [क्षणभंग] प्रति समय होनेवाले, पर्याय में विनाश से, [संगपतितः] उस पर्याय के साथ-साथ, वस्तु का विनाश मानता है। किस कारण से? 'प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद्ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्' [प्रादुर्भाव] उत्पाद, [विराम] विनाश से [मुद्रित] संयुक्त [वहत्] प्रवाहरूप जो [ज्ञानांश] ज्ञानगुण के अविभागप्रतिच्छेद, उनके कारण हुए, [नानात्मना] अनेक अवस्थाभेद के [निर्ज्ञानात्] जानपने के कारण। ऐसा है एकान्तवादी। उसके प्रति स्याद्वादी प्रतिबोधता है— 'तु स्याद्वादी जीवति' [तु] जिस प्रकार एकान्तवादी कहता है, उस प्रकार एकान्तपना नहीं है। [स्याद्वादी] अनेकान्तवादी, [जीवति] वस्तु को साधने के लिए समर्थ है। कैसा है स्याद्वादी? 'चिद्वस्तु नित्योदितं परिमृशन्' [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीववस्तु को, [नित्योदितं] सर्व काल शाश्वत, ऐसा [परिमृशन्] प्रत्यक्षरूप से आस्वादरूप अनुभवता हुआ। किस रूप से? 'चिदात्मना' ज्ञानस्वरूप है जीववस्तु, उसरूप से। और कैसा है स्याद्वादी? 'टंकोत्कीर्ण-घनस्वभावमहिमाानं भवन्' [टंकोत्कीर्ण] सर्व काल एकरूप, ऐसे [घनस्वभाव] अमिट लक्षण से है [महिमा] प्रसिद्धि जिसकी, ऐसी [ज्ञान] जीववस्तु को [भवन्] आप अनुभवता हुआ।।१४-२६०।।

कलश - २६० पर प्रवचन

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ।।१४-२६०।।

उसमें '**नश्यति**' (था) और यह '**जीवति**'। '**पशुः नश्यति**' अनेकान्त '**जीवति**'। एकान्ती नाश पाता है, अनेकान्ती जीता है।

भावार्थ इस प्रकार है कि.... अर्थ बाद में आयेगा। इसमें क्या कहना है, उसका जरा सरल कहकर फिर शुरुआत करे, इसलिए उसे भावार्थ कहा गया है। फिर वापस समझे नहीं '**पशुः नश्यति**' क्या कहते हैं? देख भाई! इसमें यह आयेगा, ऐसा पहले शीर्षक मैं उपोद्घात करके यह कहेंगे। समझ में आया? नाटक में ऐसा होता है। पहले बात बोले अन्दर से कि यह भर्तृहरि, पिंगला अमुक आयेगा, यह पार्ट आयेगा, ऐसा नहीं बोलते? फिर आवे पार्ट में।

कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि.... अर्थात् कि वास्तविक पदार्थ के स्वरूप को न जाननेवाला और वस्तु के दो पक्ष हैं —नित्य और अनित्य, (उसे न जाननेवाला)। वस्तु नित्य भी है अखण्ड प्रवाह धारा से और पर्याय में उत्पाद भी है, उत्पाद-व्यय भी है। वस्तु है अखण्ड धारारूप रहनेवाली नित्य और पर्याय में प्रवाहरूप से उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय प्रवाहरूप से (चला करता है), वह भी है। उसमें भी एक प्रवाह को ही—एक उत्पाद को ही माननेवाला और ध्रुव त्रिकाल नित्य को नहीं माननेवाला एकान्ती कैसा है, उसकी व्याख्या चलती है। व्याख्या यह है, व्याख्या यह नित्य की, परन्तु इसके सामने अनित्य माननेवाला (कैसा है) उसकी व्याख्या करते हैं।

जो वस्तु को पर्यायमात्र मानता है;.... समझ में आया? वस्तु को अनित्य मानता है, अनित्य मानता है। **द्रव्यरूप नहीं मानता;....** नित्य नहीं मानता। वस्तु को उसकी पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... अनित्य ऐसा मानता है

परन्तु द्रव्यरूप मानता नहीं। त्रिकाल एकरूप एक धारावाही है, उसे अज्ञानी मानता नहीं। **इसलिए अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमता है ज्ञान,...** कैसी चीज़ है आत्मा? कि **अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमता है ज्ञान,...** वस्तु रहकर, वस्तु नित्य रहकर, अखण्ड रहकर **धाराप्रवाहरूप परिणमता है ज्ञान, उसका होता है प्रति समय उत्पाद-व्यय;...** वस्तु ज्ञायकपना कायम रहकर, उसकी पर्याय में उत्पाद-व्यय होता है। नयी-नयी अवस्था उपजना और पुरानी अवस्था का नाश होना।

यह तीन अंश 'उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्' इनमें उत्पाद-व्यय को मानता है और वस्तु को मानता नहीं। नित्य वस्तु है, ध्रुव ज्ञायकमात्र वस्तु है। समय-समय की पर्याय इतना। यह बौद्ध आदि मानते हैं न? बौद्ध आदि तो दृष्टान्त है। एक-एक समय की पर्याय पर जिसकी दृष्टि है और इतने में मैं पूरा खिंच गया हूँ, एक समय की उत्पाद पर्याय में पूरा खिंच जाता हूँ, ऐसा माननेवाला पूरे द्रव्य को नित्य ध्रुव को जानता नहीं। समझ में आया? समय की पर्याय जहाँ पलटी तो मैं पूरा गया। नयी उत्पन्न हुई तो पूरा नया उत्पन्न हुआ। परन्तु वह पर्याय है और द्रव्य तो त्रिकाल ऐसा का ऐसा है। वह अज्ञानी द्रव्य को मानता नहीं।

उसका होता है प्रति समय उत्पाद-व्यय;... देखो! प्रतिसमय—प्रत्येक क्षण में उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय होता है। वह भी प्रवाहरूप से होता है। एकरूप, हों! आड़ा-टेढ़ा नहीं, धाराप्रवाहरूप। वस्तु है एकरूप धारा द्रव्य, उसकी पर्याय धाराप्रवाह एकरूप ऐसे चलती है। अखण्ड उत्पाद.... उत्पाद... उत्पाद... पूर्व का व्यय, नया उत्पाद, पूर्व का व्यय, नया उत्पाद। **इसलिए पर्याय का विनाश होने पर,....** एक समय की अवस्था का नाश होने से **जीवद्रव्य का विनाश मानता है**। शरीर का नाश होने से मैं नाश (हुआ, ऐसा मानता है) वह तो महामूढ़ है, कहते हैं। शरीर का नाश होने से मेरा नाश हो गया, (ऐसा मानता है, वह तो मूढ़ है)।

मुमुक्षु : शरीर की चिन्ता तो होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी चिन्ता? धूल की? शरीर रहना, न रहना क्या इसके आत्मा के अधिकार में है? वह तो उसकी पर्याय के आधार से उसकी उत्पाद पर्याय

जैसी होने की उस कारण से हुआ करती है। क्या आत्मा के अधिकार में है? दवा और डॉक्टर वहाँ दशा डालते होंगे उसमें? धर्मचन्दजी! नहीं? इस शरीर की पर्याय ऐसे ढीली हो जाये। वहाँ मैं भी ढीला पड़ गया। यह तो महामूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया? एकत्वबुद्धि है, वही कहते हैं मूढ़ है, कहते हैं वह। कोई परमाणु उसके कारण से परिणमे उसमें तू अधिकार करने कहाँ गया? ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं?

इसलिए पर्याय का विनाश होने पर, जीवद्रव्य का विनाश मानता है। एक इसका अर्थ इतना कि एक तो शरीर का—पर्याय का नाश होने से, मेरी पर्याय, मैं नाश होता हूँ, वह तो मूर्ख/मूढ़ है, परन्तु एक समय की प्रवाह की पर्याय है, अन्दर पलटने की दशा, वह दशा गयी न, इसलिए मैं भी पूरा इकट्ठा (चला गया)। पूरा द्रव्य जीव पूरा ध्रुव है, वह भी उसमें नाश पा जाता है, ऐसा माननेवाला एकान्त अवस्था को माननेवाला पर्यायबुद्धि, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा!

कुछ तो हूंफ रहती होगी या नहीं पर के कारण? शरीर अच्छा हो... खाया जाये-पीया जाये... कौन खाये-पीवे? कहते हैं, शरीर की अवस्था के पलटने के कारण मैं साथ में पलट गया, ऐसा माननेवाले (को) शरीर के साथ एकत्वबुद्धि है। अजीव के साथ जीव की बुद्धि है, वह मिथ्यात्व है। क्या करना? किसकी बात चलती है यह? रखने के लिये चलती है या छोड़ने के लिये चलती है यह? रखकर तो पड़ा है, उसकी तो बात चलती है यह।

जो अपना नहीं, उसके साथ एकत्वबुद्धि, वह तो पापबुद्धि और दुःख के संयोग को संग्रहित करने जैसा है। जितने दुःख के संयोग हैं, उनसे अधिक दुःख के संयोगों को संग्रहित करने जैसा है। समझ में आया? क्योंकि जो वस्तु पर है, उसकी अवस्था में आत्मा एकत्व माने तो वह एकत्व है नहीं। है नहीं और माने तो मिथ्यात्वबुद्धि में उसे महान पाप लगता है। उस पाप के कारण फिर इतने प्रतिकूल संयोग आयेंगे। वहाँ और कहे कि, अरे! मैं घाता गया, वह घाता गया। अनुकूल आयेगा तो कहेगा, हाँ! अभी मुझे ठीक है। ऐसे परद्रव्य की पर्याय में, उत्पाद-व्यय में स्वयं खिंच जाता है।

यहाँ तो इससे दूसरी बात है। यहाँ तो उस समय की, एक समय की पर्याय जो

है, ऐसा जहाँ गया तो पूरा ध्रुव उसमें इकट्ठा गया, (ऐसा मानता है)। अपनी पर्याय, हों! पर्याय का विनाश होने पर, एक समय की आत्मा की अवस्था पलटने से जीवद्रव्य का विनाश (मानता है)। भाई! मेरी बुद्धि पहले काम करती थी, अब बुद्धि काम (नहीं करती)। मैं पूरा खो गया हूँ, बुद्धि अल्प काम करने लगे, वहाँ पूरा आत्मा गया—ऐसा मानता है। समझ में आया? हमारे जहाँ दिन थे न... ऐ... रतिभाई! वह जब वह क्या कहलाता है? गद्दी, गद्दी पर बैठा हो और दस, पाँच-पाँच लाख की आमदनी, दस-दस लाख की (होती हो)। जाओ, ऐसा करो, अमुक ऐसा करो। ओहो! हमारा समय था, भाई! यह अवसर याद आये, उसे स्वाद आता है। मूढ है। समय तेरा कब था? वह तो पर का था। कहो, ...भाई! आहाहा! उसे नहीं परन्तु उसे जानती पर्याय, उसे जानती पर्याय ऐसे बदली (वहाँ) पूरा मैं आत्मा ही बदल गया, पूरा आत्मा ही बदल गया। मेरा रूप बदल गया, सब बदल गया। बदले क्या परन्तु तू तो ध्रुव ऐसा का ऐसा है।

मुमुक्षु : मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है। एक समय की अवस्था बदलने से (मैं बदल गया)। ऐसे तो दुनिया ऐसा कहती है, भाई! यह पैसा और ऐसा नूर और तेज था इसका, यह सब नष्ट हो गये, ऐसा कहते हैं न? दूसरे भी कहते हैं। एक प्रकार के हैं सब! उसका तेज था। जब पैसे थे उसके पास न, यह स्त्री, पुत्र, परिवार, नौकर-चाकर, उनका तेज, वहाँ बैठे हों तो ऐसे, ऐसे गद्दी पर बैठा हो तो चिल्लाहट मचाये नौकर। सब बदल गया, नूर घात हो गया। क्या नूर घात हो गया? कहाँ गया नूर? तू तो अन्दर में है। बाहर के कारण कहाँ क्या घात हो गया? समझ में आया? मूढ़ उसे बदलने पर आत्मा बदल गया मानकर महा असत्य बुद्धि, सत्य बुद्धि का खून करनेवाला है, वह पापी दृष्टि है, वह दुःख के उपजने के (पंथ में) पाप उपार्जित किये, वह दुःख को ओढ़ लेता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? **जीवद्रव्य का विनाश मानता है।**

उसके प्रति स्याद्वादी ऐसा समाधान करता है कि, पर्यायरूप से देखने पर, जीववस्तु उपजती है, विनष्ट होती है;.... एक समय की अवस्था से देखें तो आत्मा पदार्थ नयी अवस्था से उपजता है अन्दर ज्ञान अवस्था, दर्शन अवस्था इत्यादि, हों! और

विनशता है। पर्याय में—अवस्था में बदले। पहली अवस्था, वह दूसरे समय में नाश हो। **द्रव्यरूप से देखने पर, जीव सदा शाश्वत् है।** वस्तु से देखें तो द्रव्य ऐसा का ऐसा त्रिकाल... त्रिकाल सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... है, शाश्वत् है, वस्तुरूप से सत् है और शाश्वत् है। पर्यायरूप से, अवस्थारूप से देखो तो बदलता है। दोनोंरूप से आत्मा है। समझ में आया?

ऐसा कहते हैं... 'पशुः नश्यति' अब आया। इतना कहना है, ऐसा करके वहाँ उपोद्घात बाँधा। **एकान्तवादी जीव,... 'पशु'** अर्थात् ढोर जैसा एकान्तवादी। वह पर्याय नाश होने पर मैं नाश हुआ, आत्मा की अवस्था बदलने पर पूरा ध्रुव नाश हो गया—ऐसा माननेवाला पशु एकान्तवादी, अज्ञानी है। समझ में आया? वह पर्याय की लहर में बह गया। पर्याय की लहर उठी न, उसमें पूरा समुद्र बह गया, ऐसा मानता है। पूरा ध्रुव चैतन्य पड़ा है महासत्ता, उसे—द्रव्य को मानता नहीं। **एकान्तवादी जीव, शुद्धजीववस्तु को साधने से भ्रष्ट है।** भगवान शुद्ध द्रव्य वस्तु त्रिकाल है। एक समय की पर्याय बदलने से मैं बदल गया माननेवाला, शुद्ध द्रव्य वस्तु ऐसी की ऐसी है, उसे नहीं साध सकता। उसे आत्मा की श्रद्धा में नहीं ले सकता।

कैसा है एकान्तवादी? 'प्रायः क्षणभंगसंगपतितः' 'प्रायः क्षणभंगसंगपतितः' 'प्रायः' अर्थात् **एकान्तरूप से....** क्योंकि सर्वथा तो कहीं नाश (होता नहीं)। पर्याय में पर्याय नाश होती है, ऐसा मानता है न? इसलिए **'प्रायः'** का अर्थ **एकान्तरूप से...** किया। **प्रति समय होनेवाले, पर्याय में...** प्रत्येक समय अवस्था होती है। ज्ञान की, श्रद्धा की, चारित्र की, अस्तित्व की, वस्तुत्व की, प्रमेयत्व की, सब गुणों की (अवस्था होती है)। वह **'प्रायः'** प्रतिसमय, प्रत्येक समय में होनेवाली पर्याय। देखो! अर्थ कैसा किया है? क्षणभंग का अर्थ—प्रत्येक प्रतिसमय अर्थात् प्रत्येक समय होनेवाली पर्याय। जिस समय में जो होनेवाली पर्याय है, उस समय में उसकी समय की पर्याय, उसके काल की पर्याय। समझ में आया? उस द्रव्य में उसके समय में जो प्रत्येक समय। प्रतिसमय अर्थात् प्रत्येक समय में होनेवाली **पर्याय में विनाश से, 'संगपतितः' उस पर्याय के साथ...** साथ अर्थात् संग, पतित अर्थात् वस्तु का नाश मानता है। समझ में आया? शब्द बहुत स्पष्ट अर्थ है। पुस्तक तो बहुत सरल बाहर आ गयी है। समझ में आया? वाँचना

चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए। ऐसे के ऐसे रखी है पुस्तकें तो वस्तु का स्वरूप क्या है, वह जानने को मिले। पढ़ना नहीं, करना नहीं (और) घर की पुस्तकें जाँचना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु थोड़ा-थोड़ा... तो पहले परिचय करना। परिचय करना। समझने के लिये पढ़ने जाता है या नहीं अन्यत्र? समझ में आया? सीधी वस्तु वह है परन्तु अब तो उसे सीधा हो गया है। दूसरी पुस्तकें इतनी सब बाहर प्रकाशित हुई है न, उसके कारण भी इसका क्या अर्थ है, यह समझा जा सकता है। कितना ही सूक्ष्म अर्थ है, वह फिर (न समझ में आये)। समझ में आया? पुस्तक लेकर घर में रख रखी है या पढ़ते हैं उसमें? रतिभाई! पढ़ते हैं?

प्रतिसमय होनेवाली पर्याय में। प्रत्येक समय में आत्मा में अवस्था होती है। सोना, सोनारूप से कायम रहकर कुण्डल, अँगूठी, कड़े इत्यादि उसमें अवस्था होती है, वह अवस्था है। सोना सोनेरूप से रहा है। सोना रहकर अवस्था होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा कायम ध्रुव रहकर उसकी पर्याय में अवस्था बदला करती है। ऐसा उसका पर्याय का स्वभाव है, अवस्था का स्वभाव है।

इस पर्याय के विनाश से '**क्षणभंग**' शब्द प्रयोग किया है न? '**प्रायः क्षणभंग**' बहुलता से, एकान्तरूप से '**क्षणभंग**' एक समय की पर्याय का भंग होने से, ऐसा। क्षण अर्थात् प्रतिसमय। भंग अर्थात् विनाश, ऐसा। '**क्षणभंग**' एक समय के क्षण में भंग अर्थात् उत्पन्न हुई पर्याय का विनाश। उसके '**संगपतितः' उस पर्याय के साथ-साथ, वस्तु का विनाश मानता है**। उस पर्याय के संग से। उसके लक्ष्य में पर्याय है न? उसके संग से स्वयं नाश हो जाये, ऐसा मानता है। वह पर्याय गयी, वह यह गयी, मैं भी गया। त्रिकाल द्रव्य वस्तु ध्रुव है, उसकी दृष्टि करता नहीं। समझ में आया?

'**संगपतितः**' अर्थात् उसके ऊपर ही अकेली रुचि है। एक अंश के ऊपर ही, वह अंश पर्याय के ऊपर ही उसकी रुचि—संग है। एक समय की अवस्था पलटने से दूसरी हुई, अर्थात् पलटने से '**क्षणभंग**' उस समय में मेरा भी नाश हो गया, ऐसा संग में विनाश मानता है। **किस कारण से?** किसलिए यह मानता है?

'**प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद्ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्**' देखो! '**प्रादुर्भाव**' अर्थात् **उत्पाद...** आत्मा में एक समय की अवस्था का उत्पाद। अनन्त गुण की, हों! '**विराम**', '**विराम**'—व्यय, **विनाश से...** एक समय में अनन्त गुण की एक समय की पर्याय में प्रादुर्भाव—उत्पन्न होना, प्रगट होना। विराम पाना—पहले की अवस्था का विराम, विनाश होना। एक ही समय में। समझ में आया? पूर्व के विचार का विनाश और नये विचार की उत्पत्ति, वस्तु ध्रुव तो कायम है।

ऐसे उतपाद और व्यय की '**मुद्रित**' है, मुद्रित है—उसकी वह मुद्रा है। **संयुक्त प्रवाहरूप जो...** उत्पाद-व्यय, उत्पन्न होना और विराम पाना, वह तो उसकी पर्याय का मुद्रा—धर्म है। उसका ऐसा स्वभाव पर्याय का है। प्रवाहरूप है। संयुक्त। '**वहत**' '**मुद्रित**' ऐसा प्रवाहरूप। '**ज्ञानांश**' **ज्ञानगुण के अविभागप्रतिच्छेद, उनके कारण हुए,....** ज्ञान का एक समय का अंश, एक समय की पर्याय। **अविभागप्रतिच्छेद, उनके कारण हुए,....** वर्तमान अवस्था। अवस्था को अविभागप्रतिच्छेद कहा जाता है।

ज्ञान की एक समय की अवस्था उत्पन्न होती है, विनाश होती है, ऐसी जिसकी मुद्रा-छाप है, ऐसा जिसका पर्याय का धर्म है, उसमें स्वयं बह जाता है, ऐसा जो पर्याय का प्रवाह बहता है, उसे ही अपना पूरा स्वरूप मानता है। अर्थात् पर्याय में ही मैं चला गया।

'**नानात्मना**' **अनेक अवस्थाभेद के जानपने के कारण**। अनेक अवस्था भेद के कारण से विनाश हो गया, ऐसा मानता है। ऐसा कहा न? किस कारण से—ऐसा कहा था न? पर्याय के साथ-साथ मानो मेरा नाश हो गया, अनेक गुण के अंशों का अनेक अवस्था के भेद से मैं भी नाश हो गया, ऐसा एकान्त अज्ञानी पर्याय को माननेवाला वस्तु को नहीं मानता। वह पर्याय के साथ स्वयं नाश हो जाता है, ऐसा मानता है। **ऐसा है एकान्तवादी। उसके प्रति स्याद्वादी प्रतिबोधता है....** लो! उसे अनेकान्तवादी कहता है कि तू कहता है, ऐसा नहीं है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०३, शनिवार, दिनांक-२५-१२-१९६५, कलश-२६०-२६१, प्रवचन-२८०

स्याद्वाद अधिकार, कलश १४वाँ चलता है। यहाँ तक आया है, देखो! पाँचवीं लाईन है। **ऐसा है एकान्तवादी। उसके प्रति स्याद्वादी प्रतिबोधता है...** कैसा है एकान्तवादी? क्या कहा कल? कि, यह आत्मा है, वह द्रव्यरूप से ध्रुव है परन्तु पर्यायरूप से उत्पाद-व्यय उसमें होता है। नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था व्यय हो, वह उसका अपना पर्याय का स्वरूप ही है। उसे अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया? अर्थात् कि वह पर्याय इतना ही आत्मा है, ऐसा मानता है। वह पर्याय के उत्पाद में—भंग में समय की प्रतीति में स्वयं नाश हो गया। अज्ञानी ऐसा ही पूरे द्रव्य का नाश मानता है।

उत्पाद, विनाश से संयुक्त प्रवाहरूप जो ज्ञानगुण के.... अंशों का अवस्था भेद से जानपना है, उसे वह नहीं मानता। अर्थात् कि उसमें इतने में ही पूरा आत्मा है, ऐसा मानता है। मेरी इतनी पर्याय है। मैं द्रव्य त्रिकाल भिन्न हूँ, ऐसा न मानकर द्रव्य को ही उतने में समाहित कर दिया है, विशेष में द्रव्य को सामान्य कर डाला है। अज्ञानी ने एक समय की अवस्था में पूरा द्रव्य समा जाता है, ऐसा है एकान्तवादी, उसे स्याद्वादी प्रतिबोधता है।

'तु स्याद्वादी जीवति' जिस प्रकार एकान्तवादी कहता है,.... इस प्रकार से वस्तु का स्वरूप नहीं। एक समय की पर्याय जितना स्वरूप नहीं। वह तो त्रिकाल द्रवय स्वभाव ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... त्रिकाल है। एक समय की पर्याय नाश होने से कहीं वस्तु नाश नहीं होती। पर्याय से अवस्था बदली है, वस्तु तो ऐसी की ऐसी ध्रुव अनन्त अनादि-अनन्त ध्रुव है। देखो! यह एक एक आत्मा की बात चलती है, हों! जगत के सभी पदार्थ इस प्रकार से है परन्तु यहाँ तो आत्मा की बात है।

वस्तु को साधने के लिए समर्थ है। 'जीवति' की व्याख्या की। धर्मी जीव अपनी वर्तमान अवस्था में बदलना, उपजना होने पर भी वस्तु त्रिकाल द्रव्य वस्तु, वह द्रव्य से त्रिकाल है, ऐसा अपनी वस्तु को श्रद्धा-ज्ञान द्वारा पूर्ण द्रव्य है, ऐसा साध सकता है। समझ में आया? अज्ञानी एक समय जितनी पर्याय मानकर वस्तु के स्वरूप का अनुभव और आनन्द नहीं ले सकता। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुनना, समझने की क्रिया नहीं? यह सुनना किसलिए? समझने की क्रिया एक समय की अवस्था है, इतना मैं नहीं, मैं त्रिकाल ज्ञायक ध्रुव द्रव्य स्वभाव हूँ। ऐसा अन्तर्मुख होकर निर्णय श्रद्धा, ज्ञान का निर्णय करके अनुभव करना, वह उसकी—धर्मी की क्रिया है। जुगराजजी! दूसरे की ओर से यह पूछते हैं। हमारे दलाल हैं, दलाल। कहो, समझ में आया? इसमें क्रिया क्या परन्तु ऐसा सुन-सुनकर? परन्तु यों ही भी क्रिया करता है क्या यह? यह क्या करता है? राग और द्वेष, पुण्य और पाप और पूर्ण स्वरूप मैं नहीं, ऐसा अज्ञान। समझ में आया? यह करता क्या है? धन्धा-बन्धा की क्रिया यह करता नहीं, व्यवस्था करता नहीं यहाँ वह तो बात चलती है। सवेरे बहुत चला।

जगत के सभी पदार्थ इस आत्मा के लिये ज्ञेय अर्थात् जाननेयोग्य हैं। उसे आत्मा उसका कुछ करे या उससे आत्मा में कुछ हो, ऐसा वस्तु की स्थिति में नहीं है। अब यह क्या करता है अनादि से? यह पर मेरे, मैं इनका, एक समय की अवस्था में जो रागादि होते हैं, वे भी मेरे, मैं उनका और पूर्णानन्दस्वभाव ध्रुव है, उसे यह मानता नहीं। ऐसी श्रद्धा में राग-द्वेष और विकार को करे और विकार को भोगे। अनादि से एक प्रकार का ही कर रहा है। यह क्रिया कर रहा है। बराबर है? क्या किया तुमने अभी तक?

चिदानन्द आत्मा एक समय में पूर्णानन्द की मूर्ति है और एक समय की पर्याय में उसका अनुभव हो सकता है। ऐसा न मानकर उसने परवस्तु मेरी, मैं उसका और आत्मा की पर्याय में पुण्य और पाप के विकार हों, वह भी मेरी त्रिकाली चीज़ है, मेरा स्वरूप है—ऐसी भ्रान्ति करके राग-द्वेष किये और भ्रमणा करके हर्ष और शोक को इसने भोगा है। इसके अतिरिक्त एक तिनका भी अनन्त काल में तोड़ नहीं सका। कहो, बराबर होगा यह? यह सब धन्धा उथल-पुथल करते हैं न सब? लोहे के... ऐ... कालीदासभाई! यह लोहे का धन्धा करते हैं। यह मणिभाई मोटर का करते हैं। समझ में आया? ऐई! जेचन्दभाई! यह जेचन्दभाई वे पर की मोटरें चलाते और अमुक अमेरिका में गये और ढींकणा में गये, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी दौड़ाई नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि मूढ ने माना था। उसकी मान्यता में ऐसा माना था कि यह परद्रव्य की क्रिया की पर्याय मुझसे चलती है। मेरा ज्ञेय है, ऐसा न मानकर मुझसे चलती है, मैं इसका स्वामी हूँ, यह मेरे स्वाधीनरूप से काम इसमें हो रहे हैं, ऐसा अज्ञानी अपनी दशा में मिथ्याश्रद्धा से मानता था। और इसलिए उसे अनुकूल लगे, वहाँ राग और प्रतिकूल लगे वहाँ द्वेष करता था। बस! इसके अतिरिक्त इसने कभी निगोद से लेकर एकेन्द्रिय के जीव में से लेकर बड़ा बादशाह हुआ या नौवें ग्रैवेयक का देव हुआ, इतना इसने किया था। इसके अतिरिक्त कुछ एक फोदड़ी फिरा सका नहीं। आहाहा! और अनुभव किया हो, भोगा हो तो भी निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक (तक) हर्ष और शोक, राग और द्वेष का अनुभव किया है। इसके अतिरिक्त इसने कोई एक रजकण को, स्त्री और पैसे को भोगा हो, यह तीन काल में बनता नहीं। कहो, मलूकचन्दभाई!

मुमुक्षु : भोगना या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भोग सकता नहीं, फिर भोगना ? आकाश के फूल तोड़ना या नहीं धीरे-धीरे ? परन्तु आकाश को फूल ही नहीं होते। ऐसे अब भोगना या नहीं ? परन्तु भोग सकता भी नहीं। भोगने में उसकी पर्याय में राग और द्वेष, हर्ष और शोक, पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान—ऐसे जो भाव हों, उन्हें हर्ष-शोक से भोगे। बस! इसके अतिरिक्त कुछ भोग सकता है तीन काल-तीन लोक में (ऐसा नहीं है)। एक मौसम्बी के बिन्दु का स्वाद ले सके, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। तीन काल में वर्तमान आ गया होगा या नहीं ? ऐई! रतिभाई! तृषा लगे न ? तब मौसम्बी के पानी को भी आत्मा भोगे, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। तृषा लगी (और) इसे—इस पर्याय को भी भोगे, ऐसा भी नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। उसमें उसे होनेवाला हर्ष, जो ऐसे मौसम्बी का (पानी पीते हुए) हर्ष (होता है, उस) हर्ष को भोगता है। और या कोई कठिन कंकड़ और या प्रतिकूल गर्म पानी आया तो शोक को, खेद को (भोगा है)। बस! राग और द्वेष, राग और द्वेष, हर्ष और शोक के अतिरिक्त इसने कभी (कुछ)

किया और भोगा नहीं। सच्चा होगा यह? अब तुम सब उथल-पुथल करनेवाले हो। बड़े व्यापार के उथल-पुथल करनेवाले थे। तुम तो छोटी उम्र में से तीस वर्ष की उम्र में बड़े होशियार कहलाते थे। नेमिदास खुशालदास... नेमिदास खुशालदास... आहाहा! उसे तो विद्यालय से देखते हैं, लो! ७६। कितने वर्ष हुए? ४६। कहो, समझ में आया? यह कहा था।

यह बात एकान्त में हुई थी, यह एकान्त बात है कि या दो ब्रह्मचर्य और या साधुपना दो, दीक्षा दो। नहीं तो मैं ब्रह्मचर्य नहीं लूँगा। कहा, अपने दीक्षा नहीं देनेवाले हैं। यह बात हो गयी। दीक्षा नहीं देते। दीक्षा में मानते नहीं। उसे किस प्रकार कहना? साधु होऊँ या पैसेवाला होऊँ। दो में से एक होऊँ। कहो, समझ में आया? परन्तु क्या किया इसने बाद में भी? बाद में भी राग और द्वेष, पहले भी राग और द्वेष, कहो क्या किया परन्तु एकेन्द्रिय से लेकर बादशाह हुआ, कन्थवा से लेकर कुंजर-हाथी हुआ और नरक के निगोद के जीव से लेकर यहाँ सर्वार्थसिद्धि का देव हुआ। कहो! वह तो समकिती है, परन्तु उसने क्या किया? समझ में आया? यह राग और द्वेष। समकिती होगा तो आनन्द को भोगता है। बाकी इसके अतिरिक्त कोई दूसरी वहाँ की साहिबी को भोगता है, वह अज्ञानी और ज्ञानी, किसी को नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी अपने तत्त्व की त्रिकाल वस्तु की श्रद्धा नहीं करता, एक समय की अपनी अवस्था में पूरा तत्त्व समाहित हो जाता है और उसकी पर्याय जाने से पूरा तत्त्व उसकी संगति में पड़ी हुई श्रद्धा पूरे तत्त्व का नाश कर डालती है। श्रद्धा में। वस्तु में कहाँ होता है? श्रद्धा में ऐसा मानता है कि मैं त्रिकाल तत्त्व नहीं। एक समय जितना राग और द्वेष, पुण्य और पाप और अवस्था जितना मैं आत्मा हूँ। ऐसा करके त्रिकाल वस्तु को श्रद्धा से साध नहीं सकता, वह मिथ्यात्व को साधकर परिभ्रमण करता है।

अनेकान्तवादी, वस्तु को साधने के लिए समर्थ है। कैसा है स्याद्वादी? 'चिद्वस्तु नित्योदितं परिमृशन्' देखो! **ज्ञानमात्र जीववस्तु को,...** मैं तो ज्ञान चैतन्य ध्रुव नित्य हूँ, मेरा स्वभाव ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... प्रकाश चैतन्यमूर्ति। धर्मी क्या साधता है? धर्मी क्या करता है? अज्ञानी क्या करता है (यह पहले कहा)। अब धर्मी क्या

करता है, (यह कहते हैं)। मैं '**चिद्वस्तु नित्योदितं**' **ज्ञानमात्र भगवान आत्मा**... '**नित्योदितं**' **सर्वकाल शाश्वत्**... है। वस्तु सत्‌रूप ज्ञानमूर्ति प्रभु त्रिकाल शाश्वत् है, त्रिकाल ध्रुव है, त्रिकाल नित्य है। ऐसा का ऐसा ध्रुव भगवान सनातन सत्य ध्रुवरूप विराजता है। ऐसा धर्मी... समझ में आया? अपनी वर्तमान दशा में त्रिकाल द्रव्य को सिद्ध—निश्चित करता हुआ अपनी पर्याय में आनन्द को अनुभव करता है। समझ में आया? अज्ञानी क्या करता है? एक समय की पर्याय में राग-द्वेष, पुण्य-पाप करके उतना मैं हूँ—ऐसा मानकर मिथ्यात्व और राग-द्वेष को अनुभव करता हुआ वस्तु के स्वरूप को साध नहीं सकता था। समझ में आया? दृष्टि वहाँ एक समय की दशा पर। वहाँ राग और द्वेष, पुण्य और पाप माने। पश्चात् माने भले कि इसका किया और यह छोड़ा। परन्तु वह भाव, वह भाव। उस भाव को करता और उतना ही आत्मा मानता था। त्रिकाल द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा हूँ, यह वस्तु की दृष्टि करता नहीं था।

धर्मी जीव, धर्मी ऐसा वस्तु को सिद्ध और साध सकता है। मैं तो नित्य आनन्दकन्द ज्ञायक हूँ, ज्ञान ध्रुव वस्तु हूँ। एक समय की अवस्था में पलटना होने पर भी वस्तुरूप से ज्ञानमूर्ति चैतन्यसूर्य ध्रुव, ध्रुव है, नित्य है, कायम टिकता तत्त्व है। ऐसा '**सर्वकाल शाश्वत् ऐसी... 'परिमृशन्**', '**परिमृशन्**' त्रिकाल ध्रुव हूँ, ऐसा वर्तमान पर्याय में त्रिकाल ध्रुव हूँ, उसे अनुभव करे, वेदता है। '**परिमृशन्**' समस्त प्रकार से अनुभव करता है। '**परि**' का अर्थ समस्त न करके प्रत्यक्ष किया। विशिष्टता तो देखो इनकी! समझ में आया? '**परिमृशन्**' गजब परन्तु, शब्द भी। '**परि**' अर्थात् प्रत्यक्ष और '**मृशन्**' अर्थात् आस्वाद का अनुभव। भाषा देखा! भाषा। क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में उसकी वर्तमान अवस्था उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय (होता है)। नयी अवस्था बदलती है, पुरानी जाती है। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। शरीर, वाणी, मन, सब जड़ परपदार्थ पर हैं। उसकी दशा में अवस्था बदलती है। पूर्व की जाती है, उतना आत्मा हूँ, ऐसा धर्मी न मानकर, त्रिकाल ज्ञानमूर्ति आत्मा हूँ, ध्रुव हूँ, सच्चिदानन्द सत् चिदानन्दस्वरूप हूँ। ऐसे वस्तु को '**परिमृशन्**' समझ में आाय? '**परि**' अर्थात् समस्त प्रकार से अर्थात् कि प्रत्यक्षरूप से।

वह ज्ञानमूर्ति ध्रुव हूँ, ऐसा ज्ञान को प्रत्यक्षरूप से वेदकर, जानकर आस्वाद अर्थात् '**मृशन्**' उसका आनन्द का अनुभव लेता है। भाषा देखो इनकी! क्या कहा? समझ में आया?

'**चिद्वस्तु नित्योदितं परिमृशन्**' इतने शब्द में पूरा डाल दिया। धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव अर्थात् कि सत्य को साधनेवाला जीव, ऐसा साधता है कि मैं एक सेकेण्ड के असंख्य (वें) भाग में ध्रुव चिदानन्द ज्ञानमूर्ति हूँ। उस ज्ञानमूर्ति को '**परि**' अर्थात् प्रत्यक्षरूप से, समस्तपने का अर्थ कि राग और विकल्प के आश्रय बिना ऐसी चीज़ है, उसके आश्रय से पृथक् ज्ञान से '**मृशन्**' अर्थात् आत्मा आनन्द है, ऐसा उसे वेदता और अनुभव करता है। समझ में आया? ओहो! गजब अनेकान्त की व्याख्या! इसमें दोनों बोल आ गये हैं। क्या कहा? तीनों आये। क्या तीन आये?

यह ज्ञानमात्र जीववस्तु सर्व काल ध्रुव एक '**नित्योदितं**' नित्य उदय अर्थात् कायम ऐसा का ऐसा है। (यह एक हुआ)। '**परि**' अर्थात् ज्ञान को प्रत्यक्षरूप से आया, उसमें '**परि**' आया। वस्तु को प्रत्यक्षरूप से राग और विकल्प की अपेक्षा बिना ज्ञान को ज्ञान से जानकर '**मृशन्**' उस आनन्द का स्वाद लेता है। ज्ञान और आनन्द दोनों आ गये। गजब बात, भाई! समझ में आया?

एक समय में नित्य वस्तु प्रभु है। पर्याय भले एक समय की हो। वस्तु अनादि -अनन्त है। अकृत्रिम अकृत ध्रुव तत्त्व है। ऐसा भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से ध्रुव है, उसे धर्मी जीव धर्म करता है, अर्थात्? धर्म करना अर्थात्? कि जो वस्तु त्रिकाल ज्ञान है, उसके ऊपर दृष्टि करके, ज्ञान द्वारा ज्ञान की दृष्टि करके ज्ञान के साथ जो आनन्द है, उसे वेदता है, उसका नाम धर्मी धर्म कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया इसमें? एक शब्द में तो कितना रख दिया है।

भगवान ज्ञान प्रभु नित्य है, वह जानता है पर्याय से, इसलिए पर्याय भी ले ली। ज्ञान ध्रुव है, ऐसा लिया और उस ध्रुव को प्रत्यक्ष '**परि**' अर्थात् ज्ञान की पर्याय प्रत्यक्ष से। क्योंकि पूर्ण वस्तु है, पूरी वस्तु है, इसलिए उसे वेदने का ज्ञान भी प्रत्यक्ष पर के आश्रय बिना का है और उसके साथ '**मृशन्**' वह ज्ञान का अनुभव करता है। ज्ञान का

अनुभव अर्थात् आनन्द को वेदता है, आनन्द को आस्वादता है। कहो, रतिभाई! /धर्म कठिन, भाई! समझ में आया, यह क्या कहा?

मुमुक्षु : क्रिया कहाँ आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रिया आयी। क्या (आयी)? आहाहा! चिद्वस्तु नित्य उदय अर्थात् कायम ऐसी की ऐसी रहनेवाली। नित्य कहकर वहाँ काल डाला है। नित्य सर्व काल ऐसा का ऐसा रहनेवाला भगवान ज्ञानमूर्ति ध्रुव चैतन्यमूर्ति। उसकी एक समय की अवस्था उस ध्रुव को अवलम्बती ज्ञान की पर्याय को प्रत्यक्ष द्वारा उसे जानता और प्रत्यक्ष काल में ज्ञान में प्रत्यक्ष हुआ अर्थात् आनन्द का वेदन भी साथ में हुआ। ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञान को अन्दर में आनन्द का वेदन (हुआ) उसने ध्रुव को माना, उस वस्तु को, ध्रुव को साध सका। पर्याय में निर्मलता को, आनन्द को वेदते हुए और धर्म की दशा उसे पर्याय में प्रगट हुई। समझ में आया? कनुभाई! यह धर्म, देखो! ऐसा है धर्म। लॉजिक बहुत कठिन है यह। ऐ... प्रेमचन्दभाई! मेहनत करते हैं, कुछ मेहनत करते हैं। यह सब धर्म बाह्य से मनाया। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, जीवया बहुरिया तस्स मिच्छामी दुक्कडम्। धूल में भी नहीं, सुन न! यह जीव तो ज्ञान में जाननेयोग्य वस्तु है। समझ में आया?

वस्तु आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में ध्रुव और एक समय की दशा— यह दोनों होकर पूरा तत्त्व है। अब दो होकर पूरे तत्त्व में अज्ञानी को एक ही समय की पर्याय का तत्त्व माननेवाले ध्रुव को अवलम्बे बिना उसे ध्रुव की प्रतीति बिना उसे आनन्द और श्रद्धा नहीं हो सकती। समझ में आया? अर्थात् आनन्द को... समझ में आया? आनन्द का अनुभव और ध्रुव की श्रद्धा बिना आनन्द नहीं होता, तब क्या होता है? एक समय की दशा को आत्मा माननेवाले (को) होता क्या है? दुःख और राग-द्वेष होते हैं। यह उसके सामने डाला। यह कहा समझ में आया इसमें? अनित्यपने को अकेले को माननेवाला आत्मा अनित्यपना ऐसे राग-द्वेष और दुःख को वेदे और दुःख को ही अपना स्वरूप मानता है। समझ में आया?

एक समय की दशा उतना मैं, ऐसा माननेवाला ध्रुव को नहीं माननेवाला ध्रुव का

पूर्ण ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, उसका नहीं स्वीकार करनेवाला ध्रुव के पूर्ण ज्ञान और आनन्द का अनादर करके एक समय की पर्यायवाला माननेवाला आनन्द से उल्टी दशा दुःख और पूर्ण ज्ञान का अभाव, इसका नाम अन्दर अज्ञान अर्थात् मात्र पर को जानने का भाव, इतने को वेदे, वह दुःख को और राग-द्वेष को वेदता है। समझ में आया?

धर्मी जीव, वह धर्मी ऐसी जो त्रिकाल वस्तु, ज्ञानप्रकाश सूर्य ध्रुव। बस! यहाँ तो ज्ञान की चिद् वस्तु ली है। पश्चात् तो वेदन में आनन्द साथ में डाला परन्तु उसमें आनन्द साथ में ध्रुव में है। जैसा ज्ञान ध्रुव त्रिकाल आत्मा है, वैसा आनन्द भी त्रिकाल, त्रिकाल है। परन्तु ज्ञानप्रधान से आत्मा को ध्रुव नित्योदय शाश्वत् वर्णन किया है। उसे जिसने पर्याय में साधा, पर्याय जितना लक्ष्य नहीं, पर्याय में पर्याय जितना लक्ष्य नहीं। पर्याय जितना लक्ष्य नहीं अर्थात् पर का लक्ष्य नहीं। पर्याय जितना लक्ष्य छोड़कर त्रिकाल ध्रुव पर लक्ष्य और दृष्टि देने से जो ज्ञान का पर के ऊपर जो लक्ष्य था, वहाँ अकेला ज्ञान परोक्ष काम करता था तथा राग, द्वेष और दुःख को वेदता था। वह ज्ञायकमूर्ति ध्रुव को लक्ष्य में लेने से वह ज्ञान की पर्याय प्रत्यक्ष हुई और आनन्द का वेदन साथ में हुआ, इसका नाम '**परिमृशन्**'। भगवान आत्मा को ज्ञान द्वारा अनुभव किया, इसका नाम नित्य वस्तु को साधा, नित्य वस्तु का साधन किया। उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा जाता है। गजब बात, भाई! समझ में आया? अब ऐसा पकड़ में कैसे आये? बनिये को व्यापार (के कारण निवृत्ति नहीं है)। यह कपड़े का पोटला ऊँचा-नीचा करता था, उसमें यह बात क्या कहते हैं? अभी तो कहते हैं, वह पकड़ में आये नहीं। समझ में आया? और हमारी भूल कौन सी है, वह भूल भी पकड़ में आये नहीं। कहो, रतिभाई!

भूल में तेरी भूल इतनी कि त्रिकाली ध्रुव को न मानकर एक समय की अवस्था को मानने से उस अवस्था का लक्ष्य पर में जाये, इसलिए स्वयं को पररूप माना। अथवा एक अंश को पूरा माना, अर्थात् पर को अपना माना। पर को अपना माना अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष का लाभ हुआ। असत्य बुद्धि और राग-द्वेष का लाभ हुआ। यह उसका इसे वेदन अनादि से चला आता है। परन्तु एक समय में भगवान आत्मा

नित्यानन्द नित्य वस्तु है। सत्... सत्... सत... सत... सत... चिदानन्द। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का कन्द है। ऐसी ध्रुव वस्तु है, ऐसा वर्तमान दशा को इतना न मानकर उस दशा का लक्ष्य गया ध्रुव पर। त्रिकाल ध्रुव हूँ, ऐसे आत्मा में ध्रुवपने को ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करता हुआ, उसके आनन्द को वेदता है। उसने वस्तु को साधा और वर्तमान अवस्था में वेदन है, उस अवस्था को भी माना। समझ में आया? देखो! इसमें राग-द्वेष, बाग-द्वेष की कुछ बात नहीं। पर्याय में राग-द्वेष का अनुभव या राग-द्वेष ज्ञानी को है नहीं, उनका वेदन-बेदन नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी वस्तु शुद्ध द्रव्य है, उसका अन्दर ध्येय करके प्रतीति करने से पर्याय में उस ज्ञान का प्रत्यक्षपना हुआ और आनन्द की शक्ति में से व्यक्त की दशा प्रगट हुई। बस! उसने आत्मा को साधा। राग-बाग एक ओर रह गया, ववह ज्ञान का ज्ञेय रह गया। समझ में आया? ओहोहो! कोई भी बोल उठाओ, वीतराग के तत्त्व का कोई भी बोल उठाओ, वस्तु की वास्तविक सिद्धि सिद्ध हो जाती है। समझ में आया?

पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञान और आनन्द। वस्तु त्रिकाली ध्रुव। **किस रूप से?** किस प्रकार से वेदता है? '**चिदात्मना' ज्ञानस्वरूप है जीववस्तु, उसरूप से।** भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ध्रुव है। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... है, ऐसा वह साधता है। **और कैसा है स्याद्वादी? 'टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमानं भवन्'** ओहो! **सर्व काल एकरूप, ऐसे... 'टंकोत्कीर्ण'** का अर्थ किया। **सर्व काल एकरूप,...** वस्तु, वस्तु। ध्रुव लेनी है न यहाँ? नित्य वस्तु लेनी है न आत्मा? नित्य—सर्व काल एकरूप वस्तु। पर्याय में अनेकपना होता है। ध्रुव एकरूप वस्तु—**ऐसे 'घनस्वभाव' अमिट लक्षण से है.... 'घनस्वभाव'** अर्थात् **सर्व काल एकरूप, अमिट लक्षण...** न मिटे, ऐसा उसका नित्य ध्रुव लक्षण है। समझ में आया? आहा! भगवान आत्मा ध्रुव सत् चिद् का घन है। कहते हैं, **'घनस्वभाव' 'घनस्वभाव'** की व्याख्या यह—अमिट लक्षण, ऐसा। यह '**घनस्वभाव**' की व्याख्या। अमिट अर्थात् यह स्वभाव कभी मिटता नहीं। ऐसा उसका स्वभाव अर्थात् ऐसा उसका लक्षण, ऐसा। आहाहा! भाषा भी देखी!

टंकोत्कीर्ण घनस्वभाव। भगवान आत्मा एक समय में सर्व काल में एकरूप वस्तु

ऐसी की ऐसी ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... '**घनस्वभाव**' अर्थात् घन—न मिटे—ऐसी वस्तु। ऐसा स्वभाव अर्थात् लक्षण। यह धर्म कहा होगा? सच्ची बात, भाई! बनारसीदास (कहते हैं)। 'पांडे राजमल जैनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी' जो जहाँ चाहिए, वहाँ उसे वह लक्षण बताया। नहीं तो घन स्वभाव है पूर्ण स्वभाव है। घन—न मिटे ऐसा त्रिकाली स्वरूप ध्रुव। स्वभाव वही उसका ध्रुव, उसका स्वरूप वह उसका लक्षण है। समझ में आया?

'**महिमा**' 'प्रसिद्धि जिसकी'। समझ में आया? भगवान नित्य ध्रुव। धर्मी नित्य ध्रुव की दृष्टि करता हुआ घन अमिट जिसका नित्यपने का स्वभाव है, उसकी—वस्तु की जिसकी महिमा है, ऐसी जीववस्तु। देखो! ऐसी जीववस्तु। यहाँ तक वस्तु की व्याख्या है। आहाहा! समझ में आया? कैसी जीववस्तु? **सर्व काल एकरूप...** अमिट लक्षण अर्थात् घनस्वभाव अर्थात् वह है, ऐसा उसका लक्षण न मिटे ऐसा और त्रिकाल जिसकी प्रसिद्धि है। वह घन अमिट लक्षण, उससे जिसकी प्रसिद्धि है, ऐसी जीववस्तु, ध्रुववस्तु, कितने विशेषण? क्या कहते थे न सवेरे कुछ? विशेषण नहीं कहते थे? आहाहा! ऐसी जीववस्तु, यह ध्रुव। नित्य का बोल है न यह? नित्य का बोल है न? ऐसी जीववस्तु।

आप अनुभवता हुआ। यह पर्याय, यह पर्याय हुई। ऐसी वस्तु को ज्ञानी उसके ऊपर दृष्टि पड़ती वह स्वयं उस चीज़ को पर्याय में अनुभव करता है। समझ में आया? यहाँ तो जीववस्तु को अनुभवता है, ऐसा कहा। परन्तु इसका अर्थ कि ऐसी ध्रुव वस्तु है, उसे अनुभव करता है। पर्याय का अनुभव अकेला और यह रही वस्तु, ऐसा अनुभवता है। पर्याय में ऐसा जानकर, मानकर वेदन करता है, वह जीववस्तु को ही अनुभव किया ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक ही। यह सवेरे आत्मा कहा था और यह आत्मा एक होगा न? (ऐसा कहते हैं)। या अन्तर होगा? मलूकचन्दभाई! सवेरे आत्मा कहा था और यह आत्मा दूसरा होगा या एक होगा? सवेरे जो कहा था आत्मा, वह द्रव्यार्थिकनय से त्रिकाल ज्ञान और आनन्द का रूप जिसका, उसरूप परिणमन जिसका होता है ऐसा,

वह वस्तु ज्ञान और आनन्द पूर्ण है, उसका पूर्ण आनन्दरूप से परिणमन होना, वीतराग भावरूप से होना, उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

अभी भी ऐसा कहा कि नित्य माननेवाला, वस्तु को नित्य माननेवाला। मानना, वह पर्याय है; जानना, वह पर्याय है; अनुभव करना, वह पर्याय है परन्तु वह अनुभव करती है किसके लक्ष्य से? नित्य ध्रुव वस्तु वीतराग आनन्द से भरपूर पदार्थ की दृष्टि में ज्ञान की प्रत्यक्षता अमिट स्वभाववाला जो लक्षण जीववस्तु, उसे पर्याय 'यह आत्मा' ऐसा अनुभव करती है। अर्थात् अनुभव अर्थात् वीतरागी पर्याय हुई। वह आत्मा का अनुभव द्रव्यार्थिकनय से यह अनुभव कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है स्याद्वादी? अर्थात् कि कैसा है अनेकान्तवादी? अथवा कैसा है सर्वांगवादी? सर्वांगवादी, सर्व अंगों को माननेवाला। अनेकान्त अर्थात् सर्वांग। एकान्त अर्थात् एक पक्ष को माननेवाला। समझ में आया? क्या और समझ में आया इसमें? और सर्वांग से क्या कहा? पूरा द्रव्य द्रव्यरूप से है और समय की पर्यायरूप से सर्वांगी माननेवाला है। एक ही पर्याय को सर्वांग और सर्वांग माननेवाला नहीं। एक ही पर्याय सर्वांग पूरा स्वरूप नहीं है। एक अंश जो असर्वांग है, वह पूर्ण सर्वांग नहीं है। उसे ऐसा सर्वांगरूप से माननेवाला वह मिथ्यादृष्टि एकान्ती कहा जाता है। सर्वांगी को सर्वांगरूप से पूर्ण ध्रुव और उसकी पर्याय का अनुभव में माननेवाला सर्वांगी, उसे अनेकान्तवादी, उसे सम्यग्दृष्टि स्याद्वादी कहा जाता है। आहा! कहो, कनुभाई! तुम्हारे कायदा-बायदा में ऐसा कुछ नहीं आता होगा। है यह? .... कठिन बात, भाई! उसके शब्द के अर्थ में ही एक तो खुमारी चढ़ जाये ऐसा है। ऐसा जो इन्होंने अर्थ किया है, हों! यह नित्य का बोल हुआ, ठीक! समझ में आया?

अब चौदहवाँ अन्तिम एक अनित्य का (बोल) रहा। अब अनित्य को सिद्ध करना है, हों! पर्याय में अनित्यता है, उसे सिद्ध करना है। ध्रुवरूप से ज्ञायक वस्तु होने पर भी समय-समय की पर को जानने सम्बन्धी की पर्याय, ज्ञायक की पर्याय—अवस्था है। वह अवस्था जानने की पर्याय पर की है, ऐसा नहीं। भले पर को जानने का काम करे पर्याय, परन्तु वह पर्याय पर की ही है और पर से हुई है—ऐसा नहीं है। एक समय

की पर्याय ध्रुव वस्तु होने पर भी एक समय की (पर्याय है सही)। ध्रुव है, वह तो स्व हुआ। समझ में आया? उस स्व को जाननेवाली पर्याय हुई। अब एक समय की पर्याय में स्व को जाननेरूपी पर्याय नयी-नयी होती है, और उस काल में पर को जानने के लिये भी पर्याय स्व-परप्रकाशक नयी-नयी होती है। वह स्व-परप्रकाश की पर्याय है एक समय की, तथापि वह वस्तु के अंश में है; पर में है और पर के कारण से है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह कहेंगे, हों! यह तो जरा उपोद्‌घात किया। '**शार्दूलविक्रीडित**' वह सिंह चलता हो न? सिंह—केसरी सिंह। धीमे-धीमे... धीमे खेल करता हुआ चले न? खेल करता, खेल करता हुआ। ऐसा उसे यह क्या कहलाता है? छन्द... छन्द। देशी, देशी। देशी, स्वदेशी। सब शार्दूल थे न? सब शार्दूल थे। शार्दूल (अर्थात्) सिंह। विक्रीडित (अर्थात्) विशेष क्रीड़ा करता हुआ। यह देशी का नाम आता है। इस काव्य का नाम ही है—शार्दूलविक्रीडित। शार्दूल—सिंह। विक्रीडित—विशेष क्रीड़ा करता हुआ, मलपता हुआ चले, ऐसी यह देशी (छन्द) है। भगवान शार्दूल—सिंह अपने स्वरूप को साधता, मलपता पर्याय में अनुभव करे, उसका नाम आत्मा को शार्दूल—सिंह कहने में आता है। अनेकान्ती को शार्दूल—सिंह लगाया।

कलश - २६१

(शार्दूलविक्रीडित)

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वांछत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं
स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ।।१५-२६१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसा है जो वस्तु को द्रव्यरूप मानता है; पर्यायरूप नहीं मानता है, इस कारण, समस्त ज्ञेय को जानता हुआ, ज्ञेयाकार परिणमता है ज्ञान, उसको अशुद्धपना मानता है एकान्तवादी; ज्ञान को, पर्यायपना नहीं मानता है। उसका समाधान स्याद्वादी करता है कि ज्ञानवस्तु को द्रव्यरूप से देखने पर, नित्य है; पर्यायरूप से देखने पर, अनित्य है; इसलिए समस्त ज्ञेय को जानता है ज्ञान, जानता हुआ, ज्ञेय की आकृतिरूप ज्ञान की पर्याय, परिणमती है— ऐसा ज्ञान का स्वभाव है; अशुद्धपना नहीं है। ऐसा कहते हैं— 'पशुः उच्छलदच्छचित्परिणतेः भिन्नं किञ्चन वाञ्छति' [पशुः] एकान्तवादी, [उच्छलत्] ज्ञेय का ज्ञाता होकर, पर्यायरूप परिणमता है उत्पादरूप तथा व्ययरूप, ऐसी [अच्छ] अशुद्धपना से रहित, ऐसी जो [चित्परिणतेः] ज्ञानगुण की पर्याय, उससे [भिन्नं] ज्ञेय को जाननेरूप परिणति के बिना, वस्तुमात्र कूटस्थ होकर रहे, [किञ्चन वाञ्छति] ऐसा कुछ विपरीतपना मानता है, एकान्तवादी। ज्ञान को ऐसा करना चाहता है— 'टंकोत्कीर्ण-विशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया' [टंकोत्कीर्ण] सर्व काल एक समान, [विशुद्ध] समस्त विकल्प से रहित, [बोध] ज्ञानवस्तु के [विसराकार] प्रवाहरूप [आतमतत्त्व] जीववस्तु हो, [आशया] ऐसा करने की अभिलाषा करता है। उसका समाधान करता है स्याद्वादी— 'स्याद्वादी ज्ञानं नित्यं उज्ज्वलं आसादयति' [स्याद्वादी] अनेकान्तवादी, [ज्ञानं] ज्ञानमात्र जीववस्तु को [नित्यं] सर्व काल एक समान, [उज्ज्वलं] समस्त विकल्प से रहित, [आसादयति] स्वादरूप अनुभवता है। 'अनित्यतापरिगमे अपि' यद्यपि उसमें पर्याय द्वारा अनित्यपना घटित होता है। कैसा है स्याद्वादी? 'तत् चिद्वस्तु अनित्यतां परिमृशन्' [तत्] पूर्वोक्त [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य को, [अनित्यतां परिमृशन्] विनश्वररूप

अनुभवता हुआ। किस कारण से? 'वृत्तिक्रमात्' [वृत्ति] पर्याय के, [क्रमात्] कोई पर्याय होती है, कोई पर्याय नाश को प्राप्त होती है—ऐसे भाव के कारण। भावार्थ इस प्रकार है कि पर्यायद्वारा, जीववस्तु अनित्य है—ऐसा अनुभवता है स्याद्वादी।।१५-२६१।।

कलश - २६१ पर प्रवचन

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वांछत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं
स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् ।।१५-२६१।।

'**वृत्तिक्रमात्**' क्रम है, ध्रुव और इस अनित्य को मानता है न? इसलिए अनित्य को '**क्रमात्**' मानता है। क्या कहते हैं? भाई! अनित्य को '**क्रमात्**' मानता है, ऐसा कहा। आहाहा! यह तो अमृत के दरबार में प्रविष्ट होने की बातें हैं। भगवान अमृत का महा पिण्ड है। आत्मा अर्थात् अमृत का सागर, अतीन्द्रिय अमृत का सागर। यह भिखारीरूप से .... एक बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, स्त्री बिना चले नहीं, इज्जत बिना चले नहीं, लहसुन का अच्छा ढोकला बिना चले नहीं। उसे कहते हैं कि तेरा आत्मा अनन्त आनन्द का अमृत का सागर। वह किस प्रकार माप करना इसका? सिगरेट, बीड़ी पीता हो तो ऐसे मानो... ऐसे नहीं रखे, कोई ऐसे रखता है। ऐसा कुछ है सही। उसमें यहाँ और कुछ वह हो, उसमें और कुछ लाख रुपये की मोटर हो ठीक सी। क्या है? परन्तु पागल क्या है? वहाँ जहर में चढ़ गया है, ऐसा कहते हैं। वह जहर के रास्ते चढ़ गया है। पर में आनन्द को पर में सुख, वह जहर के रास्ते चढ़ गया है। भगवान के दरबार में अमृत के पंथ अन्दर अमृत सागर पड़े हैं। स्वयं, हों! स्वयं आत्मा अमृतसागर का दरबार है। जिसमें नजर डालने से अमृत का उछाला मारे, ऐसा वह भगवान है। उसे खबर नहीं होती कभी। समझ में आया?

यह तो '**क्रमात्**' '**क्रमात्**' है न? क्रम-क्रम से आत्मा के आनन्द का पाक हो पर्याय में, ऐसा यह आत्मा है। समझ में आया? यह तो वह पर में, इस धूल में और स्त्री

और पुत्र और धूलधमाका। वह पर में कहीं सुख की गन्ध भी नहीं। वह पर में सुख (की) मान्यता है, वही मिथ्यात्व, वह मूढ पाखण्ड है। समझ में आया? उसने आत्मा में सुख है, ऐसा माना नहीं। आहाहा! यह क्रम... क्रम... क्रम से... इसे बढ़ता गया। मानो ऐसे पैसे बढ़े और स्त्री और पुत्र, इज्जत और सुख बढ़ गया। मूढ़ है। मेरा लक्ष्य गया पालेज में। समझ में आया? थोड़ी-थोड़ी आमदनी हो फिर बढ़ती जाये, बढ़ती जाये तो आहाहा! बहुत बढ़ गया है, लो! क्या बढ़ा?

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धिनय पर तौलिये;
संसार का बढ़ना अरे नर देह की यह हार है,
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक-विचार है।

रतिभाई! पहले छोटा, सादा मकान और फिर उसमें बड़ा .... डाला न फिर बड़ा क्या कहलाता है? ... यह क्रम-क्रम से बढ़ा कहलाता है। पहले पचास हजार की पूँजी, फिर लाख की और फिर दो लाख की, फिर पाँच लाख की, पच्चीस लाख की, फिर करोड़ की, पाँच करोड़ की। ऐई! क्रम-क्रम से बढ़े या नहीं? कहते हैं कि क्रम-क्रम से क्या बढ़ा? यह दु:ख। आहाहा! अरे! पागल हर्ष सन्निपाती। सन्निपातवाला दाँत निकालता है, उसे कुछ दु:ख लगता है? तो दु:ख नहीं है? सन्निपातिया ऐसे खिलखिलाकर दाँत निकालता है। आहाहा! साथवाला कहे अभी मरेगा यह। दाँत निकाले। आठ व्यक्तियों से पकड़ा न रहे। आठ व्यक्तियों का बल है? वह दु:ख के दाँत हैं परन्तु वह उसे हर्ष लगता है। समझ में आया? इसी प्रकार यह अज्ञानी परपदार्थ बढ़ने पर क्रम-क्रम से बढ़ा (तो मानता है कि) मुझे सुख बढ़ता है। ऐसा सन्निपातिया हर्ष में ऐसा मानता है, ऐसा मानता है।

मुमुक्षु : कमाई बढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाई बढ़े, जवान शरीर हो, ऐसे पन्द्रह-बीस वर्ष का ऐसा... पैसा-बैसा हो तो पेट बड़ा ऐसे तोंद (निकले) कैसे? ठीक से लड्डू-बड्डू, मौसम्बी का (पानी)... इसलिए चलते-चलते फिर इसमें कितनों को ऐसा देखा... परन्तु चले तो

ऐसे ऐसे हाथ भी ऐसा इकट्ठा न करे। क्या है परन्तु ? मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो गयी इसे। क्या बढ़ा क्रम-क्रम से ? क्या बढ़ा तुझे ? दु:ख बढ़ा है, मूढ़ ! तू मानता है कि हमको सुख बढ़ा है और कुछ सुविधा बढ़ी। तेरी दृष्टि कहाँ है ? जहर के ऊपर है। ऐसा यहाँ कहते हैं। यह अमृत की दृष्टि होने पर अनित्यपने में आनन्द आवे, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह नित्यसहित का अनित्य माननेवाला, नित्यसहित अनित्य माननेवाले को अनित्यपने में आनन्द क्रम-क्रम से बढ़ता जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह यहाँ कहते हैं, लो !

कोई मिथ्यादृष्टि.... अर्थात् एक पक्ष को माननेवाला। अर्थात् कि एक समय की अवस्था को नहीं माननेवाला **वस्तु को द्रव्यरूप मानता है;...** कहनेमात्र, हों ! द्रव्यरूप है, ऐसा यथार्थ नहीं मानता। परन्तु एक वस्तु बस, ऐसी होती है, वस्तु ऐसी होती है कि अपने यह जानने में जो आता है सब, उसे निकाल डालें तो वस्तु अकेली रहे। दूसरी चीज़ जानने में आती है और वह तो कलंक है, अशुद्ध है, मैल है। उस ज्ञान की पर्याय का वर्तमान स्वभाव है कि दूसरी चीजें स्वयं जाने। परन्तु जानने से उसे मैल माने, अशुद्ध माने और उसे निकाल डालूँ तो मैं उजला होऊँ, ऐसा माननेवाला मूढ़ एक पक्ष को मानता है। ध्रुव एक ही चीज़ है, परन्तु पर्याय का अंश तेरा जानने का परज्ञेय है, उसे तू ज्ञायकरूप से जान, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसा एक अंश यह है, ऐसा नहीं माननेवाला एकांगी अर्थात् अकेला द्रव्य ही है, वस्तु है त्रिकाली इसे माननेवाला **पर्यायरूप नहीं मानता है,....** समझ में आया ? कठिन, भाई !

एक समय की अवस्था नहीं मानता। क्यों ? वह भी यह क्या ? वस्तु तो एकरूप पूरी जाननी चाहिए और तो शुद्ध कहलाये। एक समय में यह सब भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न... ज्ञात होते हैं। अनेक वस्तु काली, सफेद, पीली, हरी, इत्यादि बाह्य चीज़ें, उसे जानने से पर्याय में यह क्या ? यह क्या ? अर्थात् यह मैं नहीं, यह मैं नहीं। परन्तु वह तो ज्ञान की पर्याय है। पर और जो कुछ वस्तु है, वह ज्ञेय है, और यहाँ जानने की पर्याय है, वह तो ज्ञान की तेरी दशा है। ऐसी पर्याय को नहीं मानता। उसे आत्मा के द्रव्य का अनुभव पर्याय में हो क्रम-क्रम से, ऐसी पर्याय को वह नहीं मानता। समझ में आया ?

इस कारण, समस्त ज्ञेय को जानता हुआ, ज्ञेयाकार परिणमता है ज्ञान,... देखो! वर्तमान ज्ञान की दशा... त्रिकाल ज्ञानमूर्ति तो ध्रुव है, परन्तु वर्तमान ज्ञान की अवस्था में पर्याय में **समस्त ज्ञेय को जानता हुआ,...** भाषा तो देखो! यह तो एक ही बात देखे। एक समय की पर्याय में सब जानने में आवे, भाई! ऐसा ही है परन्तु उसकी ताकत ही इतनी है। **समस्त ज्ञेय को जानता हुआ,...** ज्ञान की वर्तमान दशा में यह ज्ञात होता है। यह शरीर है, पैसा है, यह धूल है, यह मौसम्बी है, यह स्त्री है, यह पुत्र है, यह पत्थर है, यह गहने हैं। यह ज्ञान की पर्याय उन्हें जानती है, बस! इतना। परन्तु उसे जानते हुए अज्ञानी को ऐसा हो जाता है कि इस समय की पर्याय में यह यह दूसरा क्या ज्ञात हुआ? यह दूसरा क्या यह? इसलिए अकेला होने के लिये उसकी पर्याय में यह ज्ञात होता है, उसे निकाल डालना चाहता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह निकालना है? ज्ञान की पर्याय जो मेरी है, उसे इस द्रव्य पर लाना है? यह निकालना है या द्रव्य पर पर्याय को चिपकाना है? यह जानना तो ज्ञान की एक समय की अवस्था का स्वभाव है। स्वभाव जानना है। वह कहीं मलिन नहीं, अशुद्ध नहीं, दुःख नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी ज्ञेय-ज्ञायक की पर्याय है न? परज्ञेय है, उसका ज्ञात होने का स्वभाव है, ज्ञान की एक समय की पर्याय में उसे जानने का स्वभाव है। जानना हुआ, उसे निकालना है क्या उसमें? पर्याय को निकाल डालना है, उसके लिये तो कहते हैं। पर्याय को निकाल डालना है तो रहेगा क्या?

दर्पण में दर्पण कुछ न रहे, और ऐसी वर्तमान स्वच्छता की दशा में, सामने विष्टा पड़ी हो, कोयले पड़े हों, यहाँ स्वच्छता की पर्यायरूप से परिणमती है। परिणमते हुए उसे ऐसा लगता है। आहाहा! यह विष्टारूप परिणमा। निकाल डालो। क्या परन्तु? वह तो इसकी—दर्पण की अवस्था है। विष्टा कहाँ घुस गयी थी? विष्टा तो बाहर रही है, कोयले बाहर रहे। वहाँ स्वच्छता काली हो गयी है? यह काले आकार से स्वच्छता की—दर्पण की ही दशा है। यह कहीं काले कोयले की दशा नहीं कि तू उसमें से निकाल डाल। और निकाल डाल तो दर्पण स्पष्ट होगा। इसी प्रकार अज्ञानी, ज्ञान की

पर्याय की स्वच्छता में दूसरी चीज़ें जैसी हो, वैसी ज्ञात होती है। ज्ञात होती है, उसमें निकाल डाल तो रहेगा क्या? वह तो जानने का स्वभाव तेरा है। आहाहा! समझ में आया?

समस्त ज्ञेय को जानता हुआ, ज्ञेयाकार परिणमता है... यह जो ज्ञेय वस्तु है न? शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, माँस, हड्डियाँ, चमड़ी, दाल, भात, सब्जी इत्यादि। उन सब ज्ञेय का जैसा स्वभाव है, उसरूप से ज्ञान जाननेरूप परिणमता है। ज्ञान **उसको अशुद्धपना मानता है....** अज्ञानी उस ज्ञान की दशा में पर का जानना (होता है), उसे मैल और अशुद्धता मानता है। परन्तु मेरी ज्ञान की पर्याय का वह (स्वभाव है, ऐसा नहीं मानता)। फिर ज्ञान पर्याय भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न में भिन्न-भिन्नपने का प्रकार का ज्ञान हो। ऐसी अशुद्धता को, एकरूप रहना चाहता है, इसलिए अशुद्धता को निकाल डालूँ तो एकरूप (रहूँ)। परन्तु वह कहाँ से निकाल डाल? वह तो पर्याय तेरा स्वभाव है। समझ में आया?

अशुद्धपना मानता है एकान्तवादी;.... एक पक्ष को माननेवाला अर्थात् वस्तु त्रिकाल ध्रुव करना चाहता है, अथवा एकरूप रहना चाहता है, परन्तु ज्ञान की अवस्था में अनेकपना जानने का धर्म है, ऐसी पर्याय को वह नहीं मानता। इसलिए अशुद्धपना मानकर **ज्ञान को पर्यायपना नहीं मानता है।** ज्ञानगुण त्रिकाल वस्तु है, उसकी एक समय की अवस्था, उसका अपना स्वभाव है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया?

उसका समाधान स्याद्वादी करता है... यह तो अभी उपोद्घात करते हैं, हों! मूल शब्द बाद में आयेंगे। **कि ज्ञानवस्तु को द्रव्यरूप से देखने पर नित्य है;....** ज्ञानस्वरूप चिद्घन पदार्थ, वह वस्तु ध्रुवरूप से नित्य है और **पर्यायरूप से देखने पर अनित्य है;....** अवस्था के पलटने की अपेक्षा से देखो, उसे तो अनित्य है। वर्तमान दशा से वह अनित्य है, विनाशीक है, कायम रहनेवाली नहीं। वस्तु अविनाशी है परन्तु उसकी अवस्था विनाशीक है परन्तु विनाशीक होने पर भी उसका पर्याय स्वभाव है। समझ में आया? ऐसा समझना? इसकी अपेक्षा तो यह करो पर की सेवा और हो गया दया, दान धर्म और मन्दिर दो-चार बना डालो तो धर्म हो जाये, लो! सिरपच्ची मिटी। धूल में भी नहीं। तेरे लाख मन्दिर हो या लाख करोड़ पैसा (दे)। पैसा कहाँ तेरी चीज़ है तो तूने दिये। पैसा

सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय जाने, वह पर्याय तेरी। पैसा कहाँ तेरा था? समझ में आया? पैसा तो ज्ञेय है। ज्ञेय को मैंने दिया, इसका अर्थ क्या? मेरे जानने योग्य चीज़ को मैंने दिया, इसका अर्थ क्या? जो नहीं, उसे अपना माना। माना तो मिथ्यात्व हुआ, मिथ्यात्व का पाप हुआ साथ में। समझ में आया? उसमें इतना कि वह वस्तु है, उसके ज्ञानरूप पर्याय परिणमित हुई, बस! जानने का सही। परन्तु उस वस्तु को मैंने दिया और लिया, ऐसी कुछ तेरी पर्याय में भी धर्म नहीं। वह ज्ञेय (वस्तु) है, वह कहीं तेरे कारण आगे-पीछे जाये, ऐसा उसमें स्वभाव नहीं है। समझ में आया?

यह तो एक समय की पर्याय में वह ज्ञात होता है न? इसलिए यह मैंने लिया, यह मैंने लिया। परन्तु तू तो उसका जाननेवाला है। समझ में आया? और जानने का उस रूप परिणमा, वह ज्ञान कहीं मलिन नहीं है। वह तो ज्ञात होता है। वह चीज़ ज्ञात हो, उसमें क्या है? किसे निकालना है? ऐई! मलूकचन्द! यह तो निकलना होंगे, तब निकलेंगे, होना होगा तब होगा। किसी के मलूकचन्दभाई के और किसी से किये होते नहीं। यह गजब बात! खाडिया, खाडिया क्या कहलाता है वह? खाडिया (अहमदाबाद) में मन्दिर बनाना है न?

यहाँ तो बात यह है, भाई! उस पर्याय के समय वही जानने का हो। वह पर्याय तेरी, वह वस्तु तेरी नहीं। समझ में आया? इतनी पर्याय में ही यह ज्ञात हुआ या इसका घर ज्ञात हो। बकरा कटता हो वहाँ जा चढ़ा। पर्याय में ज्ञात हो। अं हं हं...! निकाल डालो। वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। वह है, ऐसा ज्ञेय को यहाँ जाना। वह क्या निकाल डालना है तुझे? पर्याय में से यह जानना निकाल डालना है? और यह चीज़ कहीं यहाँ घुस गयी है? समझ में आया? वह ऐसा बकरा काटता हो। वह क्रिया तो होनेवाली है उसके कारण से, हों! वह तो उसे जानता है, तथापि मानता है कि मैं करता हूँ। वह मिथ्यात्व सेवन है। जाननेवाले ज्ञान में ऐसा ज्ञात हुआ। उं... उं... (करे)। क्या है? क्या है? तेरी ज्ञानपर्याय का स्वभाव उसे जाननेरूप परिणमित हुआ, इतना तेरा स्वभाव है। वह चीज़ घुस गयी है? वह चीज़ निकाल डालना है तुझे पर्याय में से? ऐ... रतिभाई! और उससे ज्ञान अशुद्ध हुआ है? आहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए यही कहते हैं न! ज्ञान की पर्याय का धर्म उस पर्याय को पर को जानने का स्वभाव है, उसे मानता नहीं। पर्याय को मानता ही नहीं। उसमें से सब निकल जाये तो मैं अकेला हूँ तो मैं सिद्ध होऊँ, ऐसा मानता है। समझ में आया? क्या कहा? .....भाग कौन? ज्ञान कहाँ गया तेरा? तेरा ज्ञान पर्याय में तुझमें है। भागना कहाँ? उतावला चले कौन? अरे! गजब बात, भाई! देह की क्रिया उतावली क्रिया चली वह तो ज्ञेय है। उसकी पर्याय तेरे जानने में आयी। बाहर वस्तु है, वह ज्ञान की पर्याय में जानने में आयी। क्या तुझे करना है? निकाल डालना है, यह जानना?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं कि इसके लिये तो इन्होंने रखा। यही कहते हैं कि भाई! तेरे ज्ञान की पर्याय को तू नहीं मानता। क्यों? कि उस पर्याय का स्वभाव पर का जैसा ज्ञेय है, वह जानने का है। उस पर्याय को तू मानता ही नहीं। वह पर्याय यह क्या हो गया? इसे निकाल डालूँ, (ऐसा कहता है) उस पर्याय को मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अलख... अलख की बातें हैं।

पर्याय से देखता है परन्तु अनित्य है। वह पर्याय का स्वरूप ही ऐसा है कि जैसा वह सामने ज्ञेय हो, उस प्रकार से ज्ञान की पर्याय जाने। वह अनित्य है, दूसरे क्षण में दूसरी होती है, तीसरे क्षण में तीसरी होती है। क्रम-क्रम से होती है। इससे कहीं पर्याय निकाल डाले तो द्रव्य भी रहेगा नहीं और अनुभव तो पर्याय में है। द्रव्य के लक्ष्य से... नहीं?

ज्ञेय की आकृतिरूप ज्ञान की पर्याय परिणमती है—ऐसा ज्ञान का स्वभाव है; अशुद्धपना नहीं है। यह अशुद्धता नहीं। पर को जानना, यह ज्ञान का पर्यायधर्म है, वह अशुद्धता नहीं है। मूढ़ उस पर्याय को निकाल डालना चाहता है और अकेला शुद्ध होऊँ। वह निकल जाये तो शुद्ध होऊँ, ऐसा नहीं है। उसे ऐसा मानता है, यह शास्त्र के शब्दों से कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०४, रविवार, दिनांक-२६-१२-१९६५, कलश-२६१-२६२, प्रवचन-२८१

स्याद्वाद अधिकार, कलशटीका पन्द्रहवाँ कलश चलता है, धारावाही २६१। नीचे है, नीचे। देखो! **ऐसा कहते हैं...** है नीचे? दूसरी लाईन। '**पशुः उच्छलदच्छ-चित्परिणतेः भिन्नं किञ्चन वाञ्छति**' क्या कहते हैं? एकान्तवादी—एक पक्ष को देखनेवाला। परन्तु सर्व अंग जो वस्तु का स्वरूप है, उसे न जाननेवाला। अर्थात्? आत्मा ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द ध्रुव नित्य है। ज्ञायक चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु नित्य है, उसकी वर्तमान पर्याय में—अवस्था में जो अनन्त परपदार्थ ज्ञेय—ज्ञात होनेयोग्य है, उसरूप से आत्मा की ज्ञान पर्याय जाननेरूप होती है, परिणमती है। उसे अज्ञानी ऐसा मानता है कि यह पर जाननेयोग्य वस्तु का परिणमन हुआ, वह तो अशुद्ध हुआ। सूक्ष्म बात है। बात तो सूक्ष्म ही है न! अनन्त काल से तत्त्व को (जाना नहीं)। सूक्ष्म है।

वास्तविक पदार्थ भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। ऐसी वस्तु होने पर भी उसकी वर्तमान दशा में, हालत में, पर्याय में वर्तमान एक अवस्थारूपी अंश में आत्मा के अतिरिक्त दूसरे शरीर, कर्म, पुद्गल ये सब उसकी अवस्था में, हालत में ज्ञात हो—ऐसा उसका वर्तमान पर्याय ज्ञान अवस्था का स्वभाव है, बस! इतना ही। क्या कहा? रतिभाई! लम्बा हो गया?

आत्मा अर्थात् क्या? परवस्तु पर। शरीर, वाणी, कर्म, यह तो सवेरे बहुत आया। कर्म, शरीर, वाणी यह सब तो जड़, पर है। दूसरे आत्मायें हैं, वे भी इस आत्मा से तो अत्यन्त पर है। अब इस परवस्तु को आत्मा की वर्तमान ज्ञानप्रकाश पर्याय में अवस्था—वर्तमान अवस्था में, अवस्था अर्थात् दशा में उन अनन्त ज्ञेयों को जाननेरूप ज्ञान परिणमता है अर्थात् ज्ञान होता है, ऐसा आत्मा की ज्ञानपर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? पर के कारण नहीं, पर को कुछ करे, ऐसा नहीं, परन्तु स्वयं कायम नित्य ज्ञानमूर्ति रहकर वर्तमान ज्ञान की दशा में जो अनन्त ज्ञेय जाननेयोग्य पदार्थ हैं, उन्हें जाननेरूप ज्ञान की अवस्था होती है। वह तो अपना वर्तमान ज्ञान की अवस्था के सामर्थ्य का स्वरूप, स्वभाव है। इतना अज्ञानी न मानकर वे सब ज्ञेय मुझे जानने में आते हैं, वे

पर क्यों जानने में आये? वास्तव में पर ज्ञात नहीं होते, इससे यहाँ लिया, भाई! फिर इसी और इसी विचार से वहाँ गया ... यह बाद में। कहो, समझ में आया इसमें? आत्मा... देखो! यह वस्तुस्थिति। इसने कभी अनन्त काल में तत्त्व का सत् स्वरूप है, वह दृष्टि में लिया नहीं। और सत् को सत्‌रूप से दृष्टि में न ले, तब तक उसे सम्यक् सत् का धर्म होगा नहीं और धर्म हुए बिना उसे अधर्म होता है। यह अधर्म होता है, वह दुःखरूप दशा अनन्त काल से करता है, और उसी और उसी में हैरान होता है। समझ में आया?

वह अपनी ज्ञानदशा में दूसरे छह द्रव्य हैं, वह यहाँ नहीं। आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त आत्मायें, शरीर, रजकण, कर्म, वह अपनी ज्ञान त्रिकाली वस्तु में तो नहीं परन्तु उसकी एक समय की दशा है, उसमें वह चीज़ नहीं, वह चीज़ तो भिन्न है परन्तु उस भिन्न चीज़ का जैसा स्वरूप है, वैसा इस ज्ञान की वर्तमान दशा का अपना धर्म—पर्याय स्वभाव उसे जानने का, स्वयं से उसे जानने का स्वभाव है। समझ में आया?

नित्य वस्तु तो त्रिकाल ध्रुव उसके दो अंश। त्रिकाल सच्चिदानन्द ध्रुव सत्.... सत्.... सत्.... चिद्, परन्तु उसकी एक समय की दशा है, वह वस्तु में, त्रिकाल वस्तु में तो वह अनन्त वस्तु भी नहीं और अनन्त वस्तु का एक समय का ज्ञान, इतना वह त्रिकाल नहीं। शशिभाई! समझ में आया? भाई! आत्मतत्त्व को जानना, वह तो अनन्त काल का महँगा है। उस आत्मा को जाने बिना यह सब यह अनन्त सिरपच्ची करे, उससे कोई पुण्य-पाप के भाव हों, बन्धन हो और चार गति में भटके, उसे जन्म-मरण का टलना नहीं होता।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा जो ज्ञान चैतन्य के प्रकाश का नूर अकेला आत्मा ज्ञान का पुंज वस्तु, वह तो ध्रुव नित्य, नित्य है। वह वस्तु जो नित्य वस्तु है, उसमें से तो आत्मा के अतिरिक्त अनन्त पुद्‌गल, अनन्त आत्मायें हैं, वे द्रव्य में तो नहीं परन्तु उसकी एक समय की पर्याय जो जाननेयोग्य हो, उसमें भी वे छह द्रव्य नहीं हैं। समझ में आया? परन्तु उन छह द्रव्यों का जैसा ज्ञेय का स्वभाव है, वैसा एक समय की पर्याय अवस्था जानने का स्वभाव जीव का है। उतना पर्याय जानने का स्वभाव और त्रिकाल मेरा ध्रुव, ऐसी यदि त्रिकाल पर दृष्टि ऐसे जानने की पर्यायसहित की करे तो

उसे आत्मा की दृष्टि होने से, सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है। समझ में आया? परन्तु ऐसा न मानकर या एक समय की दशा होती है, उतना आत्मा को मानता है और या एक समय की दशा में पर का जानपना है, उसे निकाल डालूँ तो मैं शुद्ध होऊँ, ऐसा मानता है, वह अज्ञानरूप से मानता है। उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय भले अनित्य पर्याय है, पर्याय एक क्षण रहनेवाली है। वस्तु त्रिकाल ध्रुव रहती है। एक समय की अवस्था रहे तो भी उसमें से छह द्रव्य को जानने की दशा का स्वभाव है, उसे नहीं निकाला जा सकता। जानने का, पर के कार्य करने का या पर से कार्य लेने का उसकी समय की पर्याय में भी, अनित्य में भी वह स्वभाव नहीं है। समझ में आया?

वस्तु जो आत्मा है, सत् चिद् ज्ञान ध्रुव चिद् अनादि-अनन्त वस्तु पदार्थ है। उसमें तो कार्य नहीं। वह तो वस्तु वस्तुरूप त्रिकाल वस्तु है, परन्तु उसकी वर्तमान दशा में जो कार्यरूप से ज्ञान की दशा होती है, वर्तमान ज्ञान की कार्यरूप दशा होती है, वह दशा आत्मा के अतिरिक्त अनन्त पदार्थों को करे, ऐसा भी नहीं और वह दशा कहीं पर है, इसलिए होती है, ऐसा भी नहीं। परन्तु उस दशा का स्वभाव अनन्त ज्ञेय जैसे हैं, वैसा जानने का स्वभाव है। वह जानने का स्वभाव है, इसलिए किसी को ऐसा लगे कि यह क्या ज्ञात हुआ दूसरा? दूसरा नहीं ज्ञात होता, वह ज्ञात होती है अपनी ज्ञान की पर्याय। समझ में आया?

दर्पण में दर्पण तो पूरा है परन्तु उसकी वर्तमान स्वच्छ अवस्था में ऐसी विष्टा और कोयला सामने पड़े हों तो उसकी अवस्था में ऐसा दिखता है। वह उसकी वर्तमान दशा का दर्पण का अनित्यता का स्वरूप है। नित्य तो दर्पण कायम है, परन्तु उसकी अवस्था का अनित्य स्वरूप है। वह सामने विष्टा दिखायी दे या जामुन पड़े हों वे यहाँ दिखाई दे, वह जामुन और विष्टा यहाँ नहीं आये परन्तु इस स्वच्छता की अवस्था का ऐसा स्वभाव है, उस रूप परिणमे। अब उस दर्पण में से वह काली और विष्टा का मेल दिखाई दे, उसे निकाल डालना चाहे तो दर्पण स्वयं नहीं रहता। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

आत्मा के अतिरिक्त अनन्त परपदार्थ भिन्न है, इतना पृथक् करे वह तो बराबर है, परन्तु उसके साथ अनन्त पदार्थों की ज्ञान की पर्याय हुई, उसे भी छह द्रव्य को जानने

की पर्याय को निकाल डालना चाहे, भिन्न करना चाहे, बहुत भिन्न करना चाहता है, भाई! करो भिन्न, करो। परन्तु किससे? समझ में आया? भिन्न होओ... भिन्न होओ... भिन्न होओ... अपने भिन्न होओ, परन्तु भिन्न किससे होना है? आत्मा से कर्म, शरीर, वाणी, मन तो भिन्न ही है। अब उस भिन्न सम्बन्धी का ज्ञान हो, उससे भिन्न होना है इससे। इसलिए भिन्न होने का अर्थ निकाल डालना है। वह तो ज्ञान का पर्याय धर्म है, क्या निकाल डालेगा तू? ज्ञान की पर्याय निकाल डालने से ज्ञान ही रहेगा नहीं। भारी सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? कहते हैं... हैं?

मुमुक्षु : नौ तत्त्व में की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ तत्त्व में की बात है। वह नौ तत्त्व में आत्मा तत्त्व वह ध्रुव और उसकी एक समय की पर्याय का ज्ञान पर्यायधर्म वह एक अंशरूपी व्यवहार तत्त्व। व्यवहार तत्त्व, निश्चय तत्त्व ध्रुव। एक समय की पर्याय व्यवहार तत्त्व, निश्चय तत्त्व ये दो होकर पूरा तत्त्व प्रमाण तत्त्व है। कहो, समझ में आया इसमें? दूसरे तत्त्व भिन्न रह गये। दूसरे नहीं, ऐसा भी नहीं और दूसरे यहाँ ज्ञान में ज्ञात हुए, इसलिए यहाँ आ गये, ऐसा भी नहीं। आहाहा! और दूसरे सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान आया, दूसरे भिन्न, ऐसा इसकी ज्ञान की जानने की दशा अपने में हुई, उसे भिन्न करना चाहे; (तो) पर्याय बिना का द्रव्य इसकी दृष्टि में आयेगा नहीं। शशिभाई! समझ में आया?

एकान्तवादी अर्थात् एक पक्ष से देखनेवाला। अर्थात् कि वर्तमान ज्ञान की प्रकाश शक्ति में जो दूसरे सब अनन्त द्रव्य जाननेरूप ज्ञान परिणमा, उसे निकाल डालना चाहनेवाला एकान्त पक्षी। **ज्ञेय का ज्ञाता होकर....** यह ज्ञेय अर्थात् जाननेयोग्य चीज़ें। यह ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होती है, उस **पर्यायरूप परिणमता है...** परिणमती है, पर्याय अपनी अवस्था। **उत्पादरूप तथा व्ययरूप, ऐसी...** भगवान आत्मा ज्ञान की ज्योतिस्वरूप तो त्रिकाल। उसके एक वर्तमान दशा में जो ज्ञेय—जाननेयोग्य वस्तु है, उसे जाननेरूप उत्पाद की पर्याय होती है। वह अवस्था वापस व्यय हो जाती है, और नयी अवस्था होती है। वह नयी हो, वह भी जैसा ज्ञेय, तत्प्रमाण जानने का हो। और ज्ञेय बदला तो यहाँ भी अपनी पर्याय उस प्रकार से परिणमनेवाली बदली स्वयं के कारण से। समझ में आया?

वह अज्ञानी अपनी ज्ञान दशा में... यहाँ पर की बात अभी नहीं अब। यहाँ तो पर सम्बन्धी का परिणमन का ज्ञान, ऐसा **उत्पादरूप तथा व्ययरूप, ऐसी... 'अच्छचित्परिणतेः' अशुद्धपना से रहित,...** ऐसा मानता है कि इस परिणति में पर्याय में यह सब ज्ञात हुआ तो मुझे तो स्वच्छ रहना है, इसलिए यह सब ज्ञात होता है, उसे निकाल डालूँ तो मैं स्वच्छ होऊँ। समझ में आया? निकाल डालते-डालते भाई! कर्म नहीं, मैं शरीर नहीं, मैं वाणी नहीं, यह राग और द्वेष के विकल्प उठे, वह मैं नहीं। निकालते-निकालते यह मैं नहीं तब तक बराबर है परन्तु यह राग-द्वेष के जो परिणाम होते हैं, उन्हें जाननेवाला ज्ञान, ज्ञान की पर्याय में उन्हें जाननेरूप ज्ञानपर्याय परिणमे, उस पर्याय को निकाल डालना चाहे तो वस्तु रहेगी नहीं। वस्तु को देखनेवाली दशा ही नहीं रहेगी, देखनेवाली दशा ही नहीं रहेगी। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

वीतराग का तत्त्व सर्वज्ञ ने कहा हुआ इतना सूक्ष्म और सत्य है। सूक्ष्म और सत्य। आहाहा! त्रिकाल वस्तु की सत्यता ही ऐसी है। इसने कभी उसे समझने की दरकार नहीं की। ऐसा का ऐसा मर गया अनन्त काल से। ढोंग अज्ञान के और राग-द्वेष के कर-करके धर्म के नाम से त्यागी हुआ परन्तु मर गया राग और द्वेष को करने में। समझ में आया? राग और द्वेष, दया और दान, भक्ति, व्रत और पूजा, ये परिणाम सब विकारी हैं। यहाँ तो कहते हैं कि यह विकारी निकाल डालना चाहे, तब तक यह बराबर है। विकार मैं नहीं, परन्तु विकार सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय जो अपनेरूप से परिणमती है, उसमें उस विकार सम्बन्धी का ज्ञान अपना है। उस ज्ञानपर्याय को निकाल डालना चाहे तो वस्तु को पकड़नेवाली दशा ही नहीं होती तो दशा बिना की वस्तु का भान इसे होगा नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

ऐसा.... 'अच्छ' अर्थात् निर्मलता **अशुद्धपने से रहित...** ऐसा। अरे! मेरी ज्ञान दशा में यह क्या ज्ञात होता है? समझ में आया? स्त्री का देह, हड्डियाँ-माँस की अवस्थायें, यह ज्ञान की दशा में जानना, वह तो आत्मा की ज्ञानपर्याय का स्वभाव है। परन्तु उस दशा को भले निकाल डाले परन्तु उसके सम्बन्धी जानने से शून्य कर डाले, तब तो फिर पर्याय ही नहीं रही। पर्याय रही नहीं तो पर्याय से पकड़ में आता है द्रव्य। तो द्रव्य पकड़ में नहीं आयेगा। इसलिए आत्मा की दृष्टि इसे होगी नहीं। समझ में आया?

देखो! राग से पकड़ में आये ऐसा इसमें नहीं कहा, भाई! यहाँ तो ज्ञान की एक समय की पर्याय है, अवस्था है, हालत, वह राग-द्वेष को जाननेरूप परिणमे, वह तो ज्ञान का पर्याय स्वभाव है। वस्तु का स्वभाव तो एकरूप त्रिकाल ध्रुव रहना है। एक समय की पर्याय राग-द्वेष आदि भाव सबको जाननेरूप परिणमने का स्वभाव है। उसमें से इसे अशुद्धता लगती है कि, यह राग का ज्ञान, यह द्वेष का ज्ञान कैसे हुआ? मुझमें यह क्या हुआ? उसे निकाल डालना चाहता है, तब तो आत्मा को जानने का स्व को जानने की पर्याय भी रहती नहीं। समझ में आया? कठिन, भाई!

'चित्परिणतेः' ज्ञानगुण की पर्याय, उससे भिन्न अर्थात् ज्ञेय को जाननेरूप परिणति के बिना, वस्तुमात्र कूटस्थ होकर रहे,.... ऐसा अज्ञानी मानता है। अरे! मुझमें यह परवस्तु जो ज्ञात होती है दशा में, उसके बिना का मैं अकेला कूटस्थ ध्रुव रहूँ, ध्रुव रहूँ और यह पर्याय ही न रहे तो मुझे सत् जाना कहलाये, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? **ज्ञेय को जाननेरूप परिणति के बिना,....** मेरे ज्ञान की दशा में पर जाननेयोग्य जो वस्तु है, उसके बिना मैं अकेला कूटस्थ ध्रुव रहूँ। अनित्य को नहीं मानता न? **ऐसा कुछ विपरीतपना मानता है, एकान्तवादी।** ऐसा एकान्तपक्ष से देखनेवाला, अकेला कूटस्थ ध्रुव को ही माननेवाला परन्तु उस पर्याय का स्वभाव भी तेरा ही अनित्यरूप से परिणमित क्षणिक विनाशी हो, ऐसा धर्म भी तेरा है। अविनश्वर धर्म द्रव्य का है, ऐसा पर्याय का, परिणमन का विनश्वर धर्म, पलटता धर्म भी तेरा है। आहाहा! अकेला अविनश्वर को मानने जाता है, वहाँ विनश्वर ऐसी पर्याय द्वारा जो द्रव्य पकड़ में आता है, उस विनश्वर पर्याय को ही नहीं मानता। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात! इसने सब विद्या पढ़ी। पढ़-पढ़कर एल.एल.बी. के पूंछड़े लगाये। एम.ए. के और अमुक के यह क्या तुम्हारे कहलाते हैं? एम.ए. के न? एम.बी.बी.एस. के। धूल में भी नहीं कुछ।

यहाँ तो दूसरी बात करते हैं अकेली विद्या नहीं, परन्तु पूरी दुनिया के द्रव्यों का ज्ञान हुआ अन्दर, एक समय की पर्याय का। इतनी ताकतवाला तेरा विनश्वर परन्तु अनित्य भी परिणमन तेरी पर्याय। ऐसी पर्याय में से तू अन्ध होना चाहे, उस पर्याय में यह कैसे ज्ञात हो? मुझे तो अकेला कूटस्थ ध्रुव रहना है और यह सब ज्ञात होता है, वह

मुझे अशुद्धता लगती है। ऐसी अशुद्धता माननेवाला अपनी निर्मलपर्याय को नहीं मानता। वह निर्मलपर्याय द्वारा द्रव्य को पकड़ा जा सकता है तो वह नित्य और अनित्य दोनों इकट्ठे होकर प्रमाणज्ञान हो, उसे वह मानता नहीं। लॉजिक भारी सूक्ष्म है, हों! आहाहा! चौदह बोल तो भी ऐसे हैं न..! चौदह बोल तो चौदह गुणस्थान के ऊपर पार कर दे! सिद्धपद करे ऐसा है, लो! आहाहा! शशिभाई!

कूटस्थ आत्मा... कूटस्थ, परन्तु कूटस्थ है, यह निर्णय किसने किया? कूटस्थ कूटस्थ को निश्चित करे? कूटस्थ अर्थात् क्या? ध्रुव। ऐसे शिखर होता है न? पर्वत पर शिखर ऐसे का ऐसा पड़ा हो, शिखर ऐसा का ऐसा पड़ा हो। उसी प्रकार आत्मा को ऐसा का ऐसा पड़ा रहे, ऐसा निर्णय करना चाहता है। परन्तु वह अन्दर की पर्याय बिना निर्णय करेगा कौन? पानी पानीरूप से कायम रहकर पानी के प्रवाह की तरंग उठती है, तरंग उठती है। यह तरंग है, उसकी अवस्था है। पानीपना कायम रहना उसका वह ध्रुवपना है। इसी प्रकार भगवान आत्मा गुण की शक्तिरूप से ध्रुव, ज्ञान गुण की शक्तिरूप से ध्रुव त्रिकाल है। पानी जैसे त्रिकाल एकरूप है, उसी प्रकार। तरंग उठती है, उसके अन्दर अवस्था में तरंग उठती है। जानने की दशा की तरंग उठती है, जिसे भगवान पर्याय कहते हैं और उसे यहाँ नित्य की अपेक्षा से अनित्य कहते हैं। वह अनित्यपने की पर्याय में विनश्वर होने योग्य पर्याय है, तथापि वह पर को जानने की जो वस्तु को जानने की पर्याय है, उसमें से निकाल डालकर अकेले अविनश्वर को ही मानने जाये तो उस विनश्वर पर्याय बिना अविनश्वर पकड़ में आयेगा नहीं। पर्याय में वह तो अपना धर्म इतना। इतने धर्म की पर्याय भी अभी स्वीकार नहीं करे, उसे ऐसे अनन्त... अनन्त... पर्याय का पिण्ड भगवान द्रव्य, उसकी अन्दर में स्वीकृति उसे नहीं आ सकती। आहाहा! समझ में आया? वह यह तो ज्ञान की कसरत है। आहाहा! यह ज्ञान की व्यायामशाला है। भगवान सर्वज्ञ ने कहा हुआ विज्ञान, उस विज्ञान की व्यायामशाला है। उसमें कसरत किये बिना यह आत्मा कैसा है, यह हाथ आयेगा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

'किञ्चन वाञ्छति' अर्थात् **कुछ विपरीतपना मानता है,...** ऐसा एकपक्षी कुछ विपरीतता मानता है। मुझे तो अत्यन्त अविनाशी ही रहना है। परन्तु अविनाशी रहना है,

यह निर्णय कौन करेगा? यह पर्याय में निर्णय होता है या अविनश्वर ध्रुव में यह निर्णय होता है? तो पर्याय में जो पर इतना स्वभाव है, अनन्त द्रव्य को जानने का, उसे तो नाशवान मानकर, अनित्य मानकर अशुद्ध मानता है, उसे तो अशुद्ध मानता है। कहो! इसका अर्थ कि वह नाशवान है। पर को जाने, इतनी पर्याय अनित्य है, इसलिए अशुद्ध है, ऐसा। उसमें से निकालकर अकेला नित्य ध्रुव हो जाऊँ। परन्तु किस प्रकार होगा तू? समझ में आया?

एकान्तवादी। ज्ञान को ऐसा करना चाहता है... सवेरे तो आया था न? भगवान आत्मा, आत्मा के अतिरिक्त अनन्त परपदार्थ के काम तो न करे परन्तु अनन्त को अनन्त में अनन्त उसके काम में भी न आवे। इतनी बात तो ठीक। अब यहाँ तो वापस दूसरी बात आयी। अब तो ज्ञान की वर्तमान दशा जो काम आवे ऐसी है, जिसमें कार्य होता है, जो काम होता है, उसमें ही काम होता है, काम कहीं द्रव्य में नहीं होता। क्या और काम हो? यह क्या होगा? भाई! वस्तु भगवान आत्मा सत् चिदानन्द अनादि-अनन्त महन्त वस्तु महान पदार्थ है, उसकी वर्तमान दशा उसका काम है। वह काम आत्मा का उसमें होता है। वह काम होता है, उसे पर्याय कहते हैं, त्रिकाल वस्तु को द्रव्य कहते हैं। उस त्रिकाल वस्तु में से जो वर्तमान अंश का परिणमन हुआ, उसमें अनन्त द्रव्य जाननेयोग्य पदार्थ को जानने का काम हुआ, वह तो पर्याय का कार्य—पर्याय का धर्म है। उस कार्य को निकाल डालना चाहे तो कारण वस्तु को पकड़नेवाली पर्याय तो रहती नहीं। समझ में आया? स्थिर हो जाये ऐसा है न! जरा विचार करे तो स्थिर हो जाये ऐसा है। क्या कहते हैं यह वह?

भाई! यह वस्तु है न? भाई! वस्तु है, महान पदार्थ बड़ा, आत्मपदार्थ बड़ा पदार्थ महान है। अब वह महान पदार्थ है ध्रुव, उसकी वर्तमान उसकी तलहटी, उसकी पर्याय—दशा कुछ है या नहीं? समझ में आया? उसकी अवस्था है या नहीं? हालत है या नहीं? या हालत बिना की वह चीज़ है? हालत बिना की हो तो हालत में कार्य दिखता है (कि) यह वस्तु है, हालत में ज्ञात होता है कि यह है और हालत में ज्ञात होता है कि यह है। क्या कहा?

भगवान चैतन्यज्योति वस्तु है, उसकी वर्तमान ज्ञानदशा में यह भी ज्ञात होता है

और उस दशा में यह ऐसा ज्ञात हो। वस्तु में वस्तु ज्ञात नहीं होती। वह ज्ञान की पर्याय की दशा है, उसमें पर जानता है इतना है। उसे इसे जानने के लिये अकेला कूटस्थ करना चाहता है। परन्तु उस पर्याय का स्वभाव ही अनन्त द्रव्य को जाननेरूप परिणमने का ऐसा स्वभाव है। उसे निकाल डालेगा तो उसे जानने का यह जो ऐसा है, वह पर्याय कहाँ गयी? उसके जानने को निकाल डालना चाहता है, उसे जाननेवाली वह पर्याय है, अब वह रही तो नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : धन्धे में विचार करता हो तो—

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धे में क्या करता था? वह तो राग-द्वेष करे। धन्धे में धूल भी करता नहीं। यह तो कहा नहीं सवेरे? क्या किया इसने अनादि से? विकल्प किये। राग और द्वेष, पुण्य और पाप और मैंने किया, ऐसा माना। करता कौन है? धूल। तीन काल तीन लोक में आत्मा आँख की पलक फिरा नहीं सकता।

मुमुक्षु : कब? बीमार हो तब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! तीनों काल में। बीमार क्या, पर से तो सदा बीमार ही है। आत्मा सदा ही पर से पंगु है। समझ में आया? यह पलक फिराना, वह जड़ की क्रिया, वह तो जड़ का पदार्थ है, जड़ पदार्थ है, पर अजीव मिट्टी है, धूल है। उसका ऐसा हिलना-फिरना वह आत्मा से होता है? वह तो पर है। उसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। उसका जानने का हुआ, उसे निकाल डालना चाहे तो निर्मल पर्याय निकाल डालने से पर्यायवान त्रिकाल है, उसे अनुभव कर सकेगा नहीं। जितना निकाल डालने जैसा हो, उसे निकाले परन्तु ज्ञान की पर्याय निकाल डालनेयोग्य है? आहाहा! अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया?

ज्ञान को ऐसा करना चाहता है... अब विशेष कहते हैं। यह आत्मा के ज्ञान—ध्रुव को अज्ञानी ऐसा करना चाहता है। **'टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया'** ऐसे आशय से ज्ञान को ऐसा करना चाहता है। **सर्व काल एक समान,...** क्या कहते हैं? देखो! एक समय की अवस्था है न? ज्ञान की एक समय की दशा है न? उसमें यह ज्ञात होता है न? उसकी अशुद्धता में यह अनित्यपना और अशुद्धता ही मानता है। उसे निकाल

डालकर एक समान सर्व काल एकरूप रहूँ। यह पलटना क्या? यह बदलना क्या? समझ में आया? ऐसा सर्वकाल एक समान **समस्त विकल्प से रहित,...** यह भेद से रहित। यह ज्ञान की पर्याय में सब ज्ञात हो, ऐसी एक समय की पर्याय, ऐसे भेद से रहित।

ज्ञानवस्तु के (त्रिकाल वस्तु) प्रवाहरूप जीववस्तु हो,... त्रिकाल वस्तु एकरूप रहो। ज्ञान पदार्थ '**विसराकार' प्रवाहरूप जीववस्तु हो, ऐसा करने की अभिलाषा करता है।** अज्ञानी एकरूप वस्तु त्रिकाल रहो और एक समय की अवस्था निकाल डालकर मैं ध्रुव एकरूप रहना चाहता है परन्तु ऐसी कोई वस्तु एकरूप रहे, ऐसी है नहीं। अवस्था सहित एकरूप त्रिकाल रहे, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? ऐसा धर्म कैसा? धर्म में होता है कि भाई! यह व्रत पालो, दया पालो, भक्ति करो, अपवास करो, सूर्यास्त पूर्व भोजन करो, कन्दमूल नहीं खाना और ऐसा सब (होता है)। अरे... सुन न अब। खाये कौन और पीवे कौन? वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया? छोड़े कौन और रखे कौन? वह पदार्थ तो पर है। उसे मैं छोड़ूँ, यही मिथ्यादृष्टि है। उसे मैं जानूँ—ऐसी पर्याय निकाल डाले तो मिथ्यादृष्टि है और वह पर्याय उसे छोड़े, ऐसा पर्याय धर्म में नहीं है।

परवस्तु को छोड़ूँ, ऐसा ज्ञान की पर्याय का धर्म नहीं है। उसे जानने का धर्म है। यह गयी, यह रही, यह हुई, यह टूटी, यह उत्पाद हुआ, व्यय हुआ या टिका रहा। ऐसा ज्ञान की पर्याय का उसे जानने का स्वभाव है। उसके बदले ज्ञान की पर्यय को ऐसा काम सौंपे (कि) इसे छोड़ूँ, इसे लूँ, इसे दूँ, इसे त्यागूँ... मूढ़ है। तेरी ज्ञान की पर्याय का धर्म भी तुझे खबर नहीं तो एक समय का त्रिकाल ध्रुव भगवान है, उसके स्वभाव की तुझे खबर नहीं। समझ में आया? कहो, जमुभाई!

व्यायाम में बड़े मलिदा उठाना हो न? छोटे लड़के को कठिन पड़े। मगदल। लकड़ी के उठाते हैं या नहीं बड़े? प्रेम हो तो वह सब करे। ऐसा (करे), और ऐसा (करे)। ऐसा करे तब ऊँचा हो, नहीं तो एक साथ ऐसे एकदम ऊँचा करना हो तो नहीं हो, इसलिए थोड़ा हिलावे ऐसे। इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय को बराबर कसरत से हिलानी चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान! हे आत्मा! भाई! तेरे सत् स्वरूप की मर्यादा इतनी है, इतनी है, ऐसी है और ऐसा है कि त्रिकाल ध्रुवरूप से रहने पर भी वह ज्ञान की एक समय की दशा में अनन्त परपदार्थ को जानना, वह तेरी पर्याय की अवस्था का मर्यादा धर्म है। वह मर्यादा अर्थात् उसकी हद ही ऐसी है। उसमें से तू यह अशुद्ध गिनकर या क्षणिक गिनकर या अनित्य गिनकर नित्य रहना चाहेगा तो वह अनित्य टलेगा नहीं और नित्य तुझे ख्याल में आयेगा नहीं। समझ में आया? आहाहा! अकेला ज्ञानमार्ग। परन्तु वस्तु ज्ञान है। मार्ग ज्ञान, कार्य ज्ञान, वस्तु ज्ञान, कारण ज्ञान, कार्य ज्ञान। आहाहा!

अज्ञानी अपने एकरूप स्वभाव को करना चाहते हुए अनेकपने की वर्तमान दशा में अनेकपने परिणमनेवाला ज्ञान, उसे निकाल डालना चाहता है, वह अपने आत्मा को श्रद्धा में शून्य करता है। समझ में आया? **उसका समाधान करता है स्याद्वादी....** यह अज्ञानी ऐसा मानता है, उसके सामने सम्यग्दृष्टि, धर्मी जीव, केवलज्ञानी परमात्मा या सन्त या सम्यग्दृष्टि जीव धर्मी उसका समाधान करते हैं। भाई! तू भूल में पड़ा है, तेरी दशा में भूल में चढ़ गयी है। दूसरा सब तेरा नहीं, ऐसा हम कहते हैं, उसके सम्बन्धी का ज्ञान भी तेरा नहीं है, यह तू अतिरेक में चला गया। समझ में आया? समझ में आया?

हमने तुझे ऐसा कहा कि भाई! दूसरे के काम तेरे नहीं, दूसरी चीज़ तेरी नहीं, दूसरे को तुझसे कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसा हम जहाँ कहते थे, फिर तू (कहता है कि) दूसरे सम्बन्धी का ज्ञान भी मेरा नहीं।

मुमुक्षु : सामने ज्ञेय भी समान और ज्ञान भी समान।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका समान हुआ? ज्ञान की पर्याय वह तो जानने का स्वभाव हुआ। जानता है बस इतना। समान कहा? यह एक समय में है और वह तो त्रिकाली चीज़ है। वह बड़े क्षेत्र में है और यहाँ तो एक समय की पर्याय के क्षेत्र में है, कहो, समान कहाँ है इसमें? क्या कहा? ज्ञान की अवस्था में यहाँ आत्मा का जितना क्षेत्र उतने में यह ज्ञान की अवस्था है और उस अवस्था में तो यह बड़े-बड़े क्षेत्र, इतने इतने लम्बे बड़े सभी ज्ञात होते हैं। उस क्षेत्र में ज्ञान गया नहीं। कहो, समझ में आया?

देखो! इस आँख में यह बड़े नीम दिखते हैं न? पर्वत के ऊपर जब खड़ा होता

है, (तब) कितना लम्बा दिखता है? (आँख) है तो इतने में। यह लम्बा दिखता है, इतना बड़ा हो जाता है यह? और इतना बड़ा यहाँ उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ ज्ञात होता है, परन्तु वह वस्तु यहाँ आ गयी है? तब तो इतना बड़ा हो जाये। आँखें बड़ी ऐसी हो जाये। उसे खबर नहीं कि मेरे क्षेत्र में मेरी ज्ञान की अवस्था क्षेत्र में रहने पर भी बड़े क्षेत्र को जानने पर भी ज्ञान की पर्याय उस पर के क्षेत्ररूप नहीं होती। आहाहा! इसी प्रकार पर के द्रव्य-गुण और पर्याय को जानने पर भी पर के द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वह ज्ञान दशा नहीं होती। यह तो समान मानकर कहा, इसलिए इसका जवाब दिया। ऐसी वस्तुस्थिति है।

कहते हैं, ऐसी अभिलाषा करता है, उसे अज्ञानी कहते हैं। **'स्याद्वादी ज्ञानं नित्यं उज्ज्वलं आसादयति' स्याद्वादी अर्थात् अनेकान्तवादी,...** अर्थात् कि वस्तु ध्रुव है, उसे मानता है, और एक समय की ज्ञान की पर्याय में अनन्त ज्ञात हो, ऐसी पर्याय को भी मानता है। वह अनेकान्तवादी दोनों को स्वीकार करनेवाला। त्रिकाल वस्तु को माननेवाला और वर्तमान ज्ञान की अवस्था में अनन्त ज्ञात हों, ऐसा भी मेरा अनित्य क्षणिक पर्यायधर्म है, उसे भी माननेवाला। उसे अनेकान्त अर्थात् दोनों धर्म को (माननेवाला), अनेक अन्त (अर्थात्) ध्रुव और पर्याय दोनों धर्म को माननेवाला, उसे अनेकान्तवादी कहते हैं।

ज्ञानमात्र जीववस्तु को सर्व काल एक समान, समस्त विकल्प से रहित, स्वादरूप अनुभवता है। पहले तो सिद्धान्त रखा फिर उसका कारण रखेंगे। समझ में आया? क्या कहा? धर्मी जीव। अनेकान्तवादी अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव। ज्ञानमात्र अर्थात् वस्तु त्रिकाली आनन्दकन्द हूँ, ऐसा सर्व काल एक समान मेरा स्वरूप है, और **समस्त विकल्प से रहित....** अर्थात् कि ज्ञान में पर जानने पर भी त्रिकाल नित्य की अवस्था को पकड़ता निर्मल ज्ञान सर्व **विकल्प से रहित...** वह ज्ञानपर्याय विकल्प रहित है। पर को जानने पर भी उस अनित्य पर्याय में विकल्प आया नहीं। ज्ञान की पर्याय में पर का जानना होने पर भी वह राग आया नहीं। ऐसे **समस्त विकल्प से रहित, आस्वादरूप अनुभवता है।** भगवान आत्मा नित्य हूँ, उसका वर्तमान पर्याय में अनन्त का ज्ञान होने पर भी उस राग बिना का हूँ, ऐसा ज्ञान द्वारा अन्तर आत्मा को पकड़ने से पर्याय में अनन्त आनन्द का वेदन होता है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं।

'**आसादयति**' है न? पहले में क्या आया? जो नित्य वस्तु है, उसकी समय की अवस्था में अनित्यपना है, उस अनित्यपने को अशुद्धपना मानने से उस वस्तु के स्वरूप को स्वाद में लेना, वह पर को जानने पर भी ज्ञान की पर्याय निर्मल है, उस निर्मल पर्याय में परवस्तु को भले निकाल डाली, परन्तु पर्याय निकाली नहीं। उस पर्याय द्वारा आत्मा को अनुभव करना चाहिए, ऐसा न मानकर अशुद्धता निकाल डालने से उसे दु:ख का ही वेदन अकेला रहता है। समझ में आया? और ज्ञानी को मेरी एक समय की ज्ञान अवस्था सबको जानने पर भी वह तो निर्मल ही ज्ञान है, वह राग बिना का ही ज्ञान है। राग को जानता ज्ञान तो भी ज्ञान तो राग बिना का है। ऐसा जानने से उस निर्मल ज्ञान द्वारा आत्मा की दृष्टि करके निर्मल पर्याय को आनन्द को आस्वादता है। उसका नाम अनेकान्त अमृत कहलाता है। बहुत सूक्ष्म, भाई!

वस्तु की पर्याय में निर्मलता की पर्याय, उसने राग बिना की जानी है, राग बिना की है। राग का ज्ञान भले हो। ऐसी पर्याय को मानता हुआ, उस पर्यायसहित द्रव्य त्रिकाल शुद्ध है, उसे अनुभव करता है। कहो, समझ में आया? कठिन बातें, भाई! ज्ञान को गूँथना पड़ेगा। यह रोटी बनाते हैं तो आटा को गूँथते हैं। ऐसे और ऐसे आटा बाँधेगा और पानी डालकर सीधे रोटी नहीं बनाने लगते। लगते हैं? गूंथना, नहीं तो रोटी व्यवस्थित नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। आटे में पानी डालकर बाँधो, और करो ऐसा और ऐसा।

मुमुक्षु : उसकी माँ हो या सासू हो वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है। माँ हो और सासू उसकी सिखावे कि ऐसा नहीं होगा, यह तो खाखरा होगा। ऐसा का ऐसा करने जायेगा तो खाखरा होगा, गूँथ तो रोटी होगी। वहाँ वह तो कहनेवाले होते हैं। इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं, भाई! तेरे आत्मा की पर्याय में निर्मलता है, वह पर को जानना, वह मलिनता नहीं है। इतनी निर्मलता द्वारा पूरा निर्मल भगवान, उसे अनुभव कर। उसे पकड़, ऐसा यहाँ कहते हैं, उसे गूँथ। आहाहा!

कहते हैं, धर्मी जीव परवस्तु का जानना, वह मेरा पर्याय धर्म है, ऐसा जानता हुआ वह पर्याय विनश्वर होने पर भी उस पर्याय को निर्मल मानकर, जाना है। इससे

त्रिकाल निर्मल भगवान आत्मा को पकड़ने के लिये निर्मल पर्याय जाती है। इससे उसकी पर्याय में आनन्द का, शान्ति का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु उस पर्याय में दूसरे का अशुद्धपना जानकर निकाल डालना चाहने पर, उस द्रव्य को पकड़ने की शक्ति न रही। वह अकेला मिथ्याभ्रम हो गया। भ्रम हो गया कि मैं पर से पृथक् पड़ गया, पर से पृथक् पड़ गया, ऐसा भ्रम हो गया। वह भ्रमणा को वेदता है। समझ में आया?

अब कहते हैं, **'अनित्यतापरिगमे अपि' यद्यपि उसमें पर्याय द्वारा अनित्यपना घटित होता है।** बापू! यह तो अमृत के, अमृत के शब्द हैं। यह अमृतचन्द्राचार्य के अमृत शब्द हैं। वचनामृत वीतराग के,

वचनामृत वीतराग के, परम शान्तरस मूल;
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल।

वचनामृत वीतराग के, परम शान्तरस मूल;
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल रे।
चैतन्य स्वामी, जागकर देख रे तेरे स्वरूप को।

वह तेरा स्वरूप अलौकिक है, भाई! तू जागकर देख तो सही कहाँ स्पर्शा कहाँ का कहाँ? आहाहा! भगवान के अमृत वचन हैं, हों! यह अमृतचन्द्राचार्य के अमृत वचन। अरे! प्रभु! तेरी क्रीड़ा में पर्याय की क्रीड़ा भले हो, परन्तु वह क्रीड़ा की पर्याय भी तेरी निर्मल है, भाई! हों! राग बिना और शरीर बिना का भले तूने माना, परन्तु उसके ज्ञान बिना का मानने जायेगा तो आत्मा दृष्टि में रहेगा नहीं। दृष्टि में भ्रम रहेगा। भ्रमणा रहेगी, भगवान दृष्टि में नहीं आयेगा। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु की एक समय की अवस्था में निर्मलपर्याय को अनित्यरूप से धर्मी जानता हुआ। है न? **'अनित्यतापरिगमे अपि'** भले क्षणिक अवस्था क्षणिक रहनेवाली अनित्यरूप से परिणमनेवाली ऐसी होने पर भी, **कैसा है स्याद्वादी ? 'तत् चिद्वस्तु अनित्यतां परिमृशन्'** आहा! देखो! उसमें भी आया था न? **'परिमृशन्'** वहाँ **'नित्योदितं परिमृशन्'** था। **'नित्योदितं परिमृशन्'** यहाँ **'अनित्यतां परिमृशन्'** भगवान आत्मा अपनी निर्मलपर्याय अनित्य होने पर भी निर्मल ही है, ऐसी अनित्यता को जानता

हुआ **पूर्वोक्त ज्ञानमात्र जीवद्रव्य को,....** ध्रुव वस्तु को निर्मलपर्याय द्वारा **विनश्वररूप अनुभवता हुआ।** क्या कहा? जीवद्रव्य को वस्तुरूप से त्रिकाल और **अनित्यपने विनश्वररूप अनुभवता हुआ।** भगवान ध्रुव होने पर भी पर्याय में अनित्यरूप से विनश्वररूप से अनुभवता हुआ, वह अपनी आत्मा की दशा में वस्तु को अनुभवता हुआ पर्याय के क्रम में विनश्वर होने पर भी उसे निर्मल जानता हुआ, वस्तु को निर्मलरूप से अनुभव करता है। समझ में आया? '**परिमृशन्**' लो! अनित्य को समस्त प्रकार से अनुभव करता है। क्योंकि अनुभव तो पर्याय का है न? द्रव्य का अनुभव नहीं। द्रव्य तो कूटस्थ ध्रुव है। पर्याय निर्मल है, ऐसा जानता हुआ जीव ध्रुव को निर्मलपर्याय द्वारा अनित्य को अनुभव करता है। समझ में आया?

अरे! सच्ची समझण को एक ओर छोड़कर और इसके बिना की.... क्या कहते हैं ऊपर? ऐसे रखे वह। घर में क्या कहलाता है? टाँड। ऐसी सच्ची समझण छोड़कर टाँड (पर चढ़ा दी-उपेक्षित कर दी)। आहाहा! हो गया। बात सब करने लगे कि धर्म ऐसे होता है और धर्म ऐसे होता है। परन्तु अब तुझे कहाँ से धर्म सूझेगा? क्योंकि आत्मा तो ज्ञान की मूर्ति प्रभु है और उसकी पर्याय भी ज्ञान स्वभाव है। समझ में आया? उस ज्ञानस्वभाव को धर्मी अनित्यरूप से जानता हुआ नित्यपने की चीज़ को अनित्यपने द्वारा अनित्य को अनुभव कर रहा है। आहाहा!

'**अनित्यतां परिमृशन्**' **विनश्वररूप अनुभवता हुआ।** वस्तु तो पर्याय की होता है न? पर्याय निर्मल है। वह पर्याय निर्मल है। पर के जाननेरूप होने पर भी, वह तो मेरे लक्ष्य से हुई पर्याय है। वह कहीं परलक्ष्य से हुई नहीं है। समझ में आया? **किस कारण से?** कैसा अनुभव करता है? '**वृत्तिक्रमात्**' **पर्याय के क्रम के कारण अर्थात् कोई पर्याय होती है, कोई पर्याय नाश को प्राप्त होती है....** भाषा ऐसी। एक पर्याय जाये और एक पर्याय आवे। परन्तु क्रम से कहाँ है इसमें? शब्द आया था न? वह एक ही है।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा नित्य ध्रुव, उसकी एक समय की अवस्था हुई, दूसरे समय में गयी, दूसरे समय में नयी हुई। पर्याय में क्रम-क्रम पड़ता है उसमें। वस्तु अक्रम है त्रिकाल। एक साथ अनन्त गुण का पिण्ड ध्रुव है। पर्याय समय-समय में

क्रम-क्रम से होती है, एक साथ पर्याय सब होती नहीं। एक समय में हुई, दूसरे समय में दूसरी और तीसरे समय में तीसरी। ओहो! समझ में आया? यह विषय ही ऐसा है, चाहे जितना स्थूल करने जाये तो इसकी मर्यादाप्रमाण होगा या नहीं? वस्तु सूक्ष्म है, अरूपी है, उसके न्याय सूक्ष्म और बारीक होते ही हैं।

कोई पर्याय होती है, कोई पर्याय नाश को प्राप्त होती है.... अर्थात् क्या कहते हैं? मूल तो उत्पाद और व्यय कहना है। उत्पाद-व्ययरूप कहना है न? ऊपर पहली लाईन में कहा था न? भगवान आत्मा सत् चिद्रूप से ध्रुव होने पर भी, उसकी समय-समय की पर्याय, एक पर्याय-अवस्था उपजे, वह दूसरे समय में नाश होकर दूसरी उपजे। क्रमसर उपजे, उसे क्रमसर में अनुभवता है। क्रमसर उपजे उसे ज्ञानी क्रम-क्रम से पर्याय को अनुभव करता है।

ऐसे भाव के कारण। एक के बाद एक पर्याय उपजे, ऐसे पर्याय के भाव के कारण से। अविनाशी में से यह विनश्वर को अनुभवता है, ऐसा कहा न? विनश्वर को अनुभवता है, ऐसा कहा न? नाशवान पर्याय को अनुभवता है, ऐसा कहा न? क्यों नाशवान को अनुभवता है? कि पर्याय क्रमसर होती है। एक समय में होती है, वह दूसरे समय में नाश होती है। विनश्वर है। तो एक समय में हुई, उसे अनुभव किया, दूसरे समय में हुई उसे पहले की विनश्वर होकर दूसरी को अनुभव किया। ऐसा क्रम-क्रम से पर्याय का अनुभव धर्मी को सम्यग्ज्ञान में द्रव्य के लक्ष्य से क्रम-क्रम से एक समय में रहनेवाली होने पर भी क्रम-क्रम से उसका उत्पाद, ऐसा क्रम-क्रम से उसका अनुभव (करता है)। समझ में आया?

नाश को प्राप्त होती है—ऐसे भाव के कारण। ऐसा। ऐसा भाव। ऐसा भाव ही ऐसा (जीव) पर्याय का स्वभाव है। भवन—पर्याय का ऐसा एक समय में होना और दूसरे समय में नाश होना, दूसरे समय में होना और तीसरे समय में नाश होना, ऐसा ही उसका स्वभाव है। ध्रुव वस्तु नित्य एकरूप रहती है। पर्याय का तो एक के बाद एक विनश्वर होना, उत्पाद होना, विनश्वर (होना), उत्पाद होना—ऐसा ही उसका स्वभाव है। जीव इस प्रकार से विनश्वर होता है। एक समय में हुआ, उसका अनुभव, विनश्वर

हुआ तो दूसरे का हुआ तो दूसरा अनुभव। ऐसे पर्याय को—विनश्वर को अनुभव करता है। किस कारण से ? एक के बाद एक स्थिर होती है इसलिए।

भावार्थ इस प्रकार है कि पर्याय द्वारा, जीववस्तु अनित्य है—ऐसा अनुभवता है स्याद्वादी। लो ! योगफल किया। वस्तु द्रव्य से—वस्तु से नित्य है तथापि अवस्था द्वारा अनित्य है। उस अनित्य को अनुभव करता है। अनुभव अनित्य का होता है, नित्य का अनुभव नहीं होता। यह क्या और अनुभव नित्य का नहीं होता और अनित्य का होता है ? भाषा भी कौन जाने किस घर की होगी यह ? ग्रीक लेटिन (अटपटी) जैसी लगती है। अरे ! यह तो इसके घर की मूल की बातें हैं, परन्तु इसने कभी मेरी करके सुनी नहीं। आहाहा !

कहते हैं, भगवान आत्मा अपनी अनित्य पर्याय होने पर भी निर्मल ही है, मलिन नहीं, ऐसा जानकर वीतरागस्वभावी आत्मा की ओर लक्ष्य रखकर जो निर्मलपर्याय हुई, उसे अनुभव करता है। **ऐसा अनुभवता है स्याद्वादी**। लो! चौदह बोल हुए। अनेकान्त के चौदह बोल आज पूरे हुए। बहुत दिनों से चलते होंगे। कितने दिन (हुए) ? खबर नहीं, जिसने शुरु किया होगा उसे खबर होगी। १८ दिन हुए, ऐसा न ? कितने दिन हुए ? बाईस दिन हुए। ठीक ! कहो, समझ में आया इसमें ? अब श्लोक सोलहवाँ कहते हैं। यह चौदह श्लोक पूरे किये, पन्द्रहवाँ श्लोक शुरुआत का पहला था। स्याद्वाद की शुद्धि अर्थम् ऐसा पहला (श्लोक) शुरुआत (में) था। चौदह बीच में रखे, सोलहवाँ इनका योगफल का है। इससे सत्रहवाँ इससे योगफल का। ऐसा करके अधिकार पूरा करेंगे।

कलश - २६२

(अनुष्टुप्)

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ।।१६-२६२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'इति अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव' [इति] पूर्वोक्त प्रकार से, [अनेकान्तः] स्याद्वाद [स्वयं] अपने प्रताप से बलात्कार ही [अनुभूयते] अंगीकाररूप होता है, [एव] अवश्यकर। किनको अंगीकार होता है? 'अज्ञानविमूढानां' [अज्ञान] पूर्वोक्त एकान्तवाद में [विमूढानां] मग्न हुए हैं जो मिथ्यादृष्टि जीव उनको। भावार्थ इस प्रकार है कि स्याद्वाद ऐसा प्रमाण है, जिसे सुनतेमात्र (से) ही एकान्तवादी भी अंगीकार करते हैं। कैसा है स्याद्वाद? 'आतमतत्त्वं ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्' [आतमतत्त्वं] जीवद्रव्य को, [ज्ञानमात्रं] चेतना सर्वस्व, [प्रसाधयन्] ऐसा प्रमाण करता हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु है, ऐसा स्याद्वाद साध सकता है; एकान्तवादी नहीं साध सकता।।१६-२६२।।

कलश - २६२ पर प्रवचन

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ।।१६-२६२।।

'इति अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव' पूर्वोक्त प्रकार से,... पूर्व उक्त अर्थात् चौदह बोल में कहा, उस प्रकार से। पूर्व उक्त—पूर्व में कहा उस प्रकार से। चौदह बोल में कहा। लो! लगभग यह बाईस दिन से चलता है, कहते हैं। यह चौदह बोल। समझ में आया? **'अनेकान्तः' स्याद्वाद...** अर्थात् वस्तु द्रव्य से एक है, गुण-पर्याय से अनेक है; स्व से तत् है, पर से अतत् है; स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है; परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं; नित्य भी है; अनित्य भी है—ऐसे चौदह बोल हुए। लो! चौदह बोल कहने में मिनिट हुआ और दिन हुए २६।

ओहो! कहते हैं, यह **स्याद्वाद....** और '**स्वयं अनुभूयते**' यह वस्तु कहते ही स्व से है, तत् है, नित्य है और ऐसा कहने से अपने से ही **अपने प्रताप से बलात्कार ही अंगीकाररूप होता है,...** अनेकान्तपना ही वस्तु में सिद्ध हो जाता है। एक है, ऐसा कहते ही गुणरूप से अनेक है। तत् कहने से वह पर से नहीं, अपनेरूप से है और पर से नहीं। वस्तु है स्वयं से, ऐसा कहते ही परवस्तु से नहीं। इसी प्रकार आत्मा स्वक्षेत्र से है, ऐसा कहते ही परक्षेत्र से नहीं। अपने स्वकाल से है, वह पर से नहीं। अपने गुण से है, वह परगुण से नहीं। नित्य है, वह क्षणिक अनित्य भी पर्याय से है। द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य। ऐसा अनेकान्तपना अंगीकार होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सार कहा न! यह सार की ही गाथा कही। यह वस्तु किसी भी प्रकार से एक कहने से दूसरे बोल साथ में होते हैं, ऐसा अनेकपना वस्तु ही स्वयं अंगीकार कराती है। अनेकान्त स्वभाव ही स्वयं अनेकान्त को अंगीकार कराता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अपने प्रताप से... '**स्वयं**' की व्याख्या यह की। **अपने प्रताप से बलात्कार...** जोर से एक है वह अनेक है; तत् है, वह अतत् है; स्व से है, पर से नहीं—ऐसा अपने बल से, प्रताप से, जोर से अनेकान्तपना अंगीकार कराते हैं। '**अनुभूयते**' '**एव**' **अवश्य**। जरूर भगवान आत्मा है, ऐसा कहने से, '**है**' वह पर से '**नहीं**'। ऐसा वह है, उसमें अनेकान्तपना आ जाता है। है, तब उसे कहना पड़ा, '**है**' सबसे नहीं। अपने से है, पर से नहीं। ऐसा है कहने से पर से नहीं, ऐसा अनेकान्तपना उसमें आ जाता है। यह ऐसा ही उस वस्तु के स्वभाव में बल है, ऐसा कहते हैं। है मुझसे, उसमें दूसरी अपेक्षा रह गयी (कि) पर से नहीं। है कहते ही पर से नहीं, ऐसा अनेकान्तपना उसमें आ जाता है, इनकार करे तो भी आ जाता है। आहाहा!

मैं यह रहा। ऐसा कहा न कहीं? मैं यह रहा अर्थात् कि मेरे अतिरिक्त दूसरे बाहर हैं। मैं यह रहा, ऐसा कहा न? यह रहा, ऐसा कहते हैं न कहीं? ऐ... कहाँ है कि मेरे पास हूँ, ऐसा नहीं कहते अभी कहीं? इसके अतिरिक्त दूसरे बाहर रह गये। यह है,

उससे दूसरे बाहर रह गये। यह है कहते ही बाहर रह गये, ऐसा आता है। इसी प्रकार आत्मा है। है ही कहने से दूसरे अनन्त पदार्थों से नहीं। ऐसा है और नहीं, ऐसा ही अनेकान्तरूप से वस्तु का स्वरूप अंगीकार वस्तु कराती है। समझ में आया? **किनको अंगीकार होता है?** यह विशेष बात है। अज्ञानी को भी ऐसी वस्तु सिद्ध कर देते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०५, सोमवार, दिनांक-२७-१२-१९६५, कलश-२६२ से २६४, प्रवचन-२८२

स्याद्वाद कहो या अनेकान्त कहो। यहाँ अभी इस अपेक्षा से बात है। अनेकान्त अर्थात् क्या? कि एक आत्मा है, उसे ज्ञानमात्र कहा, तथापि वह ज्ञानमात्र ही है, ऐसा नहीं है। उसे ज्ञानमात्र कहते ही ज्ञानस्वरूप है और दूसरे स्वरूप से नहीं। ज्ञानमात्र कहने से तत्रूप से है और ज्ञेयरूप से नहीं। ज्ञानमात्र कहने से ज्ञान नित्य भी है और अवस्था से पलटता भी है, ऐसा ज्ञानमात्र कहने से उसमें अनेकान्त धर्म सिद्ध हो जाता है। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : अनेकान्त सिद्ध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध हो गया। आत्मा ज्ञानमात्र है। समझ में आया? देखो! ज्ञानमात्र की व्याख्या की है—चेतना सर्वस्व। है न? यह आत्मा है न, यह भगवान ने ज्ञानमात्र कहा है। तब कोई कहे कि, ज्ञानमात्र कहे, वह तो एक ही धर्म रह गया, उसे एकान्त हो गया, उसमें अनेकान्त वीतरागमार्ग तो अनेकान्त है। अनन्त धर्मों को सिद्ध करे, ऐसा तत्त्व है। तो ज्ञानमात्र कहने में अनेक धर्म तो अनेक कहाँ से आये? तब यह चौदह बोल कहे, उसमें यह आ गया। जो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वही ज्ञेयस्वरूप जाननेयोग्य पदार्थरूप नहीं। देखो! तत्-अतत् धर्म हो गया अन्दर। समझ में आया? इसमें तत्-अतत् क्या? ऐ... नेमिदासभाई! उसे यह दया पालना, यह तत् होगा; नहीं पालना अतत्, तब तो समझे। यह और तत्, अतत् क्या होगा?

उसे वस्तु क्या है? यह वस्तु है। आत्मा शरीर, कर्म से भिन्न एक वस्तु है, उसे यहाँ भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने अनन्त धर्मवाली कही है। अनेक अर्थात् अनन्त और अन्त अर्थात् धर्म। धर्म अर्थात् स्वभाव, धर्म अर्थात् स्वभाव। धर्म अर्थात् यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान, वह यहाँ बात नहीं है।

यहाँ तो वस्तु जो है, इसे ज्ञानमात्र भगवान ने कही। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। तब शिष्य को प्रश्न उठा कि भगवान तो ऐसा कहना चाहते हैं कि प्रत्येक वस्तु में अनन्त गुण और धर्म है। तो ज्ञानमात्र कहने से एकान्त नहीं आ जाता? समझ में आया? तो उत्तर दिया कि नहीं, एकान्त नहीं आता। ज्ञानवस्तु आत्मा चैतन्यध्रुव आत्मा है, ऐसा कहते ही

वह कर्म, शरीर आदि अथवा राग-द्वेष आदि जो जाननेयोग्य ज्ञेय है, उनरूप वह नहीं है। समझ में आया?

चैतन्य सूर्य भगवान आत्मा, ज्ञान सूर्य वह आत्मा, ऐसा कहते ही ज्ञेय जो राग-द्वेष शरीर, वाणी, मन आदि ज्ञात होनेयोग्य वस्तु, उसरूप वह नहीं है। हो गये दो धर्म, देखो! ज्ञानरूप से है तत् और ज्ञेयरूप से (नहीं) अतत्। तथा ज्ञानमात्र कहने से अपना द्रव्यरूप से ज्ञान है और परद्रव्यरूप से वह नहीं। ज्ञानमात्र कहने से वह ज्ञान अपने स्वक्षेत्र प्रमाण में है, और परक्षेत्र से नहीं। क्योंकि वस्तु हो, वह द्रव्य है, उसकी चौड़ाई है, उसकी शक्ति है और उसकी अवस्था है। तब वस्तु को जब ज्ञानमात्र कहा तो वह ज्ञान द्रव्य वस्तु, वस्तुरूप से एकरूप ज्ञायक है। वह ऐसा कहते ही परद्रव्य शरीर, कर्म आदि से (नहीं है)। द्रव्य अपने से है सत् और पर से असत्। ऐसे दो धर्म इसमें सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार ज्ञानमात्र कहने से अपना जो क्षेत्र—स्वक्षेत्र की चौड़ाई है, तत्प्रमाण है, परक्षेत्ररूप वह नहीं। ये दो धर्म हो गये। ज्ञानमात्र कहने से उसके गुणों का शक्तिरूप भाव, वह है और दूसरे द्रव्यों के शक्तिरूप भावरूप नहीं, यह दो धर्म हो गये। यह स्थूलरूप से कहते हैं, अन्दर में जरा दूसरी बात है। समझ में आया? और ज्ञानमात्र कहने से त्रिकाल एकरूप ज्ञान है, पर की अवस्था के कालरूप वह नहीं है। समझ में आया?

अब दूसरे प्रकार से। इसके चार बोल जो घटित किये है, इस प्रकार से लेते हैं। ज्ञानमात्र आत्मा कहने से एकरूप वस्तुरूप से आत्मा अस्ति है और उसके भेद, भेद का अंश, उसे सविकल्प अवस्था से ज्ञान और ज्ञानी, ऐसा भेद विचार करना, वह परद्रव्य है। वह एकरूप ज्ञान, वह परद्रव्य से नहीं है। ऐसे ज्ञानमात्र क्षेत्र कहने से, एकरूप क्षेत्र ज्ञान का है, उसरूप से अस्ति है। उस एक क्षेत्र के भेद लक्ष्य में लेना कि यह और यह, कि असंख्य प्रदेश या भेद, उस भेदरूप से विकल्प करने से वह परक्षेत्र हो गया। एकरूप की अपेक्षा से भेद करना, वह परक्षेत्र हो गया। उस परक्षेत्र से नहीं और स्वक्षेत्र से है, ऐसा आत्मा ज्ञानमात्र कहने से त्रिकाल, त्रिकाल एकरूप ज्ञानस्वरूप वह स्वकाल से अस्ति है और उसकी एक समय की अवस्थान्तर का लक्ष्य लेने से वह परकाल हो गया। परकाल का भेद हो गया, उस परकालरूप से नहीं। यह भी दो धर्म हो गये। और

आत्मा ज्ञानमात्र में अनन्त गुणमात्र भावरूप से है, ऐसा कहने से एकरूप है और उस भाव के भेद के विकल्प विचार करना कि ज्ञानरूप है या दर्शनरूप है, ऐसे भेदरूप की अपेक्षा से एकरूप भाव उस भेद की अपेक्षा से, भेद की अपेक्षा से यह तो कहो। यह अब चार बोल में आये, वह इसमें क्या कहना? भेद की अपेक्षा से नहीं। यह बात इतनी चलने के बाद पूछते हैं। परन्तु उलझन में आ जाते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐ नेमिदासभाई! धर्मचन्दभाई तो ऐसे हो जाते हैं। क्या जाने क्या होगा सामने? कैसे आयेगा? परन्तु इतने बोल कहे, बाद में पूछा।

भाव... भाव... भाव... स्वरूप से एकरूप है। उस भाव के दो प्रकार से विकल्प से भेद करना, उसरूप वह नहीं है। और वह ज्ञानमात्र वस्तु कहने से, ज्ञानमात्र कहने से वह ध्रुव भी ज्ञान-ज्ञान है और ज्ञानमात्र कहने से जानने की जो दशा है, जानने की दशा है, वह अनित्य है। ज्ञानमात्र कहने से वस्तुरूप से ध्रुव है परन्तु ज्ञानमात्र कहने से जो जानती है अवस्था, वह अनित्य है। समझ में आया? यह चौदह बोल कितने दिन हुए? २२ दिन। यह २२वें दिन का थोड़े में कहा इतना, लो!

'**इति अनेकान्तः**' अब आया देखो! क्या कहा? '**इति अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव**' '**इति**' अर्थात् **पूर्वोक्त प्रकार से...** यह कहा अभी इस प्रकार से। कहो, जमुभाई! घर की बात बहुत याद रहे। यह चौदह बोल कहे वे आदि। '**इति**' यह पूर्वोक्त। पूर्व-उक्त अर्थात् कहे अनुसार। '**अनेकान्तः**' अर्थात् **स्याद्वाद....** अर्थात् ज्ञानमात्र ऐसा कहते ही इसमें अनन्त-अनेक धर्म सिद्ध हो जाते हैं। यह कहे इस अपेक्षा से। यह '**स्वयं अनुभूयते**' **अपने प्रताप से बलात्कार ही अंगीकाररूप होता है,...** यह ज्ञानमात्र भगवान आत्मा कहने से उसमें बलात्कार अनेकरूप यह ज्ञानमात्र कहने से स्वयं अनेकान्त धर्म सिद्ध हो जाते हैं। समझ में आया? ओहोहो!

वस्तु अपने प्रताप से स्वयं। चैतन्य हूँ, चैतन्य हूँ—ऐसा कहने से चैतन्य हूँ, उसके स्वभाव से, उसके प्रताप से, अस्तित्व के बल से अनेक धर्म उसमें सिद्ध हो जाते हैं। धर्म अर्थात् स्वभाव, शक्ति। **अंगीकाररूप होता है, अवश्यकर**। ऐसा कहा। अवश्य। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से है, ऐसा कहने से उस ज्ञानस्वरूप का, कथन का भाव

जहाँ कहा, उसमें ही अनन्त धर्म सहज उसमें आ गये हैं। तब ज्ञान स्वरूप है, ऐसा साबित होता है।

अंगीकाररूप होता है, अवश्यकर। किनको अंगीकार होता है ? ऐसा कहते हैं। ऐसा ज्ञानमात्र स्वरूप भगवान आत्मा अनन्त अनेकान्त धर्मवाला, स्वभाववाला तत्त्व किसे अंगीकार होता है ? कि **'अज्ञानविमूढानां' पूर्वोक्त एकान्तवाद में मग्न हुए हैं जो मिथ्यादृष्टि जीव उनको।** जो कोई ऐसा माने कि, ज्ञानमात्र है, वह ज्ञानमात्र है, वह ज्ञेय से, पर से भी है। ज्ञानमात्र है अकेला ध्रुव ही है और अध्रुव नहीं। ज्ञानमात्र है, वह ध्रुव अनित्य ही है, नित्य नहीं। ज्ञानमात्र है वह अस्ति है, स्व से अस्ति है और पर से नास्ति, ऐसा नहीं मानते, ऐसे एकान्तवादियों को इस प्रकार से ज्ञानमात्र कहने पर उसके स्वभावों की सिद्धि अनेकरूप से करने पर अज्ञानी को अंगीकार होता है। अज्ञानी भी उसे स्वीकार करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

'अज्ञानविमूढानां' पूर्वोक्त एकान्तवाद में... विमूढ़। देखा ? **मग्न हुए हैं....** ऐसा। विमूढ़ हो गये, मग्न हो गये। आत्मा तो एक समय जितना ही है या अकेला ध्रुव ही है या तत् स्वरूप ही है, पर स्वरूप नहीं या पर स्वरूप नहीं और तत् स्वरूप है, तत् स्वरूप नहीं तो नहीं ही। ऐसा जो एकान्त मानते थे, ऐसे अज्ञानियों को भी वह ज्ञानमात्र वस्तु कहने से स्वयं अनन्त धर्मवाला तत्त्व अज्ञानी को सिद्ध होता है। अज्ञानी भी अन्तर्दृष्टि से स्वीकार करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि स्याद्वाद ऐसा प्रमाण है,... स्याद्वाद ऐसा कोई प्रमाण है। अपेक्षा से प्रत्येक धर्मों को सिद्ध करने की कथनशैली अथवा अनेकान्त उसका स्वभाव ऐसा प्रमाण है कि **जिसे सुनतेमात्र (से) ही एकान्तवादी भी अंगीकार करते हैं।** सुननेमात्र से उसे ख्याल आता है कि ओहो! यह तो बात अनेकान्त है। समझ में आया ? इसमें महा सिद्धान्त है। ज्ञानमात्र कहते ही वह राग-द्वेष और शरीर, कर्मरूप नहीं—ऐसा स्वभाव अज्ञानी को भी सिद्ध हो जाता है। ज्ञानमात्र कहने से जो ज्ञानमात्र जिस द्वारा ज्ञात हुआ, वह अनित्य सिद्ध होता है और ज्ञात होनेयोग्य वस्तु पूरी वह नित्य सिद्ध हो जाती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : .... कहना पड़ेगा न कि सुनने से अंगीकार कर लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अंगीकार करता है, तब सुना कहलाता है। ऐ... भीखाभाई!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप जो एक पक्षी—एकान्त मानता था, उसे ऐसा जहाँ कहा.... ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र। अर्थात् किससे रहित? ज्ञानमात्र अर्थात् क्या? तब किससे तू नहीं? पर से नहीं। ऐसा कहने से इसके ख्याल में यह बात आ जाती है। इसके ख्याल में आता है, तब इसने सुना कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु ही ऐसी है, ऐसा सिद्ध करते हैं यहाँ तो। देखो! ऊपर ऐसा कहा था न? वह वस्तु स्वयं अपने प्रताप से अंगीकार होती है, ऐसा कहा है। सुनने से नहीं, ऐसा वापस। पहले तो यह कहा था। क्या (कहा था)? पढ़ो पहले। **पूर्वोक्त प्रकार से स्याद्वाद अनेकान्त अपने प्रताप से बलात्कार ही अंगीकाररूप होता है, अवश्यकर।** अवश्य। यह वस्तु ही ऐसी है, वस्तु ऐसा पुकार करती है कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते ही परस्वरूप नहीं। ऐसा इसे ज्ञानमात्र का ज्ञान होने से ही ऐसा आश्रय हो जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ज्ञान स्वरूप (हूँ), ऐसा निर्णय करता है, वहाँ पर स्वरूप से हट जाता है। अर्थात् परस्वरूप नहीं, ऐसा उसमें निश्चित हो जाता है। वह वस्तु ऐसा निश्चित कराती है, ऐसा कहते हैं। नेमिदासभाई! क्या कहा?

स्वयं। ज्ञानमात्र कहा। सुननेवाले को ऐसा लगता है कि ओहो! ज्ञान ध्रुव है कायम और मैं जानता हूँ, वह तो पर्याय है, कार्य है। अर्थात् पर्याय सिद्ध होती है और ज्ञात होनेयोग्य पूरी चीज़ है, वह सिद्ध हो जाती है। वह स्वयं ज्ञानमात्र वस्तु कहने से, वह वस्तु ऐसा पुकारती है अर्थात् उसे सिद्ध हो जाती है, ऐसा कहते हैं। भीखाभाई! ऐसा नहीं कहा पहला। लो! देखो!

'इति अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव' बाद में तो निमित्त से कथन किया है। **'इति अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव'** ऐसा आत्मा स्वयं ज्ञानमात्र जहाँ जानता है, वह जानता है, वह जानता है, जानता है कि ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा कहते ही वह वस्तु ऐसी हो जाती है कि ज्ञानमात्र हूँ, वह ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय से नहीं। वह ज्ञानमात्र हूँ—ऐसा निर्णय

करने से वस्तु पुकारती है कि, मैं पर से नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ज्ञानमात्र हूँ—ऐसा कहते ही, ज्ञानमात्र कहते ही अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इस प्रकार से है और दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप से नहीं। वह ज्ञानमात्र वस्तु ऐसा पुकारती है, स्वयं पुकारती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानमात्र कहने से अन्तिम दो बोल रह गये न? पहले तत्-अतत् कहा। ज्ञानस्वरूप भगवान, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। वह वस्तु स्वयं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा जहाँ जानने की पर्याय हुई, तो उसे ख्याल में आया कि, ओहो! यह तो पर्याय तो अनित्य है। समझ में आया? पहले जानने में नहीं आता था और यह जानने में आया, वह पर्याय पलट गयी और जानना आया कि ज्ञान त्रिकाल ध्रुव है। वह ज्ञानमात्र कहने से नित्यानित्य वस्तु स्वयं सिद्ध कर देते हैं, वस्तु स्वयं सिद्ध कर देती है कि ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह तो वीतराग के शासन के कायदा हैं। विज्ञानघन, विज्ञान केवली का विज्ञान है। लोगों में यह वस्तु सुनने को नहीं मिलती, इसलिए ऐसा कहे कि हम ज्ञान हैं, हम आत्मा हैं परन्तु आत्मा तू है, ऐसा तूने किस प्रकार निश्चित किया? किस द्वारा निश्चित किया? क्या लक्ष्य में लेकर निश्चित किया? समझ में आया? किसमें रहकर निश्चित किया। हो गया। किसमें रहकर निश्चित किया? किस द्वारा निश्चित किया? पर्याय द्वारा। किसमें रहकर? कि मुझमें रहकर। पर में रहकर नहीं, पर से नहीं, परद्रव्य से नहीं, परभाव से नहीं। वह वस्तु ही ऐसा स्वयं पुकारती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्यों, देवानुप्रिया! हमारे वकील हैं न भाई! इसे पूछना चाहिए न वापस। जवान व्यक्ति है, जवान। यह वस्तु ऐसा पुकार करती है, कहते हैं। वस्तु ऐसी है। आहाहा!

'**इति**' समझ में आया? '**अनेकान्तः स्वयं अनुभूयते एव**' देखो! '**एव**' अर्थात् अवश्य। ऐसा कहा वापस। क्या कहा? आहा! अरे! इसने जरा विचार-भूमिका में यह वस्तु क्या है, कभी ले तो ख्याल आवे न? यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि भाई! इसे जहाँ ख्याल में आया कि यह ज्ञान, यह ज्ञान। वह ज्ञान ख्याल में आया तो इसका अर्थ कि कहीं से मैं हट गया हूँ, इसलिए ज्ञेय में मैं नहीं, इसमें मैं हूँ। समझ में आया? अर्थात् ज्ञेय से नहीं और इससे हूँ। कहीं से हटा हूँ, उसकी ओर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं, इसमें हूँ। मैं ज्ञानमात्र हूँ, वह वस्तु पुकार करती है। जानने की अवस्था

पहली थी वह दूसरी, दूसरी हो जाये, वह जानती है यह ज्ञान। यह जानने की अवस्था अनित्य है, वस्तु त्रिकाल नित्य है। वह ज्ञान स्वयं अपने अनेकान्त धर्म को सिद्ध करता है। अवश्य... अवश्य... अवश्य। ऐसा कहते हैं। देखो! **अपने प्रताप से बलात्कार ही 'अनुभूयत' अंगीकाररूप होता है, अवश्यकर**। समझ में आया? पश्चात् इसका अभी सुनने में स्पष्टीकरण किया।

'**अज्ञानविमूढानां**' किसे? किसे? कि **पूर्वोक्त एकान्तवाद में मग्न हुए हैं...** एक ही पक्ष में उसे ख्याल है। मानता है कि आत्मा हूँ, आत्मा हूँ। परन्तु वह आत्मा हूँ, वह किस प्रकार से है, इसका उसे ख्याल नहीं था। आत्मा हूँ। हूँ, पर से नहीं। बस! '**अज्ञानविमूढानां**' जीव को आत्मा ज्ञानमूर्ति, ऐसा कहते ही उसके ख्याल में वस्तु पुकारती है। ज्ञानमात्र हूँ, पररूप से नहीं। देखो तो सही कितना सिद्ध करते हैं! यहाँ तो अभी आत्मा... आत्मा करे और फिर वापस रागवाला और कर्मवाला और शरीरवाला... उसे कहते हैं कि समझता नहीं। समझ में आया?

वस्तु, ऐसा कहने से, भगवान आत्मा है, ऐसा कहते ही परद्रव्य, परक्षेत्र, परवस्तु, स्त्री, पुत्र, परिवार, सब आत्मायें, सब रजकण, धूल, पुद्गल उसमें नहीं हैं, उस द्वारा नहीं है, उसके काल से नहीं है, उसके क्षेत्र से नहीं है, उसकी शक्ति से नहीं है। समझ में आया? भाई! जरा मस्तिष्क को गूँथना तो पड़ेगा या नहीं? गूँथे बिना किस प्रकार से होगा? क्या होता है इसमें? यह तो मार्ग ज्ञानमार्ग है। समझ में आया? 'ज्ञान मार्ग निषेधते वे क्रियाजड़ यहाँ'। आया है न? वस्तु का स्वरूप क्या है इसकी समझण करे नहीं और समझण बिना यह करो, यह करो। परन्तु क्या? यह जिसे करना चाहता है, वह जड़ की क्रिया इसकी है नहीं और उस ओर का जो विकल्प उठता है पुण्य-पाप का, उसरूप यह ज्ञानस्वरूप नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानचैतन्य सूर्य (है, ऐसा) भगवान के मुख में निकला। ऐसा निकला न, उसको सामने सुनते हुए ऐसा लगे कि ओहो! मैं तो वस्तु हूँ, चैतन्यसूर्य हूँ। और मैं यह राग-द्वेषरूपी आस्रव तत्त्व और कर्म-शरीर आदि अजीवतत्त्व उसरूप से मैं नहीं हूँ, उसरूप से मैं नहीं हूँ। मुझमें मैं हूँ, वह मेरी वर्तमान पर्याय से ही जाननेयोग्य

हुआ हूँ। किसी राग से या संयोग से जाननेयोग्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने संक्षिप्त शब्दों में इतना भरा है! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग देव का, कहा हुआ पदार्थ वह वस्तु, वह अलौकिक वस्तु है। समझ में आया?

'**अज्ञानविमूढानां**' पर से मैं हूँ, मुझसे नहीं—ऐसा जो भाववाला अज्ञानी जीव, उसे भी ऐसा एक बार तो विचार में ज्ञान भगवान आत्मा है, ऐसा ही उसके लक्ष्य में आने पर अनन्त धर्मवाला, वह स्वयं द्रव्य में पड़ी हुई शक्तिवाला तत्त्व है, उसे ज्ञान में सिद्ध हो जाता है और द्रव्य को इस प्रकार से अंगीकार करता है। अंगीकार करनेवाली पर्याय है, अंगीकार करनेयोग्य त्रिकाल द्रव्य है। समझ में आया?

स्याद्वाद ऐसा प्रमाणभूत है,... यह स्याद्वाद अर्थात् वस्तु ऐसी कोई प्रमाण सिद्ध है, ऐसा कहते हैं। स्याद्वाद तो कथन है परन्तु वस्तु ऐसी कोई प्रमाण है, प्र-माण (अर्थात्) माप में आनेयोग्य द्रव्य और पर्याय ऐसी ही कोई चीज़ है **कि जिसे सुनतेमात्र ही एकान्तवादी भी अंगीकार करते हैं।** सुननेमात्र से उसे कहते हैं कि ओहो! ऐसा कहते थे कि हम आत्मा सब होकर एक हैं। यहाँ तो आत्मा उसमें एकाग्र दिखता है। समझ में आया? क्या कहा? ऐसा ज्ञानमात्र है, ऐसा कहते ही ऐसा एकाग्र (हुआ) तो इतने क्षेत्र में ज्ञान एकाग्र होता है। समझ में आया? ऐसे एकाग्र होता नहीं। अर्थात् परक्षेत्र से निराला इतने क्षेत्र में है, ऐसा निश्चित होता है। इतने क्षेत्र में अनन्त शक्तिवाला तत्त्व—भाव है, ऐसा निश्चित हो जाता है। इतने क्षेत्र में मेरी पर्याय का परिणमन इतने ही क्षेत्र में परिणमन और इतने ही क्षेत्र में त्रिकाली, दोनों मेरे इतने क्षेत्र में है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है स्याद्वाद? 'आतमतत्त्वं ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्' लो! **जीवद्रव्य को,...** जीवद्रव्य भगवान आत्मा—आत्मतत्त्व। इसे '**ज्ञानमात्रं' चेतना सर्वस्व,...** भाषा देखो! मात्र की व्याख्या की। चेतना ज्ञानमात्र। ज्ञान अर्थात् चेतना, चेतना, जानना-देखना... जानना-देखना... जानना-देखना... मात्र सर्वस्व। अर्थात् क्या कहा? भगवान अकेला ज्ञानमात्र सर्वस्व। वह राग-द्वेष, पुण्य-पाप, शरीर-वाणी बिल्कुल उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? सर्वस्व पूरा स्वयं, पूरा स्वयं। चैतन्यमात्र ज्ञान में सब अनन्त गुण भले साथ में (हों)। यहाँ तो ज्ञान सर्वस्व सब वह। ऐसे जीवद्रव्य को इस प्रकार (प्रमाण

करता है)। जीव है, वह द्रव्य और चेतना है उसका स्वभाव। समझ में आया? '**आतमतत्त्वं ज्ञानमात्रं**' दो बोल लिये न? भगवान आत्मा वह जीवद्रव्य वह चेतना-सर्वस्व। ज्ञान, ज्ञान—जाननेवाला वह सर्वस्व। '**प्रसाधयन्' ऐसा प्रमाण करता हुआ।** ऐसा निर्णय करता हुआ वस्तु प्रमाण सिद्ध कर देता है।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष हो गया। आहाहा! जुगराजजी! सेठिया आवे तो प्रसन्न होते हैं न! अब लाटरी लगी है, कहे। यह वस्तु देखो! आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर की कथन पद्धति भी ऐसी कोई है कि एक शब्द की ध्वनि उठे कि—आत्मा। वह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप। अर्थात् इसका अर्थ यह हो गया कि पुण्य-पाप स्वरूप नहीं। दया, दान और विकल्प उठे, उसरूप नहीं, कर्म, शरीररूप नहीं, दूसरे आत्माओंरूप नहीं। आहाहा! आचार्यों की पद्धति भी गजब किया है! सन्तों—दिगम्बर सन्तों, दिगम्बर मुनियों ने वस्तु की प्राप्ति करके विकल्प द्वारा भी कथन की पद्धति ऐसी पूर्ण स्वरूप को सिद्ध करे, ऐसी पद्धति है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अर्थात् तू कौन? कहते हैं कि **चेतना सर्वस्व....** तू कौन? मैं **चेतना सर्वस्व....** पूरा ज्ञान और दर्शनस्वरूप वह मेरा सब है। ऐसा कहते ही उसमें राग-द्वेष, पुण्य-पाप, व्यवहार विकल्प आदि (वह मैं नहीं)। देखो! व्यवहार आदि उसमें नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! गजब शैली है कोई! यह व्यवहार के विकल्प जिसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं न? व्यवहार है, वह पर हो गया। वह आत्मा के ज्ञान सर्वस्व में नहीं है। उसके निर्णय में भी वह व्यवहार नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान चैतन्यसूर्य, ऐसा महान पदार्थ चैतन्यसर्वस्व, आत्मा अर्थात् चैतन्यसर्वस्व। ऐसा लक्ष्य जाने से उसे व्यवहार के विकल्प शरीर, उसका उसकी पर्याय में भी अभाव है। द्रव्य में अभाव है, परन्तु निर्णय की हुई पर्याय में भी उसका अभाव है, ऐसा अनेकान्त वहाँ सिद्ध हो गया है। आहाहा! यह व्यवहार से भी होता है और निश्चय से होता है, यह अनेकान्त नहीं है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों नहीं रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों नहीं रहे। सिद्ध कुछ नहीं हुआ। भाई! क्या हो? परन्तु यह बात ही जहाँ ऐसी उल्टे रास्ते चढ़ गयी है।

मुमुक्षु : सुना भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं। ठीक कहते हैं। सुनने की योग्यता नहीं थी, इसलिए सुना नहीं। हमारे पण्डितजी दाँत निकालते हैं, (हँसते हैं)। लो, वे कहते हैं ऐसा, तब यह कहते हैं ऐसा। यह अनेकान्त स्वयं कहता है, वस्तु ऐसा कहती है, यह आत्मा... यह आत्मा। अहो! जानन... जानन... जानन... जानन... स्वभाव वह आत्मद्रव्य। ऐसा सिद्ध होने से अनेकान्त सिद्ध हो गया। अर्थात्? कि उसमें अनन्त शक्तियाँ, पर शक्ति से नहीं। वह तत्त्व विकाररूप पुण्य-पाप से नहीं। वह स्वयं परक्षेत्र में रहा हुआ नहीं। ऐसा सर्वस्व चैतन्यमात्र में कहने से उसे प्रमाण करता हुआ। कहो! यह '**आतमतत्त्वं ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्**'। इस प्रमाणज्ञान में सिद्ध हो गया। ज्ञान के प्रमाण में वस्तु और पर्याय दोनों ख्याल में आ (गये)। समझ में आया? वस्तु की पर्याय तो निर्मल, हों! पहली की यहाँ बात नहीं। आहाहा! जो निर्मल ज्ञानपर्याय द्वारा निश्चय हुआ तो पर्याय सिद्ध हो गयी, नित्य सिद्ध हो गया। वह निर्मलपर्याय और निर्मल ज्ञानानन्द में राग और विकल्प का अभाव आ गया। कर्म, शरीर का अभाव आ गया, ऐसा।

मुमुक्षु : भगवानरूप से सिद्ध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान वहाँ अन्दर निश्चय में सिद्ध हो गया, अन्दर आत्मा निश्चित हो गया। ओहो! ज्ञानपुंज वह आत्मा, ऐसा पर्याय से निश्चित किया। वह पर्याय निर्मल द्वारा निश्चय हुआ। वह पर्याय निर्मल द्वारा निश्चय हुआ, उसमें राग और शरीर आदि है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसा प्रमाण करता हुआ। क्या? स्याद्वाद कैसा है? अर्थात् अनेकान्त तत्त्व कैसा है? कि ज्ञानमात्र सिद्ध करते ही स्वयं अनेकान्त सिद्ध हो गया। **भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु है, ऐसा स्याद्वाद साध सकता है;...** स्याद्वाद में अपेक्षित बोलना है परन्तु उसमें वाच्य को यहाँ सिद्ध करना है। ज्ञानमात्र जीववस्तु सर्वस्व आत्मा ज्ञान स्वरूप है। उसका सर्व अपना, उसका सर्व अपना पूरा वह ज्ञान स्वरूप है। ऐसा स्याद्वाद

जो वस्तु को सिद्ध करता है। सुनाई देता है बराबर? खींचकर अभी बोली न, इसलिए सुनायी दे। **एकान्तवादी साध नहीं सकता।** एकान्त आत्मा को स्व से माननेवाला पर से नहीं माननेवाला, पर से नहीं माननेवाला, स्व से नहीं माननेवाला दो में से किसी पक्ष को एकान्त माननेवाला, वह ऐसी वस्तु को साध नहीं सकता। ओहोहो! समझ में आया?

दूसरे प्रकार से ऐसा कहा, कि यह वस्तु ऐसी है, कि सर्वस्व जिसका ज्ञानस्वभाव है। ज्ञानप्रधानता से बात ली है। उसमें अनन्त आनन्द सर्वस्व उसका स्वरूप है, उसका अनन्त... अनन्त प्रभुता उसका सर्व स्वस्व है, इसके पश्चात् इसमें शक्ति आयेगी। समझ में आया? इसके पश्चात् आयेगी यह २६४ से । ये दो गाथायें (कलश) भी अभी अनेकान्त का ही भाग है।

भगवान आत्मा ज्ञान अनन्त स्वरूप है, दर्शन अनन्त स्वरूप है, शक्तियाँ। प्रभुता सर्वस्व यह है, शान्ति सर्वस्व यह है, कर्ता आत्मा अपने गुण की पर्याय का वह कर्ता, वह सर्वस्व आत्मा है। भोक्ता आनन्द का, पर्याय का वह भोक्ता आत्मा सर्वस्व है। वह प्रभुता अपनी सामर्थ्यता, प्रभुता, परमेश्वरता, स्वतन्त्रता, यह प्रभुता वह आत्मा, प्रभुता वे सर्वस्व है। समझ में आया? ऐसा उसे आत्मा में इस प्रमाण सिद्ध होने से इस प्रकार अनेकान्त (सिद्ध होता है)। उसकी पर्याय ढलती है द्रव्य पर इसलिए द्रव्य और पर्याय दोनों को सिद्ध करते हैं। आहाहा! तथा राग और द्वेष निमित्त और संयोग सब ज्ञेय में गये। इसकी पर्याय में भी नहीं और इसके द्रव्य में तो है नहीं। कहो, प्रेमचन्दभाई! समझ में आया यह? मुश्किल से समझ में आये ऐसा है यह तो। बहुत हिम्मतभाई को पूछे जरा इसे पूछे तो हो। यह बात कहीं नहीं मिलती, लोगों को बेचारों को उल्टे रास्ते चढ़ा दिया है। कहीं पता लगता नहीं। कमाकर, भटककर मर जाते हैं।

कहते हैं कि अज्ञान को **एकान्तवादी नहीं साध सकता।** अर्थात् जो कोई राग और शरीरसहित वाला आत्मा मानता है और अकेला ज्ञान सर्वस्व प्रभुता की शक्तिवाला मानता नहीं, ऐसे जीव को यह वस्तु प्रतीति में—श्रद्धा में साध नहीं सकता। समझ में आया? यह श्लोक हुआ २६२।

कलश - २६३

(अनुष्टुप्)

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम्।
अलंघ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थित: ।।१७-२६३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'एवं अनेकान्त: व्यवस्थित:' [एवं] इतना कहने से, [अनेकान्त:] स्याद्वाद को [व्यवस्थित:] कहने का आरम्भ किया था, सो पूर्ण हुआ। कैसा है अनेकान्त? 'स्वं स्वयं व्यवस्थापयन्' [स्वं] अनेकान्तपने को, [स्वयं] अनेकान्तपने के द्वारा, [व्यवस्थापयन्] बलजोरी से (दृढ़तापूर्वक) प्रमाण करता हुआ। किसके साथ? 'तत्त्वव्यवस्थित्या' जीव के स्वरूप को साधने के साथ। कैसा है अनेकान्त? 'जैनं' सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत है। और कैसा है? 'अलंघ्यशासनं' अमिट है उपदेश जिसका, ऐसा है।।१७-२६३।।

कलश - २६३ पर प्रवचन

(अब) २६३।

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम्।
अलंघ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थित: ।।१७-२६३।।

अहो! **'एवं अनेकान्तः व्यवस्थितः' इतना कहने से स्याद्वाद को कहने का आरम्भ किया था,....** वस्तु को अनेक धर्मवाली कहने का जो शुरु किया था। भगवान आत्मा स्व से है, पर से नहीं, तत्रूप है, अतत्रूप नहीं, नित्य है, अनित्य है। नित्य है वह अनित्य नहीं परन्तु अनित्य भी है और नित्य भी है, ऐसे दोनों हैं। ऐसा जो शुरु किया था। **वह पूर्ण हुआ।** वह बात पूरी की। पूर्ण तो वास्तव में दो श्लोक कहते हुए करेंगे परन्तु यहाँ तो अनेकान्त की जो चीज़ उसे इस प्रकार से पूर्ण की है।

कहने का आरम्भ किया था,.... लो! **कहने का आरम्भ किया था,....** लोग नहीं कहते कि भाई! इस मकान की शुरुआत की थी, वह यह छह महीने में पार पड़ा। ऐसा

कहते हैं न कुछ? यह दुकान-बुकान के धन्धे और यह सब मजदूरी करते हैं या नहीं? इतने महीने से करते थे, अब पार पड़ा। अब कुछ ठिकाने पड़ा। यहाँ कहते हैं कि हम आत्मा की बात ज्ञानमात्र कहते थे परन्तु अनन्त धर्म उसमें सिद्ध होते हैं, यह बात शुरु की थी, वह यहाँ पूरी की गयी।

कैसा है अनेकान्त? 'स्वं स्वयं व्यवस्थापयन्' देखो! **अनेकान्तपने को अनेकान्तपने के द्वारा बलजोरी से (दृढ़तापूर्वक) प्रमाण करता हुआ।** लो! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से भगवान है, आनन्दस्वरूप से प्रभु आत्मा है, अस्ति सत्ता/होनापना अपने से अस्तित्व तत्त्व है, ऐसे जो अनन्त धर्म ऐसे अनेकान्तपने को, अनन्त धर्मों को स्वयं अनन्त धर्म द्वारा, अनन्त धर्म द्वारा **बलजोरी से प्रमाण करता हुआ।** उसके स्वभाव का सामर्थ्य ऐसा है, इस प्रकार से सिद्ध होता है। समझ में आया? बात ऐसी लगे। जाओ इसे ऐसा करो, जाओ इसे पालो, यह समझ में भी आये, अज्ञान। लो! भाई! एक मन्दिर बना दो, एक उपाश्रय बना दो, पाँच हजार, पच्चीस हजार रुपये दो। धूल में भी नहीं, सुन न! वह रुपये और पैसे, वे तेरे नहीं, इसलिए तुझसे उसमें कुछ होता नहीं और उस द्वारा तुझमें कुछ होता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा सुनना और वापस मन्दिर बनाना ऐसा विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? अपने आप होनेवाला होता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह विकल्प उठा, वह इसमें कहाँ है? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐई! रुपये की पर्याय से यह आत्मा है? और आत्मा की पर्याय से इसकी मन्दिर की पर्याय है? यहाँ विकल्प उठा, उसके कारण मन्दिर की पर्याय है? और विकल्प उठा, इसलिए यहाँ आत्मा की अन्दर में वस्तु है? आहाहा! गजब की बात! सर्वज्ञ परमात्मा ने वस्तु को देखा और ऐसी है। उसे सिद्ध करने की पद्धति भी गजब की! आहाहा!

कहते हैं, यह वस्तु ऐसी पुकार करती है। **'व्यवस्थापयन्'** अपने को स्वयं अनेकान्तरूप द्वारा। अर्थात् जहाँ-जहाँ आत्मा है, वह स्वयं प्रगट सिद्ध करता है कि मैं यहाँ इस पर की अवस्था द्वारा नहीं, पर का विकल्प उठा, उसके द्वारा भी मैं नहीं; मैं मेरे द्वारा, मेरे क्षेत्र में, परक्षेत्र में नहीं। ऐसा अनेकान्त वस्तु अनेकान्तपने से सिद्ध करता है। आहाहा! यह मन्दिर के अवसर पर भी जो विकल्प उठा, उसरूप मैं नहीं, ऐसा वस्तु

सिद्ध करती है, कहते हैं। कहो, समझ में आया? एक व्यक्ति कहता है कि ऐसा यदि समझ जाये तो हमारे उपाश्रय को ताला लगाना पड़े, ऐसा कहता है। प्रेमचन्दभाई! तुम्हारे गाँव में कहते थे। वे रतिभाई नहीं थे? वोरा... वोरा है न? है न? मास्टर। एक बार कहते थे कि यह महाराज कहते हैं न, मैं समझता नहीं, समझकर तो ताला लगाना पड़ेगा। परन्तु किसे ताला लगाये? सुन न! अज्ञान को ताला देना पड़े, कह। वस्तु की खबर नहीं होती और चल निकले।

यहाँ तो कहते हैं, यह छह काय के जीव हैं उन जीव में, वह जीव आत्मा में नहीं। यह उसे दया पालने का विकल्प उठे, वह भी आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? और आत्मा ज्ञान और आनन्द से सर्वस्व परिपूर्ण तत्त्व भरपूर है। ओहोहो! चिल्लाहट मचाये बेचारे, हों! पण्डित पढ़-पढ़कर पोथा। 'पण्डितो पीयो घर पानी' किसके घर में यह पानी? किसका है? परन्तु पीने से पहले पूछना था न? ढेढ का है, ले। अब क्या करेगा? कहे। समझ में आया? पहले पी लिया, फिर कहता है किसका घर है यह? वह कहता है कि, है तो भाई! चण्डाल का है। ऐसा घर कैसे? पैसेवाले हैं, पाँच लाख रुपये हैं मेरे। हाय... हाय! अब क्या करना? भाईसाहेब कहना नहीं हो किसी को। इसी प्रकार समझे बिना सीधे पीना लगा। इसी प्रकार समझे बिना धर्म करने लगा, धर्म। परन्तु कहाँ धर्म था?

ऐसा बना था हमारे, हों! एक थे। समझे न? आहार लेने गये। सथवारा और कोली के घर से ले आये। कोली के घर से छाछ (लाये हुए)। उतावलिया व्यक्ति और अच्छा घर देखा तो कोली में से छाछ ले आये। अब गाँव बड़ा और घर में आकर (हुआ कि) गाँव में खबर पड़ेगी, हों! कि मुझे... कोली के यहाँ से ले आया हूँ। मैं तो मानो सथवारा का घर होगा। वह सथवारा नहीं आते? किसान। मैं ले आया हूँ। तू किसी प्रकार बात वापस दबा देना। कहा, दिक्कत नहीं, दिक्कत नहीं। (संवत्) १९८० के वर्ष की बात है। बोटाद। समझ में आया? उतावला होकर दिशा को जाकर आवे न? बीच में कोली का घर (था तो) घुस गये अन्दर, पात्रा लेकर। लाओ छाछ है? तो कहता है। घर अच्छा देखा। डाली दस सेर छाछ। उपाश्रय में लाये। फिर पूछा, किसका घर है? कोली का। परन्तु अब क्या करोगे? फिर मुझसे बात की कि इस बात का ख्याल

आवे। कोई बाधा नहीं, तुम उलझो नहीं। यहाँ हम हैं न। इसी प्रकार धर्म करने से पहले आत्मा क्या है, वह समझा नहीं। हम धर्म करते हैं। परन्तु कैसा है आत्मा ? हमको खबर नहीं। कहाँ रहता होगा आत्मा ? राग-द्वेष में ? शरीर में ? कर्म में ? यह कुछ खबर नहीं, आत्मा है। बस!

मुमुक्षु : केवली भगवान जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली भगवान तो जानते हैं परन्तु तुझे खबर है या नहीं ? समझ में आया ?

यहाँ तो आचार्य महाराज कहते हैं कि **अनेकान्तपने के द्वारा बलजोरी से प्रमाण करता हुआ। 'व्यवस्थापयन्'** है न ? विशेष वस्तु स्वयं ही ऐसी प्रसिद्ध करती है। आहाहा! **किसके साथ ? 'तत्त्वव्यवस्थित्वा' जीव के स्वरूप को साधने के साथ।** तत्त्व अर्थात् जीव स्वरूप अनेकान्त स्वयं सिद्ध करता है। यह जीव ऐसा है। समझ में आया ? इस जीव को विकार और शरीर और कर्म के साथ अभावस्वरूप है। ऐसा चैतन्य पुकार (करता है), ज्ञायक हूँ, ऐसी पुकार करता तत्त्व ही स्वयं को अनेकान्तरूप से तत्त्व को व्यवस्थारूप से सिद्ध करता है। समझ में आया ? यह चैतन्य ज्ञायकमूर्ति है, ऐसा सिद्ध होने से वह स्वयं अपने अनेकान्तपने को अर्थात् परपने नहीं और स्वपने हूँ, वह स्वयं ही तत्त्व की व्यवस्था कर सकता है, कहते हैं। ओहोहो!

जीव के स्वरूप को साधने के साथ। कैसा है अनेकान्त ? 'जैनं' सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत है। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव, सौ इन्द्रों के पूज्य, जिनके तलिया चाटते इन्द्र, ऐसे सर्वज्ञदेव जिनकी वाणी समवसरण में निकली। सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, करोड़ों देवों और बारह सभा। बाघ और सिंह जिनकी सभा में बैठे थे, ऐसे भगवान ने उस वाणी से ऐसा कहा था। **'जैनं' सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत है।** आहाहा! समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान विराजते हैं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर समवसरण में वर्तमान विराजते हैं ऐसे। वर्तमान विराजते हैं। ऐसे अनन्त तीर्थंकर विराजते थे और यह विराजते हैं, उन्होंने कहा हुआ यह तत्त्व है। समझ में आया ?

केवली तो अनन्त काल से होते आये हैं या नहीं ? या केवली का विरह होगा

जगत में? क्या कहा? अनन्त काल है अनादि, ऐसे मिथ्यादृष्टि अनादि हैं, ऐसे केवली भी अनादि के हैं। केवलज्ञानी परमात्मा उनकी स्थिति प्रमाण अनादि के हैं। एक नाश हो तो दूसरे होते हैं। ऐसे सर्वज्ञ का इस जगत में अनन्त काल में किसी समय विरह नहीं हो सकता। मनुष्यरूप से केवलज्ञानी, हों! यह सिद्ध की बात नहीं है। प्रणीत शब्द है न? भाई! इसलिए जरा (लिया)।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर एक ज्ञान की पूर्ण दशा प्राप्त परमात्मा वीतराग अनन्त काल में कोई एक समय में सर्वज्ञ वीतराग न हों, ऐसा नहीं होता। अनादि काल से सर्वज्ञ होते आये हैं। एक सर्वज्ञ जाये, लाखों सर्वज्ञ सदा होते हैं, लाखों सर्वज्ञ सदा होते हैं। महाविदेहक्षेत्र में भी अभी लाखों सर्वज्ञ और बीस तीर्थंकर वीतराग परमेश्वर तीर्थंकर। वे पुण्यसहित सर्वज्ञ होते हैं, दूसरे सामान्य पुण्य बिना के सर्वज्ञ होते हैं परन्तु ऐसे सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत है, ऐसा भगवान आत्मा जिसने तीन काल, तीन लोक प्रत्यक्ष देखा है। आहाहा! वीतराग जहाँ सर्वज्ञदशा है, वहाँ इच्छा होती नहीं। वीतराग पूर्णानन्द प्रभु है। उसकी प्रणीत उसके मूल में से निकला हुआ ऐसा ततव है। उन्होंने देखा हुआ और उन्होंने जाना हुआ, ऐसा उनकी वाणी में आया हुआ, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ है न? इसलिए जाना, वीतराग भाव से जाना और जानकर यह तत्त्व ऐसा है, ऐसा देखा, ऐसा उसे प्रतीतम—कहा। समझ में आया? आहाहा!

घड़ीक में उसे ऐसा होना चाहिए कि मानो हम दूसरे देश में हैं। आहाहा! यह सर्वज्ञ, यह वीतराग, वीतराग हो, वह सर्वज्ञ होता ही है। वीतराग तो बारहवें (गुणस्थान) में अभी हो। परन्तु वह वीतराग हो, वह सर्वज्ञ होता ही है। इसलिए सर्वज्ञ हुआ वहाँ वीतराग हुए बिना होता नहीं। इच्छा का नाश होकर जहाँ सर्वज्ञ हुए, सर्वज्ञ, सर्वज्ञ अर्थात्? तीन काल, तीन लोक के तल जिसने एक समय में देखे। भूतकाल में जो जगत की दशायें हुई, वर्तमान में होती हैं और भविष्य में होगी, उन सहित के द्रव्य-गुण को भगवान ने एक समय में देखा। समझ में आया? वे सर्वज्ञ। और फिर वीतराग लिया है न? अर्थात् वीतराग तो पहले हुए, तब सर्वज्ञ हुए। उन्होंने प्रणीत-उन्होंने कहा हुआ आत्मा। वह तत्त्व ऐसा ही है। समझ में आया?

कैसा है अनेकान्त? वह **सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत है**। भगवान का कहा हुआ। वह

वस्तु का स्वरूप है, ऐसा भगवान ने कहा है और वस्तु का स्वरूप है, ऐसा भगवान ने जाना है। जाना है, वैसा है; है, वैसा कहा है। बहियों में तीन नामा होते हैं या नहीं? दायीं ओर इतनी रकम है, ७०३५ यहाँ है। पुस्तक में देखो! ७०३५ निकलते हैं? ज्ञान में ऐसा आता है। इसी प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में तत्त्व थैली में पड़े हैं। उसे केवलज्ञानी ने देखा, जाना, वह वाणी द्वारा कहा और वस्तु में है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। ऐसा तत्त्व ही है, ऐसा तो सर्वा भगवान ने भी कहा है। इसके अतिरिक्त अज्ञानी को पता लगा नहीं।

और कैसा है? 'अलंघ्यशासनं' 'अलंघ्यशासनं'—यह भगवान का उपदेश अमिट है। वह उपदेश तीन काल में मिटता नहीं। '**अलंघ्यशासनं**' भगवान की शिक्षा वह '**अलंघ्य**' है—किसी से उल्लंघन नहीं किया जा सकता। तीन काल (में) इन्द्र, नरेन्द्र कोई समर्थ कोई उनके शासन के न्याय को उल्लंघ नहीं सकता। समझ में आया? आहाहा! भगवान के दरबार में भगवान ऐसा कहते थे, कहते हैं। भगवान का दरबार जमा था। समवसरण में दरबार जमता है न? आहाहा! लाखों-करोड़ों देव, गणधर, इन्द्र, सिंह और बाघ के झुण्ड, अरे नाग, बड़े नाग जंगल में से, वन में से ऐसे हररररर करते हुए समवसरण में आते हैं, बैठते हैं। उसमें भगवान की वाणी निकलती है। सर्वज्ञ प्रणीत है। समझ में आया?

और कैसा है? 'अलंघ्यशासनं' ऐसी शिक्षा को उल्लंघन नहीं किया जा सकता। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, अमिट है। '**अलंघ्य**' का अर्थ किया अमिट—मिटे नहीं अर्थात् उल्लंघन नहीं किया जा सके। '**शासनं**' अर्थात् उपदेश। सर्वज्ञ भगवान वीतराग का यह उपदेश है। अनेकान्त तत्त्व वस्तु है अर्थात् कि.... देखो! इसका उपदेश हुआ, भाई! भगवान ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अलंघ्य उपदेश भगवान ने कहा है। वह रागरूप नहीं, कर्मरूप नहीं, शरीररूप नहीं, ऐसा अनेकान्त तत्त्व भगवान के शासन में कहा हुआ है। आहाहा! उसे कोई तोड़ (नहीं) सकता, उल्लंघ (नहीं) सकता... समझ में आया? विरोध कर सके ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा!

अमिट (-अटल) है उपदेश जिसका, ऐसा है। अमिट (-अटल) है उपदेश

जिसका,.... 'जैनं' वीतरागप्रणीत है, ऐसा है स्याद्वाद... अनेकान्त। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त, परमात्मा के अतिरिक्त यह बात तीन काल, तीन लोक में अन्यत्र हो नहीं सकती। अनेक प्रकार के धर्म के नाम से पंथ चलते हैं परन्तु सर्वज्ञ वीतराग ने कहे हुए तत्त्व के अतिरिक्त यह तत्त्व अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। समझ में आया? भाई! सर्वज्ञ वीतराग कौन है, इसकी इसे खबर नहीं होती। अभी तो पहले सर्वज्ञ के विवाद उठें। आहाहा!

सर्वज्ञ एक समय में तीन काल जाने? हाँ। तो कैसा जाने? कि किसी समय क्रमसर पर्याय होती है, ऐसा जाने और किसी समय संयोग आवे तो ऐसी होती है और संयोग न आवे तो ऐसी नहीं होती। ऐ... परन्तु यह सर्वज्ञ किसके? समझ में आया? सर्व...ज्ञ... तीन काल-तीन लोक के द्रव्य, गुण, पर्याय एक समय में जिसे इस समय में, यह अवस्था इस जीव की होगी, उस समय यह निमित्त होगा, उस क्षेत्र में होगी, यह सब भगवान के ज्ञान में पहले से ज्ञात हो गया है। समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञस्वभावी भगवान, जिसे सर्वज्ञ प्रणीत तत्त्व ऐसा है, ऐसा जिसे सर्वज्ञ का निर्णय किया हो, उसे सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हुई है सर्वज्ञ द्रव्य में से। ऐसे सर्वज्ञ द्रव्य की शक्ति निश्चित करने से अनेकान्तपना सिद्ध होने से उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग में हैं।

लो! दो श्लोक हुए। छोटे-छोटे थे न! तो भी बीच में और थोड़ा सा आया। 'साध्य-साधक अधिकार' कहते हैं परन्तु वास्तव में तो अभी अनेकान्त के ही दो श्लोक चलते हैं। अभी यह ६४ और ६५ अनेकान्त के दो श्लोक हैं। ६६ से साध्य-साधक का शुरु होगा। परन्तु इनके कहने की अपेक्षा है कि यहाँ तक वस्तु ऐसी है, ऐसा हमने सिद्ध किया। जो श्रद्धा करनेयोग्य, ज्ञान करनेयोग्य वस्तु है, ऐसी हमने सिद्ध की, ऐसा। समझ में आया? वस्तु जो है आत्मा जो श्रद्धा करनेयोग्य, ज्ञान करनेयोग्य, ज्ञेय करके जाननेयोग्य, वह वस्तु ऐसी है, ऐसी हम वस्तु को (कहेंगे)। कहेंगे अर्थ में। समझे न? प्रथम साध्यरूप वस्तु का स्वरूप कहा। अन्तिम लाईन। साध्य अर्थात् ऐसी चीज़ है, ऐसा हमने सिद्ध किया। बाकी साध्य वह मोक्ष और साधक वह मोक्ष का उपाय, यह बाद में २६६वीं गाथा (कलश) से शुरु करेंगे। समझ में आया?

— १२ —
साध्य-साधक अधिकार

कलश - २६४

(वसन्ततिलका)

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ।।१-२६४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'इह तत् चिद् वस्तु द्रव्यपर्ययमयं अस्ति' [इह] विद्यमान [तत्] पूर्वोक्त [चिद्वस्तु] ज्ञानमात्र जीवद्रव्य, [द्रव्यपर्ययमयं अस्ति] द्रव्य-गुण-पर्यायरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य का द्रव्यपना कहा। कैसा है जीवद्रव्य? 'एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं' [एवं] पूर्वोक्त प्रकार [क्रम] 'पहला विनशे, तो अगला उपजे', [अक्रम] विशेषणरूप है परन्तु 'न उपजे, न विनशे', इसरूप है [विवर्ति] अंशरूप भेदपद्धति, उससे [विवर्त] प्रवर्त रहा है [चित्रं] परम अचम्भा जिसमें, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि क्रमवर्ती पर्याय अक्रमवर्ती गुण, इस प्रकार गुण-पर्यायमय है जीववस्तु। और कैसा है? 'यः भावः इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरः अपि ज्ञानमात्रमयतां न जहाति' [यः भावः] ज्ञानमात्र जीववस्तु, [इत्यादि] द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि से लेकर, [अनेकनिजशक्ति] अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व; सुक्ष्मत्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्व-सप्रदेशत्व-अमूर्तत्व, ऐसी है। अनन्त गणनारूप द्रव्य की सामर्थ्य, उससे [सुनिर्भरः] सर्व काल भरितावस्था है। [अपि] ऐसा है तथापि [ज्ञानमात्रमयतां न जहाति] ज्ञानमात्र भाव को नहीं त्यागता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जो गुण हैं अथवा पर्याय हैं, वे सर्व चेतनारूप हैं; इसलिए चेतनामात्र जीववस्तु है, प्रमाण है। भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्व में हुंडी लिखी थी कि उपाय तथा उपेय कहूँगा। उपाय-जीववस्तु की प्राप्ति का साधन। उपेय-साध्यवस्तु। उसमें प्रथम ही साध्यरूप वस्तु का स्वरूप कहा; साधन कहते हैं।।१-२६४।।

कलश - २६४ पर प्रवचन

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ।।१-२६४।।

यहाँ द्रव्य और पर्याय इकट्ठीवाली वस्तु लेनी है, हों! प्रमाण। इस अधिकार के पश्चात् ४७ शक्तियों का वर्णन है। ४७ शक्तियों का वर्णन अपने पहले प्रकाशित हो गया है। आत्मप्रसिद्धि नाम का, आत्मप्रसिद्धि न? ४७ शक्ति का बहुत सरस! इसके अतिरिक्त अभी ४७ शक्ति का वर्णन है परन्तु अभी पड़ा है अन्दर। रिकोर्डिंग में। समझ में आया? इसका ४७ शक्ति वर्णन बहुत सरस है। परन्तु अब आवे तब सही। अभी सात व्याख्यान आये नहीं, चार सवा चार महीने हुए तो भी। ४७ शक्ति तो और कब की अभी? कहो, समझ में आया? यह ऐसी शक्ति का वर्णन है, शास्त्र में यह समयसार में पीछे इस अधिकार के अनेकान्त का पूरा करने के पहले अलौकिक बात! ४७ शक्ति अर्थात् अलौकिक बात!! वह कैसे है, कितनी ही थोड़ी इसके बाद लेंगे.......

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०५, मंगलवार, दिनांक-२८-१२-१९६५, कलश-२६४, प्रवचन-२८३

यह पहला श्लोक चलता है। है तो अनेकान्त के उपसंहार का, इसलिए यहाँ इस प्रकार से लिया है। २६४, 'साध्य-साधक अधिकार' के शुरुआत के बोल हैं।

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ।।१-२६४।।

क्या कहते हैं? कि यह आत्मा क्या है? '**इह तत् चिद् वस्तु द्रव्यपर्ययमयं अस्ति**' यह **विद्यमान....** आत्मा पदार्थ, अस्तिवाला पदार्थ है आत्मा। सत् है अर्थात् अस्तिवाला तत्त्व अस्तिवाला पदार्थ भगवान आत्मा देह, वाणी, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप के विकल्प के राग से भी भिन्न, ऐसा आत्मा **पूर्वोक्त....** पूर्व में कहा उस प्रकार से **ज्ञानमात्र जीवद्रव्य,...** ज्ञानमात्र जीवद्रव्य... ज्ञानमात्र आत्मा भगवान चैतन्यप्रकाश का सूर्य ऐसा आत्मतत्त्व है। समझ में आया? वह '**द्रव्यपर्ययमयं अस्ति**' वह आत्मा द्रव्यरूप से अर्थात् कायम रहनेवाली और गुणपर्याय अर्थात् उसकी शक्तियाँ और अवस्थारूप से आत्मद्रव्य है। द्रव्य-गुण और पर्याय। समझ में आया?

इस देह में रहा हुआ आत्मतत्त्व कितना? किसे, कैसे आत्मा कहना? कि जिसे आत्मा कहते ही उसकी अन्दर की चीज़ें आत्मा के अन्दर में समाहित होती है। पर से भिन्न, ऐसा जो आत्मा, वह ज्ञानमात्र कहा, द्रव्य-पर्यायमय है। ज्ञानमात्र कहा, तथापि वह द्रव्य अर्थात् वस्तु है, उसके गुण अर्थात् ज्ञान आदि अनन्त गुण हैं। थोड़े नाम अन्दर लेंगे। और पर्याय अर्थात् उसकी अवस्था है, अवस्था। द्रव्य—शक्तिवान, शक्ति और अवस्था—इन तीनमय है, उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

यह '**द्रव्यपर्ययमयं**' का अर्थ हो गया न? '**द्रव्यपर्ययमयं**' इसका अर्थ किया न द्रव्य, गुण और पर्याय। वह द्रव्य सामान्य शब्द है, उसमें गुण अनन्त है, ऐसा इसमें आ जाता है, ऐसा। द्रव्य, वह सामान्य वस्तु है, इसमें गुण अनन्त है, वह शक्ति आ जाती है।

इसलिए उसमें द्रव्य, गुण और वर्तमान उसकी दशा (तीनों आ जाते हैं)। विकार यहाँ लेना नहीं, विकार वह आत्मा नहीं। समझ में आया? जैसे शरीर, वाणी, यह कर्म जड़ है, वह आत्मा नहीं, वैसे पुण्य-पाप के विकल्प—विकार, वह आत्मा नहीं है। अन्दर आत्मा उसे कहते हैं कि जो वस्तु त्रिकाल रहनेवाली है और उसमें त्रिकाल ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। समझ में आया? और उन अनन्त शक्तियों की वर्तमान उनकी निर्मल दशारूपी पर्याय (होती है)। वह द्रव्य-गुण-पर्यायमय तीन होकर यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य का द्रव्यपना कहा। अभी तक जीव का जीवपना किसे कहना, इसकी बात की। भाई! तू आत्मा है। आत्मा है, वह अन्तर अनन्त गुण और उनकी निर्मलपर्यायवाला (तत्त्व है), उसे आत्मा कहा जाता है। उस आत्मा को तू अन्दर पहिचान और श्रद्धा कर, उसका अनुभव कर तो तुझे शान्ति और स्वतन्त्रता के आनन्द का अनुभव होगा। समझ में आया?

कैसा है जीवद्रव्य? अब सामान्य जो बात की थी, द्रव्य और पर्यायमय, उसकी विशेष व्याख्या करते हैं। देखो! वह 'गुण' शब्द पड़ा था न? ऐ देवानुप्रिया! यह निकाला इसमें, देखो! अब उसमें से निकाला। कैसा है जीव पदार्थ? भगवान यह एक-एक अपना आत्मा, हों! **'एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं' पूर्वोक्त प्रकार 'पहला विनशे, तो अगला उपजे',....** अर्थात् क्या? भगवान आत्मा में एक दशा—ज्ञान की वर्तमान अवस्था—हालत व्यय हो, नयी अवस्था उपजे, उसे पर्याय कहा जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा की एक समय की अन्दर ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त शक्तियाँ—गुण है, उसकी एक समय की अन्दर पुरानी अवस्था जो हुई हो, वह अभाव होता है और नयी अवस्था उपजती है, उसे विनाश और उत्पाद कहा जाता है, उसे व्यय और उत्पाद कहा जाता है। व्यय और उत्पाद, वह पर्याय का स्वरूप है। आहाहा! क्या होगा इसमें? आत्मा स्वयं कहाँ, इसकी उसे खबर नहीं होती। समझ में आया? कहो, धर्मचन्दजी! और व्यय तथा उत्पाद क्या होगा? उत्पाद होता होगा यह?

भाई! तू पदार्थ है, प्रभु! तू आत्मा है और आत्मा में अनन्त अक्रम (गुण) यह

बाद में लेंगे, पहली पर्याय से बात ली है। क्योंकि पर्याय से जानने में आता है, वह पर्याय का पहले समय की पर्याय जहाँ ज्ञान की अवस्था जानने की उत्पन्न हुई, वह दूसरे समय में उसका नाश हो जाता है, नयी अवस्था उपजती है। इसी प्रकार आत्मा में जो आनन्द है, उस आनन्द की भी एक समय की अवस्था पहली जो उत्पन्न हो, उसका व्यय होता है। नये आनन्द की पर्याय व्यय-उत्पन्न होती है। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा में अस्तित्व आदि अनन्त गुण जो हैं, उनकी एक समय में पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत (होती है)। वह जैसे परमाणु में नयी-नयी अवस्था होती है और पुरानी जाती है। समझ में आया? लोहा है, उसमें जंग है, उस जंग का नाश होता है और प्रकाश का उत्पाद होता है, उसे पर्याय कहा जाता है। लोहा, उसे द्रव्य कहा जाता है, लोहे में जो शक्तिरूप कायम प्रकाश आदि अस्तिरूप से पड़े हैं, वह शक्ति कहलाती है, और एक अवस्था का जाना, और नया होना, उसे पर्याय—अवस्था कहा जाता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में अनन्त जो गुण हैं, उनकी एक समय की अन्दर अपने कारण से, अपने में हुई पूर्व की वर्तमान अवस्था, पूर्व की अवस्था यह वर्तमान में उसका नाश होता है। समझ में आया? और **अगला उपजे....** आगे की अर्थात् बाद की अवस्था उपजती है। समझ में आया या नहीं इसमें? जमुभाई! आहाहा! अरे! दुनिया की खोज-खोज करके मर गया। स्वयं कौन है, इसकी खबर नहीं होती।

यह रजकण भी है न? देखो न! यह रजकण है न यह? मिट्टी कायम की। यह रजकण है वह तो कायम के हैं। पहले इनकी अवस्था एक दाल, भात और रोटी की थी। अब अभी अवस्था रक्त की है। यह देखो न! अवस्था है या नहीं? यह दाल, भात, रोटी की जो अवस्था थी, वह व्यय हो गयी और यह रक्तपने की अवस्था उत्पन्न हुई और रजकणरूप से रजकण कायम रहे और रजकण में अस्तित्व रंग, गन्ध, गुण है, वह भी कायम विशेषणरूप से रहे हैं। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तुरूप से, द्रव्यरूप से कायम की चीज़ है। अनन्त गुणों से द्रवती है—क्षण-क्षण में नयी अवस्था उत्पन्न करे, पुरानी अवस्था से व्यय हो। निर्मल पहली अवस्था हुई, उसका व्यय होता है, निर्मल दूसरी अवस्था नयी नयेरूप से उत्पन्न होती है। उसे पहले का विनाश और बाद का उपजना, ऐसा कहने में आता है।

समझ में आया ? देखो ! उसे क्रम कहते हैं । समझ में आया ? पैर को क्रम कहते हैं । यह पैर है न ? इसे शास्त्र में क्रम कहते हैं । तो जो एक पैर है, ऐसे दायाँ पैर उठाया, ऐसे रखा । वहाँ उठाया और बायाँ रखा । वह क्रम एक के बाद एक पैर जैसे पड़े, उस पैर को क्रम कहते हैं शास्त्र । समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा के अन्दर गुण अनन्त हैं, उसकी एक समय की जो अवस्था है, उसका दूसरे समय में नाश होता है । उस अवस्था का क्रमपना उसका स्वभाव है । गजब ! भाषा भी दूसरी और बात भी दूसरी । कौन जाने यह (क्या होगा) ? भाई ! धर्म सुनने जाता हो, वहाँ तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय हो, सूर्यास्तपूर्व भोजन करो, कन्दमूल न खाओ (ऐसी बात होती है) । यह और कैसी बात होगी ? डाह्याभाई ! यह तो चतुराई करने की बात है । उल्टा अज्ञान करके मर गया ऐसा का ऐसा करके । माना हमने यह खाया नहीं और यह नहीं पीया और यह किया । कहते हैं कि यह खाने-पीने की क्रिया तेरी है नहीं । वह तो जड़ की है, तेरी दशा में वह नहीं । क्या कहा ?

यह शरीर, वाणी, यह ढाढ़ हिले, दाल, भात पड़े और ऐसे जाये, वह सब दशायें तेरी पर्याय में नहीं हैं । डाह्याभाई ! वह तो जड़ की पर्याय में जड़ के उत्पाद-व्यय में, मिट्टी में यह तो होती है । आहाहा ! तेरी पर्याय में वह नहीं । समझ में आया ? पर्याय अर्थात् अवस्था । ऐसे यह दाल, भात खाये, यह छोड़ा और यह रखा, वह सब अवस्था तेरी पर्याय में नहीं, अवस्था में नहीं है । तेरे गुण में तो नहीं, द्रव्य में तो नहीं परन्तु अवस्था में भी यह नहीं । तेरी अवस्था वह जो क्रियायें जड़ की उत्पाद-व्यय अन्दर होता है, उसका और अपने जाननेपने जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय की अवस्था तुझमें है और वह पर्याय पहले की है, वह नाश हो जाती है और दूसरे समय में नयी उत्पन्न होती है । समझ में आया ? आहाहा !

एक राग आया । ध्यान रखना ! यह राग है, वह पहले था तीव्र, फिर हुआ मन्द । वह तीव्र-मन्द (होओ) वह तेरी दशा में नहीं । उस तीव्र का पहले ज्ञान था स्व के लक्ष्य सहित का कि यह तीव्र है, ऐसा ज्ञान । वह ज्ञान पर्याय जब मन्द कषाय हुई तो ज्ञान पर्याय पलटकर मन्द को जाननेरूप स्वसहित परिणमित हुआ । ऐसी पर्याय तुझमें है— ज्ञान का उपजना, विनशना । वह परवस्तु तुझमें है नहीं । गजब बात, भाई ! यहाँ तो

द्रव्य-पर्यायमय जीव कहा, ऐसा कहना है न यहाँ? तो किसकी पर्याय? पर की? विकार की? नहीं। समझ में आया?

भगवान तेरे अस्तित्व में, तेरी मौजूदगी में क्या है? तू है, वह तेरे अस्तित्व में क्या है? कि तेरे अस्तित्व में यह शरीर, वाणी, मन और यह सब जो ऐसे चलता है, ऐसे होता है, उसकी अवस्था तेरे अस्तित्व में नहीं है। तेरे द्रव्य में तो नहीं, तेरे गुण में भी नहीं, तेरी वर्तमान अवस्था के अस्तित्व में भी वह अस्तित्व नहीं। आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा! तब तेरे अस्तित्व में क्या है? कि यह पुण्य और पाप के विकल्प उठें, वह भी तेरी दशा के अस्तित्व में, उसे आत्मद्रव्य, आत्मगुण और आत्मा की पर्याय कहते हैं, उसमें यह राग-द्वेष का, पुण्य-पाप का अस्तित्व उसकी पर्याय में नहीं है। समझ में आया?

है क्या तब कि तेरे अस्तित्व में? कि क्षण-क्षण में पलटती अवस्था के अस्तित्व में, त्रिकाल रहनेवाले द्रव्य और गुण तो त्रिकाल है, परन्तु क्षण-क्षण में गुण की अवस्था पलटे, उसके अस्तित्व में यह राग नहीं, पर की अवस्था तेरे अस्तित्व में नहीं। और तेरा अस्तित्व तुझमें है, उसका अस्तित्व वर्तमान अवस्था का अस्तित्व ज्ञान का, दर्शन का, आनन्द का, वह अस्तित्व नहीं राग में, वह अस्तित्व नहीं शरीर की अवस्था में। समझ में आया? कहो, जमुभाई!

मुमुक्षु : उसका स्वाद लेता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी स्वाद नहीं लेता, यह कहते हैं यहाँ। जड़ का स्वाद लेता होगा? यह गुड़ है, गुड़, मिश्री। आम लिया, काम की फाँक ऐसे। यह आम की फाँक की अवस्था खट्टी है या मीठी है। यह मीठी अवस्था है जड़ की अवस्था जड़ के अस्तित्व में है, आत्मा के अस्तित्व में नहीं। और वह जड़ का ज्ञान हुआ कि यह जड़ है, वह ज्ञान की पर्याय आत्मा के अस्तित्व में है। यह मीठी और खट्‌टी वह पर्याय आत्मा की दशा में नहीं। आहाहा! अरे! मीठी और खट्टी के लक्ष्य से हुआ विकल्प (कि) 'यह ठीक है' ऐसा विकल्प भी वास्तव में तेरे ज्ञान की पर्याय में वह नहीं है। आहाहा! यह आत्मा किसे कहना, ऐसा कहा है न यहाँ तो? भाई! आहाहा! गजब! समझ में आया?

मुमुक्षु : मुख तो मीठी-खट्टा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख भी मीठा, खट्टा नहीं होता। मुख मुख में है, खट्टा-मीठा, खट्टे-मीठे की दशा में है। मीठा-खट्टा यहाँ हो तब तो मीठा-खट्टा सदा रहना चाहिए। अरे! तत्त्व क्या है? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर तीर्थंकरदेव, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान था, उन भगवान के मुख में तत्त्व की व्यवस्था इस प्रकार देखी गयी है, इस प्रकार से है, इस प्रकार से दिखाई दी है। उस प्रकार से तू देख तो तुझे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होगा। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... कहते हैं कि **'एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं' पूर्वोक्त प्रकार 'पहला विनशे, तो अगला उपजे',....** भगवान आत्मा में पहली पर्याय ज्ञान की हुई कि मैं आत्मा हूँ, ऐसी ज्ञान की पर्याय है और पर में यह शरीर आदि जड़ की अवस्था है, उन सम्बन्धी का ज्ञान अपने को अपने कारण से स्व-परप्रकाश की ज्ञानपर्याय जो पहले हुई, वह उसमें है। परपदार्थ की अवस्था उसमें नहीं और यह स्व-परप्रकाश की पर्याय जड़ की अवस्था में गयी नहीं। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ का विज्ञान है। अज्ञानी के विज्ञान सीखने के लिये तो बहुत जाता है, सिर फोड़ता है। अमेरिका तक जाता है।

इनका पुत्र गया था सिर फोड़ने, देखो! कहाँ गये? आये नहीं मनोजभाई? वे कहाँ गये थे? अमेरिका। अमेरिका गये थे और कहाँ गये थे? अमेरिका! तब पूछा था, कितना वेतन? तो कहे, ग्यारह हजार रुपये का। .... ३५ वर्ष की उम्र होगी, छोटी थी। ग्यारह हजार वेतन। उसमें पाँच हजार, साढ़े चार हजार ले जाये सरकार। आठ दिन में तीन दिन सरकार की नौकरी करना। थे, सवेरे थे, चले गये होंगे। यह उनके भी पुत्र वहाँ गये थे न? यह भी गये थे। तब यह कहे, किसलिए वहाँ जाते हो हैरान होने? सुमनभाई। परेशान होने कहा, लो! दस हजार वेतन उसे अभी अमेरिका में है। इसे तो और चार, साढ़े चार (हजार) भरना पड़ते हैं। उसको बहुत भरना पड़ता (नहीं)। ऐसा कोई कहता है, अपने को कहाँ खबर है? कोई बातें करे, वे सुनते हैं। समझ में आया? उसे अधिक कहते हैं, ऐसा कहता था कोई, हों! अमेरिका में बहुत न रहे। रहे किसे और जाये किसे? सुन न! यह पढ़ने के लिये वहाँ सिर फोड़े, परन्तु यह आत्मा क्या चीज़ है? मैं कौन हूँ? कितने में हूँ? और कैसे हूँ? उसकी इसे खबर नहीं। बेखबरा

अनादि से चार गति में भटक रहा है। जहाँ हूँ, वहाँ प्रतीति नहीं और जहाँ नहीं, वहाँ प्रतीति उल्टी की है। डाह्याभाई! आहाहा! क्या कहते हैं?

भगवान! भगवान भगवान को कहते हैं। यह आत्मा भगवान है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव सौ इन्द्र की उपस्थिति में समवसरण में महाविदेहक्षेत्र में अभी भगवान विराजते हैं—सीमन्धर प्रभु। वे महाविदेहक्षेत्र में दिव्यध्वनि द्वारा यह उपदेश इस प्रकार का कर रहे हैं। उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। दो हजार वर्ष पहले, आठ दिन वहाँ रहे थे। वर्तमान भगवान विराजते हैं। वहाँ से आकर यह सब शास्त्र रचे हैं और इन शास्त्र की बाद में यह टीका (हुई)। महासन्त मुनि अमृतचन्द्राचार्य हुए, यह उनके बनाये हुए कलश है, ऐसा निमित्त से (कहा जाता है)। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, उसे कौन निमित्त था, यह बताने के लिये उन्होंने बनाया, ऐसा कहा जाता है। बाकी तो शास्त्र की रचना परमाणु से होती है। आत्मा की पर्याय से वह रचना होती नहीं। क्योंकि आत्मा की पर्याय में वह परमाणु की पर्याय की अस्ति नहीं। यह अक्षर है, अक्षर है। यह क्या है यह? पुद्गल है न? रजकण कायम रहकर उनका रूपान्तर, अवस्थान्तर होता है। वह अवस्था जड़ की दशा में रही हुई है। वह कहीं आत्मा की, ज्ञान की दशा में वह अवस्था नहीं रही है, वह आत्मा से वह हो। अरे... गजब बात भाई! ऐ... भीखाभाई! आहाहा! भाई! तुझसे क्या होता है और तुझमें क्या नहीं, इसकी खबर बिना पर से भेदज्ञान किस प्रकार करेगा? यह भेदज्ञान के लिये बात है।

कहते हैं, भाई! भगवान! तू तो आत्मा है न! और आत्मा में तो अनन्त, अनन्त गुण-शक्तियाँ पड़ी हैं न! उसकी वर्तमान अवस्था—दशा का होना, वह तुझमें है। वह तुझमें नहीं काले, पीले की दशा, नहीं राग-द्वेष की दशा, नहीं शरीर, स्त्री, पुत्र की वह दशा यहाँ इसमें नहीं। समझ में आया? यह इसमें नहीं, उसमें मानना, उसका नाम मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है।

मुमुक्षु : राग-द्वेष भी प्रभु इसमें ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग-द्वेष का ज्ञान करनेवाला है, वास्तव में इसमें नहीं।

यहाँ यह बात है। उसे आत्मा कहते हैं। राग-द्वेष होते हैं, उसका ज्ञान करनेवाला ज्ञाता, उसे आत्मा कहते हैं। रागमय जीव को आत्मा नहीं कहा जाता, वह तो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? शरीर, मिट्टी, धूल, कर्म, आवाज, यह आवाज आदि मिट्टी। अन्दर कर्म भी मिट्टी—धूल, वह सब अजीवतत्त्व है। और दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव हों, वह आस्रवतत्त्व है, मैल तत्त्व है, जो बन्धन का कारण और दोष है। वह आत्मा का स्वरूप नहीं, आत्मा का स्वरूप हो तो कायम उसमें रहना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? इसकी दशा में वह वास्तव में नहीं है।

इसकी दशा तो ज्ञान अवस्था में होनेवाला उसका ज्ञान। आस्रव है, उसका ज्ञान; परवस्तु है उसका ज्ञान; मैं वस्तु हूँ, उसका ज्ञान। यह आत्मा की अवस्था में है। वह अवस्था पहले समय में होती है, वह दूसरे समय में—अगले (समय में) नयी उपजती है। दूसरा राग उत्पन्न होता है या दूसरे शरीर की अवस्था उत्पन्न होती है और उपजाता है ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसका सत्पना तीन में व्याप्त है। सत्पना अर्थात् अस्तित्व। द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसकी शक्तियाँ—गुण और उसकी दशा। तीन में उसका अस्तित्व व्याप्त है। इन तीन के अतिरिक्त आगे जाकर दूसरे में व्याप जाता है, वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, अभी तो यहाँ क्रम में... मुझे तो वापस दूसरा डालना था अभी कि पैर का डालकर जिस समय में जो पर्याय उपजे, वह दूसरे समय में दूसरी ही होती है और तीसरी भी जो आनेवाली हो वही होती है, आड़ी-टेढ़ी नहीं होती। समझ में आया? डाह्याभाई!

'पहला विनशे, तो अगला उपजे',... भगवान आत्मा में अनन्त... अनन्त... शक्तियों का सत्त्व प्रभु आत्मा, उसकी एक समय अर्थात् छोटे में छोटे काल में वह अनन्त गुण की पहली अवस्था जो अपने में निर्मलरूप से जानने, देखने की, श्रद्धा की, स्थिरता की, आनन्द की जो उत्पन्न हुई, वह पहले उत्पन्न हुई, वह दूसरे समय में नाश हो जाती है। तीसरे समय में आगे की (पर्याय) उपजती है, अगली उपजती है। पहली विनशती है, जो पहली थी, वह जाती है, अगली उपजती है अर्थातृ जो आगे होनेवाली, वह उपजती है। अगली उपजती है तो अगली अर्थात् अब बाद में जो है, वह होनेवाली, वह उपजती है। ऐई! देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : यह बात खींचकर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है, खींचकर नहीं। यह थी वह गयी और अब की- आगे की जो होनेवाली थी वह उपजी। वस्तु ही ऐसी है। नहीं होनेवाली थी, वह उपजी है ? वह काल की नहीं थी और उपजी है ? पश्चात् काल की होनेवाली है, ऐसे उपजी है ? ऐसे वस्तु कभी हो सकती है ?

मुमुक्षु : निश्चित नहीं हो सकती।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चित ही है। जमुभाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ करे, ऐसा नहीं कहा। इससे उपरान्त कुछ कहा। भाई ! अगली ही उपजे। देखो ! हमारे जज हैं न, यह जज है। लो ! यह तुम्हारे एक जज गये। वह कोई जज है न ? कनुभाई, तुम्हारे नीचे है। गये। वे कहते थे कि डाह्याभाई आनेवाले हैं। समझ में आया ? यह तो भगवान केवलज्ञानी जज है। जिनका न्याय तीन काल, तीन लोक में बदलता नहीं। यह सब जज तो लोगों ने किये हुए कायदा (कानून) तत्प्रमाण गाड़ियाँ हाँक रखते हैं। कहते हैं कि भाई ! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा की कोर्ट में जो ज्ञान में पदार्थ दिखायी दिये, उसमें तेरा तत्त्व इस प्रकार से भगवान ने देखा है। समझ में आया ?

'**पहला विनशे,....** पहला विनशे अर्थात् पहले कोई अस्तित्व, कोई अवस्था थी या नहीं ? **अगला उपजे'....** बाद की उपजे। बाद की उपजे अर्थात् जो बाद की है, वह उपजे। यह पर्याय की बात हुई। पर्याय समझ में आता है ? पर्याय ऐसी। कितने ही तो जैन में जन्में (परन्तु) पर्याय क्या है, यह खबर नहीं। जो जैन का इकाई का शून्य पहला। पर्याय। वह क्या होगी ? पर्याय क्या होगी ?

अब एक व्यक्ति कहता था। वह नहीं बेचारा कितने वर्ष का मुंडाया हुआ जैन। कि पर्याय तो सिद्ध हो तो भी अभी लगी है ? कहा, यह बेचारा जैन में जन्मा और होशियारी रखे और भाषण दे बड़े-बड़े। गृहस्थ व्यक्ति बड़े, बहुत लाखोंपति है। दरियावी आते हैं न ? बहुत लाखोंपति। ऐसे स्थिर वयक्ति, शान्त व्यक्ति परन्तु वस्तु की खबर नहीं। ऐसी

की ऐसी गाड़ियाँ हाँक रखते हैं पागलपने से। पागलपने से गाड़ियाँ हाँकते हैं कि गाड़ी कहाँ जाये? मदिरा पिया हुआ बैठे उसमें तो कहीं का कहीं मोटर भटकावे। क्या कहलाता है वह? ड्राईवर दारू पीये हुए बैठा होता है न? जाये सामने कहीं सामने भटकाये। ऐसे चार कोस दूर रखना चाहिए उसे ख्याल न रहे तो ऐसे दोनों भटके। इसी प्रकार यहाँ सम्यक् चीज़ क्या है, परवस्तु क्या है, उसके भेदज्ञान बिना आत्मा को कहीं गहरा उल्टे उतार डाले चार गति में भटकने के। समझ में आया?

कहते हैं कि '**पहला विनशे, तो अगला उपजे**',... कहीं आया था। क्रम में शब्द नहीं आया था? एक उपजे और एक जाये, ऐसा कहीं आया था, भाई! एक कहीं आया था। कहीं आया था अवश्य, भाई! यह भक्ति के समय जरा नहीं गाया था? **कोई पर्याय होती है, कोई पर्याय विनशती है...** '**वृत्तिक्रमात्**' है न? २६१ श्लोक, २६१ श्लोक की नीचे से तीसरी लाईन। २६१ श्लोक, पन्द्रहवाँ श्लोक। '**वृत्तिक्रमात्**' पर्याय या क्रमात् ऐसा शब्द है न? पर्याय या क्रमात्। **कोई पर्याय होती है, कोई पर्याय विनशती है...** समझ में आया?

यहाँ ऐसा कहा, क्रम अर्थात् क्या? अर्थ है इतना ही कहा है यहाँ तो। वह तो '**वृत्तिक्रमात्**' है न? और यहाँ तो क्रम की व्याख्या की है कि भगवान आत्मा में ऐसे जानने की, देखने की श्रद्धा की, शान्ति की, आनन्द की; शान्ति अर्थात् चारित्र जो पर्याय पहले, आगे पहली उपजी थी (वह) बाद में नाश हो जाती है और दूसरी उपजती है। उसे पर्याय कहते हैं, उसे अवस्था कहते हैं।

अब '**अक्रम**' '**अक्रम' और विशेषणरूप है...** क्या कहा? आत्मा में वह विशेषण है। आत्मा विशेष है तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, प्रभुत्व, वह उसके विशेषणरूप गुण हैं। समझ में आया? आहाहा! वे विशेषण, विशेषण आते थे या नहीं? पढ़ने में तो आता होगा? पुस्तकों में। आखिर में वहीं का वहीं रखा। उसमें क्या कुछ अर्थ? यह आत्मा वस्तु है और यह विशेष कहलाती है, विशेष। तब इसके गुण हैं, वे इसके विशेषण कहलाते हैं। वह विशेष और यह विशेषण। ज्ञान, दर्शन त्रिकाल रहनेवाले, हों! त्रिकाल।

जैसे सोना, वह कायम रहनेवाला, वह द्रव्य कहलाता है। और पीलापन, चिकनापन,

वजन वे उसके गुण कहलाते हैं और कुण्डल, कड़ा, अँगूठी, उसकी पर्याय कहलाती है। समझ में आया ? गुण कायम रहते हैं, पर्याय पलटती जाती है, द्रव्य कायम रहता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, वह द्रव्य है। उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं। गुण हैं, वे अक्रम हैं। अक्रम अर्थात् एकसाथ हैं। समझ में आया ? और यह क्या ? अक्रम अर्थात् गुण और गुण एक साथ.... यह गुण अर्थात् पर्याय नहीं, हों! शक्ति त्रिकाल।

वस्तु भगवान आत्मा के विशेषणरूप है। कौन ? वस्तु भगवान आत्मा कायम रहनेवाला ज्ञानगुण, दर्शनगुण, आनन्दगुण, ऐसे अनन्त गुण कहेंगे। आत्मा वस्तु है, उसमें आनन्दगुण कायम रहनेवाला है, प्रभुत्वगुण कायम रहनेवाला है। यह आगे नीचे नौ नाम देंगे, नौ नाम देंगे परन्तु ऐसे अनन्त गुण एक समय के अन्दर सेकेण्ड के असंख्य भाग में आत्मा वस्तु, उसमें अनन्त गुण विशेषणरूप से कायम रहते हैं। वह विशेषण अर्थात् गुणरूप कायम है, उसे अक्रम कहा जाता है। वस्तु में गुण एक के बाद एक नहीं होते, गुण एक साथ होते हैं और पर्याय एक के बाद एक होती है। समझ में आया ?

सोना, वह वस्तु। उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन एकसाथ होता है। इसलिए सोना वह विशेष है तो गुण वे विशेषण हैं। वह कायम रहता है, वैसे पीलापन, चिकनापन, वजन कायम रहता है और फिर कुण्डल, कड़ा, अँगूठी, बाजूबन्ध अवस्था होना, वह पर्याय कही जाती है, उसी प्रकार भगवान आत्मा कायम रहकर उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण विशेषण कायम है, अक्रम है, एकसाथ अनन्त गुण हैं। कौन जाने गुण कहाँ रहते होंगे ? थप्पी लगायी होगी वहाँ ? अनन्त गुण की एकसाथ थप्पी लगायी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया या नहीं ?

यह एक भगवान आत्मा सर्वज्ञ भगवान केवलज्ञानी ने ऐसा देखा है और ऐसा वह है और ऐसा कहा है। ऐसा देखा है, ऐसा है, ऐसा कहा है। यह आत्मा वस्तुरूप से द्रव्य है, उसके विशेषणरूप से अनन्त गुण हैं। एक साथ गुण हैं। ज्ञान पहला और दर्शन बाद में और आनन्द बाद में, ऐसा गुण नहीं हो सकता। उसकी अवस्था बदले उसमें एक के बाद एक होती है। पहली अवस्था हो, (वह अवस्था जाये) दूसरी अवस्था हो, फिर दूसरी अवस्था जाये और फिर तीसरी अवस्था उत्पन्न हो। समझ में आया ?

ऐसे **विशेषणरूप है परन्तु 'न उपजे, न विनशे',....** पर्याय से विरुद्ध लेना है न? भगवान आत्मा ज्ञानगुण सम्पन्न, त्रिकाल, आनन्द सम्पन्न त्रिकाल, अस्तित्व सम्पन्न अस्तिरूप से त्रिकाल, शक्तिरूप से त्रिकाल, वस्तुरूप से त्रिकाल, आनन्द प्रभुतारूप से त्रिकाल, जीवत्व शक्ति, जीवना, जीना, टिकना, टिकना ऐसे गुणरूप से त्रिकाल। समझ में आया?

यह **विशेषणरूप है परन्तु 'न उपजे, न विनशे',....** यह भगवान आत्मा में गुण जो शक्ति है, वह शक्ति कहीं उपजे और शक्ति कहीं नाश हो, ऐसा नहीं होता। उसकी वर्तमान अवस्था पलटती है। पर्याय उपजे और विनशे, हो। गुण तो ऐसे के ऐसे एकरूप सदृश अनादि अनन्त हैं। कहो, समझ में आया? कैसा है जीवद्रव्य? **'पहला विनशे, तो अगला उपजे'....** इसका नाम क्रम पर्याय कहा जाता है और अक्रम एकसाथ अनन्त गुण, उसे विशेषणरूप कहा जाता है, वह उपजे, विनशे नहीं।

यह **'विवर्ति' अंशरूप भेदपद्धति,....** वस्तु में वह अनन्त गुणरूप भेद और अनन्त पर्यायरूप भेद है। समझ में आया? एकरूप वस्तु है, उसमें गुण का भेद पड़ा है न? और पर्याय का भेद पड़ा है। एकरूप आत्मा भगवान वस्तु, वस्तु में गुण का भेद। साथ में रहनेवाली शक्तियाँ वह एक में भेद पड़ा गुण-भेद और अवस्था का पलटना, वह अवस्था-भेद। उस दो अंशरूप भेद पद्धति, दोनों अंशरूप भेद की रीति, **उससे प्रवर्त रहा है....** इस प्रकार भगवान आत्मा प्रवर्त रहा है। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु द्रव्य। कैसा है द्रव्य? ऐसा कहा न? कैसा है पदार्थ? कि पहले उपजे, पहले विनशे और बाद की उपजे, ऐसी पर्याय में वर्त रहा है। और अनन्त गुण एक साथ हैं, इस प्रकार से वर्त रहा है। वह पर में नहीं वर्त रहा। अपने गुण और पर्याय में—विशेषणरूप गुण और क्रमरूप पर्याय में आत्मा प्रवर्त—वर्त रहा है। उसे छोड़कर एक अंश भी शरीर की पर्याय में, धन्धे की पर्याय में, खाने-पीने की पर्याय में अंशमात्र भी प्रवर्त नहीं रहा, प्रवर्त नहीं रहा। ध्यान अन्यत्र था न? जरा सा ऐसा हो जाये तो कुछ दूसरा हो जाये। कहो, समझ में आया? आहाहा!

'विवर्त' प्रवर्त रहा है.... 'चित्रं' परम अचम्भा जिसमें, ऐसा है। क्या कहते हैं?

अहो! वस्तु एक, अभेद, उसमें अनन्त गुणों का भेद और अनन्त पर्याय का उपजना-विनशना (ऐसा) भेद प्रवर्त रहा है, अचम्भा है।

'चित्रं' की व्याख्या की। **परम अचम्भा जिसमें, ऐसा है।** भगवान आत्मा में अनन्त एकसाथ गुण रहे हैं, यह अचम्भा है और एक साथ पर्याय अनन्त पहली उपजी, वह जाती है और नयी होती है, यह वस्तु का स्वरूप अचम्भा है, आश्चर्यकारी वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? यह पर के कारण नहीं। समझ में आया इसमें? यह सुनाई देता है, इसलिए ज्ञान की पर्याय उपजती है?—कि नहीं। ऐसा कहते हैं। इसमें क्या कहा?

भगवान आत्मा अपने अनन्त गुण में और अनन्ती पर्याय उपजाकर उसमें वर्त रहा है। वह पर की अवस्था के कारण वर्त रहा है, ऐसा नहीं, तथा पर की अवस्था में वर्त रहा है, ऐसा नहीं। क्षण-क्षण में यह तो भेदज्ञान की व्याख्या है। समझ में आया? कहो, बराबर है? आहाहा!

परम अचम्भा जिसमें,.... अर्थात् क्या? वस्तु एक और अनन्त... अनन्त... गुण। कितने गुण? कि इसने तो सुने नहीं। कितने गुणों की संख्या? कि आकाश के प्रदेश जिसका माप नहीं। आकाश है न आकाश खाली? यह आकाश नहीं कहलाता, हों! जहाँ काले बादल जैसा दिखाई दे, वह आकाश नहीं है। आकाश तो अरूपी सर्वव्यापक है ऐसा सर्वत्र। पूरे लोक में और खाली भाग। यह लोक—चौदह ब्रह्माण्ड छह द्रव्यवाला है और इसके अतिरिक्त खाली... खाली... खाली (जगह है) उसे अलोक कहते हैं। वह खाली आकाश है। वह आकाश कहाँ तक होगा? फिर कब नहीं होगा?

आकाश कहाँ अस्तिपने की अस्ति का अभाव होगा आकाश का? चारों और दशों दिशा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... इतने आकाश के एक इतने में असंख्य प्रदेश हैं। इतने अँगुल के असंख्यवें (भाग में) असंख्य प्रदेश हैं। बहुत हैं, हों! बहुत हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त... अनन्त... प्रदेशी ऐसा का ऐसा आकाश चलता जाता है। खाली... खाली चारों ओर। ऐसे तो मानना पड़ेगा या नहीं कि यह खाली के बाद, बाद में क्या होगा? पीछे दीवार होगी? पीछे बाड़ होगी? पीछे क्या होगा? यह ऐसा का ऐसा अमाप जिसका माप नहीं, ऐसा आकाश चलता ही गया है, बापू! यह क्षेत्र का ऐसा स्वभाव है। कहते हैं कि इतने जो अंश इसके

पड़ें, उतने में के असंख्य प्रदेश हैं। उतने अंश सब पड़ें पूरे में, इससे अनन्तगुने एक जीव में गुण हैं। समझ में आया? महा भगवान है परन्तु इसे जँचता नहीं, रंक होकर बैठा है। बीड़ी बिना चलता नहीं, स्त्री बिना चलता नहीं, तम्बाकू बिना चलता नहीं।... क्या है परन्तु? कहाँ तुझमें वह था, वह चला गया है?

मुमुक्षु : कर्म का जोर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके कर्म का जोर? धूल में। वह तो उसके घर में चीज़ थी। तेरे पास थी ही कब? तेरे पास थी क्या? 'यह मेरे' यह ममता। तेरे पास क्या था? 'यह मेरे' यह ममता। वह चीज़ तेरे पास नहीं थी, तुझमें नहीं थी, तेरी अस्ति में नहीं थी। उसकी अस्ति में तू नहीं था, उसकी अस्ति में वह है। पागल हो गये। जेचन्दभाई! सच्ची बात है। मूर्ख है, कहते हैं। पागल होवे तो। ऐसा यहाँ कहते हैं। तुझमें यह नहीं था और तुझमें है, वह कभी कहीं गया नहीं। किसका तू मर गया, मर गया हाय... हाय...! मैं गरीब मनुष्य हो गया।

मुमुक्षु : वह कभी आवे ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कभी यहाँ आवे, ऐसा नहीं है और यह अनन्त गुण कभी बाहर जाये, ऐसे नहीं है। भान कब है इसे कुछ? आहाहा! समझ में आया?

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, अर्ध लोक के स्वामी इन्द्र के समक्ष यह बात करते थे। समझ में आया? और गणधर चार ज्ञान के धनी जिन्हें चौदह पूर्व बारह अंग की रचना करने की अन्तर्मुहूर्त में सामर्थ्य है, उनके समक्ष भगवान की वाणी ऐसी निकली। अरे! आत्मा! तुझमें अनन्त-अनन्त गुणों से भरपूर तू तत्त्व है न, भाई! उसमें तू वर्त रहा है। तू कहाँ वर्त रहा अन्यत्र? क्या कहा?

प्रवर्त रहा है परम अचम्भा जिसमें, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? तेरा एक गुण कम हुआ नहीं और एक गुण की वर्तमान अवस्था 'आत्मा है' ऐसा निश्चित करने से वर्तमान निर्मल अवस्था में कुछ कम होता नहीं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि क्रमवर्ती पर्याय अक्रमवर्ती गुण, इस प्रकार गुण-पर्यायमय है जीववस्तु। लो! योगफल किया। भगवान आत्मा की अनन्त अवस्थायें

शक्ति की—गुण की अनन्त अवस्था पहले थी, वे दूसरे क्षण में जाती हैं और दूसरी होती है और अनन्त गुण। यह क्रम और अक्रम गुण का स्वरूप, वह आत्मा है। उसे जीववस्तु कहा जाता है। उसे जीववस्तु कहा जाता है। आहाहा! सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा अन्यत्र नहीं होता। दूसरे सब बातें करते हों कि ऐसा करो और ऐसा करो... नहीं करते? समझ में आया? विकल्प छोड़ दो (ऐसा कहे)। क्या छोड़े। परन्तु है क्या वह? छोड़ दो, परन्तु क्या है परन्तु छोड़ देना? उसमें है क्या? यह कहते हैं। अस्ति क्या है? कि जिसमें से राग छूट जाये, यह तो अस्ति हुई।

अस्ति जीवद्रव्य ऐसा है कि विशेषणरूप अनन्त गुण हैं, अनन्त-अनन्त और एक समय की अवस्था निर्मल क्रम से उत्पन्न हो, उसमें यह आत्मा वर्त रहा है, वह उसका अस्तिपना है, ऐसा अस्तिपना निश्चित करने से उस स्वभाव पर दृष्टि जाने से उसे विकल्प और राग का अभाव हो जाता है। ऐसा हो जाता है। ऐसा करे कि यह विकल्प तोड़ो। क्या तोड़े? धूल तोड़े। समझ में आया? आहाहा!

ऐसी जीववस्तु है। देखो? **क्रमवर्ती पर्याय अक्रमवर्ती गुण, इस प्रकार गुण-पर्यायमय है जीववस्तु।** मय (कहा), देखा? अभेद कहा। भगवान आत्मा में अनन्त गुण और उनकी अनन्त अवस्थामय आत्मद्रव्य है। आहाहा! उसे अन्तर में अनुभव में, दृष्टि में लेना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। इसका नाम धर्म की शुरुआत कही जाती है। आहाहा! ऐसा धर्म वह किस प्रकार का है? वीतराग का जैन परमेश्वर का धर्म ऐसा होगा? जैन में तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, जीवरा ओवरीय तस्सूतरी लो! तावकायं जाणेणं माणेणं आप्पाणं वोसरामि जाओ। पूरा आत्मा वोसराया। आत्मा किसे कहना, कुछ भान है? समझ में आया? कहाँ तू? धर्म किसे होता है? धर्म क्या होगा? धर्म कहाँ होता होगा? धर्म किस प्रकार होता होगा? धर्म करते हैं। क्या करते हैं? परन्तु धूल करते हो। भगवान आत्मा अनन्त गुणमय और उसकी वर्तमान पर्यायमय है, ऐसे द्रव्य को दृष्टि में न ले, तब तक उसे राग का और मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता। यहाँ तो पर्यायसहित लेना है न? समझ में आया?

और कैसा है? कैसा है भगवान आत्मा? **अर्थात् कैसी है जीववस्तु? 'यः भावः**

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरः अपि ज्ञानमात्रमयतां न जहाति' कैसा है भगवान? **ज्ञानमात्र जीववस्तु,....** भाव जानना... जानना... जानना... जानना... मात्र समझ का पिण्ड, चैतन्य सूर्य, चैतन्य सूर्य प्रकाश चैतन्य प्रकाश का सूर्य, ऐसा भगवान आत्मा ऐसा कहने पर भी **द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि से लेकर,....** देखो! यहाँ से उठाया है न! द्रव्य है, गुण है, पर्याय है। **इत्यादि से लेकर,.... 'अनेकनिजशक्ति'** यह ४७ शक्ति का व्याख्यान अपने आ गया है, पहले भी आ गया है। आत्मप्रसिद्धि नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई है। फिर से अभी ४७ शक्ति का वर्णन हुआ है, परन्तु टेप रिकॉर्डिंग में पड़ा है। शब्दपने की बात है, हों! पड़ा है तो आत्मा में निज शक्तियाँ सब। उसके वाचक शब्दोंरूप जो व्याख्यान हुए, वे अभी टेप रिकॉर्डिंग में पड़े हैं। अभी बाहर निकले तब सही। कहो, समझ में आया? यह ४७ शक्ति का वर्णन है। ४०-४१ व्याख्यान हैं। ४७ (शक्तियों) के ४०-४१ व्याख्यान हैं। वे इसमें नहीं। मूल पाठ में लिया है। यहाँ तो शक्ति कहकर फिर उसे समेट लिया है। कैसा?

भगवान आत्मा एक-एक अपना आत्मा अपने **द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि से लेकर अस्तित्व....** अस्तित्व का इसमें गुण है। होनापना सत्ता सत्... सत्... सत्... नाम का अस्तित्व नाम का गुण आत्मा में है। वह विशेषण है। उसकी पर्याय भी सत्रूप्प की अस्तित्व की पर्याय है। **वस्तुत्व....** प्रयोजनभूत अपने को सिद्ध करे, ऐसा वस्तुत्व नाम का आत्मा में अनादि आत्मा में—अपने में गुण है। वह वस्तु का वस्तुपना अपने में गुण है। वह वस्तु का वस्तुपना परवस्तु के कारण नहीं। भाई! हमारी वस्तु हमारे सम्हालनी है। तेरी वस्तु कहाँ है? स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, पैसा, मकान, धूल वह तेरी वस्तु है? कि वस्तुपना वहाँ तू मानता है।

मुमुक्षु : व्यवहार से मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से क्या परन्तु व्यवहार को माने? मूढ़। व्यवहार था कब? कहने में निमित्तरूप से जानने में आवे। वह तो ऐसा बोला जाता है, ऐसा कहा जाता है। वस्तु में है नहीं। वस्तुपना तो अपने में है। अपना गुण वस्तुपने का, वस्तु अनन्त गुण बसे हुए, आत्मा है उसमें अनन्त गुण बसे हुए हैं, उसका पना—भावपना अपने में है। समझ में आया? इस वस्तु का अस्तित्व, अनन्त गुण का वस्तु का वस्तुपना

आत्मा में है। इसका वस्तुपना आत्मा के अतिरिक्त राग में नहीं, कर्म में नहीं, शरीर में नहीं, स्त्री-पुत्र-परिवार में कहीं नहीं। समझ में आया?

'**प्रमेयत्व...** उसमें, आत्मा में दूसरे के ज्ञान में अथवा अपने ज्ञान में प्रमेयरूप से हो, ऐसा एक गुण है। प्रमेयत्व मेय अर्थात् माप में आवे। ज्ञेय, ज्ञेय। आत्मा प्रमेय अर्थात् ज्ञेय। प्रमेय = प्र-विशेष मेय-माप में आना। आत्मा कैसा है, ऐसा माप में आवे, ऐसा एक प्रमेय नाम का आत्मा में गुण है। यह क्या होगा? प्रमेय समझ में आया? यह परमेय होता है वह नहीं, हों! यह। आहाहा! प्रमेय। भगवान आत्मा में जैसे ज्ञान अनादि-अनन्त है, वैसे प्रमेय नाम का गुण—शक्ति अनादि-अनन्त है कि जो प्रमेय—जो अपने ज्ञान में यह कितना है, ऐसा माप-ज्ञान में आ जाये, ऐसा एक उसका गुण है। आत्मा द्रव्य-गुण-पर्यायमय कितना है, ऐसा माप में (आ जाये)। ज्ञान प्रमाण है और उसमें ज्ञान के साथ प्रमेय गुण दूसरा है, उस प्रमेय के कारण ज्ञान में पूरा आत्मा कितना (वह) ज्ञान में आ जाये। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा अपने ज्ञान में पूरा माप में आ जाये, ऐसा इसमें गुण है। मापनेवाला गुण है और माप में आनेयोग्य है, ऐसा भी गुण है। माप का होता है न? यह कांटा (तराजू) आदि। तो दाना आदि मपे या नहीं? आकाश आदि मपते होंगे? इसलिए मपनेयोग्य वस्तु है और मापनेवाला तोला, कांटा (तराजू) है। इसी प्रकार आत्मा स्वयं अपने ज्ञान में मापनेयोग्य है और माप में आनेयोग्य है। अरे... अरे..! यह गजब बात, भाई! स्वयं अपने ज्ञान से प्रमाण करे और स्वयं अपना प्रमेय होकर स्वयं प्रमाण में पूरा इतना है, ऐसा जान सके। समझ में आया? यह प्रत्येक गुण की पर्याय है। यहाँ तो अभी गुण वर्णन करना है न? परन्तु गुण को निश्चित करनेवाला, गुणी का यह गुण है, ऐसा निश्चित करनेवाले गुणी पर दृष्टि जाने से उस प्रत्येक गुण की वर्तमान पर्याय में कार्य हुए बिना नहीं रहता।

आत्मा में यह गुण है, ऐसे गुणी का यह गुण है, इस प्रकार गुणी पर दृष्टि, ज्ञान वस्तु पर जाने से उस प्रमेयत्वगुण का पर्याय में कार्य हुए बिना नहीं रहता। क्या कहते हैं यह बात? यह वस्तु की सिथति है, ऐसी बात कही जाती है। अलौकिक बात है।

कहाँ कभी सुना नहीं, दरकार भी की नहीं। सिर फोड़कर मर गया, मजदूरी कर-करके हैरान (हो गया) मजदूरियाँ कर-करके। ऐसा होगा या नहीं? अज्ञानियों ने मजदूरियाँ की। किसकी? राग-द्वेष की। पर की नहीं, स्त्री-पुत्र के लिये नहीं, शरीर की नहीं, तोला-बोला उठाया नहीं। इसने मजदूरी (की) राग और द्वेष... राग और द्वेष... राग और द्वेष... बस इसकी मजूदरी की। इसके अतिरिक्त इसने अनन्त काल में कुछ किया नहीं। करना हो तो यह कर तो तेरे कार्य सिद्ध हों, कहते हैं। समझ में आया?

प्रमेयत्व नाम का (गुण), भगवान आत्मा प्रमेयत्वपना, **अगुरुलघुत्वपना...** जितने गुण हैं, उतने अपनी पर्याय और उतने में रह सके, कम-ज्यादा हो नहीं, हीन हो नहीं, कम हो नहीं, ऐसा एक गुण है इसमें। यह अनादि-अनन्त गुण है, हों! **सूक्ष्मत्व,...** सूक्ष्म है न? सूक्ष्म गुण। सूक्ष्म है न? इन्द्रियग्राह्य है आत्मा? यह सूक्ष्मत्व उसका गुण है, वह अतीन्द्रिय ग्राह्य है। ऐसा ही उसका गुण है। ज्ञान अतीन्द्रिय से ग्राह्य हो, ऐसा सूक्ष्म गुण उसमें है। लोग कहते हैं, बहुत सूक्ष्म बातें हैं। परन्तु बापू! सूक्ष्म तो तेरा गुण है। बात बहुत सूक्ष्म है, हों! अर्थात् बहुत सूक्ष्म। परन्तु सूक्ष्म तो तेरा गुण है। फिर सूक्ष्मत्व गुण की बात होगी या नहीं? आहाहा! यह बड़े सिर हड्डियाँ इसे, वह तो मिट्टी, धूल है, जगत के मिट्टी के ढेले, ढेपा इकट्ठे हुए हैं यह तो। वह कहाँ आत्मा था? वाणी कहाँ आत्मा थी? वह जड़ है, मिट्टी-धूल है। अन्दर कर्म मिट्टी-धूल है, तैजस, कार्माण (शरीर) वह धूल-मिट्टी है।

भगवान आत्मा तो सूक्ष्म है, सूक्ष्म है। वह इसका अनादि का गुण है। समझ में आया? ऐसे-ऐसे अनन्त गुण पड़े हैं, ऐसे गुण को विशेषण कहकर अक्रम है, पर्याय क्रम (सर है)। इन तीनों का एकरूप, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा आत्मा इसने अनुभव में निर्णय करना, तब इसे सम्यग्दर्शन होगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०६, बुधवार, दिनांक-२९-१२-१९६५, कलश-२६४, २६५, प्रवचन-२८४

यह स्याद्वाद अधिकार का उपसंहार है। २६४ कलश है। यहाँ साध्य-साधक नाम दिया है परन्तु यह शुरुआत है। यहाँ तक आया, देखो! '**यः भावः' ज्ञानमात्र जीववस्तु, द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि से लेकर,...** क्या कहते हैं? आत्मा ज्ञानमात्र है, ऐसा कहा तो भी उसके द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि लेकर। द्रव्य से द्रव्य वस्तु है, ज्ञानस्वरूप, गुण से अनन्त गुण हैं, पर्याय में भी काल क्रम से अनेक अवस्था होती है। ऐसे द्रव्य-गुण-पर्यायसहित वस्तु है।

उसमें अनादि अस्तित्व नाम का गुण है। भले ज्ञानमात्र कहा, परन्तु अस्तित्व नाम का भी इसमें गुण है। वस्तुत्व नाम का गुण है, प्रमेयत्व नाम का गुण है। अपने ज्ञान में अथवा दूसरे के ज्ञान में ज्ञात होऊँ, ऐसा उसमें—आत्मा में एक प्रमेय गुण है। ज्ञानमात्र कहने से उसमें अनेक धर्मों का निषेध नहीं हो जाता। उसमें पर का निषेध हो जाता है, परवस्तु उसमें नहीं। **अगुरुलघुत्व...** यह भगवान आत्मा अगुरुलघु। जितने गुण और पर्यायें हैं, उसमें कोई कम-ज्यादा नहीं होते। **सूक्ष्मत्व...** सूक्ष्मत्व इसमें गुण है। ज्ञानस्वरूप है, वैसे सूक्ष्मत्व भी इसमें है। यहाँ तक कल आया था।

कर्तृत्व,.... आत्मा में अपने अनन्त गुण की निर्मलपर्याय को करे, ऐसा उसमें गुण है। समझ में आया? देखो! इसमें कर्तृत्व लिया। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी पदार्थ है, उसमें जैसे ज्ञानगुण है, अस्तिवाला गुण है त्रिकाल युगपद्। युगपद् अर्थात् सभी शक्तियाँ एकसाथ हैं। उसमें एक कर्ता नाम का भी गुण है। वह कर्ता गुण अनन्त गुण की वर्तमान पर्याय को करे, ऐसा उसमें गुण है। उसकी पर्याय राग से हो या निमित्त से हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया? उसका एक गुण है और गुण का गुण (क्या)? कर्तृत्व नाम का गुण है, उसका गुण (क्या)? कि अपने अनेक गुण की पर्याय का रचना, करना वह उसका गुण है।

आत्मा को अन्दर निमित्त आवे तो वहाँ निर्मलपर्याय का कार्य हो, ऐसा गुण नहीं है। तथा रागादि के परिणाम पुण्य-पाप के हैं तो वहाँ मोक्ष के मार्ग की (पर्याय हो, ऐसा

नहीं है)। यहाँ तो निर्मलपर्याय की ही बात है, उसे ही आत्मा कहते हैं। भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें कर्तृत्व नाम का गुण है कि जो अनन्त गुण की वर्तमान निर्मल अवस्था को कर्तारूप से करे। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प हों तो वह कर्ता होकर यहाँ सम्यग्दर्शन आदि निर्मलपर्याय को करे, ऐसा उसमें गुण नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बहुत सूक्ष्म। इसलिए यह सब चला देते हैं न!

अरे! भाई! प्रभु! तू तेरा स्वतन्त्र पदार्थ है न भाई! अनन्त... अनन्त... गुण से भरपूर पदार्थ है। कहेंगे अनन्त। उसके अनन्त गणनारूप कहेंगे न? अनन्त गणनारूप गुण, हों! ऐसे अनन्त कालरूप, ऐसा नहीं। अनन्त काल तो रहे। वह कालकृत तो उसमें अनन्त गुण की कालकृत क्रम-क्रम से पर्याय हो, वह तो कालकृत क्रम-क्रम से, परन्तु उसके युगपद् एकसाथ अनन्त गुण हैं। ऐसे अनन्त काल रहे, इसलिए अनन्त, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसा है न?

अनन्त गणनारूप द्रव्य की सामर्थ्य,... है न उसमें फिर? गणनारूप (अर्थात्) ऐसे संख्या। एक, दो, तीन, चार... अनन्त। आत्मा में अनन्त गुण में से एक कर्तृत्व नाम का गुण है कि अपने गुण को करे। ऐसे उसके साथ, यहाँ भले नहीं लिया परन्तु ४७ (नय) में लिया है, अकर्तृत्व नाम का एक गुण है। समझ में आया? आत्मा में अकर्तृत्व नाम का गुण है कि वह रागादि कर्म के निमित्त से हुए विकार को करे, ऐसा उसमें गुण नहीं। उसे न करे, ऐसा गुण है। आहाहा! समझ में आया इसमें?

यह आत्म द्रव्यवस्तु भगवान आत्मा, उसमें अनन्त गुण की गिनती वाले अनन्त संख्या में गुण में एक अकर्ता नाम का गुण है कि जो विकार को न करे। विकार को करना, ऐसा कोई गुण नहीं। यह कर्तृत्व गुण कहा वह तो अविकारी को करे ऐसा कर्तृत्व गुण कहा है। समझ में आया? आहाहा!

विकार को करे ऐसा गुण, यह गुण की बात नहीं। ऐसा गुण है ही नहीं। एक समय की अवस्था में, अंश में विकृतपना नया खड़ा करे, ऐसा पर्याय का, अज्ञानभाव से ऐसा पर्याय का स्वभाव है। ज्ञानभाव से भी ऐसा परिणमन एक अंश में होता है, ऐसा ज्ञानी जानता है परन्तु उसका गुण कोई विकार करने का त्रिकाली है, ऐसा गुण है नहीं।

परन्तु उसमें गुण ऐसा त्रिकाली है कि विकार का न करना ऐसा त्रिकाली गुण है। समझ में आया? यह समझना, इसे ऐसा (कठिन लगता है)। परन्तु वह वस्तु ऐसी है, ऐसा इसे जानना और मानना, अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। धर्म कोई दूसरी चीज़ नहीं है। समझ में आया? यह कर्तृत्व के सामने अकर्तृत्व (लिया)।

भोक्तृत्व... आत्मा में (भोक्तृत्व) नाम का गुण है। कौन सा? विकार को अनुभव करना, शरीर को भोगना वह तो इसमें है नहीं, परन्तु विकार को अनुभव करना, ऐसा गुण नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा में ऐसा एक गुण अनन्त गिनती में से एक गुण है कि जो आत्मा के आनन्द को भोगे, ऐसा उसमें भोक्तृत्व गुण है। समझ में आया? दु:ख को भोगे, ऐसा गुण नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... कहाँ से आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान में से खड़ा किया अंश में। अज्ञान से खड़ा किया अंश में, वस्तु में नहीं। समझ में आया? कहाँ कभी विचार किया है। ऐसे के ऐसे बैल की भाँति जिन्हें अज्ञान से मेहनत ही की है। मलूकचन्दभाई! आहाहा!

अरे! यह आत्मा ऐसा कहता है, अब देख तो सही, भाई! आहाहा! कल तिलोयपण्णत्ती में से नरक के दु:ख का वर्णन पढ़ा। ओहोहो! भाई! तूने ऐसे दु:ख अनन्त बार सहन किये, निज द्रव्य-गुण के भान बिना। समझ में आया? निज द्रव्य क्या और निज गुण क्या, इसके भान बिना। आहाहा! तिलोयपण्णत्ती में से लेकर उसका वर्णन किया है। कहीं बड़ा राजा-महाराजा हो और वह सीधे नरक में उपजे। यह मधुछत्ता के जैसे उसके छिद्र हों और वहाँ इतने तीखे तीक्ष्ण शस्त्र भरे हैं, उसमें उपजे। चक्रवर्ती यहाँ बड़े रेशमी गद्दे पर सोता हो। पहले समय में यह और दूसरे समय में नरक में और वहाँ उपजना... भाई! ऐसा कोमल शरीर और ऐसे-ऐसे जरा ऐसा होता हो, ऐसा होता हो, वह मरकर दूसरे समय में वहाँ, हों! इसने अपने द्रव्य और गुण की महिमा जानी नहीं। आहाहा!

इसलिए वहाँ अज्ञानी को दु:ख का वर्णन कैसा होता है, ऐसा वर्णन (किया है)। वह वहाँ उपजे ऊपर में। मधुछत्ता जैसा होता है न? मक्खियाँ, मधु। ऐसे उपजे ऊपर।

तो ऐसा सहन नहीं हो तो पड़े नीचे, नारकी के जीव पड़े नीचे और नीचे छत्तीस प्रकार के शस्त्र पड़े हैं। कोई जमैया और तलवार, भाला और ऐसे उसके ऊपर गिरे ऊपर से। छत्तीस प्रकार के शस्त्र! गिरे उसकी पीड़ा (हो)... हाय... हाय...! सात योजन ऊचा होता है। इतनी पीड़ा से ऐसे सात योजन गति करे। यह तो अनन्त बार जा आया वहाँ, हों! यह किसी की बात नहीं। समझ में आया?

ऐसे उछले और वापस इतने से पड़े शस्त्र के ऊपर। छत्तीस प्रकार के ऐसे शस्त्र अनेक बारीक-बारीक तीक्ष्ण और ऐसे भाला और आड़े और टेढ़ और कोई आड़ा गिर जाये, आड़ा गिर जाये, ऐसे आड़ा गिर जाये, वहाँ से कूदे। बहुत पीड़ा होती है। ऐसे आड़ा गिर जाये, ऐसे गिर जाये। उछले। वह गिरे। कितनी बार गिरे! अर्धमृतक जैसा हो। अर्धमृतक जैसा हो तो उसे नारकी मारफाड़ (को) आवे। आहाहा! वह पीड़ा इसे सहन न हो। वहाँ से भागे। वैतरणी नदी में जाये। वहाँ कोई नहीं लगता। उस वैतरणी नदी में पड़े। वह पानी धगधगते लोहे के रस जैसा पानी। तीक्ष्ण धार जैसा उसमें (गिरे)। हाय.. हाय..! रे..! यह जलन और उसमें वापस ऐसे असुर परमाधामी ऐसे बड़े मुँह करके पड़े हों मगरमच्छ और आदि। ऐसे निगल जाये, वह निगल जाये।

उसमें से भागे और जहाँ किनारे आवे, वहाँ वन के वृक्ष (हों)। किनारे जहाँ निकले वहाँ सिर पर गिरे। ऐसे वृक्ष के पत्ते। डालियाँ गिरे पाँच सौ-पाँच सौ, हजार-हजार मण की लोहे जैसी। ऐसे चूरा (हो जाये)। और फल गिरे बड़े पाँच-पाँच मण के बड़े इतने लोहे के। हाय..रे! कहीं चैन नहीं मिलती। ऐसा ऐसा इसने सागरोपम (तक सहन किया)। असंख्यात अरब वर्ष का पल्योपम। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का सागरोपम। ऐसे-ऐसे तैंतीस सागर तक दुःख भोगे हैं। परन्तु भूल जाता है न! याद आता है कुछ? यह ज्ञात हुआ है ज्ञान में कि बापू! तेरी इस प्रकार से दशा हुई है, भाई! ऐसे चार गति के दुःखों के दुःख तूने बहुत वेदन किये हैं, भाई! समझ में आया?

उसमें वापस वे नारकी आकर गिद्ध ऊपर होते हैं न? असुर के गिद्ध और पक्षी किये हों। मारे कूटे। इतना प्रहार हो गया, टुकड़े हुए (हों)। दूसरे नारकी आकर गर्म झलझलता नमक का पानी करके छिड़के। हाय... हाय... रे! क्या है यह? कहाँ जाऊँ?

कहाँ जा, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आत्मा अनन्त गुणों का ठाम वहाँ स्थिर होने का ठिकाना वह तुझे सूझता नहीं। समझ में आया? यह दुःख सुने न जाये, हों! केवली जाने और इसने वेदन किये है, ऐसा है। आहाहा! उसमें जहाँ मनुष्य हुआ तो यह आँखों से जाये, ऐसा किया और वैसा किया, मैं किया, वह किया। क्या है परन्तु? भाई!

मुमुक्षु : दुःख सहन करने की शक्ति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति ऐसी है। उल्टा मुड़े तो क्या करे? जाये कहाँ? पारा जैसा भिन्न टुकड़े हो जायें। आयुष्य पूरे हुए बिना मरे नहीं, (इसलिए) वापस शरीर एकत्रित हो जाये। वापस वह दूसरी बार, ऐसे असंख्य बार, असंख्य अरब बार (इकट्ठा हो)। अरे...! इसने कहाँ नरक के दुःख भी सुने है। नहीं आत्मा सुना कि आत्मा कैसा है? आहाहा!

इसलिए यहाँ कहते हैं कि बापू! तुझमें अनन्त गुण इतने है कि एक भोक्ता आत्मा के आनन्द को भोगना, ऐसा गुण है। उसके सामने तूने कभी देखा नहीं। समझ में आया? यह पुण्य और पाप के भाव करके इसके फल में चार गति में गया। सामने देखकर वेदन.... वेदन.... वेदन.... बापू! कहीं चैन नहीं, हों! यह पैसेवाले या यह राजा, यह भले माने। सूजन के दुःख। अन्दर दुःखिया, दुखिया सब सुलग उठे हैं।

वह कहता है कि समकिती को वहाँ सुख है, मिथ्यादृष्टि को देवलोक में दुःख है, ऐसा लिखा है। इसलिए कोई कहे कि पुण्य के फल आते हैं। अरे! समकितदृष्टि को... नहीं आया समकितदृष्टि को? देवलोक के दुःख क्लेश भोगकर। अब इसमें इनकार करते हैं कि नहीं, समकिती नहीं। भगवान! परन्तु तुझे क्या करना है? बापू! समकिती दृष्टि राग से अंगारों में सिंकता है, ऐसा पाठ है। सम्यग्दृष्टि को भी जितना पुण्य बँधा, उसमें जो देव का फल मिला, वह अंगारों से सिंकता है, भाई! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। यहा इनकार करते हैं, देखो! नहीं। सम्यग्दृष्टि तो सुख मानता है, मिथ्यादृष्टि मानता है। दृष्टान्त देते हैं न? वहाँ समकिती हो, वहाँ जाये, पश्चात् समकिती की दृढ़ता में काल व्यतीत हो। वह तो भी अनुकूलता की बात है परन्तु वे विषय सुख में सिंकते हैं वे? आत्मा के आनन्द में से निकलकर उस विषयसुख पर लक्ष्य जाता है, वह सिंकता

है, अंगारों में सिंकता है। अग्नि में जैसे शकरकन्द सिंके, वैसे वहाँ आगे ज्ञानी भी अपने विकार से सिंकता है, भाई! इसे खबर नहीं। क्या हो? आहाहा! समझ में आया? इसका निषेध (करते हैं)। पुण्य के कारण निषेध (करे)। पुण्य बताने को, अरे! भगवान!

भाई! पुण्य तो वर्तमान राग है, बापू! आकुलता। उसके फलरूप से कर्म बँधते हैं। वह भी विषय तरुवर—जहर का वृक्ष है और उसके फलरूप से प्राप्त हो, वह सब संयोग मिट्टी के पिण्ड हैं। आहाहा! इसके ऊपर लक्ष्य जाने से क्लेश होता है, आकुलता होती है, बापू! वह अनाकुलता का पिण्ड प्रभु है, उसके सन्मुख तो नजर तुझे करना नहीं। जहाँ आनन्द पड़ा है, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द शान्त है, ऐसे स्वभाव की शान्ति का सागर भगवान के सन्मुख देखना नहीं और ऐसे देखकर सब खलबलाहट-खलबलाहट की है। अरे! पुण्य में मजा है। अरे! सुखी नहीं, बापू! पुण्य में मजा हो तो पुण्य छोड़कर शान्ति में क्यों आवे धर्मात्मा? आहाहा! यहाँ कहते हैं....

वह तो यह जरा इस छहढाला का एक देखा पहले नरक के दुःख का ऐसा वर्णन किया। एक पुस्तक में है, हों! किसी की पुरानी पुस्तक है। तिलोयपण्णत्ती में से लिया है। ओहोहो! निकला और उपजा, वह उपजा वह कितने काल रहे! ऐसे असंख्य अरब वर्ष का तो एक पल्योपम होता है। और ऐसे-ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। ऐसे एक सागर का पहले नरक का आयुष्य है। ऐसा-ऐसा तीन, पाँच, सात, दस सत्रह, बाईस और तैंतीस (सागरोपम)। सातवें नरक में तैंतीस सागर। बापू! वह काल कैसा बिताया? आहाहा!

एक रात्रि में चद्दर में दो, पच्चीस-पचास मांकड आये हों... ऐसे पैर घूमे तो वहाँ काटे और ऐसे घूमे तो यहाँ काटे। अरे! यह किसने बिछाया है ऐसा? भान नहीं। यह ऐसी खाट किसने (बिछायी)? चिल्लाहट मचा जाता है। पच्चीस, पचास, दो, चार दस निकले। आहाहा! एक व्यक्ति फिर माकड निकले न? फिर गर्म धगधगती हो न? यह चिमनी, चिमनी। ऐसे मांकड के ऊपर घुमावे। नींद आने के लिये। राणपुर में एक सेठ था न? उस ओर पीछे दुकान थी। आहाहा! अरे! भाई! तुझे आ गया, बापू! यहाँ राग आ गया। मानो ऐसे... भाई! वहाँ सींक गया है, बापू! भाई! तुझे खबर नहीं, हों! उस

आत्मा की दृष्टि तूने नहीं की इसलिए दु:खी है, वह संयोग के कारण दु:खी नहीं। आहाहा! उस संयोग में तो दृष्टि है और उसके ऊपर राग-द्वेष (करता है) इसलिए दु:खी होता है। संयोग से दु:खी नहीं। भगवान आत्मा पर नजर नहीं की, नजर की पर में और राग-द्वेष और संयोग में, उसका इसे दु:ख है। कहो, भीखाभाई! आहाहा!

एक निद्रा, दो, चार घण्टे न आवे वह कसमसाहट ऐसे से ऐसे और ऐसे से ऐसे करे। अरे! आज चैन नहीं। क्या कुछ खाने में फेर पड़ा? कुछ खबर नहीं पड़ती। दवा में फेर हुआ, पानी में फेर हुआ। ऐई! तुम्हारे रात्रि में चार पहर कौन बैठा था? सबको नींद हो या नहीं? अकेले हम तड़पते हैं, कोई सामने देखता नहीं। अरे! स्वार्थ के सगे सब और मांडे फिर। समझ में आया? भाई! यह दु:खी हुआ वह संयोग के कारण नहीं। भाई! तेरे स्वभाव के बेभान के कारण दु:खी है।

इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं, बापू! तुझमें ऐसा गुण है कि आनन्द को भोगा जाये ऐसा गुण है। भाई! आहाहा! समझ में आया? भोक्ता नाम का गुण है। है न? भोक्तृत्व—भोक्तापना। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें आनन्द अतीन्द्रिय है, उसे भोगे। ज्ञानानन्द आदि अनन्त गुण की पर्याय को (भोगे), ऐसा उसमें गुण है। राग और हर्ष को भोगे, ऐसा गुण नहीं। इसने द्रव्यदृष्टि की नहीं। पर्याय में खड़ा किया हुआ यह कौतूहल अज्ञान का है। समझ में आया?! आहाहा! ऐसा इसमें अभोक्तृत्व गुण है। हर्ष-शोक का नहीं भोगना, ऐसा गुण है इसमें। समझ में आया?

आत्मा-भगवान आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति प्रभु में भगवान सर्वज्ञ ने देखा हुआ अभोक्ता गुण तुझमें है, भाई! उस अभोक्ता गुणवाले द्रव्य की यदि दृष्टि करे तो वह अभोक्ता गुण विकार को भोगे ऐसा उसमें (है नहीं)। दु:ख को भोगना, चार गति के दु:ख को भोगना, ऐसा गुण नहीं है। आहाहा! परन्तु वह आत्मा ऐसा है और इतना स्वरूप है, (यह) उसे प्रतीति में नहीं आता। आहाहा!

यह पर का कर्ता माने तो आचार्यों के वचन सच्चे माने कहलाये, ऐसा और (कोई) कहता है। अरे! भगवान! भाई! यह तेरा राज नहीं चलता। बापू! सही अवसर पर पुकार कर बैठेगा। आहाहा! अभी अन्दर खबर पड़ती नहीं, इसलिए पुकार दिखता

नहीं। परन्तु पर के रजकण के काम आत्मा करे, ऐसा कोई गुण है नहीं। अरे! पर्याय का धर्म है नहीं। आत्मा की पर्याय का धर्म है कि पर का करे? आहा! और रागादि का करे, ऐसा तो कोई गुण भी नहीं है और हर्ष-शोक को भोगे, ऐसा कोई गुण नहीं। पर को भोगे ऐसे तो कोई गुण और पर्याय भी नहीं। समझ में आया? यह स्त्री, पैसा, बँगला, मकान और यह मखमल और यह मेवा... उन्हें भोगे ऐसा तुझमें गुण तो नहीं परन्तु तेरी पर्याय में भी ऐसा धर्म नहीं। धर्म अर्थात् योग्यता, भाई! आहाहा!

भाई! यह भोगने का गुण तुझमें नहीं और पर्याय में दुःख को भोगने की पर्याय तूने खड़ी की है। तेरे गुण में कहीं ऐसा अंकुर नहीं है। आहाहा! परन्तु दुःख को न भोगना, ऐसा भगवान तुझमें गुण है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा... आत्मा माने ऐसे आत्मा को मानने में उसकी बहुत जवाबदारी है। समझ में आया? यह दुःख को भोगे, ऐसा उसमें गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसी तरह आत्मा में सुख नाम का गुण है, आनन्द पड़ा है। दुःख कोई गुण नहीं। वे और दुःख गुण कहते हैं। कहीं का कहीं निकाला। तेरापंथी कहे, दुःख नाम का गुण है, दुःख नाम का गुण है। अरे! भगवान! यह क्या हुआ जैनदर्शन में? यह जैनदर्शन अर्थात् कि वस्तु स्वरूप है। यह कोई वाडा, सम्प्रदाय नहीं। भगवान आत्मा में और एक सुख गुण और दुःख गुण दो सिद्ध किये हैं। तेरापंथी तुलसी कहते हैं। कहो, यह बड़े कितने... समझ में आया न? ऐ... जुगराजजी! तुलसी है न?

आत्मा में सुख गुण है और दुःख गुण है। दुःख गुण की पर्याय अनन्त, दुःख गुण की पर्याय अनन्त। दुःख-गुण और अनन्त पर्याय किस प्रकार? कि अनन्त पुद्गल को, अनन्त पुद्गल को वेदे, इसलिए अनन्त पर्याय। अरे! भगवान! यह तूने क्या किया? पुद्गल को वेदे, ऐसा तो पर्याय में धर्म नहीं न। ऐई! हिम्मतभाई! क्या कहा? दुःख को गुण कहा। ठीक लगे ऐसा करे, बात सच्ची है। आहा! अरे! अन्ध खाता कितना हो गया! एक आचार्य नाम धरावे बड़ा तुलसी! हम धर्म के धोरी, धर्म के वास्तविक मार्ग के चलानेवाले। प्रभु! परन्तु तू दुःख को गुण कहकर, दुःख की अनन्त पर्याय और अनन्त परमाणुओं की असाता को वेदता है, इसलिए अनन्त पर्याय। परन्तु वह पर्याय

कहाँ से आयी ? वह तो उसके रजकण की पर्याय वहाँ गयी। यहाँ पर्याय अनन्त कहाँ से की ? और पर्याय तो कालक्रम में होती है। उस समय तू कहता हो तो उस पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद ले जाये, उसकी भी पर्याय कहाँ से आयी, उसकी गुण की ? ओहोहो ! समझ में आया ?

आत्मा में आनन्द नाम का-सुख नाम का गुण है। आत्मा में अनादि सुख पड़ा है, हों ! उसे देखने को निवृत्त नहीं होता। कहते हैं कि आत्मा माने, उसे आनन्द मानने में आवे और आनन्द मानने में आवे तो उसकी पर्याय में आनन्द का अनुभव हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा में परमेश्वर नाम का एक गुण है। परमेश्वर—प्रभुता ! परमेश्वर ऐसा आत्मा में प्रभुता नाम का गुण है कि जिसकी पर्याय में प्रभुता ही बसे। पर्याय में पामरता (में) बसना, (ऐसा) उसमें कोई गुण नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? सर्वज्ञ गुण है, सर्वदर्शी गुण है। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें स्वयं अपने में एक ऐसा गुण है कि जो अपने गुण को सम्हालने से उसमें आनन्द का दान स्वयं दे और आनन्द का दान ले, ऐसा उसमें गुण है। पर को दान दे और ले, (ऐसा) उसमें कोई गुण नहीं। तथा पर्याय में पर का दान ले, ऐसा पर्याय का धर्म नहीं। तथा पर को पैसा दे, ऐसा पर्याय में धर्म नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? भारी कठिन बात, भाई ! अभयदान, दो ! अभयदान अर्थात् क्या ? कि, नहीं मारने का एक विकल्प। परन्तु वह विकल्प, वह कहीं गुण वस्तु नहीं है। अरे ! भगवान ! बापू ! तेरे गुण के सामर्थ्य में पर को अभय देना, ऐसा गुण नहीं है। पर्याय में यह ताकत है कि पर को अभय दे सके ? विकल्प आवे, वह उसका गुण नहीं। विकल्प का करना और भोगना, ऐसा गुण नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा भगवान आत्मा ऐसे-ऐसे अनन्त गुण सम्पन्न है। एक अन्तिम में अन्तिम गुण ऐसा वर्णन किया प्रभु ने कि भाई ! तुझमें ऐसा गुण है कि अनन्त गुण और निर्मल पर्याय तेरी और तू उसका स्वामी, ऐसा गुण है। परन्तु तुझमें ऐसा गुण नहीं, किन्तु पर्याय ऐसी नहीं, कि विकार और पर तेरे और तू उनका स्वामी हो, ऐसा कोई पर्याय के अंश में भी धर्म नहीं। मानता है, वह अलग बात है। समझ में आया ?

यह कर्म मेरे और मैं इनका, शरीर मेरा और मैं उसका, पैसा मेरा और मैं उसका, पुण्य-पाप मेरे और मैं उनका—ऐसा कोई आत्मा में गुण नहीं कि वह तेरा स्व और तू उसका स्वामी। परन्तु क्या करना? तब आया यह सब कहाँ डाल देना? कहाँ आया है? भाई! कह न! कहाँ आया है तेरे पास? वे तो उसके पास पड़े हैं, उनके पास। विकल्प उठाया है, वह भी गुण नहीं, कोई विकार होने का गुण नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द अनन्त गुण का पिण्ड, वह स्व, उसका धन है और उसका वह स्वामी है, ऐसा उसमें गुण है। पर उसका स्व और पर वह उसका स्वामी हो, ऐसा आत्मा में तीन काल में कोई गुण नहीं है। आहाहा! जुगराजजी! रात्रि में लाये थे न? कितने ही भोगे ऐसा पाठ है। कहा, बात सच्ची, हों! शास्त्र में ऐसे उनके लेख हैं कि बेचारों को हाथ आवे नहीं। कर्म के आधार से आत्मा और अमुक के आधार से और वीर्य शरीर से प्रवाहित हो और वीर्य से यह हो, ऐसा पाठ इसलिए बेचारे उलझकर मर जाये उसमें। आत्मा कर्म को भोगे, आहार को भोगे, ऐसे-ऐसे पुद्गल आत्मा भोगे। जुगराजजी रात्रि में लाये थे। यहाँ तो कहते हैं कि वह भोगे, ऐसा तो पर्याय में भी धर्म नहीं। और विकार पर्याय भोगे, ऐसा उसमें गुण नहीं है। आहाहा! अरे! यह आत्मा किसे कहना? कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित किसे कहना? बापू! इसे बेचारे को बैठा हो तत्प्रमाण कहे। क्या करे? उसे मिला नहीं। उनके शास्त्र में कितना है? अब ७१००० श्लोक। दो वर्ष में जरा बुद्धिवाला हो तो पण्डित हो जाये, ऐसा है। उसमें कुछ बहुत लम्बा नहीं है। समझ में आया? है क्या उसमें? उसमें तो पण्डित, दो वर्ष में बड़ा पण्डित, बड़ा ज्ञानी हो जाये। एक पाँच वर्ष में बड़ा पण्डित हो गया था। फिर शंका पड़ गयी कि, कोई ईश्वर होना चाहिए। छोड़ दिया। पण्डित हुआ था साधु। जवाहरलालजी के पास गया था। तुमने नाम नहीं सुना होगा, भाई! जुगराजजी! क्या नाम था नहीं? त्रिलोकचन्दजी। एक त्रिलोकचन्दजी था, वह जवाहरलालजी के पास साधु हुआ। बुद्धिवाला व्यक्ति, पाँच वर्ष में सब पढ़ गया। वहाँ साधु में पण्डित कहलाया। फिर पड़ी शंका। यह कर्म

का उदया आवे तब यह बैल का सींग मारे तो बैल के सींग को कहाँ खबर पड़ गयी कि उसके उदय आया? और उदय ने कहाँ इसे खींचा? कुछ निश्चित ईश्वर होना चाहिए, बीच में ईश्वर चाहिए। समझ में आया? आया था, यहाँ हमारे पास आया था। छोड़कर, साधुपना छोड़कर (संवत्) १९९२ में आया था।

मुझसे उसने प्रश्न किया था। साधुपना छोड़ दिया फिर विवाह किया था, स्त्री से विवाह किया था। फिर बड़ा पण्डित कहलाया। फिर प्रश्न किया कि, केवली ने सब देखा हो तो फिर पुरुषार्थ करने का कहाँ रहा? इसका विवाद उठाया। केवलज्ञानी ने देखा हो तो पुरुषार्थ करने का कहाँ अपने हाथ में रहा? कहा, केवली को तुम मानते हो? तो कहे, ऐसा नहीं। केवली ने देखा और पहला तो प्रश्न करते हो तुम। तो केवलज्ञान है या नहीं? विवाद ही सब इसमें है पूरा। केवलज्ञान की पर्याय है, ऐसा यदि सिद्ध करो, न हो तो सिद्ध करो केवलज्ञान हो सकता है या नहीं हो सकता। केवलज्ञानी ने देखा उसमें अन्तर नहीं पड़ता। तो कहा, केवलज्ञान मानते हो तुम? फिर दिखा, बाद में प्रश्न। कुछ ठिकाना नहीं होता। बात केवलज्ञान को उड़ा है। केवल नहीं हो सकता, ऐसा कहे। एक समय में तीन काल जाने तो फिर जैसा जाने वैसा हो तो अन्दर आत्मा रहता है... परन्तु तुझे केवलज्ञान की ही खबर नहीं अभी। समझ में आया? जवाहरलालजी का साधु हुआ था, हों! वह जवाहरलालजी हैं न? वह गणेशलाल के गुरु थे वे। कुछ खबर नहीं होती। एक ऐकड़ा की भी। यह तो वीतराग शासन है। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर एक समय में तीन काल तीन लोक को जाने, उनका यह तत्त्व है। कोई उनके घर की बातें करे तो उसमें चले नहीं। समझ में आया?

आत्मा में ऐसा एक गुण है... समझ में आया? कि स्व-स्वमीसम्बन्ध होने का गुण है। तू पर का स्वामी और पर तेरा होने जाये, ऐसा तो तुझमें गुण नहीं। मूढ़रूप से, मिथ्यात्वरूप से मान। ऐसा आत्मा न माने, तब तक इसने आत्मा माना नहीं। आहा! कठिन बात!

सप्रदेशत्व,... उसमें सप्रदेश गुण है। है न असंख्य प्रदेश है न? एक प्रदेश नहीं कहीं। अन्यमति आदि आत्मा को कोई प्रदेश-प्रदेश मानते नहीं। इसलिए खास उसका

एक गुण वर्णन किया है। भगवान आत्मा जितने में है, उसमें एक पॉईन्ट रखें यह रजकण, रजकण है न? अन्तिम टुकड़ा जितने में रखें, एक, दो तीन तो असंख्य रजकण चौड़ा उतना आत्मा है। वह असंख्य प्रदेशी, सप्रदेश है। समझ में आया? स्वर्ण ही हासडी होती है न? हासडी समझ में आता है? यहाँ नहीं डालते कोळी को? ऐसा नहीं आत्मा। आत्मा जैसे सोने के मकोडे की सांकल होती है, स्वर्ण के मकोडा होते हैं न यहाँ? हजार मकोड़े की सांकल। ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी है। मकोडा का अर्थ ऐसे-ऐसे है, ऐसा नहीं यह। परन्तु वह जैसे अंश है, वैसे सप्रदेशत्व उसका गुण है। वह गुणवाला है। कभी अप्रदेशी होता नहीं। आहाहा! यह और क्या कहते हैं? समझ में आया?

अमूर्तत्व... इसमें अमूर्तत्व गुण है। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श इसमें नहीं, ऐसा अनादि गुण है। वे कहे, मूर्त है, भाई! ऐसा कहते हैं। नहीं। मूर्त अभी कर्म के सम्बन्ध हैं। अरे! मूर्त तो उपचार से कहा जाता है। मूर्त होता होगा? ऐसा कि मूर्त न हो तो बन्ध नहीं पाता। सुन न अब! भावबन्ध भी व्यवहार है, द्रव्यबन्ध भी व्यवहार है। दोनों का सम्बन्ध भी व्यवहार है। सब असद्भूत है। भगवान आत्मा अमूर्तगुण इसका अनादि है। अमूर्तत्व आया परमात्मप्रकाश में, नहीं?

ऐसा है... लो! अर्थात् ऐसी **अनन्त गणनारूप द्रव्य की सामर्थ्य,...** समझ में आया? '**अनेकनिजशक्ति**' ऐसा शब्द आया है न? '**अनेक**' अर्थात् अनन्त लेना। '**निज**' अर्थात् अपनी '**शक्ति**' वह अपना गुण है। ऐसे सब उसमें अपने गुण हैं। गिनती से अनन्त हैं, गिनती से अनन्त है, रहनेवाले अनन्त काल है। समझ में आया?

मुमुक्षु : संसार किस प्रकार रीझे?

पूज्य गुरुदेवश्री : रीझे कहाँ? वह ऐसा मानता है, इसलिए रीझता है। माना है कब? माने तब रीझे या माने बिना रीझे? कहो। समझ में आया? एक व्यक्ति आया (वह कहे), मानना नहीं। तू प्रसन्न हो। किस प्रकार प्रसन्न हो परन्तु वह? ऐसे जितने अनन्त गुण है, उन्हें माने तो वह रीझे, रीझे अर्थात् परिणमे। मानता नहीं और खबर नहीं तो रीझे कहाँ से? ऐ... भीखाभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में गिनती से अनन्त गुणवाला वह

तत्त्व है। कहा नहीं था कल? आकाश के प्रदेश हैं, उनसे अनन्तगुणे गुण हैं। ऐसे गिनती से अनन्त, हों! रहनेवाले तो त्रिकाल। युगपद् युगपद् अनन्त गुण रहनेवाले त्रिकाल परन्तु गिनती से वर्तमान अनन्त हैं। आहाहा! अरे! उसे कहाँ भगवान आत्मा कौन हूँ, कितना हूँ, इसकी खबर नहीं होती। अब खबर नहीं होती, उसे लाभ हो, उसे रीझे किस प्रकार कहना? समझ में आया?

सगेसगा मिले हों। ऐसी एक जगह बात हुई थी, हों! मौसी का पुत्र होगा और बहुत वर्ष से इकट्ठे नहीं हुए हों। उसमें बाई मुम्बई की बहुत घूमने जाते होंगे बहुत बार। कितने ही ऐसे होते हैं न, मौसी कहीं हो और वह कहीं। उसमें किसी समय बात निकलने-निकलते निकली कि हम तो अमुक बाई के पुत्र हैं। वह तो हमारी माँ की बहिन एक यहाँ रहती है। खम्भा में। (तो वह कहे) वह हम। मैं उनका पुत्र हूँ। अरे! समझ में आया? हमारे एक मौसीबा होते हैं, हमारे पिता की मौसीबा थी, उनकी एक पुत्री थी और वे वहाँ थी परन्तु बहुत वर्ष से सुनते थे, हमारी माँ कहती थी परन्तु कहीं मिलान (नहीं खाता था)। उनका मैं पुत्र हूँ। हें! तू शामबा का पुत्र? अरे! आहाहा! पहिचान हुई वहाँ प्रसन्न हुआ या नहीं? समझ में आया? तो शामबा याद क्यों आये? मोहनभाई की माँ थी न? वह शामबा हमारे पिता के रिश्तेदार होते थे। तीन पीढ़ी से। ऐसा कुछ कहते थे सही, अपने को कुछ खबर नहीं। उसने कहा, वह सगे होते हैं। होंगे, भाई! समझ में आया? यह तो सब बने हुए की बातें होती है न अन्दर?

इसी प्रकार आत्मा में अनन्त (गुण) है, खबर नहीं पड़ती। आत्मा राग का अकर्ता है, ऐसा गुण है। ऐसे गुणवाला यह आत्मा है। समझ में आया? यह उसकी पहिचान हुई, वह आत्मा अनन्त गुण में परिणमे और प्रसन्न होता है।

ऐसी है। अनन्त गणनारूप.... अनन्त संख्या से, ऐसे। गणना अर्थात् संख्या से। **द्रव्य की सामर्थ्य,...** शक्ति है सही न? द्रव्य की शक्ति उसके द्वारा '**सुनिर्भरः**'। '**सुनिर्भरः**' देखा? **सर्व काल भरितावस्था है।** तीनों काल भरपूर भगवान अनन्त गुण से भरपूर है। भरा हुआ है। ऐसे घर में जैसे बखारी में माल भरा होता है न? कि हमारे तो फिर माल कम हो, ऐसा नहीं है। वह नहीं कहता तुम्हारे? कि सौ वर्ष तक यह खान निकले तो

भी हमारे कम हो, ऐसा नहीं है। अब धूल भी नहीं। तू कितना यहाँ रहनेवाला है? मैंगनीज। समझ में आया? ऐई! तुम्हारे तो कमाते हैं और इन्हें तो खान निकली है। यह बोलता है, कोई कहता था। इसके मामा का पुत्र नहीं? शान्तिलाल खुशाल! इतनी खान है हमारे, कि सौ वर्ष तक परिवार को कम नहीं हो। एक दिन की लाख की आमदनी अभी है। उसमें पचास हजार जाये मजदूरी में। अभी चालीस करोड़ रुपये हैं और परिवार के परिवार खाये (तो भी कम नहीं हो)। क्योंकि जमीन हमारी घर की है, उसमें से लोहा निकला करता है। परन्तु तू कितना यहाँ रहनेवाला है? और कहाँ निकले? और अभी क्या होगा कौन जाने पाँच वर्ष बाद सरकार क्या करेगी? किसका चले क्या खबर पड़े? ऐई! किराये का ब्याज आया करे।

बापू! यह तो आत्मा अनादि '**सुनिर्भरः**' जिसकी खान में ऐसे अनन्त गुण हैं। निकालना मुश्किल क्रम से, कालक्रम से पर्याय तो कम हो, ऐसी नहीं है, ऐसा कहते हैं। कालक्रम से उसमें से पर्याय निकाल तो वह गुण कम हो, ऐसा नहीं है। सादि-अनन्त निकला ही करे, निकला ही करे, ऐसी खान है। अब बाहर की धूल की खान में क्या था? आहा! दुःखी होकर छटपटाकर मरनेवाला है। अरे! इतना नहीं हुआ, हों! इतना नहीं हुआ, इतना सुनाया नहीं, इतना बोला नहीं गया, यह गला एकदम बन्द हो गया, खबर नहीं रही, बुलाओ डॉक्टर को! वहाँ तो ऊं...ऊं... जाओ उठो। भावनगर दरबार, लो न! कितने करोड़ रुपये! ऐसे सुनते थे, बैठे थे, वह क्या कहलाता है? जेसल-तोरल। तोरल और जेसल का भजन सुनते थे। 'पापा तारा प्रकाश जाडेजा धर्म तारो संभाल' रानी कहती है। पति बहुत पापी था। बहुत मारे हुए। मोडबन्ध राजा। रानी थी। अरे! राजा। ऐसे चिल्लाहट मचा जाते हैं। अरे! रानी मेरा क्या होगा? राजा! पाप पुकार तेरा। निकाल, बाहर निकाल। तेरी बेडली को डूबने नहीं दूँगी। समुद्र में जाता होगा और कहे, मैंने बहुत पाप किये हैं। ... मारे हैं, हिरण खाये हैं, गर्भपात किये हैं, मैंने कुकर्म किये हैं, हों! रानी! ऐसा सुना। जरा खड़े हुए, वहाँ ऐसा कुछ होने लगा। सोने गये वहाँ... रानी गयी उसके उसमें और वह गया अपने सोने में। मुझे असुख है, मुझे असुख है, बस इतना बोले। मुझे असुख है, ऐसा कहते हैं न? बाहर निकल गये। रानी को बुलाओ। बाहर निकले ऐसे पड़े वहाँ रानी बुलावे, वहाँ रानी ऐसे आयी वहाँ

डॉक्टर को कहने जाये, वहाँ समाप्त। मुझे असुख है। यह कृष्णकुमार भावनगर दरबार, लो! समझ में आया? धूल में भी वहाँ एक परमाणु की पर्याय जिस समय पूरी हो, उसे रोके कौन? तेरा डॉक्टर आवे, इन्द्र ऊपर से आवे तो रोके कौन? समझ में आया?

कहते हैं, अहो! तुझमें ऐसे अनन्त गुण '**सुनिर्भरः**' भाषा देखो! '**सुनिर्भरः**' वापस ऐसा। अतिशय विशेषरूप से भरपूर सर्व काल भरितावस्थ। भरितावस्था अर्थात् वस्तु में भरे हुए हैं। समझ में आया? परन्तु कभी देखने को भी निवृत्त किया नहीं, मानने को निवृत्त हुआ नहीं, खोजने तो कहाँ से हो? मानने के बाद खोजे न? खोजे तो स्थिर हो। समझ में आया?

इस खान में यहाँ सोना है तो फिर निश्चित हो तो खोदने लगे। इसी प्रकार इस भगवान की खान में अनन्त गुण एक समय में भरितावस्थ पड़े हैं। ऐसा यदि अनुभव-प्रतीति करे तो खोजने लगे—स्थिर हो। स्थिर अर्थात् चारित्र। समझ में आया? आहाहा! भगवान ध्रुव, भगवान ध्रुव। अनन्त गुण ध्रुव, हों! युगपद, युगपद। काल क्रम से नहीं। पर्याय—अवस्था है, वह कालक्रम से होती है। यह युगपद—एक साथ। अनन्त गुणों से भगवान भरपूर, उसके (गुण की) संख्या का पार नहीं होता, ऐसा आत्मा है। समझ में आया?

भरितावस्था है। ऐसा है... ऐसा भगवान है। **तथापि 'ज्ञानमात्रमयतां न जहाति' ज्ञानमात्र भाव को नहीं त्यागता है।** छोड़ता नहीं। ऐसा कि ऐसे अनन्त गुण हैं, परन्तु ज्ञानमात्र भाव को छोड़ता नहीं। सबमें ज्ञान व्यापक है। अनन्त गुण में ज्ञान व्यापक है, अनन्त गुण में सुख व्यापक है, अनन्त गुण में विभूता व्यापक है, अनन्त गुण में कर्तृत्व व्यापक है, अनन्त गुण में अभोक्ता व्यापक है, अनन्त गुण में भोक्ता व्यापक है। ऐसे अनन्त गुण व्याप्तरूप से पसरे हुए हैं। समझ में आया?

यह चैतन्य रत्नाकर है। एक अंग अच्छा हो तो इसे अभिमान लगता है। मुख अच्छा जरा चन्द्रमा के आकार जैसा व्यवस्थित हो तो सवेरे देखा करे और तिलक यहाँ करना और हाथ बराबर व्यवस्थित लगे। जहाँ करना हो तो वहाँ करते होंगे न? ऐसा करूँ तो व्यवस्थित लगे, यहाँ न हो जाये, यहाँ न हो जाये। नहीं तो सींग जैसा हो गया।

वहाँ व्यवस्थित देखने लगे, यह कौन है ? इसे कहाँ तिलक करना पूरे आत्मा को ? समझ में आया ? इसके गुण से भरपूर भगवान की दृष्टि करने से, उसे बहुमान देते ही इसे अनुभव में अनन्त गुण आते हैं। तथापि कहते हैं कि अनन्त गुण होने पर भी ज्ञानमात्र भाव से कुछ पृथक् पड़ता नहीं। अनन्त है, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ इस प्रकार है कि जो गुण हैं अथवा पर्याय हैं, वे सर्व चेतनारूप हैं;... देखो ! यहाँ चेतना उसे लेना है, हों ! यहाँ तो अकेले गुण नहीं। उन अनन्त गुणों का भरपूर तत्त्व, उसकी स्वीकृत दृष्टि में, अनुभव में आने पर अनन्त गुण की वर्तमान पर्यायरूप से परिणमन हो उस पर्यायसहित का आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया ?

गुण हैं अथवा पर्याय हैं, वे सर्व चेतनारूप हैं;... देखो ? यह अनन्त गुणों में चेतना व्यापी है और उसकी पर्याय एक समय की अनन्त पर्यायें। यहाँ विकार की बात नहीं है। उन अनन्त गुण की वर्तमान निर्मल कार्यरूपी पर्याय, उसमें भी चेतना व्यापी है। अनन्त गुण। आनन्द में, श्रद्धा में, शान्ति-चारित्र में, कर्तृत्व में, भोक्ता में अनन्त पर्यायें, वर्तमान गुण की पर्यायरूपी कार्य, उसमें चेतना की पर्याय व्यापती है। समझ में आया इसमें ? आहाहा ! **सर्व चेतनारूप हैं;...** कोई विकाररूप या जड़रूप या चेतना की खाली (नहीं), ऐसा कहते हैं। अनन्त गुण और उनकी पर्याय अनन्त कोई चेतना से खाली नहीं। चेतना व्यापती है। समझ में आया ?

इसलिए चेतनामात्र जीववस्तु है, प्रमाण है। लो ! इसलिए चेतनामात्र भगवान आत्मा है, वह सच्चा है, वही प्रमाण है। प्रमाण अर्थात् सच्चा है। भगवान आत्मा वस्तु के अनन्त गुण और उसकी अनन्त पर्यायें, उसमें चेतनामात्र जो कहा, कारण कि उसमें वह व्यापक है, इसलिए चेतनामात्र आत्मा है, यह बात प्रमाण है, यह बात बराबर है, यह बात यथार्थ है, ऐसा कहते हैं। आहा ! समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि पूर्व में हुंडी लिखी थी... इसमें हुंडी आयी जुगराजजी ! पूर्व में कहा था, ऐसा। हुंडी अर्थात् पूर्व में मैंने कहा था, पहले कहा था, ऐसा कहा जाता है न ? तुम्हारे बनिया में ऐसा कहा जाता है या नहीं ? भाई ! पूर्व में तुमने हुंडी लिखी थी। हमको पाँच हजार की दी है। समझ में आया ? स्वीकारना या नहीं ? यह

पाँच हजार का चेक है, यह लाख, दो लाख, चार लाख का चेक। समझ में आया ? चार लाख के चैक का सपना आया था, खबर है न एक बार ? 'चेला' में नहीं ? ऐई ! क्या भूल गये ? क्या सुना यह ? चेला में चार लाख के चेक का स्वप्न आया था। उस सपने में चार लाख का चेक (आया था)। लो ! मगसिर शुक्ल दशमी थी, नौंवी को दीक्षा का दिन था। समझे न ? कौन से वर्ष ? यह १९८९, रात्रि में स्वप्न आया कि चार लाख का चेक। इस दुकान में भुगतान हो, ऐसा नहीं है, दूसरी दुकान में जाओगे। कहा था न ? याद है न ? याद नहीं ? कहा था एक बार। चेला में थे न ? १९८९ के मगसिर शुक्ल नौवीं को दीक्षा का दिन था। जामनगरवाले सब बहुत सेठिया आये थे। वीरजीभाई थे, ताराचन्दभाई थे। सब थे, बहुत थे। लोग तो बहुत आते थे न ! जामनगर से दो सौ, दो सौ, पाँच सौ, पाँच सौ लोग आवे प्रतिदिन व्याख्यान सुनने आवे। स्वप्न आया चार लाख के चेक का अन्दर। परन्तु इस दुकान में भुगतान हो, ऐसा नहीं है, ऐसा आया है अन्दर, कहा। कहो, समझ में आया ? यह हुंडी, हुंडी। पूर्व में लिखी थी हुंडी। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

पूर्व में कहते हैं, हमने कहा था कि **कि उपाय तथा उपेय कहूँगा**। उपाय अर्थात् कि मोक्ष का मार्ग। समझ में आया ? उपेय अर्थात् मोक्ष—उसका फल। **उपाय-जीववस्तु की प्राप्ति का साधन**। देखो ! है न ? **उपाय-जीववस्तु की प्राप्ति का साधन। उपेय-साध्यवस्तु**। यहाँ इन्हें इतना कहना है कि मैंने यह वस्तु आत्मा कही। साध्य का अर्थ कि आत्मा कैसा है द्रव्य-गुण-पर्यायवाला, ऐसा कहा। अब साध्य अर्थात् मोक्ष को हम बाद में कहेंगे। वह साध्य के बाद उसमें कहेंगे। साध्य में कहेंगे परन्तु यहाँ तो साध्य ऐसा लिया। अनन्त गुणवाला, निर्मलपर्यायवाला द्रव्य उसे ऐसा करके साध्य कहा। बाकी अब जो साध्य कहेंगे, वह तो मोक्ष की पर्याय, वह साध्य और मोक्ष का मार्ग, वह साधन, ऐसा कहेंगे। समझ में आया ? **उसमें प्रथम ही साध्यरूप वस्तु का स्वरूप कहा;....** अर्थात् कि जो साधने की पर्याय है, निर्मल होने की, ऐसा आत्मा कैसा है, यह बात की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो वस्तु ऐसी कही। अब एक वस्तु में साध्य

की पर्याय और साधन की पर्याय दो हो, वह अब कहूँगा। समझ में आया? हुंडी में कितना अंक लिखा था? ऐसा कि भाई! अंक चार लाख का लिखा था चैक का, चार लाख है। उसी प्रकार यह आत्मा कहा था, इसमें यह आत्मा साधनेयोग्य है। कैसा? कि ऐसे अनन्त गुणवाला और अनन्त पर्यायवाला ऐसा आत्मा साधनेयोग्य है। यह वस्तु है। ऐसा करके उसे साध्य कहा। बाकी जो साध्य-साधन कहेंगे, वह तो भगवान आत्मा ऐसा जो है, उसकी निर्मल मुक्त की पर्याय हो, उसे साध्य कहेंगे और उसे—आत्मा को आत्मा में जो अपूर्ण निर्मल पर्याय का साधन, उसे मोक्षमार्ग कहेंगे। समझ में आया?

ऐसा कहकर यह वर्णन किसलिए किया? कि बीच में फिर मोक्षमार्ग में जो विकार आवे, वह साधन है, ऐसा नहीं। क्योंकि आत्मा ही ऐसा है, भाई! समझ में आया? आत्मा ही ऐसा है, उस आत्मा के अन्दर से दो प्रकार पड़ेंगे। एक अपूर्ण निर्मल पर्याय अपूर्ण, निर्मल। ऐसा आत्मा है इसलिए। निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसे आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, स्थिरता, वह मोक्ष का मार्ग है। रागादि विकल्प वह मोक्षमार्ग नहीं। उसकी परिपूर्ण पर्याय, ऐसी की परिपूर्ण पर्याय होना, वह मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया? **साधन कहते हैं।**

कलश - २६५

(वसन्ततिलका)

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो
ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलंघयन्तः ।।२-२६५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'संतः इति ज्ञानीभवन्ति' [संतः] सम्यग्दृष्टि जीव, [इति] इस प्रकार [ज्ञानीभवन्ति] अनादि काल से कर्मबन्ध संयुक्त थे, साम्प्रत सकल कर्मों का विनाशकर, मोक्षपद को प्राप्त होते हैं। कैसे हैं संत? 'जिननीतिं अलंघयन्तः' [जिन] केवली का [नीति] कहा हुआ जो मार्ग, [अलंघयन्तः] उसी मार्ग पर चलते हैं; उस मार्ग को उल्लंघन कर, अन्य मार्ग पर नहीं चलते हैं। कैसा करके? 'अधिकां स्याद्वाद-शुद्धिं अधिगम्य' [अधिकां] प्रमाण है, ऐसा जो [स्याद्वादशुद्धिं] अनेकान्तरूप वस्तु का उपदेश, उससे हुआ है ज्ञान का निर्मलपना, उसकी [अधिगम्य] सहायता पाकर। कैसे हैं संत? 'वस्तुतत्त्व-व्यवस्थितिं स्वयं एव प्रविलोकयन्तः' [वस्तु] जीवद्रव्य का [तत्त्व] जैसा है स्वरूप, उसके [व्यवस्थितिं] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप को [स्वयं एव प्रविलोकयन्तः] साक्षात् प्रत्यक्षरूप से देखते हैं। कैसे नेत्र से देखते हैं? 'नैकान्तसंगतदृशा' [नैकान्त] स्याद्वाद से [संगत] मिले हुए [दृशा] लोचन से।।२-२६५।।

कलश - २६५ पर प्रवचन

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो
ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलंघयन्तः ।।२-२६५।।

ओहोहो! **'संतः इति ज्ञानीभवन्ति'** सम्यग्दृष्टि जीव। सन्त की व्याख्या—सम्यग्दृष्टि जीव। सत् के ऐसे स्वभाव को अनुभव करे, दृष्टि करे, उसे सन्त कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा ऐसे अनन्त गुण से युगपद् शक्ति से भरपूर एक और उसकी

शक्ति का परिणमन क्रम काल में होना, ऐसा जो भगवान, उसे जिसने अन्तर दृष्टि में—प्रतीति में, अनुभव में लिया, उसे यहाँ सन्त अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव (कहते हैं)। **'इति'** अर्थात् **इस प्रकार.... 'ज्ञानीभवन्ति' अनादि काल से कर्मबन्ध संयुक्त थे, साम्प्रत सकल कर्मों का विनाशकर, मोक्षपद को प्राप्त होते हैं।** लो! ऐसा जो आत्मा, उसकी प्रतीति करनेवाला ज्ञानी, वह अनादि काल का कर्म का सम्बन्ध जो है, उसका अभाव करके मोक्ष की पर्याय को प्राप्त करता है। समझ में आया? मोक्ष की पर्याय को प्राप्त करे, वह साध्य है। अब साध्य-साधन २६६ में कहेंगे, हों!

कैसे हैं सन्त? 'जिननीतिं अलंघयन्तः' केवली का कहा हुआ जो मार्ग,... (उसे) उल्लंघन किये बिना। यहाँ बात है। सर्वज्ञ भगवान ने—त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो आत्मा कही, वैसा यह मानता है, उनके मार्ग को उल्लंघता नहीं। समझ में आया? **'जिननीति'** देखो! **केवली का 'नीतिं' कहा हुआ जो मार्ग,...** नीति का अर्थ किया—कहा हुआ मार्ग। **'अलंघयन्तः' उसी मार्ग पर चलते हैं;.... 'अलंघयन्तः'** का अर्थ बाद में करेंगे। वास्तव में तो भगवान ने ऐसा आत्मा कहा, उस मार्ग में चलता है। समझ में आया? केवली भगवान ने ऐसा आत्मा कहा। 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' आता है न मांगलिक में? बोलते तो बहुत हैं। भगवानभाई! कहते हैं कि, भगवान वीतराग ने कहीं हुई नीति से अर्थात् जाना हुआ परन्तु नीति से अर्थात् ऐसा कहा हुआ। उसकी नीति है कहना, ऐसा ही स्वरूप है, ऐसा उन्होंने कहा है।

उस मार्ग को उल्लंघन कर, अन्य मार्ग पर नहीं चलते हैं। ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव उसे ज्ञानी दूसरे प्रकार से मानते नहीं, दूसरा मार्ग ऐसा स्वरूप में है नहीं। वीतराग ने कहा हुआ ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा अन्यत्र नहीं हो सकता। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग देवाधिदेव ने कहा हुआ, जाना हुआ, देखा हुआ ऐसा जो मार्ग है, उस पर चलता है। उस मार्ग में—वीतराग के मार्ग में चलता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु त्रिकाल ज्ञायक अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी दृष्टि करके अपने निर्मल मार्ग में चलता है। उस मार्ग को उल्लंघन नहीं करते। आहाहा! **कैसा करके?** क्या करके? इस बात का श्लोक—पद है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०७, गुरुवार, दिनांक-३०-१२-१९६५, कलश-२६५, २६६, प्रवचन-२८५

'साध्य-साधक' (अधिकार की) शुरुआत है। अनेकान्त की पूर्णाहुति साध्य-साधक की शुरुआत में है। दूसरा श्लोक है २६५। फिर से, देखो! **'संतः इति ज्ञानीभवन्ति' सम्यग्दृष्टि जीव, इस प्रकार.... 'ज्ञानीभवन्ति'** किस प्रकार से? **अनादि काल से कर्मबन्ध संयुक्त थे, साम्प्रत सकल कर्मों का विनाशकर, मोक्षपद को प्राप्त होते हैं।** सम्यग्दृष्टि किस प्रकार? किस प्रकार मोक्ष की निर्मल आनन्द की पर्यायरूप मोक्ष को समकिती कैसे पाता है? **'जिननीतिं अलंघयन्तः' केवली का कहा हुआ जो मार्ग,...** (उसे) छोड़े बिना। सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा नित्य कहा, पर्याय से अनित्य कहा। स्व से अस्ति कहा, पर से नास्ति कहा। ज्ञान से है और ज्ञेय से नहीं। ऐसा जो वस्तु का स्वरूप वीतराग परमेश्वर ने कहा, ऐसे मार्ग को धर्मी-सम्यग्दृष्टि—आत्मा का लक्ष्य और दृष्टि करनेवाला, वह वीतराग मार्ग को उल्लंघता नहीं। यहाँ तक कल आया था।

कैसा करके? 'अधिकां स्याद्वादशुद्धिं अधिगम्य' प्रमाण है, ऐसा जो अनेकान्तरूप वस्तु का उपदेश,.... पाकर। **'अधिकाम्'** अर्थात् प्रमाण। वस्तु, वस्तु का स्वरूप स्व ज्ञान से है, पर ज्ञेय से नहीं। अपनी वस्तु, क्षेत्र, अवस्था और भाव से है और पर, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। और कायमरूप से नित्य है, अवस्था से क्रम-क्रम से पलटता है। ऐसी वस्तु की प्रमाणबुद्धि से यथार्थ स्याद्वाद का **अनेकान्तरूप वस्तु का उपदेश, उससे हुआ है ज्ञान का निर्मलपना, ज्ञान का निर्मलपना, उसकी सहायता पाकर।** शुद्ध द्रव्यस्वभाव अनन्त गुणरूप अस्ति है, उसकी पर्याय में परिणमन अनित्यरूप से होता है। ऐसा आत्मा में सम्यग्ज्ञान को निर्मल करके सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग को उल्लंघन किये बिना अपने अन्तर मोक्षमार्ग के आश्रय से है।

कैसे हैं सम्यग्दृष्टि? यह 'सन्त' शब्द प्रयोग किया है। **'वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिं स्वयं एव प्रविलोकयन्तः' जीवद्रव्य का....** भगवान ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ध्रुवरूप से होने पर भी, अवस्था में उसका परिणमन क्षण-क्षण में बदलता है। पर से अभावरूप और स्व से स्वभावरूप, ऐसा जो जीवद्रव्य का स्वरूप। **जैसा है स्वरूप, उसके द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप को....** दोनों लिया। वस्तु ज्ञायक त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप है, अवस्था में

उसका परिणमन ऐसे पर्यायरूप से परिणमना होता है। ऐसे ज्ञान की निर्मलता को पाकर अथवा वस्तु की स्थिति को ऐसा जानकर।

'स्वयं एव प्रविलोकयन्तः' साक्षात् प्रत्यक्षरूप से देखते हैं। 'स्वयं' का अर्थ किया साक्षात्। **'प्रविलोकयन्तः' प्रत्यक्षरूप से देखते हैं।** स्वयं अर्थात् साक्षात् प्रत्यक्ष। अन्तर अपने ज्ञान नेत्र से, अन्तर के ज्ञान नेत्र से वर्तमान निर्मल परिणति द्वारा यह पूर्ण स्वरूप है, उसे अवलोकता है। कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु नित्य ज्ञान और वर्तमान परिणमता ज्ञान, ऐसे द्रव्य-पर्यायमय तत्त्व की वस्तु को अन्तर सम्यग्ज्ञान द्वारा पर्याय से पूर्ण स्वरूप है, उसे अवलोकता है। समझ में आया इसमें? लो! कहाँ गये? जमुभाई! कहाँ परन्तु कभी चढ़े तब न! सीढ़ी चढ़े नहीं तो क्या समझ में आये?

यह आत्मा ज्ञानमूर्ति ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड ध्रुव है और उसका वर्तमान में परिणमन-पलटना अवस्था का होता है। ऐसा इसे सम्यग्ज्ञान से द्रव्य के लक्ष्य से निर्मल परिणति प्रगट करके बराबर आत्मा को द्रव्य और पर्यायरूप से अवलोकना। अब यहाँ इसके मशीन में आवे नहीं, बहियों में आवे नहीं, कभी निवृत्त हो नहीं। जमुचन्दभाई!

जिसे आत्मा की शान्ति प्रगट करनी हो, उसे आत्मा को कर्म के सम्बन्ध बिना का, विकार बिना का परन्तु पूर्ण अनन्त गुणवाला और परिणमनवाला। समझ में आया? भगवान आत्मा, यह स्याद्वाद से निर्मल ज्ञान प्रणीत निर्मल हुआ (ज्ञान) ऐसे आत्मा को वह अवलोकता है। कर्म, शरीर अभाव तो कहा पहला। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का अभाव है। और यह ज्ञेय है, इसका भी उसमें अभाव है। यह पहला बोल और वे चार बोल हुए। अब यह आत्मा एक समय में अनन्त गुण भावरूप तत्त्व है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द, ऐसे भावरूप तत्त्व है। यह और उसका वर्तमान नित्यता के लक्ष्य से अथवा नित्य रहता हुआ वर्तमान में निर्मल पर्यायरूप से परिणमता है, नित्य रहता है, परिणमता है, स्वभाव रहता है (और) पररूप से अभावरूप परिणमता है, ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा उसे श्रद्धा, ज्ञान में बराबर लेकर और उस आत्मा को निर्मल स्वभाव और निर्मल पर्याय अवलोकना, देखना, जानना। कहो, समझ में आया इसमें?

जिसे धर्म की दशा प्रगट करनी हो अथवा सुखी होना हो, उसे पर में मैं हूँ, यह मानना छोड़कर और मैं मुझमें हूँ, और पररूप मैं नहीं, यह स्याद्वाद। और मैं मेरेरूप हूँ तो भी ध्रुवरूप (रहता हुआ) तथापि पर्याय में परिणमन—बदलाव भी होता है, ऐसा नित्य और अनित्य स्वरूप से स्व से अस्तिरूप से और पर से नहीं होनेरूप से (नास्तिरूप से), ऐसे आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान द्वारा आत्मा को अवलोकना, देखना, जानना और स्थिर होना, यह इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। सुखी होने का यह रास्ता है। कहो, समझ में आया इसमें? दु:खी होने का यह रास्ता है कि पर में मैं हूँ और मेरापन मुझमें नहीं। पुण्य-पापरूप हूँ और ज्ञातापने, वस्तुपने नहीं। वह पुण्यपने विकल्प में पर्याय में है, वस्तुपने नहीं। वस्तु तो वह पुण्य का जाननेवाला वस्तु पर्याय है वह। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग परन्तु वापस निकाला तब जाये कहाँ परन्तु? निकाला कब कहलाये? यहाँ से हटा कर्म, शरीर, वाणी, मन में मैं नहीं, उन द्वारा मैं नहीं, उन द्वारा मैं नहीं। यह पुण्य और पाप के विकल्प और राग, उनमें मैं नहीं, उन द्वारा मैं नहीं। कहो, समझ में आया या नहीं अब इसमें? कान्तिभाई! हाँ तो करनी पड़े, क्या करे?

जिसे सुखी होना हो तो आत्मा सुखस्वरूप है और दु:ख की वर्तमान विकृतदशारूप से वह नहीं है। समझ में आया? आत्मा ज्ञानस्वरूप से है और ज्ञात होनेयोग्य दूसरे ज्ञेय-उनरूप वह नहीं है। यह चौदह बोल का पूरा समास तो होता है न इसमें? समझ में आया? और यह आत्मा कायम रहकर वर्तमान में कार्यरूप से—पर्यायरूप से परिणमता है, ऐसे दोनों पहलुओं से उसे ज्ञान से देखना, वह सुखी होने का रास्ता है। समझ में आया? इसे देखना कहा न यहाँ? ऐसे देखना नहीं कहा अब। ऐसा जो देखता शरीर, वाणी, मन, पुण्य, पाप और यह, उसे देखता था, उसमें इतना ज्ञान में आया। परन्तु वह देखता था, वह इसका कहाँ है वह? समझ में आया?

जिसे देखना है, वह कौन है? स्वयं देखनेवाला कौन है? जो ज्ञान की दशा में ऐसे ज्ञात होता राग, द्वेष, पुण्य, पाप, शरीर, पाणी, मन, वह ज्ञात होता था वह तो ज्ञान में एक अंश का परप्रकाशक भाव था, वह कहीं वस्तु नहीं। वह ज्ञान की पर्याय परप्रकाशक

की अकेली थी, उसे इस बाजू (वाली) वह चीज़ मुझमें नहीं (ऐसे देखते हैं)। शुभ-अशुभराग, कर्म-शरीर आदि मेरे द्रव्य में नहीं, गुण में नहीं, इससे मेरी पर्याय में भी वे नहीं। उस सुख का यह मार्ग है। बाकी सब भटकने के रास्ते हैं। आहा! पुण्य-पाप में सुख है? शरीर, कर्म, पैसा, इज्जत, धूल में सुख है? उसमें मैं हूँ, ऐसा माने, जिसमें नहीं, उसमें माने तो वह तो दुःख का निमित्तकारण होता है। जिसमें और जैसा मैं हूँ, वह आत्मा तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीतरागस्वभाव अर्थात् शान्ति—चारित्र। ऐसा जो आत्मस्वभाव, वह मैं हूँ, पररूप नहीं। वह मैं हूँ, ऐसे शुद्धरूप से परिणमनेवाली मेरी पर्याय है।

ऐसा स्याद्वाद ज्ञान द्वारा निर्मलपर्याय से आत्मा को देखने से **जीवद्रव्य का जैसा है स्वरूप, उसके द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप को...** देखो! '**स्वयं एव प्रविलोकयन्तः**' स्वयं ही अपने ज्ञान द्वारा **साक्षात्...** चैतन्य भगवान ज्ञान को **प्रत्यक्षरूप से...** अर्थात् क्या कहा यह? पुण्य-पाप के विकल्प का भी आश्रय नहीं, मन का अवलम्बन नहीं। यहाँ पर्याय अवलोकना अर्थात् कि वह राग, वह पर्याय इसकी नहीं।

शुभराग से मोहनीय कर्म नाश होता है, लो! (ऐसा अज्ञानी कहता है)। सर्वज्ञता की बड़ी गड़बड़ की है। बहुत शिक्षा दी है, हों! तुम यह सब भूल करते हो। सर्वज्ञ और सर्वज्ञ के ज्ञान अनुसार यहाँ परिणमे। और इसके अनुसार यहाँ परिणमे। कितनी बार कहते हैं परन्तु तुम सुनते नहीं, विचार करते नहीं। सच्ची बात है, बापू! उसे बेचारे को (जँचा हो वैसा कहे)। अरे! भगवान! सर्वज्ञ वह स्वयं एक समय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं। इसलिए परिणमते हैं, ऐसा कुछ नहीं। परिणमती है जगत की पर्याय उसके (स्वयं के) कारण से। यह तो कहते हैं कि तुम ऐसा कहते हो कि केवलज्ञानावरणीय का नाश हो, यहाँ केवलज्ञान हो तो केवलज्ञानावरणीय का नाश हो, आहाहा! बाद में नाश हो। बाद का किसने कहा? यहाँ ज्ञान हो और उस समय नाश हो। उसने फिर डाला है। हम तो कहते हैं, शास्त्र तो कहते हैं कि, ज्ञानावरणीय का क्षय होता है तो केवलज्ञान होता है। आहा! ...परन्तु अपने आप क्षय होता है किसलिए यह? तुझमें, उसमें निमित्त देने की योग्यता जब तक रहे, तब तक जाये किस प्रकार? केवलज्ञानावरणीय जो प्रकृति है, उसे निमित्त देने की या हीन ज्ञान की पर्याय परिणमने की योग्यता है, तब

तक उसे निमित्त केवलज्ञानावरणीय में परिणमन में निमित्त होता है। वह केवलज्ञान आत्मा के आश्रय से जहाँ परिणमता है, तब निमित्त रहता नहीं तो उसका परिणमन केवलज्ञानावरणीयरूप से रहता नहीं। ऐसा है। वस्तु तो ऐसी है। कौन जाने बातों के खोटे बड़े-बड़े बँगले उठावे। आहाहा! अरे! लोगों को न भरमाओ, हों! ऐसा (लिखा) है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भाई! केवलज्ञान पर्याय जो हुई... फिर अब यह लेंगे। साध्य-साधक। यहाँ तो वस्तु की व्यवस्था अनन्त अनेक धर्म स्वरूप है, उसे सिद्ध करके अब साध्य-साधक भाव कहेंगे। भगवान आत्मा अनन्त... अनन्त... ज्ञान, दर्शन, आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है। तो भी उसकी दशा में एकरूपता नहीं। ध्रुवरूप से एक है, पर्यायरूप से परिणमन में अनेकपने की अवस्था होती है। अनन्त गुण की अनेक अवस्था होती है, वह विकार की नहीं। विकार का तो उसमें—द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में अभाव है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहा न कि **द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप को साक्षात् प्रत्यक्षरूप से देखते हैं**। तत्त्व की व्यवस्था। समझ में आया? भाई! मार्ग तो इसने कभी देखा नहीं, इसलिए इसे ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं यह? परन्तु भाई! तू देखनेवाला है या नहीं? पर को देखनेवाला परन्तु तेरी भूमिका में पर दिखता है या नहीं? वास्तव में तो तेरी पर्याय दिखती है। क्या कहा? यह... यह... यह... ऐसा जो कहते हैं वास्तव में तो तेरी पर्याय ज्ञान की, उसमें वह दिखती है अर्थात् पर्याय दिखती है। अब उस पर्याय जितना नहीं और पर्याय में जो देखता है, उसमें वह नहीं। समझ में आया? क्या कहा?

यह वर्तमान ज्ञान की अवस्था का कण क्षयोपशमरूप से वर्तमान विकास है या नहीं? उसमें यह ज्ञात हो, यह ज्ञात हो, यह लकड़ियाँ, यह अमुक, यह धूलधमाका... अर्थात् वास्तव में तो वह पर्याय पर्याय को ही देखती है परन्तु वह पर्याय इस द्रव्य की है, इस पर लक्ष्य नहीं, इसलिए यह पर्याय इसे देखती है, ऐसा इसे भासित हो जाता है। समझ में आया? अनन्त वस्तुएँ एक समय में ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, ऐसा पर्याय का धर्म है। वह अनन्त ज्ञेय है, इसलिए नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानगुण का सूर्य प्रभु आत्मा! उसमें से किरण निकले। प्रगट वर्तमान एक अंश किरण है। अब वह किरण जिसकी है, उसे अंश को यह... यह... यह... यह... उसमें ज्ञात हो। परन्तु यह... यह... वे उसकी पर्याय में भी नहीं और वह पर्याय द्रव्य की जिसकी है, उसे पर्याय देखती नहीं। समझ में आया? इससे उसे ऐसा लगता है कि, मैं तो यह अवस्था और इतना हूँ। यह देखूँ वह हूँ... यह देखूँ वह हूँ... यह देखूँ वह हूँ... समझ में आया? तो कहते हैं कि भाई! जो वस्तु तुझे पर्याय में दिखती है, वह चीज तेरी पर्याय में नहीं। आहाहा! यह कब तुझे खबर पड़े? कि यह ज्ञान की पर्याय का धारक पूरा द्रव्य ध्रुव है। वह ध्रुव रहकर वर्तमान परिणमता है। ऐसे जब ध्रुव और वर्तमान ज्ञान की पर्याय को अवलोक तो तूने उसे देखा, ऐसा कहने में आता है। तूने वह देखा, वह यहाँ नहीं रहता फिर। आहाहा! समझ में आया?

यह तो मोक्ष का मार्ग है, भाई! उसने अनन्त काल के... अभी यह पढ़ा, भाई! नरक का। तिलोयपण्णत्ती में वह सब है, हों! कल कहा था न? पीछे ३६ हथियार है। मैंने कहा, यह ३६ कहाँ से निकाले? अन्दर है। नारकी उपजता है न? गिरे तब नीचे छत्तीस प्रकार के हथियार सज्ज हुए तैयार हैं। ऊपर से गिरे... हाय... हाय...! यहाँ राजा का कुँवर हो और मरकर वहाँ गया। क्षण में हार्टफेल हो गया हो। ऐसे लहर में बैठा हो वहाँ क्षण में जाये वह। आहाहा! ऐसा भटके... हथियार ३६ प्रकार हैं। उछले। वह सब उसमें है, गाथायें हैं। तिलोयपण्णत्ती कल उसमें पढ़ा था न? यह उसमें सब गाथायें थीं। ओहो! भगवान!

यह दुःख कैसे हुआ है? अपने को नहीं देखा और पर को देखकर वहाँ एकाग्र हुआ इसलिए, ऐसा कहते हैं। वह पर को देखने से 'यह मेरे हैं और मेरे थे' यह ज्ञान में से चले गये। जो मेरे अपने अनन्त ज्ञान गुण मेरा, आनन्द गुण मेरा, वह गया उसके ज्ञान की दशा में से। वह ज्ञान की दशा में यह मेरे दिखते हैं। ऐसा (अन्दर) देखा नहीं, ऐसे (बाहर) देखा। यह शरीर, यह इन्द्रियाँ, यह राग, यह कर्म, यह... यह... यह... यह... यह। यह इसके नहीं और यह इसके माने, वह मिथ्यात्व और कषाय का जोर हुआ, यह उसका इसे दुःख है। आहाहा! समझ में आया? वह तो संयोग से शास्त्रकार (वर्णन

करते हैं)। संयोग से देखने की आदत पड़ गयी है अज्ञानी को कि ऐसी अग्नि आवे तो हाय.. हाय..! ऐसा हो जाता है। वह अग्नि का दु:ख नहीं। वास्तव में अग्नि को देखने से कषाय (होती है), हाय... हाय..! वह कषाय है इसका उसे वेदन है। परन्तु अज्ञानी को ऐसे संयोग देखे तब दु:ख लगे और जरा कुछ मीठा, शक्कर आयी हो या अमुक आया हो तो हा... श... ऐसा लगे। उसकी दृष्टि अनादि की संयोग के ऊपर पड़ी है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपनी निज निधि की खान ध्रुवरूप से है, उसका वर्तमान परिणमन उसकी पर्याय है। परन्तु उस पर्याय में यह... यह... यह... यह... यह... यह... यह... यह... जब यह मैं यह प्रतीति में नहीं आया तो कहीं प्रतीति में तो लेना पड़ेगा या नहीं इसे? आहाहा! कहीं अस्तिपने तो यह अर्पित होगा या नहीं? यह मैं, इन्द्रियाँ मैं, पुण्य-पाप का राग हुआ, वह मैं। यह मैं, वह तो मिथ्याबुद्धि हुई। मिथ्याबुद्धि अर्थात् मिथ्यात्व हुआ, मिथ्यात्व हुआ अर्थात् तीव्र अकषायभाव का विरोध कषाय हुआ, बस! वह कषाय उसे दु:ख है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि अब सुखी होना हो तो ऐसे देख। देखनेवाले परिणमन की दशा, वह परिणमनेवाला ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। वह कायम रहे तो भी परिणमे; परिणमे तो भी कायम रहे, ऐसा उसका धर्म स्वभाव है। समझ में आया?

'स्वयं एव प्रविलोकयन्तः' प्रत्यक्षरूप से देखते हैं। देखो! इसमें से यह सब निकला। ऐसे परोक्ष, ऐसे-ऐसे देखता है न? अब कहते हैं कि भाई! एक समय की दशा, वह परिणमन है। मेरा ध्रुव त्रिकाल है, अनन्त गुण का पिण्ड है, उसे परिणमन से देख। परिणमन द्वारा उसे देख। अर्थात् परिणमन और वस्तु दोनों उसके ज्ञान में आ गये। द्रव्य-पर्यायरूप को, ऐसा कहा है न? **'स्वयं एव प्रविलोकयन्तः' साक्षात् प्रत्यक्षरूप से देखते हैं।** द्रव्यरूप को और पर्यायरूप को स्वयं अपने को देखता है फिर। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का, बापू!

भाई! मार्ग तो वीतरागस्वभाव से मार्ग होता है न? वीतराग का मार्ग तो वीतराग भाव से ज्ञात होता है या दूसरे प्रकार से ज्ञात होता है? समझ में आया? यह वीतराग

भाव महँगा पड़े या जैसे पड़े, परन्तु वस्तु तो जैसी है, वैसी है। अभ्यास नहीं कभी। यह बड़ी चीज़ प्रभु विराजता है। इसका इसे माहात्म्य आया नहीं, इसका इसे चैतन्य चमत्कार दिखा नहीं, यह चैतन्य! आहाहा! जिसकी एक समय की दशा में तीन काल-तीन लोक वर्तमान रागरहित पर्याय में ज्ञात हो। ऐसा चैतन्य प्रकाशमय मूर्ति यह तो एक समय का ऐसा। ऐसा पूरा भगवान जिसमें राग नहीं, गन्ध नहीं और जो एक समय की अवस्था जितना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे देखो न! पाण्डव जब शत्रुंजय के (ऊपर) विराजते थे। राजा के कुँवर थे, बड़े राजा! जिन्हें कौरवों के साथ महायुद्ध हुआ। अन्दर स्थिर हो गये, हिम में पड़े अन्दर हिमालय गये। अन्यमति कहते हैं न? वह हिमालय, यह नहीं। यह शत्रुंजय पाँचों मुनि गये थे, पाँचों मुनि, हों! समझ में आया? श्वेताम्बर में तो ऐसा आता है कि मुनि मासखमण का पारणा करके आनन्दकन्द में विचरते थे। भगवान नेमिनाथ गिरनार पधारनेवाले हैं, ऐसा करके दर्शन करने निकले थे। भाई! उसमें ... यह बात तब बहुत...

अहो! महा सन्त! अरे! मुझे तीर्थंकर भगवान के दर्शन होते हैं। निकले और वहाँ आये और अभी वहाँ सुना, भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए। गिरनार पर प्रभु मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। तो पाँचों मुनियों को महीने-महीने के उपवास, हों! आनन्द में झूलते हुए धीरे... धीरे... धीरे... ऊपर चढ़ गये। ध्यान में खड़े रह गये। उसमें एक कौरव का भानेज आकर लोहे के धगधगते गहने हाथ में पहनाये, भाई! हों! हाथ में, सिर पर मुकुट, पैर में पायल लोहे की धगधगती (पहनायी)। भगवान आत्मा शीतल का सागर हिमालो भगवान आत्मा, उसमें अन्तर एकाग्र हुए न, सब कर्म जल गये। समझ में आया? वह यह शत्रुंजय। आहाहा!

जिन्हें सोते हुए यह रुई के गद्दे में डोरा कठोर हो तो ऐसे चमड़ी में रक्त निकलते थे ऐसे बाहर, ऐसे कोमल शरीर। अरे...! हम आत्मा। यह क्या किया यह? किसके साथ युद्ध और यह क्या हुआ? भगवान नेमिनाथ प्रभु ने केवलज्ञान साधा है, मोक्ष पधारे हैं। हम वर्तमान साक्षात् तीर्थंकर की भेंट करने गिरनार निकले... अब हम सीधे मोक्ष में जायेंगे। आहाहा!

अग्नि डाली न! एक विकल्प नहीं, हों! कि यह क्या करते हैं? क्या करते हैं? देह की अवस्था जो होनेवाली है, वह होनेवाली है। हमारी अवस्था भी स्वभाव के अवलम्बन से शान्ति को वेदती है, वह होनेवाली है। समझ में आया? आहाहा! जिसे अग्नि के अंगार जैसे लोहे की खबर भी नहीं, खबर भी नहीं। वह खबर यहाँ अन्दर पड़ी है। शीतलता की धारा से वह शीतलमय भगवान आत्मा में अन्दर स्थिर हो गये। समझ में आया? तब उसका नाम मोक्ष का मार्ग (कहा जाता है)। यह उन्होंने केवलज्ञान लिया वहाँ। तीन जनों ने (मुनियों ने) केवल (ज्ञान) लिया, दो जनों (मुनियों) को फिर जरा विकल्प रह गया। सहदेव, नकुल। अरे! धर्मराजा, अर्जुन, भीम हमारे बड़े भाई, उन्हें ऐसा होगा? क्या होगा? विकल्प रह गया (तो) पुण्य बँध गया (और) स्वर्ग में गये, सर्वार्थसिद्धि में गये। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! तेरे शीतलमय प्रभु स्वभाव को देख न, भाई! उसमें नजर कर तो तेरी पर्याय और पूरा तत्त्व देखने में स्वयं प्रत्यक्ष... प्रत्यक्ष... प्रत्यक्ष... साक्षात् किसी के अवलम्बन बिना देखता है। **कैसे नेत्र से देखते हैं?** किस आँखों से देखता है अन्दर? **'नैकान्तसंगतदृशा' स्याद्वाद से मिले हुए लोचन से।** अनेकान्त अर्थात् द्रव्यरूप से है, पर्यायरूप से भी है, नित्य है, अनित्य है, स्वपने है और परपने नहीं—ऐसे अनेकान्त लोचन से अपने अन्तर में देखता है। आहाहा! लो! यह अनेकान्त की पूर्णाहुति यहाँ हुई। अब साध्य-साधक (अधिकार)। ऐसा तीसरा श्लोक, वैसे साध्य-साधक का पहला श्लोक।

कलश - २६६

(वसन्ततिलका)

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकंपां
भूमिं श्रयंति कथमप्यपनीतमोहाः।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति ।।३-२६६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'ते सिद्धाः भवन्ति' [ते] ऐसे हैं जो जीव, वे [सिद्धाः भवन्ति] सकल कर्मकलंक से रहित, मोक्षपद को प्राप्त होते हैं। कैसे होकर? 'साधकत्वं अधिगम्य' शुद्धजीव का अनुभवगर्भित है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारणरत्नत्रय, उसरूप परिणमा है आत्मा, ऐसा होकर। और कैसे हैं वे? 'ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीं भूमिं श्रयन्ति' [ये] जो कोई, [ज्ञानमात्र] चेतना है सर्वस्व जिसका, ऐसे [निजभाव] जीवद्रव्य के अनुभवरूप, [मयीं] कोई विकल्प नहीं जिसमें, ऐसी [भूमिं] मोक्ष की कारणरूप अवस्था को [श्रयन्ति] प्राप्त होते हैं-एकाग्र होकर, उस भूमिरूप परिणमते हैं। कैसी है भूमि? 'अकम्पां' निर्द्वन्द्वरूप सुखगर्भित है। कैसे हैं वे जीव? 'कथं अपि अपनीतमोहाः' [कथं अपि] अनन्त काल भ्रमण करते हुए, काललब्धि को पाकर, [अपनीत] मिटा है [मोहाः] मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम जिनका ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसा जीव, मोक्ष का साधक होता है। 'तू मूढ़ाः अमूं अनुपलभ्य परिभ्रमन्ति' [तु] कहे हुए अर्थ को दृढ़ करते हैं— [मूढाः] नहीं है जीववस्तु का अनुभव जिनको, ऐसे जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव हैं, वे [अमूं] शुद्धजीवस्वरूप के अनुभवरूप अवस्था को [अनुपलभ्य] पाये बिना, [परिभ्रमन्ति] चतुर्गति संसार में रुलते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धजीवस्वरूप का अनुभव, मोक्ष का मार्ग है; दूसरा मार्ग नहीं है।।३-२६६।।

कलश - २६६ पर प्रवचन

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकंपां
भूमिं श्रयंति कथमप्यपनीतमोहाः।

ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति ।।३-२६६।।

दो सुलटी-उल्टी बात। यहाँ तो मूढा का डाला है, भाई! वे कहे साधक अर्थात् तेरहवें, चौदहवें, साध्य अर्थात् सिद्ध। आज लेख आया है। ... यह साधक... वह आता है सही न? व्यवहार करके फिर निश्चय में जाता है। गद्य में, गद्य में... व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... वह तो एक विकल्प की बात की। बारहवें तक व्यवहार और तेरहवें तक... तेरहवें, चौदहवें साधक और सिद्ध हैं वे साध्य। यह अलौकिक रहस्य तुमको कहता हूँ। उनको समझाने आते थे परन्तु आये नहीं। क्या हुआ? आहा! अरे! भगवान! उसे भी कोई वापस इनकार करनेवाला नहीं। वह इसमें लिखता है परन्तु तू क्या कहता है? तेरहवाँ, चौदहवाँ साधक।

यहाँ तो साधक चौथे गुणस्थान से शुरु है। समझ में आया? और साध्य वह तेरहवाँ और सिद्ध वह साध्य है। केवलज्ञान आत्मा की दशा वह साध्य है, मोक्ष है और साधक चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक अन्तरात्मा वह साधकरूप से परिणमता है। वह क्या साधक और साध्य, इसकी व्याख्या करेंगे। हों! यह तो कलश है न!

'ते सिद्धाः भवन्ति' ऐसे हैं जो जीव वे... 'ते' अर्थात् ऐसे हैं जो जीव, वे सकल कर्मकलंक से रहित, मोक्षपद को प्राप्त होते हैं। 'सिद्धाः भवन्ति' कैसे होकर? ऐसा **'ते सिद्धाः भवन्ति'** वे जीव आत्मा के आनन्द की शुद्धता की पूर्ण दशा को पाते हैं। कौन? **कैसे होकर?** किस प्रकार होकर? ऐसा। वे जीव आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा को प्राप्त होते हैं, वे प्राप्त होते हैं। **कैसे होकर? 'साधकत्वं अधिगम्य'** लो! **शुद्धजीव का अनुभवगर्भित है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारणरत्नत्रय उसरूप परिणमा है आत्मा ऐसा होकर।** लो! क्या कहा? भगवान आत्मा में अनन्त... अनन्त... अनन्त... बेहद गुण शुद्ध स्वरूप का धाम भगवान है। उसकी पूर्ण शुद्धता, पूर्ण शुद्धता अवस्था में पूर्ण शुद्धता, पूर्ण निर्मलता, पूर्ण ज्ञान, आनन्द की दशा, वह इसका नाम साध्य, इसका नाम सिद्ध।

वह सिद्ध कैसे होकर होते हैं? कैसे होकर होते हैं? क्या करके होते हैं? **'साधकत्वम् अधिगम्य'** यह साधकपना अंगीकार करके। ऐसे मोक्ष की पर्याय के साध्य

को कैसे प्राप्त होती है? कि साधकपना अंगीकार करके। साधकपना अंगीकार करके अर्थात् क्या? कि **शुद्धजीव का अनुभवगर्भित....** देखो! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अनुभव, शुद्ध स्वभाव का अनुभव। उस अनुभवगर्भित अर्थात् तीनों उसमें अनुभव में साथ में है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द ज्ञानानन्द का अनुभव, शुद्ध जीव का अनुभव, ऐसा कहा न? शुद्ध जीव पूर्ण वस्तु भगवान आत्मा का अनुभव, उसे अनुसरकर निर्मल आनन्द के अनुभवरूप से परिणमता, ऐसा **अनुभवगर्भित है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारणरत्नत्रय...** क्या कहा यह? कि वह व्यवहार रत्नत्रय शुभ उपयोग और विकल्प है, वह नहीं, ऐसा सिद्ध करना है, भाई! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा अपने मोक्षरूपी निर्मल शुद्ध पर्याय को वह जीव प्राप्त करता है, कि जो साधकपने को अंगीकार करता है। साधकपने को अंगीकार करता है अर्थात् क्या? भगवान शुद्धस्वरूप का अनुभव, शुद्धस्वरूप की श्रद्धा, शुद्धस्वरूप का ज्ञान, शुद्धस्वरूप की स्थिरता। इन तीनों को अनुभवगर्भित में तीनों रत्न डाले। कोई ऐसा रत्नत्रय कहे कि, शुद्ध उपयोग और विकल्परूप से तीन रत्न हैं, वह साधकरूप से होता है, उसका निषेध करने के लिये यह बात समझायी है। समझ में आया? आहाहा! वह कहे, व्यवहार साधक है और निश्चय केवलज्ञान शुद्ध उपयोग, वह साध्य है। यह तो और साधन कहा। यह तो व्यवहार साधन यहाँ। निश्चय साधन केवली। ओहोहो!

कहते हैं, साध्य को कैसे प्राप्त किया जाता है? साधकपना अंगीकार करने से। साधकपना अंगीकार करने से, इसकी व्याख्या क्या? कि भगवान निर्मलानन्द प्रभु का अनुभव, वह शुद्ध का अनुभव।

अनुभव रत्नचिन्तामणि, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप।

यह दोनों ऐसा कहना चाहते हैं यहाँ। मोक्षस्वरूप जो है पूर्ण; यहाँ तो मोक्षमार्ग को मोक्षस्वरूप कहा, परन्तु पूर्ण अनुभव वह मोक्ष है। यहाँ आत्मा के अनुभव की शुरुआत, आनन्द की शुरुआत, दर्शन, ज्ञान, चारित्र गर्भित अन्दर में रहा हुआ शुद्ध अनुभव, वह

मोक्ष पर्याय का साधकपना है। वह उपाय है। बीच में यह शुभ विकल्प आदि व्यवहाररत्नत्रय आदि (आवें) वह उपाय नहीं, वह साधक नहीं। आहाहा! तथापि व्यवहाररत्नत्रय साधक, निश्चय रत्नत्रय साध्य जो कहने में आया, वह तो उसके साथ ऐसा निमित्त होता है, ऐसा गिनकर जो साधक नहीं, उसे साधक कहना, इसका नाम व्यवहारनय का लक्षण है। समझ में आया? कहते हैं, भगवान आत्मा अपना शान्तरस स्वभाव, इसका अनुभवभाव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र, वह शुद्ध अनुभवगर्भित है, उसमें तीनों। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कोई अनुभव से भिन्न चीज़ नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुभव कैसा होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! अनुभव की व्याख्या क्या की है? शुद्धस्वरूप को अनुसरकर शान्त, आनन्द, अनाकुल परिणति, अरागी परिणति से परिणमना, उसका नाम शुद्ध अनुभव। उसमें गर्भितपने पड़े हैं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। आहाहा! समझ में आया?

यह अनुभव विकार का। यह विकार के अनुभव में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, और कषाय पड़े हैं। वहाँ मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय पड़े हैं। समझ में आया? विकार का अनुभव... यहाँ शुद्ध के सामने मस्तिष्क में प्रश्न उठा। अशुद्धपने के विकार का अनुभव 'यह विकार, वह मैं'—ऐसा मिथ्यात्व भाव का अनुभव और उसका ज्ञान, उसका ज्ञेय करके ज्ञान-अज्ञान का अनुभव और उसमें स्थिरता वह राग-द्वेष का अनुभव। यह संसार के साध्य का साधकपना है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? वजुभाई! आत्मा हो, उसे समझ में आये ऐसी बात है। आहाहा!

संसार कहाँ है, कैसे है, इसकी भी खबर नहीं। समझ में आया? संसार अर्थात् भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसमें से 'संसरणं इति संसार'—उसमें से हटकर विकार में टिकना, इसका नाम संसार। संसार आता है न? प्रवचनसार में है न? संसार अर्थात् संसरण की क्रिया... प्रवचनसार में (ऐसा) पाठ आता है। समझ में आया? संसार अर्थात्? संसार कोई कर्म में नहीं रहता, संसार स्त्री, पुत्र में नहीं रहता,

जीव का संसार कहीं बाहर में नहीं रहता। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यधाम भगवान में से हटकर जो पुण्य-पाप और विकार में एकत्व होकर रहना, इसका नाम संसार कहा जाता है। यह मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष की एकता का नाम संसार। वह संसार का अनुभव है। यह संसार के चतुर की यह बात नहीं, हों! यह संसार का बहुत चतुर है। यह कहलाते हैं, सब फूलचन्दभाई और यह सब कहलाते हैं न? होशियार व्यक्ति कहलाते हैं सब। कान्तिभाई को लगाओ, भाई! कुछ होगा तो सही न? यह तो कोई भी कहीं, यह तो दृष्टान्त की बात है। मणिभाई संसार के चतुर नहीं कहलाते?

यह तो बात है कि भाई! संसार अर्थात् क्या? संसार कहाँ रहता है? संसार अर्थात् आत्मा में अनन्त गुण के धाम से जिसने नजर को हटाया है। अनन्त गुण के धाम के अस्तित्व की नजर को जिसने हटाया है और जिसने पुण्य और पाप के विकल्प में एकत्व हूँ, इतना हूँ, ऐसी दृष्टि वहाँ स्थापित की है। वास्तव में तो मिथ्यात्व, वह संसार है। आहाहा! कहो, समझ में आया? वह मिथ्यात्व अर्थात् यह कि पुण्य-पाप के विभाव परिणमन का तत्त्व वह मैं हूँ। उसकी एकत्वबुद्धि, वह मिथ्यात्व और वह संसार। भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, ऐसा अन्दर में स्वभाव की पर्याय से अन्तर में एकत्व होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम मोक्ष। एक न्याय से इसका नाम मोक्ष। समझ में आया?

मुमुक्षु : संसार अधिक जोरदार होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। जोरदार स्वयं करता है। पर में था कब? परन्तु यह तो इनकार किया नहीं? संसार पर में नहीं। मोक्षस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा मोक्षस्वरूप ही है। अभी, हों! यह संसार के मोक्ष की बात चलती है। यह ध्रुव आत्मा तो मोक्षस्वरूप है। क्योंकि मुक्त है न? राग-द्वेष कर्म से मुक्तस्वरूप, वह आत्मा है। समझ में आया?

यह आत्मा अर्थात् कि आत्मा अर्थात् कि जड़ कर्म, शरीर, और पुण्य-पाप के विकल्प से रहित ऐसा तत्त्व, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा तो विकार और कर्म से रहित है अर्थात् मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! उस मुक्तस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता

करना, इसका नाम पूर्ण मुक्त की पर्याय का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

यह ९६, ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़े चक्रवर्ती। जिनकी नजरें द्रव्य में नोंध हो गयी है। समझ में आया? वह ऐसे दिखे। मानो, ऐसे छियानवें हजार स्त्रियाँ, पलंग और ऐसे पुण्य के वैभव... परन्तु जिसकी नजर नजरबन्धी पड़ी है द्रव्य पर। आहाहा! यह समझ में आया इसमें? यह नजर बाँधी है द्रव्य पर। उसे कोई ललचाने में ताकत तीन काल में है नहीं। वह भोग के काल में राग में भी ललचाकर प्रेम है, (ऐसा) ज्ञानी को है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अज्ञानी जंगल में अकेला बैठा हो। पूरे चिदानन्द निधान का अनादर करके और मात्र विकल्प के, पुण्य-पाप के भाव का ही आदर करके एकत्व में पड़ा है। उसने नजरें बाँधी हैं मिथ्यात्व में। अब तेरे राग की मन्दता चाहे जितनी क्रिया कर, ले! वह सब अज्ञान। अज्ञानरूपी भैंसा तेरी क्रिया को खा जायेगा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, '**साधकत्वम् अधिगम्य**' की व्याख्या तो देखो! '**ते सिद्धाः**', '**ते सिद्धाः भवन्ति**' वे जीव सिद्धस्वरूप शक्तिरूप से हैं, वह पर्यायरूप से सिद्ध होंगे। समझ में आया? पर्याय में '**साधकत्वम् अधिगम्य**' जिसने भगवान शुद्ध चैतन्य को दृष्टि-ज्ञान में लिया है और शुद्धस्वभाव का जिसने अनुसरकर अनुभव किया है। संसार तो यहाँ से हटकर विकार का अनुभव था, यह स्वभाव का अनुभव किया। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, अतीन्द्रिय आनन्द का कूंप, अतीन्द्रिय आनन्द का कूंप हूँ। ऐसी जहाँ अन्तर में दृष्टि, ज्ञान (हुए), ऐसे अनुभवगर्भित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणमित हुए हैं। देखो! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कारणरत्नत्रय, कारण है न? किसके? मोक्ष के। **अनुभवगर्भित है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारणरत्नत्रय उसरूप परिणमा है आत्मा....** जिसका। देखा? उसके रूप में हुआ है आत्मा जिसका, परिणमा है आत्मा जिसका। जिसकी दशा में अनुभवगर्भित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय में परिणमित हुए हैं। समझ में आया? आहाहा! बड़े पढ़-पढ़कर... अरे! भगवान! परन्तु यह तो देख तू यहाँ। महासागर....

मुमुक्षु : शुभ में से निवृत्त कब होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ में तो अभी क्षायिक समकित मानते हैं। शुभ से तो दसवें

गुणस्थान तक शुभ जाता है। अरे! भगवान! तू क्या कहता है? आहाहा! तेरे संयम और यह सब निर्जरा के कारण हैं। अरे! भगवान! भाई! तुझे राग को हेय मानना कठिन पड़ता है। यह भगवान वीतरागस्वभाव से उपादेय कैसे मान सकेगा? समझ में आया? यह तो पहली नजर के निशान है यहाँ। समझ में आया? नजर के निशान में वीतरागभाव वर्तता है। नजर के निशान में राग नहीं होता ज्ञानी को, हों! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है भाई! वीतरागमार्ग है, हों! आहाहा! ऐई! तुम्हारे बुजुर्ग क्यों नहीं आते? क्या हुआ?

मुमुक्षु : लगा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगा है, कल कहते थे, मुझे याद भी नहीं रहा, आज याद आया। वह बाई के कारण याद आया। राम! भाई! यह कषाय की मन्दता कैसी रबारी, रबारी या ग्वाला? ग्वाला। ग्वाला महिला। जिसमें नाम की। उसका पुत्र था, गया था पशु चराने। दुष्काल पड़ा था। अकेला गया होगा वहाँ सर्प काटा और मर गया। इसको कुछ खबर नहीं देते, देरी लगे। वहाँ एक व्यक्ति उसके साथ निकला था, माँ! तुझे खबर न आयी है या नहीं? तुम्हारा लड़का मर गया। 'राम' भाई! ईश्वर की लीला है। ठीक! यह कषाय की मन्दता की भी कितनी अन्दर स्थिर हो गयी लगे! मिथ्याभ्रान्तिसहित। 'राम' भाई! परन्तु अभी स्नान का आया नहीं, पत्र पहुँचा नहीं। वहाँ तुमको हें! अर रर! कुछ? 'राम' भाई! जमुभाई! यह बनिया को जहाँ एक मरे (तो) अरे रे! यह मर गया। क्या है परन्तु? इकलौता पुत्र, ऐसा कुछ था। बात सुनी थी। हरजीवन मास्टर से सुनी थी। कोई पशु चराने गया और मर गया। समाचार न मिले। वह कहे, माँ! तुमको खबर पड़ी या नहीं? भाई! तुम्हारा (पुत्र) वहाँ गुजर गया। 'राम' भाई! रोना नहीं और कलकलाहट नहीं। जो होनेवाला हो, वह होता है न! भगवान की लीला है। ओहो!

इसी प्रकार यहाँ धर्मी को तो कहते हैं कि चाहे जैसी प्रतिकूलता हो तो आत्मराम जिसे याद आता है। आहाहा! समझ में आया? वह अनुकूलता में भी आत्मराम और प्रतिकूलता में भी आत्मराम। वह अनुकूल और प्रतिकूलता में मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

देखो न! यह एक गृहस्थ भी ऐसे अर्थ भरते हैं। यह आचार्य के हृदय हैं ऐसे। यह राजमल। समझ में आया? परन्तु यह तो सम्यक्त्व है। वह तो चाहे जिस प्रकार से केवली जानते हैं, उसे दर्शन में यथार्थ में कुछ अन्तर नहीं। स्थिरता में अन्तर है, चारित्र में अन्तर है, यह बात अलग है। समझ में आया? इसका ही आधार लेकर, भाई! यह बनारसीदासजी ने डाला। साधकपना इसके कारण, चौथे में साधक कहा। चौथे से बारहवें (गुणस्थान) तक श्लोक इसमें से रखा है। यह सब खोटे? यह भी सब निकले पन्नालाल और अजितकुमार और... अजितकुमार ने भी डाला है। शुभ का डाला है न? ऐसा होता और वैसा होता है.. बापू! कोई दिक्कत नहीं, भाई! आहाहा! भाई! तुझे चैतन्य के घर की कितनी कीमत है, वह नहीं आती, बापू! उस शुभराग की कीमत करने जायेगा तो वह रत्न निकलेगा, हीरा खोटा। वह खोटा निकलेगा, वह काम नहीं आयेगा। आहाहा! हीरा निकलेगा खोटा। क्या कहलाता है यह? सूरत का कुछ कहते हैं न? इमिटेशन। नकली नकली निकलेगा। हीरा निकलेगा क्या? है।

भगवान चैतन्य देखो! यहाँ और किसके सामने आया? यहाँ सामने रत्न आया न? देखो! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप की अन्तर में अनुभव की दृष्टि, अनुभव में ज्ञान, अनुभव में स्थिरता, अनुभवगर्भित अन्तर में तीनों पड़े हैं, ऐसा कारणरत्नत्रय। यह कारणरत्नत्रय। इस मोक्ष की पर्याय को इस पूँजी से लिया जाता है, ऐसे रत्न से वह लिया जाता है। बाकी काले कोयले से नीलमणि मिलते होंगे? पुण्य के परिणाम से मोक्षरत्न मिलता होगा? आहाहा! यह सच्चा रत्न लो न, लौकिक का। बोरियाँ भरकर कोयले लेकर जाये और कहे कि एक रत्न दो। तो मिलता होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ठग दो करके वापस दो हजार ले जाये। करे क्या धूल वहाँ? एक दो करके... फिर कहे दस हजार लाओ, पचास हजार कर दूँ। जाओ, गुम। क्या करे?

यहाँ तो कहते हैं कि बापू! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्दस्वभाव का अनुभव। देखा न? भाषा यहाँ है। शुद्ध जीव का अनुभव। पहला अशुद्ध का अनुभव तो

अनादि मिथ्यात्व है। शुभराग का अनुभव भी वह अनादि का है, उसमें नया तूने क्या किया? समझ में आया? आहाहा! अरे! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का फरमान क्या है, इसकी भी खबर नहीं होती और हम वीतराग के दास हैं और वीतराग को माननेवाले हैं। बापू! कहाँ से लाया? भाई! हम वीतराग धर्म के रक्षक हैं, रखवाले हैं। आहाहा! राक्षस के रक्षक है।

कहते हैं, **उसरूप परिणमा है आत्मा....** देखा? पर्याय तन्मय हो गयी है आत्मा में। ऐसा। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति का अनुभव। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में गर्भित ऐसा जो अनुभव, उस रूप हुआ है, परिणमा है आत्मा। वह साधकरूप हुआ है। समझ में आया? **और कैसा हैं वे?** यह अब कहेंगे। यह क्या है स्वरूप, इसकी व्याख्या आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०८, शुक्रवार, दिनांक-३१-१२-१९६५, कलश-२६६, २६७, प्रवचन-२८६

यह साध्य-साधक अधिकार है, समयसार कलश का तीसरा कलश। इसमें सलंगरूप तरीके गिना है, ऐसा साध्य-साधक का पहला है। **'ते सिद्धाः भवन्ति'** फिर से, देखो! **ऐसे हैं जो जीव, वे सकल कर्मकलंक से रहित, मोक्षपद को प्राप्त होते हैं।** वे जीव मोक्षपद को प्राप्त होते हैं, इतनी व्याख्या पहले की। क्यों? यह बाद में कहेंगे। कैसा होकर मोक्ष को प्राप्त करता है? **'साधकत्वं अधिगम्य' शुद्धजीव का अनुभवगर्भित है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारणरत्नत्रय उसरूप परिणमा है आत्मा ऐसा होकर।** कल यहाँ तक आया था। क्या कहते हैं? कि आत्मा की पूर्ण मोक्षदशा, वह सिद्धदशा। पूर्ण आत्मा की दशा परमानन्द और ज्ञान का पूर्ण शुद्ध होना। ज्ञान का पूर्ण शुद्ध होना, एकरूप होना, आनन्द का एकरूप होना, पूर्ण वीर्य की पूर्णता होना, ऐसी शुद्ध की पूर्णता होना, इसका नाम मोक्ष, इसका नाम सर्व कर्म कलंकरहित दशा। कलंकरहित दशा और निष्कलंक पूर्ण दशा की प्राप्ति। समझ में आया? इसका नाम साध्य—सिद्धदशा। साध्य—साधनेयोग्य सिद्धदशा, मोक्षदशा। कैसे प्राप्त हो?

'साधकत्वं अधिगम्य' शुद्धजीव का अनुभवगर्भित है,... शुद्ध जीव ज्ञानस्वरूप है। उसका ज्ञान का अनुभव। उस ज्ञानस्वरूप का अनुभव। उसमें इकट्ठा रहा हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। ज्ञानस्वरूप आत्मा का ज्ञानरूप, श्रद्धारूप ज्ञान का परिणमन, वह सम्यग्दर्शन। समझ में आया? यहाँ राग की बात नहीं। राग तो बन्ध का कारण है, वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है। ज्ञानस्वरूप जो सर्वज्ञशक्तिस्वरूप आत्मा, ऐसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का ज्ञानरूप से, श्रद्धा में ज्ञानरूप से परिणमन होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

शुद्ध ज्ञानमूर्ति आत्मा है। वह पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर, कर्म से रहित तत्त्व है। ऐसे तत्त्व का ज्ञानरूप सत्त्व जो आत्मा है, उसका ज्ञानरूप सम्यग्दर्शन। ऐसे शुद्ध ज्ञान का निर्विकल्परूप से परिणमना ज्ञान का, उसका नाम अनुभवगर्भित में सम्यग्दर्शन दशा कही जाती है। समझ में आया? यहाँ अनुभवगर्भित कहा, अनुभव में होता है, ऐसा कहा। उसमें अनुभव बिना होता नहीं, ऐसा कहा।

दूसरी भाषा से कहें तो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा वस्तु ज्ञान चिद्घन है। उसमें अनुभव अर्थात् उसका ज्ञान का अनुभव। वह ज्ञान का अनुभव अर्थात् कि ज्ञान की सम्यक् प्रतीति, वह ज्ञान का सम्यग्ज्ञान, ज्ञान का स्वरूप रमण—ये तीनों ज्ञान की दशा है, यह अनुभव की तीन दशा है, ऐसा कहना है। समझ में आया?

शरीर, कर्म और वह तो भिन्न रह गये, रहा अन्दर पुण्य का विकल्प राग, वह भी भिन्न तत्त्व, आस्रवतत्त्व में गया। रहा चैतन्यतत्त्व ज्ञायकमूर्ति शुद्ध। उस शुद्ध स्वभाव का अन्तर में स्वभाव का अनुभव, स्वभाव-सन्मुख का स्वभाव का अनुभव। इसका अर्थ कि ज्ञान का अनुभव, इसका अर्थ कि ज्ञान का सम्यग्दर्शनरूप परिणमन, ज्ञानस्वरूप का सम्यग्ज्ञानरूप परिणमन, ज्ञानस्वरूप का स्वरूप आचरणरूप ज्ञान का स्थिरतारूप परिणमन। उस अनुभवगर्भित में तीन दशा आती है। समझ में आया?

'साधकत्वं अधिगम्य' शुद्धजीव का अनुभवगर्भित है,... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु, उसे अन्तर्मुख की शक्ति के विकास, जो शक्ति का विकास आंशिक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (का) हुआ, उस शुद्ध जीव का अनुभवगर्भित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ। राग का प्रगट होना, वह तो विकार और बन्ध में जाता है, वह कहीं मार्ग में है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्म का क्या किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ बात भी कहाँ है कर्म, फर्म की? कर्म थे ही कब? उसमें तो पहली बार इनकार किया। उसमें कर्म नहीं, उसमें विकार पुण्य-पाप का विकल्प वस्तु में नहीं। क्या कहा? आत्मा कहें, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प राग नहीं, उसमें कर्म और शरीर नहीं। वह तो वस्तु पूर्ण ज्ञानघन सत्त्व है। उस सत्त्व की शक्ति का सम्यग्दर्शनरूप ज्ञान स्वरूप है, इसलिए सम्यग्दर्शन का ज्ञानरूप परिणमन (होना), ज्ञानस्वरूप का सम्यग्ज्ञानरूप से स्थिरता का परिणमन उस अनुभवगर्भित में तीनों निर्विकल्प दशा आती है। आहाहा! यहाँ से मोक्षमार्ग शुरु होता है। समझ में आया? यह संवर-निर्जरा शुरु हुई। मोक्ष, वह साध्य है और वह इसका उपाय अर्थात् साधन है। इसलिए कहा न? '**साधकत्वम्**' ऐसा कहा न? साधकपना '**अधिगम्य**' प्राप्त करके

परिणमित हुआ है आत्मा, ऐसा। '**साधकत्वम् अधिगम्य**' रूप से परिणमित हुआ है आत्मा। समझ में आया ? क्या कहा ?

'**साधकत्वम् अधिगम्य**' साधकरूप से परिणमित हुआ है आत्मा। भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति चैतन्य अकेला तत्त्व। उसे साधकपना परिणमित हुआ है। वह द्रव्य स्वयं, स्वद्रव्य स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र के अनुभवगर्भित के परिणमनरूप से परिणमना, वह आत्मा स्वयं साधकरूप से परिणमा है। यहाँ तो इसमें नहीं न ? पहले में लिया था न ? कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह एक ज्ञान के दो भाग किस प्रकार ? उपाय और उपेय एक के दो (भाग) किस प्रकार ? उसमें से यह साध्य-साधक उठाया है। समझ में आया ? एक भगवान आत्मा अकेला शरीर, वाणी, कर्म रहित और पुण्य-पाप के राग रहित—ऐसा ज्ञान का चैतन्यमूर्ति स्वरूप, ज्ञानस्वरूप है। उस एकरूप के दो प्रकार क्या ?, कि एक उपायरूप हो और एक उपेयरूप परिणमे। उपेय समझ में आया ? उपेय अर्थात् क्या ? ठीक है, यह साध्य कहा, ठीक है।

उपेय अर्थात् पूर्ण दशा की प्राप्ति। साध्य अर्थात् पूर्ण दशा की प्राप्ति। और साधकपना अर्थात् उसी ज्ञानस्वरूप भगवान आनन्दस्वरूप आत्मा, उसका साधकरूप से, अपूर्णरूप से शुद्धता का परिणमना, इसका नाम यहाँ मोक्ष का मार्ग और उपाय कहा जाता है। समझ में आया ?

उसरूप परिणमा है आत्मा ऐसा होकर। लो ! साधकपना अंगीकार किया है। अंगीकार किया अर्थात् परिणमा है, ऐसा। समझ में आया इसमें ? स्वयं पूरी चीज़ ज्ञान की मूर्ति, आनन्द की मूर्ति, अनाकुल शान्तरस का स्वरूप है। वह स्वयं ही अन्तर्मुख दृष्टि करके स्वयं '**अधिगम्य**' आत्मा स्वयं शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमन हो, वह आत्मा ही स्वयं साधकरूप से परिणमा, अंगीकार किया है। इसका अर्थ हुआ कि पुण्य का भाव जो व्यवहार रत्नत्रय, वह आस्रव है। समझ में आया ? वह साधकरूप से उसमें साधकपना है नहीं। परन्तु वहाँ कहा है वह निमित्त को गिनकर कहा है। पंचास्तिकाय में कहा न ? साधक और साध्य और ऐसी सब बात कही। वह सब भिन्न साध्य का अर्थ वह विकल्प उठा है, उसकी भूमिका के योग्य का गिनकर निमित्त कहा गया है। यह वस्तु तो यही है। समझ में आया ?

और कैसा हैं वे ? अर्थात् कौन वे ? तीन। दर्शन-ज्ञान और चारित्र। **'ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीं भूमिं श्रयन्ति' जो कोई चेतना है सर्वस्व जिसका,....** देखो ! क्या कहा ? जो आत्मा अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकल्प अरागी पर्याय, जिसे यहाँ शुद्ध अनुभवगर्भित कहा है, वह क्या चीज़ है ? कि **चेतना है सर्वस्व जिसका, ऐसे जीवद्रव्य के अनुभवरूप, कोई विकल्प नहीं जिसमें,...** अर्थात् ? वह चैतन्यस्वरूप जो शुद्ध है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का परिणमना **चेतना है सर्वस्व जिसका,...** उसमें चेतना की ही सब पर्याय है, राग का या विकल्प का कुछ है नहीं। समझ में आया ?

चेतना है सर्वस्व जिसका, ऐसे जीवद्रव्य... ऐसा। क्या कहा ? कैसा है मोक्षमार्ग ? अनुभवगर्भित सम्यग्दर्शन-ज्ञान (कैसे हैं) ? **चेतना है सर्वस्व जिसका, ऐसे जीवद्रव्य...** ऐसा। जीवद्रव्य क्या है ? कि जिसमें सर्वस्व चेतना ही है। उसका अनुभव, उस चेतना का अनुभव, ऐसा कहना है। चेतना का अनुभव अर्थात् ज्ञान का अनुभव, उसका—ज्ञान का समकित, ज्ञान का ज्ञान और ज्ञान की स्थिरता। कहो, समझ में आया इसमें कुछ ? पुस्तक-बुस्तक ले गये हैं या नहीं मोरबी ? कान्तिभाई ! हाँ करने में भी मुश्किल पड़े। क्या करे ? पढ़ा न हो तो रखी हो वहाँ। कहाँ गये, फूलचन्दभाई गये ? कहो, समझ में आया इसमें ?

क्या कहा ? व्याख्या की। **'ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीं भूमिं श्रयन्ति'** कहते हैं कि भाई ! यह मोक्षमार्ग कहा, वह क्या है ? कि चेतना जिसका सर्वस्व ऐसा भगवान आत्मा। उसका ही यह परिणमन (हुआ) उसमें यह चेतना ही अकेली आयी, ऐसा। समझ में आया ? अकेला सर्वस्व चेतना—जानना-देखना स्वरूप भगवान जीवद्रव्य। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में इस चेतना का ही अंश परिणमित हुआ है। शुद्ध शक्तिरूप से जो चेतना है शक्तिरूप से, ऐसा जो जीवद्रव्य, वही वर्तमान अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अनुभवगर्भित चेतना की ही पर्यायरूप से परिणमा है। समझ में आया ?

यह बात तो ऐसी है और वास्तविक तत्त्व की सत्य बात है। अकेला चेतना जिसका सर्वस्व है। उसमें कहीं विकल्प या आस्रव या कर्म-फर्म है नहीं। पूरा चेतना सर्वस्व, स्व पूरा चेतनस्वरूप। वह भगवान चेतनस्वरूप ऐसा जीवद्रव्य, उसका जो

अनुभव अर्थात् चेतना का अनुभव, उस चेतना का ही अनुभव की चेतना की ही पर्याय दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुई है। समझ में आया? शक्ति का पूरा सत्त्व जो है, चेतना सर्वस्व जो जीवद्रव्य है, वह शक्तिरूप से है। उसकी अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता करके व्यक्तरूप चेतना का अंश निर्मलरूप से परिणमित हुआ। अर्थात् उसका जो चेतन सर्वस्व, उसका जो अनुभव, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? रजनीभाई! पुस्तक लिया है न? कहाँ गये? मूलजीभाई गये? कहो, समझ में आया इसमें? कठिन बात, भाई!

कहते हैं, **कोई विकल्प नहीं...** देखो! **ऐसी... 'भूमिं' मोक्ष की कारणरूप अवस्था को प्राप्त होते हैं....** आश्रय का अर्थ प्राप्त होता है। **एकाग्र होकर, उस भूमिरूप परिणमते हैं।** व्याख्या बहुत स्पष्ट, बहुत स्पष्ट। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानमात्र जो निजभाव, ज्ञानमात्र जो निज भाव, इसका अनुभव, भाव का अनुभवरूप, ऐसा। 'मय' कहा न? मय अर्थात् अभेद कहा। रूप से अर्थात् कोई विकल्प नहीं, ऐसा। उसमें विकल्प पुण्य का, व्यवहार श्रद्धा का या व्यवहार ज्ञान का या व्यवहार चारित्र का विकल्प नहीं। ऐसा अकेला निज भाव चैतन्यस्वरूप भगवान स्वयं ही उसमें एकाकार होकर चैतन्यमयरूप से परिणमित हुआ, वह मोक्ष का कारण। समझ में आया? वह मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

वे चिल्लाहट मचाते हैं। अरे! पुण्य से मोक्ष ठेठ तक दसवें गुणस्थान तक होता हैं। अरे! भगवान! क्या करता है? बापू! केवलज्ञान की भूल बड़ी, अब यहाँ से यह बड़ी भूल। कहीं मिलान खाता नहीं और फिर दया करता है, हों! ऐई! तुम यह समझो, अब समझो। यह भूल निकाल डालो, इतनी निकाल डालो। आहाहा! बापू! खोटा-सच्चा... यह वस्तु ऐसी है, उसमें फिर प्रश्न क्या है? वस्तु ही ऐसी है।

चैतन्य पदार्थ है, वह चेतनाभावस्वरूप वस्तु है। अब उसमें पुण्य, पाप, शरीर, कर्म कहीं आये नहीं। अब ऐसी चैतन्यमय वस्तु की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति अर्थात् चारित्र, वह अनुभवगर्भित चेतना की निर्मल शुद्धपर्याय है। वह चेतना के द्रव्यस्वभाव की शुद्धपर्याय परिणति है। छोटाभाई! है इसमें? देखो! इसमें है? आहाहा! फिर भाषा

किस प्रकार की ? कि जीवद्रव्य का अनुभवरूप **कोई विकल्प नहीं...** ऐसा। उसमें कोई विकल्प का अंश, राग का अंश नहीं, जिसमें राग के अंश की मिलावट नहीं। ऐसा भगवान आत्मा अन्तर्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता में चैतन्य की शक्ति की व्यक्तता के अंशरूप परिणमना, इसका नाम मोक्ष। पूर्ण शक्ति की व्यक्तता होना, इसका नाम मोक्ष। यह मोक्ष का मार्ग। समझ में आया ?

यह पैसा काम न आवे, शरीर काम न आवे। इसमें कहते हैं कि पुण्य का विकल्प भी काम न आवे, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। दया-दान का विकल्प काम न आवे। वे कहें, दया-दान से मोक्ष होता है। अरे! भगवान! भाई! वह स्वयं मोक्षस्वरूप है, उसकी व्यक्तता का नाम मोक्षपर्याय। वह मोक्षस्वरूप जो शक्ति चैतन्य सर्व है, उसकी ही एकाग्रता अर्थात् चैतन्य की एकाग्रता, वह चैतन्य की निर्मल पर्याय है। आहाहा! समझ में आया ? भाई! दूसरा मार्ग नहीं है। किस प्रकार अन्दर से निकले ? आहाहा! यह सिद्ध, सिद्ध होने की पार्लियामेन्ट के उपाय की बात है। यह सब राजा मरकर नरक में पार्लियामेन्ट भरती है न ? वह अकेली दुःख की वेदना की पार्लियामेन्ट है। यह अकेली आनन्द की लहर की पार्लियामेन्ट—सिद्धदशा! आहाहा!

भाई! तू अनाकुल आनन्दस्वरूप है न! यहाँ चेतना की बात की है, परन्तु चेतना सर्वस्व अर्थात् चेतना सर्वस्व में दुःख नहीं हो सकता। उसमें तो आनन्द ही होता है। सर्वस्व चेतना में दुःख कैसा ? (क्या) कहा समझ में आया ? भगवान आत्मा चेतना सर्वस्व जिसका है। अर्थात् कि जिसमें सर्वस्व आनन्द है, जिसमें सर्वस्व शान्तरस, चारित्र का शान्तरस पूर्ण पड़ा है। जिसमें शुद्ध अकेली श्रद्धा का स्वरूप पड़ा है। त्रिकाल, हों! शुद्ध ज्ञान है, शुद्ध शान्तरस है, शुद्ध आनन्द है, ऐसा सर्वस्व जीवद्रव्य को अन्तर में एकाग्र द्वारा उस चेतना की ही परिणति को वहन करना श्रद्धा, ज्ञान, शान्तिरूप, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया ?

यह भूमि है। **मोक्ष की कारणरूप अवस्था...** ठीक! यह मोक्ष की कारणरूप अवस्था है, यह भूमि है। इस मोक्षमार्ग को यहाँ भूमि कहा है। समझ में आया ? उसे **प्राप्त होते हैं—एकाग्र होकर,...** देखो! क्या कहते हैं ? वस्तु जो चेतना भगवान आत्मा,

उसमें एकाग्र होकर मोक्ष के कारणरूप भूमि को प्राप्त करता है। जिसे '**साधकत्वं अधिगम्य**' कहा था, उसकी बात इसमें ले ली वापस। ज्ञानमय कहना है न वापस? वस्तु ज्ञानमय है न, इसलिए ज्ञानमय का स्वरूप ज्ञानमय परिणमित हुआ, ऐसा कहना है। समझ में आया?

कैसी है भूमि? 'अकम्पां' अब इकट्ठा लिया। देखो! आनन्द लेना है न वापस? **कैसी है भूमि? 'अकम्पां' निर्द्वन्द्वरूप सुखगर्भित है।** क्या कहा? भगवान आत्मा चेतन सर्वस्व वस्तु है, उसमें आनन्द भी सर्वस्व पड़ा है। उसकी अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का वेदन प्रगट होना, वह निर्द्वन्द्व है, उसमें आनन्द साथ में है। चेतना की चेतन परिणति की ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति वह साथ में, आनन्द साथ में है। क्या समझ में आया?

तीन बोल तो कहे थे। अनुभवगर्भित दर्शन-ज्ञान-चारित्र। परन्तु साथ में अब आनन्द, शान्ति थोड़ी ली, शान्ति। ज्ञान का ज्ञान, यह तो आता है या न, नहीं? समयसार। उस ज्ञान के ज्ञान का अर्थ यह ज्ञान का समकित और ज्ञान का चारित्र। यह राग का चारित्र और राग का ज्ञान और राग की श्रद्धा, वह नहीं। भगवान आत्मा पूरा ज्ञान का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की रमणता अनुभवगर्भित दशा। कहते हैं कि, वह दशा भूमि, उसमें सुखगर्भित है यह। क्या कहा? उसमें सुखगर्भित है, देखो! उसमें कहा था न? अनुभवगर्भित है, कहा था, तीन बोल। साथ में आनन्द इकट्ठा है, उसमें अब ऐसा कहते हैं। उसमें चौथा बोल डाला। समझ में आया?

निर्द्वन्द्व भूमि है अर्थात् भगवान चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु का चैतन्यरूप श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का परिणमन, उसमें निर्द्वन्द्वपना है। उसमें दुःख का अभाव है, अर्थात् सुखगर्भित वह दशा है, आनन्दगर्भित दशा है, अतीन्द्रिय आनन्द की गर्भित उसमें दशा है। अरे! मोक्ष के मार्ग में आनन्द है, ऐसा कहते हैं। यह सहन करना पड़े और हमारे यह करना पड़े और वेठ—परीषह वेदना पड़े, ऐसा नहीं है। परीषह का अर्थ यह है। आनन्दभूमि अन्दर प्रगट हुई है। समझ में आया? आहाहा! '**अकम्पां**' अर्थात् कम्प अर्थात् आकुलता नहीं। द्वंद्वपना—दो पना नहीं। एकरूप से अर्थात् आनन्द है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है या नहीं परन्तु?

भाई! परन्तु तेरा आनन्द तेरे अतिरिक्त होगा कहाँ? धूल में आनन्द हो तेरा? यह पैसा, स्त्री, पुत्र, बँगले, यह मकान और इज्जत धूल है। इसमें तू है कि वहाँ तेरा आनन्द होगा? और पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उसमें तेरा आनन्द होगा? यह तो विकार है। विकार में आनन्द होगा? तेरा आनन्द तुझमें है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति में आनन्द प्रगटे, व्यक्त प्रगटता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, कान्तिभाई! समझ में आया इसमें? क्या कहना है? मुश्किल से समय किसी दिन मिले उसमें ऐसी सूक्ष्म बातें आवे। आहाहा! यह अनादिकाल का सुलगा, जला, भटकता दुःखी हुआ, इसमें इसे विश्राम का अवसर मनुष्य में मिला। उसमें इस प्रकार यदि विश्राम न करे (तो) कहीं इसे सुख के साधन प्रगट नहीं होंगे।

मुमुक्षु : आप कहते हो ऐसा निश्चित हो तो प्रगटे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो कहते हैं कि अब निर्णय तो कर, बापू! अब कब करेगा तू? आहाहा! भीखाभाई! कब करेगा? भाई! तूने पर में बहुत भटकाव किया, हों! जहाँ नहीं वहाँ धुँए के वाचका में हाथ डाला। वहाँ हाथ भरा। तेरा काल मुफ्त में गया। आहाहा! शरीर, स्त्री, पुत्र, पैसा, परिवार, मकान, इज्जत, धूल में सुख है। मर गया, मरी वहाँ नहीं कहीं। हैरान होकर मर गया चौरासी के अवतार में, भाई! जहाँ आनन्द है, वहाँ उसका तुझे विश्वास नहीं। जहाँ आनन्द है, वहाँ तेरा विश्वास नहीं; जहाँ आनन्द नहीं, वहाँ तेरा विश्वास गया। अब उसका क्या करना? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से सर्वस्व भरपूर प्रभु है, भाई! यह आत्मा है न? आत्मा वह कहीं स्वभाव से खाली होगा? उसका स्वभाव तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द उसका स्वभाव है। ऐसे स्वभाव से भरपूर प्रभु, उसकी अन्तर में विश्वास—दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना, उसमें आनन्द साथ में आता है। उसे मोक्ष का मार्ग और मोक्ष के कारणरूप दशा—उपाय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? उसे धर्म कहा जाता

है, लो! गजब धर्म, भाई! धर्मी ऐसा आत्मा, सर्वस्व चैतन्य और आनन्द से भरपूर पदार्थ, उसकी शुद्धता का परिणमन (हो), उसे धर्म कहते हैं। क्योंकि स्वयं तो शुद्ध है। अशुद्ध का परिणमन तो पर के लक्ष्य से है, वह कहीं वस्तु की स्थिति नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते है, भाई! यह निर्द्वन्द्व है। यह मोक्ष का मार्ग निर्द्वन्द्व है। मोक्ष के मार्ग में सुख है। उसमें द्वन्द्व नहीं, क्लेश नहीं, डरने का नहीं, उसमें आनन्द है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? **कैसे हैं वे जीव?** कौन? जिसने मोक्षमार्ग को अंगीकार किया है और सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप से परिणमते हैं, जिनकी भूमिका सुखरूप हुई है, वे जीव कैसे हैं? आहाहा!

'कथं अपि अपनीतमोहाः' अनन्त काल भ्रमण करते हुए,... यह अनन्त... अनन्त... काल एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, निगोद, नारकी (के) भव कर-करके... आहाहा! नजर डाले नहीं, इतना काल, नजर न पड़े, इतना काल। अनन्त काल कहा न? कहाँ नजर डाले? कितना काल गया अनन्त? आत्मा (के) ऊपर अनन्त काल कितना गया परिभ्रमण में? समझ में आया? उस परिभ्रमण की दुःख दशा में कितना काल गया? वह भ्रमण करता था। वह तो नारकी आदि के दुःख संयोग से, निमित्त से विर्णन किये हैं। समझ में आया? संयोग से कहो या निमित्त से वर्णन किया है। बाकी तो उसके आत्मा के स्वभाव की विपरीत श्रद्धा-ज्ञान और आचरण ऐसे दुःख की दशा में परिभ्रमण करते हुए, भाई! तेरा कितना काल गया? यहाँ सुलटी अवस्था से उल्टी अवस्था का परिभ्रमण कहते हैं। समझ में आया? अनन्त काल भ्रमण करता हुआ। भगवान आत्मा की ओर नजर किये बिना, वह पर के लक्ष्य के श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में भ्रमण करते हुए अनन्त दुःख में तेरा काल गया, प्रभु! आहाहा!

काललब्धि को पाकर,... उसमें कोई तेरे पुरुषार्थ की योग्यता और स्वकाल में शान्ति की प्राप्ति का काल (पाकर)। समझ में आया? वह स्वभाव देखने का सामर्थ्य और उसे प्राप्ति का वह काल। पर के सन्मुख देखने का काल दुःख का तुझे अनन्त बार गया, भाई! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? काललब्धि को अर्थात् तेरे सामने जो देखने

का तेरा काल पककर। समझ में आया? वह काल यह कहा। सामने ऐसे देखा वह काल पक गया, ऐसा कहते हैं। ऐसे (बाहर) देखने में काल अनन्त गया, प्रभु! ऐसे (अन्दर) देखने का काल अब पक गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह भगवान के सामने तूने कभी देखा नहीं और भगवान के विरोधी विकार और संयोग में तूने देखो, उसके सामने मुख ताककर बैठा कि इसमें मुझे मजा, इसमें मुझे सुख। अनादि काल से... क्या कहा? वह भाषा नहीं? मुख ताककर... क्या? मुख ताककर। निमित्त का मुख तककर बैठा है, उपादान मुख ताककर बैठा। अरे! भगवान! इसी प्रकार यह अनादिकाल से पर के सामने मुख ताककर (बैठा है), कहीं यहाँ से सुख... कहीं यहाँ से सुख... कहीं यहाँ से सुख (मिलेगा)। कहते हैं, भगवान! इसमें तेरा अनन्त काल गया, भाई! आहाहा! यह अन्तर (में) भगवान को देखने का तेरा काल अब आया है।

(काललब्धि) **पाकर, मिटा है मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम जिनका....** देखो! स्वभाव-सन्मुख के काल में मिटा है मिथ्यात्व के भाव का नाश, जिसे। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अच्छा चौघड़िया....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चौघड़िया ही है, यह सामने देखा, वहाँ इसका चौघड़िया पक गया। समझ में आया?

मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम... देखा? '**मोहाः**' का अर्थ ही इतना, हों! भ्रान्ति, भ्रम गया और भगवान देखा। भगवान चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु की सावधानी में दृष्टि हुई (तो) भ्रान्ति गयी। ऐसे काल के पकने का काल तुझे आया। समझ में आया? ऐसा जीव। **जिनका ऐसे हैं**। लो, समझ में आया? **मिथ्यात्वरूप विभावपरिणाम जिनका ऐसे हैं**। जिसका मिटा है विभावरूप परिणाम, ऐसा जीव।

भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसा जीव, मोक्ष का साधक होता है। ऐसा जीव पूर्णानन्द की दशारूप मोक्ष के साधकरूप परिणमता है, ऐसा कहते हैं, लो! यहाँ तो मिथ्यात्व के नाश से साधक कहा सीधे। वह कहे, साधक तेरहवें में होता है, चौदहवें में होता है। कौन जाने क्या निकालते हैं न? जिस ओर दौड़े, वह बस! अखण्ड पर्याय

चाहिए, अखण्ड पर्याय। राग का वह है न, इसलिए व्यवहार। उतनी अरागी पर्याय हुई, इसलिए वह निश्चय। स्वद्रव्य आश्रय हुआ निश्चय और पर आश्रय व्यवहार हुआ त्याग है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

कहते हैं '**तु मूढाः**' अब इसके सामने लेते हैं, इसके सामने लेते हैं। यह सुलटी बात ली है। जो जीव अपने शुद्ध भगवान आत्मस्वभाव के सन्मुख हुए हैं, उन्हें काल पक गया है और उसके सन्मुख में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-अनुभव पर्याय हुई है। ऐसे जीव साधकरूप से परिणमित हुए है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**तू मूढाः अमूं अनुपलभ्य परिभ्रमन्ति**' इसके सामने गुलांट खाता है। **कहे हुए अर्थ को दृढ़ करते हैं... 'मूढाः' नहीं है जीववस्तु का अनुभव जिनको, ऐसे जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव हैं, वे...** एक ही बात है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी अनुभव दशा जिसे नहीं, वह मूढ़। जीव के अनुभवरूप अवस्था को पाये बिना। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु की अनुभवरूप दशा को प्राप्त किये बिना मूढ **शुद्धजीवस्वरूप के अनुभवरूप अवस्था को पाये बिना,...** समझ में आया? '**परिभ्रमन्ति' चतुर्गति संसार में रुलते हैं**। लो! वस्तु स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसे अनुभव की पर्याय की प्राप्ति किये बिना अकेले विकार के अनुभव से चार गति के अवतार में परिभ्रमण कर रहा है। कहो, समझ में आया इसमें? फिर साधु नाम धराता हो, राजा हो, नारकी हो परन्तु वह स्वरूप के अनुभव दशा के अतिरिक्त जो दशा करता है, उसमें वह अनन्त काल से भटका भटक परिभ्रमण कर रहा है। समझ में आया? '**परिभ्रमन्ति' चतुर्गति संसार में रुलते हैं**। चार गति। परि निकाला न? सबमें भटकता है, ऐसा। परिभ्रमण से सबमें जाता है, भटकता है। परि—समस्त प्रकार से। निगोद में भी भटकता है। सब निगोद जाओ, देव जाओ, ढोर जाओ, नारकी जाओ सब एक प्रकार के दुःख में भटकते हैं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धजीवस्वरूप का अनुभव, मोक्ष का मार्ग है;... लो! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप से विराजमान परमात्मा स्वयं ही है। उसका अन्दर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का अनुभव (होता है), वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। कहो, समझ

में आया? **दूसरा मार्ग नहीं है।** दो मार्ग नहीं और दूसरा मार्ग नहीं। जिसमें शक्ति पड़ी हो, उसके अवलम्बन से मार्ग होता है या जिसमें नहीं, उसके अवलम्बन से मार्ग होता है? पुण्य के परिणाम में शक्ति पड़ी है आत्मा की? शक्ति की व्यक्तता करना, वह राग में पड़ी है यह शक्ति? शक्ति तो यहाँ है। पूरा सत्त्व ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पूरा शक्ति सत्त्व है, भण्डार है। उसका अनुभव वह मोक्षमार्ग एक है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं। स्वद्रव्य आश्रय मोक्षमार्ग, परद्रव्य आश्रय बन्धमार्ग है, वह मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया? यह श्लोक हुआ। साध्य-साधक की शुरुआत का पहला श्लोक (हुआ)।

कलश - २६७

(वसन्ततिलका)

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री-
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ।।४-२६७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ—ऐसी अनुभव भूमिका को कैसा जीव, योग्य है—ऐसा कहते हैं— 'सः एकः इमां भूमिं श्रयति' [सः]—ऐसा [एकः] यही एक जाति का जीव, [इमां भूमिं] प्रत्यक्ष शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप अवस्था के [श्रयति] अवलम्बन के योग्य है अर्थात् ऐसी अवस्थारूप परिणमने का पात्र है। कैसा है वह जीव? 'यः स्वं अहरहः भावयति' [यः] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव, [स्वं] जीव के शुद्धस्वरूप को [अहरहः भावयति] निरन्तर अखण्ड धाराप्रवाहरूप अनुभवता है। कैसा करके अनुभवता है? 'स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां' [स्याद्वाद] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप वस्तु के अनुभव का, [कौशल] विपरीतपना से रहित वस्तु जिस प्रकार है, उस प्रकार से अंगीकार तथा [सुनिश्चलसंयमाभ्यां] समस्त रागादि अशुद्धपरिणति का त्याग, इन दोनों की सहायता से। और कैसा है? 'इह उपयुक्तः' [इह] अपने शुद्धस्वरूप के अनुभव में [उपयुक्तः] सर्व काल एकाग्ररूप से तल्लीन है। और कैसा है? 'ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः' [ज्ञाननय] शुद्धजीव के स्वरूप का अनुभव, मोक्षमार्ग है; शुद्धस्वरूप के अनुभव बिना, जो कोई क्रिया है, वह सर्व मोक्षमार्ग से शून्य है। [क्रियानय] रागादि अशुद्धपरिणाम का त्याग प्राप्त हुए बिना जो कोई शुद्धस्वरूप का अनुभव कहता है, वह समस्त झूठा है; अनुभव नहीं है, कुछ ऐसा ही अनुभव का भ्रम है, कारण कि शुद्धस्वरूप का अनुभव, अशुद्धरागादि परिणाम को मेटकर होता है। ऐसा है तो ज्ञाननय तथा क्रियानय, उनका है जो [परस्परतीव्रमैत्री] परस्पर अत्यन्त मित्रपना (वह) शुद्धस्वरूप का अनुभव है सो रागादि अशुद्धपरिणति को मेटकर है; रागादि अशुद्धपरिणति का विनाश, शुद्धस्वरूप के अनुभव को लिए हुए है, ऐसा अत्यन्त मित्रपना, उनका [पात्रीकृतः] पात्र हुआ है अर्थात् ज्ञाननय-क्रियानय का एक स्थानक है। भावार्थ इस प्रकार है कि दोनों नयों के अर्थ से विराजमान है।।४-२६७।।

कलश - २६७ पर प्रवचन

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री–
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ।।४–२६७।।

संस्कृत में वर्णन किया तथापि शुद्ध उपयोग, हों! एक जगह। सब तीन जगह, तीन जगह। तीन जगह शुद्ध उपयोग (कहा है)। भूमि को शुद्ध उपयोग कहते हैं। समझ में आया? देखो! यहाँ भूमि कहा था न? देखो न! निवृत्तम् भूमि, शुद्ध उपयोग भूमि कहा है। लो! देखो! संस्कृत। भूमि कहा है न यह? यह '**ज्ञानमात्र निजभाव अकम्पां भूमि**' है न? उस भूमि की व्याख्या ही शुद्ध उपयोग भूमि '**श्रयन्ति भजन्ते**' ऐसा लिया है। वह यह अनुभवगर्भित शब्द लिया है, यहाँ अभी शुद्ध उपयोग (लिया है)। यही बात है। शुद्ध उपयोग भूमि को '**श्रयन्ति**' अनुभव अर्थात् शुद्ध उपयोग। किया? वह यहाँ उसे साधक कहा है और इसमें भूमि शुद्ध उपयोग '**स्थानम्**' है न? '**भूमिमिमां**' अन्तिम शब्द आया न? '**भूमिमिमां**' यह भी आया है। शुद्ध उपयोग '**स्थानम् श्रयन्ति**'। समझ में आया? बाद में भी आयेगा। वह श्लोक है न '**चित्पिण्ड**' वहाँ भी '**तस्य एव**' शुद्ध उपयोग भूमि। '**स्तत्यैव**' तीन में डाला है यह तो। देखा था थोड़ा। उसमें आया न? ज्ञानानन्द में चार, पाँच जगह आता है। समझ में आया? क्या कहा? यह यहाँ भूमि आयी थी न यहाँ? २६६ श्लोक में। मोक्ष की कारणरूप अवस्था '**श्रयन्ति**' वहाँ अर्थ आया है शुद्ध उपयोगरूपी दशा को प्राप्त करता है। है अन्दर? हमारे सेठ को नजर कहाँ है? क्या कहा?

आकर भी अभी कहाँ ऐसी नजर में? ऐसा नहीं आया। उस ओर आयी है। **जीवद्रव्य के अनुभवरूप अर्थात् कोई विकल्प नहीं जिसमें,...** ऐसी भूमि। इसलिए देखो! कितने परिणाम कहे? शुद्ध जीव का अनुभव सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र लिया, वह जीव का चैतन्य सर्वस्व का अनुभव, वह अभेद है और वही भूमि मोक्ष के कारणरूप अवस्था को शुद्ध उपयोग कहा। समझ में आया?

'**भूमि श्रयन्ति**' है न? 'भूमि' शब्द है न? दूसरी लाईन, नहीं? समझ में आया?

यह शुद्ध उपयोग, वह मोक्ष का मार्ग, ऐसा यहाँ कहा है। शुभाशुभपरिणाम जो होते हैं, वह बन्ध का मार्ग है। यह है न अन्दर? शुभाशुभ नहीं, इसका अर्थ हो गया न? समझ में आया? एक ही यहाँ तो अस्ति से बात की है, इसलिए उसका कुछ काम नहीं। जो शुद्ध चैतन्य द्रव्य है, उसके आश्रय से, अवलम्बन से जो निज परिणाम शुद्ध अनुभवगर्भित दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसका परिणमन (हुआ), वह मोक्षमार्ग अस्तिरूप से। पहले की बात नहीं की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान का विषय, यह तो जानने में आवे। यह कहीं आदरने का विषय नहीं है, इसलिए बात नहीं की। समझ में आया? पहले से उठाया था न? नमः समयसाराय। अस्ति से उठाया था, नास्ति से समझ ले तुझे समझना हो तो।

यहाँ तो जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष चार बोल कहे थे। जीव—जीव का स्वभाव। भावाय—चित् स्वभावाय। अनुभूति—सर्वभावांतरच्छिदे—मोक्ष। चार कहा था। अब उसके सामने समझ न! अजीव और बन्ध और आस्रव और फालना, ढींकणा सब। ऐसी शैली है। यहाँ तो एक बात की। समझ में आया? अर्थ में स्पष्टीकरण किया कि दूसरा मार्ग नहीं है। अर्थकार (स्पष्टीकरण) करते हैं।

'**भूमिमिमां स एकः**' इसमें। पहले में भूमि आया था दूसरे पद का पहला शब्द। इसमें '**भूमिमिमां स एकः**' यह अन्तिम आया। समझ में आया? **ऐसी अनुभव भूमिका को कैसा जीव योग्य है...** देखो! ऐसा जो भगवान आत्मा वस्तु शुद्ध स्वरूप का अनुभव भूमिका, शुद्ध उपयोग की **भूमिका को कैसा जीव योग्य है...** अनुभव को कौन योग्य है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को कौन योग्य है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसी चेतनारूप चैतन्य परिणति को कौन योग्य है? कहो, समझ में आया? **ऐसा कहते हैं...**

'**सः एकः इमां भूमिं श्रयति**' **ऐसा यही एक जाति का जीव....** यही एक जाति का जीव। देखा? समझ में आया? **प्रत्यक्ष शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप अवस्था के अवलम्बन के योग्य है....** एक जाति शुद्ध चैतन्यस्वरूप, ऐसे वही एक जातिवाले जीव कि जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप के अवलम्बन से वे एक जातिवाले सब जीव, दूसरे कोई जीव उसमें नहीं। **यही एक जाति का जीव...** एक जाति के जीव का जो समुदाय है वह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। मोक्ष के मार्गरूप से परिणमित जीव की एक जाति है, ऐसा कहते हैं। एक जीव और दूसरे रूप परिणमे, स्व के आश्रय से तथा दूसरा और पर के आश्रय से (परिणमे), ऐसा कुछ नहीं। सब एक जाति के जीव, वे स्व के आश्रय से मोक्षमार्ग में परिणमते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

एक जाति का जीव... 'इमां भूमिम्' प्रत्यक्ष शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप अवस्था के अवलम्बन के योग्य है.... वही शुद्धस्वरूप अनुभव अवस्था के आलम्बन योग्य है। समझ में आया? भगवान! कैसे फिर कहेंगे। अभी प्रत्येक शब्द उतारेंगे। **कैसा है वह जीव?** कि प्रत्यक्ष '**इमां भूमिम्**' ऐसा कहा न? '**इमां**' शब्द पड़ा है न? अर्थात् प्रत्यक्ष शुद्ध स्वरूप अनुभव। प्रत्यक्ष शब्द में से वहाँ भूमि का शुद्ध उपयोग (अर्थ) निकाला है। समझ में आया? '**इमां**' शब्द पड़ा है न? '**भूमिमिमां स एकः**' '**इमां**' अर्थात् क्या होगा यह? यह इमाम होते होंगे वे? '**इमां**' अर्थात् यह भगवान आत्मा। यह भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप का प्रत्यक्ष स्वरूप का अनुभव। वह इस प्रत्यक्ष स्वरूप का अनुभव अवस्था। अर्थात् यह भूमि अर्थात् प्रत्यक्ष शुद्धरूप अवस्था अर्थात् शुद्ध उपयोगरूपी अवस्था। ओहोहो!

चैतन्यमूर्ति के अन्दर शुद्ध स्वरूप से; शुद्ध उपयोग वह त्रिकाल है, इसका वर्तमान शुद्ध उपयोगरूप से परिणमना। '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।**' (समयसार गाथा २४)। भगवान सर्वज्ञ ने तो यह देखा है न, भाई! वह तो उपयोग, शुद्ध उपयोग स्वरूप का पिण्ड, वह तो आत्मा भगवान ने देखा है। उसे तू ऐसा कह दे कि पुण्य-पाप और शरीरवाला हो गया। यह कहाँ से हुआ वह? समझ में आया? सर्वज्ञ भगवान केवलज्ञानी परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर, जिन्होंने आत्मा को उपयोगमय देखा है। अकेला ज्ञान शुद्ध उपयोगमय वस्तु शुद्ध ज्ञान कहो, शुद्ध उपयोग कहो, एकरूप उपयोग कहो, एक चैतन्य सर्वस्व कहो, वह शुद्ध उपयोगमय आत्मा है, ऐसा भगवान ने देखा है। ऐसा आत्मा राग, पुण्य और विकल्पमय किस प्रकार हो? ऐसा चैतन्य द्रव्य, वह अजीवरूप कैसे हो? ऐसा जो जीव, वह अजीवरूप कैसे हो? समझ में आया?

ऐसा भगवान शुद्ध उपयोगस्वरूप चैतन्य द्रव्य को अवलम्बन करनेवाले एक प्रकार के सब जीव शुद्ध उपयोगरूप परिणमनेवाले हैं। मोक्ष के मार्ग की जाति की एक जाति का परिणमन है, ऐसा कहते हैं। मोक्षमार्ग में किसी को शुद्ध उपयोग का परिणमन, किसी को शुभ का परिणमन (हो, ऐसा नहीं है)। यहाँ तो वह नहीं, ऐसा (भी नहीं कहा), यहाँ तो एक जाति का यह है, बस! कहो, भगवानभाई! कभी कहीं शब्द भी कान में नहीं पड़े थे। यह करो जीव ओवरीया तस्स् मिच्छामी दुक्कडम्, जाओ! तावकाउ जाणेणं माणेणं अप्पाणं वोसरामी। आहाहा! भगवान! यह तो श्रीमद् ने कहा है कि आत्मा को वोसरा देता है पूरा। आत्मा कितना है, उसकी खबर नहीं। विकल्प के आदर में पूरे आत्मा को वोसरा देता है। ऐ... कान्तिभाई! यह कहा था या नहीं? तस्सूतरी के शब्द किये थे? किये तो होंगे न पहले?

भगवान आत्मा अनन्त... अनन्त... शुद्ध चैतन्यमूर्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा है। वह सब जीव की, मोक्ष के मार्ग की जाति के जितने जीव हैं, वे सब यह प्रत्यक्षरूप स्वरूप के अनुभवरूप अवस्था के आश्रय से हैं। कहो, समझ में आया? 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ' ऐसा कहते हैं। आहाहा! नारकी के जीवों को दूसरा मार्ग हो, धनाढय को दूसरा मार्ग हो, गरीब को दूसरा मार्ग हो, इन्द्रों को तीसरा मार्ग हो, ऐसा होगा कुछ? जिसके साधन थोड़े, उसका दूसरा मार्ग, बहुत साधन उसको उसके साधन द्वारा मार्ग मिले। पैसा बहुत अधिक हो पाँच, पच्चीस लाख दे तो उसे इस मार्ग से मार्ग मिले, ऐसा होगा? इस पैसे के मार्ग से, उसके मार्ग से। नहीं। एक ही मार्ग अनादि काल के जितने जीवों की जाति मोक्षमार्ग में परिणमित हुए, वे शुद्ध उपयोगी का आश्रय लिया है। आहाहा! समझ में आया? एक ही प्रकार के मोक्षमार्ग का परिणमन। शुद्ध भगवान आत्मा के अनुभव की अवस्था के आश्रित है।

अर्थात् ऐसी अवस्थारूप परिणमने का पात्र है। समझ में आया? **कैसा है वह जीव? 'यः स्वं अहरहः भावयति' 'यः' जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव,... 'यः' जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव,... 'स्वम्' जीव के शुद्धस्वरूप को....** देखो! **'स्वम्'** की व्याख्या। **'स्वम्'** अपना धन, **'स्वम्' जीव के शुद्धस्वरूप को....** वह **'स्वम्'** जीव का शुद्धस्वरूप वह स्व। यह पुण्य, पाप, शरीर, वाणी, फाणी इसके स्व नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहीं

बाहर में चिपटा। कहाँ का कहाँ लम्बा करके मर गया। यह साधन, अच्छे शिष्य हों तो साधन हों, अच्छी पुस्तक की पुस्तकें हो तो साधन हो, पुस्तक-बुस्तक बहुत हो तो साधन हो या नहीं? कैसे बैठे-बैठे ऐसे चारों ओर लिखावट हो तो ध्यान रहे, अन्यत्र भाव न जाये, लो! यह साधन नहीं होगा? सब लेख ऐसे लिख रखो, ऐई!

यहाँ कहते हैं **जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव,....** वह **'स्वम्' जीव के शुद्धस्वरूप को... 'अहरहः भावयति' निरन्तर अखण्ड धाराप्रवाहरूप अनुभवता है**। देखो भाषा! देखो! भाव की स्थिति। **'अहरहः' 'अहरहः'** निरन्तर—अन्तर पड़े बिना, कहीं बीच में विकल्प में विश्राम लें, (ऐसा नहीं)। कितने ही कहते हैं न? वे नहीं कहते थे? बीच में शुभभाव आवे (वह) विश्राम का स्थान है। फिर वहाँ से अन्दर आ जाता है। उसके लिये व्यवहार कहा है। यह और एक व्यक्ति कोई कहता था। इन्दौर का। इन्दौर का कोई ब्रह्मचारी। समझ में आया? व्यवहार है, शुभराग है, वह विश्राम है। थकान लगी हो वहाँ विश्राम आवे न? और फिर थकान उतरे और फिर अन्दर अनुभव हो।

मुमुक्षु : आता है न? पुण्य में विशेष रहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कहाँ था भाई!

कहते हैं, वह वस्तु ही स्वयं विश्राम का स्थान है। शुद्ध ज्ञानघन, आनन्दघन प्रभु पूर्णानन्द प्रभु वह स्वयं ही विश्राम का स्थान है। उसके विश्राम की निरन्तर इसकी भावना समकिती को होती है। निरन्तर अखण्ड। निरन्तर की विशेष व्याख्या की। समझ में आया? धाराप्रवाहरूप। यह तीनों शब्द एक किये। **'अहरहः'** की व्याख्या की। सम्यग्दृष्टि जीव, जिसकी दृष्टि में शुद्ध आत्मा ही आया है, जिसकी दृष्टि में शुद्ध आत्मा ही ध्येय में वर्तता है। उसका ध्येय पुण्य-पाप, विकल्प, निमित्त में ध्येय नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह सातवें नरक में पड़ा, उस नारकी को निरन्तर अखण्ड धारावाही चैतन्य ध्येय पड़ा है, ऐसा कहते हैं। संयोग चाहे जो हो, प्रतिकूल हो, अनुकूल हो, वे तो सब ज्ञेय में जाते हैं, वे कहीं ज्ञान में दखल करे या साधन में मदद-अनुकूल करे, ऐसी कोई चीज़ नहीं जगत में। समझ में आया? भाई! निरोगता और यह व्यवस्थित साधन हो तो आत्मा

को उपयोग शुद्ध होने में अनुकूल पड़े। बिल्कुल खोटी बात है। आहाहा! और प्रतिकूलता में हाह लेने का अवसर हो थोड़ा तो कुछ ठीक पड़े। नहीं। आहाहा!

नारकी को परमाधानी जम बाँधे ऐसे कसकर-कसकर ऐसे। वहाँ डाले कील। वह तो अभी थोड़ा मैं तो कहता हूँ, यह शास्त्र में तो बहुत है। शास्त्र में तो ऐसे (लेख) हैं कि लोहे के एक हजार मोटे कीले धगधगते करके ऐसे निकाले, ऐसे निकाले, ऐसे निकाले और ऐसे निकाले, ऐसे निकाले और ऐसे निकाले... देवानुप्रिया! सुना है कहाँ इसने? आहाहा! एक हजार बिच्छू, लाख बिच्छू हो तो भी अंक नहीं। वह ठाकरिया बिच्छू, हों! बड़े कड़क। जिसे उसके काटने से सिर फट जाये मनुष्य में। ऐसा बिच्छू बनाकर वह राजा के महाराजा बड़े थे वे अभी नरक में प्रविष्ट हैं, अभी हैं। उसका डंक, वह डंक। इस बिच्छू के डंक से उस बिच्छू का डंक का अनन्तगुना त्रास है। समझ में आया? आहाहा! क्या बाँधकर क्या बाँधा? लोहे के धगधगते सरिया यहाँ मोटे और... इतने में डाले... डालकर यहाँ निकाले। समझ में आया? लोहे की स्त्री धगधगती गर्म बनाकर लोहे के धगधगते सांचे करके ऐसे जोड़े। फिर डाले लोहे के.... के लिए। और फिर पीटे दोनों ओर कीले। इसके धन्धे ही ऐसे होवे...। मेंढ़क को देखकर कौआ चूथने ही लगे। उसे दया कब आवे? समझ में आया? यह मारता आवे तो उसकी पृथ्वी की वेदना का पार न हो। वेतरणी नदी का पार। बापू! यह बातें ऐसी हैं। इसलिए कहते हैं कि धर्मी आत्मा के अखण्ड आनन्द का धारावाही भाव से भावना करता है। यह अनादि काल के धारावाही दुःख भोगे हैं। आहाहा! समझ में आया? निरन्तर अखण्ड और धाराप्रवाहरूप 'भावयति' इसका अर्थ किया अनुभवता है। आहाहा! अपनी दृष्टि में—अनुभव में लिया आत्मा उसे कभी समयमात्र भी छोड़ता नहीं। जिसका ध्येय जहाँ लगे, उसमें से हटे कहाँ? उसी प्रकार धर्मी अखण्ड धाराप्रवाह अनुभव करता है। इसका नाम अन्दर में मोक्षमार्ग—शुद्धपरिणति कहा जाता है। कैसा करके अनुभवता है—यह विशेष व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ०९, शनिवार, दिनांक-०१-०१-१९६६, कलश-२६७, प्रवचन-२८७

साध्य-साधक अधिकार है। इसमें चौथा कलश है। कलश-टीका। **जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव...** यहाँ से लेते हैं। देखो! छठी लाईन। अर्थात् क्या? कि यह आत्मा पवित्र सुख का धाम शुद्ध चैतन्य है, ऐसी अन्तर में स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि करके ज्ञान के भान सहित प्रतीति की है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव। समझ में आया? कैसा है वह? कि **जीव के शुद्ध स्वरूप को...** आत्मा शुद्ध है। अनादि से पुण्य और पाप की अशुद्धता का मात्र अनुभव था, वह मिथ्यादृष्टि था। समझ में आया?

इसने अनादिकाल से अनन्त काल में क्या अनुभव किया है? अशुद्ध परिणाम। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के शुभाशुभभाव का इसने परिणमन का वेदन (अनुभव किया है)। इसे नरक से लेकर निगोद या एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय नौवें ग्रैवेयक, ऐसे अनन्त भव में मलिन परिणाम का ही जिसने अनादि का निरन्तर धारावाही वेदन था। समझ में आया? इसका नाम संसार। इसका नाम उस संसार के परिभ्रमण का साधक। समझ में आया? अपना जो स्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, पवित्र ज्ञानानन्द धाम आत्मा है। उसके स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि किये बिना अनादि से एकेन्द्रिय से लेकर नौवें ग्रैवेयक गया तो भी उसने विकार के भाव को किये और विकार को अनुमोदन किया और भोगा। समझ में आया? जब धर्मदृष्टि होती है, तब वह वेदन पलट जाता है। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा शुद्ध पवित्र अनन्त गुण का शान्तरस धाम आत्मा है। ऐसी अन्तर में दृष्टि का अनुभव हुआ, वह निरन्तर जीव के शुद्ध स्वरूप को (अनुभव करता है)। स्व अर्थात् देखा? स्व। वह पर कहा अनादि से। मिथ्यादृष्टि जीव स्व नहीं ऐसा पर, पुण्य-पाप अशुद्ध मलिन परिणाम को भोगता, वेदता है, वह दुःख का वेदन अनादि का है। चाहे तो राजा हो, रंक हो, नारकी हो या नौवें ग्रैवेयक का मिथ्यादृष्टि देव हो। बराबर होगा? नेमिदासभाई! अशुद्ध परिणाम का, दुःख का वेदन उसे अनादि का है। समझ में आया? वह अधर्म दृष्टि अर्थात् कि मिथ्यादृष्टि अर्थात् कि वास्तविक चैतन्यमूर्ति के भान बिना अकेले विकार को अपना स्वरूप जानकर,

करके, मानकर भोगा है। उस मिथ्यादृष्टि में अशुद्धता का वेदन (था), वह वेदन सम्यग्दृष्टि में गुलांट खा जाता है। समझ में आया?

कैसा है वह सम्यग्दृष्टि **'स्वं' जीव के शुद्धस्वरूप को...** मिथ्यादृष्टि में जीव का स्वरूप नहीं था, ऐसे विकारी परिणाम का वेदन करता था। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि **'स्वं अहरहः भावयति'** भगवान आत्मा आनन्द का रूप, आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, ऐसे अन्तर्मुख स्वभाव का अनुभव और दृष्टि हुई थी, होकर लेकर, निरन्तर एकधारा **निरन्तर अखण्ड धाराप्रवाहरूप अनुभवता है।** शुद्ध स्वभाव के ध्येय में पड़ी हुई दृष्टि आनन्द और शुद्धता को एकरूप खण्ड पड़े बिना धाराप्रवाह से निरन्तर शान्ति का वेदन धर्मी को होता है। कठिन बात, भाई! समझ में आया? कहो, जमुभाई!

कैसा करके अनुभवता है? यहाँ तक कल आया था। अहो! भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप आत्मा, उसके सामने अनन्त काल में कभी देखे बिना परसन्मुख में ही जिसने भाव उत्पन्न करके भ्रमणा और राग-द्वेष को अनुभव किये। वही जीव स्व स्वभाव की सन्मुख की दृष्टि करने से स्वभाव की शुद्धता में दृष्टि पड़ने से उसे शुद्धता का, अनुभव का वेदन होता है। समझ में आया?

कैसा करके अनुभवता है? 'स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां' द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप वस्तु के अनुभव का... वस्तु ध्रुव नित्य शुद्ध है, ऐसी ही पर्याय में शुद्धता का, पर्याय का अनुभव है। द्रव्य और पर्याय दोनों शुद्ध का अनुभव है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! वस्तु शुद्धस्वरूप ज्ञानानन्द प्रभु, वह द्रव्य। उसकी पर्याय वह निर्मल उसकी पर्याय। एक द्रव्यरूप ही है, ऐसा नहीं, तथा पर्यायरूप है, ऐसा भी नहीं। इसका नाम स्याद्वाद। वस्तु शुद्ध चिदानन्द आनन्द का कन्द ध्रुव द्रव्य है, ऐसी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान हुआ, वह पर्याय है। समझ में आया?

वस्तु आनन्द और शुद्ध चैतन्य प्रभु है—ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ, लीनता हुई वह भी शुद्धपर्याय हुई। वह अंश और त्रिकाली अंशी, इन दोनों को लक्ष्य में लेकर स्याद्वाद (अर्थात्) पर्यायरूप से है और द्रव्यरूप से भी है। **इस प्रकार वस्तु के अनुभव का कौशल्य अर्थात् विपरीतपना से रहित वस्तु...** कौशल्य, ऐसा कहना है। **जिस**

प्रकार है उस प्रकार से अंगीकार... कौशल्य अर्थात् जैसा द्रव्य का स्वरूप है (तत्प्रमाण अंगीकार करता है)। अनादि तो विकारी परिणाम एक ही पर्याय को माने हुए। समझ में आया? विकारी शुभ और अशुभ परिणाम और वे मेरे—ऐसी भ्रान्ति, उसे एक को ही माने हुए, जाने हुए, अनुभव किये हुए, यह एकान्त हो गया, यह एकान्त दृष्टि हुई। समझ में आया? अनेकान्तदृष्टि नहीं हुई।

अनेकान्त दृष्टि अर्थात् एक समय में शुद्ध आनन्द ज्ञायकमूर्ति ध्रुव है, उसकी दृष्टि करने से जो पर्याय प्रगट हुई, वह अध्रुव। समझ में आया? अनेकान्त दोनों बात। यह ध्रुव और पर्याय दोनों आ गये। एकान्त में तो ध्रुवपना बिल्कुल दृष्टि में था नहीं। अकेले वर्तमान पुण्य-पाप के भाव और मलिन भाव का वेदन और अकेला वह मैं। एकान्त दृष्टि दुःख के वेदन में जो थी, वह अनेकान्त दृष्टि शान्त के वेदन में आया?

वस्तु भगवान ज्ञानमूर्ति आत्मा, ऐसी दृष्टि होने से; दृष्टि वह पर्याय है परन्तु दृष्टि पर्याय का विषय है, वह द्रव्य है। ऐसे स्याद्वाद अर्थात् द्रव्य और पर्याय में कौशल्य है। कौशल्य अर्थात् निपुण है, जाननेवाला है। समझ में आया? कौशल्य लिया है न? **उसका अंगीकार...** अंगीकार का अर्थ कि, उसे जानने का आदर किया है। अकेला जो अशुद्धपने का आदर अनादि से एकरूप से मलिनपने का एक अंश का ही एकान्त था, वह शुद्ध द्रव्य की दृष्टि होने पर, वस्तु ध्रुव रही और उसका परिणमन अध्रुव, अनित्य, क्षणिक पर्याय रही। ऐसा उसका अनुभव। कहते हैं कि उसमें उस द्रव्य को और निर्मल पर्याय दोनों को अनेकान्तरूप से जिसने अंगीकार किया है। कठिन बात, भाई! जुगराजजी! आहाहा! राजा दुःखी, रंक दुःखी, नारकी दुःखी, देव दुःखी। किसके कारण? अन्तर्मुख की दृष्टि के अभाव के कारण (दुःखी है)। इसे ऐसा कि शरीर में रोग है। वहाँ उसे रोग कहा है? ऐसा। परन्तु क्या कहा? यह सुना क्या? वह पाव घण्टे अभी कहा वह।

आत्मा स्वयं सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है। वस्तु स्वयं भगवान आत्मा। वस्तु... वस्तु... द्रव्य... द्रव्य... अर्थात् तत्त्व। यह आत्मा तत्त्व ज्ञान और शाश्वत् सत् आनन्दमूर्ति आत्मा है। उसके सन्मुख देखे बिना इसने पर में ऐसे देखा। फिर देव की सामग्री हो या नारकी की हो, पशु की हो, चींटी हो, कौआ हो, या राजा

हो या देव हो। उसने भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द सत् चिदानन्दस्वरूप आत्मा स्वयं है, उसका ध्येय-लक्ष्य को छोड़कर इसने बनाया अकेला पुण्य-पाप और निमित्त को ध्येय। इससे यह प्राणी एकान्त दु:खी है। बराबर होगा? सेठिया भी दु:खी? धूल में भी सुख कहाँ था वहाँ धूल में?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति उसमें जहाँ आनन्द पड़ा है, वहाँ दृष्टि नहीं और जिसमें दु:ख है, उसमें दृष्टि है। समझ में आया? पैसे के अंक से दु:ख-दु:ख का माप नहीं, संयोग के प्रसंग में दु:ख का, सुख का माप नहीं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय का कन्द उसकी दृष्टि का अभाव और विकारी वर्तमान पुण्य-पाप के भाव हों, उतना में ऐसे मिथ्यात्वभाव और अशुद्धभाव, वह दु:ख का मूल है, वह दु:ख है। संयोग अनुकूल हो, प्रतिकूल हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए इसमें लिया कि सम्यग्दृष्टि द्रव्य और पर्याय दोनों को अनुभव करे, उसमें उसकी चतुराई है। पहले को अकेली पर्याय का यथार्थ तो ज्ञान नहीं था परन्तु एक समय की पर्याय पर विकार और पुण्य-पाप और शुभ-अशुभभाव, अशुद्धभाव—शुभ-अशुभभाव का लक्ष्य, उसकी दृष्टि, उसका ध्येय, उसका वेदन, उसका कर्तापना यह सब सर्वस्व। यह सब संसार, दु:खरूप दशावाला संसार है।

मुमुक्षु : शुद्ध शक्ति में तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति में शुद्ध है, उसे कहाँ भान है? शक्ति में शुद्ध है उसमें उसे कहाँ भान है कि, शक्ति में शुद्ध है। शक्ति शुद्ध है तो पर्याय निर्मल हो गयी। द्रव्य शुद्ध भी लक्ष्य में आया, दोनों आ गये, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो भाई! वीतराग के गज हैं। इस गज के माप दुनिया से अलग प्रकार के हैं। अन्ध समझे-देखे बिना माप करे, उनके माप सच्चे नहीं होते।

यहाँ तो वस्तुस्वरूप एक समय में प्रभु! अनन्त आनन्द और ज्ञानरस का तत्त्व आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानरस का तत्त्व है। उसे लक्ष्य और ध्येय में न लेकर अकेले संयोग को लक्ष्य में लेकर और फिर अनुकूल-प्रतिकूल वस्तु में नहीं, वह तो ज्ञेय है, कल्पना की है कि यह मुझे अनुकूल, यह मुझे प्रतिकूल ऐसे भाव के भ्रमणा से

उत्पन्न किये हुए इष्ट-अनिष्ट के विकारी भाव, बस! वह दु:ख है। वह प्राणी चाहे जिस संयोग में हो, वह दु:खी ही है। समझ में आया?

अब अनेकान्ती। यहाँ तो एकान्ती दु:खी और अनेकान्ती सुखी, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण आनन्द का द्रव्य तत्त्व शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा वर्तमान दृष्टि से जहाँ स्वभाव का स्वीकार किया, तब दृष्टि क्षणिक रही, वस्तु त्रिकाल रही और अनेकान्त हो गया। ध्रुव है, वही पर्यायरूप है और पर्यायरूप है, वह ध्रुवरूप है द्रव्य। समझ में आया? आहाहा!

उस विपरीतपना से रहित... अकेली ही पर्याय मानना या अकेला ही द्रव्य मानना। द्रव्य अकेला माने, वह तो भ्रमणा से मानता है। कोई वास्तविक द्रव्य माने तो पय्राय उसकी यथार्थ हुए बिना रहे नहीं। यह सब कहा था न? एकान्त द्रव्य मानना, एकान्त पर्याय मानना, एकान्त नित्य मानना, एकान्त अनित्य मानना। समझ में आया? द्रव्य पर्याय में ही सब आ गया। भाई! तेरा पंथ अलौकिक है, बापू! और तेरे उल्टे मार्ग का भी अन्त न आवे, ऐसा वेदन तूने किया। आहाहा!

यह शास्त्रकार ने नरक के (दु:ख का वर्णन किया है)। अभी तो यह तिलोयपण्णत्ती थोड़ा देखा, आज थोड़ा देखा। मूल गाथा देखी, और आचार्य क्या कहते हैं? आहाहा! आचार्य कहते तो ऐसा कह गये, अरे रे! भाई! तेरे दु:ख की बात क्या करना? आहाहा! वह तेरे दु:ख तूने भोगे और भगवान जाने, भाई! अभी तू मौज में बैठा है न, हमारे कुछ नहीं, बापू! तेरे अन्दर में सब होली सुलगी है। आहाहा!

मुमुक्षु : शिल्लक में सब पड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिल्लक सब विकार का वेदन पड़ा है। तुझे खबर नहीं, नजर नहीं। समझ में आया? यह तो नारकी के दु:ख का वर्णन शास्त्रकार निमित्त से करते हैं। क्योंकि लोगों को निमित्त का लक्ष्य है न? बाकी निमित्त दु:ख नहीं। वह ताड़ गिरना और वैतरणी पड़ना, वह दु:ख नहीं। परन्तु लोगों की दृष्टि संयोग के ऊपर है, इसलिए संयोग से दु:ख की व्याख्या करते हैं। समझ में आया? और देव में सुख—यह इन्द्राणियाँ है और ऐसे महल हैं, वह कहीं सुख नहीं। परन्तु दुनिया को निमित्त के कारण से सुख

का भाव अन्दर उत्पन्न करता है, इसलिए निमित्त से उसे समझाते हैं। यह लौकिक सुख अर्थात् कि दु:ख। ओहोहो!

करोड़ों इन्द्राणियों में पड़ा हुआ देव इसके वैक्रियिक शरीर और जिन्दगी में रोग न आवे। और जिसे असंख्य अरब वर्ष का (आयुष्य)। ओहोहो! कितना आँकड़ा है? ऐई! कल रात्रि में हुआ कि पूछें हिम्मतभाई को। सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष में कितने अरब होते होंगे? ऐसा प्रश्न उठा था, भाई! अपने को प्रश्न उठे, वह कहते हैं न! सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। कितने अरब हुए? छप्पन हजार अरब। यह हमारे गिनती में होशियार व्यक्ति हैं। एक पूर्व का आयुष्य होता है न, पूर्व का?

भगवान को अभी महाविदेहक्षेत्र में मनुष्य का पूर्व का आयुष्य है—एक करोड़ पूर्व का। तो करोड़ पूर्व में एक पूर्व में इतने वर्ष जाते हैं, सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसे करोड़ पूर्व। कितने अरब हुए होंगे वापस? गिना था तो सही। सत्तर लाख करोड़। सौ हजार में लाख होते हैं और सौ लाख में करोड़ होते हैं, सौ लाख में करोड़ हों तो सत्तर लाख में सत्तर करोड़ परन्तु सत्तर लाख करोड़ वापस। और ऐसे पूर्व वापस करोड़ पूर्व। एक करोड़ पूर्व में कितने अरब वर्ष जायें? इतना आयुष्य तो महाविदेहक्षेत्र में भगवान तीर्थंकर आदि अथवा दूसरे भी मनुष्यों का होता है, अभी। यह कुछ बड़ा नहीं।

जहाँ नारकी के आयुष्य जहाँ सागरोपम के, एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। एक पल्योपम में असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष (जाते हैं)। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य करोड़ पूर्व जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! भाई! उस नरक में तू अनन्त बार रहा परन्तु इसे खबर कहाँ है? क्या कहा? जमुभाई! क्या कहा था? एक बार कुछ कहा था न? खबर नहीं, याद नहीं आता। भाई! परन्तु आत्मा है या नहीं? है, वह कब का नहीं? कब नहीं था? ऐसा का ऐसा है, ऐसा का ऐसा है। नरक में था, वहाँ पहले नरक का आयुष्य एक सागर का है। सातवें नरक का तैंतीस सागरोपम का है। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। दस

कोड़ाकोड़ी पल्योपम। अकेले दस करोड़ नहीं, दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। उसका एक पल्योपम, उसका असंख्यवाँ भाग, उसमें असंख्य करोड़ पूर्व जाते हैं। आहाहा!

भाई! बापू! तेरे काल की क्या बात करना? वह करोड़ पूर्व तो संख्यात है। पल्योपम असंख्य है और वह सागरोपम भी असंख्य वर्ष का है और अवसर्पिणी—उत्सर्पिणी भी असंख्य वर्ष का है। ऐसी अनन्त अवसर्पिणी—उत्सर्पिणी का एक पुद्गलपरावर्तन है। ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन एक-एक नरक के अन्दर अनन्त जीव ने किये हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन? कौन स्मरण करता है वहाँ? समकिती जीव कोई समकित प्राप्त करने के पश्चात् आत्मा का भान होता है। बाकी तो इस समकित बिना की बात चलती है न? यह तो अनादि के (मिथ्यात्व की बात चलती है)। वहाँ कहाँ भगवान देखता था? भगवान कैसा वहाँ? यह व्यर्थ का शोर मचाता है, यों ही। भगवान... भगवान कहाँ करता है? भगवान के नाम से मानो कि मेरा दु:ख कम होगा ऐसा। आहाहा!

कुछ नहीं होता। मिथ्यादृष्टि जीव तो ऐसे अनन्त बार... किसी समय भगवान... भगवान किया, शुभभाव हो तो भी इसे मिथ्यादृष्टि था। उसके आत्मा को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। आहाहा! अरे! भाई! अनादि का ही है, ऐसा (जब निर्णय कर), अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... आहाहा! कहीं आदि नहीं होती, उसके काल का माप कितना? अनन्त-अनन्त पुद्गलपरावर्तन, अनन्त अनन्त पुद्गलपरावर्तन। उसके एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसीयाँ जाये। समझ में आया?

भाई! इसने अनादि की नित्यता, आत्मा नित्य है अनादि का, इसने कहाँ दीर्घ विचार किया है? समझ में आया? ऐसा आत्मा, उसे वहाँ सागरोपम और तैंतीस, तैंतीस सागर के दु:ख भगवान वर्णन करते हैं। भाई! वह वर्णन करने का हेतु (यह है कि) अब तू लक्ष्य को बदल दे। समझ में आया? ऐसे दु:ख के वेदन में भगवान! तूने अनन्त काल बिताया, भाई! कहीं सुख की गन्ध नहीं, हों! यह पैसेवाले और धूल-धाणी और शरीर रूपवान दिखायी दे। वह अन्दर दृष्टि पड़ी है, पर में, वह दु:ख के ही वेदन में पड़ा है। आहाहा! यह कड़ाही में जैसे चना सिंकता है, उसी प्रकार यह कषाय की अग्नि में

सिंका है, भान नहीं होता। क्या हो ? आहाहा ! और दाँत निकाले और हर्ष करे, भाई ! यह तुझे हर्ष सन्निपात लगा है। बापू ! समझ में आया ? अरे !

इसने दीर्घकाल के तत्त्व की भी काल कितना, इसकी खबर नहीं होती। यह काल तूने कहाँ बिताया ? भाई ! समझ में आया ? यह अनन्त... अनन्त बार भगवान नरक में तूने काल बिताया है। आहाहा ! मनुष्य की संख्या से भव तो अनन्त नरक के किये हैं। समझ में आया ? ऐसे दु:ख (भोगे हैं)। इसका अर्थ यह कि चिदानन्द भगवान आत्मा की आनन्द की रुचि इसने नहीं की। इसे भगवान के सन्मुख देखना चाहिए, इसने देखा नहीं, बस ! यह बात। जिसके सामने देखे, उसका आदर किये बिना रहे नहीं। समझ में आया ? ऐसे चित्त को लगाया है अनादि से। शुभभाव और अशुभभाव और रागभाव और दया, दान, व्रत, पुण्य और पाप। भाई ! यह मलिन परिणाम तेरे स्वरूप में ही नहीं हैं। उसमें तूने चित्त को लगाया, भगवान ! वह तो दु:खरूप है।

यहाँ कहते हैं कि, सम्यग्दृष्टि **'स्वं'** स्याद्वाद में कौशल्य है। आहाहा ! समझ में आया ? यह आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द है, प्रभु ! ध्रुव परन्तु अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का अपार अपार स्वभाव पड़ा है। ऐसी अन्तर दृष्टि में... दृष्टि है अनित्य, दृष्टि है क्षणिक, दृष्टि है पर्याय, परन्तु उसका विषय है ध्रुव द्रव्य। इसलिए दोनों के निर्मलपने में स्याद्वाद सम्यग्दृष्टि कुशल है। थोड़ा अशुद्धपना है, वह भी उसके ज्ञान में ज्ञेयरूप से जाता है। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... इसका आदर, वह तो वह का वह है। स्वभाव का अनादर किया, इसलिए यह हुआ है। स्वभाव का आदर करने पर यह आनन्द होता है, यहाँ बात यह है। आहाहा ! समझ में आया ? प्रभु ! तेरे पास हरि नहीं वेदना। तेरा आनन्दकन्द भगवान तो तू है न, प्रभु ! भाई ! आहाहा ! ऐसी दृष्टि किये बिना उसे अनेकान्तपने का भान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अरे ! किसे इसमें निन्दा करना और किसे इसमें यह अच्छा काम किया और शुभाशुभ किया उसमें। भाई ! बातें कोई दूसरी है।

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर की उपस्थिति में समवसरण में बड़े इन्द्र,

अर्धलोक के स्वामी आते हैं, हों! अर्धलोक का स्वामी दक्षिणार्ध के स्वामी, सौधर्म उत्तरार्ध का स्वामी ईशानेन्द्र। उनके समक्ष भगवान ऐसा कहते थे कि हे जीवो! हे आत्मा! वह तो सम्यग्दृष्टि जीव है, इन्द्र सम्यग्दृष्टि जीव है। स्वभावसन्मुख दृष्टि हो गयी है। वह भी भगवान की वाणी सुनने जहाँ बारम्बार आता है, दिव्यध्वनि में यह आता था। ऐसे लोक के स्वामी, पूरे लोक के बादशाह! यह तो अब धूल के साधारण राजा-फाजा कहते हैं वह तो। वे तो लोक के, अर्धलोक के और अर्धलोक के यह दो बादशाह। जिनके विमान में असंख्य बड़े देव। समझ में आया? अरे! यह नहीं, हों! यह नहीं। हम यह नहीं। तब (कौन)? हम तो अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति वह आत्मा है, हों! ऐसे आत्मा का आदर हुआ है, उसे ऐसी ऋद्धि का आदर एक अंश में दृष्टि में रहा नहीं। समझ में आया?

दुनिया संयोग के कारण सुखी है, ऐसा कहते हैं, तेरी दृष्टि खोटी है। उसके स्वभाव की दृष्टि के कारण सुखी है, संयोग के कारण वह सुखी नहीं मानते और ऐसा है नहीं। ऐसी जहाँ बात आवे कि उसे निरोगता बहुत। वहाँ ऐसा हो जाये कि सुख है। अरे! मूढ़ तेरी दृष्टि कहाँ गयी? उसे आहार नहीं, उसे पानी लेने की आवश्यकता नहीं, उसे तैंतीस-तैंतीस सागरोपम का आयुष्य। तैंतीस हजार वर्ष में उसे आहार की इच्छा हो और हजार वर्ष में श्वास ले। क्या कहते हैं? बापू! ऐसे संयोगों से तू सुख का माप करता है, तुझे दृष्टि में भ्रम पड़ा है। समझ में आया? यह सम्यग्दृष्टि जीव है, उसे धारावाही चैतन्य की दृष्टि वर्तती है, इसलिए शुद्ध का अनुभव है, इसलिए सुखी है। समझ में आया? आहाहा!

'स्याद्वाद' द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप वस्तु के अनुभव का कौशल्य अर्थात् विपरीतपना से रहित वस्तु जिस प्रकार है, उस प्रकार से अंगीकार... द्रव्यरूप ध्रुव है, पर्यायरूप से अनित्य है। दोनों प्रकार से ज्ञानी ने अन्तर में आत्मा को जाना है। समझ में आया?

'**सुनिश्चलसंयमाभ्यां**' ज्ञान कहा, अब संयम कहते हैं, यह क्या कहा? '**स्याद्वाद**' '**कौशल्य**' यह ज्ञान कहा। '**सुनिश्चलसंयमाभ्यां**' अब दूसरा बोल लेते हैं। समझ में

आया ? ज्ञान और संयम दो, भाई ! लेना है यहाँ। आहाहा ! कहते हैं, भगवान ! एक बार सुन तो सही, भाई ! ऐसी वस्तु... वस्तु... वस्तु... वह अनन्त... अनन्त... आनन्द से लबालब भरपूर आत्मा सागर आनन्द का सागर है। जिसके एक समय के आनन्द के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन जहाँ सड़े हुए तृणवत् भासित हो। ऐसा जहाँ अन्तर में सम्यग्ज्ञान द्रव्य और पर्याय का हुआ है—एक बात।

'सुनिश्चलसंयमाभ्यां' और **समस्त रागादि अशुद्ध परिणति का त्याग...** वस्तु के अस्तित्व का ऐसा भान है कि मैं द्रव्य हूँ, शुद्ध आनन्द हूँ और उसकी दृष्टि आदि पर्याय है, वह क्षणिक है। इन दोनों का भान वर्तता है, उसका नाम ज्ञान। अब इसके साथ, देखो ! शुद्ध पर्याय है न ? उसमें अशुद्ध पर्याय का त्याग, ऐसा लेना है, भाई ! आहाहा ! शुद्ध द्रव्य है, वस्तु शुद्ध द्रव्य है, पदार्थ है और शुद्ध दृष्टि हुई है, ऐसा शुद्ध यथार्थ ज्ञान हुआ। अब उस शुद्ध ज्ञान की पर्याय में से अशुद्ध रागादि का त्याग हुआ, इसका नाम संयम कहा जाता है। समझ में आया ? बात भी भारी यह वह !

अरे ! आठ वर्ष की लड़कियाँ, चक्रवर्ती की लड़की समझती है। समझ में आया ? आत्मा उसकी चीज़ है, घर में है। कहाँ किसी की लेने जाना है। आहाहा ! समझ में आया ? आठ वर्ष की लड़की छोटी, हों ! छोटी। वह जहाँ समझे और जहाँ बात करे तो लोगों को ओहोहो ! समझ में आया ? और एक पाँच वर्ष की (लड़की को) जातिस्मरण बात हुई तो लोगों को ऐसे-ऐसे हो... आहाहा ! आहाहा ! अब वह तो ग्रहीत मिथ्यात्व में धारणा के थोड़े संस्कार वर्तमान ख्याल में आये, इसमें उसे विस्मय हो जाता है। आहाहा ! आहाहा ! क्या आहाहा ! भाई ! जहाँ ऐसे आठ वर्ष की बालिका (को) ऐसे वस्तु (और) यह भान (हुआ है)। उस सहित यहाँ तो अब संयम लेना है न ? आगे बढ़कर। समझ में आया ? वह कहे, मैं गीता हूँ। यह कहे, हम आनन्दमय आत्मा हैं। समझ में आया ? हमारी पर्याय में शान्ति और आनन्द है, वह हम हैं। राग, विकार और शरीर आदि हम नहीं। आहाहा ! वह आठ वर्ष की कन्या फिर कदाचित् विवाह भी करे परन्तु उसमें कहीं उसमें मैं हूँ, यह नहीं मानती। आहाहा ! यह वह अजर प्याला है न खेल का ! यह रागादि भाव में हम हैं ? नहीं। तब क्यों यहाँ होता है ? क्या होता है ? कुछ नहीं। हम तो राग से भिन्न हैं। समझ में आया ? तो यह देह की क्रिया ?

वह तो जड़ की क्रिया है, हमारी पर्याय को तो स्पर्शी भी नहीं। आहाहा! भीखाभाई!

कहते हैं, '**सुनिश्चलसंयमाभ्यां**' भागे, भागे। सन्त वन में चले गये आत्मा का भान हुआ, वापस भागे। छियानवें हजार स्त्रियाँ चोटियाँ खींचती रह गयी, चले गये। हम हमारे स्वरूप में स्थिर होना चाहते हैं। हमने जो तत्त्व जाना और माना है, उसमें अब हम स्थिर होना चाहते हैं, रोकना नहीं, रोकने से हम रहेंगे नहीं। समझ में आया? और तुम्हारे कारण हम नहीं रहे थे, हों! हमको जरा राग था, (इसलिए) अटके थे। तुम्हारी लालच और तुम्हारे मधुर शब्द और ललचाने के कारण हम तुम्हारे संग में आते थे, यह बात हराम बात है। समझ में आया? हमको जरा राग की आसक्ति थी, इसलिए आते थे। वह हमारी आसक्ति अब टूट गयी है। अब हमको ललचाने का भाव दूसरा तो नहीं करता था परन्तु जो राग था, वह अब हमारा जाता है। समझ में आया? ऐसे संयम ले, इसका नाम संयम है। आहाहा!

छह खण्ड के राज छोड़कर चल निकलते हैं। देखो न! यह कैसे क्या कहलाते हैं यह? लव और कुश। रामचन्द्रजी (के पुत्र)। देखो न! लक्ष्मण गुजर गये। रामचन्द्रजी मोक्षगामी जीव हैं। समझ में आया? लक्ष्मण गुजर गये। दो राजकुमार, हों! जवान योद्धा जैसे। घर में रानियाँ अप्सरा जैसी बैठी हैं। अरे! यह संसार, यह संसार! काका की देह छूट गयी, वासुदेव (थे) पिताजी का मस्तिष्क काका के मुर्दे पर लगा। नहीं राज, नहीं पाट, क्या है यह? पिताजी! हम दीक्षित होंगे। राम को भान भी नहीं (कि) यह क्या कहते हैं? ऐसे मुख फटा है। देखो न! है न इसमें? पिताजी! अब हम आत्मा के संयम में जायेंगे, हों! हमको आज्ञा दो। प्रभु! खबर नहीं। चल निकलते हैं। समझ में आया? चार गति के दु:ख से त्रास पाये हुए, वे आनन्द का धाम जहाँ दृष्टि में देखा वहाँ, अब प्रविष्ट होना चाहते हैं।

ऐसा '**सुनिश्चलसंयमाभ्यां**' अर्थात् क्या? संयम की व्याख्या? कि **समस्त रागादि अशुद्ध परिणति (का त्याग...)** अशुभराग या शुभराग दोनों, हों! इसलिए तो 'समस्त' शब्द प्रयोग किया है। '**सुनिश्चलसंयमाभ्यां**' शुभ और अशुभरागरहित अन्दर में स्थिर होना, इसका नाम संयम है। समझ में आया? वह लेने निकले। यह कहीं बातें करने

निकले ? नग्न शरीर (कर दिया), ऐसा नहीं। वीतराग परिणति से परिणमने निकले हैं। अरे! परन्तु इस गाँव में कितने... कितनी सुविधा। अरे! हमारी सुविधा तो अन्दर में है न! कौन इस सुविधा को मानता था ? हमारा जरा राग था। अरे! यह दशा! पिताजी की यह दशा! काका की यह दशा! संसार यह दशा! दुनिया से पागल होकर जाते हैं अब। राग और शुभ-अशुभ दोनों से हटकर स्वरूप में स्थिर होते हैं, उसे '**सुनिश्चलसंयमाभ्यां**' शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया ? उसका नाम चारित्र है और इसका नाम संयम है और यह चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बाद में ख्याल में तो है न! ऐसा तो ख्याल में है। परन्तु वे उस राग में नहीं, बाकी सब ख्याल में तो है न ऐसे तो। समकिती हैं न वे भी ? परन्तु जरा चारित्रमोह का राग है न, जरा गुलांट खिलवाते हैं। दृष्टि में नहीं। ओहो! भान हुआ तब (खबर पड़ी कि) लड़कों ने संयम लिया है। धन्य अवतार! मुझे भी वही करना है, मुझे भी वही करना है। समझ में आया ?

माता-पिता, यह तो उसमें थे। नहीं तो बड़ी रानी और राज हो। माता! आज्ञा दो, माता! भाई! सुख से जा, बापू! हमको यह रास्ता होओ, ऐसा बोले वापस। बापू! तेरा रास्ता तूने लिया, वह हमको होओ, हों! (तुझे) तो अनुमोदन दिया, बापू! जा। भाई! यह श्मशान के दु:ख छोड़ने श्मशान में चला जा। आहाहा! हमको यह होओ, हमको यह होओ—ऐसा कहते हैं, हों! फिर पीछे देखते नहीं। हमको यह रास्ता होओ। आहाहा! यह वीतराग का काल था, चौथा काल। यह झुण्ड के झुण्ड निकलते थे, हों! हें ? आहाहा!

अठारह-अठारह वर्ष के भरत के पुत्र, क्या नाम कहा ? 'रविकीर्ति' आदि १८। कितने थे ? १०८ ? १०० राजकुमार, हों! वे ऐसे गेंद से खेलते थे, रत्न की गेंद, राजकुमार इन्द्र के अवतार जैसे! परन्तु ७२ कला के जाननेवाले, हों! १८-१८ वर्ष की उम्र के खेलते थे। उनकी माता ने एक-एक व्यक्ति साथ में भेजा हुआ। रत्न की तलवारें लेकर। अरबों की, हों! एक-एक की (कीमत)। खेलने निकले थे और खेलते-खेलते भरत के

पूरी (सेना के) सेनापति जयकुमार महा वैभीश्वर जिनका नाम था। महा उनकी स्त्री... क्या कहा? सुलोचना क्या? सुलोचना। उसे ऐसे छोड़कर दीक्षित हुए हैं। लोग निकले (और कहा), जयकुमार ने भगवान के निकट संयम धारण किया। ऐसे के ऐसे वहाँ से निकल गये, ऐसे के ऐसे, हों! भगवान के निकट चले गये। वहाँ जाकर यह तलवारें और यह जरी के वस्त्र बाहर छोड़कर पुलिस को (कहा), माँ ने सौंपा हुआ व्यक्ति (उससे कहा), बापू! हम तो दीक्षा लेने आये हैं। अररर! अभी तक हमने क्या किया? भाई! हम तो दीक्षित होने आये हैं। हम प्रभु के निकट प्रभु होने आये हैं। छोड़कर अन्दर चले जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! कषाय की अग्नि से सुलगे हुए वे (वहाँ से) छूटकर शान्ति में प्रविष्ट होना चाहते हैं। इसे संयम कहते हैं, भाई! जहाँ स्थिर होकर हिम होते हैं अन्दर में वीतराग परिणति खड़ी होती है। समझ में आया?

ऐसा जहाँ समस्त रागादि शब्द प्रयोग किया है न? '**सु**' शब्द पड़ा है न? '**सु**' अर्थात् समस्त। निश्चय संयम में पक्का संयम हुआ अर्थात्? **समस्त रागादि अशुद्ध परिणति का त्याग, इन दोनों की सहायता से।** दोनों की सहायता अर्थात्? सम्यग्ज्ञान और सम्यक् संयम। यह स्याद्वाद कहा न? समझ में आया? **और कैसा है? 'इह उपयुक्तः' अपने शुद्ध स्वरूप के अनुभव में सर्व काल एकाग्ररूप से तल्लीन है।** अपने शुद्ध स्वरूप के अनुभव में, भगवान आत्मा के आनन्द में, शुद्ध में अशुद्ध राग की परिणति को छोड़कर... देखो! यह मुनिपना, यह संयम और यह चारित्र। आहाहा! भगवानभाई! यह तो चारित्र कैसा सुना कि, ओहोहो! यह **स्वरूप के अनुभव में सर्व काल एकाग्ररूप से तल्लीन है।** देखा? भाषा कैसी है? '**उपयुक्तः**' अपने में तल्लीन हैं।

ऐसा शुद्ध उपयोग जमा है जिसे, **और कैसा है? 'ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्र-मैत्रीपात्रीकृतः' शुद्ध जीव के स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है,...** क्या? ज्ञान। देखो! ज्ञान का अर्थ किया। ज्ञानमय अर्थात् क्या? कि शुद्ध जीव के स्वरूप का अनुभव वह मोक्षमार्ग, वह ज्ञाननय। समझ में आया? क्या कहा? देखो! अन्दर है। पढ़ो तो सही देखो! यह भाषा अर्थ तो कैसा किया है! ज्ञाननय और क्रियानय के अर्थ करेंगे।

ज्ञाननय अर्थात् **शुद्ध जीव के स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, शुद्ध स्वरूप के**

अनुभव बिना जो कोई क्रिया है, वह सर्व मोक्षमार्ग से शून्य है,... भगवान आत्मा के शुद्ध का अनुभव, वही मोक्ष का मार्ग है। इसके अतिरिक्त पाँच महाव्रत के विकल्प उठें, वह बिल्कुल मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! ज्ञाननय अर्थात् शुद्ध जीव के स्वरूप का अनुभव, वह मोक्षमार्ग। और **शुद्ध स्वरूप के अनुभव बिना जो कोई क्रिया है,...** जो कोई क्रिया दया, दान, व्रत का विकल्प **सर्व मोक्षमार्ग से शून्य है,...** इस राग में मोक्षमार्ग की शून्यता है। आहाहा! कायर का तो कलेजा कंपे, ऐसा है न अन्दर से। समझ में आया?

कहते हैं, अब '**क्रियानय**' यह '**क्रियानय**'। **रागादि अशुद्ध परिणाम का त्याग प्राप्त हुए बिना जो कोई शुद्ध स्वरूप का अनुभव कहता है, वह समस्त झूठा है,...** भगवान आत्मा का ज्ञान और रागादि अशुद्ध का अभाव, इसके बिना अनुभव कहते हैं कि नाना अशुद्ध परिणाम भी ऐसे के ऐसे रहे और आत्मा का अनुभव हुआ, तो वह झूठा है। आहाहा! समझ में आया? **रागादि अशुद्ध परिणाम का त्याग प्राप्त हुए बिना...** भगवान शुद्ध स्वरूप परमानन्द का ज्ञान निर्मल पर्याय, उससे रागादि मोक्षमार्ग से शून्य है। और साथ में राग का अशुद्ध परिणाम जितना शुभाशुभ उसका अभाव। वह तो 'त्याग' शब्द प्रयोग किया है, अर्थात् कि उसका अभाव।

ऐसा **प्राप्त हुए बिना जो कोई शुद्ध स्वरूप का अनुभव कहता है,...** भगवान आत्मा की दृष्टि शुद्ध हुई और शुद्ध का अनुभव हुआ और ऐसा कहते हैं कि अशुद्ध परिणाम का त्याग हुआ नहीं तो यह उसे अनुभव का भ्रम है। क्योंकि शुद्ध स्वरूप का अनुभव शुद्ध की पर्याय में अशुद्धता की पर्याय का त्याग हुए बिना शुद्ध अनुभव नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? अध्यात्म की बात तो ऐसी सूक्ष्म है और संवर और सीधी तथा मोक्ष के पंथ को देनेवाली। आहाहा! याहोम करते हैं लोग, देखो न! देश के लिये कितने याहोम करते हैं, लो! पच्चीस-पच्चीस वर्ष के, तीस-तीस वर्ष के याहोम करते हैं या नहीं? आहाहा! ऐसा नहीं सुना था? एक बड़ी मशीन थी। वहाँ पड़कर तोड़े, मरे तब ही वह टूटे। ऐसी बड़ी वह थी, दूर से टूटे ही नहीं। वहाँ जाकर तोड़े तो ही टूटे और वहाँ जाये तो वहाँ मरे ही। खबर है कुछ? मर जायेगा। तो भी तोड़कर पड़े पूरा शरीर। अरे! भगवान! यह आत्मा के लिये किया कभी? याहोम... चिदानन्द आनन्दकन्द के पर्वत में पड़ा है अब।

यह तो ठीक अब समझने जैसा। यह तो बात है, यह तो दृष्टान्त क्या अर्पणता की अपेक्षा का। समझ में आया? वीररस तो उसे कहते हैं कि स्वरूप की दृष्टि करके स्वरूप में स्थिर हो, उसे वीररस कहते हैं। वीरोचित का अर्थ देते हैं, देखो! समझ में आया? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का रस है। उसके भान में अन्दर स्थिर हो जाये उसे वीररस कहते हैं, बाकी सब बालकरस है। बापू! 'संसार मोक्ष विपक्ष भोया' संसार और मोक्ष का मार्ग दोनों विपक्ष—विरोध पक्षवाले हैं, कहीं दोनों का मिलान खाये, ऐसा नहीं है। एक का योगफल निगोद जाता है और एक का योगफल सिद्ध होता है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, '**ज्ञाननय**' का अर्थ क्या किया? **शुद्ध जीव के स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है,...** ऐसा जो जाना, वह शुद्ध ज्ञाननय। इसके अतिरिक्त राग से बिल्कुल मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा जो जानना, उसका नाम ज्ञाननय, ऐसा अभी तो। वह तो बाद में। यह तो अभी शुद्ध जीव का अनुभव मोक्षमार्ग है, ऐसा जानना और राग से मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा जानना, इसका नाम ज्ञाननय है। इसका नाम तो अभी ज्ञाननय कहा। समझ में आया? है न? देखो न! अर्थ बहुत सरस भरे हैं। 'पांडे राजमल जैन धर्मी समयसार नाटक के मर्मी' आहाहा! नाम रखा है न इन्होंने! आत्मा में, हों!

कहते हैं ज्ञानय किसे कहना? कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव, वही मोक्ष का मार्ग है। रागादि का विकल्प, उससे विरुद्ध अनुभव से बिल्कुल (विरुद्ध) राग में बिल्कुल मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा जो ज्ञान उसे ज्ञाननय कहा जाता है। अभी तो ज्ञानमय उसे कहा। फिर वहाँ से हटना और स्थिर होना, यह तो और क्रियानय आयेगा।

क्रियानय—पुण्य-पाप के अशुद्ध परिणाम का अभाव, अभावरूपी प्राप्ति, उसके त्यागरूपी प्राप्त होना। पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उनके अभावरूप प्राप्त होना, इसका नाम क्रियानय। क्योंकि उसके **प्राप्त हुए बिना जो कोई शुद्ध स्वरूप का अनुभव कहता है, वह समस्त झूठा है; अनुभव नहीं है, कुछ ऐसा ही अनुभव का भ्रम है,...** आत्मा शुद्ध ज्ञाननय से जाना, ऐसा जहाँ शुद्ध का, (पुण्य-पाप के) अभावरूप परिणमन न हो तो वह अनुभव शून्य है, वह अनुभव का उसे भ्रम है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि यह जाना साथ में उसे शान्ति (की उपलब्धि) और अशुद्धता का अभाव परिणमना चाहिए। समझ में आया ? अस्तिरूप से पूरा भगवान ऐसा है, ऐसा जहाँ श्रद्धा-ज्ञान में अनुभव किया, उसे राग से पक्ष छूटकर स्थिर हुआ है तो उसे अनुभव कहा जाता है, नहीं तो अनुभव कहा नहीं जाता। समझ में आया ? ओहोहो ! कठिन बात, भाई ! जीव के मोक्षमार्ग का तौल होता है, माप होता है, तुलता है। समझ में आया ?

क्रियानय का अर्थ कि, पुण्य-पाप के परिणाम का त्याग, उसका नाम क्रियानय। अन्दर में शुभाशुभ परिणाम, मलिन परिणाम का त्याग, उसका नाम क्रियानय। यह विकल्प उठे न ? यह दया और व्रत, वह क्रियानय नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? 'ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष' कहते हैं न ? वह यह ?

मुमुक्षु : पंचास्तिकाय के साथ मिलानवाला है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पंचास्तिकाय के साथ मिलानवाला है यह। साधक कहा है न। वह तो व्यवहारनय से बात (करके) निमित्त का ज्ञान कराया है। पंचास्तिकाय में आता है न ? साधक, साधक और साध्य ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें ? ऐसा कि, पंचास्तिकाय में आता है न ? यह व्यवहार करे तब ऐसा होता है। वह तो ऐसा तो पहुँचा हुआ व्यक्ति है न ! व्यवहार करते समय-समय में ऐसा होता है अमुक-अमुक ऐसा होता है। पछाड़े पश्चात् धोती को साबुन में लेकर पछाड़े, थाप खाये, जीके समझ में आता है ? पछोड़े। तब व्यवहार से उसमें थाप हो और फिर ऐसे हो ओ... वह तो एक निमित्त ऐसा हो, उसका ज्ञान कराया, भाई ! समझ में आया ? ज्ञानप्रधान कथन है न पंचास्तिकाय में ? आहाहा !

कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञाननय में शुद्धपना, यह अनुभव वह मोक्षमार्ग और रागादि में अंश में भी मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा ज्ञान, उसे ज्ञाननय कहते हैं। और क्रियानय, वह तो मात्र राग में मोक्षमार्ग नहीं इतना। अब क्रियानय वह अशुद्ध रागादि के त्यागरूप परिणमन, उसे क्रियानय कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐ सोगनचन्दजी ! यह क्रिया आयी। चक्की में आटा दलना, न दलना यह कब आयेगा इसमें ? समझ में आया ? आहाहा ! यह तो वह शुभ विकल्प हो और होने का हो, वह होता है परन्तु वह

विकल्प स्वयं क्रियानय का स्वरूप नहीं। समझ में आया ? यह तो रागादि के अभावरूप परिणमन उसे क्रियानय कहते हैं। आहाहा! अरे! वीतराग का मार्ग, वह नपुंसक से तो सुना जाये, ऐसा नहीं है। वीर्य हीन ऐसे हाय... हाय...! (हो जाये)। अरे! ऐसा (कहते हैं)। अरे! सुन तो सही!

महा चिदानन्द प्रभु महा विराजता है। विकल्प तो कहाँ ? वह तो तोड़ डालने की अँगुली है। वह तो लटकती छठी अँगुली तोड़ डालने के लिये है, काट डालने के लिये है। वह आत्मा को मदद करती होगी ? यहाँ तो उसके अभावरूप परिणाम जो है, उसका नाम क्रियानय। **अनुभव नहीं है, कुछ ऐसा ही अनुभव का भ्रम है, कारण कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव अशुद्ध रागादि परिणाम को मेटकर होता है।** देखो! शुद्ध स्वरूप का अनुभव अशुद्ध रागादि की एकता टूटकर, एकता अर्थात् अस्थिरता टूटकर **परिणाम को मेटकर होता है। ऐसा है जो ज्ञाननय तथा क्रियानय, उनका है जो परस्पर अत्यन्त मित्रपना....** लो! समझ में आया ? ऐसे ज्ञाननय और क्रियानय का मित्रपना उसे मुक्तिमार्ग कहते हैं। विशेष बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १०, रविवार, दिनांक-०२-०१-१९६६, कलश-२६७, २६८ प्रवचन-२८८

पृष्ठ है २४१, नीचे है नीचे, देखो! **ऐसा है जो ज्ञाननय तथा क्रियानय, उनका है जो परस्पर अत्यन्त मित्रपना....** है ? शान्तिभाई! नीचे। इसमें क्या समझे इस शब्द में ? **ऐसा है जो ज्ञाननय तथा क्रियानय, उनका है जो परस्पर अत्यन्त मित्रपना....** अर्थात् **शुद्ध स्वरूप का अनुभव है सो रागादि अशुद्ध परिणति को मेटकर है, रागादि अशुद्ध परिणति का विनाश शुद्ध स्वरूप के अनुभव को लिये हुए है, ऐसा अत्यन्त मित्रपना— उनका पात्र हुआ है...** अब इसका अर्थ। यह तो शब्द पढ़े।

ज्ञाननय अर्थात् क्या ? कि यह आत्मा जो है, वह शुद्ध द्रव्य, शुद्ध चैतन्य द्रव्य वस्तु है। उसकी पर्याय में भी वर्तमान अवस्था-दशा है, वह राग और पुण्य-पापरहित उसकी अवस्था है। सूक्ष्म बात है। अनन्त काल से इसने आत्मा की प्राप्ति नहीं की और करने की पद्धति भी इसने अनन्त काल में वास्तविक रीति से नहीं जानी।

कहते हैं कि आत्मा स्याद्वाद कौशल्य। आत्मा एक समय में ध्रुव चैतन्यमूर्ति अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड वस्तु-आत्मा है। वह द्रव्य कहलाता है, द्रव्य अर्थात् वस्तु। और उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से जो ख्याल में आवे चीज़, उसे पर्याय कहा जाता है। समझ में आया ? यह शुद्ध द्रव्य है, ऐसी श्रद्धा; यह शुद्ध द्रव्य है, ऐसा जो ज्ञान और शुद्ध द्रव्य है, ऐसी जो वर्तमान लीनता, उसे पर्याय कहा जाता है। पर्याय समझ में आता है ? अवस्था। ऐसा आत्मा द्रव्यरूप वस्तु है, है उसकी बात है यहाँ सत्ता है, और एक समय की अवस्था भी है। उसका वास्तविक ज्ञान होना, उसे ज्ञाननय कहते हैं। वल्लभदासभाई! आहाहा! जगत का ज्ञान नहीं, शास्त्र का भी ज्ञान नहीं। यहाँ तो यह बात है।

वस्तु सच्चिदानन्द प्रभु, आत्मा सत् शाश्वत्, उसमें ज्ञान और आनन्द का भण्डार आत्मा है। ऐसा जो द्रव्य है, उसका ज्ञान और उसकी वर्तमान पर्याय—अवस्था है, उसका ज्ञान। शान्तिभाई! बहुत सूक्ष्म है, हों! यह। सूक्ष्म परन्तु तुरन्त क्षण में समझ में आये ऐसा है परन्तु दरकार करे तो। कहते हैं कि ऐसा आत्मा है, भाई! यह वस्तु है त्रिकाल

शाश्वत् रहनेवाली। अनन्त गुणस्वरूप और उसे पकड़नेवाली वर्तमान पर्याय अर्थात् परिणति अर्थात् अवस्था है। वह अवस्था है और द्रव्य भी है। क्षणिक अवस्था भी है और त्रिकाली तत्त्व भी है। दोनों का वास्तविक द्रव्य और पर्याय का ज्ञान होना, इसका नाम ज्ञाननय कहा जाता है और उस ज्ञाननय के साथ... देखो! है न?

ज्ञाननय और क्रियानय। क्रियानय अर्थात् कि अशुद्ध पुण्य-पाप के भाव मलिन जो हैं, उनसे रहित आत्मा की दशा का होना, उसका नाम क्रियानय सहित कहा जाता है। कब? अभी हों! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की दशा में। वल्लभदासभाई! आहाहा! वस्तु अनन्त... अनन्त शान्तरस और आनन्द का कन्द आत्मा है। जो अतीन्द्रिय आनन्द से और पूर्ण ज्ञान से खाली नहीं, ऐसा वह तत्त्व है। उसका ज्ञान और उसकी वर्तमान दशा होना, वह त्रिकाल का ज्ञान और वर्तमान अवस्था होना, हालत चलती है, उसका ज्ञान। वह बराबर ज्ञान होना, इसका नाम ज्ञाननय और उसी काल में पुण्य-पाप के अशुद्ध भाव हैं, उनसे रहित होना, वह ज्ञान हुआ जो वर्तमान दशा में, उस ज्ञानदशा के काल में पुण्य-पाप के अशुद्ध मलिन परिणाम हैं, उनसे रहित होकर शुद्धरूप से परिणमन होना, वह क्रियानय कहलाता है। यह ज्ञान और क्रियानय की दोनों की मैत्री है। यह दो इस प्रकार से हों, तब उसे आत्मा का कल्याण होता। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञाननय तथा क्रियानय उनका है जो परस्पर अत्यन्त मित्रपना.... अर्थात् कि शुद्धस्वरूप का अनुभव है। मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, पवित्र हूँ, ऐसी वर्तमान दशा में शुद्ध का अनुभव जो है, **सो रागादि अशुद्ध परिणति को मेटकर है,...** यह विकल्प जो मलिन परिणाम हैं, इससे रहित है। जैसे पानी है, वह निर्मल है परन्तु उस पानी के किनारे मैल जो ऊपर जो क्या कहलाता है? काई.... काई को दूर करके निर्मल पानी पीता है। इसी प्रकार आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु है, अकेला आनन्द का दरबार आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति—चारित्र, ऐसे अनन्त गुण का भगवान आत्मा दरबार आत्मा है। शशिभाई! ऐसे आत्मद्रव्य का जहाँ स्वसन्मुख होकर ज्ञान हुआ, तब उस ज्ञान में पुण्य-पाप के मैल जो शैवाल जैसे हैं, उनसे अभावरूप परिणमन हुआ। इसके सद्भाव के ज्ञानरूप से, उसके अभावरूप से

(परिणमन हुआ)। उसका नाम ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री कही जाती है। दोनों होकर आत्मा के मोक्ष को साधते हैं। समझ में आया? कहो, जुगराजजी! आहाहा! तो यह देह की क्रिया कब साधे आत्मा को? तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभभाव, वह क्रिया नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह आत्मा के अबन्धस्वभाव का कारण नहीं। उसे निर्णय नहीं होता, ऐसा काल अनन्त काल में मिला। अहो! संसार में जन्म वर्तमान संसार से तिरने के लिये यह अवतार है। समझ में आया?

संसार अर्थात् आत्मा की दशा में राग और द्वेष, पुण्य और पाप, मलिन भाव को संसार कहते हैं। इस संसार से तिरने का उपाय आत्मा शुद्ध वस्तु है। संसार मैल है, वस्तु त्रिकाल निर्मल है—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करके वर्तमान में इन पुण्य-पाप के परिणाम से दूर हटकर जितना राग से रहित इसका परिणमन होता है, वह ज्ञाननय और क्रियानय एक समय में साथ में होते हैं। सोभागमलजी! यह सब क्रिया, यह दान, पूजा, भक्ति और व्रत, वह सब क्रिया करने से मोक्ष कब होता होगा? वह तो पुण्यपरिणाम है, वह तो पुण्य से इसे यह वापस धूल आदि मिले। उसमें कहीं आत्मा की शान्ति और धर्म मिले, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

इस वस्तु का स्वयं स्वभाव ही शुद्ध चैतन्य है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके, उस काल में पुण्य-पाप के राग के मलिन परिणाम से रहित, स्वभाव-सन्मुख हुआ अर्थात् विभाव से रहित होकर जो स्थिरता हुई, वह शुद्धस्वरूप का अनुभव और रागादि अशुद्ध परिणति का मिटना। वह राग से, अशुद्धता से हटकर शुद्धता की ओर की निर्मल परिणति **वह रागादि अशुद्ध परिणति का विनाश शुद्ध स्वरूप के अनुभव को लिये हुए है,...** अशुद्ध परिणति टले नहीं और शुद्ध का अनुभव हो, ऐसा दो बनता नहीं। शुद्ध का अनुभव हो और अशुद्ध टला न हो, ऐसे दो होते नहीं। समझ में आया?

यह तो मोक्ष के मार्ग के खेल की बात है। जिसे दुःख से मुक्त होना हो, उसे यह एक पद्धति है। बाकी चार गति के जीव दुःख में पचे हैं। समझ में आया? सेठ हो, राजा हो, नारकी हो, भिखारी हो या करोड़ों-अरबोंपति सेठिया (हो), वे सब परद्रव्य के लक्ष्य से किये हुए विकार में दुःख में पच रहे हैं। शान्तिभाई! किसमें? प्रेमभाई! पैसे से

(दु:खी) नहीं। वह मेरे और मैं उनका, ऐसी जो अन्तर ममता का राग और द्वेष के भाव, उसमें—दु:ख में पच रहे हैं। उन्हें भान नहीं, भान नहीं कि हम दु:खी हैं, ऐसी उन्हें खबर नहीं। समझ में आया?

बड़े देवता जिनके संयोग की अनुकूलता इतनी कि तो भी उस संयोग के लक्ष्य से... शास्त्र तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि धर्मी वह आत्मा की अन्तर्दृष्टि और अनुभव किया, रागादि बहुत घटाये परन्तु कुछ राग बाकी रह गया, उसके कारण स्वर्ग में जाते हैं। उस स्वर्ग में देवता के क्लेश के दु:ख से सिंकेगे। आहाहा! समझ में आया? वे देव स्वर्ग के देवों में उन इन्द्राणियों का सुविधा का पार नहीं होता, परन्तु उनके लक्ष्य से राग में सिंकेगे, जलेंगे वे समकिती। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे की आवश्यकता पड़े, ऐसा नहीं वहाँ। धूल तुम्हारी वहाँ क्या, यहाँ तुम्हारे आवश्यकता पड़े, उसे आवश्यक नहीं। वहाँ तो सब ऐसे हजार वर्ष में ऐसा अमुक प्रकार का हो तो एकदम कण्ठ में से अमृत झरे और कहीं शरीर में रोग नहीं, ऐसे अप्सराओं का पार नहीं होता, देवलोक के सब (संयोगों में)... कहते हैं कि इस भगवान आत्मा की ओर की जितनी दृष्टि, स्थिरता नहीं, उतना परसन्मुख का विकल्प जो उठता है, वह अग्नि के अंगारे में सिंकता है। आहाहा! समझ में आया? वह यह रोग है और यह दु:ख है, ऐसा नहीं। दु:ख की व्याख्या यह नहीं। रोग, वह दु:ख है; निर्धनता, वह दु:ख है; अविवाहितपना, वह दु:ख है; सन्तानहीनता, वह दु:ख है। निरोग, वह सुख है; पैसा, वह सुख है; अनुकूलता सुख है... यह व्याख्या ही सुख-दु:ख की नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह बात ही खोटी है, यहाँ कहते हैं, अज्ञानी ने मानी है।

मुमुक्षु : किसी को नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसकी अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान करके रागरहित स्थिर होना, वही आनन्द और वही सुख है, बाकी सुख है ही नहीं। जितने पर में, राग में, पर की मिठास में पड़े हैं, भले पुण्य का भाव हो या पाप का हो, वे सब आत्मा के अमृत अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत उसे लूटकर शुभ और अशुभभाव उत्पन्न होते हैं। वह शुभ और अशुभभाव अग्नि के अंगारे जैसे सींकते हैं। शास्त्र तो कहते हैं कि महामुनि होकर यहाँ (रहते थे)। आत्मज्ञान मुनिपना छठवाँ गुणस्थान वीतरागता बहुत, परन्तु अभी थोड़ा राग रह गया। पूर्ण वीतराग हो, तब तो केवल (ज्ञान) हो जाता। परन्तु थोड़ा राग पुण्य का रहा (तो) पुण्य बँध गया। (और) स्वर्ग में अवतरित हुए। यहाँ का लक्ष्य न करके वे तो धान के पिण्ड नहीं, यह तो धान (अनाज) हो तो शरीर रहे, नहीं तो सूख जाये दो घड़ी न रहे तो। उनके शरीर तो हजारों सूर्य के तेज से विशेष तेज हैं। ऐसे देव भी इस सामग्री के लक्ष्य के राग से जल उठते हैं, सुलग गये हैं। शान्तिभाई!

मुमुक्षु : नरक की वेदना कैसी होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वेदना संयोग की नहीं। वहाँ भी कषाय की अग्नि से सुलग रहे हैं। समझ में आया? नरक की क्या बात करना? उसकी वेदना... आहाहा! यह तो शास्त्रकार संयोग से बात करते हैं। यहाँ का पड़ा नरक में अनन्त बार गया। जिसके एक क्षण की वेदना (अकथ्य है)। (यहाँ के) राजा-महाराजा माँस खानेवाले, शराब पीनेवाले, परस्त्री का लम्पटी जब हुआ, तब नरक में गया। वह गया साथ में... उसे तो शास्त्र ऐसा कहते हैं, उसके जो उपजने के बिल हैं, यह मधुछत्ता जैसे (होते हैं), उसमें उपजे। वहाँ हजारों तीक्ष्ण शस्त्र में अन्दर उपजे। उपजे वहाँ से भागे अन्दर से। नीचे गिरे और एकदम... (उछले)। हाय... हाय.. यह क्या? समझ में आया? छत्तीस प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र नीचे हों, वहाँ ऊपर से गिरे। अभी जन्मे वहाँ। यहाँ अभी राजा का मुर्दा न निकाला हो। समझ में आया? आहाहा!

फिर एक-एक अंग में काला ठाकोरिया बिच्छू हजारों ऐसे चारों ओर से चिपटे। बिच्छू-बिच्छू जिसका एक बिच्छू का डंक चिल्लाहट मचावे, ऐसे हजारों चिपटे पूरे

(शरीर में)। हाय... यह... ऐसा करे। समझ में आया? अरे! भाई! इसने कहाँ विगत भव में क्या था, देखा है कब? समझ में आया? अनन्त भव किये। इसने भव में कहीं आत्मा के भान बिना सर्वत्र दुःखी हुआ है। आहाहा! उसमें अन्दर असुर आकर मारे। लोहे के बड़े धगधगते (हथियार लावे)। वह बिच्छू काटते हों (और यह) जीभी खीचें, पैरों के टकड़े करे, चूल्हे में सेंके परन्तु यह वापस शरीर के टुकड़े इकट्ठे हो जायें। जो आयुष्य बँधा है, उसका कम हो नहीं। थोड़े में थोड़ा छोटा पाप किया हो तो दस हजार वर्ष में जाये। दस हजार वर्ष से कम स्थिति नरक की नहीं है। और अधिक जाये तो एक सागरोपम (जाये)। असंख्यात अरब वर्ष का एक पल्योपम, असंख्यात अरब वर्ष का एक पल्योपम। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम इतना काल वहाँ पहले नरक में रहे। नीचे सात नरक हैं, वहाँ अनन्त बार रहा है। भान नहीं होता। अनादि का है, वह रहा कहाँ परन्तु? मोक्ष हुआ था? जो चना जले, वह फिर से उगे? इसी प्रकार आत्मा की दशा मोक्ष हुई हो, वह फिर से अवतरे? चार गति में नरक के दुःख, पशु के दुःख, बिच्छू ऐसे काटे, मार डाले, पशु को देखो न काटे, चीरे। मनुष्यपने में ऐसे दुःख, देवपने में भी दुःख, सर्वत्र दुःख ही है। समझे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मनुष्य, कौन कहता है मनुष्य भी क्या है? यह तो बात की। जितना ऐसे पर के ऊपर का विकल्प उठे; निर्विकल्प आत्मा की तो खबर नहीं। उसे ऐसे जहाँ पर के ऊपर (नजर जाती है तो) यह मुझे मिला, यह मुझे मिला, यह मुझे गया, यह हुआ। ये सब विकल्प राग और विकार और अग्नि है। समझ में आया? क्या होगा यह? वल्लभभाई! इसे खबर नहीं। इस ओर एक आनन्द का धाम पड़ा है प्रभु! वह आनन्द का धाम आत्मा की खबर बिना, यह ऐसे झपट मारता है जहाँ हो वहाँ। यह शुभ और अशुभ विकल्प, राग, वे सब विकार और कषाय की अग्नि है। समझ में आया? वह हर्ष सन्निपातिया दुःखी है और दाँत निकालता है (हँसता है)। दाँत नहीं निकालता? (वह) सुखी है? साथवाला (देखता है कि) अरे! दो घण्टे में या तीन घण्टे में शान्त हो जायेगा। समझ में आया? बत्तीस वर्ष का जवान, वहाँ हम तो

लीमडे थे और अन्दर में सन्निपात हुआ। बनिये का लड़का, जवान, विवाहित और रात्रि में पकड़ा रहे नहीं। बाहर हम लीमड़े मौके से गये थे। पकड़ा रहे नहीं और दाँत निकाले। हाय... हाय! अब सवेरा नहीं पड़ेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : डॉक्टर नहीं मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब डॉक्टर क्या दशा डालते थे? यह डॉक्टर बैठे। इन्होंने इंजेक्शन डाला तो ऊं... ऊं... ऊं हो गया, एकदम। डॉक्टर स्वयं ऐं.. ऐं... हो जाते हैं। बड़ा सर्जन डॉक्टर यहाँ भावनगर का वैद्य सर्जन। दूसरे को कुछ देने गया ऐसे (और कहा), मुझे कुछ होता है। ऑपरेशन करते हुए (कहे), मुझे कुछ होता है। ऐसा हो गया... समाप्त! उसकी देह की स्थिति संयोगी स्थिति है। वह कहाँ स्वभाव वस्तु है उसकी? स्थिति लेकर आया, स्थिति पूरी हुई एकदम गद्दा छूट गया। ऐसे अनन्त बार छूटे हैं, उसमें विशिष्टता क्या थी? आहाहा! उसे नहीं संयोग की चीज़ की खबर, संयोग के लक्ष्य से होते विकारों के दुःख की खबर, उसे विकार बिना की चीज़ कौन हूँ, उसकी तो खबर हो ही कैसी? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ अवधि है न! इस ओर निकाले तो अवधि हट जाये। इसके लिये तो यह बात लगायी है। जहाँ-जहाँ पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, शरीर, माँस, हड्डियाँ, मकान, धूल सब मिट्टी, जहर मिट्टी। उसके ऊपर लक्ष्य करके जहाँ स्वयं है, उसकी नजर करता नहीं। जहाँ स्वयं नहीं, वहाँ अपनी नजर स्थिर की है, वह दुःख की दशा है। समझ में आया? उस दुःख को टालना हो तो कहते हैं कि यह उपाय भगवान बताते हैं। समझ में आया? दुःख तो अनन्त काल से भोग ही रहा है। कौन कहता है जगत में सुखी है? समझ में आया? अरबोंपति, करोड़ोंपति, राजा, सेठिया दुःखी... दुःखी... दुःखी... हाय... हाय...! अरे! मेरा क्या होगा? अन्त में ऐसा हो जाये, हाय.. हाय.. क्या होगा? एक व्यक्ति बनिया चतुर था, मरने पड़ा और कुछ किया नहीं। सब देखने जाये तो आँख में से आँसू (बहते जायें), रोवे। खबर पड़ी कि अब हो गया, जाऊँगा कहाँ? हाय... हाय..! जिन्दगी में चतुर कहलाये और चतुराई के कारण गाँव में

समय गँवाया। जहाँ हो वहाँ बैठने आओ, आओ बैठने। क्या कहलाता है, तुम्हारे मर जाते हैं तब बैठाने में? बैठना, उसमें बैठक में सर्वत्र ले गये थे सर्वत्र। तुम्हारी सभा में काम है। बैठक है सब। परन्तु मर गया उसे पर के लक्ष्य के राग के हर्ष में मर गया, सुलग गया, कहते हैं। समझ में आया?

देख भाई! तुझे सुख चाहिए हो तो इस दु:ख को छोड़ने का उपाय एक है। यह वस्तु भगवान आत्मा है, वह तो आनन्दस्वरूप है न प्रभु! वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही वह आत्मा है, नित्यानन्द प्रभु है। उसका अन्तर ज्ञान कर... ज्ञान कर... ज्ञान कर... इसके बिना तुझे कभी दु:ख टलेगा नहीं और ज्ञान के काल में राग के अभावरूप परिणमन कर, वही आत्मा को मुक्ति और सुख का उपाय है, दूसरा कोई उपाय है नहीं, ऐसी श्रद्धा कर। समझ में आया? यह क्रियानय और ज्ञाननय।

यह धर्म के बहाने मर गये हैं, ऐसे के ऐसे। धर्म के बहाने यह दया पालन की और व्रत पालन किये, भक्ति की, पूजा की, वह तो राग है, वह राग पुण्य है; धर्म नहीं। वह तो पाप से बचने के लिये जब भाव न हो तो ऐसा भाव होता है। वह दु:खरूप है। वह कषाय का कण है, वह आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा पुण्य और पाप के राग बिना की चीज़ है, उसकी दृष्टि और ज्ञान करके ऐसे ज्ञान और दृष्टि की तो राग से हटा। ऐसा अनुभव, वह अशुद्ध राग के नाश बिना नहीं होता और अपना अनुभव अशुद्ध राग टले बिना नहीं होता। अशुद्ध राग टले बिना अनुभव नहीं और अनुभव बिना अशुद्ध राग टले नहीं। समझ में आया? यह 'ज्ञान क्रियाभ्याम मोक्ष'। लो! यह ज्ञान और क्रिया। आहाहा! भारी कठिन बात।

मुमुक्षु : आत्मा का ज्ञान और शरीर की क्रिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की क्रिया? राग की क्रिया नहीं, शरीर तो धूल है, यह तो कहाँ गयी? आहाहा! अरे! यह तो (संवत्) १९९० के वर्ष में मैंने बात की थी। गुलाबचन्दजी थे न? इन रतनचन्दजी के गुरु थे न? गुलाबचन्दजी थे। फिर चोटीला (में) मिले थे न! अभी तो १९९० में इकट्ठे थे न? कभी उतरते नहीं थे। (उस समय) इकट्ठे उतरे। मैंने एकान्त में बात की। कहा, ज्ञानक्रिया अर्थात् क्या, खबर है? आत्मा

का ज्ञान और राग का टलना, इसका नाम ज्ञानक्रिया। बात सच्ची लगती है, ऐसा कहा, भाई! हों! बात सच्ची परन्तु यह कोई कहता नहीं, कोई नहीं कहता, इसलिए क्या कहीं वस्तु बदल जायेगी? कहा।

यह रतनचन्दजी के गुरु नहीं थे? गुलाबचन्दजी और वीरजी दो थे। १९९० में जब चातुर्मास में जाने का था। राजकोट। तब मिले थे। तब बहुत आदर किया था। ऐसे एकान्त में बात की थी मूर्ति की बात की थी। शास्त्र में मूर्ति है, कहा। यह मूर्ति उत्थापित की है। बात सच्ची लगती है। हम ऐसा जानते हैं कि मूर्ति है ऐसा कहते थे। समझ में आया? परन्तु जाना कहाँ? क्या करे? पचास-पचास वर्ष जहाँ मुँडाये हों, उसमें एक बात बदले तो कहे, क्या हो गया? महाराज! ऐंई! शान्तिभाई! मेरे यह दो बातें हुई थीं, हों! १९९० के वर्ष में जब सदर में चातुर्मास को जाना था। तुम थे न? केवलचन्दजी अभी गुजर गये बेचारे, हों! यह रूपचन्दजी थे और केवलचन्दजी थे। जवान था तब। बत्तीस वर्ष हो गये न? केवलचन्द जवान थे। कच्छ में गुजर गये। तब बात हुई थी। कहा, देखो! मार्ग ऐसा है। परन्तु क्या करे? कहाँ जाना कहाँ? पचास-पचास वर्ष प्ररूपणा करके मनवाया, माना। गुरुपना माना हो। बात निकली दूसरी। शान्तिभाई!

इसमें दूसरे देवला तो काम नहीं करते, ऐसा कहते हैं। परन्तु सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता का भाव, वह भी शुभराग है। आहाहा! समझ में आया? कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की मान्यता का भाव तो मिथ्यात्व और तीव्र राग है, वह तो महापाप और दु:खरूप है, परन्तु सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की, आये बिना रहता नहीं। ऐसा शुभराग भी पुण्यभाव है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि धर्म उसे कहते हैं... अरे! एक बार इसे सुन। इसे पचास हजार या लाख की आमदनी का कोई कहे तो उसे स्वाद (रस) से सुने। कहाँ (मिलता है)? धूल में अब क्या है? सुन न अब। क्यों प्रेमचन्दभाई! इनके पुत्र को देखो न, करोड़ों रुपये हैं। दो-ढाई करोड़। पूनमचन्द, आहाहा! सब बुलावे। अब वहाँ हक में धूल में भी नहीं। जब वह खून चढ़ता है, क्या कहलाता है वह? ब्लडप्रेशर। ऐं... ऐं...

हो जाता है। परन्तु अब ब्लडप्रेशर ही चढ़ा है सदा। सुख कहाँ वहाँ एक भी समय में है? इसका बाप मिलने जाये तो भी फुसरत नहीं वहाँ। बैठो बापू! अभी हमारे बहुत काम है। दुःखी... दुःखी... दुःखी... है। राग और द्वेष, विकल्प, पुण्य और पाप के भाव। पुण्य तो कभी करता होगा, बाकी तो पूरे दिन पाप। आहाहा! अरे! आत्मा! भाई! तुझे ऐसा अवतार मिला, बापू! यह दुःख में से निकलने के, भवभ्रमण टालने का अवतार मिला। इस समय तेरे ज्ञान की कला नहीं समझे तो कब समझेगा? समझ में आया? मर गया। उस समय ऐसा हुआ कि, आहा! अरे! यहाँ से कहीं जाऊँ और अब कहीं रास्ता निकले न तो करूँ, हों! जब निकलने का अवसर आया तो वहीं का वहीं घुस गया वापस।

(यहाँ) कहते हैं, **रागादि अशुद्ध परिणति का विनाश शुद्ध स्वरूप के अनुभव सहित को लिए हुए है, ऐसा अत्यन्त मित्रपना...** भगवान आत्मा! भले शरीर हो, अरे! कितना ही राग भी हो परन्तु अन्तर के स्वभाव की दृष्टि करके राग से पृथक् होकर आत्मा का अनुभव करना, वही आनन्ददायक और आनन्द का कारण है, पूर्ण आनन्द का कारण है। कहो, समझ में आया इसमें? **उनका पात्र हुआ है...** लो! इसका नाम वह पात्र हुआ, लायक हुआ, मोक्ष के लिये अब पात्र हुआ।

ज्ञाननय-क्रियानय का एक स्थानक है। भगवान आत्मा अपने सन्मुख के लक्ष्य से जो ज्ञान हुआ और राग के लक्ष्य से छूटे और अस्थिरता टली, ऐसा जो ज्ञान और शुद्धता का मार्ग, उस ज्ञान और क्रियानय का एक स्थानक है। इन दोनों का एक स्थानक है, ऐसा कहते हैं। ज्ञाननय और क्रियानय का एक स्थानक है, ऐसा कहते हैं। दो नहीं। इस ज्ञान स्वरूप का जानना और राग का—अस्थिरता का टलना, दो होकर एक स्थानक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि दोनों नयों के अर्थ से विराजमान है। अहो! संसार में रहे होने पर भी बाहर में दिखाई दे, छह खण्ड के राज में दिखाई दे। यह भरत चक्रवर्ती आदि या इन्द्र आदि अन्तर में दृष्टि में आत्मा है। हम आत्मा हैं, हम आत्मा है, हम शुद्ध चैतन्य हैं, हों! यह राज हमारा नहीं, यह छियानवें हजार इन्द्राणियाँ, देवियाँ हमारी नहीं,

हों ! हम इनके नहीं और ये हमारे नहीं। समझ में आया ? यह देह जड़ की है, हमारे में नहीं, राज में पड़े, उसकी दृष्टि बदल गयी। जुगराजजी ! आहाहा !

ऐसे राजकुंवर, हों ! राजकुंवर। हम हमारे स्वरूप की साधन दृष्टि में हैं। यह शरीर, वाणी, मन तो हमारे तीन काल में नहीं। हमारे हों वे पृथक् कैसे पड़ें ? और पृथक्, वे हमारे कैसे हों ? तथा पुण्य और पाप के भाव भी हमारी शाश्वत् चीज़ नहीं। वह नयी की हुई है, वह नया किया हुआ, वह हमारा स्वरूप नहीं। वे राग-द्वेष हमारे हों तो टले नहीं और यदि हमारे नहीं तो वे हमारे स्वभाव में हैं नहीं। समझ में आया ? अरे ! आठ-आठ वर्ष की लड़कियाँ ऐसा समझती हैं। समझ में आया ? समझ में आया या नहीं ?

आत्मभान। यह तो एक साधारण एक जातिस्मरण हुआ तो लोग कितने देखने निकलते हैं ! अपने वजुभाई के पुत्र की पुत्री। यहाँ आयी थी न ? पाँच वर्ष की। कहे, जूनागढ़ की हूँ, गीता हूँ। वहाँ तो लोग मानो कि, आहाहा ! मैं यह रहा। गीता कहाँ है ? कहा। यह रही। वहाँ गीता, उसके शरीर को तो जला दिया। अभी तो भान बिना, हों ! यह ज्ञान बिना। एक जाति मात्र भव की। वहाँ मैं गीता थी, गीता की माँ कहती थी कि तुझे छूत का रोग हुआ था। गीता की माँ कहती थी। मुझे ऐसी खबर है कि मैं बुखार में मर गयी हूँ। ऐसा बोलती थी। मैं बुखार में मर गयी। गीता की माँ कहती थी कि छूत का रोग हुआ था, ऐसा बोलती।

यहाँ तो राजुल नाम हुई न ? यहाँ आयी थी। आठ दिन रही थी। समझ में आया ? अब यह तो एक भव की साधारण बात (हुई)। यह भगवान आत्मा जो ऐसे अनन्त भव को भूलकर अपना स्वभाव क्या है, उसकी जाति की जाने, उसकी सच्ची जाति (जाने), वह सच्चा जातिस्मरण कहलाता है। समझ में आया ? ऐसे तो अनन्त अवतार किये। लो ! तिथि से तिथि मिल रहीं, हों ! वहाँ वापस जिस समय मर गयी थी (संवत्) १९१६ के वर्ष में, म्युनिसिपलटी में देखा। गीता गोकुलदास यहाँ नौ महीने और सत्रह दिन में यहाँ जन्मी। वहाँ माता के गर्भ में। तुरन्त ढाई वर्ष में याद आया। ढाई वर्ष में, वहाँ ढाई वर्ष में मर गयी। ढाई वर्ष में कहे, मैं गीता हूँ। बुआ मैं गीता हूँ, बुआ तुम्हारे जैसी मेरी

माँ वहाँ है। लड़का करके निकाल दिया। फिर इस बार जाकर निश्चित (किया)।

हमारे हिम्मतभाई यह रहे, देखो! हिम्मतभाई ने यह सब बात (निश्चित की है)। यह तो होशियार व्यक्ति न! यह तो उसकी वहाँ तक परीक्षा की है कि वहाँ तू जायेगी तो तू तेरी माँ को पहचानेगी? तेरे बापू को पहचानेगी? तेरे काका को पहचानेगी? तू वहाँ गीता को पहचानेगी? गीता को पहचानेगी क्या कहते हो? गीता तो मैं हूँ। शान्तिभाई! यह पण्डितजी ने ऐसा पूछा। तू वहाँ तेरे पापा को पहचानेगी? तेरी माँ को? तेरे काका को? तेरी दुकान को? हाँ। वहाँ गीता को पहचानेगी? गीता को पहचानेगी क्या कहते हो? गीता तो मैं हूँ। वहाँ कहाँ गीता थी, उसे अब पहचानूँ। कहो, समझ में आया? पाँच वर्ष में जवाब दिया, एकदम! ऐसा नहीं कि, ऐं... ऐं... करते हुए (जवाब दिया)। इतना तो एक साधारण भव का (जातिस्मरण)। यहाँ जूनागढ़ की लुहार की पुत्री। यहाँ वजुभाई के पुत्र की पुत्री हुई, लो! दोनों बाजू के अपने मुमुक्षु हैं। उसकी माँ भी बिछिया की है। मणीलाल माणेकलाल। दोनों यहाँ के मुमुक्षु हैं न! कहो, समझ में आया? ऐसा तो एक साधारण अज्ञान में मिथ्यात्व में (होता है)। समझ में आया? वैष्णव में से आयी है, मिथ्यादृष्टि है। वहाँ तो लड़की थी और यहाँ लड़की हुई है। माया का भाव साथ में था तब स्त्री होती है, लड़की होती है वरना नहीं होती। तथापि उसे यहाँ ढाई वर्ष में याद आ गया। मैं यहाँ थी। यह आत्मा की साधारण भव की इतनी खबर पड़ती है, वह कहीं जन्म-मरण को टालने का ज्ञान नहीं है, वह कहीं धर्म का ज्ञान नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आस्तित करे उसे आस्था हो। परन्तु आस्था हो उसमें कुछ धर्म हुआ? धर्म तो आत्मा अखण्डानन्द त्रिकाल वह मैं हूँ। यह भटकने के विकार में भी मैं तो ऐसा का ऐसा त्रिकाल शुद्ध रहा हूँ। समझ में आया?

ऐसे प्रत्यक्ष देखते हैं कि यह भव है यहाँ से आता है, यहाँ से जाता है, यह सब। शान्तिभाई! आँखें बन्द करके लगा यह तो। कहाँ गये कान्तिभाई? आहाहा! भाई! तू तो सत् शाश्वत् वस्तु है। वह कहीं इतने संयोग में आया, इतना तू नहीं। ऐसे तो अनन्त बार

शरीर आये और गये। अनन्त बार नकर के, पशु के, चींटी के, कौवे के, कुत्ते के, देव के, सेठिया के और राजा के अनन्त बार आये और गये परन्तु तेरी चीज़ तो उससे अत्यन्त भिन्न है। ऐसे आत्मा को पहिचानकर अन्दर में राग-द्वेष के विकारी भाव को भी उसमें से हटकर और स्वरूप की दृष्टि का अनुभव करना, वह एक ही मुक्ति और धर्म का कारण है। कहो, समझ में आया?

यह २६८ (श्लोक पूरा हुआ)। चौथा श्लोक था न?

गाथा - २६८

(वसन्ततिलका)

चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।
आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥५-२६८॥

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'तस्य एव आत्मा उदयति' [तस्य] पूर्वोक्त जीव को, [एव] अवश्यकर [आत्मा] जीवपदार्थ, [उदयति] सकल कर्म का विनाशकर, प्रगट होता है; अनन्त चतुष्टयरूप होता है। और कैसा प्रगट होता है? 'अचलार्चिः' सर्व काल एकरूप है केवलज्ञान-केवलदर्शन तेजपुंज जिसका-ऐसा है। और कैसा है? 'चित्पिंडचंडिम-विलासिविकासहासः' [चित्पिण्ड] ज्ञानपुंज के [चण्डिम] प्रताप की [विलासि] एकरूप परिणति-ऐसा जो [विकास] प्रकाशस्वरूप, उसका [हासः] निधान है। और कैसा है? 'शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः' [शुद्धप्रकाश] रागादि अशुद्धपरिणति को मेटकर हुआ जो शुद्धत्वरूप परिणाम, उसकी [भर] बार-बार जो शुद्धत्वरूप परिणति, उससे [निर्भर] हुआ है [सुप्रभातः] साक्षात् उद्योत (अनन्त चतुष्टय अथवा सम्यग्दर्शन) जिसमें, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार रात्रिसम्बन्धी अन्धकार के मिटनेपर, दिवस उद्योतस्वरूप प्रगट होता है; उसी प्रकार मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति को मेटकर, शुद्धपरिणाम विराजमान जीवद्रव्य, प्रगट होता है। और कैसा है? 'आनंदसुस्थितसदास्खलितैक-रूपः' [आनन्द] द्रव्य के परिणामरूप अतीन्द्रिय सुख के कारण, [सुस्थित] जो आकुलता से रहितपना, उससे [सदा] सर्व काल [अस्खलित] अमिट है [एकरूपः] तद्रूप सर्वस्व जिसका, ऐसा है।॥५-२६८॥

कलश - २६८ पर प्रवचन

सुप्रभात। नूतन वर्ष के दिन में यह बहुत बार वाँचन करते हैं।

चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।

आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ।।५-२६८।।

दो बातें हैं। इसमें सम्यग्दर्शन की भी बात है और केवलज्ञान की दोनों बातें हैं। दोनों हैं। समयसार नाटक में सम्यग्दर्शन से उतारा है। समयसार नाटक में इसमें सम्यग्दर्शन उतारा है (घटित किया है)। उसमें चतुष्टय लिखा है। समझ में आया? बनारासीदास ने इस श्लोक को सम्यग्दर्शन में ही उतारा है। '**चित्पिण्ड**' है न? '**चित्पिण्ड**' देखो! सम्यक्त्व की महिमा। ऐसा ही उतारा है। इस श्लोक का अर्थ (ऐसा ही किया है)।

'**जाके घट अंतर मिथ्यात्व अंधकार गयौ**' जिसके घट में राग और पुण्य और शरीर मैं हूँ—ऐसा मिथ्यात्व टल गया है और मैं ज्ञानानन्द शुद्ध स्वरूप हूँ—ऐसा सम्यग्दर्शन सूर्य उगा है, उसे सुप्रभात उगा, उसे प्रभात, प्रभात हुआ अब। आहाहा! अब उसे नया वर्ष लगा, मोक्ष की शुरुआत हुई, इसका नाम नया वर्ष लगा। '**जाके घट अंतर मिथ्यात्व अंधकार गयौ, भयौ परगास सुद्ध समकित भान कौ**'अन्दर आत्मा चैतन्य का नूर—चैतन्यसूर्य है, चैतन्य का सूर्य भगवान है। ऐसा अन्तर में भान हुआ, वह शुद्ध समकित भानु उदित हुआ, सूर्य उदित हुआ। शुद्ध समकितरूपी सूर्य उदित हुआ। समझ में आया?

लोग भी नहीं कहते? यह तुम्हारे लगन-बगन (विवाह) हो तब। 'सोना सामो रे सूरज उग्यो' ऐसा नहीं कहते? धूल में भी नहीं सोना। है तो सूर्य, वह का वह है। अज्ञान में हर्ष के गीत में हर्ष-सन्निपात में सब बोल रहे हैं। बराबर होगा? हर्ष-सन्निपात का बाप है वहाँ। लाख, दो लाख खर्च करना हो और हर्षित हो लड़का एक का एक हो और साठ वर्ष में हुआ हो और उसमें भी वापस उसका विवाह हो और अपनी अस्सी वर्ष की उम्र, उसकी बीस वर्ष की और अच्छे घर में आया हो तो दो, पाँच करोड़ की कन्या, देख लो! यह तो मैं चौड़ा और गली सकड़ी। शान्तिभाई! कहते हैं, यह उसके सूर्य उस काल में अस्त हो गया है। तुझे किसका हर्ष होता है? किसका हर्ष आया तुझे?

यह तो आत्मा अन्दर में शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का भान (हुआ तो) हर्ष सूर्य उगा, कहते हैं। भानुप्रकाश हुआ। चैतन्य सूर्य आत्मा है। शरीर, वाणी, मन रहित है। पुण्य-पाप के मैल के भाव से भी (भिन्न है), ऐसा भान (हुआ)। '**जाकी मोहनिंद्रा घटी**' यह

मोहनी की रात्रि निद्रा घट गयी, '**ममता पलक फटी**' आँखें ऐसी फटी, ममता की पलक फट गयी। **जान्यौ जिन मरम**' जिसने अपना '**मरम अवाची भगवानकौ**' भगवान आत्मा का मर्म जाना। यह तो शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द ही है, ऐसा सम्यग्दर्शन जहाँ भान हुआ। '**जाकौ ग्यान तेज बग्यौ**' जिसका ज्ञान तेज अन्दर ज्ञात हुआ, बढ़ा।

'**उद्दिम उदार जग्यौ**' वीर्य जगा। चारों ही इसमें घटित किये हैं। '**लगौ सुख पोख**' अब आत्मा के आनन्द का पोषण करने लगा। आत्मा की श्रद्धा हुई कि मैं तो आनन्द हूँ। उसमें स्थिरता करने लगा। '**लगौ सुख पोख समरस सुधा पानकौ**' आत्मा निर्विकल्प आनन्द का पान करने लगा। '**ताही सुविच्छनकौ संसार निकट आयौ**' ऐसे समकिती विचिक्षण जीव, उसे विचिक्षण कहते हैं, उसे चतुर कहते हैं; बाकी सबको पागल कहते हैं। शान्तिभाई! यह सब वकालत के पढ़े हुए और यह सब क्या कहलाता है तुम्हारा? पठन की कलायें और सबके पन्ना-हीरा- माणेक की कलायें, वे सब पागल हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पागल की सलाह लेने लोग आते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल की सलाह पागल में पागल न आवे तो कौन आवे? पागल के अस्पताल में सब पागल ही इकट्ठे हुए होते हैं। समझ में आया? क्या होगा इसमें? बालचन्दभाई! यह भाई होशियार व्यक्ति कहलाते हैं, देखो! इनके घर में।

'**लगौ सुख पोख समरस सुधा पानकौ। ताही सुविच्छनकौ संसार निकट आयौ**', अब इसे एक दो भव में मोक्ष होने की तैयारी है। '**पायौ तिन मारग सुगम निरवानकौ।**' देखो! वह निर्वाण का मार्ग पाया। उसका नाम सूर्य उगा। यह बाहर के धूल के सूर्य नहीं। वहाँ पाँच लाख पैदा हों तो (कहे), रखो लापसी में आंधण। उसमें क्या हुआ परन्तु तेरे घर में? तेरे घर में आयी ममता। पैसे तो वहाँ रहेंगे। कहीं तेरे पास आनेवाले हैं? घुस जानेवाले हैं अन्दर? मुझे आये, यह ममता तेरे पास आयी। ममता आयी, उसमें लापसी का आंधण किसका रखा तूने? समझ में आया? ओहो! आत्मा चैतन्यस्वरूप। मेरी निधि मैंने मेरी परखी। ऐसा जहाँ भान हुआ, उसके घर में लापसी का आंधण रखाया। वल्लभभाई! दुनिया से यह तो भगवान की पद्धति दूसरी है, भाई! समझ में आया?

कहते हैं **'तस्य एव आत्मा उदयति'** शब्द है न? **खण्डान्वयसहित अर्थ—'तस्य एव आत्मा उदयति' पूर्वोक्त जीव को,...** पूर्व में कहा उसे कि जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा भान हुआ है, और विकाररहित है, ऐसी शुद्ध परिणति शुरु हुई है। ऐसे धर्मी जीव को **अवश्यकर जीवपदार्थ, सकल कर्म का विनाशकर, प्रगट होता है;...** उसे केवलज्ञान प्रगट होता है, ऐसा यहाँ लेना चाहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा... पशु को, ढ़ोर—पशु होता है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। पशु! समझ में आया? भगवान के समवसरण में सिंह और बाघ और नाग जाते हैं, उन्हें ऐसा भान हो जाता है। आहा! हम तो चैतन्य के तेज हमारा अलग है। यह विकार अन्धकार है। देह, वाणी भी पर जड़। उसकी गुफा में निराला चैतन्यतत्त्व विराजता है। ऐसे सिंह और बाघ, नाग को भी समवसरण में भान हो जाता है। समझ में आया? देखो! हाथी, देखो! हाथी है न? हाथी देखो! रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी, भरत और शत्रुघ्न, ये चारों हाथी के ऊपर जाते हैं। वह रावण का त्रिलोकमण्डन हाथी है। जिसे... समझ में आया? क्या कहलाता है? मधुवन। वह है न सम्मेदशिखर, उसका मधुवन है न? उसमें से रावण को वह हाथी मिला था। त्रिलोकमण्डन! जिसके घर में चौरासी लाख हाथी। उनका यह बड़ा हाथी—नायक था, पट्टहाथी। पट्टहाथी।

रामचन्द्रजी और लक्ष्मण ने जब रावण को जीता और सीताजी को घर में लाये, तब यह हाथी वहाँ से अयोध्या लाये थे। लंका में यह हाथी था, उसे अयोध्या में लाये। रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी। समझ में आया? तब उस हाथी पर बैठकर मुनियों के दर्शन करने जाते हैं, देखो! उसके ऊपर भरत आदि, उसमें से भरत नीचे उतरकर... भरत को वैराग्य हो जाता है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार भाई हैं। भरत को वैराग्य होकर मुनि हो जाते हैं।

हाथी को जातिस्मरण होता है, अरे! मैं और यह भरत पूर्व भव में दोनों मित्र थे। यह भरत दीक्षित होता है। अरे! मुझे तिर्यंच का अवतार मिला। मैंने माया की, कपट किया (तो) यह अवतार (मिला)। पूर्व भव का जातिस्मरण होता है। देखो! जाते हैं तब न, वापस मुड़ते हैं, तब सब नीचे उतरे, यहाँ देखो! यह श्रृंगार-बृंगार उतारकर। हाथी वह का वह है। हाथी इनकी ओर। उस हाथी के पीछे है न? हाथी इनकी ओर।

वही हाथी है। वस्त्र (आदि) सब निकाल दिया। पन्द्रह-पन्द्रह दिन के उपवास और आत्मा के आनन्द में, ध्यान में रहता है। अरे! हमने सही अवसर में काम नहीं किया, अब हाथी का भव मिला। यह राजकुमार दीक्षित होता है और मोक्ष में जायेगा। हमें यह हाथी का भाव... आहाहा!

फिर सब लोग पन्द्रह-पन्द्रह दिन में वहाँ आगे अयोध्या में लड्डू और चूरमा लेकर उपस्थित होते हैं। पन्द्रह दिन के उपवास में हो तब लेता है। आत्मा के आनन्द में मस्त रहता है, आत्मा के आनन्द में मस्त रहता है। समझ में आया? उस पशु के भव में, हों! आहाहा! किसे काम था? क्या काम करता था? धूल भी करता नहीं, तीन काल तीन लोक में कोई आत्मा एक सली भी घूमा नहीं सकता। राग और द्वेष, पुण्य और पाप करे, बाकी कोई सली घुमाने की सामर्थ्य नहीं। परद्रव्य को क्या करे? परवस्तु उसके कारण से हरती-फिरती और आती-जाती है। मूढ़ मान बैठता है कि मैंने ऐसा किया और मैंने ऐसे घुमाया और मैंने उथल-पाथल किया। मान न, पागल की भाँति कचरा उठाया वैसे मान न।

मुमुक्षु : कचरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : माने। उठावे कौन? मानता है वह। समझ में आया? ऐसा होगा या नहीं? प्रवीणभाई! गजब भाई! स्त्री बहुत होशियार हो तो घर में ऐसा किया और मैंने ऐसा किया और चाकला किया, अमुक किया, यह व्यवस्थित किया। धूल भी किया नहीं, सुन न! किया है तूने मिथ्याभ्रम और राग-द्वेष, लो! इसके अतिरिक्त यह सब सामग्री तूने बसायी नहीं और तूने रखी नहीं और तेरी है नहीं। उसके कारण से आयी और उसके कारण से रही, हराम तुझसे कुछ आया हो तो। समझ में आया? परन्तु भान (नहीं), पागल हुआ है न पागल! आहाहा!

कहते हैं, भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! तू तो आत्मा है न! उस आत्मा में क्या होगा? आत्मा में क्या होगा? आत्मा में तो ज्ञान हो, आनन्द हो, शान्ति हो, श्रद्धा हो, वीतरागता हो, अविकारी हो, वह आत्मा में हो। क्या आत्मा में यह धूल होती है? और आत्मा में राग-द्वेष होते हैं? राग-द्वेष तो विकार कृत्रिम उपाधि है। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा जीव पदार्थ जहाँ ज्ञाननय और क्रियानय से तैयार हुआ (तो) **सकल कर्म का विनाश....** बस! क्रम-क्रम से विकार और कर्म का अभाव होकर आत्मा प्रगट होता है।

अनन्त चतुष्टयरूप होता है। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से कहें तो आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, वीर्य है, उसकी श्रद्धा, अनुभव करनेवाला होता है। ऐसा जो अनादि से माना था कि मैं तो यह शरीर, वाणी, कर्म और पुण्य-पाप के भाव और अल्पज्ञ दशा हूँ, ऐसा जो माना था, वह सम्यक् आत्मा का भान होने पर मैं तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्यवाला हूँ। आहाहा! समझ में आया? मैं यह रागवाला नहीं, शरीरवाला नहीं और अल्पज्ञ दशा—हीन दिखाई दे, उतना भी मैं नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! परन्तु उसे मार्ग की खबर नहीं मिलती, सुनने को न मिले। हैरान हो-होकर मर जाये और वापस कहे कि उसे सुख के रास्ते में हैं।

मुमुक्षु : मजे में हो तो ऐसा न कहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मजे में नहीं। क्या मजे में है? किसे कहना मजा? राग होना, उसे मजा कहना? विकल्प होना, उसे मजा कहना? मजा तो भगवान आत्मा अन्दर में है। उसकी तो इसे श्रद्धा की खबर नहीं। श्रद्धा की खबर नहीं होती, भान नहीं होता, कहाँ पड़ा हूँ मैं? कहाँ मेरा आनन्द है, उसकी तो खबर नहीं। उसे मजा किसका हो गया? आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा प्रगट हुआ। उसे दो ही श्रद्धा लेनी है। आत्मा प्रगट हुआ अर्थात् सम्यक् भान हुआ, वहाँ आत्मा प्रगट हुआ। जिस श्रद्धा के राग-द्वेष, पुण्य-पाप और अल्पज्ञ और यह मैं, ऐसा माना था, उस श्रद्धा में गुलांट खाकर आत्मा को जाना (तो) आत्मा प्रगट हुआ। अरे! मैं तो अनन्त ज्ञान, बेहद दर्शन और बेहद आनन्द और बेहद वीर्यवाला हूँ। मुझमें तो अनन्त अपार आनन्द आदि पड़ा है, वह मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा! और ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट हुए पश्चात् स्वरूप में सावधानीरूप से जहाँ लीनता हुई, उसे फिर केवलज्ञानरूपी अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए। जो शक्ति के सत्त्व के स्वभाव में माने थे, उस मान्यता में और एकाग्र होने से दशा में केवलज्ञान हुआ। एक समय में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द। समझ में आया?

कल का लकड़हारा आज का केवली हो। लकड़ियाँ बेचता हो। ऐसे जहाँ भगवान का सुना, भाई! तू लकड़हारा नहीं, तू कर्मवाला नहीं, तू रागवाला भी नहीं। तब (कौन है) ? कि तू तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दवाला है। समझ में आया? ऐसा जहाँ समवसरण में सुनता है, आहा! मेरी शुद्धि इतनी!! मेरी बात भगवान के मुख में निकलती है। यह सुनने पर अन्दर उतरता है। भान होकर अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) पा जाता है। समझ में आया? उसे तो खबर नहीं होती। अभी तो खबर नहीं होती कि मुझे कहाँ रहना और स्थिर होना है? मुझे क्या करने से मेरा हित होगा?

यहाँ तो कहते हैं हित का भान हुआ है, हित के पंथ में लगा है, उसे अनन्त चतुष्टय प्रगट हो जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा जहाँ अनन्त चतुष्टयस्वरूप मैं हूँ, अनन्त ज्ञान, बेहद दर्शन, आनन्द (मैं हूँ)। उसे अल्पज्ञान का भी जहाँ अभिमान नहीं, अल्पज्ञान का विकास है, उसका अभिमान नहीं। पूरी चीज़ जहाँ दृढ़ता में बैठी, उसे उसका अभिमान क्या? तो फिर राग मेरा और संयोग मेरा, यह तो अभिमान समकिती को होता नहीं। आहाहा! और अज्ञानी को तो क्षण में और पल में मैं... मैं... मैं... मैं... मैं... मैं... मैं... परन्तु कहाँ तू? जहाँ स्वयं नहीं वहाँ मैं। राग मैं, विकार मैं, शरीर मैं, स्त्री मैं, यह देश मैं, यह गाँव मैं, यह पुत्र मैं, स्त्री मैं, लड़का मैं... क्या है परन्तु यह? कितने वाळा रखे तूने? मैं स्त्रीवाला, पुत्रवाला, शरीरवाला, रागवाला, वाळा सब। एक भगवान आत्मा अनन्त ज्ञानवाला अर्थात् स्वरूप ज्ञानमय हूँ, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह जीव प्रगट हुआ। वह जीव अंधेरे में था, वह प्रगट हुआ। आहाहा! वह प्रगट हुआ, उसकी एकाग्रता होने से केवलज्ञानरूप से सिद्धपद प्रगट हुआ। केवलज्ञान, केवलदर्शन (अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए)। समझ में आया?

और कैसा प्रगट होता है? 'अचलार्चिः' सर्व काल एकरूप है केवलज्ञान-केवलदर्शन तेजपुंज जिसका - ऐसा है। वह जहाँ केवलज्ञान प्रगट हुआ, (अब) ऐसी की ऐसी दशा अनन्त काल रहेगी। केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह फिर से वापस मुड़ेगा नहीं। जलहल ज्योति चैतन्य की शक्ति में से प्रगट हुई। यह पीपर के दाने में चौसठ पहरी की चरपराहट जो भरी थी, वह जहाँ बाहर आयी, (वह) ऐसी की ऐसी रहेगी। इसी

प्रकार भगवान आत्मा में केवलज्ञान पूर्ण... पूर्ण पड़ा था, उसकी प्रतीति और रमणता द्वारा दशा प्रगट हुई। जलहल ज्योति सादि-अनन्त केवलज्ञान में रहनेवाला। इसका नाम मोक्ष कहा जाता है। समझ में आया ?

केवलदर्शन का तेज जिसे प्रगट हुआ, कहते हैं। पहला शुरुआत में शक्ति में केवलज्ञान और केवलदर्शन जो श्रद्धा में लिया था, उसमें स्थिर होने से उसकी दशा में केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट हुआ। वह साधक का सिद्ध हो गया। यह साधक-साध्य (अधिकार) है न ? यह साधक स्वरूप का होने से वह साध्य अर्थात् सिद्धदशा उसे प्रगट हो गयी। परन्तु इस प्रकार साधक हो उसे सिद्ध होता है, इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से सिद्ध होने का उपाय नहीं है। इसकी विशेष बात आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ११, सोमवार, दिनांक-०३-०१-१९६६, कलश-२६८, २६९ प्रवचन-२८९

'साध्य-साधक अधिकार' समयसार-कलश पाँचवाँ कलश चलता है। फिर से देखो! **'तस्य एव आत्मा उदयति' पूर्वोक्त जीव को, अवश्यकर जीवपदार्थ, सकल कर्म का विनाशकर, प्रगट होता है;...** क्या कहते हैं? जो कोई यह आत्मा शुद्ध स्वरूप पवित्र अखण्ड आनन्द है, ऐसी जिसने अन्तर दृष्टि, ज्ञान और लीनता की है। पूर्वोक्त, ऐसा। पूर्व में जो कहा हुअ साधकपना। समझ में आया? आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म, शरीर से रहित अकेला शुद्ध, अखण्ड आनन्द है—ऐसी दृष्टि और ज्ञान और लीनता की है, ऐसे साधकभाव द्वारा अवश्य जीव पदार्थ प्रगट होता है। जीव पदार्थ की पूर्ण दशा अवश्य प्रगट होती है।

अनन्त चतुष्टयरूप होता है। यह आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य—इसरूप होता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शनरूप से कहें तो आत्मा शुद्ध है, ऐसी दृष्टि करने से अन्तर में अनन्त चतुष्टयमय आत्मा है, ऐसा श्रद्धा, ज्ञान में प्रतीति होती है। समझ में आया? **और कैसा प्रगट होता है? 'अचलार्चिः' सर्व काल एकरूप है... 'अचल', 'अर्चिः'** अर्थात् **केवलज्ञान-केवलदर्शन तेज... 'अचल'** अर्थात् एकरूप तीनों काल। वस्तु देखो तो एकरूप त्रिकाल है, ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर भान होता है और स्वरूप में साधकरूप से जाने पर पूर्णानन्द में अनन्त चतुष्टय वर्तमान दशा में कायम रहे, इस प्रकार से प्रगट होते हैं। समझ में आया? **केवलज्ञान-केवलदर्शन तेजपुंज...** यह **'अर्चिः'** की व्याख्या की है। **'अचल'** रहता है अर्थात् सर्व काल रहता है, ऐसा। समझ में आया? यह वहाँ तक आया था। खबर है? कहाँ तक आया था?

और कैसा है? कल यहाँ तक आया था। **'चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासः' ज्ञानपुंज के प्रताप की...** कैसा है आत्मा? ज्ञानपुंज है आत्मा। समझ में आया? अकेला प्रकाश चैतन्य ज्ञान का पुंज आत्मा है। उसका प्रताप **'चण्डिम'** अर्थात् उसका प्रताप। उससे **एकरूप परिणति... 'विलासि'** एकरूप अवस्था, **ऐसा जो 'विकास' प्रकाश-स्वरूप...** ऐसी जो प्रगट दशा, उसका निधान आत्मा है, ऐसा आत्मा पर्यायरूप से प्रगट होता है। कहो, समझ में आया? दृष्टि में ले तो आत्मा केवल—अकेला ज्ञान और

आनन्दरूप है, ऐसा निधान दृष्टि में प्रगट होता है। समझ में आया? और उसकी परिणति वर्तमान प्रगट लें तो एकरूप अवस्था शुद्ध स्वभाव के साधकपने से पूर्ण की एक अवस्था पूर्ण पर्याय प्रगट होती है, ऐसा वह **निधान है**। कहो, समझ में आया?

और कैसा है? 'शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः' रागादि अशुद्धपरिणति को मेटकर हुआ जो शुद्धत्वरूप परिणाम,... भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति जैसी सर्वज्ञ परमात्मा ने देखी है, वैसी अन्तर में सम्यग्दर्शन के अनुभव में लेने से शुद्ध परिणमन होता है और उस शुद्ध परिणमन के कारण आगे बढ़ते हुए पूर्ण केवलज्ञान आदि शुद्ध परिणति अकेली प्रगट होती है। समझ में आया?

रागादि अशुद्धपरिणति को मेटकर.... देखो! यह पुण्य-पाप के मलिन परिणाम को मिटाकर। पुण्य-पाप का लेख आया है, ठीक लिखा है। उसमें... क्या कहलाता है? जैन संदेश में ठीक लिखा है। उसे विष्टा कहने से किसी को नाराज होता हो तो कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि, पुण्य है, वह श्रृंखलाबंध है ऐसा। इतना जरा किसी ने लिखा है। भाई! यह 'चक्रवर्ती की संपदा इन्द्र सरीखे भोग कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोक' इसे कोई... भाई! बात तो ऐसी है। समझ में आता है न? उसमें बहुत दृष्टान्त ठीक दिये हैं। भाई! परमात्म प्रकाश का दिया है। पुण्य से वैभव और वैभव से... यह दिया है। अर्थात् पुण्य तो शास्त्र में हेय तो कहा है। अशुभ टालने की अपेक्षा से शुभ का भले आश्रय हो, परन्तु वह हेय हुए बिना... उसमें डाला है कि पूजा करते समय (प्रतिज्ञापाठ का डाला है), केवलज्ञान प्रगट करने के लिये पुण्य-पाप को होम करते हैं। पुण्य-पाप को... पूजा में कुछ पाठ है।

शुभ है, वह हेय है, छोड़नेयोग्य है, बन्धन है, उसमें तो कुछ दूसरे प्रकार से बात है नहीं। वह कहे, पुण्य से पवित्रता होती है, उन्होंने तो पुण्य का बन्ध कहा है। यह तुम्हारा लेख है उनके सामने भाई जगमोहनलाल ने लिखा है, वह ठीक लिखा है। नोट। पुण्य हेय है, यह तो शास्त्र में लिखा है उसमें कहीं दूसरा चले, ऐसा नहीं है। परन्तु छोड़नेयोग्य है। पुण्य-पाप को छोड़े बिना... सम्यग्दृष्टि उसे छोड़नेयोग्य मानता है तो सम्यग्दृष्टि होता है, वरना नहीं होता। वह कहते हैं कि पुण्य को आदरने लगे और पाप को तोड़ने... पुण्य और केवलज्ञान दोनों एक है। गजब परन्तु... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा रागादि अशुद्ध परिणति को मिटाकर (कहा न)? आत्मा पहले से ही पुण्य-पाप की मलिनतारहित मेरा स्वरूप है, ऐसी दृष्टि होने से ही उसे शुद्ध परिणतिरूप सम्यग्दर्शन होता है और पश्चात् भी शुद्ध परिणति में आगे बढ़ने से अस्थिरता के शुभाशुभभाव को मिटाकर शुद्ध वीतरागदशा होती है। समझ में आया? रागादि अशुद्ध परिणति अर्थात् अशुद्ध में पुण्य-पाप दोनों आ गये। उन्हें मिटाकर।

शुद्धत्वरूप परिणाम, उसकी... 'भर' बार-बार जो शुद्धत्वरूप परिणति, उससे... 'निर्भर' हुआ है.... 'सुप्रभातः' यह सम्यग्दर्शन, यह सुप्रभात हुआ। आत्मा के चैतन्य शुद्ध स्वभाव की पुण्य-पाप के विकल्परहित निर्विकल्प अन्तर दृष्टि होने से आत्मा को सुप्रभात हुआ। जघन्य सुप्रभात। इतने वर्ष से सुनते हैं, क्या सुनते हो यह?

मुमुक्षु : पुण्य से धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। पुण्य तो करो न बहुत, परन्तु धर्म मानना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे नहीं, करना नहीं, आता है, होता है, (वह) अलग बात है। करे क्या? करे कहाँ से? अभी पाप करता है उसमें पुण्य कहाँ... पुण्य का भाव पापभाव से बचने के लिये आये बिना रहता नहीं। होता है अवश्य और करो, ऐसा भी व्यवहार से कहा जाता है, वह भी (हेय) करके। तथापि वह आत्मा को धर्म का कारण नहीं है। नहीं तो यहाँ तक यह होली—चार गति के भव नहीं घटे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

'शुद्धप्रकाशभर', 'शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः' सम्यग्ज्ञान चैतन्य में पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव की रुचि छोड़कर, शुद्ध स्वभाव प्रकाशमय की दृष्टि, अनुभव होने से वह शुद्ध परिणति प्रगट होती है। उसे साक्षात् उसे सुप्रभात कहा जाता है। सुप्रभात की व्याख्या **साक्षात् उद्योत जिसमें...** समझ में आया? जहाँ तक उसे भोग में मिठास, पुण्य के भाव में मिठास, पापभाव करके हर्ष (होता है)—ऐसी मिथ्याबुद्धि है, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। एक भी राग का मन्द कण या जड़ का रजकण, उसके आश्रय से या उसमें कुछ मुझे ठीक है—ऐसी जब तक बुद्धि है, तब तक उसे मिथ्यादृष्टिपना टलेगा नहीं। समझ में आया?

हो, सामग्री हो भले राग भी हो। वह कहाँ प्रश्न है? परन्तु चैतन्य अत्यन्त विकल्प बिना की चीज़ है। उसमें तो वस्तु में तो विकार है ही नहीं। पुण्य हो या जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आत्मा में कहाँ था? समझ में आया? ऐसा शुद्ध चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु! उसकी अन्तर सम्यग्दर्शन की अनुभवदृष्टि होने पर उसे अशुद्ध परिणति की रुचि छूट जाती है। समझ में आया? वह इन्द्र सरीखे भोग में भी उसे मिठास नहीं रहती। फिर शुद्ध स्वरूप की दृष्टि में रमणता करते-करते एकाग्र होकर अत्यन्त ज्ञानप्रकाश पूर्ण केवलज्ञानरूप से प्रगट होता है, वह महा सुप्रभात है। महा सुप्रभात आत्मा दिन उगा उसे, यह उगा सो उगा, अब उसे अस्त नहीं होगा। समझ में आया?

'भर' बार-बार जो शुद्धत्वरूप परिणति, उससे हुआ है साक्षात् उद्योत जिसमें... क्या कहा? केवलज्ञान कैसे होता है कि बारम्बार शुद्ध परिणति से केवलज्ञान होता है। उसमें किसी समय भी शुभ परिणाम आये, उसकी मदद से होता है, ऐसा नहीं है। इसलिए '**भर**' की व्याख्या ऐसी की। समझ में आया? भर (भूसा) नहीं भरते? भर किसे कहते हैं? गाड़ा के भर भरे। बड़ा घास का भर भरे, बड़ी घास। इसी प्रकार यहाँ भरा / वजन। इसी प्रकार यहाँ शुद्ध परिणति का भर। भरा हुआ बारम्बार शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... उसके अन्तर में एकाग्र होते हैं, बारम्बार शुद्ध दशा की परिणति होते ही केवलज्ञान होता है, शुभ से बिल्कुल नहीं होती, ऐसा कहने के लिये यहाँ 'भर' शब्द है। समझ में आया?

'**निर्भर**' देखा? यह शुद्ध परिणति से हुआ, हुआ ऐसा। वह शुद्ध परिणति थी, उससे निर्भर—विशेष अवस्था हुई, ऐसा। जो शुद्ध परिणति बारम्बार की, उससे निर्भर अर्थात् शुद्ध परिणति पूर्ण हो गयी। समझ में आया? '**भरनिर्भर**' वाह! भाषा भी कैसी! भगवान आत्मा अकेला शुद्ध चैतन्य का गंज है। उसकी अन्तर में अनुभव की दृष्टि, स्थिरता, शुद्धता बारम्बार करने से वह '**भर**' और '**निर्भर**' हो गया। उससे पूर्ण केवलज्ञान हो गया। पूर्ण केवलज्ञान का '**भर**' भरा गया पूरा। समझ में आया? आहाहा!

किसान हो और उसे खबर पड़े उस भर की। भर बड़ा भर भरे। भर बाँधो भर। इसी प्रकार यहाँ सुपरिणति को सरीखी बाँध, कहते हैं। शुद्ध चैतन्यस्वभाव को पुण्य-पाप के अशुद्ध परिणति से रोककर, शुद्ध परिणति को प्रगट कर तो तेरा व्यवस्थित भर

भरेगा और उससे निर्भर हो (तो) केवलज्ञान प्रगट होगा। बाकी कोई विकल्प और शुभ और संहनन सच्चा और अच्छा और मनुष्य देह वह कोई कारण है नहीं। यहाँ तो यह नहीं जो निमित्त है, उसके कारण ही नया उठा दिया है। समझ में आया? जिससे होता नहीं, उसे कारण ही कहा नहीं। फिर ज्ञान कराने को कहते हैं कि यह निमित्त कारण है, संहनन और मनुष्यदेह, और व्यवहाररत्नत्रय वह निमित्तकारण है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार रात्रिसम्बन्धी अन्धकार के मिटने पर, दिवस उद्योतस्वरूप प्रगट होता है;.... रात्रि का अन्धकार मिटने से दिन का प्रकाश सवेरे सुप्रभात होता है। उसी प्रकार **मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति को मेटकर,....** विपरीत श्रद्धा और राग-द्वेष की मलिन अवस्था को छोड़कर **शुद्धपरिणाम विराजमान जीवद्रव्य प्रगट होता है।** आहाहा! भगवान आत्मा जैसा शक्ति से शुद्ध स्वरूप है, वैसी ही उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता की परिणति द्वारा उसकी पर्याय में शुद्धपने प्रगट होता है, विराजमान होता है, अपनी पर्याय में स्वयं विराजमान होता है। कहो, समझ में आया?

शुद्धपरिणाम विराजमान जीवद्रव्य... अपनी निर्मलपर्याय में प्रगट विराजमान उसके आसन में होता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा ही अलग प्रकार की है। कथन भी अलग प्रकार के। **और कैसा है? 'आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूपः' द्रव्य के परिणामरूप अतीन्द्रिय सुख के कारण,...** देखो! द्रव्य आत्मा के परिणाम तो उसे कहते हैं कि अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूप (हों)। शुभाशुभ परिणाम, वे आत्मा के परिणाम ही नहीं, आत्म जाति के परिणाम नहीं। आहाहा! जिसमें शुभ-अशुभराग है, वह दुःखरूप है, वह आत्मपरिणाम नहीं, अनात्मपरिणाम है। समझ में आया?

आनन्द द्रव्य के—वस्तु के **परिणामरूप अतीन्द्रिय सुख के कारण, जो आकुलता से रहितपना,... 'सुस्थित'** आकुलता से रहित है। **उससे सर्व काल अमिट (अटल) है...** इससे सर्वकाल मिटते नहीं, ऐसे ज्ञान, दर्शन और आनन्द हैं। **तद्रूप सर्वस्व जिसका, ऐसा है।** उस रूप सब है, ऐसा है। चार बोल डाले। एक तो आत्मा का केवलज्ञान है, उसमें से केवलज्ञान प्रगट हुआ, एक। दूसरा, केवलदर्शन शक्ति है, उसमें से प्रगट हुआ केवलदर्शन। एक आनन्दस्वरूप है, उसमें से प्रगटी आनन्ददशा। एक वीर्य शक्ति है, उसमें से प्रगट हुआ यह अन्तिम। सदा सर्व काल **'अस्खलित'** ऐसी वीर्य रचना हुई कि

जिसमें कभी स्खलित नहीं हो। कहो, समझ में आया? अनन्त चतुष्टय प्रगट हो गया। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल और अनन्त वीर्य, इसरूप सुप्रभात आत्मा में प्रगट हुआ। केवलज्ञान होने पर, केवलदर्शन होने पर, साध्यदशा होने पर अतीन्द्रिय आनन्द और वीर्य (प्रगट हुए) वह सुप्रभात (हुआ)। प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश... सादि-अनन्त (रहेंगे)। यह साध्यदशा सादि-अनन्त रहती है। असंख्य समय द्रव्यस्वभाव त्रिकाली शुद्ध में असंख्य समय उसकी शुद्धता की दृष्टि, ज्ञान और रमणता की एकाग्रता करने से अनन्त काल रहे, ऐसा सुप्रभात केवलज्ञान आदि प्रगट होता है। समझ में आया?

वस्तु तो पूरी अनन्त काल से पड़ी है, और ऐसी की ऐसी वह द्रव्य-शुद्ध वस्तु भी अनन्त काल रहेगी परन्तु उस शुद्ध की दृष्टि, ज्ञान और रमणता का काल असंख्य समय का है। वह त्रिकाल द्रव्य और साधक की पर्याय प्रगट करने का समय तो असंख्य ही है। फिर उसे सिद्धपद असंख्य समय के बाद प्रगट हुए बिना रहेगा नहीं। वह सिद्ध प्रगट हो, वह सुप्रभात कहा। क्यों? कि अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहेगा। बात क्या कहते हैं यह? लोग नहीं कहते? कि भाई! यह दो महीने कमा लें, बारह महीने खायेंगे।

मुमुक्षु : मौसम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मौसम कहते हैं न? दो महीने कमा लें फिर बारह महीने निश्चिन्तता से खायेंगे। यहाँ कहते हैं, असंख्य समय कमावे तो अनन्त काल अनुभव को खायेगा।

भगवान आत्मा परमानन्द शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के विकल्परहित उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता के, रमणता के बीज रोपे, उसके फल असंख्य समय में अनन्त काल रहे, ऐसे फल उसके आयेंगे। ओहोहो! शुभभाव तो अमुक (काल) तक रहकर स्वर्ग में आकर, वापस उसे अशुभ हुए बिना रहे ही नहीं। यह तो अपनी जाति के परिणाम हैं। असंख्य समय सेवन किये (इससे) जाति प्रगट हुई तो अनन्त काल में ऐसी की ऐसी रहे। उसे बदलने का होता नहीं, वापस गिरने का होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शुभभाव हो तो उससे स्वर्ग में जाये। यह स्थिति पूरी हो, वहाँ तो ऐसा हाय...

हाय..! चिल्लाहट मचाता है, शास्त्र में तो ऐसा आता है। मिथ्यादृष्टि देव को खबर पड़े कि अरे! यहाँ से कहाँ जाना? मनुष्य में जाने का है। बहुत गिलहरी की कूख में (जाये), गधेड़ी की कूख में। राजा की अच्छी बड़ी घोड़ी हो, लो न! फिर त्रास पाते हैं, हों! अरे रे! इसकी अपेक्षा तो एकेन्द्रिय में हो न तो ऐसे दुःख (तो सहन न करना पड़े), ऐसा करके एकेन्द्रिय में जाता है। मिथ्यात्व है न? अज्ञान है, भान नहीं। पुण्य थोड़ा था, वह थोड़ा भले असंख्य अरब वर्ष का हो परन्तु मर्यादित है न? ऐसे जहाँ माला है, मुरझाती है... हैं? छह महीने में पूरा। जाओगे कहाँ? देव मरकर अन्यत्र कहाँ जाये? मनुष्य और ढोर के कूख में, अरे रे! नौ-नौ महीने तक उल्टे सिर लटकना। आहाहा! यह सुख और यह साहिबी, रोवे। दूसरे देव आवे (और कहे) यहाँ तो ऐसा होता आता है, किसलिए रोता है? समाधान होता नहीं। समझ में आया? स्वरूप का भान नहीं। उसने पुण्य किया हुआ, (इसलिए) स्वर्ग में गया। हाय.. हाय..! होगा क्या? यह छह महीने में देखो! वह ढेढडीनी के गर्भ में अथवा पशु के गर्भ में, मनुष्य के गर्भ में जाना है। इसकी अपेक्षा मस्तिष्क में ऐसा हो जाता है कि इसकी अपेक्षा तो एकेन्द्रिय में ऐसा तो नहीं होगा। वह निदान करता है, (इसलिए) जाये एकेन्द्रिय में। वह पृथ्वी में जाये, हीरा में उपजे, फूल में जाये और कोई सुगन्धी पानी के... क्या कहलाते हैं? कुण्ड, वहाँ जाकर उपजे। एकेन्द्रियरूप से अवतरित हो। अरे! बापू! यह कहीं द्रव्य की जाति थी, वह इसके पुण्य में लम्बा काल रहकर वापस ही ऐसे रहा करे?

यहाँ तो आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान और शान्ति की, वह दशा ऐसी की ऐसी अनन्त काल रहा करे, ऐसा कहते हैं। अन्तिम गाथायें हैं न? आहाहा! परन्तु यह उसे रुचता नहीं, वे पुण्य-पाप रुचते हैं। क्षणिक नाशवान है न? उसके फल आवे और मानो भोगे। धूल में भी वहाँ सुखी नहीं। इसकी मिठास इसे हटने नहीं देती।

'**सदा, अस्खलित**' एकरूप, लो! '**सदा, अस्खलित**' भगवान आत्मा...! देखो! इसका तो ऐसा पुण्य था, वह बदल गया, लो! समकिती देव है, उसे तो खबर है, हों! कि हम यहाँ से मनुष्य में जानेवाले हैं, (फिर) वहाँ से निकलकर मुनि होनेवाले हैं। मुझे तो मुनिपना लेकर केवलज्ञान प्राप्त करना है, मुझे दूसरा है नहीं। ज्ञान में भासित होता है कि अब आगे देह नहीं। अवधिज्ञान में दूसरा देह दिखता नहीं,... दिखता नहीं।

अपने तो यहाँ है। यह राग हो गया था, इसलिए थोड़ा पुण्य आया था। मिठास भाव से भोगा नहीं, दु:खभाव से क्लेश भोगा है। आदर किया नहीं, इसलिए वह अच्छे ऊँचे कुल में ही अवतरित होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अच्छे कुल में (ही अवतरित होता है)। आता है न उसमें क्या कहलाता है?

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में (आता है) तेज और ओज और क्या कहते हैं? छह बोल। हीन कुल में अवतरे नहीं। ऐई शुकनचन्दजी! क्या है? बोलो न! तुम्हारे शब्द नहीं आते तुमको। वह ऐसा तब। ओज, तेज, विद्या, उसमें वह अवतरित होता है और फिर उसे छोड़कर मुनिपना अंगीकार करता है। पीछे केवलज्ञान होता है, उसके पीछे केवलज्ञान होता है और इसकी (अज्ञानी को) पीछे अन्धकार होता है। मात्र पुण्य के प्रेम में पड़े उस मिथ्यादृष्टि को पीछे अन्धकार है, एकेन्द्रिय में जाये। हाय... हाय...! समझ में आया? उसमें भी कोई और मनुष्य हो, कोई ढोर हो। अररर! यह नौ महीने (इसमें) रहना? दूसरे के गर्भ को विभंगज्ञान से देखे न? ऐसे संकुचित होकर (पड़े रहने का), एक पूरा श्वास भी लिया नहीं जाये, चारों ओर बन्द और आठ, नौ महीने उसमें कैसे व्यतीत होंगे? इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय में जायें तो कुछ दिक्कत तो नहीं। ऐसा (तो) नहीं होगा।

मुमुक्षु : वहाँ तो बहुत दु:ख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इसे कहाँ भान है? उस दु:ख का तो इसे ख्याल नहीं। यह संयोग दु:ख को (देखता है)। क्योंकि संयोगी सुख में प्रीति थी। संयोग सुख की प्रतीति अर्थात् संयोग का दु:ख का उसे भासित होता है। एकेन्द्रिय को अन्दर का वह दु:ख होता है, उस दु:ख की खबर नहीं। समझ में आया?

यह तो स्वभावी सुख के भान की दृष्टि से जो आत्मा का साधकपना प्रगट किया, उसे पूर्ण स्वभाव ऐसा प्रगटे (कि) अचल है। वीर्य ऐसा है कि अनन्त ज्ञानादि की रचना की, वह रचना बदले नहीं। लो! इसका नाम सुप्रभात। यह आत्मा सूर्यरूप से प्रकाश हुआ। पहला भानु सम्यग्दर्शनरूप से प्रगट हुआ और फिर केवलज्ञानरूप से प्रगट हुआ। यह इसका नाम सुप्रभात है, बाकी अन्धकार कहलाता है। यह पाँचवाँ, २६८ वाँ श्लोक हुआ।

कलश - २६९

(वसन्ततिलका)

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति।
किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै–
र्नित्योदय: परमयं स्फुरतु स्वभाव: ।।६–२६९।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'अयं स्वभाव: परं स्फुरतु' [अयं स्वभाव:] विद्यमान है जो जीवपदार्थ, [परं स्फुरतु] यही एक अनुभवरूप प्रगट होओ। कैसा है? 'नित्योदय:' सर्व काल एकरूप प्रगट है। और कैसा है? 'इति मयि उदिते अन्यभावै: किं' [इति] पूर्वोक्त विधि से, [मयि उदिते] मैं, शुद्धजीवस्वरूप हूँ—ऐसा अनुभवरूप प्रत्यक्ष होने पर, [अन्यभावै:] अनेक हैं जो विकल्प, उनसे [किं] कौन प्रयोजन है? कैसे हैं अन्य भाव? 'बन्धमोक्षपथपातिभि:' [बन्धपथ] मोह–राग–द्वेष, बन्ध का कारण है; [मोक्षपथ] सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र, मोक्षमार्ग है—ऐसे जो पक्ष, उनमें [पातिभि:] पड़नेवाले हैं अर्थात् अपने–अपने पक्ष को कहते हैं, ऐसे हैं अनेक विकल्परूप। भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसे विकल्प जितने काल तक होते हैं, उतने काल तक शुद्धस्वरूप का अनुभव नहीं होता। शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर, ऐसे विकल्प विद्यमान ही नहीं होते, विचार किसका किया जाये। कैसा हूँ मैं? 'स्याद्वाददीपितलसन्महसि' [स्याद्वाद] द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप से, [दीपित] प्रगट हुआ है [लसत्] प्रत्यक्ष [महसि] ज्ञानमात्र स्वरूप जिसका। और कैसा हूँ? 'प्रकाशे' सर्व काल उद्योतस्वरूप हूँ। और कैसा हूँ? 'शुद्धस्वभावमहिमनि' [शुद्धस्वभाव] शुद्धपना के कारण, [महिमनि] प्रगटपना है जिसका।।६–२६९।।

कलश - २६९ पर प्रवचन

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति।

किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै–
र्नित्योदय: परमयं स्फुरतु स्वभाव: ।।६–२६९।।

'अयं स्वभाव: परं स्फुरतु' आचार्य भावना करते हैं। भावना करके जगत को यह भावना समझाते हैं।

मुमुक्षु : स्वयं अपनी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी बात करते हैं न सब बात ? पर की (बात) तो अन्दर इकट्ठी आ जाती है। यह **'अयं' विद्यमान है जो जीवपदार्थ...** भगवान विद्यमान अस्तिवाला महान आनन्द का सागर प्रभु, वह **'परं स्फुरतु', 'परं स्फुरतु' यही एक एक अनुभवरूप प्रगट होओ। 'परं' यही एक एक अनुभवरूप प्रगट होओ।**

हाँ, एक। परम उत्कृष्ट, ऐसा।

परम **एक अनुभवरूप प्रगट होओ। कैसा है ? 'नित्योदय:' सर्व काल एकरूप प्रगट है।** वस्तु तो एकरूप त्रिकाल है। विद्यमान पदार्थ महा अनन्त... अनन्त... सत्त्व का रस का सागर, वह पर्याय में हमको प्रगट हो। **यही एक अनुभवरूप...** एक अनुभवरूप। भंगरूप थोड़ा और एकरूप पूरा प्रगट हो। समझ में आया ?

और कैसा है ? 'इति मयि उदिते अन्यभावै: किं' 'इति मयि उदिते अन्यभावै: किं' अहो! **पूर्वोक्त विधि से, 'मयि उदिते' मैं, शुद्धजीवस्वरूप हूँ—ऐसा अनुभवरूप प्रत्यक्ष होने पर,...** भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप अन्तर में दृष्टि और ज्ञान में प्रत्यक्ष हुआ। इस प्रकार **मैं, शुद्धजीवस्वरूप हूँ—ऐसा अनुभवरूप प्रत्यक्ष होने पर,...** जैसा शुद्ध स्वरूप मैं, **ऐसा अनुभवरूप प्रत्यक्ष होने पर, अन्य भावों से अर्थात् अनेक हैं जो विकल्प, उनसे कौन प्रयोजन है ?** मुझे दूसरे विकल्प से क्या प्रयोजन ? कहो, परद्रव्य से तो नहीं, परद्रव्य से तो मुझे कुछ प्रयोजन नहीं, परद्रव्य मुझे स्पर्शते नहीं, मैं उन्हें स्पर्शता नहीं। वे कोई मुझे बिल्कुल काम के नहीं और मैं उन्हें काम का नहीं। परन्तु विकल्प से क्या प्रयोजन है ? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अन्दर अस्थिरता के विकल्प है न! ऐसे शुभ आदि (विकल्प)। यहाँ तो शुभ विकल्प की बात है, हों! ज्ञानस्वरूप चैतन्य प्रभु अन्तर में दृष्टि और ज्ञान में, वेदन में आया, ऐसा जो है, ऐसा अनुभव में

आया। अब कहते हैं कि अन्यभाव से (वर्तते) दूसरे विकल्प से क्या प्रयोजन है? समझ में आया?

यहाँ तो अभी बहुतों के साथ काम करना है और बहुतों के साथ काम लेना है। मूढ़ है। किसी से काम ले नहीं सकता और किसी को काम में आता नहीं। कुछ साधन अच्छे मिले हों तो बहुतों को काम आवे न? शरीर अच्छा हो तो काम आवे या नहीं? सदुपयोग होता है या नहीं? धर्म कर सकता है, लो! ऐसा मनुष्य मानता है। यहाँ तो कहते हैं कि शरीर से तीन काल में धर्म होता नहीं, सामग्री अनुकूल हो तो धर्म होता नहीं, होता नहीं।

एक व्यक्ति सेठिया कहता था कि ओहो! सुविधा तो बहुत मिली है परन्तु उपयोग नहीं हो सकता। ऐसा करके हमारा लड़का बहुत पैसेवाला और हमको सुविधा (बहुत है) ऐसा बाहर में फूंका करता है। सुविधा तो बहुत है, सुविधा तो बहुत है परन्तु सदुपयोग होता नहीं, सदुपयोग होता नहीं। क्या कहना है इसे? कि भाई! बारम्बार कहना है तो क्या कहना है यह? पैसे इसके लड़कों के हुए, इसलिए बहुत सुविधा है। लड़के को, हों! इसके पास नहीं वापस। ऐई! तुम्हारी बात नहीं, पूर्व की बात है। मलूकचन्दभाई ऐसा बोलते नहीं। वह तो अलग प्रकार है। वह तो पूरी जाति फेर। जरा थोड़े रुपये हुए और दस लाख लड़के को हुए, पन्द्रह-बीस लाख हुए (तो) बहुत सुविधा, बहुत सुविधा, मकान की सुविधा, लड़के की सुविधा, सब सुविधा (परन्तु) सदुपयोग (होता नहीं)। परन्तु क्या सदुपयोग करना है? यह साधन का सदुपयोग होता है? मूढ़, वह भी कैसा मूढ़! अन्तर आत्मा है, उससे मिल, यह काल मिला, उसका उपयोग कर, अब अन्दर दृष्टि और ज्ञान में। धूल का भी साधन का उपयोग नहीं।

वापस यह वे ऐसे होते हैं न? जब अच्छे साधन थे तब, अरे रे! उपयोग नहीं किया, अब साधन (अच्छे नहीं रहे), परन्तु साधन अच्छा और बुरा है ही कब? जब व्यवस्थित था पचास-पचास वर्ष के अन्दर उम्र में तब कुछ (किया नहीं), यह सब साधन बिगड़े अब करना (है परन्तु) अब किस प्रकार करना? हाय-हाय के कारण समय मिलता नहीं। परन्तु कहते हैं कि यह पर के साधन पहले थे या अभी फिर यह

साधन काम के ही नहीं आत्मा को, बिल्कुल काम के नहीं। काम का एक भगवान शुद्ध आत्मा एक ही काम का है। आहाहा! कहो, समझ में आया? कितनों को ऐसा लगता है न कि अब करूँगा। वहाँ साठ और पैंसठ हो। वहाँ पैर-टाँगें टूटे, या कुछ कमर टूटे, या पक्षघात हो, या खाट में पड़े। फिर करूँगा, फिर करूँगा, वहाँ यह हुआ। अब (क्या)? किया। अब यह हुआ अब क्या करूँ? परन्तु उससे कहाँ होता है तुझे अभी भी? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मानता है। यही कहते हैं न? यह मूढ़ता यह मानता है। नरक के अन्दर में ऐसा... ओहोहो! असुर या दूसरा नारकी उसे पोटली बाँधे, ऐसे लोहे के धगधगते सरिये सब बाँधे, नाक बन्द करे, आँखें बन्द करे... पोटला बाँधे। सिर से मारे। उंहकारा करे नहीं, कुछ बोला जाये नहीं। उसमें अन्दर में विचार करने पर सम्यग्दर्शन पा जाता है। क्या है परन्तु? समझ में आया? ... कुचल-बुचल कर ऐसे पोटला बाँधे और सरिया घुसावे और फिर सिर पर लोहे के घन मारे। यह उंहकारा नहीं कर सके, नहीं कर सके हलचल। कुछ हिले नहीं, सब ऐसे बन्द। उसमें भी क्या हुआ? यों भी ऐसा था तो भी क्या हुआ? और ऐसा था तो भी क्या हुआ? ऐसा यहाँ कहना है? समझ में आया? ऐसा था तो भी उसे सुविधा थी? और ऐसा हुआ तो उसे क्या असुविधा हो गयी? अरे... अरे..! गजब बात भाई!

यह शास्त्र में ऐसा आता है, हों! ऐसे बाँधे, ऐसे बाँधे। कील मारे। पोटला वापस पूरा लोचा। उसमें वे लोहे (मारे), बीस-बीस मण का लोहा असुर हाथ में लेकर भड़ाक... भड़ाक... (मारे)। उंहकारा कहाँ करे? मुँह बाँधा, आँखें बन्द की, नाक (बन्द किया हो)। समझ में आया? उसमें से उसे अन्दर विचार प्रस्फुटित हो... अरे! सन्तों ने कहा था। अरे! शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... ऐसी भणकार हमको मुनियों ने कही थी। उसी और उसी में वह वहाँ आगे अन्दर में समकित पा जाता है। क्या है परन्तु? कहाँ साधन अनुकूल हो तो यह होता है। एक अनुकूल आत्मा। समझ में आया? भीखाभाई! यह यहाँ कहा और दूसरे के साथ मुझे प्रयोजन क्या है? यहाँ तो कहते हैं, विकल्प का

प्रयोजन क्या है ? ऐसे साधन भले ऐसे हों, उसका मुझे क्या काम है ? मुझे कहाँ वे नुकसान करते हैं ? आहाहा !

मुमुक्षु : इस प्रकार से जागृत करने के लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ऐसे अनन्त बार हुआ है। जागृत नहीं, हुआ है उसे और अभी भान नहीं करे तो ऐसा अनन्त बार होगा।

यहाँ तो दूसरा कहना था, यहाँ तो कहते हैं, मुझे दूसरे विकल्प से क्या काम है ? क्या कहते हैं ? बन्ध-मोक्ष के पन्थ का, यह बन्धमार्ग और यह मोक्षमार्ग—ऐसे विकल्प से मुझे क्या काम है ? ऐसा कहते हैं। दूसरा बन्ध नहीं, जड़ का बन्ध, वह बन्ध, यह बात तो एक ओर रख। समझ में आया ? अरे ! मैं छूटा अकेला होता न तो श्वास ले सकता तो कुछ कर सकता था। रहने दे, यह बात रहने दे। इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह तो 'बन्ध-मोक्ष' शब्द पड़ा है न ? उसमें कहते हैं कि मुझे तो यह बन्धन-भावबन्ध है और मुक्ति होगी, ऐसे विकल्प का भी मुझे क्या काम है ? वह मुझे सहायक नहीं है। आहाहा ! बाहर के अवयव बँधे होने पर भी पंचेन्द्रिय है, एकेन्द्रिय नहीं। उसे क्षयोपशम का विकास है। वह एकेन्द्रिय नहीं है। उसे उघाड़ का—क्षयोपशम का साधन है, वह साधन बँधा हुआ नहीं, भाई ! आहाहा ! उघाड़ का अंश है, चाहे जो ऐसा हुआ हो उसमें तुझे क्या ? वहाँ ऐसा हो या वैसा हो, वह सब तेरे लिये अनुकूल-प्रतिकूल नहीं है। आहाहा ! दृष्टि को बदलने के अतिरिक्त इसका छुटकारा नहीं है। समझ में आया ?

इसका अर्थ ऐसा होता है कि कुछ अपने को व्यवस्थित हो न तो अपने को विचार का अवकाश रहे। अर्थात् यह सब व्यवस्थित हो तो विचार का अवकाश रहे, इसलिए सब साधन मददगार होते होंगे ? आहाहा ! कठिन बात, भाई ! यह तो बन्ध-मोक्ष आया न ? विकल्प किसका ? कि बन्ध-मोक्ष का। ऐसे बन्ध होता है और यह विकल्प ऐसा करे तो बन्ध होता है, इसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र करे तो मोक्ष होता है। उस सम्बन्धी के विकल्पों से भी मुझे क्या काम है ? तो इस शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता के साथ तो मुझे कुछ काम ही नहीं। आहाहा ! भगवान उस समय पृथक् ही पड़ा है, ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई ! यह वह छपरा के पानी को

आकाश में चढ़ाने लगे इसे, हों! परन्तु भाई! तू आत्मा है या नहीं? आत्मा है और वह तो अपने विकल्प से बँधा हुआ भासित होता है। बाकी उसे बन्धन नहीं है। अर्थात् बाह्य के शरीर के अवयव ऐसे हों या ऐसे हों या टूटे हों या ऐसे हों या बाँधे हों या कूटे हों। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पृथक् ही है। उसके साथ सम्बन्ध नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। इसमें से जरा मुझे पृथक् करे न तो मुझे (काम करने में अनुकूलता रहे)। परन्तु कहाँ से तुझे पृथक् होना है? आहाहा! जरा सा यह श्वास ले, ऐसा हो, अरे! मुझे ऐसा (होता है)। यह तो मार लगती है, उसमें बोला नहीं जाये अन्दर का अन्दर। समझ में आया? बोले नहीं और उंहकारा करे नहीं। उंहाकारा कहाँ से करे? परन्तु इससे क्या हुआ? कहते हैं, भाई! तेरी दृष्टि में अन्तर है।

इन संयोगों में शरीर का साधन ऐसा हुआ, वह तुझे बन्धन नहीं। वस्तु तो ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप मूति प्रभु आत्मा, उस काल में छूटा पड़ा है। उसे तू ऐसे दृष्टि में ले तो दूसरे विकल्प का भी काम नहीं तो इस बन्धन को छूटने का तुझे क्या काम है? यह भावबन्धन और भावमुक्ति के विकल्प का काम नहीं। आहाहा! ऐई! पृथक् तत्त्व है वह तत्त्व है, वह पूरा अनन्त ज्ञान का पुंज, गंज है। उसकी कल्पना में उसमें ऐसा बड़ा करके रखा है। ऐसा हो तो ऐसा हो और ऐसा हो तो ऐसा हो। यहाँ तो बन्ध के भावबन्ध, हों! उसके विकल्प से ऐसा बन्ध कहा जाता है और इसका नाम मुक्ति कहा जाता है, और ऐसे विकल्प से मुझे क्या काम है? वह विकल्प तो मैं उठाऊँ तो होते हैं। ऐसे (विकल्प का) मुझे क्या काम है? मैं तो ज्ञायकस्वरूप हूँ न! आहाहा! समझ में आया? यह अन्तिम कलश है न? भावना के—मुद्दा के कलश हैं।

तिलोयपण्णत्ती में अन्तिम कलश बहुत अच्छे रखे हैं, भाई! अन्तिम सब बहुत अच्छे। प्रवचनसार के, कितने ही समयसार के। यह सब पुण्य और यह पुण्य से वैभव (मिले), वैभव मिटकर... वहाँ तिलोयपण्णत्ती में सब रखा है। मूल तो ठेठ से (चला आया है)। मूल तो यह (आचार्य) बाद में हुए हैं न? कुन्दकुन्दाचार्य पहले हुए हैं। बाद में यतिवृषभआचार्य (हुए।) उसमें से यह लिया है। कुन्दकुन्दाचार्य पहले हुए?

कुन्दकुन्दाचार्य पहले हुए और पश्चात् यतिवृषभ हुए न? ऐसा ही होगा न? यह तो २००० वर्ष हुए न! इसलिए लिखा है कि यह सब गाथायें समयसार में से ली लगती है। भले उन्होंने डाली है, परन्तु ली है इसमें से। समझ में आया? १८०० वर्ष के लगभग? कितने कहते हैं? यह दो हजार वर्ष हुए। गाथायें सब बहुत रखी है, हों!

'नोकर्म कर्म...' यह पुण्य के वैभव की, 'हिण्डति संसार' पुण्य-पाप में अन्तर माने, वह संसार में भटकेगा। बहुत सब गाथायें हैं, बहुत गाथायें (ली है)। अन्त में आचार्य ने लोक का सब वर्णन करके फिर भावना भायी है। फिर अपनी भावना भायी है कि वस्तु यह है, यह सब जानकर। समझ में आया? यह है। अन्दर है, देखो! गाथा इन्होंने कहीं रखी है। मैंने सामने पढ़ा था। यह गाथायें इनकी लगती है। समझे न? ८०० और कितना? नौवाँ है न? देखो! यहाँ है। सब गाथायें बहुत ऊँची, हों! तब अभी भाई! आये थे न? विमलचन्दजी, तब पढ़ी थी। समझ में आया? (तिलोयपण्णत्ती अन्तिम अधिकार, गाथा-२२)

जह चिर-संचिदमिंधणमणलो पवणाहदो लहुं दहइ।

बहुत काल के ईंधन किये हों, वे पवन से आयुक्त अग्नि द्वारा शीघ्र जला डालते हैं।

तह कम्मिंधणमहियं, खणेण झाणाणलो दहइ।

ऐसे कर्म के ईंधन आत्मा की एकाग्रतारूपी ध्यान अग्नि से जला डालते हैं। सब गाथायें ऐसी हैं, हों! देखो, सब गाथायें ऐसी हैं, हों!

जो खविद मोह-कलुसो, विसय-विरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे, सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं॥
जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व जोग-परिकम्मो।
तस्स सुहासुह - दहण - ज्झाणमओ जायदे अगणी।
दंसण-णाण-समग्गं, झाणं णो अण्ण-दव्व-संसत्तं।
जायदि णिज्जर - हेदु, सभाव - सहिदस्स साहुस्स॥

णाणम्मि भावणा खलु, कादव्वा दंसणे चरित्ते य।
ते पुण आदा तिण्णि वि, तम्हा कुण भावणं आदे॥

अहंमेक्को खलु सुद्धो, दंसण-णाणपग्गो सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झि किंचि वि, अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥

ऐसी सब गाथायें दी है, बहुत गाथायें। १८ से लेकर ७७, ७७ गाथायें हैं। सब भावना की है। अन्त में आचार्य (वर्णन करते हैं)। वस्तु तो यह है न वापस। सब लिखा, भले लोक का बतलाया, परन्तु वस्तु वापस यह डाली। समयसार आदि (शास्त्र की) बहुत-बहुत हों! बहुत गाथायें डाली हैं।

णाहं देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
एवं खलु जो भाओ, सो पावइ सासयं ठाणं॥

'**कारणं तेसिं**' मैं उसका कारण नहीं। अभी वह कहता है, कारण है। यह तो तिलोयपण्णत्ती है। मैं कारण नहीं। देखो न! '**णाहं देहो**'।

देहो व मणो वाणी, पोग्गल-दव्वं परोत्ति णिदिट्ठं।

यह मैंने किया नहीं।

पोग्गल-दव्वं पि पुणो, पिंडो-परमाणु-दव्वाणं॥

द्रव्य का यह पिण्ड मैंने किया ही नहीं, वह तो परमाणु से इकट्ठा हुआ। समझ में आया?

णाहं पुग्गलमइओ, ण दे मया पुग्गला कदा पिंडं।
तम्हा हि ण देहो हं, कत्ता वा तस्स देहस्स॥

वह गाथा आयी। प्रवचनसार की नहीं? ९२वीं।

एवं णाणप्पाणं, दंसण-भूदं अदिंदियमहत्थं।
धुवममलमणालंबं, भावेमं अप्पयं सुद्धं॥

यह सब गाथायें हैं।

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे, सो अप्पाणं हवदि झादो॥

ये सब गाथायें बहुत सरस हैं। यह सब मूल तो वस्तु तो यह है न! भाई! लाख जाने न, लोक जाना और यह जाना... फिर इसकी भावना क्या? करणानुयोग में यह डाला, लो! समझ में आया? यह जानकर तो इसे यह करना है न? मैं पुण्य नहीं, पाप नहीं। पुण्य के कारण वैभव मिले, वैभव से मतिमोह होता है, मतिमोह से मूढ़ होकर अभिमान करके पाप बाँधता है। वह पुण्य हमारे नहीं चाहिए, आचार्य कहते हैं, वह पुण्य हमारे नहीं चाहिए।

यहाँ अब पुण्य के ऊपर तो बड़े... (ऐसा कहते हैं कि) पुण्य से पवित्रता और पुण्य से केवलज्ञान (होता है)। भगवान! तेरी बलिहारी है न! यह उल्टा पड़े तो निगोद की दशा, उसे आराधे और केवलज्ञान भी वह आराधे। आहाहा! एक शरीर में अनन्त चले जायें और एक जीव को भी अनन्त अनन्त हीन दशा हो जाये। कहाँ केवलज्ञान का विकास और कहाँ हीन दशा! वह भी इसने आराधा है या नहीं?

(यहाँ) कहते हैं, अरे! हमको तो बन्ध-मुक्त के विकल्प से क्या काम है? आहाहा! ऐसे-ऐसे होवे या ऐसा न होवे बाहर का उसका तो हमारे काम नहीं। समझ में आया? जरा निरोगता दो वर्ष रहे न तो मैं धर्मसाधन कर लूँ। समझ में आया? यह किसकी भावना भायी तूने? यह तो तूने जड़ की भावना भायी। आहाहा! समझ में आया? कुछ पाँच वर्ष रोटियाँ कमा ले और कुछ व्यवस्थित हो और फिर निश्चिन्तता से धर्म करेंगे।

मुमुक्षु : लड़के भेजे....

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के भेजे तो व्यवस्थित हो। तुम्हारे तो लड़का और भाई दोनों वहाँ गये हैं। वे दो व्यक्ति कमावें वहाँ और थोड़ा सा इकट्ठा करके पैसा वहाँ से यहाँ भेजे। आहाहा!

यहाँ तो कहना है जरा ख्याल क्या आया? बन्ध और मोक्ष के विकल्प से क्या काम है? आया है न? '**बन्धमोक्षपथपातिभिः**' **कौन प्रयोजन है? कैसे हैं अन्य भाव? कैसे हैं अन्य भाव?** कैसे भाव, किसके लिये भाव? ऐसा कहते हैं। **मोक्षमार्ग है—ऐसे जो पक्ष, उनमें पड़नेवाले हैं अर्थात् अपने-अपने पक्ष को कहते हैं, ऐसे हैं अनेक**

विकल्परूप। लो! समझ में आया? मोह और राग-द्वेष बन्ध के कारण हैं और **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्षमार्ग है—ऐसे जो पक्ष, उनमें पड़नेवाले हैं...** विकल्प, हों! विकल्प। आहाहा! इसलिए ऐसे दो घड़ी, पाँच वर्ष देह को ऐसे व्यवस्थित रहे न... लड़के व्यवस्थित रहे, कुछ निरोगता रहे। वह पर जड़ की पर्याय तुझे साधन होगी? यहाँ तो बन्ध-मोक्ष में पड़े हुए विकल्प भी साधन नहीं होते। आहाहा! वस्तु वह वस्तु है न!

भाई! तेरी वस्तु तो उसमें पृथक् पड़ी है न! उस पृथक् को पृथक् होने के लिये बाह्य के किसी साधन की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! वह तो नहीं परन्तु इस बन्ध में ऐसा होता है और मोक्ष में ऐसा होता है और मार्ग का पक्ष ऐसा होता है, ऐसे विकल्पों की भी वहाँ क्या आवश्यकता है? क्योंकि विकल्प भी वहाँ पृथक् तत्त्व है, उसे पृथक् करने में बिल्कुल मदद नहीं। (वहाँ तो) अटकता है वह तो, कहते हैं। आहाहा! ऐई! भाई! एक व्यक्ति कहता था, कहा न? पेट में भूखे हों, उसे तुम यह धर्म बताते हो पेट में कुरकुरिया बोले और कहे, धर्म करो। कुछ रोटियाँ-बोटियाँ पड़े। रोटियाँ पड़ने के बाद तुम ऐसा कहोगे कि यह पचने के बाद हम धर्म करेंगे, पचने के बाद दस्त व्यवस्थित हो तब तक मुझे धर्म नहीं होगा, जहाँ पचकर दस्त निकला, वहाँ दूसरी भूख लगी। करना कब है अब तुझे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी हक में जाता नहीं यह। उसके लिये तो यह बात रखी। भाई! कैसे? कीरचन्दभाई ने तो फिर बेचारे वे हो गये। कीरचन्दभाई सुरेन्द्रनगर (संवत्) १९९० के वर्ष में। बाहर जंगल में दोनों व्यक्ति बैठे थे। यह क्या कहलाता है? जागनाथ प्लोट। तब खेत थे न? तब मकान नहीं थे। खाली खेत। जहाँ हो वहाँ तुम धर्म... धर्म करते हो परन्तु रोटियाँ पेट में पड़े नहीं, तब तक उसे धर्म (कैसे हो)? अब तुम्हारे धर्म कब करना है? कहा। रोटियाँ पेट में पड़े तब कहे, यह व्यवस्थित पचा नहीं, दस्त हो गया, यह हो गया, यह हो गया। इसके बाद पचने लगा, फिर कहे दस्त व्यवस्थित हुई नहीं, दस्त हो जाये, अब मुझे करना क्या? दस्त हो जाये, फिर कहे, मुझे वापस भूख लगी। अब तुझे करना कब है? जेचन्दभाई!

मुमुक्षु : अब उसकी उलझन का कुछ करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उलझन किसकी? उसकी तो लगायी है यह। यह वह इतने में बँध गया तो भी कि मुझे क्या है? उसके साथ मुझे सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **अनेक हैं जो विकल्प, उनसे कौन प्रयोजन है?** मुझे। आहाहा! मेरे तत्त्व के शुद्ध तत्त्व का पृथक् स्वरूप, उसे पर्याय में पृथक् होने के लिये मुझे ऐसे विकल्प का क्या काम है? आहाहा! यह बन्ध-मोक्ष के विकल्प तो शुभ हैं, हों! हाँ, ऐसा बन्ध होता है। वहाँ बन्ध हो तो भी विचार शुभ है। ऐसे मोक्ष होता है, यह सम्यग्दर्शन ऐसे होता है और सम्यग्ज्ञान ऐसे होता है, और ऐसा जो पक्षरूप विकल्प, हों! आहाहा!

बापू! यह तो मार्ग है न, मार्ग वह आत्मा का। आत्मा, वह अत्यन्त पृथक् (तत्त्व), ज्ञान का भण्डार भरा है। आहाहा! उसे नहीं रोकता कर्म, उसे नहीं रोकता शरीर, उसे नहीं रोकती बाहर की प्रतिकूलता का सम्बन्ध-प्रतिबन्ध। समझ में आया? और नहीं उसे सुविधा देती शरीर की निरोगता, नहीं कोई बाहर के साधन खाने-पीने के, रहने के मकान वे कोई साधन उसे धर्म और आत्मा की मुक्तदशा को साधक होने में वे कोई मददगार नहीं। आहाहा! यहाँ तो यह पुण्य के विकल्प का निषेध करते हैं। ऐसे यह बँधेगा और इससे ऐसा होगा और शुभराग हो तो बँधता है और फिर तब ऐसा होता है, ऐसे जो विकल्प।

'**बन्धमोक्षपथपातिभिः**' '**बन्धपथ**' और '**मोक्षपथ**' दोनों लेना न साथ में? '**बन्धमोक्षपथ**' बन्ध का मार्ग **मोह-राग-द्वेष, बन्ध का कारण है;...** बन्ध का कारण क्या? मोह-राग-द्वेष, और मोक्ष का कारण क्या? **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्षमार्ग है— ऐसे जो पक्ष,...** उसके पक्ष के विकल्प उठें, **उनमें पड़नेवाले हैं अर्थात् अपने-अपने पक्ष को कहते हैं, ऐसे हैं अनेक विकल्परूप**। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसे विकल्प जितने काल तक होते हैं, उतने काल तक शुद्धस्वरूप का अनुभव नहीं होता। बाहर के यह साधन बिगड़े हुए हों तो शुद्ध अनुभव नहीं होता, ऐसा नहीं है। बाहर की असुविधा न हो और सुविधा हो, तब अनुभव होता है, ऐसा नहीं परन्तु ऐसे विकल्प हों, तब तक अनुभव नहीं होता। ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहने का आशय यह कि तेरे किये हुए विकल्प हैं, वे तुझे रोकते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सवेरे में मुश्किल से पूजा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुश्किल से पूजा हो, लो! यह कहते हैं कि ऐसे शुभ विकल्प के लिये ऐसे साधन हों तो हो, ऐसा नहीं है। और यहाँ तो मुक्ति के लिये ऐसे विकल्प की भी आवश्यकता नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह तो अन्तिम श्लोक है न? इसमें '**लस**' '**लस**' तो रखा है न कहीं? नहीं? इसमें '**लसत्**' शब्द है या नहीं? मूल में क्या है? अपने अभी यह पढ़ा नहीं। लो! यह निकला। देखो! 'स्याद्वाद द्वारा प्रदीप किया गया लसलसता जिसका तेज है।' '**लसत्**' शब्द है न? वह अपने रखा है।

देखो! यह निकला, हों! स्याद्वाद द्वारा प्रदीप करने में सम्यग्ज्ञान द्वारा प्रगट करने में वह चैतन्य जिसका जगमगाहट लसलसता जिसका तेज है, जिसमें शुद्ध स्वभाव की महिमा है। ऐसा प्रकाश मुझमें उदय पाया है। लो! वहाँ बन्ध-मोक्ष के मार्ग में पड़नेवाले अन्य भावों से मुझे क्या प्रयोजन है? देखा? समझ में आया? अपनी दशा में अपनी बात करे और ऐसा करके दूसरे को समझाते हैं। आहाहा! अब उस शुद्ध स्वरूप का अनुभव होने पर क्या होता है? (विकल्प) हो, तब तक अनुभव नहीं होता। इसकी विशेष बात कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १२, मंगलवार, दिनांक-०४-०१-१९६६, कलश-२६९, २७० प्रवचन-२९०

साध्य-साधक अधिकार, यह कलशटीका का अधिकार है, छठवाँ कलश है। यहाँ तक आया, देखो! भावार्थ, भावार्थ थोड़ा आया था, फिर से (लेते हैं)। है न भावार्थ? **भावार्थ इस प्रकार है कि ऐसे विकल्प जितने काल तक होते हैं, उतने काल तक शुद्ध स्वरूप का अनुभव नहीं होता। शुद्ध स्वरूप का अनुभव होने पर ऐसे विकल्प विद्यमान ही नहीं होते, विचार किसका किया जाये?** क्या कहते हैं? ऐसा वांचे कोई एक-दो लाईन में समझ में आये ऐसा नहीं है। कहते हैं कि यह आत्मा जो है, वह शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है। इस देह में आत्मा जो है, वह इस शरीर, मिट्टी आदि, यह कर्म आदि, वाणी से भिन्न चीज़ है। यह तो मिट्टी है न? यह तो जड़ है, वाणी जड़ है, अन्दर कर्म जड़ है, उनसे आत्मतत्त्व भिन्न है।

उस आत्मतत्त्व में अनन्त शान्ति, आनन्द आदि अनन्त गुण भरे हैं। उसका जब अन्तर अनुभव दृष्टि करने से जिसे धर्म करना हो, उसे यह आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड शुद्ध चैतन्य है, उसकी अन्तर में दृष्टि करने से जो अनुभव हो, उसे धर्म कहते हैं। उस धर्म के अनुभव—काल में कहते हैं, यह मैं यह शुद्ध हूँ या अशुद्ध हूँ, या यह रागादि थे और टालता हूँ, ऐसे विचार के विकल्प की मुझे क्या आवश्यकता है? सूक्ष्म बात है। अभी तो पूर्व भव की और इस भव की बातों में विवाद। बड़े-बड़े लाखों रुपये पैदा करते हों बाहर और दो-दो, पाँच-पाँच लाख। जुगराजजी!

मुमुक्षु : हमारे जैन समाज के प्रमुख हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमुख किसे कहना? कहीं पैसे अधिक हो गये और बड़ा हो गया? प्रमुख हो गया?

यहाँ तो वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर तीर्थंकर जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान अपने स्वरूप के पूर्ण विकास में ज्ञात हुआ, उन्होंने कहे हुए तत्त्वों का भान करके और इस आत्मा की अन्तर दृष्टि करे, उसे प्रमुख और बड़ा कहा जाता है। समझ में आया? बाकी सब शून्य—गोल-गोल कहने में आते हैं। क्या कहते हैं? देखो! यहाँ तो बहुत अन्तिम बात आयी है।

मुमुक्षु : महत्ता दिखाई दे....

पूज्य गुरुदेवश्री : महत्ता धूल में दिखती नहीं। किसे कहना महत्ता? पाँच-पच्चीस लाख इकट्ठे हुए, करोड़ इकट्ठे हुए और मरते (समय) ऐं..ऐं..ऐं...! ऐसा करके पड़ा हो। लाख तेरे ला न डॉक्टर को! हाय..हाय..! अब यह रोग मिटता नहीं। क्या होता होगा? मलूकचन्दभाई! मन्त्र, तन्त्र, जन्त्र और आता है न? भाई! छहढाला में। कितने मन्त्र, तन्त्र, जन्त्र कर और जाये। यह देह है, वह भिन्न चीज़ है, आत्मा अनादि की भिन्न चीज़ है। उसे इसके कारण क्या है? और यह कहीं रखने से रहे ऐसा है। यह तो मिट्टी-धूल है। जगत के दाल-भात सब्जी यहाँ खड़काये हुए हैं, उनका यह शरीर बना है। वह आत्मा को मरण के समय, देह छूटने के समय है शरण कोई? लाख रुपये दे और मन्त्र, तन्त्र पढ़ावे, हा..हो.. हा..हो... करे, मर जाये।

मुमुक्षु : अभी तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं अभी, मूढ़ होकर मानता है। जेचन्दभाई!

महा चैतन्य पदार्थ अन्दर है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जिसे आत्मा देखा है और ऐसे ही आत्मा जगत के अन्दर अनन्त हैं। वह आत्मा अनादि काल से है, वह कोई नया नहीं और कभी उसका नाश होकर राख में मिल जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं। ज्ञानमूर्ति चिदानन्दस्वरूप आत्मा की वर्तमान दशा में उसमें विकार है, कर्म का, जड़ का सम्बन्ध है। वह होने पर भी, जिसे धर्म करना है और आत्मा की प्राप्ति करनी है। आत्मा जिसे प्राप्ति (करना है) अर्थात् जो अपनी चीज़ है, उसे प्राप्त करना है, उसे क्या करना? कि उसे आत्मा की पहले पहिचान करके ऐसे अनन्त गुण के पिण्ड की ओर दृष्टि करके विकल्प पुण्य-पाप के उठें, उनसे भी भिन्न हूँ और मोक्षमार्ग और बन्धमार्ग के विचार के विकल्प से भी भिन्न हूँ। समझ में आया?

सब बड़े-बड़े थे भाई उसके साथ। बड़े-बड़े डॉक्टर। भंसाली और वह बड़ा और तीसरा बड़ा और चौथा बड़ा। होंगे, कहा बड़े सब। तीन लाख की बड़ी मोटर साथ में थी। तब मोटर लेकर आये थे, वह मोटर थी। वे कहते थे, कोई कहता था। मैंने देखी नहीं, कोई कहता था। लाये होंगे, ठीक है। जो हो वह धूल की हो। लाख की हो, दो

लाख की (हो)। मिट्टी है न? उसमें आत्मा को क्या है अन्दर?

मुमुक्षु : किराये से लाये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी किसी की। परन्तु वह तो कुछ लाया था न? कल नहीं था एक बड़ा आया? वह भी किसी की। सरकार की हो, उसकी कहाँ थी? उसे क्या? वह तो सरकार की ओर से निश्चित करने आये थे न? यह जातिस्मरण का कल निश्चित करने आये थे। जयपुर में बड़ा प्रोफेसर था न? आये थे न तुम्हारे यहाँ? यह बात थोड़ी निकली थी। वह कहे, आत्मा होगा? पुनर्जन्म होगा? परन्तु तुम यह जैन नाम धराकर बड़े-बड़े, इतनी खबर नहीं कि आत्मा इस देह से पहले था... पहले था... पहले था... पहले था... ऐसे देह के थोथा तो अनन्त बार आये और गये, आत्मा तो वह की वह चीज़ है। कहीं भी निवृत्ति नहीं मिलती। यह पाप के धन्धे के कारण पूरे दिन। क्या कुछ कोई भी निवृत्ति करके विचार किया है कि मैं कौन हूँ?

मुमुक्षु : यह किसलिए निवृत्ति करे? पैसा मिलता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी पैसा नहीं, मर जायेगा रंक की भाँति कुत्ते का पिल्ला मरे ऐसे मर जायेगा। हाय.. हाय! लो, हम कोई नहीं। तेरे पाँच, दो पाँच लाख, पचास लाख हो, वे पड़े रहेंगे। साथ में आयेंगे? नहीं आयेंगे? कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ भी कब इसके पास थे? यहाँ तो भिन्न पड़े हैं। जड़ मिट्टी, धूल है। इसके पास तो 'यह मेरे' ऐसी ममता तो इसके पास पड़ी है। मोहनभाई! यह ममता का भाव है, उसके पीछे भगवान चिदानन्द आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? जो अनादि अनन्त सत् सत् चिदानन्दस्वरूप है। सत्... सत्... सत्... शाश्वत्, सत् अस्तिवाला पदार्थ ज्ञान और आनन्द से भरपूर तत्त्व है।

कहते हैं कि धर्मी जीव अपने आत्मा की दृष्टि करके अनुभव करता है कि मैं तो शुद्ध आनन्द आत्मा हूँ। है न? **शुद्ध स्वरूप का अनुभव होने पर ऐसे विकल्प विद्यमान ही नहीं होते,....** मैं मोक्षमार्ग साधता हूँ या बन्धमार्ग से हटता हूँ, ऐसे विकल्प भी अन्तर दृष्टि के अनुभव काल में नहीं होते। समझ में आया?

विचार किसका किया जाये? प्रभु स्वयं चैतन्यमूर्ति अन्दर में साक्षात्कार हुआ।

सब विकल्प की वृत्ति छोड़कर शरीर, वाणी (से पृथक्) अन्तर चैतन्य पृथक् तत्त्व है। उसके सन्मुख के अनुभव में गया। अब विचार किसके रहे? किसका विचार करे? जो विचार करनेवाला विकल्प है, वह तो छूटकर अन्दर स्थिर हुआ।

मुमुक्षु : .... प्रयोग करता है वह कहाँ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निकट दिखलाते हैं न! यह क्या दिखाते हैं? यह जाननेवाला कौन है? जड़ से भिन्न है। यह बताया। क्या बताते हैं यह? जाननहार इससे भिन्न है। यह और दोनों एक नहीं है। और इस जाननेवाले में जितने पुण्य-पाप के राग हो, वह कृत्रिम विकार है, उनसे भिन्न है।

मुमुक्षु : इसमें क्या दिखाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिखाया क्या? उसकी आँखें चाहिए न उसे! आँखें बिना किस प्रकार देखेगा यह? ऐसे आँखें बन्द करे तो भी जो जाननेवाला है, और पाँच-पच्चीस वर्ष की यादगिरि करता है वह याद करनेवाला तत्त्व चैतन्य और अनादि-अनन्त नित्य और ध्रुव है। जमुभाई! अब से नहीं विचारना, नहीं इसे निर्णय करना, क्या आत्मा की महत्ता (उसे) जानना नहीं। ऐसे का ऐसे अनन्त काल से मरकर भटककर राजा हुआ, रंक हुआ, देव हुआ और भूतड़ा हुआ और पशु हुआ। ऐसे अनन्त अवतार धारण किये। उसमें धूल में भी कहीं यह सुखी नहीं था। यह दुःख के सरदार में सब जगह सींक गया है। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि भाई! तेरी चीज़ है न, प्रभु! अन्दर ज्ञानानन्द की ज्योति सर्वज्ञ परमेश्वर ने, केवली तीर्थंकरदेव ने तेरा आत्मा ऐसा देखा है। समझ में आया? कैसा है? देखो! **कैसा हूँ मैं?** धर्मी अन्तर में विचार करता है। '**स्याद्वाददीपितल-सन्महसि**' **द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप से प्रगट हुआ है, प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र स्वरूप जिसका**। लो!

मुमुक्षु : स्याद्वाद का अर्थ ही द्रव्य-पर्याय करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद का अर्थ द्रव्य-पर्याय ही करते हैं यह। एकान्त से नहीं न।

और कैसा हूँ ? वस्तुरूप से, द्रव्यरूप से त्रिकाल हूँ और अवस्था बदलने के रूप से क्षणिक मेरी दशा है। विचार का पलटा खाता है, ज्ञान-दर्शन आदि पर्याय—दशा का (पलटा होता है) वह पलटनेरूप पर्याय है और त्रिकाल ध्रुव है, वह मैं आत्मा हूँ। शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप के राग, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? **द्रव्यरूप...** द्रव्य अर्थात् कौन? यह पैसा होगा द्रव्यरूप न? फूलचन्दभाई! क्या होगा? तब द्रव्य अर्थात् क्या? इसमें भी क्या द्रव्य? आत्मा नहीं। द्रव्यरूप और पर्यायरूप दोनों में द्रव्यरूप क्या? ऐसा पूछता हूँ। त्रिकाली वस्तु कायम रहनेवाला तत्त्व, वह द्रव्य। यहाँ फें फें हो जाये ऐसा है और एक समय की अवस्था बदलती है विचार की, श्रद्धा की उसे अवस्था कहते हैं, पर्याय कहते हैं। कायम टिके, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य और पर्याय स्वरूप से आत्मा है। द्रव्य और पर्याय किसे खबर क्या होगा यह?

जैन में जन्मे, उसे उसके तत्त्व की खबर नहीं होती। वीतराग किसे कहते हैं और वीतराग नाम से भगत। किसके भगत हैं? जड़ के भगत हैं। आया था न सवेरे? '...' रयणसे भक्ति धर्मी तो रत्नत्रय का भक्त है। अज्ञानी तो पुण्य और पाप शरीर, वाणी मेरे का, जड़ का भगत है, जड़ का भजन करता है। समझ में आया? धर्मी जीव अपने आत्मा को द्रव्य अर्थात् त्रिकालरूप से तत्त्व जानता है और पर्याय अर्थात् अवस्था बदलता भी जानता है।

प्रगट हुआ है... ऐसा आत्मा मैं प्रगट हुआ हूँ। कायम टिकता तत्त्व और वर्तमान पर्याय में परिणमता आत्मा ऐसा मैं हूँ। **प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र स्वरूप जिसका।** राग के विकल्प बिना आत्मा प्रत्यक्ष अपने से ज्ञान से प्रत्यक्ष पर्याय और द्रव्य का भान हो, ऐसा मैं प्रत्यक्ष हूँ। कहो, समझ में आया इसमें? ज्ञान का तेज चैतन्य का सूर्य प्रभु आत्मा है। चैतन्य तेज लसत, लसलसता तेज कहते हैं न? जगमगाहट। अपने तो ऐसा अर्थ किया है न उसमें? लसत का अर्थ। यह तो सब अन्ध मिट्टी-धूल है। दाल, भात, रोटी में से बना हुआ और श्मशान में राख होकर उड़ जायेगा, यह कहीं आत्मा नहीं है। समझ में आया?

आत्मा तो चैतन्य के तेज से—नूर से और आनन्द से भरपूर पदार्थ है। उसकी

अन्तर में दृष्टि करने से धर्मी जीव को—सम्यग्दृष्टि जीव को अपना द्रव्य शाश्वत् है, ऐसा भान होता है और अवस्था से निर्मलपर्याय क्षण-क्षण में बदलती है, ऐसा भान होता है। यह सब ज्ञान का रूप है। कायम टिके तो भी ज्ञान और पलटे तो भी ज्ञान। राग और पुण्य और विकल्प, वे मेरे स्वरूप में नहीं। समझ में आया?

एक व्यक्ति बहुत पूछता था। एक व्यक्ति कोई था। वह लड़की ऐसा कहती है? लड़की ऐसा कहती है? कहते हैं। तुमने अब मुफ्त में कहा बड़े पढ़े हुए पूंछड़े लगाये इतने और पाँच, पचास हजार पैदा करते हों। धूल भी नहीं, कहा। कहते हैं, लड़की ने कहा। लड़की ने सब बताया? कहा, हाँ बताया। कोई पूछता था। उसे अभी आत्मा परलोक में था वहाँ से यहाँ आया और यहाँ से वापस परलोक में जायेगा, इतनी खबर नहीं होती। तुमने आत्मा हूँ, इसकी खबर कहाँ से लाना? यह तो कहा, सबको इस समय खंखेरा था। सब बड़े-बड़े थे सात, आठ, दस व्यक्ति। भंसाली और बारह महीने के लाख, सवा लाख मिलते हैं। अमेरिका की कम्पनी। भंसाली डॉक्टर। लाख, दो लाख उसे अपनी है न? वहाँ गये थे न हम? (संवत्) २०१३ के वर्ष। धूल में आवे और जावे। कैसे होगा? मलूकचन्दभाई! ऐसे पाँच, दस लाख, बीस लाख, करोड़, पाँच करोड़ पुण्य हो तो आवे और न हो तो न आवे, कहीं तुम्हारी चतुराई के कारण आते नहीं। यह बराबर होगा? जेचन्दभाई! उसके अन्दर में रहा क्या परन्तु? उसमें तुझे सब अधिक सूजन हुई।

मैं एक आत्मा अनादि-अनन्त कहाँ भटकता हूँ? क्या है यह? मुझे पर के बिना चलता नहीं कि मेरी चीज़ उसकी मुझे खबर पड़े नहीं। यह वह भिखारी जैसा रंक गुलाम वह यह आत्मा कहा जाये उसे? भगवान कहते हैं, उसे हम आत्मा नहीं कहते। क्योंकि पुण्य और पाप का गुलाम भिखारी, यह पुण्य-पाप विकार है, उसे आत्मा हम कहते नहीं। समझ में आया? और उसके फल की माँग करनेवाला, उसे भी हम आत्मा नहीं कहते। सोभागमलजी! अरे! वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में इन्द्रों के मध्य में भगवान की वाणी आती थी, जो कोई आत्मा अपनी चिदानन्द की सम्पदा छोड़कर पुण्य और पाप के भाव को भाता है और उसके फल को चाहता है, उसे हम आत्मा नहीं कहते। वह जड़ को भानेवाला, वह आत्मा नहीं। कहो, जमुभाई!

मुमुक्षु : यह धर्म करता हो तो सुखी ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन सा धर्म? कागज में लिखे वह मेले में? मेले में लिखते हैं कि यह मर गया। धर्म करे वह सुखी, हमारे कुछ लेना-देना नहीं होता। ऐसा कागज में लिखे। परन्तु धर्म किसे कहना, इसे लिखनेवाले को भान नहीं होता। ऐसा होगा न? मणिभाई! यह आत्मा अन्दर धर्म हो, ऐसा है; बाह्य कहीं धर्म है नहीं। यह आत्मा ज्ञानानन्द चिदानन्द की मूर्ति है, ज्ञानानन्दस्वरूप है। त्रिकाल जिसमें ज्ञान का सूर्य है और अतीन्द्रिय आनन्द का जिसमें—आत्मा में रस पड़ा है। उसकी अन्तर में दृष्टि करके उसका अनुभव करना, यह इसका नाम आत्मा और इसका नाम धर्मी कहा जाता है। समझ में आया?

प्रत्यक्ष '**लसत्**' का अर्थ यह किया, देखो! जगमगाहट, लसलसाट। '**महसि**' '**महसि**' ज्ञान का पुंज। ज्ञानमात्र मैं हूँ। **और कैसा हूँ? सर्व काल उद्योतस्वरूप हूँ।** मैं तो सर्व काल ज्ञान के तेज स्वरूप हूँ। मुझमें शरीर, वाणी, मन भी नहीं, कर्म भी नहीं, पुण्य और पाप के भाव उठते हैं, वे मेरी चीज़ में नहीं। मेरी चीज़ में हो, तो पृथक् पड़े नहीं पृथक् पड़े, वह मेरी चीज़ में है नहीं। ऐसे अन्तर में आत्मा को अनुभव करना, उसका नाम धर्म और आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

चाहे जितना पैसा हो और जहाँ शरीर में रोग उठा हाय.. हाय..! डॉक्टर कहता है कि केंसर है। अब? कहना नहीं, भाईसाहेब, हों! एक व्यक्ति को केंसर हुआ। ४८ वर्ष में नयी विवाहित। दस लाख रुपये। भाईसाहेब कहना नहीं, हों! मुझे कहा, मैंने नयी स्त्री से विवाह किया है? यह तुम कहना नहीं किसी से। समझ में आया? अन्त में मर गया। फिर तो खबर बिना रहे? भाईसाहेब कहना नहीं, हों! मैं तो सहन करूँगा। (मुझे) तो दिक्कत नहीं परन्तु नया विवाह किया है, लड़के अभी छोटे हैं और जहाँ केंसर कहोगे तो सब चिल्लाहट मचा जायेंगे। उसमें कुछ दूसरा हो, ऐसा है?

इसी प्रकार आत्मा को अनादि से यह केंसर हुआ है। पुण्य और पाप के भाव, शरीर मेरा, यह क्षय रोग लगा है इसे। समझ में आया? यह क्षय रोग टालना हो और आत्मा को निरोगी करना हो तो इसे चिदानन्द प्रभु आत्मा का माहात्म्य करके दृष्टि करना,

उसका अनुभव करना, उसे प्रकाश में पर्याय में लाना, इसका नाम इसके क्षयरोग के नाश का उपाय है। आत्मा की प्राप्ति और मुक्ति का उपाय यह है। **सर्व काल उद्योत....** अब प्रगट हुआ, वह प्रगट हुआ, ऐसा कहना है। चैतन्यज्योति जहाँ भान में आया और प्रगट हुआ (तो अब) ऐसा का ऐसा अनन्त काल रहेगा। उसे अब राग-द्वेष और परिभ्रमण होता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... केंसर का नाम पड़ा वहाँ फड़फड़ाहट होती है, ऐसा ... होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता, इसे भान नहीं न! यही कहता हूँ। इस केंसर का फड़फड़ाहट का पार नहीं परन्तु इसे भान कब है? आहाहा! ऐसे नरक में, पशु में देखो न! ऐसे सिंह पकड़े हिरण को। सैंकड़ो हिरण हो साथ में, परन्तु एक हिरण का जहाँ पकड़ा... ऐसे काल की अवधि जहाँ आयी, वहाँ देह को पकड़ा। छोड़ देह। तेरे स्त्री, पुत्र और लाख तेरे बँगले, महल पड़े रहेंगे, सब तुझमें नहीं हैं।

मुमुक्षु : ऐसा काल कहता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : काल कहता है न इसे! भान नहीं करता इसका? छूटे अब हाय... हाय..! जाऊँगा कहाँ? जाऊँगा कहा? कहा न मरते समय एक व्यक्ति रोता था। पूरी जिन्दगी चतुर कहलाया, गाँव में सामने बड़े कहलावे और सुना हुआ सही कि धर्म नहीं करे, वह चार गति में भटकने जायेगा। मरने के (समय) रोवे। दूसरे पूछें कि तुम किसलिए (रोते हो)? तुम्हारे पुत्र है, पैसा है। परन्तु कहना क्या उसे? हाय... हाय...! अब यहाँ से कहाँ जाऊँगा? हो गया, हो गयी उम्र? मैंने आत्मा का कुछ किया नहीं। नीचे जाये ढोर में। मरकर कीड़ा, कौवे में अवतार हो। यहाँ कहलाये बनिया और सेठिया, वहाँ मरकर कीड़ा और कौवे हो।

मुमुक्षु : बनिया और सेठिया हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया और सेठिया मरकर वहाँ जाये। जाये कहाँ अन्यत्र जाता था? अमरचन्दभाई! कहा नहीं था? मैंने ही कहा नहीं था? (संवत्)१९६६ के वर्ष में। हमारे दुकान में तो मैंने कहा था, दुकान में कहा था। हमारे कुंवरजीभाई को कहा था। ऐ गुलाबचन्दभाई! १९६६ के वर्ष में सबकी दुकान (थी)। मेरी दुकान यह

थी और उनकी दुकान दोनों अलग थी। १९६६ की बात है, हों! १९७० में दीक्षा ली, उसके पहले। वहाँ दुकान पर गया (और कहा), परन्तु ऐ पूरे दिन यह? गाँव में कोई साधु आवे, कुछ सुना नहीं और यह धन्धा... धन्धा... धन्धा... तब बहुत कहा था। हमारे भाई खुशालभाई और दोनों बैठे थे। मैं तो भगत कहलाता था। इसलिए कोई मेरे सामने बोलते नहीं। ऐई! मरकर कहाँ जाओगे? कहा। यहाँ पूरे दिन (धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं)? ढ़ोर में जाओगे, कहा, हों! ऐसा कहा था। तब १९६६ के वर्ष में। ऐ... गुलाबचन्दभाई! यह कुंवरजीभाई और तुम्हारे रिश्तेदार को कहा था।

मुमुक्षु : आप तो सबको कहते हो, ... नहीं कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी तब तो उम्र छोटी न! बीस वर्ष की उम्र थी तब। पूरे दिन यह? कौन आत्मा? साधु गाँव में आवे वहाँ सुनने जाना नहीं। रात्रि में आठ बजे दुकान बन्द करना और रातडिया। तुम उसका मुख न देखो, वह तुम्हारा मुख न देखे। फिर भाई ने नाम रखा था, रातडिया, नाम रखा था। वह यहाँ के पालेज के रातडिया श्रावक। पूरे दिन (धन्धे के कारण) सामने देखे नहीं। क्या करना है परन्तु यह जीकर, कमा-कमाकर? क्या आत्मा है? क्या धर्म है? इसका तो कुछ विचार नहीं। मरकर पशु में जाओगे, कहा। मूर्छा-मूर्छा पूरे दिन, यह तुम्हारी होली सुलगती है।

मुमुक्षु : जिस काम पर बैठे हों, वह काम पूरा करना पड़े न!

पूज्य गुरुदेवश्री : काम किसका पूरा करता था? कब (किया)? किसी का पूरा हुआ नहीं और बाद में अधूरा नहीं। लोग नहीं कहते? 'मरने तक किसी के काम पूरे हुए नहीं और बाद में अधूरे रहे नहीं।' ऐसी लोग बातें तो करते हैं, भान बिना भी। क्यों भगवानभाई! क्या करे? ऐसा मुँह फटकर चला जाये। ऐ... तू कौन है, उसकी कीमत तो कर। दुनिया की कीमत करने गया परन्तु तेरी कीमत तुझे आती नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि '**शुद्धस्वभावमहिमनि**' देखो! अहो **शुद्धपना के कारण...** यह मेरी महिमा है। कोई शरीर, वाणी की महिमा मेरी नहीं है, पुण्य-पाप के विकल्प वह मेरी महिमा नहीं है। धर्मी को **शुद्धपना के कारण 'महिमनि' प्रगटपना है जिसका।** यह '**महिमनि**' की व्याख्या की। मेरा स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, वह मेरी महिमा और

प्रगटपना है। बाहर पैसे मिले और पुण्य-पाप के भाव किये, वह कहीं मेरा प्रगटपना नहीं, वह मेरा प्रगटपना नहीं, वह तो विकार का प्रगटपना है। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव, वह तो पाप और पुण्य के भाव विकार हैं। तू कहाँ उसमें आया? मेरा शुद्ध स्वभाव पूर्णानन्द ज्ञायक, वह मेरी महिमा और उसमें मैं प्रगटरूप से हूँ, दूसरे में मैं नहीं। ऐसे आत्मा का अनुभव करना इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म कहा जाता है। यह धर्म वह मुक्ति का उपाय है।

कलश - २७०

(वसन्ततिलका)

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंड्यमानः।
तस्मादखंडमनिराकृत-खंडमेक-
मेकांतशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ।।७-२७०।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'तस्मात् अहं चित् महः अस्मि' [तस्मात्] तिस कारण से [अहं] मैं, [चिन्महः अस्मि] ज्ञानमात्र प्रकाशपुंज हूँ। और कैसा हूँ? 'अखण्डं' अखण्डित प्रदेश हूँ। और कैसा हूँ? 'अनिराकृतखंडं' किसी के कारण अखण्ड नहीं हुआ हूँ; सहज ही अखण्डरूप हूँ। और कैसा हूँ? 'एकं' समस्त विकल्पों से रहित हूँ। और कैसा हूँ? 'एकान्तशान्तं' [एकान्त] सर्वथा प्रकार [शान्तं] समस्त परद्रव्यों से रहित हूँ। और कैसा हूँ? 'अचलं' अपने स्वरूप से सर्व काल में अन्यथा नहीं हूँ। ऐसा चैतन्यस्वरूप, मैं हूँ। जिस कारण से 'अयं आत्मा नयेक्षणखण्ड्यमानः सद्यः प्रणश्यति' [अयं आत्मा] यह जीववस्तु, [नय] द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक ऐसे अनेक विकल्प, वे हुए [ईक्षण] अनेक लोचन, उनके द्वारा [खण्ड्यमानः] अनेकरूप देखा हुआ [सद्यः प्रणश्यति] खण्ड-खण्ड होकर मूल से खोज मिटा-नाश को प्राप्त होता है। इतने नय एक में कैसे घटित होते हैं? उत्तर इस प्रकार है— क्योंकि ऐसा है जीवद्रव्य— 'चित्रात्मशक्ति-समुदायमयः' [चित्र] अनेक प्रकार अस्तिपना-नास्तिपना, एकपना-अनेकपना, ध्रुवपना-अध्रुवपना इत्यादि अनेक हैं ऐसे जो [आत्मशक्ति] जीवद्रव्य के गुण, उनका जो [समुदाय] द्रव्य से अभिन्नपना, [मयः] उसमय अर्थात् ऐसा है जीवद्रव्य; इसलिए एक शक्ति को कहता है एक नय, किन्तु अनन्त शक्तियाँ हैं, इस कारण, एक-एक नय करते हुए अनन्त नय होते हैं। ऐसा करते हुए बहुत विकल्प उपजते हैं, जीव का अनुभव खो जाता है। इसलिए निर्विकल्प ज्ञान वस्तुमात्र, अनुभव करनेयोग्य है।।७-२७०।।

न द्रव्येण खंडयामि, न क्षेत्रेण खंडयामि, न कालेन खंडयामि,
न भावेन खंडयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रःभावोऽस्मि।*

* श्री समयसार की आत्मख्याति टीका में इस अंश को कलशरूप नहीं गिनकर, गद्यरूप गिना गया है। अतः आत्मख्याति में उसको कलशरूप से नम्बर नहीं दिया गया है।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' [भावः अस्मि] मैं, वस्तुस्वरूप हूँ। और कैसा हूँ? [ज्ञानमात्रः] चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका, ऐसा हूँ। 'एकः' समस्त भेद-विकल्पों से रहित हूँ। और कैसा हूँ? 'सुविशुद्धः' द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरूप उपाधि से रहित हूँ। और कैसा हूँ? 'द्रव्येण न खण्डयामि' जीव, स्वद्रव्यरूप है—ऐसा अनुभवने पर भी मैं, अखण्डित हूँ। 'क्षेत्रेण न खण्डयामि' जीव, स्वक्षेत्ररूप है—ऐसा अनुभवने पर भी मैं, अखण्डित हूँ। 'कालेन न खण्डयामि' जीव, स्वकालरूप है—ऐसा अनुभवने पर भी मैं, अखण्डित हूँ। 'भावेन न खण्डयामि' जीव, स्वभावरूप है—ऐसा अनुभवने पर भी मैं, अखण्डित हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि एक जीववस्तु, स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभावरूप चार प्रकार के भेदों द्वारा कही जाती है, तथापि चार सत्ता नहीं है; एक सत्ता है। उसका दृष्टान्त— चार सत्ता इस प्रकार से तो नहीं है कि जिस प्रकार एक आम्रफल चार प्रकार है। उसका विवरण— कोई अंश, रस है; कोई अंश, छिलका है; कोई अंश, गुठली है; कोई अंश, मीठा है। उसी प्रकार एक जीववस्तु, कोई अंश, जीवद्रव्य है; कोई अंश, जीवक्षेत्र है; कोई अंश, जीवकाल है; कोई अंश, जीवभाव है— इस प्रकार तो नहीं है। ऐसा मानने पर सर्व विपरीत होता है। इस कारण इस प्रकार है कि जिस प्रकार एक आम्रफल, स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान पुद्गल का पिण्ड है; इसलिए स्पर्शमात्र से विचारने पर, स्पर्शमात्र है; रसमात्र से विचारने पर, रसमात्र है; गन्धमात्र से विचारने पर, गन्धमात्र है; वर्णमात्र से विचारने पर, वर्णमात्र है। उसी प्रकार एक जीववस्तु, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान है; इसलिए स्वद्रव्यरूप से विचारने पर, स्वद्रव्यमात्र है; स्वक्षेत्ररूप से विचारने पर, स्वक्षेत्रमात्र है; स्वकालरूप से विचारने पर, स्वकालमात्र है; स्वभावरूप से विचारने पर, स्वभावमात्र है। इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है, वह अखण्डित है। अखण्डित शब्द का ऐसा अर्थ है।

कलश - २७० पर प्रवचन

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंड्यमानः।
तस्मादखंडमनिराकृत-खंडमेक-
मेकांतशांतमचलं चिदहं महोऽस्मि ।।७-२७०।।

देखो ! धर्मी अपने आत्मा को ऐसा भाता है। **'तस्मात् अहं चित् महः अस्मि' तिस कारण से मैं ज्ञानमात्र प्रकाशपुंज हूँ।** मैं तो चैतन्य ज्ञान का पुंज हूँ। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... ऐसा चैतन्यसूर्य, वह आत्मा है। कहो, समझ में आया इसमें ? **और कैसा हूँ ? 'अखण्डं' अखण्डित प्रदेश हूँ।** असंख्य प्रदेश है न ? असंख्य। अखण्ड हूँ। प्रकाश का पुंज हूँ और अखण्ड हूँ। **और कैसा हूँ ?** अखण्ड। समझे ? एकरूप हूँ। विकल्प, भेद आदि मुझमें नहीं। ऐसा आत्मा अन्दर में दृष्टि में लेना, उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया ?

अखण्डित प्रदेश हूँ। और कैसा हूँ ? 'अनिराकृतखंडं' किसी के कारण अखण्ड नहीं हुआ हूँ,... किसी के कारण अखण्ड नहीं हुआ हूँ, सहज ही अखण्डरूप हूँ.... ऐसा अर्थ किया है। उसमें ऐसा आया था न ? खण्ड-खण्ड निराकृत नहीं होता तथापि... इसके अर्थ ही अलग प्रकार के हैं। **किसी के कारण अखण्ड नहीं हुआ हूँ,...** मैं तो मुझसे अखण्डानन्द, ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, एकरूप अभेद वस्तु हूँ। समझ में आया ? परन्तु गजब भाव ! प्रकाश का पुंज आत्मा हूँ। चैतनय पुंज अनादि-अनन्त ध्रुव हूँ और अखण्ड हूँ, एकरूप हूँ। **और कैसा हूँ ? किसी के कारण अखण्ड नहीं हुआ हूँ,...** सहजरूप से अखण्ड हूँ। मेरा स्वभाव ही अखण्ड है। अखण्ड है अर्थात् समझ में आया ? शरीर, वाणी, मन में तो नहीं, पुण्य-पाप में भी मैं नहीं, परन्तु मुझमें जो अनन्त गुण है, अनन्त शक्ति है, इससे एक-एक शक्ति खण्ड-खण्ड नहीं, ऐसा कहते हैं। मैं तो समस्त शक्तियों का पिण्ड अखण्ड हूँ। अब उसी और उसी में द्रव्य की अन्दर बात लेते हैं। क्या कहते हैं ?

वस्तु जो आत्मा है महान पदार्थ, उसमें यह पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, कर्म तो नहीं, वह तो एक बात रही। अब उस वस्तु में अनन्त शक्ति है। उसमें शक्ति की दूसरी बात लेते हैं थोड़ी बहुत, ध्रुव और अध्रुव ऐसी लेते हैं। टीकाकार ने ४७ ली है। परमाध्यात्म तरंगिणी, वह तो पहली लेते हैं न एक शक्ति परन्तु इसमें डाली है। क्या कहते हैं ? यह आत्मपदार्थ है न ? जैसे बर्फ की शीतल पाट (होती है) वह पाट, उसे स्वयं साथ में कोई तिनका, लकड़ी का चूरा ऊपर होता है न ? अथवा पेटी में रही हो, उस पेटी से भी पाट भिन्न है और उसमें बारीक चूरा लकड़ी का होता है। बड़ी-बड़ी

शिला होती है दो-दो, चार, चार मण की ? वह चूरा लकड़ी का है, उससे भिन्न है। इसी प्रकार यह आत्मा है पेटी लकड़ी की यह जड़ की, इससे भिन्न चीज़ है। उसमें जैसे लकड़ी का बारीक चूरा है, वैसे पुण्य और पाप मैल विकार है, उससे भिन्न चीज़ है। अब यह अखण्ड पाट है दो मण की, पाँच मण की आती है न ? बड़ी पाँच-पाँच मण की बड़ी पाट आती है। मुम्बई में तो बड़ी (पाट होती है)। उसी प्रकार इस देह में यह शीतल चिदानन्द की पाट है।

इन हड्डियों से भिन्न अन्दर शीतल शान्त आत्मा जिसका ज्ञान पुंज, और शीतल शान्त स्वभाव की पाट स्वयं पूरी पड़ी है। उसके अन्दर में कहते हैं कि यह पुण्य-पाप और शरीर, वाणी तो नहीं, परन्तु उस पाट में यह शीतल है और कठोर है और भारी है न... समझ में आया ? ऐसी जो शक्तियों का भाग पड़ता है, उस शीतल पाट में ऐसे भाग ही नहीं हैं। वह वस्तु ही अखण्ड है। समझ में आया ? यहाँ तो गुण में अनेकपने (होने) पर भी मैं तो एकरूप हूँ, ऐसा सिद्ध करना है। अब आगे बात (लेते हैं)। अन्तिम श्लोक हैं। समझ में आया ?

वस्तु अन्दर आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो चैतन्यपिण्ड शान्तरस का कन्द पड़ा है। उस वस्तु में यह धूल नहीं, वाणी नहीं, कर्म के जड़ रजकण, वे इसमें नहीं और पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं दया, दान, काम, क्रोध, कमाना, कामभोग की वृत्तियाँ वह सब विकार, वह स्वरूप में नहीं, भटकने के लिये नये खड़े करता है। इसके बिना की चीज़ हूँ। अब उस चीज में भी अनेक शक्तियाँ हैं। पाट में भी शक्ति बहुत है न ? शीतल है, वजनदार है। समझ में आया ? रस, गन्ध, वर्ण है। सब है या नहीं उसमें ? उसी प्रकार आत्मा शरीर से भिन्न, वाणी से भिन्न, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न। मुझमें अनन्त शक्ति है। परन्तु कहते हैं कि अनन्त शक्ति होने पर भी मैं खण्ड नहीं। एक-एक शक्ति का लक्ष्य करके खण्ड होऊँ, ऐसा नहीं। अनन्त शक्ति का पिण्ड एकरूप हूँ। समझ में आया ?

किसी के कारण अखण्ड नहीं हुआ हूँ, सहज ही अखण्डरूप हूँ। और कैसा हूँ ? समस्त विकल्पों से रहित हूँ। मैं ज्ञान हूँ और दर्शन हूँ और मैं आनन्द हूँ ऐसे गुण हैं,

तथापि ऐसे अनन्त गुण में से ऐसा हूँ, ऐसा हूँ—ऐसा जो राग विकल्प से भी भिन्न हूँ। **समस्त विकल्पों से रहित हूँ। और कैसा हूँ? 'एकान्तशान्तं'** देखो! **सर्वथा प्रकार समस्त परद्रव्यों से रहित हूँ।** शान्त... शान्त... अकषायस्वभाव है। आत्मस्वभाव अत्यन्त अकषाय शान्तस्वरूप है। जैसे वह बर्फ की पाट शीतल है, वैसे इस आत्मा का अन्तर स्वभाव शीतल, अविकारी, वीतरागस्वभाव है। वीतरागस्वभाव कहो, शीतलस्वभाव कहो, अकषायस्वभाव कहो या शान्तस्वभाव कहो। कहो, समझ में आया?

'एकान्तशान्तं' एकान्त की व्याख्या सर्वथा प्रकार से की है। एकान्त अर्थात् एक ही सर्वथा प्रकार, ऐसा। व्याख्या ऐसी की न? शान्त हूँ अर्थात् समस्त परद्रव्य से रहित हूँ, ऐसा अर्थ किया। यह आत्मा अत्यन्त निराली चीज़ रजकण और राग से पृथक् चीज़ है। ऐसा धर्मी की दृष्टि में ऐसा आत्मा आवे और उस दृष्टि का अनुभव करे, उसे धर्म कहा जाता है, बाकी सब बातें हैं। समझ में आया? बातें किया करे कि हम धर्म करते हैं, यह दया पालते हैं, व्रत करते हैं, भक्ति करते हैं। बातें करो! उसमें कुछ बातों से वड़ा मिले, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? वहाँ सुनायी देता है न? नरसिंहभाई! सुनायी देता है बराबर? क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा यहाँ सन्त, मुनि कहते हैं, वह केवली कहते हैं, वह कहते हैं। भाई! तू आत्मा किसे कहना? आत्मा, वह कहीं शरीररूप है? कर्मरूप है? पुण्य-पाप के विकाररूप है? नहीं, उनसे रहित है। अब उनसे रहित है तो उसका एकरूप कैसा है? उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं न? और परद्रव्य रहित है न? परद्रव्य में विकल्प आदि सबसे रहित है, भेद से रहित। ऐसा चैतन्यस्वभाव शान्त सर्वथा एक स्वरूप पर से निराली चीज़ है। उसमें भले अनन्त गुण हों। समझ में आया?

और कैसा हूँ? 'अचलं' अपने स्वरूप से सर्व काल में अन्यथा नहीं... मेरी चीज़ जो ज्ञान स्वरूप आनन्द है, किसी काल में अन्यथारूप मैं हुआ नहीं। विकाररूप आत्मा हुआ ही नहीं। उसकी अवस्था में यह खड़ा करके यह वस्तु माने (परन्तु) वस्तु विकाररूप हुई नहीं। समझ में आया? **सर्व काल में अन्यथा नहीं...** वस्तुस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप अनन्त-अनन्त आनन्द की मूर्ति आत्मा सर्व काल में अन्यथारूप मैं हुआ

नहीं। जिस रूप से, ज्ञानरूप से, आनन्दरूप से, अनन्त स्वरूप से मैं हूँ, उस रूप में अखण्ड एकरूप ही हूँ। समझ में आया?

इसने आत्मा सुना नहीं। किसे कहना आत्मा? अभी तो परलोक में से निर्णय करने जाये तो, आहाहा! ऐसा हो जाये। पुनर्जन्म! वहाँ से यहाँ आवे? अब आवे क्या, तू अनन्त बार आया, अब सुन न! तू कहीं से मरकर आया है, यह देह नयी है। आत्मा कहीं दूसरे भव में था, वहाँ से यहाँ आया है। यह पूरा होगा तो जायेगा अन्यत्र। यह कहाँ वहाँ कायम की चीज़ है? यह तो संयोगी चीज़ है। पाँच, पचास वर्ष रहकर यहाँ से चला। ढ़ेर भरे इसने विकार के परिणाम के, उसे साथ में लेकर चला। समझ में आया? पुनर्जन्म की बात। ऐसा हो गया! ओहो! (लोगों को ऐसा हो जाता है)। बड़े-बड़े अभ्यासी कहलाये, लो! इस बात के अभ्यासी। इस बात के अभ्यासी धूल में भी नहीं कुछ।

ऐसा मैं हूँ। यह कहते हैं कि मैं तो ज्ञानमूर्ति अरूपी नित्यानन्द प्रभु एकरूप कभी अन्यथा हुआ ही नहीं, उसे मैं आत्मा अनुभव करता हूँ, ऐसा धर्मी कहता है। समझ में आया? **ऐसा चैतन्यस्वरूप मैं हूँ...** लो! देखो! ऐसा चैतन्यस्वरूप मैं हूँ। कितने विशेषण दिये? ऐसा चैतन्य मैं हूँ। एकान्त शान्त सर्वथा पर से भिन्न, अचल, अखण्ड, चैतन्य का पुंज ऐसा मैं हूँ, उसे आत्मा कहा जाता है। ऐसा अन्तर में दृष्टि में लेकर स्थिर होऊँ इसका नाम धर्म है। समझ में आया? बाकी सब बाहर की वृत्तियाँ और क्रियाकाण्ड, राग और वह कोई धर्म-बर्म है नहीं, ऐसा कहते हैं।

कारण कि 'अयं आत्मा नयेक्षणखण्ड्यमानः सद्यः प्रणश्यति' यह जीव वस्तु द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसे अनेक विकल्प वे हुए अनेक लोचन.... कहते हैं, आत्मा कायम हूँ, ऐसी द्रव्यार्थिक—द्रव्य अर्थात् वस्तु के लक्ष्य से देखें तो द्रव्य है, वर्तमान अवस्था पलटने के लक्ष्य से देखें तो पर्याय है। ऐसे ज्ञान के लोचन से द्रव्य और पर्याय आदि से देखो तो अनेक **अनेक लोचन उनके द्वारा अनेकरूप देखा हुआ खण्ड-खण्ड होकर मूल से खोज मिटा-नाश को प्राप्त होता है।** भाषा देखी? मूल से खोज मिटा—नाश को प्राप्त होता है। शोधना मिट गया, कहते हैं। जरा क्या कहते हैं?

कहते हैं, भगवान आत्मा को शरीर, वाणी, मन में और पुण्य में खोजने जा, वहाँ

तो वह नहीं परन्तु जहाँ खोजने जा तो एक-एक गुण में खोजने जा तो खोज मिट जायेगी अर्थात् वस्तु हाथ में नहीं आयेगी। समझ में आया? खोज मिटी अर्थात् नाश को पाती है, ऐसा कहते हैं। उसका हेतु है। अखण्ड है, उसे तू एक-एक गुण से यदि भिन्न करने जायेगा तो वह अखण्ड हाथ नहीं आयेगा। इसलिए तेरा खोजना नाश पा जायेगा, ऐसा कहते हैं। बात बराबर की है। समझ में आया?

यह जीव वस्तु द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक ऐसे अनेक विकल्प वे हुए अनेक लोचन.... अर्थात् ज्ञान की आँखें, **उनके द्वारा अनेकरूप देखा हुआ...** अनेकरूप देखते-देखते **खण्ड-खण्ड होकर... 'सद्यः प्रणश्यति'** अर्थात् **नाश को प्राप्त होता है।** इसका अर्थ किया कि **खण्ड-खण्ड होकर मूल से खोज मिटा...** मूल से वस्तु मिट जायेगी, ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया? वस्तु है, जैसे बर्फ की शिला कही। उसे एकरूप देखने जाये तब तो उसे हाथ आयेगी। परन्तु उस बर्फ की शिला में उसे यह कोना है और यह खाँच है और यह स्थूल है और चौड़ी है और यह ठण्डी है और इस स्पर्शवाली है और रंगवाली है (ऐसे) उसके एक-एक गुण से, एक-एक शक्ति से देखने जायेगा तो पूरी चीज़ शोध नहीं सकेगा। समझ में आया?

ऐसे तो कहते हैं, शरीर और राग द्वारा तो हाथ नहीं आये, परन्तु आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, उसे एक-एक शक्ति से खोजने जाये तो हाथ नहीं आवे, ऐसा कहते हैं। क्या शैली इन्होंने उठायी है! समझ में आया? जमुभाई! आहाहा! ऐसा तत्त्व इसे कान में पड़ता नहीं। क्या है, उसे विचार करने की धारा तो कहाँ से चले?

कहते हैं, भाई! प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? कैसे है? तो धर्मी विचारता है कि मैं तो एकरूप अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप हूँ। ऐसे आत्मा को परद्रव्य से शोधने जाये तो वह कहाँ से मिलेगा? पुण्य-पाप के विकल्प का अवलम्बन लेकर खोजने जाये तो कहाँ से मिलेगा? वह तो पहले से नहीं। यह तो बात ना कही। परन्तु यह वस्तु जो एकरूप अखण्ड है, उसमें अनन्त गुण हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रभुता, आनन्द आदि। कहते हैं कि वस्तु एक अखण्ड है, उसमें से एक गुण से शोधने जाये तो वह द्रव्य ही तेरी दृष्टि में से मिट जायेगा। समझ में आया? भेद द्वारा शोधने जायेगा तो अभेद

नहीं मिलेगा, ऐसी बात करते हैं। लो! आहा! पुण्य-पाप के राग से तो आत्मा हाथ नहीं आवे परन्तु नय के भेद के विकल्प से भी हाथ आयेगा नहीं, तेरा खोजना मिट जायेगा, शोधना मिटकर अंध हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई!

फिर से। कहते हैं, यह आत्मा वस्तु जो है, उसमें अनन्त शक्ति तो है। थोड़ी दूसरे प्रकार की उतारेंगे, ध्रुव और अध्रुव और वह भी यह ध्रुव, अध्रुव होकर पूरा गुण लेना। समझ में आया? एक, अनेक और यह सब शक्तियाँ है, ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। जीवत्व शक्ति, चितिशक्ति, दृशिशक्ति, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व इत्यादि। ऐसी अनन्त शक्तियाँ। शक्ति अर्थात् गुण। परन्तु वह एक वस्तु है, उसमें अनन्त गुण हैं।

देखो! यह लकड़ी है। अब यह लकड़ी है, उसे यहाँ बाहर के इस दूसरे हाथ से, अँगुली से देखने जाये कि यह मेल हो, उससे देखा जाये तो हाथ नहीं आवे। वह तो बराबर है? इसी प्रकार आत्मा को शरीर, वाणी की क्रिया से देखने जाये तो हाथ नहीं आवे। अन्दर पुण्य-पाप का मैल है, विकल्प उठता है, उससे देखने जाये तो हाथ नहीं आवे, एक बात। अब यह लकड़ी है, वह सूखड़ की है, है न मुम्बई में आती है न? वह चीनी... चीनी लकड़ी बेचे। वह सुगन्ध है, कोमल है, यह ऐसा है, ऐसा है। कहते हैं कि उसका अखण्डपना यदि देखने जाये तब तो एकसाथ हाथ में आयेगा। परन्तु उसका यह कौना ऐसा पड़ता है और यहपना आता है और कोमल है... (ऐसे) एक-एक शक्ति को देखने जाने से वह पूरी चीज़ ही दृष्टि में नहीं आती। समझ में आया? यह कठिन बात, भाई! छोटाभाई! अभी वे तो कहाँ चिल्लाहट मचाते हैं। अभी तो कहते हैं, पुण्य करोगे तो मिलेगा। दया, दान, भक्ति, व्रत करते-करते आत्मा की प्राप्ति होगी, धूल में भी नहीं होगी, सुन न अब! वह तो विकल्प है, राग है।

यह वस्तु है, वह यह वस्तु तो वस्तुरूप है। ऐसे पाट, देखो! एकरूप है, अखण्ड है। उसमें उसकी शक्तियाँ कोमल, ऐसी... ऐसी... ऐसी... वजनदार इत्यादि शक्तियाँ अनन्त हैं परन्तु एक शक्ति से शोधने जायेगा तो एकरूप हाथ में नहीं आयेगा, तेरा शोधना मिट जायेगा। समझ में आया? क्योंकि एक शक्तिमय आत्मा नहीं है। वह तो अखण्ड शक्ति का एकसाथ पिण्ड है। आहाहा! यह इसे खबर पड़ती है परन्तु यह

आत्मा बड़ा (इसकी खबर नहीं पड़ती)। वह तो साधारण लकड़ी है, धूल। यह तो महा चैतन्यपिण्ड अन्दर अरूपी महान पदार्थ। आहाहा! आहाहा!

पूरा चैतन्य शरीर व्यापक महान प्रभु! जैसे मणिरत्न का दीपक हो और ऊपर एक स्फटिक पड़ा हो... समझ में आया? उसी प्रकार यह मणिरत्न का चैतन्यमणि रत्न का दीपक पूरा शरीर में भिन्न है। यह तो सब अन्दर लकड़ी है। समझ में आया? चैतन्यरूपी मणिरत्न ऐसा भगवान आत्मा। कहते हैं कि उसे पर से तो हाथ आवे ऐसा नहीं परन्तु उसके अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, शुद्ध, एक, अनेक, आनन्द और प्रभुता... (ऐसे) एक गुण से देखने जायेगा तो खण्ड-खण्ड होने से अखण्ड का खोजना तेरे मिट जायेगा। भाई! कहने की पद्धति भी कैसी है, देखो तो! ओहोहो! यह क्षण... कहते हैं, भाई! अनेक लोचन से एकरूप वस्तु को देखने जायेगा तो अनेकपने के आश्रय से एकपना प्राप्त नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? कहो, भीखाभाई! कहते हैं, ख्याल में रखता हूँ, ऐसा कहा न? इसलिए वहाँ आया निमित्त की अपेक्षा, ऐसा कहते हैं। हमारे पण्डितजी कहे, ठीक बोलते हैं यह।

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा किसे कहना? कि उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण का रूप एक, उसे आत्मा कहना। अखण्ड कहा न उसे? अब एक अखण्ड वस्तु है आत्मा महान पदार्थ। वह तो कहीं रह गया। अब एक आत्मा है, उसमें भी अनन्त शक्ति है, उसका रूप एक है। उसमें से एक-एक शक्ति का विचार करने जायेगा और खोजने जायेगा तो वस्तु हाथ नहीं आयेगी। क्योंकि वह वस्तु उसकी एक शक्ति के खण्डरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जमुभाई! मार्ग तो ऐसा है। दूसरे प्रकार से मार्ग हो, ऐसा हो या कुछ दूसरा होता होगा? आहाहा!

अनेक लोचन उनके द्वारा अनेकरूप देखा हुआ... अनेकरूप देखा हुआ... देखो! अनेक पक्ष से **अनेकरूप देखा हुआ खण्ड-खण्ड होकर....** देखो! भाषा देखो! वस्तु चैतन्य का प्रकाश एक स्वरूप है। अनन्त शक्ति हो परन्तु वस्तु तो एक है, अखण्ड है। भाई! उसकी प्राप्ति उसके अनन्त गुण में से एक-एक गुण को खोजने से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वह पूरा आत्मा, उसे खोजना तुझे मिट जायेगा। एक गुण में एक

गुण ऐसा और एक गुण ऐसा (ऐसा हुआ), वहाँ तो विकल्प में पड़ा। समझ में आया? वह खण्ड-खण्ड वस्तु नहीं, वस्तु तो अखण्ड है। आहाहा! ऐसी अखण्ड वस्तु को एक गुण के भंग दृष्टि से देखने से अखण्ड हाथ नहीं आयेगा और खण्ड-खण्ड में रुकने से तेरा शोधना ही मिट जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : खोजना मिट जायेगा, यह दोष के अर्थ में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : खोजना मिट जायेगा, यह दोष के अर्थ में है। खोजना मिट जायेगा अर्थात्? जिसे खोजने जाता है, वह ऐसे हाथ नहीं आवे—ऐसा कहते हैं। ओहोहो! ऐसा वीतरागमार्ग... तीन काल-तीन लोक में अन्यत्र बात हो नहीं सकती, अनन्त गुण तथापि कहते हैं कि उन अनन्त गुणरूप एक, उसे गुणभेद से खोजने जायेगा तो अभेद हाथ नहीं आयेगा। इसका अर्थ कि उसके ऊपर दृष्टि एकरूप नहीं होगी। तेरा खोजना मिटकर भटकेगा कहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं, यह इसे पकड़ में आना, अन्दर मस्तिष्क में आना मुश्किल (पड़े)। यह क्या कहते हैं? समझ में आया?

एक वस्तु को एकरूप देख (तो) हाथ आयेगी। एक वस्तु को अनन्त गुण के भेद से देख (तो) हाथ नहीं आयेगी। समझ में आया? यह बात अब लोगों को बेचारों को पकड़ में न आये, इसलिए वह दूसरे रास्ते चढ़ गये। ऐसा कहे, जाओ यह करो... यह करो... यह करो... जाओ जिन्दगी नाश, बर्बाद। जाओ चार गति में भटकने। आहाहा!

कहते हैं, ज्ञान के लोचन कहा न? वह अनेक लोचन से एक को देखने जायेगा तो एक हाथ नहीं आयेगा। समझ में आया? '**सद्यः प्रणश्यति**' वह तेरा खोजना नाश हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। भाषा ऐसी है। चमत्कार, इसका अर्थ है। शोधने का मिट जायेगा, शोधना मिट जायेगा अर्थात् हाथ आ जायेगा? ऐसा। भाई! कहते हैं, जहाँ चीज़ पड़ी है, वहाँ खोजने न जाये और अन्यत्र खोजने जाये तो वहाँ मिलेगी? तेरा खोजना सब नाश होगा और तेरा सारा समय जायेगा।

यहाँ नहीं कहते कि भाई! कहाँ खोया है? भाई! गिर गया सही परन्तु यहाँ से रास्ते में कहा गिरा (खबर नहीं)। परन्तु कहाँ तू कहाँ खोजने जायेगा? इस जगह—स्थान हो तो वहाँ खोज। स्थान की खबर तो नहीं होती। खोजने कहाँ जायेगा तू? इसी

प्रकार यह आत्मा अनन्त-अनन्त आनन्द, ज्ञान, शान्ति का पिण्ड एकरूप अखण्ड वस्तु है, उसे तू एक-एक गुण के भेदवाला खोजने जायेगा तो अभेद कहाँ से हाथ आयेगा? तेरा खोजना मिटकर वहाँ अटक जायेगा। ओहोहो! समझ में आया? अब बाहर का तो कहीं थोथा रह गया। समझ में आया?

इतने नय एक में कैसे घटित होते हैं? देखो! भाषा देखो ऐसी। वस्तु एक है, ऐसे ज्ञायकमूर्ति प्रभु अभेद है। इसमें इतने अधिक नयों से किस प्रकार हाथ आयेगा? किस प्रकार घटित होगा? समझ में आया? प्रभु के रूप से तो चैतन्य अखण्डानन्द प्रभु है न! उसे यह द्रव्य से नित्य है और पर्याय से अनित्य है और इससे एक है और इससे गुणभेद से अनेक है और ऐसे सब भेद के लक्ष्य से देखने जाये तो **इतने नय एक में कैसे घटित होते हैं?** इतने सब भंग एकरूप चैतन्य में कैसे घटित होंगे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र क्या करे? इसका स्वरूप ऐसा गुणरूप है, ऐसा बताया परन्तु कहा कि, एकरूप है, ऐसा वापस बताया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकरूप कहा है या नहीं साथ में?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खोजने के लिये नहीं, यह तो जानने के लिये कि इतने गुण हैं इतना। खोजने के लिये तो अभेद है। समझ में आया? यह तो इसे पहले निर्णय करने के लिये (कहा) कि द्रव्य नित्य है, पर्याय अनित्य है, शुद्ध है, अशुद्ध है पर्याय, ऐसा उसका (स्वरूप) निर्णय करने के लिये (कहा)। यह निर्णय (करना) अर्थात् रागसहित का निर्णय भूमिका में पहले (करे)। परन्तु उसे शोधने के लिये इतने नय काम नहीं आते। आहाहा! समझ में आया?

यह तो अज्ञानी जो आत्मतत्त्व कहते हों, उससे भगवान जैसा कहते हैं, उतना उसे निर्णय कराने को यह बात कहते हैं परन्तु इतना निर्णय कराना, वह तो अज्ञानियों का कहने से विरुद्ध बात, ऐसा नहीं इतना। परन्तु वस्तु कैसी है? वस्तु अनन्त गुण का

एकरूप है, उसे तू एकरूप से खोज तो एकाकार होयेगा तो हाथ आयेगी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

इतने नय एक में कैसे घटित होते हैं? उत्तर इस प्रकार है—क्योंकि ऐसा है जीवद्रव्य... 'चित्रात्मशक्तिसमुदायमय:, चित्रात्मशक्तिसमुदायमय:' अनेक प्रकार अस्तिपना (अस्ति भी है), नास्तिपना.... पर से नास्ति भी है, वस्तु एक है, गुण से अनेक है, नित्य से ध्रुव है, अनित्य से अस्थिर है, नित्य से स्थिर है, अनित्य से अस्थिर है, हों! वस्तु ऐसी है। **इत्यादि अनेक है...** समझ में आया? इत्यादि ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। भले हो, परन्तु उस वस्तु में भेदरूप नहीं, वस्तु एकरूप है। यह तो उसके गुणों की शक्ति के भेद से कहा। वस्तु जो है, उसका रूप तो एक ही है सब गुणों का एक। सबके गुण अनन्तरूप हैं द्रव्य में? द्रव्य अनन्तरूप है? समझ में आया? वस्तु एक है।

ऐसे जो जीवद्रव्य के गुण... इतनी अपेक्षा से लिया है, हों! दो इकट्ठे होकर एक शक्ति—गुण लेना। समझ में आया? 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' कहा है न? .... वस्तुरूप से ध्रुव, पर्यायरूप से अध्रुव उत्पाद-व्यय। ऐसी एक शक्ति, ऐसी दूसरी शक्ति, अस्तित्व—नास्ति ऐसी अनेक शक्तियाँ होने पर भी, उस **द्रव्य से अभिन्नपना...** है। उन सब शक्तियों का समुदाय एक है। यहाँ वजन समुदाय पर है। समझ में आया? पुण्य-पाप तो नहीं, शरीर-वाणी तो नहीं, यह गुणभेद भी नहीं। गुण का समुदाय, वह द्रव्य है। आहाहा! अब इसे कहाँ ले जाना और कब पहुँचाना? अभी तो आत्मा है या नहीं, यह इसे निर्णय करना पड़ेगा। पश्चात् अभी आत्मा ऐसे अनन्त गुणवाला निर्णय करे, पुण्य-पाप बिना का निर्णय करे, शरीर-कर्म बिना का निर्णय करे, पश्चात् अनन्त गुण का समुदाय, वह एक है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं, यह अज्ञान के पड़े हैं यह अनादि के, मूढ की कक्षा में पड़े हैं, उसमें यह। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **ऐसे जो जीवद्रव्य के गुण उनका जो 'समुदाय' द्रव्य से अभिन्नपना...** वह सब शक्ति का द्रव्य से तो एकरूप है। **'मय:' उसमय अर्थात् ऐसा है**

जीवद्रव्य;... उस अनन्त शक्तियम जीवद्रव्य है। उसमें एक शक्तिमय और यह दो शक्ति, ऐसा कहाँ है वह? आहाहा! पीछे लेते-लेते वहाँ ले जाना है न? गुणभेद नहीं, गुणी अकेला समुदाय की दृष्टि करने से अभेद है। समझ में आया?

इसलिए एक शक्ति को कहता है एक नय, किन्तु अनन्त शक्तियाँ हैं, इस कारण एक-एक नय करते हुए अनन्त नय होते हैं। एक-एक गुण से एक-एक नय होता है। **ऐसा करते हुए बहुत विकल्प उपजते हैं,...** ऐसा करने से तो बहुत विकल्प होते हैं। **जीव का अनुभव खो जाता है।** इस जीव का अनुभव खो जाता है। **इसलिए निर्विकल्प ज्ञानवस्तुमात्र अनुभव करनेयोग्य है।** लो! योगफल। एकरूप भगवान अनन्त गुण का एक समुदाय, उसका अनुभव करनेयोग्य है। वह दृष्टि का विषय और अभेद है। उसका अनुभव करना, उसका नाम धर्म है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १३, बुधवार, दिनांक-०५-०१-१९६६, कलश-२७०, २७१ प्रवचन-२९१

सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि। देखो! ऊपर क्या कहा? अब अन्तिम कलश है न, (इसलिए) एकदम अभेद के पहलुओं के प्रकार बताते हैं। ऊपर ७० में गया न, यह तो थोड़ा लेते हैं। यह तो उसके साथ सन्धि करते हैं।

आत्मा वस्तुस्वरूप से पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म से रहित है परन्तु अनन्त शक्तिसहित है परन्तु ऐसी अनन्त शक्तिसहित को एक-एक शक्ति को एक-एक नय से खोजने से खोज खो जाती है। ऐसा आया था। **सद्यः प्रणश्यति** का अर्थ ही ऐसा किया। **सद्यः प्रणश्यति** है न? **सद्यः प्रणश्यति** चौथी लाईन में है। **खण्ड-खण्डरूप होकर मूल से खोज मिटा-नाश पाता है।** अर्थात् आत्मा एक समय में अनन्त शक्तिसम्पन्न अनन्त गुणरूप है, तथापि एक-एक शक्ति को एक नय से खोजने से उसकी खोज नाश हो जाती है। खोज अर्थात् एकरूप वस्तु का अनुभव उसमें नहीं हो सकता। समझ में आया?

यह वस्तु स्वयं अनन्त शक्ति / गुणसम्पन्न वस्तु भले (हो) और विकार शरीर कर्म से तो वह प्राप्त होती नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प से या शरीर की अवस्था के आश्रय से उस वस्तु की प्राप्ति का अनुभव नहीं होता, परन्तु उसमें अनन्त गुण है। उन अनन्त गुण में एक-एक गुण का लक्ष्य करने जाये तो वह खण्ड-खण्ड होने से उसका अनुभव सिद्ध नहीं होता। क्योंकि वस्तु एकरूप है, एकरूप दृष्टि होने से उसका अनुभव होता है। अनन्तपने की दृष्टि करने से उसका अनुभव नहीं होता - ऐसा यहाँ इस गाथा में कहा है।

अब यहाँ चार बोल का निषेध करते हैं। उसमें अनन्त गुण के अनन्त नयों का निषेध किया; अब चार का निषेध (करते हैं)। फिर करेंगे तीन का निषेध -ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। परन्तु यह पहले चार का निषेध करते हैं।

पहले अन्तिम बोल लेते हैं **सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि।** कैसा हूँ मैं? कि **ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि। 'भावः अस्मि' 'भावः अस्मि'** भाव अर्थात् वस्तु। **मैं वस्तु स्वरूप हूँ। मैं वस्तु स्वरूप हूँ। और कैसा हूँ? ज्ञानमात्रः** उस वस्तु का स्वभाव

चेतनामात्र है.. जानना-देखना-ऐसा ही उसका स्वभाव है। **चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका - ऐसा हूँ।** सब सर्वस्व, उस चेतनामात्र में सब समाहित हो गया। यह पुण्य-पाप, शरीर, कर्म उसमें नहीं। नहीं की यहाँ बात नहीं की। अब यहाँ है, वह चेतनामात्र सर्वस्व... सर्वस्व.. सर्व अपना, सर्वस्व-सर्व अपना, चेतनामात्र वह वस्तु है।

एक हूँ, **एको** है न अन्दर? **समस्त भेद विकल्पों से रहित हूँ।** एक हूँ; इसलिए शुद्ध हूँ; शुद्ध हूँ, इसलिए एक हूँ। एक हूँ, इसलिए कुछ भी भेद के विकल्प से रहित हूँ। **और कैसा हूँ? 'सुविशुद्धः'..** देखो! अनुभव की दृष्टि होने पर यह होता है - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा का अनुभव होने में अकेली वस्तु चैतन्यमात्र सर्वस्व एक और सुविशुद्ध, सुविशुद्ध अर्थात् अब इसमें लिखा **द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरूप उपाधि से रहित हूँ।** ऐसा आत्मा हूँ।

और कैसा हूँ? 'द्रव्येण न खण्डयामि'.. यह व्याख्या अलग प्रकार से करते हैं। उसमें द्रव्य से खण्डित नहीं होता - ऐसा अर्थ अपने पण्डित जयचन्दजी में आता है। यहाँ तो कहते हैं जीवद्रव्य **स्वद्रव्यरूप है - ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** ऐसा। मैं स्वद्रव्यरूप हूँ, स्वद्रव्यरूप हूँ - ऐसा होने पर भी वह एक भाग उसमें नहीं आता - ऐसा कहते हैं। क्षेत्र, काल और भाव - ऐसे चार भंग में मैं स्वद्रव्यरूप हूँ, इससे उसके दूसरे तीन बोल शामिल नहीं आते - ऐसा नहीं है। मैं एकरूप अखण्ड द्रव्य में अखण्ड ही हूँ। समझ में आया?

जीव स्वद्रव्यरूप है.. वस्तुरूप से, वस्तु। **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** एक द्रव्यरूप हूँ - ऐसा कहने से कहीं द्रव्य का भाग-खण्ड हुआ है और क्षेत्र, काल, भाव का भंग कुछ रह गया है, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें? यह तो अब सब ऊँची-सूक्ष्म बात है। जम्बुभाई!

मुमुक्षु : ऊँची और सूक्ष्म दोनों अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म में ध्यान रखना होता है। ऊँची में सच्ची है, ऐसा। समझ में आया?

द्रव्य-स्वद्रव्य, देखा? भाषा भी वापस कैसी (की है)। स्वद्रव्य। **द्रव्येण** अर्थात् जीव स्वद्रव्यरूप है—ऐसा कहने में दूसरे द्रव्यरूप तो नहीं, परन्तु वह स्वद्रव्य कहने में एक अंश आ जाता है - ऐसा नहीं। मैं स्वद्रव्यरूप हूँ अर्थात् क्षेत्र, काल, भाव का दूसरा कोई अंश भी अन्दर बाकी रह जाता है - ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक द्रव्य चेतनामात्र वस्तु, मैं स्वद्रव्यरूप हूँ, स्वद्रव्यरूप हूँ - ऐसा कहने पर, **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।**

'क्षेत्रेण न खण्डयामि' जीव स्वक्षेत्ररूप है.. दूसरा बोल। जीव स्वक्षेत्ररूप है। ऐसा कहने पर भी एक अंश नहीं, उसमें भी सब द्रव्य, काल, भाव का अखण्ड एकपना आ जाता है - ऐसा कहते हैं। गजब सूक्ष्म बात, भाई! यह जीव का यह अखण्डपना ऐसा दृष्टि में आना, उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? कहते हैं, मैं जीव स्वक्षेत्ररूप हूँ। अपने क्षेत्र-चौड़ाई इतना उस प्रकार मैं जीव स्वक्षेत्र हूँ। **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** इतने स्वक्षेत्ररूप, मैं स्वक्षेत्ररूप हूँ - ऐसा होने पर भी मैं तो अखण्ड ही हूँ। कोई भाग उसमें, स्वक्षेत्रमय हूँ, उसमें कोई अन्दर भाव का या स्वकाल का या द्रव्य का भाग बाकी रह जाता है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा धर्म, भारी, भाई! अब इसमें निवृत्ति कहाँ लोगों को? बाहर से अभी तो विकल्प से, दया, दान और भक्ति से धर्म करना है। इससे धर्म होता है और इससे कल्याण होता है..

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने के काल में। अनन्त काल से भटकता है, उसमें भटकना है - चौरासी अवतार का भटकना है। यह उससे मानता है कि मेरा कल्याण होगा। वस्तु स्वयं अखण्डानन्द, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। उस वस्तु के जो चार भाग, उसमें एक भाग में दूसरा भाग रह जाता है - ऐसा करके यहाँ निषेध करते हैं। दूसरी बात तो क्या करना? समझ में आया? पुण्य-पाप, दया, दान तो विकल्प / राग है, विकार है। उससे धर्म-बर्म है नहीं, उससे आत्मा का अनुभव नहीं होता। शरीर की क्रिया से तो कहीं रह गया। कौन जाने कहाँ का कहाँ डालते हैं! ओहोहो! शरीर की क्रिया-सचेत जीव से धर्म होता है, लो! अरे रे! क्या कहा? अरे! ऐसा काल मिला, बापू! भाई! कठिनाई से तिरने के काल में डूबने का रास्ता कहाँ लिया? आहाहा!

कहते हैं, यहाँ तो मैं स्वयं चार अंशरूप है, उसमें एक अंश में भी तीन अंश रह जाते हैं, ऐसा मैं नहीं – ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! रागरूप तो नहीं, पुण्यरूप नहीं, पापरूप नहीं, शरीर-वाणीरूप नहीं, कर्मरूप नहीं परन्तु एक अंश में मैं स्वज्ञेयरूप हूँ तो और दूसरे अंश उसमें बाकी रह जायें – ऐसा नहीं है, सब उसमें ही आ जाते हैं। आहाहा! एक असंख्य प्रदेशी एक वस्तु स्वक्षेत्ररूप, वह स्वयं द्रव्य है। उसमें उसकी अवस्था आदि का काल है और उसमें रहनेवाले गुण, सब एक में आ जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह कलश है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कलश नहीं, गद्य है गद्य, परन्तु गद्य है अमृतचन्द्राचार्य का। कहो, समझ में आया? कलश नहीं परन्तु अमृतचन्द्राचार्य का है यह, किसी का किया हुआ नहीं, हिम्मतभाई ने इसमें ऊपर से नहीं डाला है, यह तो भाई ने लिखा है – पण्डित राजमलजी ने यह अर्थ किये हैं। आहाहा! समझ में आया?

मैं एक स्वरूप से, स्वक्षेत्र से हूँ, तथापि उसमें खण्ड नहीं परन्तु अखण्ड हूँ। स्वक्षेत्र का भाग एक और स्वभाव, काल और द्रव्य का भाग दूसरा – ऐसा उसमें रहता नहीं। समझ में आया?

'कालेन न खण्डयामि' जीव स्वकालरूप है.. भगवान अपने स्वकाल से, त्रिकाल है। अनन्त गुण, द्रव्य, क्षेत्र सब उसमें समाहित हो जाता है। स्वकाल त्रिकाल, स्वकाल अर्थात् अपना काल अर्थात् अपने से त्रिकाल ऐसा का ऐसा है। वस्तु जो अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्यरूप, क्षेत्ररूप, भावरूप – ऐसा स्वकाल में सब आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? **'कालेन न खण्डयामि' जीव स्वकालरूप है..** परन्तु काल से न करके यहाँ प्रत्येक में स्व डाला है। और कोई काल दूसरे का ले और दूसरे का द्रव्य ले.. **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** भले मैं स्वकाल एक हूँ, स्वकाल एकरूप हूँ। त्रिकालरूप स्वकाल से एक हूँ – ऐसा कहने से मैं अखण्डित ही हूँ, उसमें कोई खण्ड, भेद, भंग है नहीं। समझ में आया?

'भावेन न खण्डयामि' जीव स्वभावरूप है... जीव स्व, स्व—ऐसा लेना। जीव स्वभावरूप परन्तु जीव स्व-भावरूप है – ऐसा लेना। समझ में आया? मैं एक स्व-

भाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्व-भाव, उस मेरे स्वभावरूप हूँ - ऐसा कहने पर भी अखण्ड ही हूँ। स्वभाव कहने पर कोई काल, द्रव्य और क्षेत्र कोई बाकी रह जाता है - ऐसा उसमें है नहीं। समझ में आया? **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।**

भावार्थ इस प्रकार है कि एक जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावरूप चार प्रकार के भेदों द्वारा कही जाती है... एक ही भगवान आत्मा का द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् असंख्य प्रदेश; काल अर्थात् त्रिकाल रहनेवाला काल; भाव अर्थात् अनन्त शक्ति - गुण—ऐसे चार प्रकार के भेद से एक चीज़ को कहने में आता है। **तथापि चार सत्ता नहीं है..** सत्ता तो चार में एक ही है। द्रव्य का सत्-अस्तित्व अलग; क्षेत्र का अस्तित्व अलग; काल का अस्तित्व अलग; और भाव का अस्तित्व अलग - ऐसा है नहीं। सत्ता तो एक ही है। द्रव्यसत्ता कहो तो वह; क्षेत्रसत्ता कहने पर वह; काल-त्रिकालरूप एकरूप सत्ता कहो तो वह; स्वभावरूप कहो तो वह। समझ में आया? **तथापि चार सत्ता नहीं है एक सत्ता है। उसका दृष्टान्त** - चार सत्ता, इस प्रकार तो नहीं है। चार प्रकार का अस्तित्व इस प्रकार से तो नहीं है। किस प्रकार से (है उसका) दृष्टान्त देते हैं। यह भगवान आत्मा इस शरीर, वाणी, कर्म से तो भिन्न है, यह मिट्टी है यह तो। कर्म से भिन्न, पुण्य-पाप का विकल्प / विकार उठता है, उससे भिन्न। तो कहते हैं उसे चार प्रकार से विभाजित करके कहें तो सत्ता चार है? किसकी तरह? ऐसा कहते हैं।

जिस प्रकार एक आम्र फल.. एक आम, आम - केरी। **चार प्रकार है। उसका विवरण—कोई अंश रस है,..** आम में एक भाग रस है, मीठा। **कोई अंश छिलका है,..** ऊपर की छाल है। एक रस है, एक छाल है। आम एक है, ऐसे उसके चार भाग। एक रस है, एक छाल है। **कोई अंश गुठली है, कोई अंश मीठा है।** समझ में आया? कोई अंश रस में से वापस अंश मीठा-भिन्न है, ऐसा। समझ में आया? रस साधारण लिया, उसमें मिठास ली। चार भाग है ऐसा नहीं। समझ में आया? यह चार भाग हैं, ऐसा आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? रस की विशेष पर्याय है। रस सामान्य है, उसका मिठास एक भाग है। समझ में आया?

कोई अंश रस है, कोई अंश छिलका है, कोई अंश गुठली है, कोई अंश मीठा

है। ऐसा नहीं है। क्या कहा? एक आम में चार भाग। एक रस, छाल, गुठली और मिठास - ये चार भाग हैं। ऐसे आत्मा में चार भाग नहीं हैं। **उसी प्रकार एक जीव वस्तु कोई अंश जीवद्रव्य है,..** देखो! **कोई अंश जीवक्षेत्र है, कोई अंश जीवकाल है, कोई अंश जीवभाव है..** समझ में आया? रस भावरूप से लिया और मिठास कालरूप से ली, भाई! भेद पाड़ना है न? भेद। भाई! रस और मिठास, काल और भाव और छिलका तथा गुठली उसका क्षेत्र, वह द्रव्य पूरा। एक वस्तु भगवान आत्मा, जैसे उस आम के चार भाग हैं; वैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं हैं। समझ में आया? तो कैसे हैं?

ऐसा मानने पर सर्व विपरीत होता है। इस कारण इस प्रकार है कि जिस प्रकार एक आम्र फल स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण विराजमान पुद्गल का पिण्ड है,... देखो, अब क्या कहा? एक आम, वह वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श.. उठाया स्पर्श से। स्पर्श-आम; आम है, वह स्पर्श है तो वह; रस है तो वह; गन्ध है तो वह; वर्ण है तो वह। या चार भिन्न बोल हैं? वर्ण एक इस जगह रहा, गन्ध इस जगह रही, इस जगह स्पर्श रहा - ऐसा है? आम के चार तो भिन्न कहे। रस, छिलका अर्थात् छाल, गुठली और मिठास। वैसा आत्मा में नहीं है। आत्मा वस्तु एक स्वरूप देह से अत्यन्त भिन्न है। जैसे परमाणु में **स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण विराजमान पुद्गल का पिण्ड है,... इसलिए स्पर्शमात्र से विचारने पर स्पर्शमात्र है,..** क्या कहा? इस आम को स्पर्शमात्र से विचार करने पर आम का पूरा स्पर्श स्वरूप ही है। समझ में आया या नहीं इसमें? आम का दृष्टान्त तो एकदम स्पष्ट दिया है।

मुमुक्षु : आम का दृष्टान्त ही समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले! ऐई! आम है न? उसके ऊपर आत्मा को समझाने के लिये दृष्टान्त दिया कि भाई! केरी में एक रस है, एक छाल है, गुठली है और मिठास है। इसी प्रकार आत्मा में ऐसे चार भाग हैं - ऐसा नहीं है। एक रह गया द्रव्य अलग, क्षेत्र अलग, काल अलग, और भाव अलग - ऐसा नहीं है। तब (कैसा है)? जैसे आम में उस आम को स्पर्शरूप देखो तो पूरा स्पर्श ही है, रसरूप से देखो तो रस ही पूरा है, गन्धरूप से देखो तो गन्ध ही है, रंगरूप से देखो तो रंग पीला, वह पूरा पीला है। समझ में आया या नहीं? इसी प्रकार आत्मा में.. यह कभी आत्मा क्या, इसे पता नहीं पड़ता।

कहते हैं **गन्धमात्र से विचारने पर गन्धमात्र है, वर्णमात्र से विचारने पर वर्णमात्र**

है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु (भगवान आत्मा) स्वद्रव्य,... उसे द्रव्यरूप से देखे तो वही पूरी चीज़ है। स्वक्षेत्र से देखे तो पूरा स्वयं एक ही है। और स्वक्षेत्र में कोई द्रव्य दूसरा है, काल-भाव भिन्न है - ऐसा है नहीं। आम में स्पर्श से देखो तो अकेला स्पर्श ही है, पूरा आम स्पर्श (मात्र है)। रस से देखो तो रसमय ही है, रंग से देखो तो रंगमय है, गन्ध से देखो तो गन्धमय है। सुगन्ध आती है न उसकी? इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तु से देखो तो भी वह; उसके स्वक्षेत्र से देखो तो भी वह; उसके स्वकाल से देखो तो भी वह और उसके स्व भाव से देखो तो भी वह। यह दृष्टान्त पंचाध्यायी में दिया है। उसके कर्ता राजमलजी हैं न। पंचाध्यायी के कर्ता भी राजमलजी हैं। यह आम का दृष्टान्त पंचाध्यायी में दिया है। इस प्रकार है।

मुमुक्षु : चार भाग में आम किस प्रकार समझ में आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : चार भाग में टुकड़े-टुकड़े में समझ में आती है। आम वहाँ एक टुकड़ा आया, वहाँ पूरा नहीं आया। आम एक में। रस आया वहाँ गुठली नहीं आयी और गुठली आयी वहाँ छिलका नहीं आया, और छिलका आया वहाँ रस नहीं आया। यह और उसमें फिर डाला है, यह नहीं बोला, ख्याल में है। कहो, समझ में आया? आम का छिलका देखा वहाँ गुठली नहीं आयी, गुठली देखी वहाँ छिलका नहीं आया और छिलका देखा वहाँ रस नहीं आया, रस देखो तो वहाँ उसकी मिठास की पर्याय नहीं आयी। ऐसा आत्मा में नहीं है। आत्मा को द्रव्य देखो तो कुछ भिन्न है? जैसे छिलका देखो तो उसमें गुठली नहीं आयी, वैसे यह द्रव्य देखो तो क्षेत्र, काल, भाव, भिन्न पड़े हैं-ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा देह से भिन्न तत्त्व है। समझ में आया? वह सत्‌चिदानन्दस्वरूप, सत् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द (स्वरूप है)। कहते हैं कि उसे वस्तु से देखो तो वह एक है। जैसे आत्मा को स्पर्श से देखो तो स्पर्शमात्र पूरा है, वैसे इसे स्वक्षेत्र से देखो तो वह है, उसे पूरे रस से देखो तो वह है, इसे स्वकाल से देखो तो वह है, उसे रंग से देखो तो वह है। आम में रंग का भाग अलग पड़ता होगा और स्पर्श का भाग अलग पड़ता होगा - ऐसा है? भाई! आम में से अकेला रस निकाल दो। स्पर्श, गन्ध और रंग रखो।

कैसे होगा? उसमें से रस निकाल दो और स्पर्श, गन्ध और रंग रखो। उसमें से रंग निकाल दो और गन्ध, रस और स्पर्श रखो। ऐसा नहीं कहलाता?

मुमुक्षु : पृथक् पड़ता ही नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार इस देह में भगवान आत्मा है। उसमें से कहते हैं कि उसका द्रव्य निकाल दो और अकेला क्षेत्र रहे, परन्तु क्या रहे? वह द्रव्य ही स्वयं अनन्त गुण का पिण्ड स्वयं ही आत्मा है। उसे क्षेत्र से देखो तो वह वही है। जैसे आम को रस से देखो तो पूरा एक है, रस अलग निकाल दो और वह रहे ऐसा भिन्न तो क्या रहे? आम ही नहीं रहेगा। इसी प्रकार आत्मा में वस्तु देखो तो उसरूप से है, उसका क्षेत्र देखो तो उसी रूप से वह है। वह द्रव्य और काल-भाव भिन्न रह जाते हैं - ऐसा नहीं है। काल से है, है ऐसा स्वकाल से है। स्व काल से है, उसमें सब आ गया। भाव, द्रव्य और क्षेत्र कुछ दूसरा भिन्न नहीं रह जाता। जैसे आम और रस लेने से सब आ जाता है। जुगराजजी! आहा..हा..!

आत्मा को समझना इसे (कठिन पड़ता है) उसे इसके मकान के धूल के ढ़ेर की बातें यदि करो तो इसे चार दिशा की बात याद आती है। एक मकान को चार दिशा बाँधते हैं या नहीं? क्या कहलाता है वहाँ कोर्ट में? चतुर्सीमा - चार सीमा, परन्तु घर तो एक है। चार सीमा बाँधे तो चार घर है? समझ में आया? वस्तु तो वह की वह है। इस ओर से कहो तो भी वह है, इसकी ओर से कहो तो भी वह है। इस ओर से कहो तो भी वह है, इसकी ओर से कहो तो भी वह है। या चार घर है?

इसी प्रकार भगवान आत्मा, देह में बिराजमान प्रभु, उसे कहते हैं गुठली की तरह या छाल की तरह यदि भिन्न-भिन्न चीज़ (देखो) तो उसमें दिखेगा, जुदी-जुदी चीज़ दिखेगी। पूरा आम नहीं दिखेगा। इसी प्रकार आत्मा को एक-एक भाग है गुठली, वह छिलका ऐसा नहीं। द्रव्य यह, क्षेत्र यह, काल यह और भाव यह - ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा गुण-पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य है। विकार नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। वह असंख्य प्रदेशी जो चौड़ा क्षेत्र है, वही आत्मा है, वही पूरा है। उसे स्वकाल लो, काल-त्रिकालरूप काल, हों! उसका त्रिकाल। एक समय की पर्याय की बात नहीं।

स्वकाल स्वयं काल है। उसमें द्रव्य भी आ गया, क्षेत्र भी आ गया और भाव भी आ गया। स्वकाल से देखो तो वह पूरा है।

स्वभाव – भगवान आत्मा को ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण–भाव है। उस भाव से देखो तो एक पूरी चीज़ है। भाव से देखो तो कोई द्रव्य भिन्न रह जाता है, क्षेत्र भिन्न रह जाता है और काल भिन्न रह जाता है – ऐसा नहीं है। समझ में आया या नहीं? आम में गुठली कहने से छिलका, रस और मिठास भिन्न रह जाते हैं। वैसे इसका द्रव्य कहने से कोई क्षेत्र, काल, भाव भिन्न रह जाता है – ऐसा नहीं है। आम को जहाँ स्पर्श कहने से चार साथ में आ जाते हैं, सब साथ ही है। समझ में आया? यहाँ तो चार बोल भी नहीं, एकरूप है – ऐसा सिद्ध करना है। चार में से एक। उन अनन्त में से एक, ऊपर अनन्त में से एक, यह चार में से एक, फिर तीन में से एक कहेंगे। समझ में आया?

यह बात किसलिए चलती है? कि इस आत्मा की जिसे दृष्टि प्राप्त करनी है अर्थात् धर्मरूप परिणमित होना है, जिसे अनन्त काल में आत्मज्ञान हुआ नहीं और आत्मदृष्टि हुई नहीं, उसे आत्मदृष्टि करनी हो तो उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इसे भिन्न नहीं करना, ऐसे भिन्न नहीं पड़ सकते इसलिए।

वस्तु है, लो! यह वस्तु है, देखो! यह सूखड़ है या नहीं? यह सूखड़ की लकड़ी, वह सुगन्ध कहो तो यह है, कोमल कहो तो यह है, भारी कहो तो यह है और रंग में इस प्रकार की पीलाश कहो तो भी यह है। इसमें पीलाश निकाल दो, सुगन्ध निकाल दो तो दूसरी क्या चीज़ रहेगी? यह तो वही चीज़ है। सुगन्ध, भारी, कोमलता.. समझ में आया? सब यही चीज़ है।

मुमुक्षु : उस दिन भिन्न कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ कहा भिन्न उस दिन..

मुमुक्षु : भिन्न कहकर एक चीज़...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह भिन्न कहकर क्या कहते हैं? उसकी स्थिति बताते हैं। गुण–पर्याय का पिण्ड, उसे द्रव्य कहते हैं। उस चीज़ को चौड़ाई की अपेक्षा से उसे क्षेत्र कहते हैं। उसे त्रिकाल कहने की अपेक्षा से काल कहते हैं। उसमें रही हुई शक्तियों

और गुणों की अपेक्षा से भाव कहते हैं। समझ में आया? निज घर का विवाद.. दूसरी सब परत की लम्बी। स्वयं कौन और कैसा होगा, इसकी कभी खबर की नहीं। उसके बिना भटककर मरा चौरासी के अवतार में।

यहाँ कहते हैं कि यदि तुझे आत्मा प्राप्त करना हो तो आत्मा चार बोल से भले तुझे समझाया। विकाररहित समझाया, कर्मरहित समझाया, शरीररहित समझाया। अब उसे चार बोल से समझाया, इसलिए चार बोल में एक बोल में सब शामिल आ गये। चार के चार बोल नहीं, चार खाने नहीं कि एक खाने में द्रव्य रहता है, एक खाने में क्षेत्र रहता है, एक खाने में काल रहता है, और एक खाने में भाव रहता है। केरी में खाना (भाग) है, एक भाग में गुठली रहे, एक भाग में छिलका रहे, एक भाग में रस रहे, एक भाग में मिठास रहे - ऐसे उसमें चार खाने हैं... समझ में आया? वैसा इसमें नहीं है।

जैसे आम में स्पर्श पूरे भाग में रहता है, रस पूरे भाग में रहता है, गन्ध पूरे भाग में रहती है, रंग पूरे भाग में रहता है, रस पूरे भाग में रहता है; वैसे भगवान आत्मा, देह अर्थात् मिट्टी से भिन्न, कर्म से भिन्न है। वह द्रव्यरूप से तो वह, वस्तुरूप से तो वह, चेतनामात्र वस्तु तो वह, वह असंख्य प्रदेशी-वह असंख्य प्रदेशी (कहा परन्तु) निश्चय से एक प्रदेश है। अखण्ड की अपेक्षा से वह एक प्रदेशी है। समझ में आया? तो भी वह है और स्वकाल ऐसा का ऐसा त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व सत्त्व कहो तो वह का वह है और उसके ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि भाव, अनन्त भाव, अनन्त शक्ति, अनन्त गुण, वे अनन्त गुण तो वह का वही है। कोई भाव अलग रह जाये, क्षेत्र भिन्न रह जाये, द्रव्य भिन्न पड़ जाये - ऐसा नहीं है। यह आम का दृष्टान्त बहुत सरस दिया। समझ में आया? दृष्टान्त देकर समझावे तो भी न समझे। इसे कठिन लगता है। कहो, जमुभाई! दृष्टान्त तो सहारा है, वह (सिद्धान्त) समझने के लिये। दृष्टान्त तो एक अंश है।

देख भाई! यह आम है और जो आम एक रस, एक गुठली, एक छिलका और एक मिठास, (ऐसे) चार भिन्न हैं; उसी प्रकार आत्मा में एक द्रव्य, एक क्षेत्र, एक काल और एक भाव भिन्न नहीं है परन्तु आम में जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, रंग एक साथ सब है, वैसे आत्मा में वस्तु देखो तो भी वह आत्मा; उसकी चौड़ाई का क्षेत्र देखो तो वही द्रव्य, काल और भाव है। उसका काल ऐसा का ऐसा रहनेवाला काल देखो तो वह का वह

भाव, द्रव्य और क्षेत्र है। उसके गुण देखो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द - ज्ञान, दर्शन, आनन्द की चौड़ाई, उनका काल और वह द्रव्य, वह सब वह का वह है। समझ में आया या नहीं इसमें? ऐसे चतुष्टय में एकरूप आत्मा को देखने का नाम अभेददृष्टि और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! **भूदत्थमस्सिदो** की दूसरे प्रकार से बात करते हैं। चन्दुभाई! आहाहा! यह एकरूप नजर पड़े बिना एक आत्मा हाथ में नहीं आता - ऐसा कहते हैं। दो-चार नजर करने जायेगा तो भी आत्मा को खो बैठेगा - ऐसा ऊपर कह गये हैं। समझ में आया? ऊपर कहा था।

खोजा मिटा—नाश को प्राप्त होता है... ऐसी भाषा की है। **'सद्यः प्रणश्यति' 'सद्यः'** अर्थात् एकदम नाश हो जाये - ऐसा इसका अर्थ है परन्तु इसका अर्थ ही दूसरे ढंग का यह करनेवाला है। भगवान आत्मा में जो अनन्त शक्ति है, उसमें एक-एक शक्ति को खोजने जायेगा, वहाँ अनन्त शक्ति का एकरूप खो जायेगा। है? भाई! चन्दुभाई! **'सद्यः प्रणश्यति' खण्ड-खण्ड होकर मूल से खोज मिटा - नाश को प्राप्त होता है...** नाश को प्राप्त होता है अर्थात् अनुभव नहीं होता। तेरे खोजने में आत्मा ढूँढ़ने गया वहाँ एक-एक नय से एक-एक गुण को देखने जाये, वहाँ नाश को प्राप्त हो जायेगा - तेरी खोज मिट गयी, अनुभव मिट गया, ऐसा। समझ में आया? नीचे भी कहा है देखो - सार में नीचे कहा है। **जीव का अनुभव खो जाता है**। है न? अन्तिम लाईन, अन्तिम लाईन, ऐसा करते हुए... **परन्तु अनन्त शक्तियाँ हैं इससे एक-एक नय करते अनन्त नय होते हैं। इस प्रकार करते बहुत विकल्प उत्पन्न होते हैं, जीव का अनुभव खो जाता है।** है न? नीचे से दूसरी लाईन। **जीव का अनुभव खो जाता है**। तू खो जायेगा - ऐसा कहते हैं। एकरूप अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य, क्षेत्र, काल एकरूप है, उन्हें दो-तीन रूप और अनन्त रूप यदि देखने जायेगा तो तू खो जायेगा। चन्दुभाई! आहाहा! शैली कैसी की है, देखो न!

भगवान! तेरा स्वरूप तो एकरूप अखण्डानन्द प्रभु है। उसमें एकरूप का अनुभव करेगा तो एक हाथ में आयेगा। उस ऐसी चीज़ को अनेक गुण से देखने जायेगा तो एकरूप खो जायेगा अर्थात् एकरूप अनुभव में नहीं आयेगा। आहाहा! इनकी भाषा ही दूसरे ढंग की-प्रकार की! रतिभाई!

निर्विकल्प होना है न? वस्तु निर्विकल्प अभेद है, अब पर्याय में निर्विकल्प न हो, तब तक वह अभेद वस्तु दृष्टि में आवे किस प्रकार? तू भेद पाड़ने जायेगा कि यह वस्तु द्रव्य, यह क्षेत्र... तो क्षेत्र कहीं भिन्न है? भिन्न करने जायेगा, वहाँ विकल्प उठेगा, अभेद खो जायेगा। आहाहा! अरे! इसके पंथ की विधि की इसे खबर नहीं होती, यह खोजने कहाँ जाये? यहाँ तो कहते हैं खोजने जायेगा, अनन्त गुण में से एक-एक नय के एक-एक गुण को खोजने जायेगा (तो) हाथ नहीं आयेगा, तू खो जायेगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा! ए.. रतिभाई! आत्मा को और शान्ति को, धर्म को राग में और पुण्य में, शरीर में और धूल में खोजने जायेगा (तो) वहाँ भी तू अनादि का खो गया है। आहाहा! भीखाभाई! आहाहा! गजब बात!

एकरूप प्रभु (में) भले अनन्त गुण हो, परन्तु द्रव्य तो एकरूप है न! भले क्षेत्र असंख्य प्रदेश हो, वस्तु तो एकरूप है या नहीं? त्रिकाल हो, परन्तु एकसमय में एकाकार अभेद है या नहीं? अनन्त गुण हो, वस्तु तो एकरूप है या नहीं? एकरूप को अन्तर (में) देखने से निर्विकल्पता आवे और उसकी दृष्टि में निर्विकल्प चीज़ अनुभव में आवे; इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! दूसरी विधि हो नहीं सकती - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान की एकाग्रता में एकरूप दृष्टि में आये बिना उसकी एकाग्रता कभी नहीं होती। अन्तर एकाग्रता हुए बिना दृष्टि नहीं आती और एक में दृष्टि आये बिना एकाग्रता नहीं होती। जहाँ तक इसे ऐसा माने कि मैं रागवाला हूँ और शरीरवाला हूँ और कर्मवाला हूँ - ऐसा तो वह है ही नहीं, ऐसा तो वह है ही नहीं। वह कर्मवाला और पुण्य-पापवाला, देहवाला तो वह है ही नहीं परन्तु वह जो है अनन्त गुणवाला, असंख्य प्रदेशवाला, त्रिकाल रहनेवाला - उसमें भी भंग पाड़कर खोजने जाये तो अभेद वस्तु हाथ नहीं आती। नवरंगभाई! आहाहा!

बापू! तू एकरूप प्रभु है न? एकरूप की दृष्टि में दो रूप कहाँ से लाया तू? दो रूप में तो खो जायेगा। दो रूप में तो तू राग में फँस जायेगा। आहाहा! समझ में आया? रतिभाई! ऐसी गजब बातें, भाई! कहते हैं कि प्रभु को ढूँढ़ना हो तो एक में ढूँढ़ना, दो में ढूँढ़ने जायेगा तो प्रभु हाथ नहीं आयेगा - ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! वह प्रभु तू, हों!

मुमुक्षु : डोरा बाँध दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये डोरा कहा न, यह।

मुमुक्षु : एक बार डोरा बाँध लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डोरा इसका ही कहा जाता है, यह फिर से बात समझाना।

जहाँ नजर डालनी है, वह एकरूप वस्तु है। उस नजर में एकरूपता कब आवे? कि एक पर नजर जाये तो। एकरूपता नजर में कब आवे? कि यहाँ विकल्प टूटकर एकता पर्याय में करे तो.. आहाहा! समझ में आया? यह अनुभव की बात है, यह अनुभूति करने की बात है, बात की बात नहीं। आहाहा!

भाई! तेरा अनुभव करना हो, तेरी वस्तु को प्राप्त करना हो, भगवान जो अनादि का एकरूप स्वभाव से है, उसे तुझे प्राप्त करना हो तो उसके अनन्त गुण में भेद पाड़कर भी तू नहीं प्राप्त कर सकेगा, तो फिर दया, दान के राग से प्राप्त कर सकेगा, यह तो वस्तु में होता ही नहीं। उसके एकरूप में भेद पाड़ने जाये तो एक नहीं मिले, तो उसमें नहीं, उससे मिले, भाई! नहीं मिलेगा। आहाहा! अब यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से आत्मा मिलेगा, (ऐसा अभी कहते हैं)।

मुमुक्षु : व्यवहार साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी साधन नहीं है। वह तो निमित्तरूप से ज्ञान कराया है। साधन-फाधन कैसा? आहा! (व्यवहार) साधन और निश्चय साध्य, वह तो निमित्त का ज्ञान (कराया है)। उस समय ऐसे ही विकल्प होते हैं - ऐसा बताया है। समझ में आया? सबेरे की चर्चा भी इसमें है, हों! उस काल में और स्वकाल में दो शब्द पड़े हैं। उस काल में है न? उस काल में, उस काल में।

यहाँ तो निश्चय-व्यवहार को साथ रखना है। वह तो निश्चय हो, तब पूर्व का विकल्प है, उसे कहा जाता है या साथ में विकल्प है, उसे व्यवहार कहा जाता है, बाकी बात में दूसरा कुछ माल है नहीं।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोड़ सकल जग द्वन्द्व-फन्द निज आतम उर ध्याओ।

कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, वह **जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान है, इसलिए स्वद्रव्यरूप से विचारने पर स्वद्रव्यमात्र है,...** देखो, स्वद्रव्यमात्र है। स्वद्रव्यमात्र में फिर कोई क्षेत्र, काल, भाव भिन्न रह जाते हैं – ऐसा नहीं है। आम को स्पर्श से देखने पर स्पर्शमात्र है। उसमें रसगुण कोई टुकड़ा दूसरा कहीं आगे रह जाता है (–ऐसा नहीं है)। उसमें समा गया है, उसमें भिन्न नहीं। आहाहा! समझ में आया?

स्वक्षेत्ररूप से विचारने पर स्वक्षेत्रमात्र है,... ऐसे अन्तर स्वक्षेत्र देखने से भगवान स्वक्षेत्रमात्र ही है। स्वक्षेत्रमात्र ही है; इसलिए उसमें द्रव्य भिन्न रह गया, काल भिन्न रह गया और शक्ति भिन्न रह गयी – ऐसा कुछ है नहीं। वह तो स्वक्षेत्रमात्र ही है, स्वक्षेत्रमात्र ही है। आहाहा! एक तो चार बताते हैं, ऐसी स्थिति वीतराग के अतिरिक्त कहीं होती। सर्वज्ञ के अतिरिक्त वस्तु के ऐसे चार भाग कहीं नहीं होते और फिर भी उन चार भाग में एकरूप है। यह तो इनकी कथन शैली! ऐसी व्याख्या वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा देखा, उन्होंने आत्मा कहा, उसके अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा आत्मा नहीं हो सकता। वस्तु की स्थिति ऐसी है।

यह तो एक बार श्रीमद् ने पत्र में लिखा था। सूर्यराम त्रिपाठी थे न? उस समय में थे, वेदान्त में बहुत होशियार। सूर्यराम त्रिपाठी, उनके प्रति पत्र है। एक बार लिखा था कि एक व्याख्या इस प्रकार भी कही जा सकती है। वस्तु को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप से आप विचारना। ऐसा करके (लिखा था)। एक पत्र में ऐसे चार बोल रखे हैं। क्योंकि इस प्रकार विचारे तो उसे एक वस्तु इतने क्षेत्र में हैं, इतने ही काल में, इस गुण में, यह द्रव्य है – ऐसा करने से सब फू... तेरा हो जायेगा। एक द्रव्य ऐसे पूरे लोक में व्यापक है और तीन काल एकत्रित होकर ऐसे होता है... यह सब (कुछ नहीं)। काल भी यहाँ, क्षेत्र यहाँ और भाव यहाँ इतने में यहाँ है। ऐसा एक पत्र है, भाई! सूर्यराम त्रिपाठी उस समय में वेदान्त में बहुत होशियार थे। उन्होंने पुनर्जन्म की बात भी की है। पुनर्जन्म है, यह मैं मेरे अनुभव से कहता हूँ और तुम वृद्ध हो परन्तु एक द्रव्य की व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है। वरना वस्तु–द्रव्य की चौड़ाई कितनी, उसका काल

कितना, उसकी शक्ति कितनी–उसके वर्णन के बिना वस्तुस्थिति पर से भिन्न समझी नहीं जा सकेगी।

यहाँ तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में भी एक को देखने से सब शामिल आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प रहेगा। यह द्रव्य और यह क्षेत्र – ऐसा भिन्न-भिन्न तो है नहीं। तुझमें विकल्प रहेगा, राग खड़ा रहेगा। वह एक खड़ा नहीं होगा। आहाहा! विकल्प खड़ा होगा, दृष्टि में एक खड़ा नहीं होगा। आहाहा!

स्वकालरूप से विचारने पर स्वकालमात्र है,.. भगवान तो अपने काल.. वस्तु है। स्वयं ही स्वकाल है। वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. और **स्वभावरूप से विचारने पर स्वभावमात्र है।** कहो, समझ में आया? **इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है, वह अखण्डित है।** इस कारण ऐसा कहा कि जो पदार्थ भगवान आत्मा है, यहाँ अखण्डित है। एक-एक स्वयं अखण्डित। एक-एक, हों! यहाँ। **अखण्डित शब्द का ऐसा अर्थ है।** लो! '**खण्डयामि**' था न? '**न खण्डयामि**' '**न खण्डयामि**' अर्थात् अखण्ड। अखण्ड का अर्थ ऐसा है – ऐसा कहते हैं, लो! अन्तिम शब्द यह किया। समझ में आया? अब चार में से एकरूप किया और अब तीन में से एकरूप करते हैं। ज्ञाता भी मैं, ज्ञेय भी मैं और ज्ञान भी मैं। जाननेवाला मैं और ज्ञेय पर – ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा मैं जाननेवाला ज्ञाता और छह द्रव्य ज्ञेय, उनका ज्ञान। नहीं; इतना भी मैं नहीं, ऐसा भी मैं नहीं। इतना भी मैं नहीं और ऐसा भी मैं नहीं।

कलश - २७१

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेय–ज्ञान–मात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेय–ज्ञान–कल्लोल–वल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ।।८–२७१।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय–ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है सो कोई ऐसा समझेगा कि जीववस्तु, ज्ञायक; पुद्गल से लेकर भिन्नरूप छह द्रव्य, ज्ञेय हैं, सो ऐसा तो नहीं है। जैसा इस समय कहते हैं, उस प्रकार है। 'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' [अहं] मैं [अयं यः] जो कोई [ज्ञानमात्रः भावः अस्मि] चेतना सर्वस्व, ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ, 'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं, ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ— 'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' [ज्ञेयः] अपने जीव से भिन्न, छह द्रव्यों के समूह का [ज्ञानमात्रः] जानपनामात्र। भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक; समस्त छह द्रव्य, मेरे ज्ञेय–ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा— 'ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः' [ज्ञान] जानपनारूप शक्ति, [ज्ञेय] जाननेयोग्य शक्ति, [ज्ञातृ] अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र, ऐसे तीन भेद, [मद्वस्तुमात्रः] मेरा स्वरूपमात्र है, [ज्ञेयः] ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य–वेदकरूप से जानता हूँ; इसलिए मेरा नाम, ज्ञान; यतः मैं आप द्वारा जाननेयोग्य हूँ; इसलिए मेरा नाम, ज्ञेय; यतः ऐसी दो शक्तियों से लेकर, अनन्त शक्तिरूप हूँ; इसलिए मेरा नाम, ज्ञाता। ऐसा नामभेद है; वस्तुभेद नहीं है। कैसा हूँ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' [ज्ञान] जीव, ज्ञायक है; [ज्ञेय] जीव, ज्ञेयरूप है–ऐसा जो [कल्लोल] वचनभेद, उससे [वल्गन्] भेद को प्राप्त होता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है; वस्तु का भेद नहीं है।।८–२७१।।

कलश - २७१ पर प्रवचन

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेय–ज्ञान–मात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेय–ज्ञान–कल्लोल–वल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥८–२७१॥

अन्तिम श्लोक है न? एकदम वस्तु का अभेदपना वर्णन करते–करते अनन्त गुण में से एक सार (कहा), ज्ञाता–ज्ञान में से एक (कहा)। जो शैली '**भूदत्थमस्सिदो**' ली है, उस शैली को बहुत समेटते–समेटते ऐसे चले जाते हैं। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति है, हों! पुण्य–पाप और शरीर, कर्म की तो बात इसमें है ही नहीं। इसमें यह है नहीं, इसलिए फिर उसके भंग भेद की क्या बातें करना? कहते हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प उठता है, वह तो राग है, वह वस्तु में कहाँ है? इससे प्राप्ति हो या वह आत्मा की चीज़ है, ये दो बातें तो यहाँ है ही नहीं, परन्तु रहा भगवान आत्मा विकाररहित निर्विकारी वस्तु; उसके जो अनन्त गुण हैं, उनसे एक–एक गुण को एक–एक नय से देखने जाने से एकरूप हाथ में नहीं आता। फिर कहते हैं कि चाररूप वस्तु कहते हैं, तथापि उसे चारपने में एकरूप खोजने जा और तीसरे तीन बाकी रखने जा तो वह हाथ नहीं आयेगी (क्योंकि) ऐसी वस्तु नहीं है।

अब कहते हैं **भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है...** यहाँ से शुरु किया है।'स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी' ज्ञेय दो प्रकार के–स्वज्ञेय और परज्ञेय। इसमें वचन के भेद से लोगों को भ्रम उत्पन्न होता है कि यह ज्ञेय मैं, मैं ज्ञेय या ज्ञान। मैं ज्ञान और ये ज्ञेय - ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। यह छह द्रव्य को जो ज्ञेयपना, तो एक समय की पर्याय जाने, इतना वह ज्ञान और इतना वह आत्मा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध में (अर्थात्) जाननेवाले और ज्ञातयोग्य में बहुत वचन के भ्रम उत्पन्न होते हैं। **सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक,**

पुद्‌गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। ऐसा कोई समझेगा कि जीव वस्तु तो जाननेवाली है और उससे छह द्रव्य भिन्न वे उसे ज्ञेय हैं। ज्ञात होने योग्य, वे छह द्रव्य हैं और जाननेवाला, यह आत्मा ज्ञायक है - ऐसा कोई कहे तो ऐसा है नहीं। आया है न? **ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।** दूसरी लाईन। समझ में आया?

जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्‌गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य... भिन्न अर्थात् अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद - ये सब एक समय की पर्याय में सब ज्ञेयरूप से वे ज्ञेय और यह ज्ञान? कि नहीं; वह मेरी पर्याय जो ज्ञान और मैं जो ज्ञेय अनन्त द्रव्य, गुण और पर्याय को ज्ञेय करनेवाला मैं। अकेले छह द्रव्य को ज्ञेय करूँ, इतना ज्ञान नहीं, ऐसा। समझ में आया? वे ज्ञेय नहीं परन्तु एक इसके ज्ञान का परिणमन एक समय की पर्याय इतना भी ज्ञेय नहीं। वर्तमान ज्ञान का उतना भी ज्ञेय नहीं। ज्ञेय तो पूरा द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों होकर इसका ज्ञेय है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। यह तो बहुत ऊँची बात है। अर्थात् इसके सत् के घर की बात है।

एक समय में इसके ज्ञानमात्र पर्याय वह मैं ज्ञान हूँ? ज्ञायक हूँ? इतना ज्ञायक हूँ? इतना ही ज्ञेय है? और इतना ही ज्ञान है? **सो ऐसा तो नहीं है।** भगवान ज्ञायक और छह द्रव्य उसका ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। अनन्त सिद्ध... मैं जाननेवाला और अनन्त सिद्ध मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। अनन्त केवली मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। आहाहा! समझ में आया? रखते हैं न, धीरे-धीरे आता है।

सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्‌गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं।.. हों, सब आत्मा। अनन्त निगोद, अनन्त केवली, वे सब **ज्ञेय हैं। सो ऐसा तो नहीं है।** आहाहा! **जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है—'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' 'अहं' मैं जो कोई 'यः ज्ञानमात्रः भावः' चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** मैं तो **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** समझ में आया? यह **'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ— 'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः'..** क्या कहते हैं?

चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ.. परन्तु **'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—कैसा? 'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने**

जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र। इतना ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। आहाहा! **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** पूरा चेतना वस्तु द्रव्य, गुण और पर्याय पूरा - ऐसा जो ज्ञेय, वह मैं ज्ञेय हूँ। समझ में आया? **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** देखा? यह छह द्रव्य ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा नहीं, परन्तु पूरा चेतनामात्र सर्वस्व वस्तु पूर्ण, एक वस्तु पूरी मेरी, वह ज्ञेय है। समझ में आया? आहाहा! **जो कोई.. 'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि'** ऐसा कहना है न? **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ 'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः'** उन ज्ञेयों को जाननेमात्र ज्ञानरूप ज्ञेय-ऐसा मैं नहीं।

मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं है। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य जाननेयोग्य, इतना तो नहीं। जाननेयोग्य इतना ऐसा नहीं। पूरा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे जाननेयोग्य और मैं ज्ञायक, ऐसा है। समझ में आया? मैं स्वयं ही पूरा ज्ञायक और मैं ज्ञेय पूरा हूँ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ये अन्तिम श्लोक है न! ये उतारेंगे अमुक-अमुकरूप से। शक्ति से ज्ञेयशक्ति और ज्ञानशक्ति, ज्ञाता और अनन्त शक्ति लेंगे परन्तु एक ज्ञेयशक्ति में अनन्त आ गये, पूरा सब आ गया। समझ में आया?

यह आत्मा और आत्मा की अन्दर की बात चलती है। राग-द्वेष से लेकर अनन्त सिद्ध, वे सब ज्ञेय, उनका ज्ञान इतना ज्ञायक और वे मेरे ज्ञेय - ऐसा नहीं है। समझ में आया? राग-द्वेष, पुण्य-पाप से लेकर अनन्त केवली या अनन्त निगोद, अनन्त छह द्रव्य, इतना ज्ञेय और मैं ज्ञान - ऐसा नहीं है परन्तु मैं तो पूरा सर्वस्व चेतनामात्र पूर्ण वस्तु हूँ। वह ज्ञेय। समझ में आया? वह मेरा ज्ञेय। **'सः ज्ञेयः न एव' मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है—'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-ज्ञानज्ञेयज्ञातृ'** देखो! तीन से वापस चौथा बोल लेंगे। **'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः'** ऐसा। **'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः'** समझ में आया? मैं ज्ञान, मैं ज्ञेय और मैं वस्तु, ये तीनों मैं ज्ञेय। तीन होकर ज्ञेय पूरा। चन्दुभाई! सूक्ष्म है भाई यह! यह ज्ञान, यह ज्ञेय, और ज्ञातृ, ये तीनों ज्ञेय हैं। तीन रूप पूरा मैं ज्ञेय हूँ। पूरा ज्ञान हूँ, पूरा ज्ञेय हूँ और पूरा ज्ञायक-ज्ञाता हूँ। ये तीन भेद पाड़ने में ऐसा भेद मुझमें नहीं है। इसकी विशेष बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १४, गुरुवार, दिनांक-०६-०१-१९६६, कलश-२७१, २७२ प्रवचन-२९२

साध्य–साधक अधिकार, कलश–टीका का आठवाँ श्लोक चलता है, भावार्थ है।

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,.. क्या अधिकार है यह ? ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान तीनों मैं एक ही हूँ। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य ज्ञात हों – ऐसा मैं नहीं, इतना मैं नहीं। समझ में आया ? वस्तु एकरूप निर्विकल्प अभेद है – ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य ज्ञात हो – ऐसा, इतना वह मेरा ज्ञेय नहीं। ज्ञात होनेयोग्य वस्तु ज्ञात हो और मैं जाननेवाला, इतना मैं ज्ञेय नहीं और इतना ज्ञानमात्र भी मैं नहीं, ऐसा। क्या कहा ? समझ में आया ?

छह द्रव्य ज्ञात हों – ज्ञेय, उतना ज्ञेयमात्र मैं नहीं। उसे जाननेवाला ज्ञान, उतने ज्ञानमात्र मैं नहीं और (ज्ञेय) जो ज्ञात होता है, वह ज्ञेय ज्ञात नहीं होता, वह ज्ञान मेरी पर्याय ज्ञेय होकर मुझे ज्ञात होती है। समझ में नहीं आया ? उस ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वह ज्ञेय नहीं, वह तो मेरी ज्ञानपर्याय है और वह ज्ञानपर्याय मेरे सम्पूर्ण द्रव्य, गुण–पर्याय तीनों को जानती है। अकेले स्वज्ञेय पर को जानती है – ऐसा नहीं, और वह ज्ञेय पर है, इतना नहीं। मैं तो ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञायक तीनों होकर मैं ज्ञेय हूँ। जाननेवाला भी मैं, ज्ञात होनेयोग्य भी मैं और जाननेवाला ज्ञान, वह (भी) मैं। जाननेवाला ज्ञायकभाव भी मैं, जाननेवाला ज्ञान भी मैं, ज्ञात होनेयोग्य तीनों ज्ञेय भी मैं। सूक्ष्म है, फूलचन्दभाई !

श्रोता : ज्ञेय कहाँ रहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ, वे ज्ञेय उसमें गये। यहाँ क्या है ? इसकी एक समय की पर्याय में ज्ञात हुए, वह तो ज्ञान की पर्याय हुई और उस ज्ञान की पर्याय जितना भी नहीं, और उस ज्ञेय को जाने, वह वास्तव में उसे जानना, वह भी मैं नहीं। कहते हैं, देखो ! तीनों आये या नहीं ? अन्तिम शब्द क्या आया ?

ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः ऐसा ज्ञेय हूँ। अन्तिम शब्द है न ? भाई ! तीसरी लाईन का पहला ज्ञेय। संस्कृत और अन्तिम **ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः** ऐसा ज्ञेय। समझ

में आया? मैं तो ज्ञान, मैं ज्ञाता, मैं ज्ञेय, ये तीनों होकर मैं ज्ञेय। बात बहुत (सूक्ष्म है)। यह कहा न? देखो, **मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,..** धर्मात्मा अपने आत्मा को पर से भिन्न करके ज्ञात होने योग्य भी मैं, और जाननेवाला भी मैं, जाननेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं – ऐसे वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ। मुझे **वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,..** पर ज्ञात होनेयोग्य को जानता हूँ – ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? ये अभेद वस्तु है, यह निर्विकल्प अवस्था होने पर वह ज्ञेय, ज्ञायक और ज्ञाता तीन वहाँ दृष्टि में भेद नहीं रहता – ऐसा बताना है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-दृष्टि होने से, सम्यग्दर्शन की दृष्टि होने से दृष्टि के विषय में यह ज्ञेय, यह ज्ञाता और ज्ञान – ऐसे तीन भेद नहीं रहते। समझ में आया? स्वयं जाननेवाला, स्वयं जानने में आनेयोग्य और स्वयं ज्ञायक-तीनों वह एक ही है। जाननेवाला ज्ञान, ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय और पूरा ज्ञायक, यह सब एक ही हूँ। गजब बात, भाई!

भूतार्थ वस्तु एक स्वरूप से है। ऐसी अन्तर ज्ञेय.. दूसरा तो प्रश्न कहीं रहा कि निमित्त को जानता हूँ, या निमित्त मुझे ज्ञात होता है, यह नहीं। यहाँ तो मैं जानता हूँ और मैं जानने में आनेयोग्य हूँ। ऐसा अभेद और ज्ञायक भी मैं हूँ – ऐसी अभेददृष्टि अन्तर में करना, इसका नाम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया?

दृष्टि में... पहले कहा था न? बन्ध और मोक्ष के पड़ते विकल्प तो दूर हो, पश्चात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भंग भी दूर रहो अथवा शक्ति के अनन्त गुण की शक्ति के भेद भी दूर रहो, फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भंग-भेद दूर रहो। अब ज्ञेय, ज्ञायक और ज्ञाता के तीन भेद भी मुझमें नहीं। अरे बात! कहो, नेमिदासभाई! बाहर से देखने से कितना अन्दर देखा जायेगा?

जैसे मैं देखनेवाला हूँ और यह ज्ञात होता है – ऐसे नजर करके करता है या नहीं? ऐसे मैं देखनेवाला हूँ और यह ज्ञात होता है, ऐसा भेद भी उसमें-अन्दर में नहीं है – ऐसा कहते हैं। यह बात तो बहिर्बुद्धि में गयी कि यह ज्ञेय ज्ञात होते हैं और मैं जाननेवाला, यह बात तो बहिर्बुद्धि में गयी परन्तु मैं एक ज्ञात होनेयोग्य और मैं ज्ञान द्वारा जानता हूँ और ज्ञायक-ऐसे तीन प्रकार भी, वस्तु पर दृष्टि पड़ने से तीन प्रकार-भेददृष्टि नहीं रहती। ओहोहो!

श्रोता : अद्वैत ब्रह्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्वैत ब्रह्म यह स्वयं अकेला है। पूरे सब आत्मा की यहाँ बात नहीं है। द्वैतमय भासित नहीं होता। नहीं आ गया पहले? (कलश ९) **उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं** वस्तु तो वस्तु है, गुण है, पर्याय है परन्तु सब ज्ञेय है, सब का जाननेवाला ज्ञान हूँ और पूरा होकर मैं ज्ञायक हूँ। ओहोहो! गजब बात, भाई! क्योंकि सामने छह द्रव्य ज्ञेय है, वह तो ज्ञान की एक पर्याय–बहिर्मुख पर्याय के विषय में उतना ज्ञान तो आ जाता है। क्या कहा? छह द्रव्य हैं, अनन्त सिद्ध हैं, निगोद है, वह तो ज्ञान की एक बहिर्मुख परलक्ष्यी पर्याय में उतना तो ज्ञान आ जाता है। उतना मैं नहीं। मैं तो उस पर्यायसहित पूरा द्रव्य और गुण का–पर्याय का पिण्ड वह मेरा ज्ञेय है, उसका मैं जाननेवाला हूँ और ज्ञायकपने वह मैं ही हूँ। कहा न?

इसलिए मेरा नाम ज्ञान,.. क्यों कहते हैं? वेद्य–वेदकरूप से जानता हूँ, (इसलिए) मेरा (नाम) ज्ञान है। ज्ञेय को जानूँ, परज्ञेय को जानूँ; इसलिए मेरा नाम ज्ञान – ऐसा नहीं। क्या कहा? **मैं अपने स्वरूप को वेद्य..** अर्थात् जनाने योग्य और वेदक अर्थात् जानने योग्य – ऐसा **जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान,...** है। मुझे ही मैं ज्ञात होनेयोग्य हूँ और जाननेवाला हूँ, दूसरा कोई है नहीं। ऐसी अन्तर्मुख में वस्तुस्वरूप की दृष्टि होने से, उसे देखने से, उसे देखने से और देखनेवाला ऐसा भेद भी न रहने से, इसे – वस्तु को देखता हूँ और मैं देखनेवाला ज्ञान हूँ – ऐसा भेद भी नहीं रहने से, स्वज्ञेय को मैं जाननेवाला स्वयं वेदने योग्य और वेदनेवाला स्वयं ज्ञायक भी मैं हूँ – ऐसी एकरूप अन्तर्दृष्टि होना, उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,.. मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ, मैं पर द्वारा जाननेयोग्य – ऐसा हूँ नहीं। **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** है। देखो! **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** है। ज्ञान भी मैं हूँ, वेद्य–वेदकरूप से जाननेवाला मैं ज्ञान; मेरे द्वारा मैं मुझे जानता हूँ, इसलिए मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! अभी तो बाहर में सब विवाद हो रहा है। देह की क्रिया और वाणी की क्रिया से धर्म होता है

और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से धर्म होता है.. ये तो कहीं बाहर रह गये। यह उनका ज्ञान (हो), उतना भी मैं नहीं – ऐसा कहते हैं। मुझे उनके सन्मुख देखकर मुझे ज्ञान हो – ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहार के ज्ञान को मैं जानूँ, व्यवहार ज्ञेयरूप से उसे जानूँ, इतना ज्ञेय भी मैं नहीं और उतना जाननेवाला ज्ञान की पर्याय, इतना भी मैं नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? ज्ञायकस्वभाव चिदानन्दमूर्ति वह ज्ञात होनेयोग्य है, वह जाननेवाला ज्ञान और मैं मेरे द्वारा ज्ञात होता हूँ; इसलिए मैं ज्ञेय हूँ। समझ में आया ?

ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। आहाहा! ऐसा का ऐसा अनन्त बार भटक मरा है। स्वयं कौन है, उसे देखने को निवृत्त नहीं होता। बाहर को देखने में विकल्प है और बन्ध का कारण है, दुःख का कारण है। समझ में आया ? यहाँ तो ऐसा सिद्ध करते हैं कि राग-द्वेष तो मैं नहीं परन्तु राग-द्वेष को जानने की पर्याय होती है, उतना भी मैं नहीं और राग-द्वेष ज्ञेय, वह वास्तव में ज्ञेय नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह व्यवहार जो विकल्प उठता है – दया, दान, भक्ति, यह तो विकल्प का उत्थान वृत्तियाँ हैं; वे चैतन्यस्वरूप नहीं हैं। वे वृत्तियाँ उठें, उन्हें जानूँ और वे वृत्तियाँ ज्ञेय – ऐसा नहीं है। और उन्हें जानना, ऐसी पर्याय हो, उतना ज्ञान – ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब सूक्ष्म, भाई! आत्मतत्त्व को पहुँचने के लिये अभेदपना होना चाहिए उसके बदले कहाँ के कहाँ विपरीतता में चढ़ा दिया बेचारे को। मर जाता है, हैरान होकर चला जाता है। समझ में आया ?

वस्तु अन्दर सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्मा तो सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द की मूर्तिस्वरूप है। उसके स्वरूप में, कहते हैं पर के कारण मैं जानूँ – ऐसा नहीं; पर को जानने की पर्याय, उतना मैं नहीं परन्तु मेरा स्वभाव मैं स्वयं ही मेरे ज्ञेय को जानता हूँ, जाननेवाला मैं हूँ और जाननेयोग्य मैं हूँ। इत्यादि शक्ति का-अनन्त शक्ति का सत्व वह ज्ञायक, वह भी मैं हूँ। ऐसे चैतन्यद्रव्य में अभेदरूप से आत्मा में अनुभव करना, यह उसका नाम अनुभव और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! सिर घूम जाये ऐसा है न इसमें तो ?

श्रोता : इसमें तो देव, गुरु धर्म की श्रद्धा भी नहीं रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अब... देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा तो कहीं रह गयी राग में। यह इसके ज्ञान और ज्ञेय, ज्ञान नहीं और वह ज्ञेय नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। देव, गुरु हैं, वस्तु है, छह द्रव्य है, सब है, उसमें देव-गुरु नहीं आये? सिद्ध आये, गुरु आये, देव आये। सब आया उसमें? शास्त्र नहीं आये उसमें? सब आये परन्तु वे छह द्रव्य जो आत्मा के अतिरिक्त हैं, उतना ही मेरा ज्ञेय है - ऐसा नहीं। मैं तो पूरे मेरे आत्मा द्वारा मुझे जानूँ, वह मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! और छह द्रव्य को जानने की पर्याय जितना ज्ञान मैं नहीं हूँ। मैं तो पूरे द्रव्य-गुण-पर्याय को - पूरा को जानूँ - ऐसा वह ज्ञान मेरा है। आहाहा! समझ में आया? वजुभाई! बहुत सूक्ष्म... मशीन में तो एकदम (ऐसा) करे और वहाँ दस हजार-बीस हजार पैदा हों, चलो, चलो आँकड़ा इकट्ठा कर डालें।

इसकी एक समय की पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो बहिर्मुख में, इतना भी मेरा ज्ञान नहीं, इतना वह मेरा ज्ञेय नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्या कहते हैं? यह जगत चौदह ब्रह्माण्ड है और खाली भाग है। अनन्त खाली भाग है न? खाली... खाली.. खाली.. खाली.. अनन्त.. अनन्त.. वह मेरा ज्ञेय और मैं उसे ज्ञान की अवस्था में जानूँ, इतना वह ज्ञेय नहीं और उसे जाननेवाली पर्याय, उतना यह ज्ञान नहीं। छोटाभाई! मैं तो सारे द्रव्य-गुण मेरे अनन्त गुण का पिण्ड ज्ञायक, उसे मैं ज्ञेयरूप से ज्ञान में जानूँ और ज्ञायक भी मैं, ऐसे तीन प्रकार के भेद भी मेरी चीज़ में नहीं। ऐसी वस्तु की अनुभूति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम आत्मा का साक्षात्कार, इसका नाम मुक्ति का उपाय (है)। धर्मचन्दजी! ऐसा सब करने जायेंगे तो फिर यह कोई करेगा नहीं - यह मन्दिर, मन्दिर की पूजा (कोई करेगा नहीं)। एक तो युवक करते नहीं और फिर यदि ऐसा उनके समक्ष रखोगे तो युवक नास्तिक होकर भागेंगे। अरे! सुन न अब! उसके करने के काल में ऐसा विकल्प आये बिना नहीं रहेगा। भक्ति आदि हो परन्तु वह शुभभाव है। वह हो, उसका किसने इनकार किया है परन्तु वह शुभभाव, वह आत्मा का इतना ही ज्ञेय है - ऐसा नहीं। पूरे लोकालोक का ज्ञेय, परन्तु इतना ही ज्ञेय है - ऐसा नहीं। और पूरे लोकालोक को जानने की पर्याय इतना ज्ञानमात्र हूँ - ऐसा भी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त जिसके एक ज्ञानगुण में अनन्त केवलज्ञान समा गया। एक समय में लोकालोक को जाने, वह मतिश्रुत में भी ज्ञात हो और केवल में भी ज्ञात हो परन्तु ऐसी-ऐसी तो अनन्त पर्यायें जिसके एक गुण में समा जाये, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों का एकरूप, वह मेरा ज्ञेय; उसे जाननेवाला ज्ञान, वह ज्ञान; वह पूरा ज्ञायक, वह मैं एक हूँ। समझ में आया ?

यह लकड़ी नहीं ज्ञात होती - ऐसा अभी तो कहते हैं। लकड़ी ज्ञात नहीं होती, ज्ञान की पर्याय उसरूप परिणमित हुई है, वह जानती है, तथापि वह ज्ञेय है, उतना ही ज्ञेय मेरा है - ऐसा नहीं। यह लकड़ी का दृष्टान्त दिया, इसी प्रकार लोकालोक। मेरा ज्ञेय जाननेयोग्य लोकालोक है, इतना मेरा ज्ञेय नहीं। मेरा ज्ञेय तो अनन्त गुण का पिण्ड पूरा ज्ञायक द्रव्य-गुण-पर्याय पूरा वह मेरा ज्ञेय है और इस लोकालोक को जानने जितनी ज्ञान की पर्याय - अवस्था, उतना मेरा ज्ञान नहीं है। मेरा ज्ञान तो अनन्त द्रव्य, गुण का पिण्ड ऐसा भगवान आत्मा, उसके गुण-पर्याय को जानने का ज्ञान ऐसे ज्ञानवाला मैं। वह तो मैं का मैं हुआ। जानने योग्य भी मैं, जाननेवाला भी मैं और ज्ञायक भी मैं। धर्मचन्दजी! गजब बात, भाई! ऐसी बात! यह आत्मविद्या है। समझ में आया ?

श्रोता : बाहर में तो सब उड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में उड़ गया है न! अन्दर में है ही कब ? था तब उड़े न ? बाहर का रहेगा। जब तक राग है, राग है, तब तक हो, दिखेगा। क्रिया भी शरीर की होनेवाली होगी वह होगी, पूजा-भक्ति जो होनेवाली है, (वह होगी) परन्तु इसके स्वरूप में देखो तो मूल दृष्टि में वह विकल्प और उसका ज्ञान तथा उसके सामने ज्ञेय, इतना आत्मा नहीं। ऐसी दृष्टि में आत्मा को न ले, तब तक अन्य विकल्प और अन्य को व्यवहार भी नहीं कहा जाता - ऐसा कहते हैं। शोर मचाते हैं (कि) युवक नास्तिक हो जायेंगे। बापू! सत् वस्तु है, वह सत् समझने से वह सत् से भ्रष्ट होगा ? समझ में आया ? ऐसे तो अनादि से भ्रष्ट है ही। वस्तु की स्थिति-सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द कन्द आत्मा के अनन्त गुण का एक रसकन्द, उससे तो पतित है ही। राग को अपना मानता है, शरीर को अपना मानता है अथवा वर्तमान अल्पज्ञ दशा, इसकी स्वयं की इतनी है - ऐसा मानता है, वह पतित तो है। समझ में आया ?

महा चैतन्यसागर भगवान आत्मा अनन्त गुण का सागर चैतन्य रत्नाकर है। जिसके एक-एक गुण में पूरे लोकालोक को जाने - ऐसी एक-एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय जिसके एक गुण में पड़ी है। ऐसे अनन्त गुण का (पिण्ड) भगवान आत्मा, वह मेरा ज्ञेय है। लोकालोक ज्ञेय नहीं - ऐसा कहते हैं। उसे जानना, वह मेरा ज्ञान है और वह सब होकर पूरा मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! समझ में आया? रवजीभाई! समझ में आता है यह? यह समझ में आता है - ऐसा कहते हैं न! अन्य बाहर का तो सब समझ में आता है न! गजब बात भाई! ऐसी।

ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है। क्या कहते हैं? मुझमें ऐसा ज्ञात होने योग्य, जाननेवाला, सब शक्ति का पिण्ड, वह ज्ञायक - ऐसे नामभेद वचन में, बोलनेमात्र हो; वस्तु में भेद नहीं। वस्तु अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य हीरा पूरा अखण्ड है। उसे अन्तर में नजर में लेना और उसमें अभेद में अनुभव करना, उसका नाम धर्म और शान्ति है। इसके बिना धर्म और शान्ति कहीं तीन काल में अन्यत्र है नहीं। समझ में आया?

जगत की चीज़ होती है तो देखने के लिये नज़र रखकर ऐसी सूक्ष्मता से देखता है परन्तु देखनेवाला उसे वह देखनेवाले स्वयं को कैसे देखना, इसका इसे पता नहीं होता, यह नजर से पर को टकटकी करके देखना चाहता है, वह नज़र स्वयं कौन है - ऐसा देखने की नज़र नहीं करता।

श्रोता : ऐसा क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं, इसलिए नहीं होता। कैसे होगा? मलूकचन्दभाई! आहाहा! बाहर में पाँच-पचास लाख रुपये (का) धावा पड़ता हो, वहाँ नजर टकटक किया करता है। यह पैसे आये, यह आमदनी हुई, यह बढ़े। क्या बड़ा परन्तु तुझे, धूल बढ़ी।

श्रोता : परन्तु इतनी बात का सुख कितना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का ढ़ेर है उस समय। 'यह मुझे मिले' ऐसा भाव दुःख का ढेर है। मूढ़ होकर मानता है कि सुख है। वह तो कौन इनकार करे? कहो, यह निर्णय करना पड़ेगा न? क्या कहते हैं? क्या होगा? मलूकचन्दभाई! अभी अनुभव

होता है या नहीं थोड़ा-थोड़ा? यह तो अनादि का ऐसा ही है, धूल में भी कुछ नहीं। व्यर्थ ही मानकर बैठा है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति है। आत्मा में नित्य अतीन्द्रिय आनन्द रस पड़ा है, उसे आत्मा कहते हैं। यह पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे आत्मा नहीं, वे तो विकार हैं। शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी, जड़ है। अतीन्द्रिय आनन्द है, इतना भी मैं ज्ञेय नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! और उसका ज्ञान करूँ, उतना भी मेरा ज्ञान नहीं और अतीन्द्रिय आनन्द एक उतना भी मैं ज्ञायक नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु (में) ऐसे तो अनन्त-अनन्त गुण आत्मा में हैं। स्वभाव है न? स्वभाव को क्षेत्र की मर्यादा की आवश्यकता नहीं है, उसके सामर्थ्य की आवश्यकता है। एक-एक अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय प्रभुता - ऐसे अनन्त गुणरूप एक का जो ज्ञान, वह ज्ञान और वह ज्ञायक मैं और वह मेरा ज्ञेय; दूसरा ज्ञेय - ऐसा नहीं। परन्तु इन तीन के भेद भी वचनमात्र हैं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अपने में ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, यह वचन का कल्लोल है, वचन की कल्लोल है, विकल्प की कल्लोल है; वस्तु में यह नहीं ऐसा कहते हैं। देखो!

ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् इस वस्तु के तीन नाम भले ही रखे, मुझमें ही मुझमें, हों! पर के साथ कुछ नहीं। मैं अनन्त गुण का पिण्ड ज्ञायक, मैं स्वयं ज्ञान, सबको जानूँ - ऐसा मैं ज्ञान और मैं मुझे मेरे द्वारा ज्ञात होऊँ - ऐसा मैं ज्ञेय, यह नाम भेद हो... समझ में आया? वस्तु भेद नहीं। वस्तु में ये तीन प्रकार नहीं हैं। वस्तु तो एकाकार सब है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञायक एक ही वस्तु है। समझ में आया? छहढाला में आता है, आता है या नहीं? ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। वह सब यहाँ से लिया है। **उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं** भगवान स्वरूप में जहाँ अन्तर में अनुभव में आवे, (वहाँ) नय की लक्ष्मी छुप जाती है, निक्षेप कुछ दिखता नहीं, प्रमाण-फ्रमाण सब अस्त हो जाता है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है। समझ में आया? गुड़ कहो, मिठास कहो और गुड़ की मिठास कहो, सब एक ही है। इसी प्रकार ज्ञेय कहो तो भी मैं; जाननेयोग्य हो तो भी मैं; जाननेवाला हो तो भी मैं और ऐसी अनन्त

शक्ति का पिण्ड ज्ञायक हो तो भी मैं। कहो, अब इसमें उड़ जाता है या नहीं सब? अन्दर की दृष्टि में वह कुछ है ही नहीं। जब अन्तर्दृष्टि में स्थिर न रह सके, तब ऐसा शुभविकल्प होता है। दया, दान, भक्ति, पूजा आदि होते हैं। इतना भी ज्ञेयरूप से मैं - ऐसा उस समय ज्ञानी नहीं मानता और उसके ज्ञानरूप से उसका ज्ञान, उतना ज्ञान हूँ - ऐसा भी नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इस चैतन्य के अन्तर के रहस्य और मर्म इसने कभी देखे नहीं हैं। अनन्त काल से घिसटकर मर गया। त्यागी हुआ, साधु हुआ, बाबा हुआ, मर गया। दीक्षा ली, दीक्षा। समझ में आता है न? लोंच किया, मुँडाया, अनन्त बार परन्तु इस आत्मा का ऐसा भान (किये बिना) वह सब व्यर्थ गया। आहाहा!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ

यह आत्मज्ञान की बात है। समझ में आया? लो! यह श्लोक पूरा हुआ।

कलश - २७२

(पृथ्वी)

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मन:
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ।।९–२७२।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि इस शास्त्र का नाम, नाटक–समयसार है; इसलिए जिस प्रकार नाटक में एक भाव, अनेकरूप से दिखाया जाता है; उसी प्रकार एक जीवद्रव्य, अनेक भावों द्वारा साधा जाता है— 'मम तत्त्वं' मेरा ज्ञानमात्र जीवपदार्थ ऐसा है। कैसा है? 'क्वचित् मेचकं लसति' कर्मसंयोग से, रागादि विभावरूप परिणति से देखने पर, अशुद्ध है—ऐसा आस्वाद आता है। 'पुन:' एकान्त से ऐसा ही है—ऐसा नहीं है। ऐसा भी है— 'क्वचित् अमेचकं' एक वस्तुमात्ररूप देखने पर, शुद्ध है। एकान्त से ऐसा भी नहीं है। तो कैसा है? 'क्वचित् मेचकामेचकं' अशुद्धपरिणतिरूप तथा वस्तुमात्ररूप एक ही बार में देखने पर, अशुद्ध भी है, शुद्ध भी है—इस प्रकार दोनों विकल्प, घटित होते हैं। ऐसा क्यों है? [सहजं] स्वभाव से ऐसा ही है। 'तथापि' तो भी 'अमलमेधसां तत् मन: न विमोहयति' [अमलमेधसां] सम्यग्दृष्टि जीवों की [तत् मन:] तत्त्वज्ञानरूप है जो बुद्धि, वह [न विमोहयति] संशयरूप नहीं होती— भ्रम को प्राप्त नहीं होती है। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव का स्वरूप, शुद्ध भी है; अशुद्ध भी है; शुद्ध–अशुद्ध भी है—ऐसा कहने पर, अवधारण करने में भ्रम को स्थान है तथापि जो स्याद्वादरूप वस्तु का अवधारण करते हैं, उनके लिए सुगम है; भ्रम नहीं उत्पन्न होता है। कैसी है वस्तु? 'परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं' [परस्परसुसंहत] परस्पर मिली हुई है [प्रकटशक्ति] स्वानुभवगोचर जो जीव की अनेक शक्ति, उनका [चक्रं] समूह है जीववस्तु। और कैसी है? [स्फुरत्] सर्व काल उद्योतमान है।।९–२७२।।

कलश - २७२ पर प्रवचन

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मन:
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ।।९-२७२।।

जरा, वस्तु का स्वभाव पर्याय का धर्म, गुण धर्म, द्रव्य धर्म ऐसा सब है, उसे साधकरूप से सब ज्ञात होने पर भी ज्ञानी उसमें उलझन में नहीं आता, यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं जरा। **भावार्थ इस प्रकार है कि शास्त्र का नाम नाटक-समयसार है;....** देखो! समयसार नाटक। **इसलिए जिस प्रकार नाटक में एक भाव, अनेकरूप से दिखाया जाता है;...** नाटक में बहुत प्रकार से दिखलाते हैं न? राजा, कोई रानी, वीररस और शृंगाररस... **उसी प्रकार एक जीवद्रव्य, अनेक भावों द्वारा साधा जाता है...** अनेक भावों द्वारा आत्मा का सिद्धपना—साबितपना किया जा सकता है, इसी प्रकार अनेक भावों द्वारा वस्तु को सिद्ध किया जा सकता है, ऐसा कहना है। सिद्धपना प्राप्त हो ऐसा यहाँ प्रश्न अभी नहीं है। अभी सिद्धि करते हैं।

एक भगवान आत्मा... यह शरीर, वाणी, मन, हड्डियाँ तो पर हैं। अन्दर प्रारब्ध जो जड़ बँधा वह भी पर है। जिस भाव से प्रारब्ध बँधता है, वह भाव भी विकारी है, आत्मा से वास्तव में पर है परन्तु उसमें अन्दर में साधक जीव जब तक है तब तक मलिन और निर्मल आदि अनेक प्रकार ज्ञान में ज्ञात होते हैं। पृथक् कहे थे। यहाँ तो तीनों को निकाल दिया वापस। और फिर अब उसमें जरा मिलाते हैं, ज्ञान कराते हैं, भाई! क्या कहते हैं?

'मम तत्त्वं' मेरा ज्ञानमात्र जीवपदार्थ ऐसा है। देखो! **'मम तत्त्वं'** ज्ञान प्रकाश सूर्य प्रभु चैतन्यसूर्य आत्मा, चैतन्य के नूर का तेज भरपूर भगवान आत्मा है। वह **ऐसा है। कैसा है? 'क्वचित् मेचकं लसति'** ऐसे देखें, तो कहते हैं **कर्मसंयोग से रागादि विभावरूप परिणति से देखने पर, अशुद्ध है—ऐसा आस्वाद आता है।** भाषा देखो!

वापस कितना बदल दिया है पूरा! अकेला अभेद कहाँ पहले दृष्टि में बताया। अब उसके ज्ञान में साधक है इसलिए सब अनेक प्रकार से ज्ञात होता है, तथापि ज्ञानी उलझन में नहीं आता। कहाँ तक बात ले गये! समझ में आया?

दृष्टि में वस्तु ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञायक ऐसे तीन भेद भी नहीं, ऐसी वस्तु। ऐसी वस्तु को दृष्टि में लिया, (तब) अनुभव हुआ, तथापि जब तक पूर्ण परमात्मदशा, कैवल्यदशा न हो, तब तक ज्ञानी को ज्ञान में कैसा भासित होता है अन्दर? यह वर्णन करते हैं। कहते हैं कि ऐसे देखें भान होने पर भी मैं ज्ञान, मैं ज्ञायक और ज्ञेय सब अभेद हूँ, ऐसा भान होने पर भी **कर्मसंयोग से रागादि विभावरूप परिणति से देखने पर, अशुद्ध है...** ऐसा अनेक आकाररूप '**मेचकं**' है न? मैला अर्थात् अशुद्ध अर्थात् अनेक आकार विकल्प में दिखता है। ज्ञान जानने का काम करता है, ऐसा कहते हैं। वह दर्शन का विषय भाई! वहाँ इस प्रमाण पूरा किया है। अब उस दर्शन में, सम्यग्दर्शन में जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान इस प्रकार से देखता होने पर भी, वह ज्ञान का स्वभाव है, ऐसा वह जानता है। ज्ञानी उलझन में नहीं आता।

एक ओर भेद नहीं, वस्तु को ऐसा देखता है। तथापि उसके साथ का हुआ ज्ञान एक ओर ऐसा देखता है तो अन्दर रागसहित मलिन पर्याय दिखती है। यहाँ साधक की बात है न! विकल्प उठता है, वह राग-द्वेषवाली विभाव **परिणति से देखने पर अशुद्ध है—ऐसा आस्वाद आता है।** अनेक आकाररूप राग भी होता है, ऐसा मलिन आस्वाद आता है। पूर्ण अनुभव का आनन्द सर्वज्ञ को जो होता है, वैसा अभी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आत्मा पूर्णानन्द को सर्वज्ञपद को प्राप्त करे, तब यह भाव होते नहीं, परन्तु साधक में ऐसे भाव होते हैं, इतना सब अभेदपना दृष्टि का विषय कहा तथापि ज्ञान में साधकरूप से देखे तो ऐसे रागादि भी दिखते हैं और राग का स्वाद मैला है, मलिन है, दुःखरूप है, ऐसा जानने में आता है। समझ में आया? देखो! आया यह।

मुमुक्षु : सब साधक आ गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, साधक की ही बात चलती है। किसकी चलती है यह? अज्ञानी की बात ही कहाँ है यहाँ? समझ में आया? पूर्ण दशा नहीं, इसलिए वस्तु भले

ऐसी है, दृष्टि हुई है परन्तु ज्ञान उस काल में राग से मैला है, ऐसा भी दिखता है। यदि (मलिनता) न हो तो सर्वज्ञ हो गया हो, यहाँ तो श्रुतज्ञान और साधक जीव की बात है। समझ में आया? कहाँ निकाल दिया, वापस डाला कि उसकी पर्याय में ज्ञानी को राग का स्वाद आता है। एक ओर निकाल दिया कि राग का स्वाद नहीं, ज्ञानी को मात्र आनन्द का स्वाद आता है, ऐसा पहले कहा था। समझ में आया?

नारकी कहा नहीं? 'बाहिर नारकीकृत दु:ख भोगत, अन्तर सुखरस गटागटी।' दोनों है। नरक का नारकी जीव है, महापापी वहाँ भी आत्मज्ञान पाता है। समझ में आया? राजा, महाराजा अरबोंपति (हो)। यहाँ मुनियों ने सन्तों ने कहा हो, बापू! आत्मा आनन्दकन्द है। सुना परन्तु जाना नहीं और खोटे पाप करके नरक में गये। वह पहले नरक, दूसरे नरक में है, हों! यह सब कल्पना नहीं है। अन्दर है। वे गये हैं और वह पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... अरे यह क्या है? उसमें पूर्व का (सुना हुआ) कोई याद आ जाये। अरे रे! सन्तों ने, मुनियों ने कहा था। अरे! करने के काल में किया नहीं तूने, हों! समझ में आया? आहाहा! सब साधन थे और ज्ञान का क्षयोपशम / विकास भी था परन्तु मैंने मुझमें देखने का प्रयत्न कभी नहीं किया। ऐसा का ऐसा मेरा काल गया। ऐसा अन्दर में अरमान होने पर कोई सम्यक्त्व को पा जाता है। वहाँ अभेदपने की दृष्टि हो जाती है। सातवें नरक में होती है न!

सातवीं रव रव नरक नीचे है। आहाहा! उसकी पीड़ा की क्या बात? वह तो ज्ञानी कहते हैं और जानते हैं, वेदनेवाला वेदता है। इतनी पीड़ा! बापू! भाई! अनादि का आत्मा है न बापू! कहीं आत्मा नया नहीं, नया नहीं होता। आत्मा वस्तु कहीं नयी होगी? वह तो है, है और है। अनादि का है। कहाँ रहा? आहा! अरे! भाई! तू नरक में अनन्त बार रहा है, तुझे खबर नहीं।

माता के गर्भ में रहा, इसकी खबर नहीं। खबर है? सवा नौ महीने कैसे रहा था यह? यह सवा नौ महीने उल्टे सिर माता के पेट में (कैसे रहा था)... आहाहा! उसकी खबर है? अपने इसमें चित्र चित्रित किया है। छहढाला में ठीक चित्र रखे हैं, ऐसे सकड़ाई में इतने में सवा नौ महीने रहा। यह सच्ची बात होगी या नहीं? या दूसरा आत्मा

था वहाँ ? आहाहा ! भगवान आत्मा तो वह का वह है। उसे शरीर इतना था वहाँ अन्दर। बाहर आया वहाँ मूर्च्छा... मूर्च्छा... कहते हैं, भाई ! यह तुझे याद नहीं, इसलिए नहीं था, ऐसा है कहीं ?

इसी प्रकार अनन्त काल में नरक के भव तूने अनन्त किये, वे याद नहीं आवे इसलिए कहीं नहीं थे, ऐसा है कुछ ? आहाहा ! उस नरक में भी वह चैतन्य की क्रीड़ा कर लेता है, आनन्द का स्वाद ले लेता है। समझ में आया ? वह दुःख के घनघोर संयोग देखो तो, ऐसे सुनो, वहाँ ऐसा हो जाये कि अर र र ! यह ? उसे सोलह रोग जन्म से होते हैं। कण्ठमाल, भगन्दर, श्वास, दमा, कफ और शूल और... यह तुम्हारे एक रोग आवे तो चिल्लाहट मचाते हैं। क्या कहलाता है वह ? केन्सर। ऐसे-ऐसे तो कितने रोग नारकी को रोम-रोम में (होते हैं)। खाने-पीने का रोग परन्तु एक कण मिलता नहीं और तृषा का पार नहीं होता। खावे तो रोग होता होगा ? खाने के कारण होता होगा ? यह ठीक कहते हैं। परन्तु खाने का तो एक कण भी मिलता नहीं। अनन्त-अनन्त पूरा विशाल पूरा लोक का अनाज हो (उसका) ग्रास करके दो तो ऐसे तुरन्त पच जाये। एक कण मिलता नहीं और इतनी पीड़ा ! वह क्षुधा कितनी होगी ? स्वयंभूरमण का पानी दो तो गर्म कड़ाही में जैसे एक बिन्दु गिरे वैसा स्वयंभूरमण पानी, उस तृषा (के समक्ष) एक बिन्दु जैसा लगे। (परन्तु) बूँद मिलती नहीं।

अरे ! भाई ! भगवान आत्मा अपने को भूलकर और यह पर में, आकुलता में अमाप आकुलता में गया। अमाप आनन्द है, उससे गुलांट खा गया (तो) अनन्त आकुलता में गया। यहाँ तो कहना है कि उस काल में भी समझ जाता है, इतना कहना है। समझ में आया ? एकदम... अन्दर (चला जाता है)। ऐसे देखो (तो) रागादि जरा दुःख भी लगता है। ऐसे देखो (तो) आनन्द भी लगता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह मनुष्यपना और यह जहाँ शरीर कुछ मिला, यह धूल (मिली), उसमें तो 'मैं चौड़ा और गली सकड़ी' हो (जाता है)। उसमें एक मोटर हो न लाख रुपये की, लम्बी ऐसी... क्या उसका नाम ? लोग कहते हैं न ? नाम भी अपने को खबर नहीं। अभी एक मोटर आयी नहीं थी ? बड़ी ऊँची थी। लाख रुपये की मोटर थी, कहते हैं। वह आया

था न यहाँ ? जयपुर का प्रोफेसर। उसकी लड़की के जातिस्मरण के लिये अपने पण्डितजी के पास (आया था)। उनके भतीजे की पुत्री (को) जातिस्मरण है न ? बड़ी मोटर में अन्दर बैठा था।

मुमुक्षु : कैसा मजा आवे !

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मजा नहीं। होली सुलगती है वहाँ।

मुमुक्षु : मजा आ जाये ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु ऊँची कितनी ? मानो घर जितनी बड़ी। ऐसे उसकी एक स्त्री बैठी थी अन्दर, एक कोई व्यक्ति बैठा था। दो टोपेवाले निकले ढाँककर बाहर। हिम्मतलाल शाह। क्या है कहा। कौन है ? जयपुर के प्रोफेसर हैं। लड़की का— राजुल का जाँच करने आये हैं। ठीक ! मैंने तो हिम्मतलाल शाह पहला समझा यह भाई तुम्हारे। हिम्मतलाल शाह वांकानेर से आये हैं। लड़की का पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ है, उसका पूछने आये हैं। कहा, ऐसा है, जाओ। धर्मचन्दभाई थे या नहीं ? लगे ऐसा। टोपा-बोपा और वस्त्र-बस्त्र... वह मानो उसमें दूसरा कुछ होगा ही नहीं। यही सब है, ऐसा लगता हो लोगों को, ऐसा फँस गया, ऐसा फँस गया हो। आहाहा ! पूछने आया था जातिस्मरण का। उसकी एक बड़ी संस्था है न ? पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ हो न, उन सबके रिकार्ड उसके पास होते हैं। २१० या इतने कहता था। वह गुजराती बोलता था। हम समझते थे। मैं मानो गुजराती हूँ, लो ! मैं भी गुजराती बोला परन्तु वह हिन्दी था, बड़ा प्रोफेसर। अरे ! इस भव के पहले भव था, यह जाँचने आवे, उसे भव का वैराग्य नहीं होता।

मुमुक्षु : उसे स्वयं को विश्वास कहाँ होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष नहीं दिखता यह ? एक शरीर ऐसा पाया, एक साधारण पाया, एक गरीब पाया, वह कहीं पूर्व के कारण बिना यह सब अन्तर पड़ता है ? प्रत्यक्ष दिखता है या नहीं ? सौ बार माँगे तो रोटियाँ मिलती नहीं और एक ऐसा हुकम साधारण करे, वहाँ ऐसे रुपये के ढ़ेर पचास-पचास लाख, करोड़ के हो जायें। कुछ पूर्व का दिखता है या नहीं ? आत्मा तो वह का वह है। उसके पूर्व के पुण्य-पाप के परिणाम से

बन्धन हो, उसके संयोग ऐसे दिखाई दें धूल के। उसमें उसे आत्मा में कहाँ यह लाभ था अन्दर में? परन्तु कार्य के अन्तर से, फल के अन्तर से कारण में अन्तर दिखता है या नहीं? पूर्व भव नहीं? इससे पहले, इससे पहले, इससे पहले अनादि के ऐसे तो थोथे अनन्त बार शरीर किये।

यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ आत्मा का भान अभेद करके हुए तो भी ज्ञानी को मलिनता का भाग रहता है, उसे जानता है, उलझन में नहीं आता, ऐसा कहना है। हों! राग दिखाई दे मलिनता हो (तो) वह उलझन में नहीं आता कि यह और क्या? एक ओर यह शुद्ध का पिण्ड प्रभु और यह मलिनता क्या पर्याय में? उलझन में नहीं आता। मैं साधक हूँ। मेरी पूर्ण दशा नहीं, रागादि से मलिन पर्याय दिखती है।

'पुनः' एकान्त से ऐसा ही है—ऐसा नहीं है। अनेकान्त स्याद्वाद करते हैं न? **ऐसा भी है—'क्वचित् अमेचकं' एक वस्तुमात्ररूप देखने पर शुद्ध है।** ऐसे वस्तु देखो तो पवित्र आनन्द है। पदार्थ आत्मा देखे तो आनन्द है, शुद्ध है अथवा एकरूप है अथवा अमेचक है। ऐसे देखे वहाँ राग की मलिनता पर्याय में अभी बाकी दिखती है। हो, वस्तु में यह स्वभाव है। समझ में आया?

शुद्ध है। एकान्त से ऐसा भी नहीं है। क्या कहा यहाँ? ऐसा नहीं कहा कि इस ओर मुझे ऐसे सुख दिखता है और ऐसे सुख दिखता है, ऐसा नहीं है। ऐसा दिखता है वहाँ अशुद्धता दिखती है अर्थात् दुःख दिखता है। जितनी अन्दर में राग और द्वेष की पर्याय खड़ी होती है, राग खड़ा हो उतना अशुद्ध और दुःख है। इस प्रकार ज्ञानी राग को दुःखरूप जानता है और ऐसे आत्मा को आनन्द जानता है। पर्याय में इतनी मलिनता को देखता है, उसमें आनन्द को देखता है। तथापि वह उलझन में नहीं आता कि यह क्या? यह तो वस्तु की स्थिति की साधकदशा में ऐसा ही होता है। पूर्ण हो गये उन्हें पूर्ण आनन्द, भान नहीं उसे पूर्ण दुःख है। भान नहीं उसे पूर्ण दुःख, पूर्ण हो गये उन्हें पूर्ण आनन्द। मैं अभी साधनेवाला (साधक) हूँ। पूर्ण हुआ नहीं, इसलिए ऐसे देखें तो आनन्द है, ऐसे देखें तो राग का जरा दुःख भी दिखता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? वाह...! वापस ज्ञान भी कराया उसका। ज्ञान करता है कि यह थोड़ी

आकुलता है। अशुद्ध **'मेचकं'** अशुद्ध एक आकाररूप न होना, ऐसी भी एक दशा है। ऐसे देखे वहाँ एकाकाररूप शुद्ध आनन्द है। दोनों है।

तो कैसा है ? एकान्त से ऐसा भी नहीं है। लो! तब **'क्वचित् मेचकामेचकं' अशुद्धपरिणतिरूप तथा वस्तुमात्ररूप एक ही बार में देखने पर अशुद्ध भी है, शुद्ध भी है—इस प्रकार दोनों विकल्प घटित होते हैं।** दो भेद घटित होते हैं। दो भेद घटित होते हैं। क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु है, वह अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा भान हुआ, अनुभव हुआ होने पर भी अभी पूर्ण दशा प्रगट नहीं हुई। इसलिए धर्मी को ऐसी दशा की ओर देखें तो अशुद्ध भी दिखता है, ऐसे देखें उपयोग ऐसे देखें तो अशुद्ध दिखता है, ऐसे उपयोग स्थिर हो जाये तो आनन्द दिखता है। एक क्षण में दोनों साथ में दिखते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

'क्वचित् मेचकामेचकं' अशुद्धपरिणतिरूप तथा वस्तुमात्ररूप एक ही बार में देखने पर अशुद्ध भी है, शुद्ध भी है.... ओहोहो! कहाँ से कहाँ ले गये बात! समझ में आया ? **इस प्रकार दोनों विकल्प घटित होते हैं।** धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को, साधक जीव को एक क्षण में दोनों घटित होते हैं। होते हैं या नहीं ? क्यों घटित होते हैं ? किसलिए ? किसलिए ? वह साधक है इसलिए। पूर्ण सिद्ध नहीं हो गया और अकेला दुःख है, ऐसा भी नहीं। यहाँ साधक है उसमें वस्तु की स्थिति ऐसी ज्ञात होने पर भी सम्यग्दृष्टि उलझन में नहीं आता। वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। मेरा स्वरूप आनन्द है, ऐसा भान हुआ होने पर भी आनन्द की पूर्ण दशा मुझे हुई नहीं, इसलिए पूर्ण नहीं, इसलिए यह मलिनता है और दुःख है। यह क्या ? होता है। यह क्या ? इस काल में होता है। पूर्ण कहाँ हुआ है ? समझ में आया ? ऐसी चीज़ स्याद्वाद के बिना अज्ञानी को बैठती नहीं।

'क्वचित् मेचकामेचकं' अशुद्धपरिणतिरूप... एक ओर मलिन परिणाम है। ऐसे देखो तो **वस्तुमात्ररूप एक ही बार में देखने पर अशुद्ध भी है, शुद्ध भी है...** कहो, समझ में आया ? **अशुद्धपरिणतिरूप तथा वस्तुमात्ररूप एक ही बार में देखने पर अशुद्ध भी है, शुद्ध भी है—इस प्रकार दोनों विकल्प, घटित होते हैं। ऐसा क्यों है ? 'सहजं' स्वभाव से ऐसा ही है।** भाषा देखो! ऐसा स्वभाव ही है। पूर्ण दशा हुई नहीं वहाँ

तक साधक को ऐसा ही स्वभाव है। भाषा कैसी है! सहज स्वभाव है। अर्थात् क्या कहा? मलिन परिणाम भी सहज स्वभाव है अर्थात् पर्याय का वह मलिनता का धर्म है, ऐसा। वह कहीं किसी से हुआ है, ऐसा नहीं और किसी में है, ऐसा नहीं। धर्म का भान होने पर भी वस्तु सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा का अनुभव और दृष्टि होने पर भी पूर्णानन्द ज्ञेय, ज्ञायक, ज्ञान आदि भेद टालकर ध्यान होने पर भी वापस पर्याय में रागादि की मलिनता भाव उसे देखे (और) यह आनन्द है, उसे देखे। एक साथ दोनों हैं, उन्हें भी देखे। समझ में आया इसमें?

स्वभाव से ऐसा ही है। स्वभाव से अर्थात्? पर्याय का धर्म भी ऐसा ही है पूर्ण न हो तब तक एक पर्याय के दो भाव—थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख। क्या कहा? ऐसे आनन्द है, ऐसे दुःख है। एक अवस्था में ऐसे भान हुआ, उतना आनन्द भी है, ऐसा है, उतना दुःख है। ओहोहो! वस्तु की स्थिति (ऐसी ही है)।

दूसरे प्रकार से कहें तो जितना शुभ विकल्प उठता है, उतना वह अशुद्ध देखता है, अशुद्ध देखता है। समझ में आया? ऐसे शुद्ध है, वस्तु शुद्ध निर्मल है। दोनों उसका धर्म है। उसका स्वाभाविक सहज स्वभाव है। स्वभाव अर्थात्? किसी से हुआ नहीं, अशुद्धता भी उससे हुई है और शुद्ध स्वरूप तो है, उसका भान भी स्वयं से हुआ है। समझ में आया? यह क्या परन्तु कौन जाने? भीखाभाई! कितनी उलझन मानो!

मुमुक्षु : सब सुखी हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को सुख नहीं, सबको दुःख के ढ़ेर हैं। किसी को पैसे का, किसी को पुत्र का। ठीक! सब होली में सुलगे हैं। पुत्रवाले और पैसेवाले रूपवान और यह सब मिट्टी के ढ़ेर पर हैं। उनमें सुख कहाँ से आया धूल में? मूढ़ मानता है। मूढ़ को अन्दर मूढ़भाव लगता है। भान नहीं, भान ननूर का। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि यह भान हुआ उसे दुःख है, उसका ज्ञान करने से वह उलझन में नहीं आता। यह और क्या? अरे! मैं तो आनन्द हूँ, अभेद होकर भान हुआ। और यह दुःख की दशा और कहाँ से दिखती है थोड़ी? '**अमलमेधसां तत् मनः न**

विमोहयति''**अमलमेधसां**' देखा? जिसकी मैलरहित बुद्धि है, मैलरहित अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव। '**अमलमेधसां**' मैल बिना की बुद्धि है। अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा। निर्मल बुद्धि सम्यग्दृष्टि। भगवान आत्मा पूर्णानन्द है, ऐसा सच्चा ज्ञान होने पर भी सम्यग्ज्ञान में वह रागादि ज्ञात हो, उसमें वह उलझन में नहीं आता। मेरे प्रयत्न की निर्बलता है, मेरा पुरुषार्थ इतना कमजोर काम करता है। इसलिए वहाँ अशुद्धता भासित होती है, है, है उसके अस्तित्व में, ऐसा यहाँ कहते हैं।

'**तत् मनः**' **तत्त्वज्ञानरूप है जो बुद्धि...** देखा? '**तत् मनः**' ''**अमलमेधसां तत् मनः**' **बुद्धि वह...** '**न विमोहयति**' **संशयरूप नहीं होती—भ्रम को प्राप्त नहीं होती है।** भ्रम नहीं हो जाता कि अरे! परन्तु यह क्या? यह अकेला आनन्द, और यह अशुद्धता, और एक समय में दोनों इकट्ठे। अशुद्धता और शुद्धता दोनों इकट्ठे, यह क्या? यह वस्तु की साधक दशा में ऐसा ही होता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि का मन '**न विमोहयति**'— उलझन में नहीं आता। ऐसा आत्मा पूरा पूर्ण दृष्टि में आया होने पर भी यह मैल कहाँ से दिखाई दिया? यह भी पर्याय की अवस्था का धर्म है। जब तक पूर्ण वीतरागभाव से न परिणमे, तब तक होता है। **भ्रम को प्राप्त नहीं होती है।** संशय नहीं होता (कि) यह और क्या आया? इसलिए द्रव्य अशुद्ध होगा? ऐसा भ्रम नहीं पड़ता। यह पर्याय अशुद्ध है, वह दूसरे की होगी, ऐसा भ्रम नहीं पड़ता। बात बदलकर कहाँ बात ली, स्याद्वाद की साधक की ली है। अन्तिम श्लोक है न!

भावार्थ इस प्रकार है कि जीव का स्वरूप शुद्ध भी है; अशुद्ध भी है, शुद अशुद्ध भी है—ऐसा कहने पर, अवधारण करने में भ्रम को स्थान है... ऐसा कहने में अज्ञानी को भ्रम का स्थान है। **तथापि जो स्याद्वादरूप वस्तु का अवधारण करते हैं, उनके लिए सुगम है; भ्रम नहीं उत्पन्न होता है।** लो! समझ में आया? **कैसी है वस्तु?** '**परस्परसुसंहत-प्रकटशक्तिचक्रं**' देखो! **परस्पर मिली हुई है...** '**प्रकटशक्ति**' **स्वानुभवगोचर जो जीव की अनेक शक्ति,...** देखो! **स्वानुभवगोचर जो जीव की अनेक शक्ति, उनका समूह है...** अशुद्ध भी है, शुद्ध भी है। यह सब शक्तियों का समूह आत्मा है। मलिनता होने की योग्यता भी एक शक्ति है, एक पर्यायधर्म है। समझ में आया?

स्वानुभवगोचर जो जीव की अनेक शक्ति, उनका समूह है जीववस्तु। उनका समूह है जीववस्तु। **और कैसी है ? 'स्फूरत्' सर्व काल उद्योतमान है**। उसका स्वरूप ही ऐसा है। जब तक पूर्ण वीतरागरूप से परिणमे नहीं, तब तक पर्याय का धर्म भी मलिन है, द्रव्य स्वभाव निर्मल आनन्द है, दोनों एक साथ दिखते हैं, तथापि ज्ञानी उलझन में नहीं आता। ऐसा स्याद्वाद अर्थात् वस्तु के स्वरूप की स्थिति है, ऐसा ज्ञानी बराबर जानता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २७३

(पृथ्वी)

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ।।१०-२७३।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'अहो आत्मनः तत् इदं सहजं वैभवं अद्भुतं' [अहो] सम्बोधन वचन! [आत्मनः] जीववस्तु की [तत् इदं सहजं] अनेकान्तस्वरूप, ऐसी [वैभवं] आत्मा के गुणस्वरूप लक्ष्मी, [अद्भुतं] अचम्भा उपजाती है। किस कारण से ऐसी है? 'इतः अनेकतां गतं' [इतः] पर्यायरूप दृष्टि से देखने पर, [अनेकतां] अनेक है-ऐसे भाव को [गतं] प्राप्त हुई है। 'इतः सदा अपि एकतां दधत्' [इतः] उसी वस्तु को द्रव्यरूप से देखने पर, [सदा अपि एकतां दधत्] सदा ही एक है-ऐसी प्रतीति को उत्पन्न करती है। और कैसी है? 'इतः क्षणविभंगुरं' [इतः] समय-समय प्रति, अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमती है-ऐसी दृष्टि से देखने पर, [क्षणविभंगुरं] विनशती है-उपजती है। 'इतः सदा एव उदयात् ध्रुवं' [इतः] सर्व काल एकरूप है—ऐसी दृष्टि से देखने पर, [सदा एव उदयात्] सर्व काल अविनश्वर है—ऐसा विचार करने पर, [ध्रुवं] शाश्वत है। 'इतः' वस्तु को प्रमाणदृष्टि से देखने पर, 'परमविस्तृतं' प्रदेशों से लोकप्रमाण है; ज्ञान से, ज्ञेयप्रमाण है। 'इतः निजैः प्रदेशैः धृतं' [इतः] निज प्रमाण की दृष्टि से देखने पर, [निजैः प्रदेशैः] अपने प्रदेशमात्र [धृतं] प्रमाण है।।१०-२७३।।

पौष कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक-१२-०१-१९६६, कलश-२७३, प्रवचन-२९३

साध्य-साधक अधिकार, कलशटीका दसवाँ श्लोक है, (धारावाही) २७३।

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात्।

इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै–
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ।।१०–२७३।।

यह चौथा पद है, उसका पहले अर्थ है। चौथे पद का पहला अर्थ है। '**अहो आत्मनः तत् इदं सहजं वैभवं अद्भुतं**' कहते हैं कि सम्यक् भान होकर यह बात है। समझ में आया? यह साध्य–साधक अधिकार है न? आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति दृष्टि में आया है, ज्ञानानन्दस्वरूप है, ऐसा भान हुआ है तो भी उस काल में इस प्रकार के वैभव अर्थात् द्रव्य का सामर्थ्य है, ऐसा ज्ञानी ज्ञान करता है। समझ में आया? यह ज्ञान होने के बाद की बात है, अज्ञानी की यह बात नहीं है। साध्य–साधक (अधिकार) है न? आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्द (स्वरूप है), उसकी अन्तर्दृष्टि होकर जो साधकरूप से दशा हुई है, उस साधक जीव को साधकपने के काल में द्रव्य और पर्याय कैसी ज्ञात होती है, उसकी यह व्याख्या और स्वरूप है। समझ में आया?

कहते हैं, **अहो...** सम्बोधन वचन इन्होंने लिखा है। 'अहो' महा आश्चर्यकारी वस्तु है। वस्तु ही आश्चर्यकारी है। दृष्टि में चैतन्यस्वरूप द्रव्य में आनन्द और ज्ञान का भान हुआ है, और पर्याय में भी निर्मल अनेक अवस्थायें दिखती हैं। वस्तुरूप से दृष्टि में त्रिकाल आनन्द और ध्रुव ज्ञात होता है और पर्यायरूप से अशुद्धता के अनेक अंश पर्याय में ज्ञात होते हैं। ऐसा वस्तु का स्वरूप साधक जीव को भासित हुआ, उसकी यहाँ आश्चर्यता स्वयं वर्णन करते हैं। समझ में आया?

यह आश्चर्यकारी '**आत्मनः**' **जीव वस्तु की...** भगवान आत्मा जीववस्तु पदार्थ आत्मा '**तत् इदं सहजं**' भाषा तो यह है। '**वह यह सहज**' ऐसा शब्द है। वह यह आत्मा सहज, यह वह सहज है। अर्थात् क्या कहा? **अनेकान्तस्वरूप...** ऐसा। क्योंकि द्रव्य और पर्याय, गुण अभेद और भेद आदि उसका स्वभाव अनेकान्त है, इसलिए अर्थ ऐसा किया कि '**तत् इदं सहजं**' यह–यह सहज अर्थात् अनेकान्तस्वरूप आत्मा है। समझ में आया?

'**तत् इदं सहजं**' अर्थात् कि **अनेकान्तस्वरूप...** यह ऐसा। यह आत्मा अनेक अन्त अर्थात् अनन्त धर्मवाली चीज़ है। किस प्रकार? **ऐसी आत्मा के गुणस्वरूप लक्ष्मी...**

'**वैभवं**' अर्थात् उसका सामर्थ्य। भगवान आत्मा एक समय में अन्तर शुद्ध चैतन्य भी भासित होता है, पर्याय में ध्रुव स्वभाव से भासित होता है, पर्याय में शुद्धता के अंश भी भासित होते हैं। समझ में आया? ऐसा उसका वैभव अर्थात् सामर्थ्य है। द्रव्यरूप शुद्ध सामर्थ्य है, पर्यायरूप आंशिक निर्मल सामर्थ्य भी उसका वह है। शान्तिभाई! यह घर के वैभव जाने, इसकी बात है। पर का घर अनन्त बार देखा, उसमें आत्मा कुछ है नहीं।

यहाँ तो आत्मा चिदानन्दमूर्ति ध्रुव अखण्ड आनन्दकन्द है, उसकी अन्तर दृष्टि हुई, जीव को जीव ने देखा। स्वयं अपने को निरखा, स्वयं ने अपने को देखा, भगवान को भगवान की भेंट हुई, समझ में आया? आत्मा, वह सम्यक् साधकदशा में कैसा भासित होता है? कैसे सामर्थ्यवाला भासित होता है? अथवा कैसा उसका वैभव है! लो! यह उसका वैभव। अपने अनेक गुण आदि से लक्ष्मीवाला है। गुण आदि में पर्याय (आदि) सब ले लेना। उसके अनेक गुण आदि लक्ष्मी और पर्याय आदि से वह आत्मा शोभित है।

'**अद्भुतं**' **अचम्भा उपजाती है**। चीज़ ही कोई आश्चर्य उपजाती है, कहते हैं। वह वस्तु ही अचम्भेवाली चीज़ है। भगवान आत्मा ध्रुवरूप से भी वह का वह शुद्ध अखण्ड और अवस्था में शुद्ध की पर्याय निर्मल दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द की एक समय की अवस्था और ध्रुव, ऐसी वह अचम्भेवाली चीज़ ही वस्तु ऐसी है। '**अद्भुतं**' की व्याख्या **अचम्भा उपजाती है**। अर्थात् विस्मय उपजाती है, ऐसा। कायम टिकता शुद्ध और अवस्था से पलटता भी शुद्ध। समझ में आया? त्रिकाल आनन्द भी ध्रुव और वर्तमान अंश की अवस्था में भी आनन्द का अध्रुव अर्थात् क्षणिकपना, अंशपना। अंशी ध्रुव भी शुद्ध और अंश भी शुद्ध। समझ में आया इसमें? यह आत्मा का वैभव अर्थात् सामर्थ्य है।

किस कारण से (वस्तु) **ऐसी है?** '**इतः अनेकतां गतं**' इस ओर से देखे अर्थात् पर्याय से देखे—वर्तमान अवस्था की निर्मलता के अंशों से देखें। समझ में आया? निर्मलता के अंश से (अर्थात्) श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आनन्द, ऐसे निर्मलता के अंश से देखें तो अनेक दिखती हैं, पर्यायें शुद्ध अनेक दिखती हैं। समझ में आया? वस्तु एक है, पर्याय शुद्ध अनेक है। ऐसी वस्तु की स्थिति है। अपनी स्थिति साधकरूप से ऐसी भासित हुई है, ऐसा यहाँ अपना साधकपना सिद्ध होता है। समझ में आया?

पर्यायरूप दृष्टि से देखने पर अनेक है ऐसे भाव को प्राप्त हुई है। निर्मलपने की अवस्था से भी वस्तु प्राप्त है। वस्तुरूप से भले ध्रुव शुद्ध है परन्तु पर्यायरूप से उसकी शुद्धता की प्राप्ति, पर्याय में अनेकता की प्राप्ति भी है। समझ में आया इसमें? द्रव्यरूप से एक की प्राप्ति है, पर्यायरूप से अनेक शुद्धदशा की भी प्राप्ति है। ऐसी ही वस्तु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में साधकजीव को भास्यमान होती है। ऐसा उस वस्तु का अद्भुत स्वभाव है।

'इतः सदा अपि एकतां दधत्' और दूसरी ओर अन्तर में देखें **उसी वस्तु को द्रव्यरूप से देखने पर... 'सदा अपि एकतां दधत्' सदा ही एक है, ऐसी प्रतीति को उत्पन्न करती है।** देखा, वहाँ यह शब्द लिया है। समझ में आया? उसमें ऐसा लिया और अनेक भाव को प्राप्त होता है, भाई! ऐसा जानते हैं। और ऐसा जहाँ देखे ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... **'इतः सदा अपि एकतां दधत्'** एक ध्रुव ध्रुव शुद्ध ध्रुव (दिखता है)। **उसी वस्तु को द्रव्यरूप से देखने पर सदा ही एक है, ऐसी प्रतीति को उत्पन्न करती है।** यहाँ 'प्रतीति' शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? .... वस्तु यह सब यह देश और वीरान और यह सब।

यहाँ तो आत्मा भगवान आत्मा स्वयं यह है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में उसकी पर्याय की अवस्था से देखना। यहाँ शरीर, कर्म की बात अभी नहीं है, मलिनता की भी अभी बात नहीं है। मलिनता (की बात) बाद के श्लोक में आयेगी। समझ में आया? यहाँ तो एकरूप भगवान आत्मा वस्तु से देखो (तो) शुद्ध ध्रुव, वह प्रतीति का विषय है, प्रतीति शुद्ध की करावे, ध्रुव की कराते हैं। सदा एकरूप ध्रुव हूँ, एकरूप ध्रुव शुद्ध हूँ, एकरूप ज्ञायक हूँ। समझ में आया? ऐ... कान्तिभाई! विराजीभाई को कहा, ज्ञायक, ज्ञायक ऐसा बोले। भाषा ऐसी बोले। बस! ऐसा बोले थे। ज्ञायक, बस! हो गया, छूट गया, ऐसा। यह वस्तु है। समझ में आया?

एकरूप ज्ञायक देखने से सदा एकरूप है ध्रुव, ऐसी प्रतीति कराती है और पर्याय में अनेक शुद्धता के अंश हैं, ऐसा ज्ञान भी कराती है। समझ में आया? **प्रतीति को उत्पन्न करती है। और कैसी है?** इससे पहले दो बोल कहे। धर्मी जीव को धर्म की दशा

प्रगट होने पर, धर्मी जीव को धर्मी ऐसा भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शान्त रस का कन्द जिसके स्वभाव में अनन्त शान्ति और आनन्द है, ऐसा दृष्टि में आने पर उसे पर्याय में अनेकपने की शुद्धता भासित होती है। वस्तुरूप से एक शुद्धरूप से प्रतीति में आवे। समझ में आया? इसका नाम सम्यग्ज्ञान, इसका नाम जीव की साधकदशा, इसका नाम मोक्ष का मार्ग। गजब भाई! मोक्ष का मार्ग यह। समझ में आया? शरीर, वाणी, कर्म का यहाँ कुछ काम नहीं है। यह तो एक वस्तु स्वयं कैसी, अपने सत्ता में, अस्तित्व में भासित हुई है, वह कैसी भासित होती है, उसकी बात है। समझ में आया?

और कैसी है? 'इतः क्षणविभंगुरं', क्षणविभंगुरं' समय-समय प्रति अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमती है... समझ में आया? पहली अनेक थी। शुद्धता के अंश वर्तमान अनेक थे और ध्रुव सदा एक था, ऐसी बात ली थी। इस प्रकार में समय-समय के प्रति अखण्ड धाराप्रवाह (परिणमता है)। जिसके अनन्त गुण समय-समय एक धाराप्रवाहरूप से परिणमते हैं। समझ में आया? परिणामी पदार्थ भगवान आत्मा एक-एक समय अर्थात् सेकेण्ड के असंख्य भाग में... यहाँ देखो! **समय-समय प्रति अखण्ड धाराप्रवाहरूप परिणमती है ऐसी दृष्टि से देखने पर...** समय-समय की दृष्टि किस प्रकार देखना? समझ में आया?

यह ज्ञान में ऐसा भासित हो कि यह वस्तु अखण्ड ज्ञान का पिण्ड प्रभु चैतन्य है, उसकी एक-एक समय में उसकी पर्याय समय-समय में होती है। भले उसका उपयोग असंख्य समय में लागू पड़े, परन्तु उसके ज्ञान में ऐसा (भासित होता है कि) यह समय-समय में इसकी पर्याय एक धारा अखण्ड बहती है, वह मैं आत्मा हूँ। समझ में आया? मैं कर्म या शरीर या वह मुझमें है ही नहीं। मुझमें है तो यह है और वह मैं हूँ।

समय-समय प्रति अखण्ड धारा। देखो! भाषा क्या प्रयोग की है? जो पर्याय बहती है, अवस्था बदलती है, उसमें खण्ड नहीं, विश्राम नहीं। वह तत्त्व स्वयं टिककर धारावाहीरूप से परिणम रहा है अर्थात् कि कुछ मुझमें नहीं, मुझमें यह है, इतनी बात इसे लक्ष्य में और ज्ञान में लेने योग्य है। अर्थात् पर के ज्ञान की यहाँ बात नहीं वापस ऐसा, पर का करने का, सुधारने का नहीं परन्तु पर के ज्ञान की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो

आत्मा भगवान एक समय के अन्दर उसकी पर्याय अर्थात् वस्तु है, उसमें बदलना होता है, पलटना होता है। ज्ञानानन्द अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु समय-समय में, कोई एक समय में विरह पड़े बिना अखण्ड धारा से परिणति बहती है। उसे कोई अटका नहीं सकता, उसे कोई बदल नहीं सकता, उसे कोई तोड़ नहीं सकता, उसे कोई बढ़ा नहीं सकता, स्वयं ही नहीं बदल सकता। वस्तु ऐसी है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

वस्तु एकरूप अखण्ड ध्रुव अविनाशी (है, ऐसा) यहाँ कहेंगे। यह नाशवान है न? इसलिए। नाशवान परन्तु समय-समय की धारावाही (प्रवाह है)। देखो! **धाराप्रवाहरूप परिणमती है ऐसी दृष्टि से देखने पर... 'क्षणविभंगुरं'** है, ऐसा। भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी एक समय की पर्याय में जो परिणति—पर्याय हुई, वह दूसरे समय दूसरी (होती है), ऐसा अखण्ड धारावाही **'क्षणविभंगुरं'** एक समय में हो दूसरे (समय में) नाश हो, एक समय में हो, दूसरे (समय में) नाश हो। वह भी दूसरे (समय में) नाश हो और दूसरी उत्पन्न हो। समझ में आया? समय-समय प्रति, वापस भाषा ऐसी ली है न? अखण्ड धाराप्रवाह। वस्तु मेरी, मेरी पर्याय से अखण्ड धारा से परिणमती है, ऐसा ज्ञानी अपनी पर्याय को एकरूप धारावाही परिणमती है, ऐसा जानता है, व्यवस्थित परिणमती है, ऐसा जानता है। लो! समझ में आया इसमें?

ऐसी दृष्टि से देखने पर विनशती है, उपजती है... 'क्षणविभंगुरं' इसका अर्थ किया। **विनशती है, उपजती है...** एक समय में अवस्था हो, दूसरे समय में उसकी अवस्था का नाश हो। तथापि वह दूसरे समय में नयी होती है। ऐसा धारावाही चलता है। आत्मा में अनन्त गुणों की वर्तमान पर्याय—अवस्थारूप होना, (ऐसी) अखण्ड धारा चलती है। उसे मैं ऐसा करूँ और ऐसा परिणमाऊँ, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। वह वस्तु ही अखण्ड धारारूप से परिणमते हुए परिणमती है, उसे मैं ऐसे परिणमाऊँ, ऐसा भी उसमें नहीं है। क्या कहा, समझ में आया?

अपनी वस्तु को, हों! यहाँ अपनी बात चलती है। अभी इसमें पर की यहाँ बात है ही नहीं। अपनी वस्तु को भी ज्ञानी ऐसा जानता है कि समय-समय प्रति एकरूप अखण्ड धारावाही जो पर्याय परिणमती है, इस अपेक्षा से उसे उत्पत्ति और विनाश

अथवा विनाश और उत्पत्ति, क्षणभंगुर है न, इसीलिए विनाश शब्द से लिया है, विनाश और उत्पत्ति, ऐसी धारावाही पर्याय चलती जाती है। उसे मुझे उपजाना है, ऐसा विकल्प नहीं तथा उपजी हुई को नाश करूँ, ऐसा भी विकल्प ज्ञानी को नहीं। आहाहा! समझ में आया? दूसरे को उपजाना और विनाशना और बोलूँ, वह तो वस्तु में है ही नहीं। गजब बातें, भाई!

भगवान आत्मा एक स्वरूप वस्तु शुद्ध अविनाशी होने पर भी, वापस अविनाशी कहेंगे, उसकी विनाशीक अवस्था भी एक धारा से चलती है, नाश होनेवाली और उत्पन्न होनेवाली एक धारा से चले। उसे उपजाना और विनाशना, ऐसा भी ज्ञानी के ज्ञान में है नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें? क्यों? पहले तो कहा था कि वह तो वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है, वह वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। उसमें करना है कि यह परिणमना उसमें तो पर्याय धारावाही चले, ऐसा कुछ विकल्प भी नहीं और ऐसा कुछ वस्तु में (भी) है नहीं। समझ में आया?

देखो! यह सम्यग्दृष्टि जीव अथवा ज्ञानी जीव अपने साधक स्वभाव में साधा हुआ आत्मा... समझ में आया? साधकभाव से साधा हुआ—सिद्ध किया हुआ आत्मा सम्यग्दर्शन और ज्ञान से यह आत्मा शुद्ध चिदानन्द अखण्ड ज्ञायक हूँ, उसे सिद्ध किया हुआ आत्मा, उसकी पर्याय धारावाही चलती है क्षण विनाश... क्षण विनाश... क्षण विनाश... क्षण विनाश... क्षण विनाश से... उत्पत्ति विनाश... उत्पत्ति विनाश... गजब बात भाई! समझ में आया? जमुभाई! तो किसका करना अब इसमें? परिणति होती है, उसे करूँ—ऐसा रहता नहीं, ऐसा। परिणति होती है, उसे करूँ—ऐसा रहता नहीं। कर्तारूप से परिणति हुआ करती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह कर्तारूप से परिणति एक धारावाही चलती है, उसे मैं धारावाही करूँ, ऐसा करने का विकल्प ही जहाँ नहीं है। चलती है धारावाही, उसे फिर करना क्या? आहाहा! समझ में आया? वस्तु ही ऐसी है। स्वयं एकरूप त्रिकाल वस्तु है, ऐसी जहाँ दृष्टि में आयी तो वह दृष्टि आदि जो पर्याय है, वह समय-समय में पलटती है। समझ में आया? वह समय-समय में परिणमना अखण्ड धारा से, वह तो उसका पर्याय

स्वभाव है। वही उसकी अद्‌भुतता है, ऐसा कहते हैं। अद्‌भुतता उसका उस स्वभाव की लक्ष्मी की स्थिति ऐसी है, वह उसकी लक्ष्मी है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में यह वस्तु शुद्ध चैतन्य है, ऐसे साधक के ज्ञान में आया तो कहते हैं कि वह परिणति अखण्ड धारा बहती है, ऐसा वह जानता है, बस! समझ में आया? आहाहा!

'इतः सदा एव उदयात् ध्रुवं' 'इतः सदा एव उदयात् ध्रुवं' 'इतः' अर्थात् **सर्व काल...** यह तो पहले से स्पष्टीकरण करते हैं। उस सदा की व्याख्या का। **'इतः'** अर्थात् पहले **'इतः'** का इसकी अपेक्षा यह **'इतः'** का अलग है, ऐसा बतलाने को। **'इतः'** तो दोनों जगह है, परन्तु पहला **'इतः'** अलग था और यह **'इतः'** अलग है। इससे जरा शब्द को पहले से ही व्याख्या करते हैं। समझ में आया? **'इतः'** अर्थात् कि दूसरी अपेक्षा से उसमें देखें तो **सर्व काल एकरूप है....** वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वह विनाशीक है तो यह अविनाशीक, ऐसा कहना है। वह अनेक था तो वह एक है, ऐसा कहा था। शुद्धता की पर्यायें अनेक हैं, तब शुद्धरूप वह ध्रुव एक है। यह विनाशीक है, पर्याय से अखण्ड धारा से विनाशीक है ऐसा और वैसा, तब वह अविनाशी ध्रुव है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! यह तो अन्तिम श्लोक मात्र साधक के साध्यरूप से प्रगट होने की दशा कैसी होती है, उसका वर्णन है। दृष्टान्त दलील इसमें नहीं आती, (इसलिए) सूक्ष्म पड़े। दृष्टान्त स्वयं दृष्टान्त। दूसरा दृष्टान्त क्या है? तू यह है और पर्याय से परिणमता है, यह तेरा दृष्टान्त। समझ में आया?

सर्व काल एकरूप है—ऐसी दृष्टि से देखने पर,... देखने पर, यहाँ तो देखने पर, जानने पर, प्रतीति करने से, ऐसा है न सब? भगवान आत्मा एकरूप अविनाशी देखने पर सर्व काल एकरूप है। वह अनेकरूप था न? विनाशीक, विनाशीक की अपेक्षा से अनेक, हों! उस पर्याय की धारा में अनेक था। यह तो ऐसे धारावाही परिणति की अपेक्षा से विनाशीक था। ऐसा भगवान को अन्दर से देखें तो **ऐसी दृष्टि से देखने पर,... 'सदा एव उदयात्'** जैसे वह क्षणभंगुर है, तब (यह) **'सदा एव उदयात्'** ऐसा का ऐसा है, ऐसा कहते हैं। सदा उदयमान है। उसे फिर अस्त होना या उगना नहीं है। अस्त होना अर्थात् विनशना, उगना अर्थात् उपजना। पर्याय में—अवस्था में नयी ज्ञान सम्यक्

अवस्था उपजे, दूसरे समय में उसका नाश हो। ऐसी सम्यक् श्रद्धा की पर्याय उपजे, दूसरे समय में नाश हो। सम्यक् आनन्द की पर्याय उपजे, दूसरे समय में नाश हो। यह पर्याय धारावाही चले, वह विनाशीक है, तो यह सदा '**उदयात्**' है। सदा उदयरूप है, जैसे सूर्य उदयरूप एक रहे वैसे।

सर्व काल अविनश्वर है... '**उदयात्**' का अर्थ यह किया। '**सदा**' अर्थात् सर्व काल। '**उदयात्**' अर्थात् उदयरूप अर्थात् प्रगटरूप है, ऐसा का ऐसा। अविनश्वर '**सदा एव उदयात्**' **सर्व काल...** '**एव**' निश्चय से '**उदयात्**' अविनश्वर। सम्यग्ज्ञान में वस्तुरूप से देखने पर सदा उदयरूप है, सदा प्रगटरूप है, सदा एकरूप है, सदा अविनाशी है। पर्यायरूप से विनाशी परिणमती है। ऐसा ही वस्तु का स्वतः स्वयं स्वभाव है। ऐसा सम्यग्ज्ञानी अपने आत्मा को इस प्रकार से देखता, जानता और प्रतीति करता है। समझ में आया?

इसमें करने का क्या आया? यह लोगों को... एक व्यक्ति कहे, यह बातें सब करे, परन्तु हमने करना क्या इसमें? यह करने का नहीं? गुणों की दशा को राग और पर में एकता है, उसे स्वभाव-सन्मुख झुकाना, यह करने का कार्य नहीं? समझ में आया? करना अर्थात् क्या? दूसरा करना (अर्थात्) कुछ ऐसे उथल-पुथल करना है कहीं? वस्तु जो अविनाशी त्रिकाल है, उसकी प्रतीति करके पर्याय में अनेकपने का विनाशीक उत्पाद, उत्पाद-विनाश, उत्पाद-विनाश हो, ऐसा कार्य हो, उसे जानना, उसका नाम कार्य है। इसका नाम जानना, इसका कार्य है। समझ में आया? ऐसी श्रद्धा करना इसका कार्य है, ऐसे स्वरूप में स्थिर होना इसका कार्य है। इस कार्य की तो सूझ पड़ती नहीं। बाहर की धमाल करता हो और यह करता हो और यह करता हो तो कुछ किया कहलाये। पलक फिरा सकता नहीं, खबर नहीं? समझ में आया यह? दुःख उठा है। जाओ, उठो! हुआ कुछ? उसमें कहीं बहुत ढीला पड़ गया, ढीला पड़ गया, शरीर में फीका पड़ गया है। तू कर दे न अब कुछ। यह सब डॉक्टर मिथ्या बड़प्पन करते हैं वे। ऐई!

था न सिकन्दर? बड़े-बड़े हकीम। गाँव में बड़े-बड़े थे न? वह बादशाह था। यह कोई मेरा रोग मिटा नहीं सके। मैं वक्षीश-ईनाम तो बहुत देता था। वक्षीश-ईनाम

तो बहुत देता था, उस समय तो कुछ नहीं किया। जनाजा इनके कन्धे पर उठावाना। लाखों का वक्षीश-ईनाम मैंने दिया। मैं दिल्ली का बादशाह और यह मरने के समय यह... यह तुमने क्या किया मुझे? तुम लाखों के वक्षीश-ईनाम पचास-पचास वर्ष से खाते हो। उठवाना अब इनसे। 'मारो जनाजो ए ज हकीमोने खम्भे उपडावजो।' लोग याद करे कि भाई! किसी से कुछ नहीं होता। बड़ा बादशाह भी ऐसे चला जाता है। नाशवान वस्तु है, उसका नाश होता ही है वह। क्या तुझसे रुके ऐसा है? समझ में आया?

यहाँ तो तेरी पर्याय धारावाही हो, उसे रोका नहीं जा सकता है, इसकी बात चलती है यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया? यह शरणभूत तो आत्मा है। जहाँ शरण है, वहाँ नजर डालता नहीं और जहाँ शरण नहीं, वहाँ नजर डालकर चिपका है, निधान देखकर धूल में और शरीर में, वाणी में, स्त्री और पुत्र, यह धूल-धमाका... उसमें एक समय भी नहीं। एक समय में भी यह चीज़ नहीं। देश मेरा, धूल भी तेरा नहीं। सुन न अब। देश मेरा, परिवार मेरा, यह मेरा, यह मेरा... होली (सुलगती है), कुछ नहीं तेरा। तेरा तो यह द्रव्य और पर्याय दो है, ले। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, मैं मुझे मुझमें देखते हुए क्षण-क्षण में अवस्था का उपजना और विनशना ऐसा ही पर्याय का परिणामी द्रव्य का धारावाही स्वभाव है, उसे मैं जानता हूँ और अन्तर वस्तु '**उदयात्**' ऐसी की ऐसी उदयरूप वस्तु ध्रुव पड़ी है, अविनाशी है। ऐसा भी मैं जानता हूँ। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! किसका करना यह? आहाहा!

सवेरे साढ़े छह को बाहर निकले और वहाँ कहे, लालबहादुर गुजर गये। लालबहादुर कहा और गुजर गये? कहा, ऐसा बड़ा एकदम कुछ रोग नहीं था न... लालबहादुर और कोई दूसरा होगा, ऐसा पहले हो गया। कोई कहा न? दरवाजे में निकलते हुए। वह शास्त्री। यह तो सब देह की स्थिति पूरी हो (तो) चले जायें। बापू! यह देह कहाँ उसका था? देह और देश आत्मा का नहीं है। देह और देश दोनों? आहाहा! तेरा हो वह तुझसे भिन्न नहीं होता? बापू!

तेरा तो द्रव्य और पर्याय दोनों। समझ में आया? वह पलटती पर्याय तेरी और टिकता तत्त्व, वह तू। दोनों तू तुझमें है। इसके अतिरिक्त तेरा दूसरा कुछ है नहीं। समझ

में आया ? '**सदा एव उदयात्**' सदा सर्व काल। '**उदयात्**' ऐसा का ऐसा है, ऐसा कहते हैं। '**उदयात्**' क्षणभंगुर था न ? उसके सामने '**उदयात्**' कहा है। **ऐसा विचार करने पर,...** '**ध्रुवम्**' '**सदा एव उदयात् ध्रुवम्**' ऐसा। ऐसा का ऐसा शाश्वत् ध्रुव भगवान पड़ा है। आदि-अन्त बिना की चीज़ ध्रुव, अकृत्रिम, अन नाश पावे, अन उपजती, अन नाश पाती, ऐसी आत्म चीज़ ध्रुव अनादि ऐसी की ऐसी है, उसे नजर करने से वह ध्रुव है '**सदा एव उदयात् ध्रुवम्**' क्षण-क्षण में अखण्ड धारा से परिणमती। ऐसे अखण्ड धारा से ऐसे परिणमती। वह '**सदा एव उदयात् ध्रुवम्**' समझ में आया ?

'**उदयात् ध्रुवम्**' शब्द वापस प्रयोग किया है। सदा ही उदयरूप ध्रुव, सदा ही प्रगटरूप ध्रुव, ऐसा। वह प्रगट है, इसका अर्थ यह। समझ में आया ? देखो न ! इन्होंने (अर्थ) किया है एकरूप किया है। '**उदयात्**' का अर्थ ही एकरूप किया है। एकरूप देखने से वह ऐसा का ऐसा है भगवान। सत्... सत्... सत्... शाश्वत् ज्ञायकमूर्ति ध्रुव अविनाशी ऐसा का ऐसा है। ऐसा ज्ञानी अपने ज्ञान में ऐसा का ऐसा देखता है। पर्याय से परिणति अखण्डधारा से जानता है। दूसरे को परिणमता हुआ जानता है कि पर से परिणमता है, जानता है—ऐसा नहीं आया, भाई ! मेरी पर्याय अखण्ड धारा से परिणमती है, वह पर से परिणमती है, कर्म अटके तो यहाँ शुद्ध परिणति परिणमे, ऐसा नहीं है। परिणति शुद्ध धारारूप से, अखण्डरूप से विश्राम लिये बिना (परिणमती है)। विश्राम क्या हो ? जिसे परिणमना, उसे समय दो कैसे इकट्ठे हों ? वह अखण्ड धारारूप से चलती है। यहाँ सदा एक उदयरूप से ध्रुव है, प्रगटरूप ध्रुव है। कहो, समझ में आया ? ऐसी ही आत्मा की चीज़ है। यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं, यह कोई वाड़ा की बात नहीं कि, हमारे जैन का ऐसा आत्मा और तुम्हारा दूसरा आत्मा। समझ में आया ? वस्तु ही ऐसी है, स्वत: पदार्थ ही ऐसा है।

भगवान आत्मा अविनाशी प्रभु दृष्टि को ध्रुव से देखे तो अविनाशी है, परिणमती दशा से अखण्ड धारावाही से देखें तो वह विनाशीक और उपजती है। मानो नयी अवस्था उपजे और विनशे, उपजे और विनशे। यह उपजे और विनशे नहीं, ऐसी की ऐसी (रहे)। दोनोंरूप भगवान आत्मा स्वयं है। समझ में आया ? वे कहे कि भाई ! यह आत्मा...

देखो ! साधक ऐसा देखता है कि मैं अविनाशी वस्तु हूँ और यहाँ परिणमती

धारा से मैं परिणमता अखण्ड धारा। अब उसमें यह आया तो परिणमा और यह गया तो यह हुआ, यह बात है कहाँ इसमें? समझ में आया? सम्यग्ज्ञानी जीव... वस्तु के साध्य-साधक की बात चलती है, भाई! यह तो साधक की बात चलती है। केवली को क्या है? केवली तो पूर्ण हो गये। आहाहा! समझ में आया? ७२ (कलश से) शुरु हुआ है। पहले साधारण बात कर डाली है। ज्ञान, ज्ञेय। ज्ञाता भी मैं और ज्ञान भी मैं। समझ में आया? ज्ञेय भी मैं।

वीरजीभाई को बात की थी, वहाँ की थी। उसे प्रिय था न, (इसलिए) की थी। ज्ञाता भी आत्मा, ज्ञान भी आत्मा और ज्ञेय वह स्वयं है। तब कुछ कहा था, जवाब दिया था, नहीं? कहा, ज्ञान, ज्ञान और ज्ञाता ज्ञेय एक वस्तु है। ज्ञायक बस! ऐसा कुछ बोले थे। ...पहले से उन्हें प्रिय है। मैं ज्ञान मुझे देखता हूँ। यह घोड़े का दृष्टान्त पहले से देते। खबर है न? घोड़ा जाता है। घोड़े को देखता नहीं, आत्मा ज्ञान की पर्याय को देखता है। क्योंकि उसका लक्ष्य वहाँ करता है, तब वह तो ज्ञान की पर्याय हुई। लक्ष्य में हो तो ऐसे चलती जाती हो तो भी लक्ष्य नहीं, इसलिए ज्ञान नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि अपने लक्ष्य का ही ज्ञान वह करता है। अपने लक्ष्य की पर्याय का ही ज्ञान करता है। वह पर्याय धारावाही चले, उसका ज्ञान करता है, यहाँ तो ऐसा कहना है वापस। समझ में आया? आहाहा!

धर्मी जीव अपने आत्म भगवान को त्रिकालरूप से अविनाशी देखता है और धारावाही पर्याय साधकरूप से उसकी पर्याय अखण्डधारा परिणमती है, ऐसा देखता है। उस पर्याय में किसी के कारण ऐसा परिणमता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कि भाई! यह कर्म हटने लगा, इसलिए यहाँ शुद्धता की परिणति हुई—ऐसा नहीं। मेरे उसी क्षण के शुद्ध परिणति का वह क्षण क्षण उत्पाद-विनाश, उत्पाद-विनाश होने का पर्यायधर्म है, उसरूप मैं परिणम जाता हूँ। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य के साथ यहाँ सम्बन्ध की बात भी कुछ नहीं है। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय, द्रव्य और पर्याय, विनाशीक और अविनाशी, बस! साधक जीव, धर्मी जीव, वह आत्मा को शोधनेवाला साधक जीव। शोधनेवाले का अर्थ आत्मा लक्ष्य में और दृष्टि में तो आया है, अब अन्तर एकाग्र होना चाहता है, वह एकाग्र होते-होते ऐसा ज्ञान करता है। समझ में आया?

अज्ञानी शोधता है जड़ को, पर को और बहुत तो विकार के भाव को शोधता है। वह है अज्ञानी आत्मा के स्वभाव का बाधक। आत्मा के स्वभाव को विघ्न करनेवाला, स्वयं अपने को विघ्न करनेवाला। वह शोधता है परद्रव्य को, इसका ऐसा हुआ और इसका ऐसा किया और इसका ऐसा किया और पर का यह किया और देह का ऐसा किया और देश का ऐसा किया, परिवार का यह किया और यह दया पालन की और इसे मार दिया। वह शोधता है जड़ को और पर को। उसका ज्ञान पर को शोधने जाता है, वहाँ विकार को खोजता है। ऐसा अज्ञान उसे आत्मा के स्वभाव का बाधक कहा जाता है। वह आत्मा को शान्ति की साधकदशा का अभाव करनेवाला है। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

यहाँ आत्मा अपनी पर्याय की परिणति को धारावाही होते देखता है, अविनाशीरूप से देखता है। वह साधक। समझ में आया इसमें? ऐसा कहा न? स्वयं ऐसा जानता है, जानता है। यह वैभव अपना है, ऐसा कहा न उसे? आहाहा! लड़की विदा करे, तब नहीं छोड़ते? क्या कहलाता है? करीयावर। हिन्दी में क्या कहलाता होगा? ऐई! दहेज। इसे खबर नहीं, उलझ जाता है। इसे ऐसा कि महाराज पूछते हैं इसलिए अन्दर कुछ होगा, हों! यह तो लड़की को विदा करने के समय नहीं देते? पाँच-पचास हजार देते हैं न? कपड़े, बपड़े और यह बींझणा-फींझणा और ऐसे... दहेज। फिर देखो यह पलंग पर बिछावे। यहाँ हमारी बात की खबर है। पलंग पर बिछावे, फिर कुटुम्बियों को बुलावे, देखो! भाई! इस लड़की को विदा करना है और यह इतना देना है। यह पाँच हजार के वस्त्र, इतना यह है। यह बींझणा है, इस बींझणा को सोने का सामने वह है... क्या कहलाता है? हथलेवा। ऐसा है, वैसा है, ढींकणा है। तुम्हारे तो कहाँ था कुछ? यह तो जिसे हो उसे। परन्तु तुम्हारे परिवार में तो होगा न! परिवार में हो न! तुम्हारे भाई के लड़के और लड़कियाँ जाये न! जाये नहीं, देना पड़े वहाँ अब बड़े हुए हो तो क्या करे?

कहते हैं कि, यह वैभव, यह खोटा, वह तो श्मशान का मुर्दा है। वह तेरा वैभव नहीं, दूसरे को क्या देखने बैठाया? देखने लाता है। इस तेरे वैभव को तू देख न! ऐसा कहते हैं यहाँ तो। यह मोक्ष के पंथ में चलनेवाला अपनी सामग्री को देखता हुआ, वैभव

को देखता हुआ मोक्ष के पंथ में चलता है, ऐसा कहते हैं। यह विदाई होती है, अब यह सिद्ध में जाता है। समझ में आया ? पुत्री जाती है न ससुराल ? इसी प्रकार यह आत्मा जाता है मोक्ष। यह मोक्ष घर में अपने में जाता है। घर में ऐसा-ऐसा वैभव देखता-देखता चला जाता है। आहाहा! समझ में आया ? कठिन बात, भाई!

यह वस्तु की स्थिति सर्वज्ञ ने देखी, ऐसा वह देखता है, भाई! ऐसा कहना है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन काल का ज्ञान है, इस साधक जीव को ऐसा देखते हैं वे। सर्वज्ञ परमेश्वर साधक जीव को ऐसा देखते हैं, इसलिए साधक भी ऐसा ही अपने को देखता है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया इसमें ? सर्वज्ञ प्रभु तीन काल का जिन्हें एक समय में ज्ञान है परमात्मा अरिहन्त केवली (को), वे इस आत्मा साधक को कैसे देखते हैं ? कि यह साधक जैसा अपने को देखता है, वैसा भगवान इसे देखते हैं। और भगवान जैसा इसे देखते हैं, वैसा साधक अपने को देखता है। इसलिए क्या कहा इसमें ? समझ में आया या नहीं इसमें ? शान्तिभाई!

केवलज्ञानी प्रभु अपने ज्ञान में पूर्ण ज्ञान से पर का ऐसा है, ऐसा देखते हैं, साधक अपने में ऐसा है, वह भगवान जैसा देखते हैं, वैसा ही स्वयं अपने को देखता है। भगवान जानते हैं कि यह शुद्ध द्रव्य है तो यह शुद्ध द्रव्य जानता है। पर्याय में साधकपना, निर्मलपना है। उसे स्वयं जानता है और भगवान भी उसे ऐसा जानता है। समझ में आया ? और परिणति पर्याय अखण्ड धारा से बहती है, ऐसा वह जानता है, ऐसे भगवान भी ऐसा जानते हैं, उसे।

मुमुक्षु : हमारा दहेज तो भगवान ने दिखाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान देखते हैं, ऐसा तुम देखते हो अन्दर में, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। भगवान का ज्ञान और यह ज्ञान दोनों एक हो गये, इस अपेक्षा से। समझ में आया या नहीं ? आहाहा! ज्ञान ऐसे देखता है, वह स्व-पर की समस्त दशा तीन काल, तीन लोक की धारावाही, ऐसी धारावाही सबकी देखता है। वह अपनी धारावाही को देखता है। उसने भी ऐसा देखा है कि उसकी धारावाही पर्याय अखण्ड धारा ऐसे परिणमती है, ऐसा भगवान देखते हैं, यह भी ऐसा देखता है। समझ में आया या नहीं ?

यह और वहाँ कल ऐसा आया था न? ... उसके प्रमाण में दिया जाये न? कि यह नौ तत्त्व भगवान ने ऐसे देखे हैं। तब वे कहें यह देखा लगता है, नहीं तो महाराज फिर गये होंगे? दूसरा कुछ होगा? लोगों को विचारों को जैन का तत्त्व वीतराग क्या कहते हैं? समझे नहीं? कहीं वेश और वेश को जहाँ बदले और उसका माना हुआ वेश जहाँ बदले तब जैन का दूसरा होता है और यह अपने माना हुआ जैन ऐसा इसे हो जाता है, भ्रम। अरे! भगवान! बापू! तुझे जैन की खबर नहीं। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, भाई! जैन तो वस्तु का आत्मा का पूर्णानन्दस्वभाव है। उसे—विकार और अल्पज्ञता को स्वभाव के साधन द्वारा जीते, उसे जैन कहा जाता है। यह तो वस्तु का स्वभाव है और वस्तु की मर्यादा ही ऐसी है। यह किसी ने की हुई और करायी हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा विचार करने पर, शाश्वत् है। 'इत:' वस्तु को प्रमाणदृष्टि से देखने पर, 'परमविस्तृतं' प्रदेशों से लोकप्रमाण है;... क्षेत्र से बात करते हैं। क्षेत्र और ज्ञान दो से बात करते हैं। ऐसे दो बात करते हैं। इस आत्मा को देखो तो प्रदेशों से लोक के—यह लोक है न चौदह ब्रह्माण्ड, उसमें आकाश के असंख्य प्रदेश हैं। यहाँ रजकण रखो-रखो तो इतने भाग को प्रदेश कहते हैं। ऐसे ऐसे असंख्य प्रदेश पूरे लोक में हैं। इतने असंख्य प्रदेश संख्या से इस जीव के हैं। इतने संख्या से हैं, कहते हैं। **प्रदेशों से लोकप्रमाण...** लोकप्रमाण विस्तार होकर रहे, ऐसी बात नहीं अभी। समझ में आया? भगवान इस आत्मा को असंख्य प्रदेश से देखते हैं, वैसे ज्ञानी अपने लोक के प्रदेश असंख्य प्रदेश हैं, ऐसा अपने को देखते हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं अन्यत्र होगी?

प्रदेशों से लोकप्रमाण है;... एक बात ली। समझ में आया? कौन? यह आत्मा। साधक धर्मी जीव अपने असंख्य प्रदेश लोक के प्रदेश की संख्या जितनी है, ऐसा अपने को जानता और मानता है। समझ में आया? लोक प्रमाण भले मैं चौड़ा विस्ताररूप न विस्तरित होऊँ परन्तु इसके प्रदेश की संख्या प्रमाण विस्तारवाला मैं यहाँ हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा ही आत्मद्रव्य का स्वरूप है। एक बात यह (हुई)।

ज्ञान से, ज्ञेयप्रमाण है। विस्तार की दूसरी बात ली। ज्ञान जितना ज्ञेय है, उस

सबको जानता है, इस अपेक्षा से ज्ञान ज्ञेय प्रमाण विस्तार है, ऐसा भी जानने में, कहने में आता है। विस्तृत के अर्थ में दो बातें ली हैं। क्षेत्र और भाव। समझ में आया?

भगवान आत्मा में पूरी चीज़ की वस्तु, वस्तु आ जाती है। वस्तु का जो स्वरूप है क्षेत्र का, गुण का, द्रव्य का, पर्याय का अनेक धारावाही यह सब इस चीज़ में आ जाता है। इसमें कुछ बाकी नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया इसमें? ऐसा कहकर क्या कहा? कि साधक जीव स्वयं असंख्य प्रदेश यहाँ है, इसलिए अपना क्षेत्र नजर करने में, ऐसे नजर करने में क्षेत्र यहाँ ही है। ऐसी नजर करने को क्षेत्र इतने में ही है। ऐसे बाहर में नजर करके एकाग्र हो, ऐसा क्षेत्र उसे मानता नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार ऐसा कि सब ऐसा लम्बा ऐसी नजर करे न (तो एकाग्र हो)। ऐसा नहीं, कहते हैं। असंख्य प्रदेश लोक के क्षेत्र के जो प्रदेश हैं, उतनी संख्या से मैं यहाँ हूँ इसलिए मेरा यह क्षेत्र है, मेरी नजर में यह क्षेत्र लेने योग्य है। मेरी नजर में इस क्षेत्र में एकाग्र होता है। मेरी नजर कोई परक्षेत्र में एकाग्र होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा कहकर आत्मा को शरीरप्रमाण भिन्न असंख्य प्रदेशी एक है, ऐसा वर्णन किया। शरीर के बाहर दूसरे कहते हों आत्मा सब होकर व्यापक है, ऐसा वस्तु के स्वरूप में तीन काल-तीन लोक में नहीं है। समझ में आया?

ज्ञान से ज्ञेयप्रमाण... यह भी क्या कहा? कि ज्ञान ज्ञेय प्रमाण अर्थात् अकेला निज ज्ञेय तो ठीक परन्तु दूसरे सब ज्ञेय को इकट्ठे लिये, भाई! इसलिए कोई ज्ञेय बाकी न रहे। मैं ही अकेला ज्ञेय हूँ, ऐसा नहीं। मेरा ज्ञान जितने ज्ञेय क्षेत्र में और काल में, सब जितने हैं, (उन) सबको जानने में व्याप जाये, ऐसा मेरा ज्ञान है। समझ में आया? पहले आया था कि मैं ज्ञान, मैं ज्ञेय और मैं ज्ञाता। परन्तु यहाँ दूसरी बात लेनी है जरा। ज्ञान है तो मैं का मैं यहाँ परन्तु वह ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ। ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ लोक और अलोक ऐसे क्षेत्र से और अनन्त-अनन्त संख्या से द्रव्य और अनन्त गुणों से संख्या से है, उसका ज्ञान करनेवाला यहाँ रहकर करनेवाला अर्थात् मेरा ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह अपना वैभव बतलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसका वैभव है, सामर्थ्य है। वैभव अर्थात् सामर्थ्य। समझ में आया? आहाहा! भगवान को देखने कभी निवृत्त नहीं हुआ।

मुमुक्षु : नाम तो हमेशा लेता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम भगवान अर्थात् यह आत्मा। दूसरी वस्तु को देखने पूरे दिन निवृत्त। यह किया और यह किया और यह लेना... धूल में भी नहीं, सुन न इसमें। आहाहा! ऐसे के ऐसे अनन्त अवतार फू... होकर चले गये। धूल भी उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं।

यह भगवान आत्मा साधक जीव ऐसा आत्मा देखता है, जानता है और उसे शान्ति होती है और उसे सिद्धपद की अल्पकाल में प्राप्ति होती है और निज पद मिलता है। पर पद तो कोई प्राप्त नहीं कर सकता। समझ में आया? आहाहा! अर्थ भी अलग-अलग प्रकार के कैसे किये हैं! देखा? ज्ञान से ज्ञेयप्रमाण हूँ। मेरा ज्ञान इतना बड़ा है; है भले असंख्य प्रदेश में यहाँ, परन्तु इतना बड़ा है कि जितने ज्ञेय हैं, उन सबको पहुँच जाये इतना मेरा ज्ञान है। इस अपेक्षा से सर्वव्यापक व्यवहार से भी कहा गया है। आहाहा! दो बातें ली न फिर उसमें से क्षेत्र और भाव। ऐसे साधक जीव अपने गुण को इतना बड़ा व्यापक हो, ऐसा जानता है। और असंख्य प्रदेश में रहा हुआ यहाँ हूँ, ऐसा उसे जानता है। आहाहा!

'**इतः निजैः प्रदेशैः धृतं**' दूसरा अन्तिम बोल अब। '**इतः**' की व्याख्या ही यह स्वयं कहना हो, वह पहले से कर डालता है, यह पहले से कर डालता है। **निज प्रमाण की दृष्टि से देखने पर,...** अर्थात् अपना प्रमाण अन्तर देखने से। कि यह क्षेत्र यहाँ है और ज्ञान भी यहाँ है। **निज प्रमाण की दृष्टि से देखने पर,... 'निजैः प्रदेशैः' अपने प्रदेशमात्र... अपने प्रदेशमात्र प्रमाण है।** उसमें ज्ञेय प्रमाण व्यापक कहा था न? ऐसा नहीं है। यहाँ निज प्रदेशमात्र है। उसमें संख्या कही थी लोकप्रमाण जितनी। समझ में आया? यहाँ तो (कहते हैं), अपने प्रदेशमात्र यहाँ है। '**निजैः प्रदेशैः**' असंख्य प्रदेशी निज प्रदेश अपने। निज प्रदेश में ही ज्ञान है, निज प्रदेश में ही आनन्द है, निज प्रदेश में ही गुण और द्रव्य और पर्याय है। द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का पिण्डरूपी शक्ति का सत्त्व, वह द्रव्य, अनन्त

शक्तियाँ—स्वभाव, वह गुण और उनकी समय धारावाही नाशवान या अखण्ड पर्याय, अनेक आदि उनका क्षेत्र निज प्रदेश प्रमाण है। समझ में आया? यह भाषा किस प्रकार की! ऐ... मोहनभाई! संसार ऐसा और फँसा डाले। संसार फँसाता होगा या स्वयं (फँसता है)? यही अन्दर कहते थे कि यह हो गया। किसके कारण? तुम्हारे मोह के कारण। कुछ लड़की रोकती नहीं और धूल भी रोकता नहीं। इसकी अपेक्षा पैर (पगफेरा) कम हुआ तो कहा सुनने तो यहाँ बैठते हैं। ऐसा कहा था, हों! मैंने अन्दर में। यह जरा अच्छा नहीं। इसके कारण से रुकना पड़ता है। ऐसा होगा? या मोह के कारण? आहाहा!

कहते हैं, '**निजैः प्रदेशैः**' ऐसे व्यापक कहा था न? यहाँ तो यह देखें तो असंख्य प्रदेश निज शुद्ध प्रदेश में ही स्वयं है। अनन्त गुण, द्रव्य और पर्याय निज प्रदेश में ही है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि साधक जीव साध्य को पहुँचने के लिये इस प्रकार से साधन करता है और इस प्रकार से जानता है, उसे साधक जीव को धर्मी कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २७४

(पृथ्वी)

कषायकलिरेकत: स्खलति शांतिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकत: स्पृशति मुक्तिरप्येकत:।
जगत्त्रितयमेकत: स्फुरति चिच्चकास्त्येकत:
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुत: ।।११-२७४।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'आत्मन: स्वभावमहिमा विजयते' [आत्मन:] जीवद्रव्य की [स्वभावमहिमा] स्वरूप की बड़ाई, [विजयते] सबसे उत्कृष्ट है। कैसी है महिमा? 'अद्भुतात अद्भुत:' आश्चर्य से आश्चर्यरूप है। वह कैसा है आश्चर्य? 'एकत: कषायकलि: स्खलति' [एकत:] विभावपरिणामशक्तिरूप विचारने पर, [कषाय] मोह-राग-द्वेष का [कलि:] उपद्रव होकर, [स्खलित] स्वरूप से भ्रष्ट हो परिणमता है, ऐसा प्रगट ही है। 'एकत: शान्ति: अस्ति' [एकत:] जीव के शुद्धस्वरूप का विचार करने पर, [शान्ति: अस्ति] चेतनामात्र स्वरूप है; रागादि अशुद्धपना विद्यमान ही नहीं है। और कैसा है? 'एकत: भवोपहति: अस्ति' [एकत:] अनादि कर्मसंयोगरूप परिणाम है, इस कारण, [भव] संसार चतुर्गति में [उपहति:] अनेक बार परिभ्रमण [अस्ति] है। 'एकत: मुक्ति: (अपि) स्पृशति' [एकत:] जीव के शुद्धस्वरूप का विचार करने पर, [मुक्ति: (अपि) स्पृशति] जीववस्तु, सर्व काल मुक्त ही है, ऐसा अनुभव में आता है। और कैसा है? 'एकत: जगत्त्रितयं स्फुरति' [एकत:] जीव का स्वभाव, स्वपरज्ञायक है—ऐसा विचार करने पर, [जगत्] समस्त ज्ञेयवस्तु की [त्रितयं] अतीत-अनागत-वर्तमान कालगोचर पर्यायें, [स्फुरति] एक समयमात्र काल में, ज्ञान में प्रतिबिम्बरूप हैं। 'एकत: चित् चकास्ति' [एकत:] वस्तु के स्वरूप सत्तामात्र का विचार करने पर, [चित्] शुद्धज्ञानमात्र [चकास्ति] शोभित होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि व्यवहारमात्र से ज्ञान, समस्त ज्ञेय को जानता है; निश्चय से नहीं जानता है, अपना स्वरूपमात्र है क्योंकि ज्ञेय के साथ, व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है।।११-२७४।।

पौष कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक-१३-०१-१९६६, कलश-२७४, २७५, प्रवचन-२९४

ग्यारहवाँ श्लोक।

कषायकलिरेकतः स्खलति शांतिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ।।११-२७४।।

देखो! साधक जीव अपने आत्मा में ऐसे विविध प्रकार की अद्भुतता जानता है। **'आत्मनः स्वभावमहिमा विजयते' 'आत्मनः' जीवद्रव्य....** जीववस्तु की **स्वभावमहिमा अर्थात् स्वरूप की बड़ाई,...** स्वरूप की विशेषता। वह जीवद्रव्य के स्वरूप की खास विशेषता **सबसे उत्कृष्ट है।** सबसे उत्कृष्ट आत्मद्रव्य की सबसे उत्कृष्ट महिमा है। दूसरे सब जड़ पदार्थ आदि से।

मुमुक्षु : जड़ की महिमा....

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ की महिमा जड़ की अपेक्षा से उसमें है। उसकी भी उसकी महिमा से बड़ी है।

सबसे उत्कृष्ट... 'विजयते' देखो! स्वभाव महिमा जीवद्रव्य की स्वरूप की महिमा **'विजयते' सबसे उत्कृष्ट... 'विजयते' सर्व से उत्कृष्ट...** क्योंकि जाननेवाला चेतन ही स्वयं है। दूसरे पदार्थ कुछ ऐसे नहीं। **कैसी है महिमा? 'अद्भुतात अद्भुतः' आश्चर्य से आश्चर्यरूप है।** आश्चर्य उपजावे, ऐसी उसकी महिमा है, कहते हैं। **वह कैसा है आश्चर्य?** अब यह कहते हैं। आश्चर्य से वह आश्चर्य है, वह भी कैसा आश्चर्य? किस प्रकार का अद्भुत से अद्भुत आश्चर्य है? और उसकी सर्वोत्कृष्टता विजय वर्तती है।

'एकतः कषायकलिः स्खलति' एक ओर देखो तो विभावपरिणामशक्तिरूप विचारने पर,... शक्ति मानो विकार की पर्याय में विकाररूप परिणमन दिखता है। पर्याय में विकार से देखो तो विभाव का परिणमन राग-द्वेष विकार से परिणमित दिखता है, है।

विभावपरिणामशक्तिरूप विचारने पर, मोह-राग-द्वेष का... मोह और राग-द्वेष का **उपद्रव होकर....** मलिनता होकर **स्वरूप से भ्रष्ट हो परिणमता है,...** मिथ्यादृष्टि सर्वथा स्वरूप से भ्रष्ट होकर परिणमता है। साधक अपने स्वरूप में पर्याय में जरा राग-द्वेष आदि से परिणमता है। देखो! इतना उपद्रव है। **'कलिः, कलिः'** अर्थात् उपद्रव। पर्याय में इतना राग-द्वेष का उपद्रव है। साधक है न? पूर्ण दशा नहीं, इसलिए उस द्रव्य की ऐसी ही कोई अद्‌भुत अद्‌भुत विशेषता है।

मुमुक्षु : उसे महिमा मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस महिमा में, उस महिमा मैं है या नहीं? एक ओर विकार का परिणमन देखे और एक ओर शान्त चिदानन्द स्वरूप देखे। एक ही वस्तु में दो भाग। अद्‌भुत ऐसा विस्मय दूसरी चीज़ में नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

उपद्रव होकर, स्वरूप से भ्रष्ट हो परिणमता है,... इतनी विकार की अवस्थारूप से सम्यग्दृष्टि भी थोड़ा रागादि से परिणमता है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि स्वरूप सर्वथा भ्रष्ट होकर परिणमता है। सम्यग्दृष्टि साधक अपने स्वरूप में शुद्धता, शान्त, पवित्रता दृष्टि में होने पर भी पर्याय में जरा राग-द्वेषरूप भाव होते हैं, उतना स्वरूप से पर्याय में भ्रष्ट है। कहो, समझ में आया? कोई कहे कि स्वरूप त्रिकाल एकरूप है, उसमें से कभी भ्रष्ट होता ही नहीं। वह तो त्रिकाली वस्तु की अपेक्षा से बात है। पर्याय में ऐसी अवस्था है। जो द्रव्य में नहीं, गुण में नहीं; तथापि एक समय की दशा में वह विकार—राग-द्वेष का भाव उत्पन्न होता है। ऐसा ज्ञानी जानता है कि यह राग आदि उत्पन्न हुआ, ऐसा जानता है। समझ में आया? एक ओर यह दिखता है।

परिणमता है, ऐसा प्रगट ही है। ऐसा कहते हैं। यह विकाररूप होना, उस प्रगट पर्याय का स्वभाव है। वह कैसा? द्रव्य में विकार नहीं, गुण में विकार नहीं, दृष्टि का विषय शुद्ध है, उसमें विकार नहीं और पर्याय में विकार। कहते हैं, वह कोई उसकी लीला ही ऐसी जीव की है। अज्ञानी को यह बात बैठती नहीं। **'एकतः शान्तिः अस्ति'** **'एकतः'** (अर्थात्) **जीव के शुद्धस्वरूप का विचार करने पर,...** शुद्ध जीव देखने से अन्दर पवित्रता है। अकेला त्रिकाल शुद्ध स्वरूप देखने से **चेतनामात्र स्वरूप है;...** वह

तो चेतनामात्र है, उसमें अशुद्धता है नहीं। अकेली शुद्ध चेतनामात्र वस्तु। एक ओर दृष्टि से देखो तो वस्तु है। एक ओर देखो तो विकार की परिणति है। यह कैसी लीला, कहते हैं। यह जीव की ही अद्‌भुतता इस प्रकार से स्वभाव में है। इस प्रकार का इसका स्वभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका आश्चर्य, वह आश्चर्य हुआ और एक-एक, एक-एक आश्चर्य हुआ। एक ओर शान्त, एक ओर विकार, ऐसा। एक ओर शान्त देखो तो विकार की गन्ध नहीं। एक ओर विकार देखो तो उसमें शुद्धता नहीं। ऐसे दोनों आश्चर्य हुए न? क्या कहा? एक ओर देखो तो शान्त अविकारी शुद्ध चैतन्यस्वभाव देखने से अकेला चैतन्यरस शुद्ध है। यह विस्मय, जिसके एक समय में पूर्ण शुद्धता, पूर्ण शुद्धता, एकरूप शुद्धता, अखण्ड शुद्धता। एक ओर देखो तो पर्याय में विकार। विकल्प राग आदि दिखते हैं, होते हैं। यह भी विस्मय। यहाँ शान्त और यह विकार! यहाँ विकार और यहाँ शान्त! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। अज्ञानी को उसका पता नहीं। जो शुद्ध है, वह अशुद्ध कहाँ से हुआ? और ऐसा कितने ही कहते हैं न बहुत? हमारे एकसाथ छह दिन प्रश्न आये। एकसाथ बहुत प्रश्न उठे। एक क्षुल्लक आये थे। दूसरे भी ऐसा कहे, द्रव्य-गुण में शुद्धता है और पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आयी? पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आयी? कर्म के कारण आयी। वह यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया? कर्म के कारण पर्याय में अंश में अशुद्धता आयी, यह बात खोटी है। यह अपनी ही पर्याय का धर्म है तो अशुद्धतारूप परिणमता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

वस्तु चेतनारूप से शुद्ध है। चेतनामात्र लिया न? अर्थात् कि **अशुद्धपना विद्यमान ही नहीं है**। अर्थात् शान्तिमात्र है, ऐसा। चेतना अर्थात् शान्त... शान्त... अकषाय, चेतना अर्थात् अकषाय, चेतना अर्थात् शान्तरस स्वभाव द्रव्य, जिसमें बिल्कुल आंशिक राग और मलिनता नहीं। एक ओर पर्याय में अंश में राग, द्रव्य-गुण में न मिले और पर्याय में राग। कहो, अज्ञानी को यह बात गले नहीं उतरती। परन्तु वस्तु का ही ऐसा स्वभाव

है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह कहे, विकार का यदि स्वभाव हो तो विकार स्वभाव (जो जायेगा)। अब सुन न! यह तो अभी पर्याय की अपेक्षा से बात है। द्रव्य का अपना ही पर्याय में विकार का परिणमना, चेतनास्वरूप से भ्रष्ट होकर रागरूप हो, विकाररूप हो, ऐसा ही उसका पर्याय का स्वभाव है। ऐसा न हो तो यह संसार कहाँ रहे? संसार न हो तब तो सिद्ध ही हो और पूरा शुद्ध ही हो। सिद्ध और शुद्ध पूर्ण हो। ऐसा तो है नहीं। तब है सही न? ऐसा सिद्ध करते हैं, वह किसके कारण से है, ऐसा सिद्ध करते हैं। अपने आत्मा की विचित्रता और अद्‌भुतता के कारण वह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

पहले में अद्‌भुत आया था, इसमें '**अद्‌भुतात अद्‌भुतः विजयते स्वभावमहिमा आत्मनः**' अन्तिम शब्द का पहले अर्थ किया है, अन्तिम लाईन का। समझ में आया? शुद्ध स्वरूप का विचार करने से तो चेतनामात्र है, शुद्ध ही है। एक ओर शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... एक ओर यहाँ पर्याय से देखो तो अशुद्धता है। दोनों एक साथ में? हाँ, वस्तु का स्वभाव ऐसा है। उसमें तर्क को अवकाश नहीं और कर्म को अवकाश नहीं। कर्म को अवकाश नहीं, (कि) कर्म है इसलिए विकार है। देखो! यहाँ तो यह बात ली ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसलिए? उसका यहाँ क्या काम है? परद्रव्य का यहाँ काम ही नहीं, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। समझ में आया? फिर उसमें बड़ी तकरार—विवाद उठाते हैं। कर्म के कारण विकार, कर्म के कारण विकार। उसमें और कल डाला था, 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' यह सूत्र हमको बहुत उपकारी हुआ है, ऐसा भाई ने लिखा है। बखारिया ने। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं, एक ओर देखो तो शुद्ध चेतन दिखता है। वस्तु, वस्तु। और एक ओर देखे तो विचार में वर्तमान विकार स्वरूप से भ्रष्ट हुआ, स्वरूप से हट गया ऐसा विकार भी भासित होता है। साधक है न? समझ में आया? मात्र अज्ञानी को तो अकेली अशुद्धता भासित होती है। वस्तु उसे दिखती (नहीं), शुद्ध है, वह दिखती नहीं। समझ में आया? अकेला मोह है न अकेला रागादि का? ऐसा। एक ओर स्वरूप की

सावधानी देखो तो शुद्ध है, ऐसे सावधानी देखो तो अशुद्ध है थोड़ी, वह कहाँ से आयी? आयी कहाँ, वह पर्याय का धर्म है। वह वस्तु का ही ऐसा अदभुत धर्म है। वह भी एक आश्चर्यकारी धर्म है, ऐसा। समझ में आया? 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' यहाँ तो कर्म को याद भी नहीं किया।

ज्ञानी को राग हो, धर्मी को हो। ऐसे देखे तो राग में जरा मचक खाता है, ऐसे देखे तो शुद्धता दिखती है। समझ में आया? कहो! ज्ञानी युद्ध में खड़ा हो। राग होता है, इतनी वासना अन्दर दिखती है, पर्याय में होता है, वस्तु में नहीं। एक समय में दो ऐसा? कहो! अन्तर की खान में से विकार नहीं होता और पर्याय में विकार हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया इसमें? अन्तर खान में विकार है नहीं कि जिससे उसमें से निकलकर आवे शुद्ध शक्ति में से। और पर्याय में विकार हुए बिना रहता नहीं। तब यह क्या है? कहते हैं यह। ऐसा ही कोई आत्मा का अद्‌भुतात् अद्‌भुत पर्याय धर्म, द्रव्य धर्म ऐसा एक समय में (साथ में) रहता है। समझ में आया? भ्रष्ट होऊँ, करूँ, ऐसा नहीं परन्तु पर्याय में ऐसा स्वरूप होता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। एक तो कर्ता निकाल दिया पहले। समझ में आया?

ज्ञानी राग का कर्ता नहीं, अशुद्ध का कर्ता नहीं। मैं करूँ और करनेयोग्य है— ऐसा भाव नहीं, परन्तु अशुद्धता हुए बिना रहती नहीं। पूर्ण वीतरागता नहीं और अपनी ही उस पर्याय के कारण से है। पूर्व की पर्याय के कारण से नहीं, कर्म के कारण से नहीं, द्रव्य-गुण के कारण से नहीं। समझ में आया? लो! यह तो पर्याय के कारण पर्याय आया। विकार पर्याय में होता है, उसके कारण से। पर्याय के कारण से विकार होता है। कर्म के कारण से नहीं, परद्रव्य के कारण से नहीं, द्रव्य-गुण में है नहीं। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, स्खलित होता है एक ओर तथा एक ओर ऐसा का ऐसा शान्त दिखता है। जिसमें **रागादि अशुद्धपना विद्यमान ही नहीं है।** ऐसा। जिसमें विकार तो है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। शान्त चेतनामात्र भगवान आत्मा देखने से विकार तीन काल में उसमें नहीं। यहाँ देखो तो विकार वापस पर्याय में है। समझ में आया? किसके कारण वह होगा?

मुमुक्षु : अपनी भूल के कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भूल बिना का भूल करे किसलिए? कहो! भूल बिना का तो द्रव्य है। गुण भूल बिना का है परन्तु पर्याय में भूल न हो तो यह राग किसका है, कहते हैं। तेरे अस्तित्व में ही है, तुझसे हुआ है। वह पर्याय के कारण से पर्याय का धर्म है, इसलिए हुआ है, ऐसा सिद्ध करते हैं। देखो न! कितना सार (लेते हैं)! अन्त में श्लोक में पूरे शास्त्र का सार कह देंगे। समझ में आया? देखो, वे ४७ नय लिये थे। कर्तृत्वधर्म, अकर्तृत्वधर्म। प्रवचनसार में। इस प्रकार से लेकर द्रव्य का यह वस्तु ऐसी है। नहीं तो यह तो द्रव्यदृष्टि का समयसार है। परन्तु वापस इसकी पर्याय में इस प्रकार की साधकदशा है, उसे ऐसा विकार भी बाधकरूप से है। कहो, समझ में आया?

और कैसा है? 'एकतः भवोपहतिः अस्ति' एक ओर देखो तो **'भव उपहतिः अस्ति' अनादि कर्मसंयोगरूप परिणाम है,...** कर्म-संयोगरूप परिणमा है, हों! कर्म परिणमाता है, ऐसा नहीं। वह कर्म के संयोग में स्वयं परिणमा है। **इस कारण संसार चतुर्गति में...** लो! इस कारण से भव की चार गति **'उपहतिः' अनेक बार परिभ्रमण है।** अज्ञानी को अनेक बार वह परिभ्रमण है। ज्ञानी को भी अभी जहाँ तक रागादि है, उसे भी नरकगति आदि होती है। होती है न, श्रेणिक राजा आदि को? कहो, समझ में आया? पशु गति नहीं होती। मनुष्य और देव। सम्यग्दृष्टि को मनुष्य और देव दो ही होती है। पहले आयुष्य बँध गया हो तो नरक होता है। समझ में आया? बाकी अज्ञान में चार गति होती है। अकेला साधकभाव न लो तो। अब यहाँ साधक-साध्य को साथ में समझाया है।

अनादि कर्मसंयोगरूप... संयोगरूप। कर्म के संयोगरूप परिणमा है, ऐसा। परिणमा है, ऐसा कहा है न? परिणमा है। संयोग ने परिणमाया है, ऐसा नहीं। **अनादि कर्मसंयोगरूप परिणाम है, इस कारण संसार चतुर्गति में... 'भव उपहतिः' अनेक बार परिभ्रमण है।** भव को प्राप्त होता है, ऐसा। **'उपहतिः'** अर्थात् प्राप्त होता है। कहो! भव बिना का स्वभाव, वह भव को प्राप्त होता है। भव बिना का स्वभाव, वह भव को प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसका स्वरूप तो मुक्त ही है, ऐसा कहेंगे। भवरहित स्वरूप है, स्वरूप में भव कैसे? द्रव्य-गुण में भव कैसे और भव का भाव

कैसा ? भव के अभावस्वरूप ही है। ऐसे पर्याय देखो तो भववाली है, ऐसा भी परिणमना उसका कर्म-संयोग में होता है। **अनेक बार परिभ्रमण है।** '**एकत:**' अनेक बार कहा। '**उपहति:**' प्राप्त होता है।

'**एकत: मुक्ति स्पृशति**' **जीववस्तु, सर्व काल मुक्त ही है, ऐसा अनुभव में आता है।** ऐसा यहाँ लिया है। उसमें जरा स्पर्श पर्याय में लिया है। ऐसे मुक्त है, ऐसा पर्याय में भासित होता है। यह वस्तु ही त्रिकाल मुक्त है। यहाँ तो **जीववस्तु, सर्व काल मुक्त ही है, ऐसा अनुभव में आता है।** यह वस्तुरूप से देखो तो भगवान जीव त्रिकाल मुक्तस्वरूप ही है। एक ओर भव का भाव होने पर भी, भव का भाव होने पर भी वस्तुरूप से मुक्तस्वरूप ही है। यह गजब बात! एक ओर भव का भाव तथा एक ओर मुक्तस्वरूप। एक साथ दो ? ऐसी वस्तु की स्थिति है, किसी के कारण से नहीं। तब कहते हैं न कि जीव कर्म के कारण परिभ्रमण करे। समझ में आया ? त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने महा उपकारी ने कहा, आठ कर्म के कारण भटकता है। तुम कहते हो कि अपनी भूल के कारण भटकता है। भगवान ने ऐसा कहा। यह क्या कहा ? देखो न! भव और भव को प्राप्त होता है, वह तेरी पर्याय में तेरे कारण से है।

मुमुक्षु : यही जीव की अद्भुतता बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वस्तु है। तू स्वयं एक ओर भव बिना का मुक्तस्वभाव वही पर्याय में भव को प्राप्त होता है। यही अद्भुत विशिष्टता है। जिसमें भव की गन्ध नहीं। वस्तु देखो तो जिसमें भव और राग की गन्ध नहीं। वही जीव पर्याय में भव को प्राप्त होता है। भव बिना की चीज़ अर्थात् मुक्त चीज भव को प्राप्त होती है, यही उसकी विशेषता, विस्मयता है। समझ में आया ? यह कर्म के कारण नहीं। कर्म तो संयोग कहा है। संयोग में स्वयं परिणमता है, स्वभाव देखे तो मुक्त है। स्वभाव देखो तो मुक्त है और एक ओर भव में भी कर्म के निमित्त में परिणमता है, ऐसा भी उसका स्वभाव है। समझ में आया ?

सर्व काल मुक्त ही है, ऐसा अनुभव में आता है। ऐसा है न ? यहाँ तो देखो न, यह बात ली है। जो वस्तु ऐसा अनुभव में आता है, ऐसा कहा। मुक्त... मुक्त... मुक्त...

मुक्त... द्रव्य अकेला। वीतराग स्वभावस्वरूप अकेला चैतन्य मुक्तस्वरूप है। **और कैसा है? 'एकतः जगत्त्रितयं स्फुरति'** एक ओर से देखो तो **जीव का स्वभाव, स्वपरज्ञायक है—ऐसा विचार करने पर,...** जीव का स्वभाव स्व-पर ज्ञायक है, लो! स्व-पर जाननेवाला है, स्व-परप्रकाशक है। जीव का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। **ऐसा विचार करने पर, समस्त ज्ञेयवस्तु की अतीत-अनागत-वर्तमान कालगोचर पर्यायें, एक समयमात्र काल में, ज्ञान में प्रतिबिम्बरूप हैं।** देखो! आत्मा का यह स्वभाव। इसका अभी बड़ा विवाद है। स्व-परज्ञायक का स्वभाव है, इसलिए पर्याय में स्व का और पर का तीन काल की पर्यायसहित द्रव्य का जिसमें प्रतिबिम्ब झलकता है। कहो! गत कल की पर्याय, वर्तमान अवस्था और भविष्य की अनन्त अवस्था। **'त्रितयम्'** है न? तीन काल की। समस्त ज्ञेय वस्तु की है न?

स्व-परज्ञायक **समस्त ज्ञेयवस्तु की अतीत-अनागत-वर्तमान कालगोचर पर्यायें,... 'स्फुरति'** इतने शब्द पड़े हैं। कहो! भगवान के ज्ञान में यह जीव समकित इस काल में पायेगा, ऐसा ज्ञान में आता होगा या नहीं पहला? तो निश्चय हो गया। इनकार करते हैं। आज उसमें आया है। भगवान ने कहीं कोई काल ऐसा नहीं समकित का देखा कि इस समय में समकित (होगा)। जब समकित पुरुषार्थ से पावे तो अर्धपुद्गल (परावर्तन) गिन डाले। बस! अर्धपुद्गल हो तब समकित पावे, ऐसा कुछ नहीं। अरे! उल्टा ऐसे से ऐसे मारा। वह लिखा ही करता है। उसमें आया है। एक समय का जो समकित का पुरुषार्थ करे, बस! अर्धपुद्गल कर डाले और मोक्ष नजदीक कर डाले। मोक्ष बहुत दूर था, उसे नजदीक कर डाले। ऐसा है, है उसमें, है उसमें है। समझ में आया? ऐसा लिखा है अन्दर। किसी ने साधारण पूछा हो उसमें से खींचकर बातें करता है।

'अर्धपुद्गल परावर्तन संसार काल रहना सम्यग्दर्शन को काल नहीं है। किन्तु तीन करणिया सम्यग्दर्शन के द्वारा अनन्त संसारकाल छेदकर अर्धपुद्गल परावर्तन मात्र कर दिया जाता है।' देखा? 'इससे यह सिद्ध होता है प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनरूप पर्याय प्राप्त करने के लिये कोई काल नियत नहीं है। अनन्त कालरूप संसारपर्याय छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तनमात्र रह जाती है। मुक्त पर्याय तो अनन्तानन्त काल पश्चात् पड़ी हुई थी।' देखो! वह नजदीक आ गयी। पण्डित पण्डित में अन्तर है न? 'मुक्त

पर्याय जो अनन्तानन्त काल पश्चात् पड़ी हुई थी, वह अब निकट आ जाती है।' ऐसी बात है, भाई! आहाहा! अब यह खोटे कुकर्म आगम से-तत्त्व से विरुद्ध करे उसका नहीं और यहाँ कहे, तुम निश्चय को (मुख्य करते हो)। बंसीधरजी ने ऐसा लिखा है, सब तुम ठग ऐसे जवाब देते हो, उसमें तुम्हारा सब खोटा है। वे तो देते नहीं। हम तो उनके साथ बात करना चाहते हैं। वे तो करते हैं और तुम सब वकालत करने निकले हो।

देखो! यह भी कैसा (लिखते हैं), देखा? सम्यग्दर्शन के काल में अर्धपुद्गल (परावर्तन) हो जाये, अनन्त पुद्गल परावर्तन थे, उसके अर्धपुद्गल (परावर्तन) हो जायें। अर्धपुद्गल हो, तब समकित पावे, ऐसा निश्चय नहीं। कहो, यह बात तो अभी बाहर में आयी। ऐसी बात तो अभी कहीं कोई कहता नहीं। अभी तो यह सब ऐसा कहते, ऐ.... छोटाभाई! सुनते या नहीं? कि अर्धपुद्गल (परावर्तन) संसार हो तो वह समकित पाता है।

मुमुक्षु : समकित का काल निश्चित नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चित ही नहीं न। क्योंकि तब तो निश्चित ही हो जाये। 'अब निकट आ जाती है। इस प्रकार नियतिवाद क्रमबद्धपर्याय एकान्त मत का खण्डन हो जाता है।' यह हिम्मतभाई का खण्ड-खण्ड कर डाला, लो! हिम्मतभाई को सामने रखो न। पण्डितों के सामने पण्डित। आहाहा! अरे! भगवान! गजब परन्तु भाई! 'और श्री अकलंकदेव...' भाई! 'काल अनियमात।' 'मोक्ष जाने का कोई काल नियत नहीं है इस सूत्र की पुष्टि हो जाती है।' उसकी पुष्टि हो जाती है। कितना उल्टा मारते हैं, कुछ मेल नहीं। और यह सब मान्य रखते हैं। कौन जाने क्या है? समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा का स्वभाव... दो बातें ली हैं। स्व-पर ज्ञायक है, देखो! **स्व-पर ज्ञायक है....** इसलिए **ऐसा विचार करने पर,...** भगवान आत्मा का स्व और पर को जानने का स्वभाव है, ऐसा विचार करने से जगत अर्थात् **समस्त ज्ञेयवस्तु की...** (पूरा) जगत। तीन काल, तीन लोक की जितनी चीज़ है वह। **'त्रितयं' अतीत-अनागत-वर्तमान कालगोचर पर्यायें, एक समयमात्र काल में, ज्ञान में प्रतिबिम्बरूप हैं।** ऐसा उसका स्वभाव है। एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक की जो

पर्याय जहाँ जैसी होनेवाली द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में वह सब भगवान के ज्ञान में प्रतिबिम्ब होता है, ऐसा उसका स्वभाव है। कहो, समझ में आया इसमें?

अर्धपुद्गल (परावर्तन) रहे तब मोक्ष हो तो फिर समकित हो तो फिर पुरुषार्थ रहता नहीं, ऐसा। पुरुषार्थ से समकित पावे, तब अर्धपुद्गल (परावर्तन) रहे और अनन्ताअनन्त काल बाद मुक्ति होने की नजदीक आ जाती है, परन्तु उसका अर्थ क्या? कौन जाने कहाँ किस प्रकार से बड़ी ढींग हिलाते हैं बड़ी। पूरे उल्टे के उल्टे मेरु चलाते हैं। आहाहा! और यह सुनते नहीं, सोनगढ़ियावाले। ऐसी-ऐसी दलील करते हैं, शास्त्र आधार देते हैं उल्टे। आहाहा! उसमें तेरी एक बात सच्ची है। सर्वज्ञ की पर्याय स्व-पर ज्ञायक एक बात। तो पर में सब जगत आया। बाकी रहा कोई? स्व और पर सब आ गया। और सब आने पर '**त्रितयं**' आ गया, काल भी सब आ गये। स्व-पर ज्ञायक, सभी द्रव्य और सभी तीन काल की पर्याय। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा तो इसका एक ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय का इतना धर्म है। अब ऐसे धर्म को भी अभी निर्णय करना न आवे और आड़ा-टेढ़ा हो और ऐसा हो और वैसा हो... मिथ्यात्व की दृष्टि का बहुत बलवानपना है। कहो, समझ में आया?

(ऐसा कहते हैं), मुक्ति बहुत दूर थी, (वह) नजदीक आ गयी। क्योंकि अनन्त पुद्गल परावर्तन भटकने के थे न? अनन्त पुद्गल परावर्तन भटकने के थे न? (वह) समकित पाया तो अर्धपुद्गल (परावर्तन) हो गया। वह अनन्तानन्त पुद्गल परावर्तन दूर मुक्ति थी, वह यहाँ नजदीक आ गयी। अरे! भाई! नजदीक ही है, सुन न! यह मुक्त -स्वरूप की दृष्टि जब की और एक समय में स्व-परज्ञायक जगत को तीन काल की पर्याय जाननेवाला स्वभाव है, ऐसा पर्याय का जिसने निर्णय किया, उसे द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि होने से उसे संसार रहता नहीं। संसार ही नहीं। एक, दो भव यह भव आदि हो। कहा न? थोड़ी अशुद्धता (हो)। वह ज्ञान का ज्ञेय रह जाती है इतना। जाननेवाला जाननेयोग्य इतना रह जाता है। सर्वज्ञ और वर्तमान उसकी दशा में नहीं और वह सब जानता है। उसकी दशा में है, ऐसा वह जानता है। और वे भी जानते हैं। समझ में आया? यह विवाद पूरा।

कोई कहे कि अर्धपुद्गल (परावर्तन) संसार रहे तब समकित काललब्धि होती

है। तब कोई कहे कि काललब्धि है ही नहीं। समझे न? पुरुषार्थ से होता है, यह सिद्ध करने को काललब्धि नहीं है। भाई! दोनों हैं, सुन न! एक समय में छहों द्रव्यों काललब्धि है, भाई! छहों द्रव्यों को समय-समय की पर्याय की प्राप्ति, उस समय की वह काललब्धि है। उस समय में टोडरमलजी का दृष्टान्त देते हैं। काललब्धि और भवितव्यता कोई वस्तु है ही नहीं है। परन्तु ठेठ ठिकाने काललब्धि कही, उसका क्या? किस प्रकार तू अर्थ करेगा? काललब्धि आदि पाँचों बोल हैं। एक समय में पाँचों हैं। अकेला नियत ही है, ऐसा नहीं है। उस समय का नियत है, उस समय का पुरुषार्थ है, उस समय का उस जाति का जो जड़-चैतन्य का स्वभाव वह वे होते हैं, भाव भी वह होता है, काल भी वह होता है और उस समय निमित्त जो सद्‌भाव, असद्‌भाव हो, तत्प्रमाण होता है। समझ में आया? गजब डहोण्युं परन्तु, भाई! ऐसा तो पाँच वर्ष या अमुक वर्ष पहले ऐसा नहीं सुनते थे।

(यहाँ) कहते हैं, एक ओर देखें तो एक समयमात्र में **जीव का स्वभाव, स्वपरज्ञायक है...** समस्त ज्ञेयवस्तु के तीन काल के पर्याय का एक समयमात्र काल में **ज्ञान में प्रतिबिम्बरूप हैं।** जब जगत की पर्याय भविष्य की होगी, तब यहाँ ज्ञात होगा, ऐसा है? कि एक समय काल में तीन काल-तीन लोक सब ज्ञात होता है? एक समयमात्र में, काल में वापस एक समयमात्र काल में, ऐसा। काल का कितना काल? एक समय। **एक समयमात्र काल में, ज्ञान में प्रतिबिम्बरूप हैं।** प्रतिबिम्ब शब्द क्यों कहा है? कि जो सामने चीज़ है, ऐसा यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा। वह बिम्ब है, यहाँ प्रतिबिम्बरूप हो जाता है। ऐसी ही पर्याय परिणमती है। ज्ञेय के कारण परिणमती है, ऐसा नहीं। प्रतिबिम्ब कहा न? बिम्ब है, इसलिए इस प्रमाण परिणमता है। वह परिणमता है तो स्वयं के कारण से, परन्तु जैसी द्रव्य की पर्याय भूतकाल की, वर्तमान, भविष्य की है... ओहोहो! ऐसे ज्ञान की पर्याय सबको स्व-पर को जाने, ऐसा ही उसका एक ओर से देखो तो स्वभाव है। इसलिए मानो कि स्व-पर सबमें ऐसे व्याप गया, ऐसा। समझ में आया?

'एकतः चित् चकास्ति' एक ओर से देखो तो इसमें समाहित यहीं का यहीं है।

वस्तु के स्वरूप सत्तामात्र का विचार करने पर,... वस्तु की सत्ता। अस्तित्व का यहाँ विचार करने से वस्तु के स्वरूप की सत्ता अर्थात् अस्तित्व वह **सत्तामात्र का विचार करने पर, शुद्धज्ञानमात्र शोभित होता है।** कहो, समझ में आया? अकेला शुद्ध ज्ञानमात्र शोभित होता है, उसमें पर की अपेक्षा नहीं, ऐसा कहना है। एक ओर देखे तो स्व-पर सब जाने, एक ओर अपनी सत्ता में अकेले चैतन्य में है, ऐसा है। भारी अद्‌भुत! यह अद्‌भुतात अद्‌भुत कहते हैं। आहाहा!

साध्य-साधक भाव की व्याख्या है न? अनेकान्त। उपाय-उपेय, यह उपाय-उपेय की व्याख्या है। ओहोहो! एक ओर '**एकतः चित् चकास्ति**' वह था न? कि '**एकतः जगत्रितयं**' '**एकतः जगत्रितयं**' ऐसा। ऐसा हुआ न? एक ओर देखे तो जगत का तीन काल का ज्ञान है, एक ओर देखे तो शुद्ध चेतनामात्र अकेला है यहाँ। अकेला ज्ञानमय स्वयं ही है, ऐसा। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि व्यवहारमात्र से ज्ञान, समस्त ज्ञेय को जानता है;.... देखो! पर को जाने, ऐसा कहना वह व्यवहारमात्र है। अर्थात् कि उसमें तन्मय होता नहीं। तीन काल-तीन लोक की पर्याय ज्ञान जाने, परन्तु उसके साथ एक है नहीं, इतना यहाँ सिद्ध करना है। **व्यवहारमात्र से ज्ञान,....** वापस व्यवहारमात्र क्या? पर को जानना, वह व्यवहार है इसलिए खोटा है, ऐसा नहीं। व्यवहार अभूतार्थ है, झूठा है, इसलिए पर को जानना, वह खोटा है—ऐसा नहीं। पर में तन्मय होता है, ऐसा नहीं है। पर का जानना तो सच्चा है, स्व-परज्ञायक तो उसका स्वभाव है। परन्तु पर को ऐसे जानता है, इसलिए तन्मय होकर जानता है, ऐसा कहना वह खोटा है। जानना नहीं, ऐसा नहीं। उसे स्पर्श किये बिना, उसके आश्रय बिना स्व-पर के ज्ञानरूप परिणमना, ऐसा तो चैतन्य का स्वभाव-गुण है, स्वभाव गुण है। वह चेतनामात्र में समा जाता है और ऐसे जाये तो ऐसे सब मानो पर को जानता है, ऐसा भी उसमें दिखता है। **निश्चय से नहीं जानता है,...** लो! है? यह लोग कहते हैं कि निश्चय से सर्वज्ञ नहीं। तुम जो सर्वज्ञ के कारण से क्रमबद्ध सिद्ध करने जाते हो तो (सर्वज्ञ) निश्चय से जानते ही नहीं। परन्तु निश्चय-व्यवहार का एक ही स्व-पर ज्ञायक का स्वभाव एकरूप अपना यहाँ है, ऐसा कहना है। सत्तामात्र एकरूप यहाँ है और ऐसे जो कहना है कि उसे जानता है, उतना व्यवहार है,

ऐसा कहना है। समझ में आया ? निश्चय व्यवहार का जो ज्ञान अपना एकरूप है, उसे जानता है। यह जानता है वह निश्चय है, ऐसे जानता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है, इतनी बात। समझ में आया ?

परसम्बन्धी की तीन काल की पर्याय का यहाँ ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? पर अपेक्षा आयी, इसलिए व्यवहार कहा। इस अपेक्षा से तन्मय हुए बिना अपने में तन्मय होकर जानता है। जानता है ऐसे पर को, ऐसा कहने में आता है। ज्ञेय-ज्ञायक-अद्वैत और ज्ञेय-ज्ञायक-द्वैत—दो नय लिये हैं न ? वह यह आचार्य अमृतचन्द्राचार्य ने लिये। व्यवहारमात्र से ज्ञान सब ज्ञेयों को जानता है।

कोई कहता है, देखो! ऊपर कहा था न ? यह कहा है, वह सच्चा कहा है। और वापस व्यवहार कर दिया अर्थात् ? उसमें एकमेक होकर जानता नहीं, इस अपेक्षा से व्यवहार कहा है। बहुत विवाद अभी, भाई! विवाद... विवाद.. विवाद... व्यवहार को झूठा ठहराओ। ऐसे निश्चय-व्यवहार का बहुत आया है, हों! वह कलकत्तावाले ने लिखा था न ? कि हम निश्चय-व्यवहार मानते हैं, इसलिए तुम्हारे तो ऐसा कहते थे कि सापेक्ष दोनों मानो तो अपने दूसरे विवादों का वहाँ जाकर समाधान करेंगे। परन्तु वह सब खोटी वकालत करते हैं। निश्चय में व्यवहार की अपेक्षा कहाँ आयी ? व्यवहार को तो तुम खोटा सिद्ध करते हो, अमुक करते हो, ढींकणा (करते हो)। परन्तु खोटा भी है न ? परन्तु सबको उड़ाया है खोटा कहकर, यह भाई ने लालबहादुर! कहो, समझ में आया ?

अपना स्वरूपमात्र है.... लो! क्या कहते हैं ? देखो! व्यवहार से पर को जानता है, इसका अर्थ यह है कि पर में व्याप्य-व्यापक होकर जानता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। अपना व्यापकपना पसरकर पर की अवस्था को व्याप्य करता है, ऐसा नहीं है। देखो! **निश्चय से नहीं जानता है,....** अपना स्वरूपमात्र है, क्योंकि ज्ञेय के साथ व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है, यह सिद्धान्त सिद्ध किया, लो! तन्मय एकमेक नहीं। व्याप्य-व्यापक अर्थात् वह अवस्था हो गयी है सब चीज़ की और यहाँ अवस्था हो गयी है और अवस्था वह आत्मा की और वह (ज्ञेय) अवस्था, ऐसा नहीं है। उस सम्बन्धी का और

अपने सम्बन्धी का ज्ञान अपना उसमें वह व्याप्य और स्वयं व्यापक है। उसमें व्याप्य और यह व्यापक है, ऐसा नहीं। क्या कहा, समझ में आया? व्याप्य-व्यापक कहो या कर्ता-कर्म कहो। वह तो एकाकार है। व्यापक स्वयं और स्वयं व्यापक होकर व्याप्य-पसरकर अपनी पर्याय में स्व-पर का पूरा है, उसे कर्म को जानता है, वह कर्म अपना कार्य है, कर्ता का वह कर्म है। कर्ता का वह कार्य है, ऐसा नहीं है। समझ में आया इसमें?

निश्चय से जानता नहीं अर्थात्? **अपना स्वरूपमात्र है क्योंकि ज्ञेय के साथ,...** जाननेयोग्य जो परवस्तु है, उसके साथ। ऐसे पर के साथ, हों! समझ में आया? **व्याप्य-व्यापकरूप नहीं है।** दूसरे के साथ पसरकर, एकरूप हो नहीं गया, ऐसा चैतन्य का स्वतः अद्भुतात अद्भुत आश्चर्य है। पर को जानने पर भी पर को व्याप्य करे नहीं। समझ में आया? पर को जानने पर भी अपने स्वरूपमात्र में रहे। लोकालोक को स्पर्शे नहीं, तथापि लोकालोक के ज्ञान की अवस्थारूप से व्याप्य होकर परिणमे। समझ में आया इसमें? यह तो साध्य-साधक के बोल ऊँचे-बारीक हैं। एकदम तत्त्व का माल रचा है। पर की अपेक्षा इसमें दूसरी है ही नहीं। लो! यह २७४ हुआ, ग्यारहवाँ श्लोक हुआ, ग्यारहवाँ।

इसके स्वरूप की इन सबसे उत्कृष्टता, उत्कृष्ट अद्भुतता यह है कि, एक ओर विकाररूप हो, एक ओर शान्त रहे। एक ओर भव दिखे, एक ओर मुक्ति दिखे। एक ओर लोकालोक और सबको जाने, ऐसा दिखे और एक ओर स्वरूप में रहा हुआ दिखाई दे। यह छह बोल लिये हैं। समझ में आया? यह छहों उसका स्वरूप अपना अपने में है, पर के कारण नहीं। यह पर को जानता है, वह पर के कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। पर को जानता है, वह स्वयं के कारण अपने में उस पर्यायरूप परिणमता है। लोकालोक सब ज्ञात होता है। ज्ञायक अकेला चैतन्यस्वरूप, अकेला हूँ... अकेला हूँ... अकेला हूँ... दूसरा कोई है ही नहीं।

कलश - २७५

(मालिनी)

जयति सहजतेजः पुंजमज्जत्त्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलंभः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ।।१२-२७५।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'एषः चिच्चमत्कारः जयति' अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र जीववस्तु, सर्व काल में जयवन्त प्रवर्तो। भावार्थ इस प्रकार है कि साक्षात् उपादेय है। कैसी है? 'सहजतेजः पुंजमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पः' [सहज] द्रव्य के स्वरूपभूत [तेज:पुंज] केवलज्ञान में, [मज्जत्] ज्ञेयरूप से मग्न जो [त्रिलोकी] समस्त ज्ञेयवस्तु, उसके कारण [स्खलत्] उत्पन्न हुआ है [अखिलविकल्पः] अनेक प्रकार पर्यायभेद जिसमें, ऐसी है ज्ञानमात्र जीववस्तु। 'अपि' तो भी 'एकः एव स्वरूपः' एक ज्ञानमात्र जीववस्तु है। और कैसी है? 'स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्न-तत्त्वोपलंभः' [स्वरस] चेतनास्वरूप की [विसर] अनन्त शक्ति, उससे [पूर्ण] समग्र है, [अच्छिन्न] अनन्त काल तक शाश्वत है, ऐसे [तत्त्व] जीववस्तुस्वरूप की [उपलम्भः] हुई है प्राप्ति जिसको—ऐसी है। और कैसी है? 'प्रसभनियमितार्चिः' [प्रसभ] ज्ञानावरणकर्म का विनाश होने पर, प्रगट हुआ है [नियमित] जितना था, उतना [अर्चिः] केवलज्ञानस्वरूप जिसका, ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि परमात्मा, साक्षात् निरावरण है।।१२-२७५।।

कलश - २७५ पर प्रवचन

अब साध्य। अन्त में केवलज्ञान की बात करते हैं, लो! यह साध्य-साधक की व्याख्या बहुत की, भिन्न-भिन्न शब्द से बात की है। वस्तु की स्वतन्त्रता उसकी पर्याय की, उसके द्रव्य की बात की। अब केवलज्ञान। ऐसा साधकपना प्रगट होने पर उसे साध्य जो केवलदशा, सिद्धदशा हो, केवलदशा हो। ऐसा साधकपना प्रगटे, ऐसा जाने,

उसे सिद्धदशा हुए बिना रहती नहीं। समझ में आया? केवलज्ञान, केवलज्ञान लेना है न यहाँ? 'मालिनी' अलग-अलग शब्द हैं।

जयति सहजतेजः पुंजमज्जत्त्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलंभः
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ।।१२-२७५।।

लो! अन्तिम चित्चमत्कार, ऐसा करके बड़ा मांगलिक किया है। कहते हैं '**एषः चिच्चमत्कारः जयति**' लो! पहला शब्द यह आया। अन्तिम का पहला। अहो! भगवान आत्मा अपने चैतन्यस्वरूप का साधकपना शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र को प्रगट करके अल्प रागादि हों, उन्हें जानता हुआ, भव के भाव को जानता हुआ, निर्मल पर्याय के अंशपने भी परिणमता हुआ, त्रिकाल एकरूप रहता हुआ, ऐसे साधकरूप से परिणमते **'एषः चिच्चमत्कारः जयति' अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र जीववस्तु, सर्व काल में जयवन्त प्रवर्तो।** लो! ऐसा जो भगवान आत्मा **अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र जीववस्तु,...** ऐसा वापस। कैसी वस्तु है? **अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानमात्र जीववस्तु,...** ज्ञान में, जीव चैतन्य प्रत्यक्ष ज्ञान में आवे, ऐसी अनुभव वस्तु है वह। समझ में आया?

'**एषः**' की व्याख्या। और '**चिच्चमत्कारः**' '**एषः**' अर्थात् **अनुभव प्रत्यक्ष... 'चिच्चमत्कारः' ज्ञानमात्र जीववस्तु,... 'जयति'** अर्थात् **सर्व काल में जयवन्त प्रवर्तो।** ऐसे तीन के अर्थ ऐसे किये। मांगलिक किया, मांगलिक, महा मांगलिक! कलशकार ने शुरुआत (में) नमः समयसाराय में मांगलिक किया था। मध्य में संवर में मांगलिक किया था कि शुद्धनय एक ही आदरणीय है, बाकी सब हेय है। ग्रन्थ का निचोड़ आया था न? परम रसतोष। एक शुद्धनय ग्रहे मोक्षे, शुद्धनय त्यागे बंध है, शुद्धनय ग्रहे मोक्ष, यह संवर में कहा था। महा सार, यह सार महामांगलिक पूर्ण करते हुए ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए करते हैं।

'**एषः**' '**एषः**' प्रत्यक्ष अनुभवमात्र आत्मा, ऐसा। '**एषः**' यह ज्ञान के अनुभवमात्र '**एषः**' अर्थात् इस ज्ञान के अनुभवमात्र। अनुभवमात्र, अनुभव-प्रत्यक्ष '**एषः**' का अर्थ

है। **'चिच्चमत्कार:' ज्ञानमात्र जीववस्तु,...** ऐसा। **'चिच्चमत्कार:'** जिसका ज्ञानमात्र चमत्कार है। अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... उसका यह चमत्कार है। लो! यह चमत्कार! तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसा उसमें चमत्कार है। ऐसी जो वस्तु। ज्ञानमात्र जीववस्तु एक ही बात। वस्तु जो है ज्ञानमात्र अकेली वस्तु। अनन्त गुण भले हों। अकेली ज्ञानपुंज वस्तु, ज्ञानमात्र आत्मा रागादि, विकल्पादि भवरहित अकेली ज्ञानमात्र वस्तु।

सर्व काल में **'जयति'** की व्याख्या है। **सर्व काल में जयवन्त प्रवर्तो।** यह प्रगट हुई दशा ऐसी की ऐसी सदा रहो, सदा रहो, विजय होओ, विजय... विजय। यह आत्मा की विजय हो गयी। जैसा स्व-परप्रकाशक ज्ञानमात्र स्वरूप था, उसे प्रत्यक्ष किया। प्रत्यक्ष करके पूर्ण दशा हुई तो प्रत्यक्ष हो गया, ज्ञान में पूरा आत्मा प्रत्यक्ष हो गया। ऐसा **जयवन्त प्रवर्तो। सर्व काल में जयवन्त प्रवर्तो।**

भावार्थ इस प्रकार है कि साक्षात् उपादेय है। ऐसा वापस इसका अर्थ किया। इस प्रकार से, **साक्षात् उपादेय है।** यह वस्तु ही अकेली अखण्डानन्द ज्ञान, वही आदरणीय है। समझ में आया? **कैसी है? 'सहजतेज: पुंजमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिल-विकल्प:' द्रव्य के स्वरूपभूत...** द्रव्य का स्वरूपभूत **'सहज'** अर्थात् द्रव्य का स्वभाव भाव। **'तेज:पुञ्ज' केवलज्ञान में.... 'मज्जत्' ज्ञेयरूप से मग्न जो...** देखा? भगवान आत्मा का स्वभाव जो केवलज्ञान द्रव्य के स्वरूपभूत तेज पुंज केवलज्ञान—अकेला ज्ञान। **'मज्जत्' ज्ञेयरूप से मग्न जो...** सभी ज्ञेय उसमें मग्न हो गये।

समस्त ज्ञेयवस्तु उसके कारण... ज्ञान में सब ज्ञेय वस्तु मग्न हो गयी। **उसके कारण... 'स्खलत्' उत्पन्न हुआ है... 'अखिलविकल्प:' अनेक प्रकार पर्यायभेद जिसमें, ऐसी है....** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपने ज्ञानमात्र वस्तु से अकेला अनुभव से जहाँ पर्याय में पूर्ण प्रगट हुई, उसमें समस्त ज्ञेयवस्तु ज्ञान में प्रगट हुई है, ज्ञेयरूप से पर्याय में मग्न हो गयी। ऐसा जो ज्ञान उत्पन्न हुआ। **अनेक प्रकार पर्यायभेद जिसमें...** पर्याय के भेद अनेक प्रकार से हैं। समझ में आया? **ऐसी है ज्ञानमात्र जीववस्तु।** अनेक भेद होने पर भी ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसी है, तो भी एक है—ऐसा कहेंगे।

पर्याय में तीन काल, तीन लोक एक समय में भेदरूप, अनेकरूप से, अनन्तरूप से परिणमन हैं। तथापि '**अपि**' **तो भी** '**एकः एव स्वरूपः**' **एक ज्ञानमात्र जीववस्तु है।** वस्तु तो एकरूप है। वह तो अनन्त पर्यायरूप भले भेद है परन्तु वस्तु तो एकरूप है। समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त केवली और अनन्त निगोद सब ज्ञात होता है। ऐसी पर्याय में अनन्तपना होने पर भी ज्ञानरूप तो एक है। ओहोहो! एक में अनेक और अनेक में यह एक। यह किसकी बात चलती है? आत्मा की।

कहते हैं कि जिसका '**तेजः पुञ्ज**' चैतन्य का पुंज भगवान। है न? '**तेजः पुञ्ज**' का अर्थ ही केवलज्ञान किया। उसमें ज्ञेय सब मग्न हो गये, मग्न-डूब गये हैं सब। लोकालोक—तीन काल-तीन लोक सब डूब गये हैं, ज्ञान में मग्न हो गये हैं। यह टीका भी उनकी है न? २०० गाथा की। अमृतचन्द्राचार्य की प्रवचनसार की। गजब परन्तु! अमृतचन्द्राचार्य की टीका अकेले अध्यात्मरस से भरपूर!

कहते हैं, '**स्खलत्**', '**स्खलत्**' अर्थात्? अनेकरूप हुई है, समस्त ज्ञेयरूप हुई है, ऐसा। '**स्खलत्**' है न? '**स्खलत्**' एक वस्तु अनेक पर्यायरूप हुई है, पर्यायरूप हुई है, ऐसा। '**स्खलत्**' अर्थात् स्खलना हुई, ऐसा नहीं। वस्तु ज्ञानस्वरूप एक समय का अनेक तीन काल, तीन लोक की पर्यायरूप हुई है, ऐसा। पर्यायरूप से उत्पन्न हुई है। समझ में आया? यह पर्याय की बात है, हों! यह साध्य प्रगट हुआ पूरा। साधकपने के साधन को साध्य प्रगट हुआ पूरा।

अनेक प्रकार पर्यायभेद जिसमें ऐसी है ज्ञानमात्र जीववस्तु। '**अपि**' **तो भी...** ऐसा कहते हैं न वापस? ऐसे एक समय में तीन काल-तीन लोक पर्याय में अनेकरूप से ज्ञात हुए और अनेकरूप से ज्ञान परिणमित हुआ तथापि एक समय का ज्ञान तो अखण्ड है, खण्ड-खण्ड हुआ नहीं। '**एकः एव स्वरूपः**' **एक ज्ञानमात्र जीववस्तु है।** समझ में आया? '**एकः एव स्वरूपः**' ही है, हों! दूसरे पद में है। '**अपि एकः एव स्वरूपः**' अनन्त-अनन्त केवलज्ञानियों और अनन्त-अनन्त निगोद के जीवों को और तीन काल-तीन लोक की पर्याय को समय में जानता अनेकरूप से परिणमा है, तथापि ज्ञानरूप से तो वह एक ही है। ओहोहो! अनन्त-अनन्तरूप से परिणमने पर भी ज्ञानपना तो एकपना

है, उसमें ज्ञानपने में कोई खण्ड है नहीं। समझ में आया? यह पर्याय की बात है, हों! द्रव्य तो अखण्ड है, उसकी बात कहाँ? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा एक समय का आत्मा तीन काल–तीन लोक के ज्ञान (में) ज्ञेय मग्न हो गये, इससे मानो अनन्तरूप हुआ तथापि एकरूप रहा है, अनन्तरूप हुआ तो भी एकरूप रहा है। अज्ञानी को तो बैठता नहीं। एक व्यक्ति कहता है, ऐसे गाडा के गाडा कहाँ भरे होंगे ज्ञान की पर्याय में? अरे! भगवान! बापू! भाई! जिसका स्वभाव जानना है, इसे माप और हद क्या होगी? और उस छोटे काल में—छोटे में छोटे काल में सब एकरूप रहकर अनन्त न जाने तो उसका पर्याय धर्म पूरा कैसे कहलाये? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विस्मयता का विस्मय है यह तो। यह वस्तु ऐसी है। आहाहा! एक परमाणु चौदह ब्रह्माण्ड में चला जाये, देखो! यह जड़ की भी गति की कैसी विस्मयता है। किसी की सहायता बिना, हों! काल, करण वह तो निमित्त–नैमित्तिक से है। ...परन्तु चैतन्य नहीं न? चैतन्य नहीं परन्तु वस्तु है या नहीं? वस्तु है या नहीं? एक परमाणु सातवें नरक में नीचे हो तो सिद्ध ऊपर चला जाये, अपने आप एक समय में गति करके चले। कहो, अब यह भी विस्मय नहीं? यह तो एक समय तीन काल–तीन लोक को जाने, यहाँ तो जाने। इसमें गति की विशेषता नहीं। आहाहा! तीन काल की जितनी पर्यायें हो गयी भूत में, वर्तमान में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त द्रव्य की, भविष्य में अनन्त... अनन्त.. अनन्त द्रव्य की होगी, सब एक समय में (ज्ञात हो जाती है)। ज्ञान मग्न हो गया है। समझ में आया? आहाहा!

एक स्वरूप एक ज्ञानमात्र जीववस्तु ऐसी। **और कैसी है? 'स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्न-तत्त्वोपलंभः' 'स्वरस' चेतनास्वरूप की... 'स्वरस'** अर्थात् चेतना शक्ति—चेतनास्वरूप पर्याय, हों! यहाँ पर्याय की शक्ति है। **'स्वरस'** अपनी चेतना पर्याय की स्वरस शक्ति। **'विसर' अनन्त शक्ति... 'विसर'** अर्थात् अनन्त–अनन्त, ऐसा। **'विसर'** अर्थात् अनन्त–अनन्त जिसकी शक्ति। **'विसर' 'पूर्ण'** है। जिसके ज्ञान की एक समय की पर्याय साध्य

जो प्रगट हुआ साधक का फल, ऐसा ज्ञान एक समय का अनन्त-अनन्त को जानता हुआ एकरूप रहता हुआ **अनन्त शक्ति, उससे समग्र है,...** पूरा है। अनन्त शक्ति से एक समय का ज्ञान पूरा है। समझ में आया? **'अच्छिन्न' अनन्त काल तक शाश्वत् है,...** लो! वह अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहेगा, कहते हैं। **'अच्छिन्न'** वह धारा छूटे ही नहीं, एक समय की केवलज्ञानदशा। आहाहा!

मुमुक्षु : नमूना देखना हो तो किस प्रकार देखना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नमूना देखना हो तो ज्ञान में देखे एक समय में। ज्ञान की पर्याय एक समय में अनन्त क्षेत्र और अनन्त काल को अभी ख्याल में ले लेती है। कहो! यह क्षेत्र की हद नहीं, यह ख्याल नहीं आता? कितने ख्याल में आते हैं? कितने काल में? एक सेकेण्ड में। सेकेण्ड में तो असंख्य समय है। अनन्त इतना असंख्य समय में आया तो एक समय में अनन्त हो गया। समझ में आया या नहीं? तीन काल ख्याल में आ गये कि ऐसा है, ऐसा है। आदिरहित, अन्तरहित अन्तरहित, नाशरहित है। ऐसा ख्याल में आ गया या नहीं? रागसहित सेकेण्ड काल में ख्याल में आता है या नहीं? रागरहित एक समय में परिणमे, ऐसा उसका स्वभाव है। अनुमान होता है या नहीं? होता है, परन्तु उसका उसे माहात्म्य बैठता नहीं। उसे होता तो है। है... है... यह है, काल है, अनन्त द्रव्य है। उनके एक-एक के अनन्त-अनन्त गुण हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण। ऐसा विकल्पवाली ज्ञान की पर्याय असंख्य समय में वह कार्य करती है, ऐसा ज्ञात होता है। बस! उसमें से राग निकाल डालो तो वह असंख्य काल चला जाता है और सबको जानने का एक समय रहता है। समझ में आया?

ऐसी वस्तु **'अच्छिन्न' अनन्त काल तक शाश्वत् है, ऐसे जीववस्तुस्वरूप की... 'उपलम्भः' हुई है प्राप्ति जिसको....** लो! ऐसी एक समय की पर्याय प्राप्ति हुई जिसे साध्य और केवलज्ञान। आहाहा! समझ में आया? यह उसे साध्य-साधक का फल कहा जाता है। उसे केवलज्ञान कहने में आवे, ऐसी एक पर्याय के इतने माहात्म्य को वर्णन करते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ८, शुक्रवार, दिनांक-१४-०१-१९६६, कलश-२७५, २७६, प्रवचन-२९५

'साध्य-साधक अधिकार' बारहवाँ कलश चलता है। क्या अधिकार है यह? देखो! जिसमें आत्मा को... यह आत्मा है, आत्मा, यह अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द सम्पन्न तत्त्व है। यह आत्मा। यह अनन्त बेहद ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव का तत्त्व आत्मा है, उसकी जिसने अन्तर्मुख दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता साधकरूप से की है। समझ में आया? वस्तु जो है महासागर आनन्द का, ज्ञान का पूर्ण स्वरूप, ऐसा जो आत्मपदार्थ, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि, अन्तर्मुख ज्ञान और अन्तर्मुख रमणता, ऐसा साधकपना जिसने प्रगट किया है, उसे साध्य अर्थात् केवलज्ञान प्रगट पर्याय में प्रगट / प्राप्त होता है। समझ में आया?

उपाय और उपेय स्वयं है, ऐसा कहते हैं। वस्तु ही स्वयं अनन्त ज्ञान, शान्ति से भरपूर पदार्थ है। उसकी अन्तर में-दृष्टि में, प्राप्ति होना, वही मूल चीज़ है। समझ में आया? दृष्टि में वह चीज़ वस्तु जो अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी दृष्टि में प्राप्त होना, वही अपूर्व और उसी का नाम साधकपना कहलाता है। ऐसा साधकपना प्रगट होने पर क्रम से साधकपूर्ण हो, वहाँ उसे साध्य केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य की पूर्णता प्रगट होती है। उसे साध्य कहो या उसे मोक्ष कहो, उन दोनों दशारूप आत्मा ही होता है। समझ में आया? दोनों दशारूप—साधकरूप या साध्यरूप, उसमें परवस्तु का या पुण्य-पाप के विकल्प का लगाव सम्बन्ध कुछ नहीं। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा... है न? नाम भी क्या है? 'साध्य-साधक अधिकार' अर्थात् कि साधक और साध्य यह भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन है, वस्तु पूर्णानन्द अनाकुल शान्त और आनन्द और ज्ञान का सत्त्व अकेला है। उसे अन्तर दृष्टि में, ध्येय में पकड़कर और जिसने उसका ज्ञान किया और उसमें जिसे लीनता हुई, उसे साधक आत्मा की निर्मल परिणति द्वारा आत्मा स्वयं से साधक होता है। समझ में आया? और स्वयं भी आत्मा पूर्ण शुद्ध शान्ति और ज्ञान और आनन्द द्वारा होता है, वह साध्य है, वह

भी स्वयं ही साध्यरूप से परिणमता है। समझ में आया? उसमें शरीर, संहनन या पुण्य-पाप के विकल्प कुछ उसे मदद करनेवाले, सहायता करनेवाले हैं नहीं। समझ में आया इसमें?

देखो! क्या कहा **'स्वरस' चेतनास्वरूप की अनन्त शक्ति, उससे समग्र है, अनन्त काल तक शाश्वत् है, ऐसे जीववस्तुस्वरूप की हुई है प्राप्ति जिसको...** यहाँ पर्याय की बात है, हों! जीव भगवान आत्मा बेहद (सामर्थ्यवन्त पदार्थ है) परन्तु उस वस्तु के स्वभाव की महिमा और उसकी शक्ति का कितना माप है, वह जब तक इसे दृष्टि में न आवे तो इतना आत्मा इस क्षेत्र में रहा, वह कितना और उसका कितना माहात्म्य है? कि अपार माहात्म्य है। अन्दर उसका अनन्त-अनन्त बेहद स्वभाव है। उसकी पर्याय में बेहद स्वभाव की प्राप्ति होना, इसका नाम जीववस्तु की प्राप्ति कही जाती है। समझ में आया?

ऐसे जीववस्तुस्वरूप की हुई है प्राप्ति जिसको—ऐसी है। और कैसी है? ज्ञानावरणकर्म का विनाश होने पर, प्रगट हुआ है... आत्मा में निरावरण ऐसा चैतन्यस्वरूप ज्ञानज्योति सूर्य ध्रुव एक स्वभावरूप अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड, (उसमें) अन्तर में एकाग्र होने से जिसे ज्ञानावरणीय कर्म का नाश हो जाता है। समझ में आया? उसे ज्ञानावरणीय कर्म का **विनाश होने पर, प्रगट हुआ है...** प्रगट हुआ है। कौन? **'नियमित'** अर्थ करनेवाले की भाषा देखो! **जितना था, उतना... 'अर्चिः' केवलज्ञानस्वरूप जिसका, ऐसी है।** जैसी ज्ञानस्वरूप से अन्दर परिपूर्ण वस्तु है, वैसी ही जिसकी पर्याय में, दशा में केवलज्ञान की वही शक्ति **'अर्चिः'** परिपूर्ण प्राप्त होती है। कहो, समझ में आया? शशिभाई! यह गजब, भाई! इतना आत्मा, उसे दुनिया की कीमत करना आती है। इसकी कीमत यह और इसकी कीमत यह और इसकी कीमत यह, परन्तु तेरी कीमत कितनी, इसकी उसे खबर नहीं। अनन्त काल से जो इसका भटकना हुआ हो तो उस वस्तु के अनन्त गुण के माहात्म्य की दृष्टि बिना (हुआ है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक ही कारण से?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही कारण है। भगवान महान चैतन्य पदार्थ ध्रुव बेहद

अचिन्त्य अनन्त स्वभाव का भरपूर आत्मा है। एक समय की क्षणिक पर्याय लक्ष्य में न लो तो वह वस्तु बेहद चैतन्यस्वभाव से भरपूर पदार्थ है। उसकी दृष्टि, दृष्टि भले पर्याय हो परन्तु उस दृष्टि का विषय जो अमाप... अमाप ध्रुव, उसे पकड़े बिना उसकी अपूर्व दृष्टि और शान्ति कभी प्रगट नहीं होगी। उसका एक ही यह उपाय है। उसे जिसने प्राप्त किया, उसने जैन धर्म को प्राप्त किया। समझ में आया? जिनधर्म को प्राप्त किया अर्थात्? जिन अर्थात् वीतरागी परमानन्द स्वरूप को दृष्टि में लेकर 'वस्तु यह' ऐसे प्राप्त प्रतीति ज्ञान में की, उसने जैनधर्म की प्राप्ति की। जैनधर्म अर्थात् कि वस्तु की प्राप्ति। यहाँ तो शब्द प्रयोग किया है। यह वस्तु का स्वरूप ही इतना और ऐसा है। आहाहा!

महान पदार्थ चैतन्य भगवान, जिसकी खान में अनन्त-अनन्त सिद्ध परमात्मा विराजते हैं, ऐसे आत्मा है। आहाहा! जिसके गर्भ में, जिसके पेट में अनन्त सिद्ध पकें, ऐसा वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा चैतन्य ध्रुव सत्त्व तत्त्व बेहद शक्ति से भरपूर, उसे जिसने अन्तर दृष्टि में ऐसा आत्मा प्राप्त किया, उसने साधकपना प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करने का उपाय उसे हाथ आया। समझ में आया? यह क्या कहा जाता है? उपाय हाथ आया। किसका? केवलज्ञान पूर्ण दशा प्राप्त करने का, वीतराग परमात्मा पूर्ण होने का।

जिनेश्वरदेव पूर्ण जो हुए, उनकी पूर्ण पर्याय स्वयं की प्राप्त करने का। पूर्ण वस्तु की दृष्टि की और दृष्टि में लब्ध आत्मा को प्राप्त किया, उसने पूर्ण पर्याय प्राप्त करने का उपाय कर लिया। उस उपाय से पूर्ण पर्याय जितनी थी शक्ति **'नियमित' जितना था, उतना...** प्रगट हो गया। जितनी अन्दर शक्ति थी बेहद ज्ञान की, उतनी पर्याय में बेहद ज्ञान प्रगट हो गया। समझ में आया? बात ही दूसरी मानो यह तो किसकी होगी? वीतराग की होगी? जैन परमेश्वर का ऐसा मार्ग होगा? परन्तु दूसरा अन्दर चले तो उसका मार्ग कहे, लोग ऐसा माने।

मुमुक्षु : फोटो खींचते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : फोटो खींचे हाँ, फोटो खींचे अन्दर पर्याय में। आहाहा! समझ में आया?

यह चारों ओर से दृष्टि मोड़कर स्वभाव में मिला देना। आहाहा! उससे जो प्रगट हुआ साधकभाव उससे प्रगट हुआ जो पूर्ण केवलज्ञान। यह '**नियमित**' ऐसा कहा है। भाषा कैसी की है! वास्तव में तो '**नियमित**' अर्थात् जैसा निश्चयस्वरूप है, वैसा ही पर्याय में निश्चय प्रगट हो गया, ऐसा कहना है। आचार्य को ऐसा कहना है, जैसा उसका पूर्ण स्वरूप ज्ञान और आनन्द आदि शक्ति का पूर्ण (स्वरूप) है, इतना जिसकी पर्याय में—अवस्था में पूर्ण स्वरूप ऐसा प्रगट हो गया। उसे साध्य दशा अथवा मोक्षदशा अथवा उपाय का उपेय—फल दशा कहा जाता है। बहुत संक्षिप्त बात। महान जिसका फल। समझ में आया? कहते हैं कि यह आठों कर्मों का नाश होकर अथवा चार कर्म आदि का नाश होकर... यह तो चार कर्म नाश हों तो भी मोक्ष ही है।

जितना था, उतना केवलज्ञानस्वरूप जिसका, ऐसी है। प्रगट हुआ है। कैसा? जैसा ज्ञानस्वरूप अन्दर है, वैसा ही अन्तर की दृष्टि एकाग्र होने से जैसा सामर्थ्य शक्ति में पर्याय का है, वैसा ही पर्याय में प्रगट हो गया। शक्ति में जो अनन्तता है, वैसी ही पर्याय में केवलज्ञान की अनन्तता प्रगट हो गयी। समझ में आया? यहाँ तो साधक और साध्य, दोनों बात इसमें समाहित कर दी।

भावार्थ इस प्रकार है कि परमात्मा, साक्षात् निरावरण है। वस्तु जिसमें से मोक्षदशा प्रगट होती है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें एकाग्र होने पर परमात्मा स्वयं निरावरणरूप से परिणम जाता है। क्या समझ में आया इसमें? यह बारहवाँ श्लोक हुआ। पहला तो बहुत आया था, पहला आया था न?

मुमुक्षु : जितना था उतना या...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; जितनी थी, स्वभाव की शक्ति, उतनी पर्याय में पूर्ण प्रगटी, ऐसा। सब ऐसा पूर्ण प्रगट हुआ। अधूरा नहीं रहा, इसका नाम पूर्ण प्रगट हुआ, ऐसा। शक्ति अनन्त बेहद ज्ञान था इतना बेहद ज्ञान पर्याय में (प्रगट हुआ)। भले एक समय की पर्याय जाये और दूसरी आवे परन्तु वह सब शक्ति पूर्ण थी, वैसी ही आती है। समझ में आया? ऐसी एक समय की पर्याय... वह है... जितना था, उसका अर्थ यह निश्चय में जितना सत्त्व था पूर्ण श्रद्धा का, ऐसा पूर्ण पर्याय में प्रगट हो गया। इसका नाम

सिद्धदशा, मोक्षदशा और केवलज्ञान दशा कहते हैं। वह केवलज्ञान और मोक्षदशा वह आत्मा अन्दर पूर्णानन्द भगवान है, अनन्त बेहद स्वरूपी उसके अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और रमणता द्वारा वह प्रगट होती है। दूसरा कोई उसका उपाय तीन काल, तीन लोक में अन्दर विनित वीतराग मार्ग में नहीं है। अन्य मार्ग में तो मार्ग हो नहीं सकता, अन्य में तो यह मार्ग है ही नहीं। समझ में आया?

पूर्ण था, वह पर्याय में पूर्ण प्रगट हुआ, ऐसा कहने का आशय है। केवल '**अर्चिः**' '**अर्चिः**' है न? ज्योति '**अर्चिः**' अर्थात् ज्योति प्रगट हुई। भगवान चैतन्यज्योति पूर्ण जो अन्दर है, उसके अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान की एकाग्रता द्वारा '**अर्चिः**' पर्याय में पूर्ण '**अर्चिः**' प्रगट हो गयी, झबक उठी केवल दशा। आहाहा! समझ में आया?

अभी केवलज्ञान में विवाद निकालते हैं। उनकी शक्ति सही अनन्त गुणी परन्तु अनन्त ज्ञेय नहीं, इसलिए जानते नहीं। देखो! यह निमित्त प्रधानता आयी। ऐसा कहे, लो! उसे सामर्थ्य बतलाने को परन्तु ज्ञेय नहीं मिलते, इसलिए किसे जाने? इसलिए ज्ञेय कारण है और यह कार्य है, ऐसा। अरे! भगवान! परन्तु उसकी बलिहारी है न! आहाहा! अरे! तेरा माप बेहद का है। निमित्त होता है और न हो, इसका प्रश्न नहीं। ऐसी ताकत, ऐसी ताकत पूर्ण जितना, वह प्रगट हो गया।

जिसने दृष्टि में आत्मा लिया, जिसने विकल्परहित निर्विकल्प दृष्टि द्वारा, सम्यक् द्वारा आत्मा पकड़ा, उसे सम्यक् पहला तो केवलज्ञान श्रद्धा में प्रगट हो गया। अकेला ज्ञान है, ऐसा श्रद्धा में प्रगट हुआ। अकेला ज्ञान का अर्थ ही केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान है, और प्रगट होगा वह अकेला ज्ञान पूर्ण रहेगा, अपूर्ण अधूरा रहेगा नहीं। ऐसा श्रद्धा में ही केवलज्ञान पहले प्रगट हुआ। समझ में आया?

ज्ञान ने भी ऐसा जाना कि यह पूर्ण है। इसलिए ज्ञान ने भी केवलज्ञान को निश्चित किया कि केवलज्ञानमय ही मैं हूँ। चारित्र भी उसकी इच्छा में वर्तता है कि यह पूर्ण हो, पूर्ण हो। पूर्ण हूँ—ऐसा श्रद्धा-ज्ञान में है, इच्छा में यही वर्तता है कि पूर्ण प्रगट दशा हो। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा भगवान जैसा है, ऐसा बाहर आया, पर्दे से बाहर। पर्दा तोड़कर

बाहर आया। नाटक में आते हैं या नहीं? वेश अन्दर पहना हो और वह पर्दा हटाये ऐसे तोड़े या पूरा ऊँचा करे और या दो टुकड़े करे। दो करते हैं न? या ऊँचा करते हैं ऐसे। या ऐसे दो फाड़े। इसी प्रकार यह ज्ञानावरणीय आदि पर्दा तोड़कर भगवान अन्दर में था, इतना ऐसा प्रगट हो गया। समझ में आया? यह समयसार नाटक में कहा जाता है। नाटक की उपमा दी है न? भगवान अन्दर विराजता है, बापू! आहाहा! कहते हैं कि उसका भान करने से वह पर्दा टूटकर पर्दा बाहर केवलज्ञानरूप से बाहर आ गया। बस! कृतकृत्य हो गया। जो कार्य करने का था, वह हुआ। वह कार्य अब अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहा करेगा। जिसका नाम मोक्ष दशा कहा जाता है। तेरहवाँ, २७६।

कलश - २७६

(मालिनी)

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म–
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता–
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ।।१३–२७६।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'एतत् अमृतचन्द्रज्योतिः उदितं' [एतत्] प्रत्यक्षरूप से विद्यमान 'अमृतचन्द्रज्योतिः' इस पद के दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थ— [अमृत] मोक्षरूपी [चन्द्र] चन्द्रमा का [ज्योतिः] प्रकाश, [उदितं] प्रगट हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धजीवस्वरूप मोक्षमार्ग, ऐसे अर्थ का प्रकाश हुआ। दूसरा अर्थ इस प्रकार है कि [अमृतचन्द्र] नाम है टीका के कर्ता आचार्य का, सो उनकी [ज्योतिः] बुद्धि का प्रकाशरूप [उदितं] शास्त्र, सम्पूर्ण हुआ। शास्त्र को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं— 'निःसपत्नस्वभावं समन्तात् ज्वलतु' [निःसपत्न] नहीं है कोई शत्रु जिसका, ऐसा [स्वभाव] अबाधितस्वरूप [समन्तात्] सर्व काल, सर्व प्रकार [ज्वलतु] परिपूर्ण प्रतापसंयुक्त प्रकाशमान होओ। कैसा है? 'विमलपूर्णं' [विमल] पूर्वापर विरोधरूप मल से रहित है तथा [पूर्णं] अर्थ से गम्भीर है। 'ध्वस्तमोहं' [ध्वस्त] मूल से उखाड़ दी है [मोहं] भ्रान्ति को जिसने, ऐसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि इस शास्त्र में शुद्धजीव का स्वरूप, निःसन्देहरूप से कहा। और कैसा है? 'आत्मना आत्मनि आत्मानं अनवरतनिमग्नं धारयत्' [आत्मना] ज्ञानमात्र शुद्धजीव के द्वारा, [आत्मनि] शुद्धजीव में, [आत्मानं] शुद्धजीव को, [अनवरतनिमग्नं धारयत्] निरन्तर अनुभवगोचर करता हुआ। कैसा है आत्मा? 'अविचलितचिदात्मनि' [अविचलित] सर्व काल एकरूप जो [चित्] चेतना, वही है [आत्मनि] स्वरूप जिसका, ऐसा है। नाटक–समयसार में अमृतचन्द्रसूरि ने कहा जो साध्य–साधक भाव, सो सम्पूर्ण हुआ। नाटक–समयसार शास्त्र पूर्ण हुआ; यह आशीर्वाद वचन है।।१३–२७६।।

कलश - २७६ पर प्रवचन

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म–
न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम्।
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता–
ज्ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ।।१३–२७६।।

स्वयं भी अपना नाम डाला और भगवान 'अमृतचन्द्रे' ज्योति दी आत्मा का नाम। '**एतत् अमृतचन्द्रज्योतिः उदितं**' 'अमृतचन्द्राचार्य' यह टीका करनेवाले दिगम्बर सन्त मुनि (जिन्होंने) केवलज्ञान का कलेजा खोल दिया ऐसे है। समझ में आया? अ-मृत—मरे नहीं ऐसी मोक्षलक्ष्मी जिसे प्रगट होती है, जिसकी मृत्यु नहीं अर्थात् पूर्ण दशा प्राप्त (होने के) बाद जिसे वापस पड़ना नहीं। समझ में आया?

प्रत्यक्षरूप से विद्यमान 'अमृतचन्द्रज्योतिः' यह प्रत्यक्षरूप से विद्यमान अमृतचन्द्रज्योति। भगवान आत्मा पूर्ण दशा प्रगट होने पर अमृतचन्द्रज्योति—मरे नहीं ऐसी प्रकाशरूप ज्योति, विद्यमान ऐसी की ऐसी पर्याय वर्तती है। देखो! **इस पद के दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थ—'अमृत'** अर्थात् **मोक्षरूपी...** अमृत अर्थात् मोक्ष, अमृत अर्थात् मोक्ष। '**चन्द्र**' अर्थात् **चन्द्रमा का प्रकाश प्रगट हुआ।** मोक्षरूपी चन्द्रमा का प्रकाश प्रगट हुआ। भगवान आत्मा में अन्तर मोक्षरूपी लक्ष्मी चैतन्य की अन्दर शक्ति में पड़ी थी, शक्ति के सत्त्व में जोरदार लक्ष्मी पड़ी थी। समझ में आया?

देखो न, यह हीरे की खान और माणेक की खान और अमुक की खान और ऐसे बहुत लेख आते हैं। कोई निकला है और ऐसा निकलता है। प्रसन्न... प्रसन्न (हो जाये)। धूल भी—पाई भी तेरे साथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! आहाहा! यहाँ तो खान हीरा की निकली, माणेक की निकली, अमुक की निकली जो निकलता हो। ऐसा आता है। ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाये)। अरे! बापू! यह खान का देखनेवाला महाखानवाला, उसे तो देख! धूल में भी नहीं। मर जाये ऐं... ऐं... होकर चला जायेगा। मरते हुए मुर्दे के ऊपर सिर पर हीरा सिर पर जमाये तो? ढ़ेर पड़े हों उसके पास। आहाहा! अरे! भगवान! महा चैतन्य शरण बाहर की भीड़ में दबे नहीं, ऐसा यह तत्त्व है। आहाहा! यह

बँधा हुआ नहीं। समझ में आया? जिसमें देह, देश और वेश राग का भी जिसमें नहीं। आहाहा! क्या कहा?

जो भगवान आत्मा इसे देह भी नहीं और देह में यह देश जिसमें रहा, यह देश भी उसे नहीं। किसे मानना मेरा देश और किसे मानना मेरा देह? देहातीत, देशातीत, वचनातीत, रागातीत है। आहाहा! समझ में आया? एक राग का विकल्प, एक क्षण का वेश सिर पर विकार है। इसके मूल स्वरूप में उसके विकार का भी वेश नहीं। शशिभाई! आहाहा! किसे मेरा मानना और किसे तेरे टालना? समझ में आया?

भगवान आत्मा अमृतचन्द्रज्योति। यह तो और पहला अर्थ मस्तिष्क में आया है—द्रव्य का। वह अमृत है स्वयं। मरे नहीं ऐसा। उसकी शक्तियाँ ऐसी की ऐसी अनादि पड़ी है। अमृत ऐसा चन्द्र प्रकाश की ज्योति द्रव्यस्वभाव है। यहाँ भले मोक्षलक्ष्मी ली। समझ में आया? वह इसमें है, वह ऐसी प्रगट हुई है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह आवरण से आवृत्त नहीं, राग से ढंकती नहीं, ऐसा भगवान आत्मा अमृतचन्द्रज्योति है। टीका करनेवाले भी अमृतचन्द्र मिले, देखो न! है? यहाँ तो पर्याय ली है, हों! मैं तो बात करता हूँ द्रव्य की अभी पहली। क्योंकि जो कहा जाता है, वह मोक्षरूपी चन्द्र का प्रकाश उदित होता है, प्रगट होता है। प्रगट होता है परन्तु किसमें से?

भगवान आत्मा शरीर, कर्म और देश बिना की चीज़ 'यह मैं हूँ'—ऐसा विकल्प राग, उसके वेश के वेश से भी भिन्न, उस राग में अटकना, ऐसा उसका स्वरूप ही, स्वभाव ही नहीं है। समझ में आया? वह एक समय की पर्याय अटकी, वह तो एक समय का अंश... अंश... अंश... अंश... अटका हुआ है। वस्तु का स्वभाव, राग में कोई वस्तु का स्वरूप ही नहीं। यह क्या अर्थ होता है? अमृतचन्द्रज्योति का अर्थ होता है। भगवान आत्मा मरे नहीं। वह राग से आवृत्त नहीं, ऐसी चीज़ है—ऐसा यहाँ तो कहना है। आहाहा! समझ में आया? कर्म से ढँकता नहीं, विकार से ढँकता (नहीं)। विकार तो एक समय का किसी एक गुण का एक अंश विकृत है। वस्तुस्वरूप पूरा किसी से ढँकता नहीं अर्थात् आच्छादित नहीं अर्थात् कि मरता नहीं, अर्थात् कि हीन नहीं होता। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा मोक्षरूपी लक्ष्मी से भरपूर अर्थात् मुक्त हुआ तत्त्व है, ऐसा कहना है जरा यहाँ। समझ में आया? वह राग से, पर से मुक्त तत्त्व है। कब?

आहाहा! जो उससे एकमेक हो तो कभी पृथक् पड़े नहीं। पृथक् है तो पृथक् होता है, पृथक् है तो पृथक् होता है। आहाहा!

यह भगवान आत्मा, इसकी महिमा की क्या बात करें! बारह अंग भी कहते हैं कि बात में स्थूलता वर्णन करते हैं। बारह अंग में भी शास्त्र आत्मा की बात की स्थूलता वर्णन करते हैं। स्थूल कथन है सूक्ष्म तो अनन्तगुणा बहुत रह गया है, कहते हैं। यह चौदह पूर्व और बारह अंग में स्थूल कथन है। ओहोहो! पूर्व ज्ञान और बारह अंग कहलाये न बड़ा! अरे! भाई! तेरी महिमा वाणी में कभी पूरी नहीं आती। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अमर तत्त्व से, अमर शक्ति से भरपूर अमर आत्मा। समझ में आया? ऐसा भगवान अमर अमृत मोक्षस्वरूप चन्द्रमा प्रगट उदित हुआ। जैसा है वैसा प्रगट होता है। ऐसे स्वरूप का भान करके उसके ऊपर नजर लगाकर, ऐसे आत्मा पर नजर लगाकर है ऐसा प्रगट होता है।

भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धजीवस्वरूप मोक्षमार्ग, ऐसे अर्थ का प्रकाश हुआ। देखो! क्या कहते हैं? भावार्थ में देखो! यह डाला, देखो? **शुद्धजीवस्वरूप मोक्षमार्ग, ऐसे अर्थ का प्रकाश हुआ**। क्या कहा? भगवान आत्मा शुद्ध परमानन्द की मूर्ति ऐसा स्वभाव, ऐसा मोक्षमार्ग, वही मोक्षमार्ग है। उस शुद्ध जीव स्वरूप की प्रतीति, ज्ञान, रमणता, वह शुद्ध जीव की परिणति, वह मोक्षमार्ग है—ऐसा कहते हैं। उपाय-उपाय। शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग, **शुद्धजीवस्वरूप मोक्षमार्ग, ऐसे अर्थ का प्रकाश हुआ**। भगवान आत्मा शुद्ध जीवस्वरूप, शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग। वह मोक्षमार्ग पर्याय शुद्ध जीवस्वरूप ही है। जैसा शुद्धस्वरूप शक्ति का सत्त्व है, वैसी जिसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति शुद्ध जीवस्वरूप ही मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग कहीं रागस्वरूप निमित्तस्वरूप मोक्षमार्ग नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

लोगों को भारी लगता है, हों! यह तो एकान्त है। भगवान! सुन बापू! यह एकान्त मार्ग एकान्त केवल प्रगट होता है, भाई! आहाहा! परन्तु इसे वह व्यवहार ऐसा खटकता है। ऐसा इसे खटकता है। भाई! इसकी भूल को हमको खबर नहीं तब तक हमने कुछ कहा होगा। अब तो क्रमबद्ध स्थापित करते हैं। भगवान! क्रमबद्ध का अर्थ साक्षीस्वरूप तू त्रिकाल है।

देखनेवाला-जाननेवाला शक्ति से भरपूर तत्त्व, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति वह शुद्ध जीवस्वरूप ही मोक्षमार्ग है। जैसा शुद्ध स्वरूप है वस्तु, वैसा ही उसका मोक्षमार्ग शुद्ध जीवस्वरूप ही मोक्षमार्ग है। शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग में क्या कहा? कि शुद्ध जीववस्तु जो शुद्ध त्रिकाल ध्रुव है, ऐसा ही सम्यग्दर्शन, उसका शुद्ध जीवस्वरूप सम्यग्दर्शन है। भाई! इन तीनों को पृथक् करें तो। शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग है अर्थात्? रागादि, मन आदि कुछ नहीं होता। ऐसा शुद्ध जीवस्वरूप, उसका जो सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध जीवस्वरूप सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन शुद्ध जीवस्वरूप है। भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द द्रव्य वस्तु है, वैसा ही सम्यग्दर्शन वह शुद्ध जीवस्वरूप है, वह पर्याय भी शुद्ध जीवस्वरूप से प्रगट हुई है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प जो शुभ व्यवहार आदि है, उसरूप वह जीवस्वरूप नहीं, इसलिए उसरूप मोक्षमार्ग भी नहीं। वे कहें, व्यवहार जहाँ आता है, वहाँ तिरस्कार करते हैं, निश्चय आवे तो गला पकड़ते हैं। वे कहते थे न? कौन? पण्डितजी। भगवान! सुन, बापू! भाई! जिसे छोड़ना है, उसे पकड़ना क्या? जो छूट जाता है, उसे पकड़ना क्या? जो रहे, रखा हुआ रहे, उसे पकड़ना है। समझ में आया? अरे! आहाहा!

देखो न, कहीं तृण तोल की गिनती है मृत्युकाल। यह लाखों मनुष्य हों ऐसे। जाओ... हो गया, हाय... हाय! इसमें ईश्वर कहाँ गया? ऐसे सब काम अच्छे किये, इसलिए ईश्वर उसे थोड़ा अधिक जिलावे तो। क्या था परन्तु कहाँ थी? यह तो त्रिकाल चैतन्यमूर्ति वस्तु है, उसकी भूल के कारण भटक रहा है। वह उसकी भूल के कारण भ्रम रहा है। भगवान भूल में पड़ा भ्रमता है। उसे कोई भगवान तारता है, कोई डुबोता है—ऐसा नहीं है। ईश्वर-विश्वर कोई है (नहीं)। होवे भी किस प्रकार? आहाहा!

स्वयं ही ईश्वर की मूर्ति है। आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, ज्ञानेश्वर, दर्शनेश्वर, आनन्देश्वर, अस्तित्वईश्वर, शान्ति ईश्वर, प्रभुता ईश्वर, यह एक-एक गुण के ईश्वरपने अनन्त ईश्वर की मूर्ति ही आत्मा है। इसका जैसा शुद्धस्वरूप है, वैसा ही उसका शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग है। समझ में आया? देखो! यह निकाला देखा इसमें से? यह मार्ग का निकाला पहले। फिर और नामकर्ता का निकालेंगे। भाव का निकाल न पहले। है न? दूसरे अर्थ बाद में कहेंगे।

'अमृतचन्द्रज्योति' भगवान 'अमृतचन्द्रज्योति' आत्मा का मार्ग भी 'अमृतचन्द्रज्योति' शुद्ध जीवस्वरूप, ऐसा। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ध्रुवस्वरूप, उसकी अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह सम्यग्दर्शन भी शुद्ध जीवस्वरूप, सम्यग्ज्ञान भी शुद्ध जीवस्वरूप और चारित्र भी शुद्ध जीवस्वरूप। भगवान सवयं शुद्धपने परिणमा, वह शुद्ध जीवस्वरूप ही उसका मोक्षमार्ग है। समझ में आया? बहुत डाला। यह शास्त्रज्ञान और व्यवहार श्रद्धा और पंच महाव्रत के परिणाम सब कहाँ डाल दिया। जीव का स्वरूप कहाँ था वह? आहाहा!

भाई! तुझे तेरे स्वरूप की माहात्म्य दृष्टि नहीं, इसलिए दूसरे पर उसे माहात्म्य देता है कि यह हो न तो ठीक पड़े, हों! यह हो न तो ठीक पड़े। विकल्प उठे तो यह हो न तो मुझे साधन पड़े। परन्तु भाई! तेरे स्वरूप में कहीं बाहर के साधन की आवश्यकता नहीं, ऐसा साधन स्वभाव शुद्धस्वरूप तू पड़ा है। आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा पुण्य-पाप की मलिनता के अंश से भी भिन्न तत्त्व जो शुद्धस्वरूप प्रभु। स्व-रूप—शुद्ध पवित्र स्वरूप। ऐसा ही उसका मोक्षमार्ग शुद्ध स्वरूप जीव, वह मोक्षमार्ग। शुद्ध जीव का स्वरूप, वही मोक्ष का मार्ग। वाह! समझ में आया? उपाय भी वह और उपेय भी वह, ऐसा सिद्ध करना है। वह का वह भगवान शुद्धस्वरूप है, ऐसा शुद्ध स्वरूप से श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, स्थिरता, वह जीव का शुद्धस्वरूप, वही मोक्षमार्ग है। वह पूर्ण होता है जीव का शुद्धस्वरूप, वह मोक्ष है। पूर्ण हुआ, वह मोक्ष है। समझ में आया? कहो, यह तो गुजराती है, इसमें समझ में आये ऐसा है या नहीं?

अरे! कहते हैं कि तेरे आत्मा की अनादि अनन्तता की अचिन्त्यता कोई वाणी द्वारा नहीं आती, इतना तू। इसलिए तुझे कोई शरीर के वर्ष की आयुष्य की आवश्यकता नहीं, शरीर के वर्ष की आयुष्य की आवश्यकता नहीं, निरोगता की आवश्यकता नहीं। समझ में आया? आहाहा! पाँच इन्द्रिय की सहायता की आवश्यकता नहीं। आहाहा! आवश्यकता एक तेरे पूर्णानन्द परमात्मा की दृष्टि करने की एक। इसके बिना तेरा कोई मोक्षमार्ग काम आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इसे हीन न बता। परमात्मप्रकाश में आया था। इसे हीन न कह। यह पूरा, उसे

पूरा है उसे पूरा कहकर उसे सुना। समझ में आया? ऐसी कुछ शैली एक जगह आयी थी। यह भगवान पूरा परमात्म स्वभाव से भरपूर, इसे हीन करके तू नहीं समझ सकेगा, तुझसे नहीं होगा, ऐसा रहने दे, कहते हैं। केवलज्ञान प्रगट कर सकता है, ऐसी ताकत और तू इतना समझ सकता नहीं, ऐसा कैसे कहना इसे? तुझे लांछन लगता है, बापू! आहाहा! उसे वह शोभा कहते हैं। न समझ सके, हों! मुझे यह समझ में नहीं आता... समझ में नहीं आता... समझ में नहीं आता। संसार समझ में आता है। यह सब समझ में आता है धूल और धमाका। तू स्वयं? वह अपने को समझ में नहीं आता। अरे! भगवान! तू तुझे न समझ में आये? यह वह क्या तुझे कहते हैं? कहते हैं कि तेरा मार्ग ही शुद्ध जीवस्वरूप है। समझ में आया? शुद्ध जीवस्वरूप तू है, और शुद्ध जीवस्वरूप तेरा मार्ग है। मार्ग यह है। इस मार्ग में आ नहीं सकता, ऐसा कैसे कहता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह का वह यदि रहा हो तो यहाँ और वहाँ दो अन्तर कैसे पड़े? वह का वह यदि रहा हो तो। तो वह का वह रहता है या नहीं आत्मा? किसमें? आहाहा!

कहते हैं, तू देखनेवाले को देख! यह देखनेवाले की ऐसी सामर्थ्य उसकी है कि जिसके देखने में ही शुद्ध जीवस्वरूप पर्याय प्रगट होती है। दूसरे को देखने से अशुद्धपना प्रगट होता है। वह कहीं तेरे मोक्ष के मार्ग में काम नहीं आता। आहाहा! **ऐसे अर्थ का प्रकाश हुआ।** कहते हैं, ऐसे साधकपने का प्रकाश हुआ, एक तो यहाँ ऐसा कहा। समझ में आया?

दूसरा अर्थ इस प्रकार है कि नाम है टीका के कर्ता आचार्य का... आचार्य टीका के करनेवाले का नाम 'अमृतचन्द्राचार्य' सन्त मुनि हैं। **उनकी बुद्धि का प्रकाशरूप शास्त्र सम्पूर्ण हुआ।** लो! वाचक पूर्ण हुआ, ऐसा कहते हैं। शब्द अब जो कहने के थे, वे पूरे हुए। 'समयसार', ऐसा। समझ में आया? '**अमृतचन्द्रज्योतिः उदितम्**' ऐसा। उसमें कहा था '**अमृतचन्द्रज्योतिः उदितम्' मोक्षरूपी चन्द्रमा का प्रकाश प्रगट हुआ।** यहाँ ऐसा कहा कि 'अमृतचन्द्र' टीका के कर्ता भगवान 'अमृतचन्द्र', उनकी बुद्धि का

प्रकाश, यह शास्त्र सम्पूर्ण हुआ। बुद्धि के प्रकाश से जो यह टीका हुई है न, यह शास्त्र पूरा होता है। ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य की बुद्धि... ! समझ में आया ? इसकी टीका... !

शास्त्र को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं— शास्त्र को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं। '**निःसपत्नस्वभावं समन्तात् ज्वलतु**' '**निःसपत्न**' **नहीं है कोई शत्रु जिसका, ऐसा अबाधितस्वरूप....** प्रतिपक्ष कोई है नहीं। **सर्व काल, सर्व प्रकार परिपूर्ण प्रतापसंयुक्त प्रकाशमान होओ**। एक तो शास्त्र है और एक तो शास्त्र ने कहे हुए भाव, इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं। अपने को स्वयं (आशीर्वाद देते हैं)। यह प्रगट हुए भाव ऐसे के ऐसे रहो। ओहो! भगवान आत्मा चैतन्य परमात्मस्वरूप जो द्रव्य है, उसका मोक्षमार्ग जो प्रगट हुआ, वह ऐसा का ऐसा '**ज्वलतु**' रहो। आशीर्वाद अर्थात् अपनी अप्रतिहत दशा ऐसी की ऐसी रहो। ऐसा एक तो आशीर्वाद कहते हैं। स्वयं अपने को आशीर्वाद देते हैं। दूसरे के आशीर्वाद किस काम के ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु स्वयं ही आत्मा गुरु है बड़ा। उसमें से ही उसे यह वाणी निकली, ऐसा वाच्य भी उसमें से निकला हुआ है। कहो, समझ में आया ?

नहीं है कोई शत्रु जिसका, ऐसा अबाधितस्वरूप.... '**स्वभावं**' '**समन्तात्**' **सर्व काल, सर्व प्रकार परिपूर्ण प्रतापसंयुक्त प्रकाशमान होओ**। भगवान आत्मा सम्पूर्ण इस प्रकार से प्रगट होओ। सर्व काल सर्व प्रकार से ऐसा का ऐसा भगवान जैसा शुद्ध स्वरूप था, वैसा ही पर्याय में ज्ञात हुआ, ऐसा प्रगट रहो। ऐसा का ऐसा सदा रहो। ऐसा आत्मा स्वयं अपने को पुकारता है। आहाहा! वह की वह दशा तो केवलज्ञान लेकर ऐसे के ऐसे हम रहेंगे, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया ? यह जो स्वभाव है, उसे पकड़कर शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह ऐसा का ऐसा **परिपूर्ण प्रतापसंयुक्त प्रकाशमान होओ**। जिसके प्रताप के समक्ष कोई शत्रु होता नहीं, है नहीं।

प्रभुताशक्ति वर्णन की है न ? स्वतन्त्रत प्रभुता जिसकी शक्ति है। प्रभुता प्रताप जिसका अखण्डित स्वतन्त्र शोभता है। ऐसा भगवान आत्मा मोक्षमार्ग में स्वतन्त्र प्रताप से शोभता है, वस्तु से तो शोभता है परन्तु मोक्ष की पर्याय भी परिपूर्ण होकर प्रतापवन्त

शोभती है। ऐसी की ऐसे रहो, ऐसा का ऐसा रहो। ओहोहो! जिसे अब विकल्प आकर तोड़ सके और घटा सके, ऐसा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। शुद्ध सर्व काल '**समन्तात्**' है न? समस्त प्रकार सर्व काल और सर्व प्रकार से **परिपूर्ण प्रतापसंयुक्त प्रकाशमान होओ।** शास्त्र भी ऐसा है और आत्मा भी ऐसा है, दोनों ले लेना।

'**विमलपूर्णं' पूर्वापर विरोधरूप मल से रहित है...** समझ में आया? यह शास्त्र भी पूर्वापर विरोधरहित है और कहा हुआ समयसार भाव भी पूर्वापर विरोधरहित इसमें कहा गया है। समझ में आया? '**विमलपूर्णं' पूर्वापर विरोधरूप मल से रहित है...** पहले कुछ कहा हो और बाद में कुछ भाव, ऐसा होता नहीं। तथा वाणी में पहले कुछ कहा और उससे विरुद्ध आवे (–ऐसा) वाणी में भी ऐसा होता नहीं। समझ में आया? भाई! यह तो कोई कठिन बात! मानो मोक्ष में बैठा हो और सुने, ऐसी बात है यह तो!! देह और देश को भूले, देह और देश को भूले और स्वदेश को याद करे, उसकी यह बात है। आहाहा! समझ में आया? यह स्वदेशी होने की बात है, लो! कहो, रतिभाई!

कैसा है भगवान आत्मा? **तथा अर्थ से गम्भीर है।** वस्तु से भी गम्भीर और शब्दों से भी गम्भीर समयसार। यह शास्त्र अर्थ से महा गम्भीर है। आत्मा पदार्थ से भी महा गम्भीर जिसके द्रव्य, गुण और पर्याय महा गम्भीर और कहनेवाले शब्द... शब्द... शब्द... अर्थ, वह बड़ा महा गम्भीर है। वह साधारण शब्दों का पता लगे, ऐसे वे शब्द नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह समयसार सर्वज्ञ से कहा हुआ तत्त्व सन्तों ने अनुभव चारित्र की दशा में रहकर वाणी द्वारा आया। उस वाणी में अर्थ गम्भीर है। इतना गम्भीर अर्थ है कि साधारण प्राणी उसके अर्थ का पार नहीं पा सकता। समझ में आया?

यह तो भागवत शास्त्र है। वे भागवत शास्त्र कहते हैं न? (वह नहीं)। यह तो भगवान का भागवत शास्त्र है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्हें एक समय में पूर्ण पर्याय प्रगट होकर पूर्ण ज्ञात हुआ। कहते हैं कि, उसमें से निकली हुई वाणी, वह हमारे मुख में से वही निकली है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! महा अर्थ (गम्भीर है)। दिव्यध्वनि में जैसे पदार्थ की कथनशैली महागम्भीर है, वैसे इस शास्त्र की पद्धति—कथनशैली महा गम्भीर है। शब्दों की गम्भीरता है तो वस्तु की गम्भीरता

तो कहना ही क्या!! आहाहा! कितने अर्थ किस अपेक्षा से इसमें भरे है, कहते हैं। समझ में आया?

'ध्वस्तमोहं' मूल से उखाड़ दी है भ्रान्ति को जिसने,... लो! भाषा ही अकेली भ्रान्ति पर वजन लिया है। समयसार वाणी में ऐसा जोर अर्थ गम्भीर है कि जिस सुननेवाले को मिथ्याभ्रम का नाश हो जाये, ऐसी वाणी है। यह वाणी ऐसी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह भ्रान्ति टाले, उसे वाणी का प्रभाव ऐसा है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऊँचा उठाती है, कहते हैं। वाणी में ऊँचा उठाने की सामर्थ्य अन्दर गम्भीर अर्थ भरे हैं। वह ऊँचा उठता है, ऐसे उठता है अन्दर से ऐसे ऊँचा उछलता है। ऐसी इसमें अर्थ की गम्भीरता वाणी में पड़ी है। आहाहा! कहीं मैं विकारी हूँ, कर्मवाला हूँ, कायर हूँ, अल्पज्ञ हूँ, यह बात इसमें खड़ी न रहे, ऐसे अर्थ की गम्भीर वाणी है, कहते हैं। समझ में आया? '**ध्वस्तमोहं**' की व्याख्या ही मिथ्याभ्रान्ति गयी। यह भगवान हो गया। कहो! **मूल से 'ध्वस्त' उखाड़ दी है भ्रान्ति को जिसने, ऐसा है।** देखो! भावार्थ करते हैं।

भावार्थ इस प्रकार है कि इस शास्त्र में, शुद्धजीव का स्वरूप, निःसन्देहरूप से कहा। निःसन्देहरूप से कहा है। ऐसा होगा और ऐसा होगा—ऐसा नहीं। समझ में आया? यह समयसार शास्त्र पूरा होने में कहते हैं कि, परन्तु इसमें इतना अधिक भरा है। शुद्ध जीवस्वरूप ऐसा है, इसका मार्ग यह है, उसका फल यह है, यह निःसन्देहरूप से कहा है। भ्रान्ति टली, निर्भ्रान्त होकर जो वस्तु है, वैसी इसमें कही गयी है। समझ में आया? ऐसा होना चाहिए, ऐसा होगा—ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा है, वस्तु ऐसी है। उसकी दृष्टि, ज्ञान हुए, वह शुद्ध जीवस्वरूप मोक्षमार्ग है, उसके फलरूप से पूर्णस्वरूप ज्योति प्रगट होती है, इस प्रकार मोक्ष है। उसमें कोई सन्देह और ऐसा होगा, वैसा होगा (ऐसा है नहीं)। देखो! अस्तिपने की सिद्धि की। अस्तिपना उसका पूर्ण शुद्धरूप से है, उसका शुद्धस्वरूप से मोक्षमार्ग है और उसका मोक्ष पूर्ण शुद्धस्वरूप प्रगट होता है। यह बात जिस प्रकार से है, वह निःसन्देहरूप से कही गयी है। आहाहा! समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य की टीका (और) कुन्दकुन्दाचार्य दोनों ऐसा कहते हैं, हम जिस पंथ में चले हैं, और वह पंथ हमको निःसन्देहरूप से ज्ञात हो गया है, और

नि:सन्देहरूप से हमको मोक्ष होनेवाला है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नि:सन्देहरूप से हमको केवलज्ञान प्रगट होनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है? 'आत्मना आत्मनि आत्मानं अनवरतनिमग्नं धारयत्' क्या कहते हैं? **ज्ञानमात्र शुद्धजीव के द्वारा,...** देखो! यह कहा है, इस प्रकार से। भगवान ज्ञानमात्र चैतन्य जाननस्वभाव ऐसा शुद्ध जीव, उसके द्वारा देखो। उसके द्वारा (कहा है)। विकल्प द्वारा, निमित्त द्वारा, संयोग द्वारा नहीं, यह इसमें आ जाता है। इस द्वारा, इस द्वारा नहीं, इसमें अनेकान्त आ जाता है। एकान्त सम्यक् अस्ति से यहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया? 'नमः समयसार' से शुरु किया था न? अस्ति से। यह समयसार **'चितस्वभावायभावाय' 'भावाय'** वस्तु **'चितस्वभावाय सर्व भावान्तरच्छिदे'** पूर्ण जानने की सामर्थ्य से प्रगट होती है। **'स्वानुभूत्या चकासते'** अपने शुद्ध जीवस्वरूप की अनुभव की क्रिया से वह प्रगट होती है। बस! उससे (राग से) नहीं होता, यह अनेकान्त में आ गया। समझ में आया? गरीब को गुड़ मिले और फिर बहुत खुशी मनावे ऐसे-ऐसे करे। यह कहते हैं कि हमको जो आनन्द मिला है और वह ऐसा है कि बारम्बार उसका ही अनुभव है। नि:सन्देहरूप से उसका फल केवलज्ञान ही आनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह बारम्बार (चाटे), उसी प्रकार यह बारम्बार भावना करता है। वह बारम्बार निगलता है, झट नहीं निगल जाता। आहाहा!

'आत्मना' की व्याख्या की, **'आत्मना'** अर्थात् आत्मारूप। क्या? कि शुद्ध जीव के द्वारा, ऐसा। भगवान चैतन्य ज्योतिस्वरूप है, उस ज्ञानस्वरूप द्वारा अर्थात् ज्ञान द्वारा। वह राग और विकल्प, वह कहीं आत्मा नहीं है। समझ में आया? भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति **ज्ञानमात्र शुद्ध जीव...** ज्ञानमात्र कहने से क्या? कि, रागादि दूसरा नहीं। अकेला ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वरूप प्रकाशबिम्ब चैतन्य के तेज के समक्ष भगवान अकेला ज्ञानरूपी प्रभु, उसके द्वारा। **शुद्ध जीव में...** यह आधार लिया। उसमें रमने से—आधार। ज्ञानमात्र द्वारा ज्ञान में रमने से, ज्ञानस्वरूप चैतन्य में रहने से। समझ में आया? **शुद्धजीव के द्वारा, शुद्धजीव में, शुद्धजीव को,... 'आत्मानं'** उसका कार्य **निरन्तर अनुभवगोचर करता हुआ।** आहाहा! बहुत थोड़े शब्दों में बहुत-बहुत भरा है!

कहते हैं, भगवान आत्मा वह शुद्ध ज्ञानमात्र स्वरूप द्वारा शुद्ध ज्ञान आत्मा में शुद्ध

ज्ञान ऐसे जीव को '**अनवरतनिमग्नं**' **निरन्तर अनुभवगोचर करता हुआ।** '**अनवरतनिमग्नं धारयत्**' '**अनवरत**' अर्थात् निरन्तर, '**निमग्नं**' अर्थात् एकाकार, '**धारयत्**' अर्थात् धार रखकर। वह शुद्ध जीव ज्ञानानन्द प्रभु (उसमें) दृष्टि, ज्ञान और चित्त एकाकार रखकर। निरन्तर उसके ध्येय में एकाकार होकर। समझ में आया? समयमात्र में कभी वहाँ व्यवहार का विकल्प उसमें थोड़ा अटके तो लाभ होगा, बल मिलेगा, (ऐसा नहीं है)। थकान लगे न अन्दर एकाकार में? ऐसे भी अर्थ करनेवाले निकले हैं अभी, लो! आहाहा! कितने वर्ष से पढ़े हुए! यहाँ आकर स्वीकार किया, बात तो सच्ची है। वे वापस सब बदल गये। जरा कुछ है, शुभभाव में कुछ व्यवहार में है। थकान लगे तो वहाँ विश्राम ले तो थोड़ा शुद्ध का बल मिले। अरे! आहाहा! उसमें बल था कहाँ शुभ में? वह तो निर्बलता का विकल्प है। समझ में आया?

'**अनवरत**' **निरन्तर अनुभवगोचर...** '**निमग्नं**' की व्याख्या। '**धारयत्**' अर्थात् करता हुआ, ऐसा। निरन्तर भगवान ज्ञानस्वरूप में लीन रहता हुआ। भगवान ज्ञानमूर्ति अपने ज्ञान द्वारा अपने में निरन्तर निमग्न शुद्ध जीवस्वरूप में रहता हुआ। समझ में आया? **कैसा है आत्मा?** '**अविचलितचिदात्मनि**' **सर्व काल एकरूप जो चेतना वही है स्वरूप जिसका, ऐसा है।** यह सर्व काल एकरूप पर्याय प्रगट हो गयी अब। समझ में आया? उसमें आया था न? ज्ञान अनन्त, तथापि एकरूप। एकरूप आया था न? वहाँ पर्याय है। एकरूप, अनन्त को जानने पर भी एकपना, ज्ञानपना, एकरूप पर्याय है। '**त्रितयं**' '**अपि एकः एव स्वरूपः**' मूल तो यह पर्याय की बात है, हों! त्रिकाल है, वह तो है ही। यह तो भगवान आत्मा अपना चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसका निरन्तर अनुभव करते-करते ऐसी दशा प्रगट हुई कि **सर्व काल एकरूप जो चेतना वही है....**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - २७७

(शार्दूलविक्रीडित)

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल ।।१४–२७७।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'किल तत् किञ्चित् अखिलं क्रियायाः फलं अधुना तत् विज्ञानघनौघमग्नं खिन्ना न किञ्चित्' [किल] निश्चय से [तत्] जिसका अवगुण कहेंगे, ऐसा जो [किञ्चित् अखिलं क्रियायाः फलं] कुछ एक पर्यायार्थिकनय से मिथ्यादृष्टि जीव के अनादि काल से लेकर, नाना प्रकार की भोगसामग्री को भोगते हुए, मोह–राग–द्वेषरूप अशुद्धपरिणति के कारण, कर्म का बन्ध अनादि काल से होता था, सो [अधुना] सम्यक्त्व की उत्पत्ति से लेकर, [तत् विज्ञानघनौघमग्नं] शुद्धजीवस्वरूप के अनुभव में समाता हुआ [खिन्ना] मिट गया, सो [न किञ्चित्] मिटने पर, कुछ है ही नहीं; जो था, सो रहा। कैसा था क्रिया का फल? 'यस्मात् स्वपरयोः पुरा द्वैतं अभूत्' [यस्मात्] जिस क्रिया के फल के कारण, [स्वपरयोः] यह आत्मस्वरूप— यह परस्वरूप, ऐसा [पुरा] अनादि काल से लेकर, [द्वैतं अभूत्] द्विविधापन हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि मोह–राग–द्वेष स्वचेतना परिणति जीव की, ऐसा माना। और क्रियाफल से क्या हुआ? 'यतः अत्र अन्तरं भूतं' [यतः] जिस क्रियाफल के कारण, [अत्र] शुद्धजीववस्तु के स्वरूप में [अन्तरं भूतं] अन्तराय हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव का स्वरूप तो अनन्त चतुष्टयरूप है। अनादि से लेकर अनन्त काल गया, जीव ने अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त किया, चतुर्गति संसार का दुःख प्राप्त किया, सो वह भी क्रिया के फल के कारण। और क्रियाफल से क्या हुआ? 'यतः रागद्वेषपरिग्रहे सति क्रियाकारकैः जातं' [यतः] जिस क्रिया के फल से, [रागद्वेष] अशुद्धपरिणतिरूप [परिग्रहे] परिणाम हुआ। ऐसा [सति] होने पर, [क्रियाकारकैः जातं] जीव, रागादि परिणामों का कर्ता है तथा भोक्ता है इत्यादि जितने विकल्प उत्पन्न हुए, उतने क्रिया के फल से उत्पन्न हुए। और क्रिया के फल के कारण क्या हुआ? 'यतः अनुभूतिः भुञ्जाना' [यतः] जिस क्रिया के

फल के कारण, [अनुभूतिः] आठ कर्मों के उदय का स्वाद [भुञ्जाना] भोगा। भावार्थ इस प्रकार है कि आठ ही कर्मों के उदय से, जीव अत्यन्त दुःखी है सो भी क्रिया के फल के कारण।।१४-२७७।।

पौष कृष्ण ९, शनिवार, दिनांक-१५-०१-१९६६, कलश-२७७, २७८, प्रवचन-२९६

---

२७७ श्लोक। 'साध्य-साधक अधिकार' अधिकार पूरा करते हैं।

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः।
भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किंचिन्न किंचित्किल ।।१४-२७७।।

क्या कहते हैं? देखो! '**किल**' अर्थात् **निश्चय से जिसका अवगुण कहेंगे,...** जिसका अर्थात् पर्यायदृष्टि होकर मिथ्यादृष्टि में अनादि काल से अज्ञान खड़ा करके राग-द्वेष किये और हर्ष-शोक को भोगा। अनादि काल से अज्ञानभाव से अपने शुद्ध आनन्दस्वभाव को भूलकर और राग और द्वेष की क्रिया तथा उसका फल भोगकर जो अनन्त काल से दुःखी हुआ है, उसके अवगुण कहूँगा। उसका अवगुण कहूँगा। **ऐसा जो कुछ एक पर्यायार्थिकनय से मिथ्यादृष्टि जीव के...** अनादि से राग और विकार पर जिसकी दृष्टि थी। समझ में आया? अनादि से शुद्ध आनन्द ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि से भ्रष्ट हुआ। पुण्य और पाप की वृत्ति की विकृत दशा के ऊपर दृष्टि थी, ऐसा मिथ्यादृष्टि अनादि का अज्ञानी पर्यायबुद्धि जीव। समझ में आया?

अनादि काल से लेकर, नाना प्रकार की भोगसामग्री को भोगते हुए,... सामग्री पर लक्ष्य करके 'भोग सामग्री को भोगता हुआ' यह तो निमित्त से कथन है। अनुभव को न भोगने से भोग सामग्री को भोगता हुआ, इसका अर्थ जो कोई बाह्य साधन मिले, उसमें लक्ष्य रखकर राग और द्वेष की क्रिया और विकार को भोगा। समझ में आया? अनादि से इसने यह भोगा। **मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्धपरिणति के कारण,...** राग-द्वेष और सामग्री मेरी है, ऐसी मिथ्याभ्रान्ति और अनुकूल-प्रतिकूलता में इष्ट-अनिष्ट की राग-द्वेष

की वृत्ति, उसके कारण से **कर्म का बन्ध अनादि काल से होता था,....** देखो! यह अनादि काल से कर्मबन्धन उसके कारण से था। एक श्लोक में अनादि-अनन्त सब बात कर देंगे। एक ही श्लोक ऐसा अन्तिम है कि उसमें समस्त बात (कर देंगे)।

वह... 'अधुना' अनन्त काल से विकार की वृत्ति की और भोगी और उसके ऊपर की दृष्टि से अनन्त काल में चौरासी के अवतार में भटकता आया। **'अधुना'** अब **सम्यक्त्व की उत्पत्ति से लेकर,...** अब आत्मा आनन्द शुद्ध ज्ञायक हूँ, ऐसी दृष्टि की—सम्यग्दृष्टि की उत्पत्ति से लेकर। समझ में आया? कहो, यह लड़कों को समझ में आये ऐसा है। लड़कों! रखो पुस्तक यहाँ बहुत रखी है, अब कल से बन्द होगा। बड़े-बड़े हों वे तो रखे...

आत्मा तो यह है वह है अनादि का सच्चिदानन्द अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, परन्तु उसे भूलकर अनादि से विकार और पुण्य-पाप की वृत्ति की अवस्था दृष्टि में इसमें ऐसी भोग की सामग्री को भोगने के लक्ष्य से राग-द्वेष और मोह को भोगा। कहो, बराबर है? कहाँ गये मोहनभाई? गये वापस? क्या हुआ? क्या हुआ? नहीं खबर? यह आत्मा वस्तु तो ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप वस्तु है, वह है, परन्तु उसकी अनादि निगोद से लेकर, निगोद से लेकर और नौवें ग्रैवेयक तक के भव किये, उसमें इसने पर्यायबुद्धि अर्थात् विकार की बुद्धि पुण्य और पाप तथा भोग सामग्री पर लक्ष्य करके हर्ष-शोक को भोगा और राग-द्वेष को किया, मिथ्यात्व भाव के कारण, बस! यह संसार, यह भटकने का, उपाधि का यह संसार। वह अब समकित की उत्पत्ति लेकर, देखो! अनादि से अन्त लेकर सादि-अनन्त मोक्ष की क्रिया अब शुरु हो गयी। यह राग और द्वेष यह विकल्प, वह मैं नहीं, मैं तो ज्ञानस्वरूपी चिदानन्द आनन्दकन्द हूँ।

ऐसी दृष्टि की उत्पत्ति से लेकर **शुद्ध जीवस्वरूप के अनुभव में समाता हुआ....** विकार और पुण्य-पाप का भाव, हर्ष-शोक का अनुभव, उसे टालकर और स्वरूप की दृष्टि होने से वह अज्ञान और विकार (नाश पाकर) **अनुभव में समाता हुआ....** उस दशा का नाश हो गया। वह दशा अन्दर में समा गयी। आत्मा का भान होने से अज्ञान अन्दर में समा गया। आत्मा स्वयं ही अज्ञानरूप से, राग-द्वेषरूप से परिणमा था, वह ज्ञानरूप

से परिणमने से अज्ञान का नाश हो गया। कहो, समझ में आया इसमें? देखो! इसमें कहीं कर्म के कारण यह कहीं डाला नहीं। ऐसा है नहीं। स्वयं ही अपने को भूलकर विकार की वृत्ति की दृष्टि में पड़ा, निर्विकारी आत्मस्वभाव को भूला। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि जीव, सेठ या राजा, देव या नारकी सब आत्मा को भूले हुए, अनादि से अपनी निधि चिदानन्द को भूलकर विकार को किया और विकार को भोगा, वह अब समाता है। अरे! मैं आत्मा हूँ। मैं ज्ञानस्वरूप शुद्ध चिदानन्द चैतन्यस्वरूप हूँ। ऐसी दृष्टि होने से वे सब **अनुभव में समाता हुआ मिट गया,...** विकारी क्रिया और विकारी फल सब मिट गया। समझ में आया?

यहाँ सामग्री की कोई बात नहीं है। संयोग तो उसके घर में उसके कारण से परिणमते हैं। मात्र अपनी चैतन्य की आनन्द की जाति को भूलकर और राग और द्वेष को करके तथा हर्ष-शोक को भोगा। बस! यह इसने अनादि से मिथ्यादृष्टि में, अंश बुद्धि में, विकारबुद्धि में, असत्यबुद्धि में, अज्ञानभाव में यह किया और यह भोगा। पर का किया और भोगा, यह बात है नहीं। समझ में आया या नहीं? डॉक्टर का धन्धा-बन्धा किया नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐ... रतिभाई! क्या यह तुम्हारा धन्धा? वह कुछ किया नहीं, कहते हैं। यह मशीन हिम्मतभाई की लो न! कुछ किया नहीं कभी इसने। इसने किया हो तो आत्मा को भूलकर राग और द्वेष। बराबर होगा? और भोगा हो तो हर्ष और शोक। दुकान-बुकान का कुछ किया नहीं। खोटी बात है न? समझ में आया? अनादि से इसने आत्मा को भूलकर भूल भाव को किया। भूल भाव को किया और भूल भाव को भोगा। एक रजकण को भी किया नहीं और एक रजकण को कभी इसने बदला या भोगा नहीं। कहो, मगनलालजी! सच्ची बात होगी यह? यह सब मशीन-बशीन चलती है न? वह अभी डाली दुकान बड़ी डालेंगे। कहो, समझ में आया इसमें? पूरे समयसार का अन्तिम एक श्लोक में सार रख देते हैं, लो! ऐसी कोई शैली है। आहाहा!

'**अधुना**' भगवान आत्मा ज्ञानसागर है। वह आनन्द का सागर ज्ञाता-दृष्टा है, उसमें राग या कुछ है नहीं। ऐसा स्वरूप का भान होने से, वह अज्ञान ज्ञान में समा गया। **मिट गया, सो मिटने पर, कुछ है ही नहीं;...** समझ में आया? वह डोरी में गाँठ थी, वह गाँठ खुल गयी फिर गाँठ कुछ है ही नहीं। डोरी होती है न डोरी? गाँठ लगाते हैं न?

इसी प्रकार पुण्य और पाप की एकत्वबुद्धि की गाँठ थी, वह स्वभाव की दृष्टि होने से गाँठ-बाँठ है नहीं, कुछ है ही नहीं। समझ में आया? ओहोहो! गजब भाई! बड़ी भूल अनादि की करके फिर तुरन्त मिटायी। मिटायी, वह एक क्षण में, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **मिटने पर, कुछ है ही नहीं; जो था, सो रहा।** जो था, वह रहा। भगवान ज्ञानमूर्ति अनाकुल आनन्द का कन्द जो था, वह रहा। विकार और वृत्ति का भोग और कर्तापना वह सब गया। कहो, रतिभाई! सम्यक्त्व की उत्पत्ति के कारण, हों! तब से सब गया।

कैसा था क्रिया का फल? 'यस्मात् स्वपरयोः पुरा द्वैतं अभूत्' जिस क्रिया के फल के कारण, यह आत्मस्वरूप—यह परस्वरूप, ऐसा अनादि काल से लेकर, द्विविधापन हुआ। एक का दो हुआ अनादि से। ज्ञानानन्द शुद्ध स्वरूप है, उसे भूलकर हो गया राग और विकारवाला। एक का दो हुआ। अनादि का दोपना अंगीकार हुआ। देखो! यह विशिष्टता द्वैतपना कहने में। वस्तु तो सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द मूर्ति वस्तु आत्मा है। वह एक। उसे भूलकर विकार और पुण्य-पाप दूसरे, उन्हें अपने किये। एक मिटकर दो हुआ अनादि का। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन और स्त्री, पुत्रवाला दो हुआ, ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

परस्वरूप ऐसा... आत्मा वस्तु ज्ञानज्योति चैतन्यद्रवय अनादि-अनन्त और राग-द्वेष क्षणिक विकार पुण्य-पाप की विकल्प वृत्तियाँ, वह द्विविधापना इसने अंगीकार किया। अनादि का एकरूप मिटकर दोपना इसने माना है। जो दोपना इसके वस्तु के स्वरूप में नहीं। समझ में आया इसमें? इसमें तो समझ में आये ऐसा है, हों! इसमें कहीं बहुत ऐसे पठन नहीं। कहाँ गया इसमें? विपिन है या नहीं? सबने ली पुस्तकें? कहाँ गयी? रखी हैं या नहीं पुस्तकें? क्या है? रखी है? समझ में आया इसमें? क्या कहते हैं?

यह आत्मा अन्दर वस्तु है न? यह पदार्थ है। महान शान्तरस और आनन्द का कन्द वस्तु है। ऐसी वस्तु की दृष्टि छोड़कर और इसने उसमें नहीं था, ऐसे विकार पुण्य-पाप, हर्ष-शोक और राग-द्वेष उत्पन्न करके एक का दो हुआ। एक था, उसका दो हुआ। एक था और शरीर, स्त्री, पुत्र और कर्म दो हुए, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **द्विविधापन हुआ।**

भावार्थ इस प्रकार है कि मोह-राग-द्वेष स्वचेतना परिणति जीव की, ऐसा माना। लो! माना। मैं एक ज्ञानस्वरूप आनन्द हूँ, ऐसा मानना भूलकर, राग और द्वेष, तथा पुण्य-पाप के विकल्प, वह मैं हूँ, वही मैं हूँ, स्वचेतना वही मैं हूँ, यह... यह...। राग-द्वेषरूपी स्वचेतना, ऐसा। पुण्य-पाप और मिथ्यात्वरूपी मेरी चेतनापरिणति, वही जीव की है, ऐसा माना। कहो, समझ में आया इसमें? समझ में आया या नहीं? ऐई! सूर्यकान्त! उस थोथा में कुछ नहीं, हों! यह सब समझने जैसा है। पढ़ाई पढ़-पढ़कर बड़े मानो क्या पढ़ना होगा! कहते हैं कि यह पढ़े बिना सब चक्कर है चक्कर। आहाहा!

और क्रियाफल से क्या हुआ? 'यतः अत्र अन्तरं भूतं' जिस क्रियाफल के कारण,... क्रियाफल अर्थात्? भगवान आत्मा पुण्य-पाप के राग-द्वेष की क्रिया बिना का है, ऐसा न जानकर उसे पुण्य-पाप के राग की क्रियायें चक्कर फिराये। शुभ अशुभ... शुभ-अशुभ... शुभ-अशुभ... ऐसे विकल्पों की वृत्ति राग की क्रिया में (चक्कर) किये। वह **क्रियाफल के कारण, शुद्ध जीववस्तु के स्वरूप में अन्तराय हुआ।** भगवान आत्मा में अनुभव का अन्तराल पड़ा। शुद्ध स्वरूप शुद्ध वस्तु और यह विकार क्रिया, इस विकार क्रिया के फल को भोगता हुआ शुद्ध स्वरूप का अन्तराल पड़ गया, विरह पड़ गया, अनादर हो गया, वस्तु रह गयी एक ओर। यह विकार एक ओर भोगने लगा। समझ में आया?

यह अपने शुद्धस्वरूप के स्वभाव में से हट गया और पुण्य-पाप, राग-द्वेष की क्रिया में गया, शुद्ध स्वरूप का इसे विरह पड़ गया, अन्तराल पड़ गया अन्तराल, वह एक का ही अनुभव रह गया। कहो, समझ में आया या नहीं? यह एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय यहाँ सब बातें इसमें कहीं नहीं आती। भगवानजीभाई! 'जीव्या ओरवीया...' यह 'जीव्या ओरवीया' कहा। चैतन्य ज्ञानानन्द स्वभाव, उसे जिलाया—जीवत्व उसका शुद्ध, उसे भूलकर विकार को अपना माना, उसने 'जीव्याओ ओरवीया' किया। उसने जीव के स्वभाव को छोड़ दिया और विकार की क्रिया को भोगते हुए शुद्ध स्वरूप का अनुभव अन्तर में पड़ गया, अन्तराल पड़ गया, एक ओर रह गया। आहाहा! समझ में आया? **शुद्ध जीववस्तु के स्वरूप में अन्तराय हुआ।** अन्तराय हुई। उसका अनुभव

हुआ, भगवान के अनुभव का अन्दर में अन्तराय पड़ा। कहो, रतिभाई! यह अन्तराय डाली इसने, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कर्म के ऊपर डाली...

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म की कहाँ बात की है यहाँ? यह विकार के परिणाम स्वयं कृत्रिम खड़े करके जो जाति की भात में गन्ध नहीं, उसे एक समय की दशा में खड़ा करके, उसकी क्रिया के फल के भोगने में पड़ा (तो) भगवान आत्मा आनन्द का इसे अन्तराय पड़ गया। आहाहा! भाषा तो देखो आचार्य की। समझ में आया? यह अन्तराय पड़ा तुझे, ऐसा कहते हैं। तेरे शुद्ध स्वरूप के अनुभव का तुझे अन्तराय पड़ा, बापू! यह विकार की दशा राग और द्वेष, हर्ष-शोक को भोगते हुए वह क्रिया, उस विकार की क्रिया को भोगते हुए निर्विकारी आत्मा के अनुभव का तुझे अन्तराय पड़ा है। आहाहा! यह अन्तराय कर्म के कारण से नहीं।

देखो! यह श्लोक कितना स्पष्ट है! पूरे समयसार का स्वरूप एक श्लोक में सार में रख देंगे। यह तो अनादि-अनन्त संसार इसमें समाहित कर दिया। अनादि-अनन्त जीव का स्वरूप, अनादि—शान्त मिथ्यात्व और सादि-अनन्त मोक्ष के मार्ग से मोक्ष। समझ में आया? नाटक भी बतावे तो थोड़े समय में बताते होंगे या नहीं? कि सब इतना देखता होगा? तीन लाख मालवा का अधिपति भर्तृहरि ९२ वर्ष या कितने वर्ष जिया होगा? होवे तो सही। परन्तु इतने वर्ष नाटक दिखाते होंगे? नाटक तो दस से दो, चार घण्टे में सौ वर्ष का बता देते हैं इसे। इसी प्रकार इस एक श्लोक में सब बता देते हैं। आहाहा!

भाई! तेरे अनुभव में तुझे अन्तराय पड़ी, प्रभु! क्यों? तू अनुभव करने लगा विकार का। शरीर, वाणी, मन, धूल का और पैसे का, लड्डुओं का नहीं। तूने आत्मा में नहीं, ऐसी विकल्प की दशायें उत्पन्न (की)। विकार दया, दान, व्रत, काम, क्रोध, भक्ति, पुण्य-पाप खड़े करके राग-द्वेष किये और उन्हें तूने भोगे। भगवान के भोग का, भगवान के भोग का तुझे अन्तराय पड़ गया। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जीव का स्वरूप तो अनन्त चतुष्टयरूप है। देखो! भगवान आत्मा का स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन और अनन्त बल

है। आत्मा कैसा है सबका? वह आत्मा अन्दर कैसा है यह? अनन्त ज्ञानवाला, अनन्त आनन्दवाला, अनन्त आनन्दरूप, अनन्त ज्ञानरूप, अनन्त दर्शनरूप, अनन्त वीर्य और बलरूप—ऐसा आत्मा है। है अन्दर? लेख है? कितनी लाईन में है? पाँचवीं। ऐसे बोले तब खबर पड़े न! देखो! पाँचवीं है देखो! **जीव का स्वरूप तो अनन्त चतुष्टयरूप है...** भगवान आत्मा का स्वभाव—स्वरूप, उसका सत्त्व, उसका माल, आत्मा का माल तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द दर्शन है। वस्तु तो उसका माल यह है, वह जीव का स्वरूप है, वह जीव की सत्ता है, वह जीव का स्वभाव है, वह जीवपना इतना है।

अनादि से लेकर, अनन्त काल गया,... अनादि से लेकर अनन्त काल गया, हों! अब अनन्त काल जायेगा, इसका प्रश्न नहीं। अनादि से लेकर अनन्त काल अभी तक गया, कहते हैं। जब तक सम्यक्त्व पाया नहीं, तब तक। अनादि काल से अनन्त काल। अनादि काल में अनन्त काल गया। **जीव ने अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त किया,...** अपने आनन्दस्वरूप को इसने एक समय भी प्राप्त नहीं किया। कहो, बराबर है यह? आहाहा! **चतुर्गति संसार का दुःख प्राप्त किया,...** देखो! यहाँ तो चारों गति ली है। नारकी, मनुष्य, पशु और देव, इसने सब जगह दुःख भोगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में सुख (नहीं), कौन कहते है सुखी? कौन कहता है सुखी है? राजा, रंक, नारकी और देव सब चैतन्य के आनन्दस्वरूप को भूलकर और विकार को भोगने के लिये चार गति में पड़े हैं, विकार को भोगने में चार गति के दुःख में पड़े हैं। आहाहा! कहो, जेचन्दभाई! क्या होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं यह खोटी बात है। दुःख में शरीर के लिये। यह सब दुःखी के जीवड़ा है, कहते हैं। आत्मा के आनन्द में से हट गये हैं और विकार के वेदन में आये हैं, चार गति के जीव सब दुःखी हैं।

मुमुक्षु : किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग और द्वेष के कारण से।

मुमुक्षु : शरीर की बीमारी के कारण से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बीमारी की खोटी बात, झूठी बात है। बीमारी की खोटी बात है। बीमारी के कारण दु:खी है, यह बात (खोटी है)। बीमारी बीमारी में (रही)। परन्तु बीमारी कहना किसे ? वह तो पर्याय का ऐसा धर्म है। बीमारी कहना किसे ? शरीर की पर्याय उसरूप परिणमना, वह तो उसका पर्याय धर्म है। उसे बीमारी कहना कैसे ? और रोग कहना कैसे ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रोग कहाँ है ? रोग कहना किसे ? परमाणु उसकी पर्याय से परिणमे, उसे रोग कैसा ? उनकी पर्यायरूप से वे परिणमे हैं। उनका पर्याय धर्म है, उस रूप परिणमे हैं। उस परिणमन को अच्छा नहीं, ऐसा कहना कैसे ? समझ में आया ? यह अच्छा नहीं, ऐसी कल्पना खड़ी की है और यह करता और भोगता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! और यह अच्छा। अच्छा है नहीं कुछ, आत्मा के अतिरिक्त। परन्तु यह अच्छा, ऐसी कल्पना करके कल्पना को भोगता है, वह कल्पना भोगनेवाला दु:खी है। वह अच्छा, ऐसा मानकर भी कल्पना की, वह दु:खी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न! सम्यग्दर्शन हो तो विपत्ति अवधि कहते हैं न! वह तो पहले कही। इससे पहले कहकर बात उठायी थी। विस्तार से की है। आहाहा!

कहते हैं कि **और क्रियाफल से क्या हुआ ?** देखो! **चतुर्गति संसार का दु:ख प्राप्त किया, सो वह भी क्रिया के फल के कारण।** यह राग-द्वेष की क्रिया के कारण से। संयोग के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। पुण्य और पाप, राग-द्वेष की क्रिया के कारण से दु:खी हुआ है, ऐसा कहते हैं। शरीर के कारण से, बाहर के संयोग के कारण से दु:खी है, ऐसी बात है ही नहीं। भाषा क्या रखी है ? क्रिया के फल के कारण से। कहो, समझ में आया या नहीं ? ऐई! नरेन्द्र! यह तो ध्यान रखता है। कहो, समझ में आया ?

जिनेन्द्र है आत्मा। आहाहा! कहते हैं कि जिनेन्द्र को भूलकर और राग-विकार

जो जिनेन्द्रस्वरूप में नहीं, उसे करके और उसकी क्रिया विकार को बदलकर उसे भोगता है। आहाहा! **और क्रियाफल से क्या हुआ? 'यतः रागद्वेषपरिग्रहे सति क्रियाकारकैः जातं'** उस क्रिया के फल में क्या हुआ? **जिस क्रिया के फल से, अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम हुआ।** वह पुण्य और पाप अशुद्ध भाव को इसने पकड़ा। शुद्ध स्वरूप को छोड़ दिया। समझ में आया? भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति सच्चिदानन्द स्वरूप को छोड़कर उसने पुण्य-पाप की अशुद्ध परिणति को पकड़ा। यह इसने किया परिग्रह। यहाँ पैसा-बैसा के परिग्रह की बात नहीं है। बराबर होगा मणिभाई? तुमको सब पैसेवाला कहते हैं? खोटी बात है? भाई! मणिभाई का नाम पड़ता है वहाँ सब पैसेवाले पचास लाख और.... यह जेचन्दभाई कहते थे, मुम्बई के सिंह थे। अब सिंह-बिंह कहाँ? भाई! आहाहा!

दुनिया की दृष्टि संयोग पर है, कहते हैं। स्वभाव दृष्टि की खबर नहीं, इसलिए संयोगी—विकार की वृत्ति को उत्पन्न करके, उसके फल को भोगता है, वह क्रिया राग के कारण से। संयोग के कारण से नहीं, बाहर के निमित्त कारण से नहीं। आनन्दमूर्ति को भूलकर दुःख की क्रिया, राग-द्वेष उत्पन्न किये, ऐसी क्रिया के कारण से वह दुःखी है। दूसरे किसी कारण से दुःखी नहीं है। आहाहा! एक श्लोक में तो निमित्त को उड़ाया, व्यवहार को उड़ाया। वापस समकित और स्वरूप प्राप्त हो गया, ऐसा कह दिया सीधे। ओहोहो!

अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम हुआ। ऐसा परिग्रह का अर्थ किया। परिग्रह का अर्थ किया। भगवान आत्मा अपने परमानन्द शुद्ध को भूलकर पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ अशुद्ध परिणाम का उसे परिग्रह हो गया, पकड़ हो गयी। यहाँ पकड़ गया इसलिए यह पकड़ हुई। कहो, बराबर है? गये तुम्हारे जेठाभाई? **ऐसा होने पर,... 'क्रियाकारकैः जातं'** क्या कहते हैं? यह पुण्य-पाप के राग को पकड़ने से **जीव रागादि परिणामों का कर्ता है तथा भोक्ता है...** आहाहा! भगवान आत्मा वह पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव अशुद्ध परिणति, विकार की वृत्ति का कर्ता और उसका भोक्ता (हुआ)। **इत्यादि जितने विकल्प उत्पन्न हुए, उतने क्रिया के फल से उत्पन्न हुए।** लो! यह राग-द्वेष का परिणमन हुआ और इससे सब कारक खड़े हुए, कहते हैं। कर्म के कारण से

नहीं, स्वभाव के कारण से नहीं। समझ में आया? आहाहा! इस नाटक का पर्दा अब बन्द होता है। आहाहा! वहाँ भी पर्दा बन्द करते हैं न? दो बजे के बाद करे न? नाटक पूरा हुआ, जाओ। यह नाटक पूरा होता है। समयसार नाटक।

कहते हैं, **और क्रिया के फल के कारण क्या हुआ? 'यतः अनुभूति भुञ्जाना' जिस क्रिया के फल के कारण, आठ कर्मों के उदय का स्वाद भोगा।** यह आठ कर्म का स्वाद अर्थात् विकार, यह आठ कर्म का स्वाद है, ऐसा कहते हैं। यह कहीं आत्मा का स्वाद नहीं। ऐसा इसलिए आठ कर्म का स्वाद (कहा)। जड़ का स्वाद, ऐसा नहीं। वह जड़ का नहीं। आठ कर्म का फल अर्थात् चैतन्य के आनन्द का फल नहीं, इसलिए आठ कर्म के लक्ष्य से उत्पन्न किया हुआ फल उस दुःख को इसने भोगा। '....' यह भाव। आठों कर्म का फल इसके लक्ष्य में जाने से विकार ही आवे और दुःख ही हो उसमें। आत्मा वस्तु की ओर में दुःख कहाँ है? दो जाति है—एक आत्मा की ओर जाती है तो आनन्द आता है, कर्म की ओर जाये तो दुःख आता है। समझ में आया?

आठ कर्मों के उदय का स्वाद... ऐसा लिया है न? आठ कर्म का जो उदय आया, उसमें जुड़ा, उसका उसे स्वाद आया। चैतन्य में न जुड़ा और कर्म में जुड़ा, ऐसा कहते हैं। बराबर है? बदल जाता है। यह बदल जाता है न! अनादि का यह कर्म को भोगता है, ऐसा नहीं परन्तु कर्म के स्वाद को उस निमित्त में जहर स्वाद है। उसकी ओर लक्ष्य करके उसके स्वाद को भोगे। जड़ को क्या भोगे? रजकण को कोई भोगता होगा? मिट्टी की बात तो दूर कही। अपने राग-द्वेष की क्रिया बदलते... बदलते... बदलते... आठ कर्म के लक्ष्य से दुःख को भोगता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उसकी और उसकी पर्याय में क्रीड़ा करता है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं, लो! बाकी सब पदार्थ भले सामने हो, परन्तु मूढ़ अपनी जाति को भूलकर विकार की क्रिया करता हुआ, विकार को भोगता हुआ, इस आठ कर्म को ही भोगता है, चैतन्य के फल को भोगता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, यह लड़कों को यह खेल होते हैं न मजा? दडा उठे और अमुक हो। उसमें क्या होता होगा? राग होता है। लो, भाई! लड़का कहता है। राग, उस राग को भोगता है, दडा को नहीं। क्या होगा? सूर्यकान्त! राग? आहाहा! राग का मजा अर्थात् दुःख का। हर्ष सन्निपात है न? दाँत निकालता है

या नहीं? कितनी सूजन चढ़ी हो और ऐसे मरने की तैयारी हो तो दाँत निकालता है (हँसता है)। ऐसा है यह सब। खेल में और राग में मजा मानता है। आहाहा! वह गद्दी पर बैठा पैसे का लक्ष्य करके मजा मानता है। यह पाँच, दस लाख आये वहाँ। आहाहा! लाभ हुआ। यह राग को मजा मानता है। धूल को कौन मानता है? कैसे होगा? मोहनभाई! कागज-बागज आवे ठीक से चन्दुभाई को वहाँ से कि भाई! यह बापू! इस बार अपने को ठीक है, हों! ब्याज-ब्याज ठीक से उपजता है और ठीक है। उस पत्र को भोगता है? यहाँ किसको खबर है? परन्तु यह तो वह निवृत्त अकेला क्या करे दूसरा? तो यह करे। अच्छा, बापू! प्रकाश पैदा करे तो ठीक करे तो अच्छा। मुफ्त के बैठे-बैठे पाप करता है। अब वह किसी का लड़का, किसी का आत्मा, किसी के रजकण और किसी के रजकण आवे, वहाँ कहे, यह हो तो ठीक। ऐसे राग के भाग को मजा मानकर मूढ़ दु:ख को भोगता है। भाई! तू तेरे भाव को भूलकर विकार भाव की क्रिया करता हुआ उसके फल को तू दु:खरूप से भोगता है, दूसरा कुछ है नहीं। आहाहा!

उदय का स्वाद भोगा। भावार्थ इस प्रकार है कि आठ ही कर्मों के उदय से, जीव अत्यन्त दु:खी है, सो भी क्रिया के फल के कारण? देखा? यह राग-द्वेष की क्रिया करे, उसके कारण से दु:खी है, ऐसा कहते हैं। क्रिया बिना का अर्थात् पुण्य-पाप के राग की क्रिया बिना का भगवान आत्मा ऐसे अक्रिया चिदानन्दस्वभाव को भूलकर शुभ-अशुभ अशुद्ध परिणति राग की क्रिया को करता हुआ उसके फल को अर्थात् आठ कर्म के फल को भोगता है। उस क्रिया का फल यह है, उसका। समझ में आया?

यह नौवें ग्रैवेयक गये हुए जीव तक की बात ली, भाई! मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक गया (तो) क्या किया था उसने? शुभभाव किया था, पंच महाव्रत और यह... तो कहते हैं कि उसने अशुद्धपरिणति पकड़ी थी, अशुद्ध परिणति का फल, क्रिया का फल तो दु:ख है, दु:ख को उसने भोगा है। निगोद का जीव भी दु:ख को भोगता है। मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक गया, दिगम्बर जैन साधु, उसने भी राग-द्वेष की क्रिया के फल को ही भोगा है। समझ में आया? दोनों एक ही पंक्ति में एक ही जाति के दोनों है, ऐसा कहते हैं। अनादि की एक बात की है या नहीं? शुद्ध आनन्द प्रभु ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि छोड़कर, द्रव्यदृष्टि छोड़कर, वस्तु की दृष्टि छोड़कर पर्यायदृष्टि अर्थात् विकल्प पुण्य-

पाप की वृत्ति पर अस्ति में आया, उसकी क्रिया बदली। रागादि का उसका फल तो दु:ख है। फिर निगोद का जीव हो या नौवें ग्रैवेयक (का) मिथ्यादृष्टि जीव हो, दिगम्बर साधु बाहर से हो, पंच महाव्रत के परिणाम हों, परन्तु उस राग की क्रिया को ही करे और राग की क्रिया को ही भोगता है। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त में आ गया इसमें। क्यों रतिभाई! न्याय से आता है या नहीं इसमें? या घचड़-पचड़कर है?

इसी और इसी में आत्मा की दृष्टि ने गुलांट मारी है, वह विकार को पकड़कर विकार की क्रिया कर्ता-भोक्ता होकर दु:खी है, बस! यह बात है। समझ में आया? एक था और दो हुआ, वह स्वयं। राग-द्वेष की क्रिया की है। वीतरागस्वरूप आत्मा को रागरूप मानकर, राग में सब विकार आ जाता है। वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा अनादि-अनन्त उसकी चीज़ तो वह है। उस चीज़ में से हटकर उसने पुण्य-पाप की अशुद्ध परिणतिरूपी राग की क्रिया को पकड़कर एक का दो हुआ और उसके कारण यह स्वरूप के आनन्द का अन्तर पड़ गया, उसके कारण राग की क्रिया बदलने लगी, उसके फलरूप से सुख-दु:ख के भोग इसने (भोगे)। सुख-दु:ख अर्थात् यह दु:ख। इस दु:ख को भोगा और आत्मा का अनुभव वहाँ रह गया। समझ में आया?

ऐसे समझ में नहीं आता बहुत, यह तो संक्षिप्त बात है। इसे संसार है या नहीं? या मोक्ष है? तो संसार अर्थात् क्या? यह तो संसरण इति क्रिया संसार, ऐसा ख्याल में आया। शुद्ध चिदानन्द भगवान आत्मा में से हटकर विकार के अशुद्धभाव को परिणमा, वह संसार है, वह क्रिया संसार की है। चाहे तो पंच महाव्रत के परिणाम हों और चाहे तो मिथ्यात्व के, अव्रत के परिणाम हो, वह सब अशुद्ध परिणाम की क्रिया है, वह संसार की क्रिया है। वह स्वरूप के शुद्ध स्वरूप से हटकर 'संसरण इति संसार:' इस क्रिया को करके उसके राग-द्वेष के फल को वह भोगता है। अनादि से इसने ऐसा किया है।

यह जब सम्यग्दर्शन होता है तब... पहले बात कह गये यह तो, पहले कह गये। **सम्यक्त्व की उत्पत्ति से लेकर....** आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप हूँ। वस्तु में राग और द्वेष, विकल्प और अपूर्णता बिल्कुल नहीं, ऐसी पूर्ण शुद्ध वस्तु की दृष्टि ज्ञायक की अन्तर तत्त्व है, ऐसी जो होती है, ऐसी दृष्टि अन्तर में होने पर वह अज्ञान और अज्ञान की क्रिया उसमें समा गये। अकेला ज्ञायकभाव जैसा था, वैसा रह गया। इसका नाम सम्यग्दर्शन

और इसका नाम मोक्ष। ऐ जमुभाई! इसमें समझ में आये ऐसा है या नहीं? इसमें चार कक्षा का पढ़ा हो, वह समझे ऐसा है यह तो। कहाँ गये? धर्मचन्दभाई! पाँचवाँ हो तो चार कक्षा का पढ़ा हुआ चाहिए। इसमें तो पढ़े उसकी भी आवश्यकता पड़े, ऐसा नहीं है। यह कुछ समझ में आये ऐसा है, ऐसे गुलांट और सुलटा। उसमें सुख-दु:ख, संयोग की ओर का लक्ष्य, स्वभाव का लक्ष्य नहीं, सब बात इसमें कह दी। आहाहा! परन्तु उसने कभी दरकार नहीं की7 आहाहा!

देखो न! एक क्षण में शास्त्रीजी (चले गये)। जरा कुछ था नहीं। कितने ताप के गोले... क्या कहलाता है? बड़ा विमान कुछ लेकर आया था। बड़ा ऊँचा कुछ था। विमान जीते जी लेने आया था, मुर्दा ले गया। यह संसार, वह भी किस प्रकार का? आहाहा! हाय... हाय... यह किया... यह किया... यह किया... अन्तिम घड़ी तक ऐसे किया। ऐसे बराबर किया, अपने ऐसा किया, अपने ऐसा किया, हमने ऐसा किया है। रतिभाई! आहाहा! भगवान ने भी भेंट की है न! पत्थर के साथ सिर फोड़ा। आहाहा!

चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा शान्तरस का सागर, जिसमें नजर पड़ने से शान्ति झरे, ऐसे भगवान को अनादि से भूलकर जिसमें पुण्य और पाप के विकार में अकेला दु:ख है, उसे इसने करके भोगा है। आहाहा! क्षण में कहाँ, क्षण में कहाँ। आहाहा! कहाँ भव पलटे, भाव पलटे, क्षेत्र पलटा, काल पलटा, सब पलट गया। कहाँ आत्मा... यह राग-द्वेष के परिणाम पलटकर दूसरी दशा हो गयी। ओहोहो! अदृश्य (गुप्त)। विकार की वृत्ति में पड़ा अदृश्य (गुप्त) लग गया इसे, चैतन्य का उजाला नजर में पड़ा नहीं।

मुमुक्षु : ....तुम्हारी अध्यात्मनगरी में इसका क्या असर हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अध्यात्मनगरी में यह असर हुआ। देखो न! यह कहते हैं यहाँ। आहाहा! और बाहर कदम जहाँ रखा, साढ़े छह हुए (तो किसी ने कहा), लालबहादुर शास्त्री गुजर गये, मंगलवार को सवेरे में। वहाँ कमरे में सो रहे थे उन मूलजी जेठा की धर्मशाला, धर्मशाला। कोई आया, कहे, लालबहादुर शास्त्री (गुजर गये)। कहा, लालबहादुर शास्त्र कौन और? वह बड़ा ... हार्टफेल। इलाज करते हैं न? क्या करते हैं वहाँ? इलाज दिया, यह दिया है वहाँ। मुर्दा को इलाज देते हैं न? बड़ी पुलिस...

इलाज। यह हार्टफेल। जाओ, यहाँ से छूटकर। मरण में इलाज दिया। अरे! भगवान! आहाहा! जगत का अन्धेरा, अन्धेरा ही उलेचा है, इसने कभी चैतन्य को देखने की दरकार नहीं की। आहाहा! एक समयमात्र में मृत्यु। कहीं फेरफार, फेरफार (हो नहीं)। वहाँ कोई राज नहीं, कोई पुलिस नहीं, कोई मनुष्य नहीं, कोई उस शरीर का ठींगणुं नहीं, वह सब सब गया। यह स्त्री नहीं और उसकी माँ नहीं और पुत्र नहीं। आहाहा! यह राग और द्वेष की अशुद्ध परिणति में परिणमता, परिणति क्रिया में खड़े-खड़े फिरा करता है।

मुमुक्षु : वह भी सब भूल गया होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब सब भूल गया। दूसरा कहाँ था उसे? राग और द्वेष है, उसमें है, उसी और उसी में। आहाहा! उसका किया और उसका भोगा, उसमें लतपत हो गया।

अन्तिम श्लोक। आचार्य कहते हैं कि हमने यह शास्त्र नहीं बनाये, हों! आहाहा! हमने यह शास्त्र नहीं बनाये। हों! यहाँ तो कहते हैं कि हमने दुनिया के सब काम किये। मलूकचन्दभाई! मलूकचन्दभाई तो बहुत करते हैं, नहीं? इनका लड़का बहुत करता है, ऐसा कहते हैं, लोग कहते हैं। यह वह कहाँ करता है और वह यह कहाँ करे? भाव करे। आहाहा!

कलश - २७८

(उपजाति)

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ।।१५-२७८।।

खण्डान्वयसहित अर्थ— 'अमृतचन्द्रसूरेः किञ्चित् कर्तव्यं न अस्ति एव' [अमृतचन्द्रसूरेः] ग्रन्थकर्ता का नाम अमृतचन्द्रसूरि है, उनका [किञ्चित्] नाटक-समयसार का [कर्तव्यं] करना [न अस्ति एव] नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि नाटक-समयसार ग्रन्थ की टीका का कर्ता अमृतचन्द्र नामक आचार्य प्रगट हैं तथापि महान् है, बड़े हैं, संसार से विरक्त हैं; इसलिए ग्रन्थ करने का अभिमान नहीं करते हैं। कैसे हैं अमृतचन्द्रसूरि? 'स्वरूपगुप्तस्य' द्वादशांगरूप सूत्र अनादिनिधन है; किसी ने किया नहीं है—ऐसा जानकर अपने को ग्रन्थ का कर्तापना नहीं माना है जिन्होंने ऐसे हैं। इस प्रकार क्यों है? कारण कि 'समयस्य इयं व्याख्या शब्दैः कृता' [समयस्य] शुद्धजीवस्वरूप की [इयं व्याख्या] नाटक-समयसार नामक ग्रन्थरूप व्याख्या [शब्दैः कृता] वचनात्मक ऐसी शब्दराशि से की गई है। कैसी है शब्दराशि? 'स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैः' [स्वशक्ति] शब्दों में है अर्थ को सूचित करने की शक्ति, उससे [संसूचित] प्रकाशमान हुआ है, [वस्तु] जीवादि पदार्थों का [तत्त्वैः] द्रव्य-गुण-पर्यायरूप उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अथवा हेय-उपादेयरूप निश्चय जिसके द्वारा ऐसी है शब्दराशि।।१५-२७८।।

कलश - २७८ पर प्रवचन

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ।।१५-२७८।।

यह सब विवाद। कोई कहे, यह तो अहंकार छोड़ने के लिये कहा है। उसमें आयेगा। उसमें से निकाले, और उसमें से यह अर्थ में निकाला था हमारे मूलशंकर देखो! यह निमित्ति से कर्ता है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कर्ता, वह तो कहने का है। करे कौन? इसी और इसी शब्द में आता है न? निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से कर्ता है। वह तो उसका निमित्त है, उस उपकारी को उपकार गिनने के लिये कहा है। कर्ता-बर्ता कब रजकण का था? एक रजकण की पर्याय बदले नहीं, बापू! तुझसे हो नहीं। आहाहा!

'अमृतचन्द्रसूरेः किञ्चित् कर्तव्यं न अस्ति एव' कहते हैं यह **ग्रन्थकर्ता का नाम अमृतचन्द्रसूरि है,...** इस श्लोक के कर्ता टीका—यह कलश। **उनका नाटक-समयसार का 'किञ्चित्' करना नहीं है।** ऐसा लेना। **'किञ्चित्'** की व्याख्या 'नाटक समयसार' किया है परन्तु **'किञ्चित्'** अर्थात् इस समयसार नाटक का कुछ भी करना अमृतचन्द्राचार्य को नहीं है। यह श्लोक मैंने बनाये नहीं। बड़े पत्र के पत्र घढ़ डालते हैं। ऐसा फूलचन्दभाई करते थे वहाँ राजकोट में। हम गये थे, पत्र बिछाये थे पत्र। बोरियाँ बिछावे। जिसके घर में बोरियाँ हो वह तो बोरियाँ बिछाये। यह पत्र बिछाये थे। पीतल के थे? किसके थे? पीतल के। कौन बिछावे और कौन करे? कहते हैं, भाई! तुझे खबर नहीं, भगवान! वह तो पुद्गल की पर्यायें वहाँ फिरे, तुझसे कुछ हो नहीं। आहाहा!

यह अमृतचन्द्राचार्य महाराज फरमाते हैं, मेरा इसमें कर्तव्य किंचित् नहीं है, हों! जरा भी नहीं। अकिंचित्, इसका अर्थ हो गया। **भावार्थ इस प्रकार है कि नाटक-समयसार ग्रन्थ की टीका का कर्ता, अमृतचन्द्र नामक आचार्य प्रगट हैं...** निमित्तरूप से। **तथापि महान है, बड़े हैं, संसार से विरक्त हैं; इसलिए ग्रन्थ करने का अभिमान नहीं करते हैं।** मैंने किया, ऐसा मानते नहीं, ऐसा। मैंने किया, ऐसा मानते नहीं। समझ में आया? कहो, मगनलालजी! क्या है? देखो! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, पुस्तक मैंने बनायी नहीं। अब यहाँ मगनलालजी तो कितने पुस्तक प्रकाशित करते हैं। नाम किसका? भात किसका? रूप किसका?

यहाँ तो कहते हैं, **कैसे हैं अमृतचन्द्रसूरि? 'स्वरूपगुप्तस्य' द्वादशांगरूप सूत्र**

अनादिनिधन है.... स्वरूपगुप्त की व्याख्या करते हुए दूसरी व्याख्या करके वह करेंगे। यह द्वादशांग सूत्र अनादिनिधन है, बारह अंग की वाणी किसी ने की नहीं है। **किसी ने किया नहीं है—ऐसा जानकर,...** ऐसा। नहीं तो पाठ तो 'स्वरूप गुप्त' ही है, परन्तु बारह अंग की वाणी का ध्वनि अनादि से वाणीरूप परिणम रही है, उसका कर्ता कोई आत्मा-बात्मा है नहीं। आहाहा! **किसी ने किया नहीं है—ऐसा जानकर, अपने को ग्रन्थ का कर्तापना नहीं माना है जिन्होंने,...** यह शास्त्र की बारह अंग की रचना वाणी द्वारा अनादि से बनी आयी है।

'सिद्धो वर्ण समाम्नाय' .... है न? सूत्र है न? हमारे विद्यालय में पढ़ने से पहले यह दिया था मास्टर ने हमको। धूलीनिशाळ में पढ़ने गये थे पहले, ६९ वर्ष पहले धुलीनिशाळ में। नथु मास्टर ने पहले दिया था। नथु मास्टर से उन्होंने। **'सिद्धो वर्ण समाम्नाय'** अपने को कहाँ कब खबर थी? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आया तब (खबर पड़ी)। ऐसा पहले सिखाते थे, एकाड़ा भी सीखने से पहले। **'सिद्धो वर्ण समाम्नाय'** वर्ण की आम्नाय अनादि की है, हम उसके कर्ता या कोई कर्ता नहीं। ऐसा पहला सूत्र पहले वर्ष में गये और सुनाया था, रटा था, मुख से रटा था। रतिभाई! यह डेला के निकट पाठशाला थी। डेला है न वहाँ? उस ओर पाठशाला थी। वहाँ गये। सब खबर है, हों! **'सिद्धो वर्ण समाम्नाय'** नथु मास्टर का एक लड़का था मणिलाल। भोला जैसा, भट्ट जैसा, बेचारा साधारण। वे पढ़नेवाले सब आटा ले जाये, उससे उनका निभाव (होता था)। और कोई किसी दिन होवे तो... क्या कहलाये? ... विवाह हो तो दे, आठ आना, रुपया दो। उसके ऊपर निभे। पढ़ाई के पैसे-बैसे नहीं। **'सिद्धो वर्ण समाम्नाय'** है न, मोक्षमार्गप्रकाशक में है? वर्ण अर्थात् अक्षर की आम्नाय—रचना अनादि की हो रही है, उसका कोई कर्ता-हर्ता पर का हो नहीं सकता। आहाहा!

आचार्य कहते हैं, हमने ग्रन्थ का कर्तापना माना नहीं। **इस प्रकार क्यों है? कारण कि 'समयस्य इयं व्याख्या शब्दैः कृता'** देखो! यहाँ स्पष्ट कहा है। ऐसा नहीं कि अभिमान, ऐसा नहीं। बस, माना नहीं, ऐसा अभ्मिान का अर्थ है। **शुद्धजीवस्वरूप की नाटक-समयसार नामक ग्रन्थरूप व्याख्या, वचनात्मक, ऐसी शब्दराशि से की गई है।** यह शब्दराशि यह वर्गणा, शब्द से बना है, हम इसके कर्ता नहीं। कहो, बराबर होगा

यह ? यह शब्द की रचना कौन करता होगा ? ऐई सूर्यकान्त! क्या कहा ? क्या कहा ? भाषावर्गणा। ऐसा बोल न! भाषावर्गणा है। आत्मा उसे करता नहीं। यह आता है, नहीं ? जैनसिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। यह भाषावर्गणा, वचनवर्गणा जड़ के रजकणों से यह भाषा बनती है, आत्मा उसका कर्ता नहीं है। आचार्य कहते हैं, हमने शास्त्र नहीं बनाया। आहाहा! यह बड़ी दुकानें बनायी थी न ? जेचन्दभाई! सिर फोड़कर अमेरिका गये थे न! नहीं, नहीं। कहते हैं, सब अभिमान था। आहाहा! ऐसी टीका ऐसे आत्मा के भाव को खोलकर (की है, तो कहते हैं) शब्द ने खोली हुई है, हों! मैंने नहीं। आहाहा! तीनों बात करेंगे अन्त में, हों!

यह समयसार की व्याख्या '**शब्दैः कृता**' यह समयसार की शब्द से **वचनात्मक, ऐसी शब्दराशि...** शब्द के परमाणु के ढ़ेर पड़े हैं, उनमें से बनती है, कहते हैं। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञान जड़ को रचे ? परमाणु को रचे ? समझ में आया ? **कैसी है शब्दराशि ?** देखो! **कैसी है शब्दराशि ? 'स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैः'** इतना वजन दिया है। **शब्दों में है अर्थ को सूचित करने की शक्ति,...** यह द्रव्य, गुण, पर्याय। समझ में आया ? हेय, उपादेय और उत्पाद, व्यय और ध्रुव—ऐसा सब कहने की (सामर्थ्य) शब्द की शक्ति में है, हमारे में नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय क्या है ? अभिप्राय का काम है ? अभिप्राय हो तो ही वस्तु जगत में होगी ? परिणाम है, शब्द के परिणाम है, परिणाम है, भाव है, पर्याय है। यह परिणाम तो जड़ के परिणाम हैं। समझ में आया ? आहा! यहाँ तो (अभी कोई) कहता है कि परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं। अरे! प्रभु! गजब किया तूने। आहाहा! यह जैनदर्शन को पूरा उल्टा किया।

आचार्य पुकार करते हैं, भगवान! यह वाणी की रचना हमने नहीं की, यह मोह नहीं करना, हों! आहाहा! इस टीका को हमने किया, महा हमारी विचिक्षणता थी, इसलिए ऐसी वाणी हुई अथवा वह वाणी होने में हमारा ऐसा वाणी का महा क्षयोपशम का निमित्त था, इसलिए वाणी ऐसी रची गयी, ऐसा नहीं माना, हों! आहाहा! पीछे ज्ञान का इतना विकास है तो वाणी ऐसी हो गयी या नहीं ? नहीं, नहीं। केवलज्ञान है, इसलिए

दिव्यध्वनि की वाणी होती है? नहीं, नहीं। ओहोहो! उस समय रजकणों के परिणामरूपी पर्याय परिणमती हुई वह दिव्यध्वनिरूप से होती है। भगवान आत्मा उस दिव्यध्वनि का कर्ता नहीं, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्य अर्थात् ऊँची ध्वनि। उसमें क्या? ऊँची अर्थात् ऊँची वाणी की दशा। इसमें क्या हुआ? वह तो निमित्तपने का ज्ञान कराते हैं कि कौन निमित्त था? ज्ञान, केवलज्ञान। परन्तु केवलज्ञान ने की है, ऐसा नहीं। आहाहा! अरे! परन्तु उस समय रजकणों की पर्याय का धर्म ही ऐसा था। नैमित्तिकरूप से परिणमना (ऐसा धर्म था)। केवलज्ञान निमित्त है। निमित्त, वह कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह ज्ञान की पर्याय कहाँ स्पर्श करे किसे? वाणी को स्पर्श करे? वाणी की रचना करे? कि स्वयं ही ज्ञान स्वरूप की जानने की रचना करे? दो रचना करे एक साथ? ऐसा कैसे बने? कहते हैं कि यह शब्द से... क्या कहा?

शब्दों में है अर्थ को सूचित करने की शक्ति, उससे... 'संसूचित, संसूचित' प्रकाशमान हुआ है,.... इतना शब्द पड़ा है थोड़ा। '**संसूचित**' है यहाँ। सम्यक् प्रकार से जिस प्रकार भाषा की पर्याय निकलने की है, उस प्रकार से शब्द निकला है। इसलिए क्यों कहा यह? कि हमें ऐसा ज्ञान का हमारा भाव पीछे है, इसलिए भाषा की पर्याय ऐसी परिणमित हुई है, ऐसा नहीं जानना, हों! यह '**संसूचित**' है। शब्द की पर्याय में ही ऐसी योग्यता से वे शब्द परिणमित हुए हैं। आहाहा!

जीवादि पदार्थों का... यह जीवादि पदार्थों के '**संसूचित' प्रकाशमान हुआ है,... द्रव्य-गुण-पर्यायरूप,...** षट्द्रव्य, उनके अनन्त गुण और उनकी पर्याय, यह शब्द ने सूचित किया है, शब्द में '**संसूचित**' क्रिया का भाव है, हमारा नहीं, हों! आहाहा! **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप...** समय-समय में पर्याय उत्पन्न हुई, व्यय हुई, ध्रुव हो—ऐसा हमारा ज्ञान जाने, इसलिए शब्द की पर्याय में ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रुव का (स्वरूप) आया, ऐसा नहीं। शब्द की पर्याय में ऐसी सामर्थ्य है (कि वह) उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य को सूचित करती है। आहाहा!

अथवा हेय-उपादेयरूप निश्चय जिसके द्वारा ऐसी है शब्दराशि। देखो! ऐसी है शब्दराशि। ज्ञानराशि आत्मा ऐसा नहीं है। शब्दराशि ऐसी है। यह हेय है, यह उपादेय, व्यवहार हेय है, निश्चय उपादेय है। यह वाणी की ताकत से निकली हुई वह वाणी है। समझ में आया? ऐसा कहकर आचार्य (कहते हैं), हम तो ज्ञानस्वरूप है, उस ज्ञान में रजकण की रचना की सामर्थ्य कैसे हो सकती है? इसलिए उसके कर्ता हम नहीं, परन्तु वह शब्दराशि उसका कर्ता है, ऐसा करके उसका अभिमान छोड़कर अथवा मान छोड़कर ज्ञानस्वरूप में रमते हैं। इसका नाम मोक्ष का मार्ग कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)